

३४७६

बमल जीवाद् सायबकेकर बी. ए.,

स्वाध्याय मंडळ

रोड- स्वाध्याय मंडळ (बागडी) बागडी [वि. ४११]

संस्कृत १ १५ १ शक १८४ १ संव १९५४

श्रीगीश बाब

३४७६ १

बमल जीवाद् सायबकेकर बी. ए.,

सायब मुद्रणालय स्वाध्याय मंडळ

रोड- स्वाध्याय मंडळ (बागडी) बागडी [वि. ४११]



अथर्ववेदके सुभाषित

सूक्ति-संग्रह

विभाग ४ काण्ड ११ से १८ तक

इस चतुर्थ भागमें काण्ड ११ से १८ तकके सुभाषितोंका संग्रह है। इसमें कुछ प्रकरण हैं। यद्युपा इस विभागमें अमृत, निमग्रासे ही काण्ड विभाग है। इसविषये सुभाषित भी पाये। उघी कससे दिये हैं। कुछ सुभाषित उनके लोके अनुसार हुआ उभर किये हैं। शेष काण्ड विभागके अनुसार ही रहे हैं। प्रथम ईश्वर विषयके सुभाषित देखो—

ईश्वर

उच्छिष्टे धावापृथिवी विश्वं मूर्तं समाहितं (११/१२)—ईश्वरमें पु, पृथिवी तथा जो ब्रह्मा है वह सब निहित रहै।

मन्त्रसाम यदुच्छिष्टे (११/१५)—आग्नेय सामवेद और यजुर्वेद इस ईश्वरमें रहे हैं।

मय भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽपि भिता दिवा (११/१४)—जो भूमिवा सब समुद्र ईश्वरके आकारके रहे हैं।

कर्म सत्य तपो दाह्य भूमो धर्मश्च क्रम च। मूर्तं मविष्यदुच्छिष्टे दीर्यं अहमीवस बभे (११/१०)—सत्य अथ तप दाह्य भूम कर्म मूर्त मविष्य दीर्य अहमी, बलिष्ठता वह वह सब परमेश्वरके आकारके रहे हैं।

यद्य प्राणति प्राणेन पश्य पश्यति यदुपा। उच्छिष्टा अहिरे नर्द्धे दिवि देवा विविभिता। (११/१३)—जो प्राणति कीर्ति है जो जोकरे देवता है जो योकोर्द्धे वा जन्मत्र देव हैं वे सब परमेश्वरके अन्तर्गत हुए हैं।

१ [अथ प मा ४]

कथः सामानि छन्वांसि पुराणं यदुपा सह। उच्छिष्टास्त्रहिरे सर्वे (११/१२०)—आग्नेय सामवेद अन्य यजुर्वेदके साथ पुराण के सब परमेश्वरके रहे हैं।

प्राजापता अभ्युः प्राज्ञमसि विज्ञ सतिष्ठ यः। उच्छिष्टास्त्रहिरे सर्वे (११/१२५)—प्राजा अपान जोका काय भौतिक तथा ज्योतिषिक पदार्थ के सब परमेश्वरके रहे हैं।

आगन्ता मोहाः प्रमुदोऽमीमोदमुदय ये। उच्छिष्टा अहिरे सर्वे (११/१२९)—आग्नेय मोह विज्ञेय आगन्त प्रवक्ष आगन्त, मुख व सब परमेश्वरके ही बने हैं।

देवाः पितरो मनुष्या सन्धर्षाप्सरसश्च ये। उच्छिष्टा अहिरे सर्वे (११/१२०)—देव पितर मनुष्य गन्धर्व अप्सराएँ के सब परमेश्वरके बनी हैं।

यो रोहितो विश्वमिदं ज्ञात स रया राप्राप सुभृतं विभ्रतु (११/१११)—जिस देवने यह सब अत्यन्त किया वह उस इस राहके किये जयन मरण-मोक्ष पूर्वक चारण करे।

धावापृथिवी जनपद देव एकः। (११/१२६)—पु और पृथिवीका जनपदका एक देव है।

य इमे धावापृथिवी मजान यो द्यापि कृत्वा सुय मामि धरते (११/१११)—जो पु और पृथिवी अत्यन्त करवा है और जो सब सुवर्गोद्य जनमा जोका बचावा पहना है।

यो सारयति प्राणयति यस्मात् प्राणमिदं मुपनमि विभ्रता (११/११२)—जो कीर्तिव रक्षता है और सारवा है जिससे सब सुवन कीर्तिव रहके हैं।

य इत् विन्धे मुवर्त्त सज्जान (११।१।१५)— विघ्ने वह सब मुवर्त्त बनाया है ।

य आत्मदा बलदा यस्य विन्धे वपासते प्रशिष्य यस्य देवाः (११।१।२०)— जो ब्रह्मसमक देवा है और जो बल देता है, सब देव विघ्नकी आशा मानते हैं ।

कीर्तिव्य यथाव्य तमव्य ब्राह्मणवर्चस आस्य आभाषं व्य य एतं देव एकवृत्तं देव (११।५।१४)— कीर्ति क्या जबकाह मछलेक जब कावपान वह सब वचको निकठा है जो इष्ट एक देवको आना है ।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते (११।५।१४)— वह दूसरा तीसरा चौथा नहीं है ।

स एव एक एकवृत्त एव (११।५।१४)— वह देव एक है एकमात्र है केवल एक ही है ।

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृत्तो मन्वन्ति (११।५।११)— इसमें सब देव एकस्व होते हैं ।

महस्पृहासो असुरस्य वीरा विषो धर्तारं कर्षिया परि कम् (११।१।१४)— वरे ईश्वरके सुकोकम चारन करनेवाले वीर पुत्र दुष्पीवर ऐसे कुसर्वचका विरोध करते हैं ।

स्तुति धर्तं गर्तसं जनानां राजानं मीममुपहन्तु मुमम् (११।१।१४)— एतं ईश्वरके भर्त्सक वर कहुको भर्त्सक मारनेवाले लोगके राजाकी स्तुति करो— सद्देवकी स्तुति करो ।

मृदा अरिरे दद्रु स्रवानो अम्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेम्यम् (११।१।१४)— हे द्रु ! स्तुति करनेपर स्तुति करनेवालेको सुखी कर हमसे मित्र दूसरे पर तेरा सेम्य हमका कर ।

धन

इदं म ष्योतिरमृतं हिरण्यं एकं सोमात् काममुधा म एषा । इदं धनं नि वधे मातृण्ये कृष्ये पश्यां पितृषु यः स्वराः (११।१।२८)— वह मेरा वरिष्ठ तेजस्वी सुवर्ण है वह मेरी कामयेनु है वह धन मे मातृण्यी वारता है । वह पितरोंमें आतीन मार्ग म करता है ।

एने शुधम गृधराजस्य प्राण (११।१।२९)— वह जेठ बरहा आता है देना इष्ट सुवर्त है ।

अथो विद्या निर्वृत्तेर्मार्गधेयम्— और वह विपश्चिन् मार्ग है ऐसा बताते हैं ।

पूतेषु गात्रानु सर्वा वि सुविह (११।१।२१)— नीचे धन गात्र छुड़ कर ।

विन्धे देवा अमि रक्षन्तु पक्षं (११।१।२२)— सब देव पक्ष बचका रक्षन करें ।

धेनु सवर्णं रपीणां (११।१।२३)— गौ बनोंका बर है । प्रजासुतत्वसुत दीर्घमायुः रायव्य पौबैदप त्वा सदेम (११।१।२४)— ईशान अमरत्व दीर्घमायु, वर पौबलके साथबोके साथ तेरे पास बाते हैं ।

इयं वृधामो, वृधमानो अश्वैः, आ स धुमां अमवाह सूचति धुम् (११।१।२४)— जबका चारन करने-वाका, बोडके बाहवसे मानेवाका तेजस्वी और बकवाह विषोंको (अपने स्ववशसे) सुखीमित करता है ।

पत्नी

एमा अगुर्धोपिताः शुम्भमाणाः (११।१।२४)— वे धिनां सुखीमित होकर आ गई हैं ।

कश्चित् नारि तवस्य रमस्व— बी बड बकबे घर ।

सुपत्नी पत्या— पतिके साथ रहकर उत्तम पत्नी बन ।

प्रजया प्रजावती— ईशानके ईशानवक्त्री हो ।

अयं यको गातृविद् नापविद् प्रजाविपुत्रः पशुविद् वीरविद् यो अस्तु— (११।१।२५)— वह जब आपके किये मार्गवर्चक देवर्षवर्चक प्रजा देने वाका, वधू देवैवाका वधू देवैवाका वीर पुत्र वीर देवैवाका हो ।

शुभ्राः पूता धोपिता यक्षिया इमाः (११।१।२६)— वे धिनां छुड़ वस्त्र और रक्षणीय हैं ।

अदुः प्रजां यदुष्कायं पशून् नः—वर्षे संक्राम वीर वधूत वधू है देवे ।

मद्वन्ता शुभ्रा उत पूता पूतेम सांमस्यांशवः तच्छुभ्रा यक्षिया इम (११।१।२६)— हमसे वरिष्ठ वीध वधू, लोगके भज व आपक वधूके किये योग्य हैं ।

अरिदेर्षिं प्रजया धर्षयेतां (११।१।२७)— हे देवि ! हमको बलत कर बजसे इष्ट वीधो बजानो ।

नुदरय रक्षा— राजनीको दूर कर ।

प्रतरं घेहोमाम्— इमं स्त्रीको विशेष उदात्तः ।

धिया समामातति सर्वास्तस्याम— तंवातिष्ठे इमं सप्त
समावृत्ते विधेयं ह्ये ।

अथस्यद् द्विपतस्याद्यामि— हेय कर्मकाकोको नीचे
गिरावे हैं ।

मा त्वा प्रापत् क्षपयो माभिचारः (१११।२९)—
दुष्टे प्राप्त न हो और बन्ध भी तेरे पास न आवे।

अभ्यासार्थं पशुभिः सहैनाम् (११:१२२)—इह
पशुको पशुर्बोके साव प्राप्त हो ।

स्वे स्वेने अममीषा वि राज्ञः— अपने क्षेत्रमें वीरोप
होकर बिराजो ।

भसंर्दी शुयामुप घेहि तारि तजौदनं सादय देवा
नाम् (११/११२)— छद्म व दूरी पाकीको रे

खी ! सूटेपर रक्त बसमें सेवेमें छिने जल पकायो ।
 ते मा रिपद प्राशितारः (११११११)— बल बलको
 कीर्तनाके नष्ट न हो । (बलमें होय न हो ।)

व्याशील श्री

महं पश्यामि महं वदामि ममेव कर्म कथनेऽपि
आपा कौमारो लोको भ्रजति पत्रोऽम्बार

पञ्च

हं, मैं देवा हूँ मेरी परमात्मा देवा के कर्मों में बल करती है हमें कुमार पुत्र उत्पन्न हुआ है। उस अवस्था

(ग) उपाय की बात

दान
वदामीत्येव श्रूयात् (१२।७।१)— वेणुः वेणुः ॥

पापसे बचाव

तं मो मुशुल्यहस्ता (११।१।१-२५ — ते इमे पत्नये
वयाम् ।

पापमाहुर्यः कसारं सिगच्छात् (१८१११४)— यदि
नके पास जाना पाप कल्याण है ।

पञ्चकामजा

प्रज्ञादीर्घं पश्यति पुत्रकामा (१११११)—पुत्रकी इच्छा

अद्रोषाविता वाचमण्य (११११२)— श्रेष्ठ न करने

पूतनापाद् सुषीरो येन देवा भसद्भस्त शशम्
(१३१३)— विष्णोः पदपादं जगदीश्वरः जगत्

वीर है, इससे देव धनुषोंका परामर्श करते हैं।

करके छिपे जन्म को ।

विज्ञान-वेदान्त-प्रमाणों पर (१९११) — प

विद्वाद् एतदीय देशोको कहाँ के था ।
 ह्यस्य विपत्तः सपत्मासः (११/११६)— इस कालेबाके

सपत्नीको दूर कर ।
समातांस्ते बहिःपुत्रः कथ्यते (११/१५)— कथावि

बहुधा मां महते धीर्याय (११११०)— महत् परा

कम करनेके लिये कृपया प्रेरणा कर ।
गणेशाय नमः (११११८)— पुण्यकर्म करने

कावे के कोषको हम जान ।
कार्य प्रज्ञामुत्तरसमुद्भू (१९१९)— प्रज्ञाका वद्वार

अनेक विषय उपर उद्घाषा ।
विषय समानानति सर्वाद् स्याम (१११११)—
एतद् एव एव एव एव एव एव एव ।

अधस्यश्च क्षिपतस्याद्यामि— धनुको नीचं मित्रा
को है ।

पक्ष पालन

मा नो हिंसिष्य द्रिपदो मा अतुष्यदा (११।१।१)—
हमारे हिंसाद अतुष्यादोंकी हिंसा न करो ।

प्राण

प्राण्याय प्रमो यस्य सर्वमिदं पदो (११/११)— त्रिमल
मणीव मय हे वस प्राणने किये ममकार कराता हू।

य एवं विश्वं भुवनं जजान (११।१।१५)— विश्वने यह सब भुवन बनाया है ।

य आरमदा यत्नदा यस्तु विश्वं उपासते प्रक्षिप यस्तु देवाः (११।१।१६)— जो ब्रह्मभक्त देता है और जो ब्रह्म देता है सब देव प्रसन्न हो जायेंगे ।

कीर्तिश्च यथाश्च नमश्च प्राज्ञान्वर्धत्सं धाम्ने चाप्यार्धं च य एतं देय एकवृत्तं येत् (११।५।१७)— कीर्ति ब्रह्म धनकाय नमस्तेज नमः कान्तपाल यह सब उभय मित्रता है जो इस एक देवको जानता है ।

न क्षिणीये न वृत्तीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते (११।५।१८)— वह क्षमा क्षीमा भावा नहीं है ।

स यत् एक एकवृत्तं यत् (११।५।१९)— वह देव एक है एकमात्र है केवल एक ही है ।

सर्वे भस्मिन् देवा एकवृत्तो भवन्ति (११।५।२०)— हममें सब देव एक रूप होते हैं ।

प्रहस्पतासा असुरस्य वीर्यं दिवो घर्तारं अर्धिया परि ह्यन् (११।१।२१)— वह ईश्वरके सुकोपका भारत करनेवाले और पुत्र पुत्रीपर ऐसे कुप्रवृत्तका विरोध करत है ।

स्तुति धर्त गतस्तद् जनानी राजान मीममुपहन्तु मुमम् (११।१।२२)— हममें ईश्वरके भक्त कर हम सबका सर्वोपले माननेवाले लोगोंके राजाकी स्तुति करो— हमदेवकी स्तुति करो ।

मृदा अरिश्च यद् अश्वानो अश्वमस्मत् त नि यपन्तु सेम्यम् (११।१।२३)— हे वरुण ! स्तुति करनेपर स्तुति करनेवालोंकी लुकी कर हममें मित्र हमों वर होना मिल्न हमका कर ।

धन

इदं म ज्वातिरगूर्न हिरण्यं पदं क्षत्रान् कामनुया य देवाः । इदं धर्मं नि दध आत्मयस्य हृषिषे पयसी रिगुषु या ज्वाता (११।१।२४)— वह मेरा अनिरक्त लक्षणी लुकी है वह मेरी कामयसु है वह धर्म मे आत्ममें विरज्य है । वह रिगोमें ज्वाति काही म करण है ।

एते शुभ्रम मृदाज्जय धाम्ना (११।१।२५)— वह जेह जाका माग है देना हम लुकी है ।

अथो विद्या निरुतेर्मागयेयम्— और यह विपत्ति मार्ग है देना जानते हैं ।

धृतेन गात्रानु सर्वा वि मृष्टिह (११।१।२६)— लीने सब गात्र दृढ़ कर ।

विश्वे देवा अग्नि रक्षन्तु पदे (११।१।२७)— सब देव पदे बचका रक्षण करें ।

धेनु सङ्गम रथीणां (११।१।२८)— गो बधोंका घर है । प्रसाधुतत्वमुत वीर्यमायुः रायश्च पोषेयत् त्वा सङ्गम (११।१।२९)— संतान बराल वीर्य बाहु बल पोषणके साथको सब ठेरे पास जाते हैं ।

इयं वधामो, वहमावो मन्त्रौ, आ स धुमां अमन्त्रा मृपति धूम (११।१।३०)— लकड़ा बारन करनेवाला, बौदोंके बाहुनसे मानेवाला तेजस्वी और लकड़ा दिनोंको (अपने अन्तरात्में) सुखोक्ति करता है ।

पत्नी

यमा अगुर्धोयितः शुम्भमाता (११।१।३१)— ये पिता सुधोयित होकर आ गई है ।

वसिष्ठ सारि तबक्ष रमस्व— जो वह ब्रह्म है ।

सुपत्नी यया— पतिके साथ रहकर उभय पत्नी बन ।

प्रजया प्रजावती— संतानसे संतानवाली हो ।

अयं यको गातुवित् माधयित्, प्रजाविभुषा पशुविद् वीर्यिद् यो अस्तु— (११।१।३५)— वह यश मापके विषे मार्गदर्शक देवदर्शनक प्रजा देनेवाला, पशु देनेवाला यया देनेवाला और पुत्र पुत्र देनेवाला हो ।

शुयाः पूरा पोषितो यदिया हमाः (११।१।३६)— ये पिता दृढ़ पति और पूजनीय हैं ।

अधुः प्रजो यद्वमान् पशून् यः—यमें संतान भर वृद्ध वशु दे देते ।

महाया शुया उत पूरा भूतेज सामस्याश्वः तपुता यदिया हम् (११।१।३७)— लालने करीब होते सुख, सोमके अथ व वायव्य ब्रह्मके विषे योग्य हैं ।

अद्वि वेदि प्रजया यर्धयमां (११।१।३८)— हे पति ! हमको उभय कर ब्रह्मते हम कीकी वशमी ।

नुदस्य रक्षा— राजमोंको दूर कर ।

मातृभूमि

सत्यं बृहत्तमुग्रं दीप्ता तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं
धारयति (११/११)— सत्य बृहत् ज्ञान उग्र
वीरता दीक्षा तप ज्ञान नार यज्ञ ये पुत्र मातृ
भूमिका रक्षण करते हैं ।

सा नो मृतस्य मध्यस्थ पत्नी उग्र ह्योक्त पृथिवी नः
कृणोतु— वह मृत और मविष्यकी पावन करने
वाली मातृभूमि हमारे किये निश्चित विस्तृत कार्य
कर देवे ।

मर्त्यार्थं वध्यतो मानवानां पत्न्या उग्रता प्रयता
समं वदु (११/१२)— जिस मातृभूमिसे मान
वनों की-का-नीका होनेपर भी समानता बहुत है इस
कारण हमसे नहीं है ।

पृथिवी नः प्रयतां राध्यतां मा— हमारी मातृभूमि
हमारे वचकी हुई को ।

पत्न्यामिह कृणुया संवभूतः (११/१३)— जिस मातृ
भूमिमें निष्ठा निष्ठा करती करत बच उपजाते हैं ।

सा नो भूमिः पूर्वपदे वधातु— वह हमारी मातृभूमि
हमें वपुर्षे देवे ।

सा नो भूमिर्गोप्यन्त्यजे वधातु (११/१४)— वह
हमारी मातृभूमि हमें गोपों को बचमें बच करे ।

पत्न्यां पूर्वं पूर्वजना विश्वकिरे (११/१५)— जिस
मातृभूमिमें प्राचीन पूर्वजोंने बहुत पराक्रम किये थे ।

पत्न्या देवा मनुष्यामभ्यवर्तयन्— जिस मातृभूमिमें
देवोंने मनुष्योंका परामर्श किया था ।

पत्न्यामभ्यानां वपुस्तज्जि विष्ठा मर्गं वधाः पृथिवी यो
वधातु— यौत्त दोहे और पथियोंका जो ज्ञान है
वह मातृभूमि हमें देवर्षों और तेज देवे ।

यो रक्षस्यत्वमा विश्वदामी देवा भूमि पृथिवी
मममावम् (११/१६)— जिस मातृभूमिका
मरक्षण देव प्रसाद न करते हुए सदा करते रहते हैं ।

सा नो मधु म्रियं बुधामयो उग्रतु वर्धता— वह
मातृभूमि हमें म्रियं मधुर रस देवे और तेजसे
बुध करे ।

यो माययिरुध्वरम् मनीषिणः (११/१७)—
जिस मातृभूमिका कीर्तनबुद्धि कर्तोवे बुद्धिमान्
योग देवा करते हैं ।

सा नो भूमिस्त्रियं वर्धं राष्ट्रं वधावृत्तमे— वह
हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्रमें तेज और बच
धारण करे ।

विष्णुपत्न्यां विश्वक्रमे (११/१८)— विष्णु जिस
मातृभूमिमें पराक्रम करता रहा ।

इन्द्रो यो चक्र भारममेऽनमिर्वा क्षीयति— अश्वि
क्षामी इन्द्रने जिस मातृभूमिका क्षयवृत्ति किया ।

अक्षीतोऽहोतो ब्रह्मतोऽप्यक्षां पृथिवीमहम् (११/१९)
— अपराजित अहत् और ब्रह्म होकर मैं इस मातृ
भूमिका बचवृत्ति होऊँगा ।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (११/२०)—
मेरी माता भूमि और मैं इस मातृभूमिका पुत्र हूँ ।

सा नो भूमिर्विष्यद् वर्धमाना (११/२१)— वह
हमारी मातृभूमि बड़ाई जानेपर हमारा समर्थन करे ।

यो नो देवत् पृथिवि या पुतम्यात् योऽभिदासा
मनसा, योऽथेत । तं नो भूमे रण्यय पूर्व
हृत्वरि (११/२२)— हे मातृभूमि । जो हमारा
देव करता है जो हमपर वैश्य वैश्या है जो मनुष्य
हमें दास बनाया चाहता है जो बच करता है हे
अनुवाच करवीरकी । उसका भाग्य कर ।

स्वखातास्त्वयि वरस्ति मर्त्याः स्व विमर्षि द्विपदस्त्व
व्युत्पद्य (११/२३)— तेरेसे उत्पन्न हुए
मानव तेरे ऊपर सत्कार करते हैं । तू द्विपद और
चतुष्पादोंका पालन करती है ।

तवमे पृथिवि पञ्च मानवाः— ये पाँचों प्रकारके मानव
तेरे ही पुत्र हैं ।

भूषां भूमि पृथिवीं धर्मणां धृतां । शिवां स्पेना
मनुष्येस विष्वाहा (११/२४)— धर्मसे
जाय की हुई शुभकर्मजायकारिणी मातृभूमिका हम
सर्वदा सेवा करेंगे ।

मा नो शिवाय कथ्यत (११/२५)— हमारा कोई
हो न करे ।

स्त्रियामस्त संशिर्य मा हृषोतु (११/२६)— मातृ
भूमि मुझे तेजस्वी और वीर्य करे ।

भूयसां मनुष्या जीयति सध्यामेन मर्त्याः (११/२७)
— भूमिमें मनुष्य जातिके लोग बच जानेके
जीविते रहते हैं ।

सा नो भूमिः प्राणमययुर्वधानु अरयधि मा पृथिवी
हृषोतु— वह हमारी मातृभूमि मेरे अन्दर प्राण
और देवी बनू जाय करे और मुझे बुद्धावस्थातक
जीवित रहनेवाला करे ।

तेन मा सूरभि कृणु (११/१/१३)— मातृभूमि उस
सुवासने मुझे सुगन्धयुक्त करे ।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरजमा (११/१/१४)—
उस सुवचन अपने अन्दर चारण करनेवाले मातृभूमि के
क्रिये में समन करता हू ।

गुह्या न आपस्तम्बे हरन्तु (११/१/१५)— गुह्य वह
हमारे सरीरके भिन्ने रहे ।

यो नाः सेनुरभिये त मि वृधमा— जो हूह है उसको
अभिय अवकाशमें रखते हैं ।

पथित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि— हे पृथिवी ! पथित्रे
में अपने आपको पवित्र करता हू ।

स्योमास्ता मर्षं वरते भयन्तु मा मि पतं भुवने
शिभिषाणा (११/१/१६)— वचन विज्ञानें वृद्धने
वाले मुझे सुकदावक हो भूमिपर रहनेवाले मुझे
कोई न गिराये ।

क्षालि नो भूमे भव (११/१/१७)— हे मातृभूमि ! वृ
हमार क्रिये कल्याण करनेवाली हो ।

मा यिदम् परिपमियता— अनु हमें न जाने ।

धरीया यावया वधम्— वध हमसे दूर जाय ।

मा हिंसीकृज नो भूमे सधस्य प्रतिशीवरी
(११/१/१८)— सबको आशय देनेवाली मातृ
भूमि ! मेरी हिंसा न कर ।

यस्यां पूर्वे भूतकृत जापयो गा वदामुक्ताः (११/१/१९)—
प्राचीनकालका इतिहास बनावेवाले अधिवासों वाली छे
मेरी स्तुति गावी ।

सा नो भूमिरा विद्यातु यद्वर्नं कामयामहे (११/१/२०)
— वह भूमि हमें वह वचन देने को हम चाहते हैं ।

यस्यां गायन्ति मृत्यन्ति सूर्या मर्त्या ध्येष्ठवाः
(११/१/२१)— विशेष प्रेरित हुए और विश्व
भूमिमें जागृत हो गये और जागते हैं ।

गुह्यमेतं यस्यामाकृष्यो यस्यां वदति गुह्यभिः—
जिन मातृभूमिमें गुह्य क्रिये जाते हैं और जिनमें
गुह्यभि ब्रजता है ।

सा नो भूमिः प्र णुवतां सपत्ताम्— वह मातृभूमि
हमारे अनुभवोंको दूर करे ।

असपत्ता मा पृथिवि कृणोतु— मातृभूमि मुझे अनु
रहित बनावे ।

यस्याः पुरो देवकृतः सेवे यस्या यिकुर्वते (११/१/२२)
— जिस मातृभूमि के लिये देवोंके बनावे हैं, जिसके
क्षेत्रमें मनुष्य नामा कार्य करते हैं ।

प्रजापतिः पृथिवीं विश्वागर्माशामाद्यां रक्ष्यां ता
कृणोतु— प्रजापति एक पदार्थोंको अपनेमें चरान
करनेवाली हमारी मातृभूमि को प्रत्येक दिशामें रक्ष
जीव बनावे ।

निधिं विभ्रती वहुधा गुह्या वसु मधि हिरण्य पृथिवी
वदातु मे (११/१/२३)— अनेक प्रकारका धनका
जमाया जाय करनेवाली हमारी मातृभूमि हमें रत्न
और सुवचन देवे ।

वसुभि नो वसुता राक्षमासा देवी वधातु सुमव
स्पमाता— वचन देनेवाली प्रजापतिमा देवी मातृ
भूमि वसुवर्षितके हमें वचन देवे ।

अनं विभ्रती वहुधा विधावर्षं नानाधर्माजं पृथिवी
ययीकृते (११/१/२४)— अनेक भाषा बोलने
वाले नामा वर्णितके लोगोंको जो एक वरमें रहने
वालोंके समान चारण करती है ।

सहस्रं आरा द्रविण्यस्य मे गुह्यां भुवेन घेनुरवपस्कृ
रन्ती (११/१/२५)— वह हमारी मातृभूमि व
विश्वेवाली गौंके समान हमें अपनी सहस्रों
आराध देवे ।

यच्छिन्नं तेन नो सूह (११/१/२६)— जो कल्याण
करनेवाला है उससे हमें सुख दे ।

ये ते पन्थानो वहयो जगामया रथस्य वरमानंस्रज
यातये : यैः सञ्चरन्ति वसये मद्रपाया तं
पथानं जपेयम ब्रह्मविभ्रमत्स्करं (११/१/२७)—
जो बहुतसे मार्ग जाये-जायेंगे और रखें हैं जिसपर
सज्जन और दुर्जन जाते हैं, वे मार्ग अनुसरित और
आराधित हो ।

अहमस्मि सहमान वसतो नाम भूम्या । अमीवाड
सि विश्वापाद्याद्यां आद्यां विपास्तहि
(११/१/२८)— मैं विभ्रती और अपनी मातृ

मृमिपर मेह हूँ । सब प्रकारका पराक्रम करनेवाका
प्रमेह दिशामें निजनी हू ।

ये प्रामा पदार्थ्य था। समा मधि भूम्याम् । ये
संप्रामाः समितपस्तेषु आठ यवामि ते
(११११७९)— जो प्राम हैं जो जरण हैं जो
समाएं और समितिको होती हैं जो मुझ होते हैं
जन्में मैं है मातृभूमि । ठेरे बिचमैं तत्तम भव
रखनेवाका मापन करूंगा ।

यद्वदामि मधुमच्छद्वामि (११११८०)— जो जोड़ूंगा
वह नीला ही बोलूंगा ।

त्विपीमालकि जूतिमान् भवाभ्यान् हस्मि बोधतः—
मैं ठेकली हू, और प्रगति करनेवाका हू । जो इसारी
भूमिको हू केते हैं जब कबुकोंको मैं मारता हूँ ।

यत्त ऊन तत्त भा पूरयाति प्रजापतिः प्रथमशा
कृतस्य (११११८१)— हे मातृभूमि । जो ठेरे
बन्धन भूय है उसकी परिपूर्णता सत्यका प्रथम सब
तक प्रकाशित करता है ।

वपस्वास्ते मतमीवा मयभमा मसाम्य सन्तु पृथिवि
प्रसूताः (११११८२)— हे मातृभूमि । तुम्हारे
बन्धन रहनेवाके लोग नीरोग रहें और तुम्हारी सेवा
करनेके किये तुम्हारे पास उपस्थित रहें ।

हीर्षं न आद्यः प्रतिबुध्यमानाः— हम शानी हों और
हमारी जानु हीर्ष हो ।

यत्तं तुभ्य वसिष्ठतः स्याम— हम तुम्हारे किये अपना
बन्धी होनेवाके हों ।

भूमे मातर्नि चेहि मा मद्रपा सुप्रतिष्ठितम् (११११८३)
— हे मातृभूमि ! तुझे कबलाके सेवक कर ।

संविधाना दिवा कवे भियां मा चेहि भूथ्याम्—
मद्विदिन कामनेवाकी होकर तू मुझे श्रुतिवीर्यें संप
दितेई रख (भरपूर संपत्ति हो) ।

मुष्ट

ये बाहवो या इषवो धन्यतां वीर्याणि च । मसीन्
परशूतापुधं विद्याकृतं च ययुर्हि । सर्वे तद्
कुं दे त्वमभिज्ञेभ्यो इवो कुत ववाराब्ध प्र दशाय
(११११८४)— जो वीरोंके बाहु बल ययुज्य
पराक्रम एकद्वारे काश्चित् जानुज, इदमैं जो

बिचार हैं वे सेनापत । तू यह सब सजुकोंको
दिकानो और स्कोटक बल भी दिकानो । (जो देख
कर सजु धरता थाय और मुझसे पाहासुस हो ।)

वसिष्ठत सं मज्जध्व (११११८५)— उठो, तैयार हो
जाओ ।

संक्षुद्रा गुता यः सन्तु या मो मित्राणि— जो हमारे
मित्र हों वे जलम रीतिसे देखे और सुरक्षित हों ।

वसिष्ठतमा रमेयामादानसद्धानाम्यां भमित्राणां
सेमा भमि पत्तं (११११८६)— उठो बाहान
पंथान करके बुझ झुक करो और सजुकी सगको
पकड़ो ।

वसिष्ठ त्वं देवजनापुं दे सेनया सह । मज्जध्वमित्राणां
सेनां योगेभिः पारि वारय (११११८७)— हे
देवजन सेनापते । तू सेनाके साथ उठो । सजुकी
सेनाको अपनी पकड़ोंसे पकड़कर बह कर ।

वसिष्ठ सेनया (११११८८)— सेनापते उठो ।

प्रतिप्रानाद्यमुकी कृशुर्कर्णी च कोशसु । विकेशी
पुरपे इते (११११८९)— शाली पीरती बाकोंमें
कशुवाकी कबलें आसूजन न हों पसी पुरुष मरने
पर बिको वाकवाकी जपु की बाकोच करें ।

अयो सर्वं आपद्य मक्षिका तुभ्यतु क्रिमिः । पौदये
येऽधि कुम्भे रक्षिते मर्बुदे तव (११११९०)—
हे सेनापते । तेरा बाकमन होनेपर जो घत रनझेइसे
पंथोंके जनवर सब पछ, मस्तिबो, क्रिमी वृत्त होते
रहें ।

मुष्टम्लेषां पाहवः विद्याकृतं च ययुर्हि । मैपा
मुष्टलेपि कबन रक्षिते मर्बुदे तव (११११९१)
— हे सेनापति । तेरा बाकमन होनेपर कबुमेंसे
कोई न रहे उनके बाहु मोहित हो उनके मनमें
को हो वह भी प्राप्त बने ।

उत्प्रेषयत्वमपुं देऽमिद्यापाममः सिच । जयार्थं विष्णु-
श्यामिर्भा जयतां (११११९२)— सजुके सेना-
सजुकोंको सेपावमान् करो कजुको बीतो बचन बीर
मिजर्षा हों ।

तपापुं दे प्रणुतातामिष्टो हस्तु सर्वं वर (११११९३)—
देहित हुए सजुकेवाके सुवच सुवच वीरको मो ।

सा नो भूमिः प्राणमायुर्व्याप्तु अरुणि मा पृथिवी
कृणोतु— वह हमारी मातृभूमि और अन्तर प्राण
और दीर्घ वायु बतल करे और मुझे इच्छावत्प्राप्त
कीवत्त रहनेवाला करे ।

तेम मा सूरभि कणु (११/१/१६)— मातृभूमि उस
सुधाप्रदे मुझे सुगन्धक करे ।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरममा (११/१/१६)—
उस सुवर्ण अपने अन्तर बारन करनेवाले मातृभूमिसे
जिसे मैं वसन करता हूँ ।

शुद्धा न आपस्तस्यै सरणु (११/१/१६)— शुद्ध नम
हमसे घरीरके जिने करे ।

पो ना सेहुरप्रिये त वि व्रमा— जो हृष्ट है वसको
अप्रिय बनवाते रहते हैं ।

पथिव्ये पृथिवि मात् पुवामि— वे पृथिवी । पवित्रते
में अपने आपको पवित्र करता हूँ ।

स्वोसाक्षर महां वरते मवन्तु, मा मि पतं मुक्षते
शिप्रियाया (११/१/१६)— धन विद्याने वृक्षने
बाले मुझे मुक्षदायक हो भूमिपर रहनेवाले मुझे
कोई न गिरावे ।

अलि वो भूमे मव (११/१/१६)— हे मातृभूमे ! तु
हमारे जिने बनवाने करनेवाली हो ।

मा विहन् परिपणिधमा— अनु हने न जाने ।

घरीयो यावया वधम्— नम हमसे दूर जाने ।

मा हिंसीताम नो भूमे सवेस्य प्रतिशीबरी
(११/१/१६)— सख्यो बामन देनेवाली मातृ
भूमि ! मेरी हिंसा न कर ।

यस्यां पूर्वे भूतकृत क्षपयो गा वदानुधुः (११/१/१६)—
मातृभूमिकका इतिहास करनेवाले क्षत्रियोंने बलीसे
तेरी स्तुति पायी ।

सा नो भूमिरा विशातु वयन कामधामहे (११/१/१६)
— वह भूमि हमें वह वन देने का हम चाहते हैं ।

यस्यां गायन्ति नृसन्ति सूर्या मर्यां व्येसवाः
(११/१/१६)— विशेष प्रेरित हुए और विश
वमिसे बालकदे गते और वाक्ये हैं ।

सुप्यते यस्यामाक्रुवो यस्यां वधति मुनुमिः—
जिस मातृभूमिमें सुख जिने करते हैं और विद्वते
मुनुमि बसता है ।

सा नो भूमिः प्र पुवता सपत्नान्— वह मातृभूमि
हमारे अनुमोको दूर करे ।

असपत्न मा पृथिवि कृणोतु— मातृभूमि मुझे अनु
रहित बनावे ।

यस्यां पुते वृक्षकृतः क्षेत्रे यस्यां विकुर्वते (११/१/१६)
— जिस मातृभूमिसे नगर क्षेत्रोंके बनाये हैं, जिनके
क्षेत्रमें अनुप्य माना कार्य करते हैं ।

प्रधापिता पृथिवी विभ्यगर्मामाष्टामाष्टा रक्षां वा
कृणोतु— प्रधापक सब पदार्थोंको अपनेमें धारण
करनेवाली हमारी मातृभूमिको प्रत्येक दिशामें रक्ष-
णीय बनावे ।

निधि विभती वहुधा शुद्धा वस्तु माभि हिरण्यं पृथिवी
व्यातु मे (११/१/१६)— अनेक प्रकारका वस्तु
बनाना बतल करनेवाली हमारी मातृभूमि हमें लक्ष्मी
और सुवर्ण देवे ।

वसुधि वो वस्तुषा रासमाना देवी व्यातु सुम-
स्वमामा— वन देनेवाली प्रकाशमातृ देवी वस्तु-
भूमि प्रसन्नचित्तसे हमें वन देवे ।

अथ विभती वहुधा विद्यावत्सं ज्ञानाधर्मानं पृथिवी
वयीकृतं (११/१/१६)— अनेक ज्ञाना बोधने-
वाले ज्ञाना धर्मोक्तों को धर्मोंको जो एक करने रहने
वालोंके समाज बतल करती है ।

सहस्रं धारा प्रविजस्य मे शुद्धा मुखे वधेनुरवपय
रणी (११/१/१६)— वह हमारी मातृभूमि व
विजनेवाली गौरी समान हमें अपनी तरफों
धारों देवे ।

पथिव्यं तेम मो मुह (११/१/१६)— जो बनवाने
करनेवाला है उससे हमें सुख दे ।

ये तं पण्यानो वहुधा जनायसा रथस्य वर्तमानस्य
पातते । यैः सखरस्ति तस्यै मद्रपापाय तं
पण्यानं जयेम अवमिजमरस्पर् (११/१/१६)—
जो वहुधसे मार्ग जाने-जानेके और रखते हैं निरन्तर
ध्यान और हर्षण करते हैं वे मार्ग अनुसरित और
धोरारहित हों ।

महमभि सहमान वधरो नाम भूम्यां । अमीवाकं
धि विभवायावाष्टां भाष्टां विपासधि
(११/१/१६)— मैं विजयी और अपनी मनु

तस्माद्दे विद्वांसः पुरुष इव शङ्कोति शम्भते (११/४/१२)
—इसकिये जायी इस पुरुषको वह भय है ऐसा मानता है ।

सखा क्षामिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते—सब देवताएँ वहाँ गोष्ठाङ्गमें बैठी गावें रहती हैं बैठी रहती हैं ।

रोग-निवारण

इहं सीसं भागयेयं त पट्टि (११/११)—वह सीस देता मान्य है ।

यो गोपु यक्षः पुरुषेषु यक्षमस्तेन त्वं साक्षमधराक् परेहि—जो क्षयरोग यौबोंमें और पुष्पोंमें होगा उसको दूर कर ।

पक्ष्मं च सूर्ये तेनेतो मर्युं च निरजामसि (११/१२)—क्षयरोगको और सूर्यको दूर कराव । निरितो मर्युं निक्षति निररार्ति अजामसि (११/१३)—इस मर्यु दुःख और लज्जाको दूर करते हैं ।

यो मो क्षेपि तमसि अग्ने—जो हमारा हथ करता है हे अग्नि ! ठके जा ।

त्वा यक्षस्तपतिराधात् क्षीमापुत्याय पातशारदाय (११/१४)—जाय पति दुष्टे तौ सर्वेकी बीमांशु देवे ।

ते ते यक्षं स वेवक्षो दूराद्दूरमनीतशम् (११/१५)—वे देव ते क्षयरोगको दूरसे दूर करते भय करें ।

शुद्धा भवत यक्षिणाः (११/१६)—छूट और पूर नीच बनो ।

इहेमे बीटा बहवो भयगण (११/१७)—वहाँने बीर बहुत हो ।

अमूष भद्रा देवहृतिर्नो भद्र (११/१८)—हमारी हथ मार्गका भाग कल्याणकारिणी हो गयी है ।

प्राञ्चो भगाम नृपते हस्ताय (११/१९)—बायले और इसनेके छिने हम बाये करें ।

सुवीरसो विद्यमा ध्रुवे—उत्तमवीर बनकर बुद्धका विचार करेंगे ।

हम जीवेम्यः परिधिं द्यामि मेपां तु धावपरो अयेमेत (११/२०)—मानव्यामिबोके छिने वह जातुर्मर्जादा मेने दी है नीच बनकर हम जातु र्णी बनका कोई बाध न कर ।

पातं जीवन्ताः शरदः पुरुषीक्षितो मृत्युं दधतां पर्यतेम—सो बनोंका शीर्षकाङ्क कोण जीवित रहें और पर्यतेके द्वारा (पीढकी रीढके द्वारा) मृत्युको दूर रहे ।

आ रोहत आयुजरस नृणामा अनुपूर्वं पतमाना पति स्थ (११/२१)—दूर वयस्त्वाका स्वीकार करते हुए शीर्षांशुको प्रक्ष कर । एकके पीढ दूसरे सिद्धितक जान करो ।

तान् यः स्वयां मुञ्चमिमा सजोयाः सूर्यमायुतयतु जीवन्ताय—उत्तम वयस्त्वाका इत्यादी स्वयां आप सबको शीघ्र जीवन्तके छिने पूर्व जायुतक के बारे ।

यथा न पूर्वं मयरो सहाति धातदायुपि कल्पयैयां (११/२२)—जिस तरह पूर्व जन्मके पूर्व प्रजाद जन्मा न मरे इस तरह है बाधा ! इनकी आयुकी योजना कर ।

अशमन्वती रीयते स्ते रमन्ध्र पीरयध्वं प्र तरता सखायाः (११/२३)—परबोंवाकी बही बेगले बच रही है हे मित्र ! हमको और बीरता बरान करो ।

अत्रा जहीत ये असम् तुरेया मनमीयानुसरेमामि कामात्—जो दुःखहानी परार्थ है उनको बही छोड़ दो हम पार होनेपर रोगरहित बच प्राप्त करेंगे ।

अतिष्ठता प्र तरता सखायोऽशमन्वती नदीं स्मन्त इय (११/२४)—उठो बार तेरो ! हे मित्रो ! वह परबोंवाकी बही बेगले वह रही है ।

अत्रा जहीत ये असत्तशिवाः शिवास्त्योतानुसरे मामि धाजान्—जो ठुरे वदये हैं उनको बही छोड़ दो जब हम पार हो जायेंगे तब सुखकारक योगोंको प्राप्त करेंगे ।

विभ्रदेवीं वर्यस आ रमन्ध्र शुद्धा भवन्ताः शुषयः पावकाः (११/२५)—सब देवोंकी वधातना बनवा तेज बधनेके छिने पार न करो हम छूट पवित्र और मज्जरहित बनो ।

अतिक्रमन्तो तुरिता एवामि शर्तं हिमाः सर्ववीर्य मेवेम—बापके त्यागोंको दूर करते हुए सब वीरोंके समेत हो । सर्वतक जानाते रहेंगे ।

अमित्रान् भो वि विषयतां (११।१।१३)— कनुओंको
धीनो ।

तेषां सर्वपाप्मीयानां उत्तिष्ठत स नष्टार्थं (११।१।१४)
— जब कनुओंके दुम खासी हो उठे तैयार हो
जाओ ।

इमं सप्रार्थं संक्षित्य यथाशोकं वि तिष्ठभ्यम्— इस
सप्रार्थको बीतकर अपने व्यामपर जाकर झुके रहो ।
उत्तिष्ठत सं नष्टार्थं यद्द्वाराः केतुमि। सह। सर्पा
हतरक्षना रक्षांस्पनुं यावत् (११।१।१५)—
बड़े अपने ध्वजोंसे तैयार हो जाओ हे सर्पों और
हृत्तरक्षणे ! राक्षसोंपर हमका चढ़ाओ ।

उत्तिष्ठ त्वं देवव्रताहर्षदे सेनया सह (११।१।१६)—
हे देवव्रत सेनापते ! तू उठ सेनाके साथ चढ़ाई कर ।
अपामित्रान् प्र पयस (११।१।१७)— कनुओंके बीच
बौर अपने बचौ कर ।

तमसा त्वममित्रान् परि वारय (११।१।१८)— तू
तमसाके कनुओंका विचारण कर ।
मामीपां मोक्षि कञ्चन— जब कनुओंकेसे किसीको न
छोड़ ।

धितिपदी सं पठत्वमित्राणां अमृ।सिन्धु। (११।१।१९)
— इन कनुओंके सेनापतुहपर बैठ शयनकी कति
मिरे ।

मुह्यन्त्वधाम् सेना अमित्राणां— कनुओं सेनाके
मोहित हों ।

मूढा अमित्रा न्यर्षुदे जघेपां वरं वरं (११।१।२०)—
हे सेनापते ! कनुसेना मूढ़ नहीं है इसके मुझिया
वीरोंके मार ।

अनया जहि सेनया— इस सेनाके बीतो ।

यस्य कपयी यथाकथञ्चोऽमित्रो यथायममि। अया
पारीः कपयपारीः अममना अमिहृतः शायाम्
(११।१।२१)— जो कनु कपयचारी है जो
कपयके रहित है जो कपय वेदा है वह कनु अया-
पारीके कपयपारीके तथा कपयके आवाजके मरा
होकर सो जाय ।

मे वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वास्तानर्षुदे हतान् आनोऽहन्तु मृश्याम्
(११।१।२२)— जो कपयचारी जयया कपयके

बिना कनु है ये सब युद्धमें मरे और मृशमें रहे ।
उनके मृत कुले कर्म ।

ये रथिनो ये अरथा असावा ये च सादिनः । सर्वा
नयन्तु तान् हतान् गृभ्रा द्येनाः पतयिष्यः
(११।१।२३)— जो रथी जो रथके बिना जो
जोड़ोंवाले जयया जो जोड़ोंके बिना कनु है उन
सबको युद्धमें मारेपर गीब, हवेन आदि पड़ी कर्म ।
सहस्रकुणपा शोतामामिषी सेना समरे वधानां ।
विषिषा ककञ्जाकृता (११।१।२४)— युद्धमें
मारी यभी ककञ्जोंसे धीधी और विहृत अकतवली
होकर कनुसेना सहस्रों मेरोंमें युद्धमूमपर जयन
करे ।

शरीर

हन्मविन्मृ। सोमास्त्रोमो अग्नेरभिरजायत । त्वह्य
ह जने त्वध्नुर्धातुर्धाताऽजायत (११।६।१)—
हन्मदे हन्म सोमसे सोम अग्निसे अग्नि त्वह्यसे
त्वह्य और जातसे जाता हुआ । (ये हन्म पुत्र
शरीरमें जाकर रहे हैं ।)

ये त मासन् वश जाता देवा देवेभ्यः पुरा । पुनेभ्यो
लोके वत्सा कसिस्ते लोक मासत् (११।६।२)
— पूर्व समयमें वश देवोंसे वश पुत्र देव बलव
हुए । पुत्रोंको उन्होंने जाव दिया और ये फिर
लोकमें गया रहने लगे हैं ।

संसिचो नाम ये देवा ये संमारात्सममरन् । सर्व
संसिच्य मर्ये देवाः पुत्रवमाविशन् (११।६।३)
— सिचव कनेवाके ये देव हैं जिन्होंने सब संमत
हृष्टा किया । सब मर्येको जीववरकसे सिचिव
करके ये सब देव शरीरमें जाकर रहे हैं ।

पूर्व कृत्वा मर्ये देवाः पुत्रवमाविशन् (११।६।४)—
मर्ये पर करके सब देवपुत्र शरीरमें जाकर रहे हैं ।
विधाव्य वाऽविधाव्य यन्माम्यपुत्रवेदस्यम् । शरीरं
जह्य प्राविशद्वयः सामाथो यन्मृ। (११।६।५)
— विधाव्य कविधाव्य (मित्राव), और जो कपयके
करके योग्य है, वह सब बल शरीरमें प्रविष्ट हुआ ।
यभी कपयके धामवेद और यन्मरे हैं ।

देवाः कृत्वा मर्ये देवाः पुत्रवमाविशन् (११।६।६)—
देवा भी वमाकर देव पुत्रमें प्रविष्ट हुए हैं ।

तस्माद्दे विद्वान् पुरुष इव द्योतेति मन्थते (११/४/१२)
—इसप्रकारे शास्त्री इस पुरुषको वह मन्थ है ऐसा
मानता है ।

सद्या ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इयासते—उम
देवताएँ वही गोष्ठमन्थसे बैसी गाँव रहती हैं बैसी
रहती हैं ।

रोग-निवारण

इदं क्षीघ्रं मागधेयं त्र पण्डि (११/१/११)—यह क्षीघ्र
रोग मान्य है ।

यो गोपु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्व साकमधराह
परिह—जो छत्ररोग गोपोंमें और पुरुषोंमें होगा
उसको तुम दूर कर ।

यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मन्थुं च निरञ्जामसि
(११/१/१२)—छत्ररोगको और मनुष्योंको दूर कराता हूँ ।
बिरिहो मृत्यु निरुति विररासि अञ्जामसि (११/१/१३)
—इस मृत्यु दुःख और मनुष्योंको दूर करते हैं ।

यो नो ह्येषि तमासि अग्ने—जो हमारा ह्रैव करता है ते
अग्ने ! इसे का ।

त्वा मज्जान्स्पतिराभाद् दीप्तामुत्थाय शतशारदाय
(११/१/१४)—जाय पति तुझे सी। वर्षाकी शीर्षांशु
देने ।

ते ते यक्ष्मं च पेषसो हृत्तद्दूरमनीनघात् (११/१/१५)
—ते तेन तेने छत्ररोगको दूरसे दूर करते वह करें ।

शुद्धा मयत यक्षिणा (११/१/१६)—शुद्ध और पूज्य
मनो ।

इहेमे बीटा बहवो मय्यतु (११/१/१७)—बहाने बीर
पुरुष हों ।

मन्थुं मन्ना देवहातेनो अघ (११/१/१८)—हमारी
ह्रैव मानना मात्र कल्याणकारिणी हो गयी है ।

माञ्जो भगाम नृतमे हस्ताय (११/१/१९)—माचने
और हस्तमें लिने इस आगे लेंगे ।

सुपीरासो विद्वपमा सदेम—उत्तम बीर वनकर बुद्धका
विचार करेंगे ।

इमं जीधेम्बा परिधिं द्यामि मीपां तु गावपरो
अधिमित (११/१/२०)—मानवमांसिकोंके लिने
वह जादुईचर्चा देने की है बीर वनकर इस जानु
कपी वनका कोई मांस न कर ।

१ [अक्षरं प मा. ४]

शत जीधेम्बाः शरदः पुरुषीस्तिरो मृत्यु दधतां
पर्वतेन—सो वर्षोंका शीर्षकाङ्क लोग जीवित रहें
और पर्वतके द्वारा (पीठकी रीढ़के द्वारा) मृत्युको
दूर रहने ।

आ रोहत आधुर्जस्त धूनामा मनुपूर्वे पठमाना
यति स्व (११/१/२४)—हृद मन्थनाका भीकार
करते हुए शीर्षांशुको प्राप्त करो एकके पीछे दूसरे
सिद्धितक जान करो ।

तान् च स्वष्टा भुजमिमा सजोयाः सर्वमाधुर्नयतु
जीवनाय—उत्तम वनमन्थना कराही स्वष्टा जान
उसको शीघ्र जीवनेके लिने एवं मनुष्यक के जाने ।

यथा न पूर्वे अपरो जहाति घातरायूपि करुपैयपां
(११/१/२५)—जिस तरह पूर्व जन्मके पूर्व पञ्चाङ्ग
जन्मा न मरे इस तरह है माता ! इसकी अनुसूची
बोझना कर ।

अदमन्वती रीपते स्म रमन्व यीरयध्वं प्र तरता
सखापा (११/१/२६)—पाशोंवाली नदी वेगसे
बह रही है ते मित्रो ! लंभाको और बीरता धारण
करे ।

अन्ना जहीत ये असह दुरेवा अनमीयानुत्तरेमामि
वाजाम्—जो दुःखवासी परम्य हैं उनको वही
छोड़ दो हम पार होनेपर रोमरहित बल प्राप्त करेंगे ।

असिमुता प्र तरता सखापोऽदमन्वती नदी स्मन्वत
इव (११/१/२७)—उन्को बीर ऐसे । इ मित्रो !
वह पाशोंवाली नदी वेगसे बह रही है ।

अन्ना जहीत ये असहशिक्षाया शिष्यान्स्थोनानुत्तरे
मामि वाजाम्—जो दुरे वरान्य हैं उनको वही
छोड़ दो, जब हम पार हो जायेंगे तब बुद्धकारक
योगोंको प्राप्त करेंगे ।

विभवेर्षी यक्षस आ रमन्व शुद्धा मन्थतः द्रुवपाः
पायकाः (११/१/२८)—सब देवोंकी वपापना
नपना तेज बहानेके लिने मान्य करो तुम शुद्ध,
पवित्र और मज्जराहित मनो ।

अतिक्रामन्तो दुरिता पक्षानि शतं हिमां सर्वपीरा
मदेम—पादके ल्घानोंको दूर करते हुए सब बीरोंके
लिये हो सर्ववश आनन्दसे रहेंगे ।

सृत्यु प्रत्योदह्य पदपापनेत्रे (११/१/१९)— अपने
बाजरागते सृत्युको हटा करके है।

सृत्योः पर्वं योपपन्नं यत् द्राघीयं बाधुः प्रतरे
वृषाणाः (११/१/१३)— सृत्युके पाँचको हटा करके,
दीर्घं बाधुको बलि दीर्घं करके बालन करके चको।

आसीमा सृत्युं सुवता सधस्थेऽथ जीवासी विद
धमा सधेम— आसनादि करके सृत्युको हटा करो
और यदि जीवोंगे सभायें बलकी बल करेंगे।

इमा नारीरविधवाः सुप्रमीराज्ज्वेन सर्पिषा सं सृ
शन्ताः। अतश्चो अतमीवा सुरता आपोहन्तु
जमयो योनिमग्ने (११/१/११)— ये जिवाँ कचम
पत्नीवा हों विधवा न हों अजम और भी कगायें
शोगरविध अशुरविध कचम रत्न बालन करनेवाली
जिवाँ प्रथम अपने वरयें कंचे आचर चहें।

दीर्घेणायुषा समिमान् सुज्जामि (११/१/११)—
इनको दीर्घायुषे पुष्ट करवा हूँ।

भ्राह्मः गुहाः स सुज्यमते स्त्रिया बन्त्रिषते पतिः।
(११/१/१९)— जब बीका पति मरता है तब वह
पीकाबन्धे पुष्ट होते हैं।

जीवाबाम्ययुः प्र तिर (११/१/१५)— जीविषोंकी आयु
दीर्घं कर।

एषां ऊर्ध्वं रयिं मयास्तु चेहि (११/१/१९)— इनका
ऊँचा मत जब इसी है।

दीर्घेणायुषा समिमान् सुज्जामि (११/१/१५)— मैं
इनको दीर्घायुषे पुष्ट करवा हूँ।

इमं जीव जीवधन्याः समित्य तासां मज्जमसृतं
यमाहुः (११/१/१०)— जीवधको जन्म करनेवालों।
इस जीवधकाको मात होकर महाका बलम मात को।

चतरे राप्पु प्रजयोत्तरावत् (११/१/११)— केड राप्पु
सुपवाये जबिक केड होवा है।

बलस्पतिः सह इवैर्न आगय रक्षः पिशाचानपवाय
मातः (११/१/१५)— राक्षस और पिशाचोंको
हटा करता हुआ वह बलस्पति विष्णु कसिरीसे इनसे
पाछ भावा है।

तेव सोकानमि सर्वाश्च जयेम— उधरे धर कोकोंको
जीतेंगे।

विवाह

इह प्रिय प्रजायै ते सम्मृषतां अक्षिम् गृहे गार्ह
पत्याप जागृहि (११/१/११)— वहाँ ठेरी प्रजाते
जिसे सम्मृषि प्राप्त हो, इस वरमें गृहकी पाकक बर
कर आगती रहे।

एता पत्यां तर्ग्य स स्पशस्व— इस पतिके साथ अपने
जिरिका स्पष्ट कर।

इहैव स्त्री, मा वि यौध विष्ममायुर्ध्वजुतम् (११/१/१९)— वहीं रहो मत युवक होको सब आयु
होनेतक निककर रहो।

कीडन्ती पुत्रैर्मपुत्रिर्मोदमानौ स्वस्तकौ— पुत्रों और
पत्नीके साथ केकटे हुए अपने वरयें आनन्दके रहो।

मसुसरा कज्जवा सन्तु पश्यामो येमिः सखायो
पस्ति मेो वरेयम् (११/१/१३)— कर्मोंसे रहित
सक मार्य हों विधवे हमारे मित्र कम्पाके बर
जाते हैं।

आधाधना सौमनसं प्रजां सौमार्ग्यं रयिं। पत्सुर
जुमता भूत्वा स नद्यस्व अमुताय कम
(११/१/१९)— कचम मन संगम और सौमा
र्यकी बाला करनेवाली व पतिके नद्युक्त आचरन
करनेवाली होकर अमरत्व प्रप्तिके जिये वृ विद हो।

एषा त्वं सज्जामेभि पत्सुरर्हं परेत्य (११/१/१३)—
वैसी वृ पतिके वर वृत्तकर वहाँ सज्जामी होकर रह।

सज्जामेभि आशुरेण सज्जामुत वृत्तु। नमान्पुः।
सज्जामेभि सज्जामुत आम्वाः (११/१/१३)—
जहुर देवर बलम् साध इनके साथ सज्जामी
होकर रह।

दीर्घं त आधुः सधिता कुजोतु (११/१/१३)—
सधिता ठेरी दीर्घं आयु को।

तेन गृहामि ते हस्त मा व्ययिष्ठा मया सह प्रजया
प ध्येयं च (११/१/१३)— तेरा हाथ मैं प्रथम
करवा हूँ, मत बल मेरे साथ प्रजा और अपने
आच रह।

गृहामि ते सौमगत्वाय हस्त मया पत्या अरद्वि-
र्यथासा (११/१/१५)— मैं तेरा हाथ एकवता
हूँ, मुझ पतिके साथ वृदावस्थातक रह।

पानी त्वमसि घमणाहं गृहपतिस्तव (१३।१।११)-
तू मरी बनने के लिये है मैं तेरा गृहपति हूँ।

ममेयमस्तु पोष्या मद्यत्वाद्बुद्धस्पतिः। मया पत्या
प्रजापति सं जीव शरवः शतम् (१३।१।१२)
— वह भी मेरे द्वारा पोषण करने योग्य हो बुद्धस्प
तिने इसे मुझे दिया है। मेरे साथ शरवः प्रजापती
हो और भी वर्ष कीवित १६।

शिवा स्योमा पतिभोके वि रात्र (१३।१।१३)—
वस्तुतः करनेवाली सुकदाबिनी होकर पतिके घर
बिराज।

वीर्यापूरस्याः या पतिर्जीवाति शरवः शतम्
(१३।१।१४)—इतका पति वीर्यापु होकर भी वर्ष
कीवित छाया है।

रपि च पुत्रांश्चादावृमिर्मममयो इमाम् (१३।१।१५)
— यन और पुत्रोंको तथा इस बीको अग्निने मुझे
दिया।

या भोयधयो या नयो यात्रि ज्ञेयानि या वना।
वास्त्वा वधु प्रजावती पत्ये रक्षन्तु रक्षतः
(१३।१।१६)— भोयकिनी, नदिनी क्षेत्र और जो
वध हैं व सब पतिके लिये प्रजापती तुझे रक्षकोंके
द्वारा रक्षें।

पक्षिन्वीरो न रिप्यति अग्न्येयां विभृते वधु
(१३।१।१७)— वीर पुत्रका नाश नहीं होता और
अग्न्येयी अवस्था अधिक बल मित्रता है।

अयोनालो अस्मै वधे प्रचक्षु मा हिंसिपुत्रहनुमुखा
मानम् (१३।१।१८)— इस वधुके लिये छत्र पदाव
सुकदाबी हो कोई बीया आनेवाले इस रमका नाश
न करे।

मा भिवृष्ट परिपन्थिभो व आसीदृमिन् वृषती।
सुगेन दुग्ममतीर्ता अप्य द्राम्यरातया (१३।१।
१९)— जो वधु समीप प्राप्त होगे वे इस वृषतीको
न जाने वे वधुवर सुकते दुर्गम प्रयोगोंके पार जाय
भी। इससे वधु दूर हों।

अं काशायामि वधु प्रमणा पूर्वप्येरेण वधुपुया मिभि
येण (१३।१।२०)— मैं पुकारकर कहता हू कि
जबसे वेधुको शास्त्रपूर्वक मित्रकी रीतिसे देखें।

वर्षाण्य विम्बरूपे ववस्ति स्योन पतिभ्यः सधिता
तत्कृणोतु (१३।१।२१)— जो वधु अनेक (ग
कथाका नहीं इसमें कहा है वह पतिके लिये सुख
कर हो ऐसा सधिता करे।

शिवा मारीयमस्तमागम् (१३।१।२२)— वह कस्यानी
गारी अपने घरको आ रही है।

प्रजापतिः प्रजाया वर्षायन्तु— प्रजापति प्रजासे इसको
वर्षिते।

आरमम्बत्पुर्वरा मारीयमागम् तस्यां मरो कपत
वीक्षमम्भाम्। स्या यः प्रजां जमपद वक्षणाभ्यो
विश्रतो दुग्धं वृषमस्य रेतः ॥ (१३।१।२३)—
वह गारी आरमवक्षसे सुख प्रजा उत्पन्न करनेवाली
है इसमें पुत्रव वीक्ष बोधे वह आपक किय संतान
अपने गर्मावक्षसे उत्पन्न करे, वृष और वीर्यवाद्
पुत्रवका रेत आरम करे।

अघोरचक्षुरपतिग्री स्योमा शम्मा सुशोभा सुपमा
गुहेभ्यः। वीरधूर्वैकुकामा सं त्वयैधिपीमाहि
सुममस्वमावा। (१३।१।२४)— प्रेमपूर्ण दृष्टि
वाली पतिका वक्ष न करनेवाली सुख देनेवाली
सुन्दर सेवा उत्तम करनेवाली वरुणिके किय सुख
दायक वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली पतिको माहि
शे देखी इच्छावाली उत्तम मनवाली पत्नी जोसे
इस संपन्न हों।

अनेकग्री मपतिग्रीहैधि शिवा पशुभ्यः सुपमा
सुवर्णाः। प्रजावती वीरधूर्वैकुकामा स्योनि
ममसि गाह्येत्ये सपय। (१३।१।२५)— देवरका
नाश न करनेवाली पतिका वक्ष न करनेवाली
पशुओंका दित करनेवाली उत्तम मित्रमसे करने
वाली तेजस्विनी संतानवाली वीर पुत्र उत्पन्न
करनेवाली वरुणिके देवर श्रेष्ठ देखी इच्छावाली कल्याण
करनेवाली वृ मासिकी रक्षा वारमें कर।

तत्पिपुः इतः किमिच्छतीहमागाः मद्य त्येदे
अमिभूस्वाद् गृहात् (१३।१।२६)— हे दुर्गाणि।
तू कहासे वह पदो क्या चाहती है वहां वहां आ
गई है। मैं तेरा परामर्श कसनी अपने घरसे तुझे
दूर करती।

मृत्युंषी निर्गते वाजगम्योत्तिष्ठाराते प्र पत मेह
रस्याः— हे हुंगति । तू इस बरको मृत्यु करना
चाहती है वहाँसे उठ दूर जा वहाँ न रहमाना हो ।
वेको इति रक्षांसि सर्वा (१७।१।१७)— अग्नि देव
सब राक्षसोंकी मारना है ।

इह प्रजां जमय पत्ये अस्ते सुम्यैष्ठ्यो मयत् पुत्रस्त
पत्या— वहाँ संतान उत्पन्न कर इस पतिके किये
बह बह पुत्र बने ।

सुमंगली प्रतरजी गदाज्जां सुशोभा पत्ये आशुताय
शंसू । स्वोमा आश्वे प्र मृहान् विष्टोमाश्
(१७।१।१९)— उत्तम मंगल कामवाली बर्तिका
हुआ दूर कामेवाली बलिही ठेका उत्तम कामेवाली
बहुराके किये सुख हैनेवाली साजके किये हितकर
देवी अपने बरमें बलिष्ठ हो ।

स्वोमा मय हव्युरेभ्यः स्वोमा पत्ये गृहेभ्यः ।
स्वोमास्य सर्वस्यै विशे स्वोमा पुष्टापैर्षां मय
(१७।१।२०)— बहुराके किये पति और बरके
कोयोंके किये सब प्रसाके किये सुखकर हो और
इतका पोषण करनेवाली हो ।

सुमंगलीरिय वधूरिमां समेत वदयत । सीमाय
मय्य वृक्षा दौर्माभ्यैर्विपरेतम् । (१७।१।२८)
— यह वह उत्तम कल्याण करनेवाली है जाओ
और इसे देखो इसको सीमाय देखर दुर्मांयको
दूर करते हुए पायज जाओ ।

या दुर्हासो युवतयो धाम्नेह जरतीरयि । वक्षो म्वस्यै
हं दक्षायास्तं विपरेतम् । (१७।१।२९)— जो
हुआ हव्यवाली तथा बुर खिया है वे इस बहुराके
देवस्त्री होनेका नाकीर्ण है और बुरे बरको जाय ।

आ रोह तस्यं मुममस्यमासेह प्रजां जजय पत्ये अस्ते
(१७।१।३१)— विष्टोपर यह उत्तम मयवाली
इस पतिके किये संतान उत्पन्न कर ।

मृत्युंष्य मारि विद्वक्का महिरवा प्रजायती पत्या स
मय्य (१७।१।३२)— हे जी । तू इस संतानमें
मृत्युंष्यमाके समान महराती अनेक ईगकपको मार
होकर संतान उत्पन्न करके पतिके साथ जर्मन्दि रह ।

मय्य इव योषामधिरोहयिमां प्रजां कृष्वायामिह
पुष्पसं रयिम् (१७।१।३७)— मरके समान
कीके साथ रह प्रजा उत्पन्न कर और वहाँ बसने
बढ़ानो ।

प्रजां कृष्वायामिह मोदमानो वीर्यं वामाशुः सविता
कृणोतु (१७।१।३९)— वहाँ बजा उत्पन्न करने
जायबूरे रहो आप दोनोंकी जातु सविता देव लंबी
करे ।

अधुर्मंगली पतिछोकरमा विष्टोमं हं मो मय द्विपत्ये
हं वतुष्यदे (१७।१।४०)— दुह माय छोड़कर
पतिके बरमें बनेक कर द्विपार और वतुष्यादेके किये
कल्याण करनेवाली हो ।

स्वोमापोनेरयि पुष्पमागौ हस्तामुदौ म्मस्ता मोद
मानो । सुपु सुपुत्री सुगुह्री लक्ष्यो जीवौ
कस्यो विमालीः (१७।१।४३)— हस्तविष्टो
करनेवाले सुखवाली जायते बहनेवाले उत्तम
इष्टियों और गीनोंके सुख उत्तम जाऊबनचोंवाले
उत्तम बराबके कोदुल्ल ने हो जीव प्रकाशमान
उपकसके समान प्रकाशते रहें ।

मा वर्यं रियामः (१७।१।५१)— हमारा बाह्य न हो ।
अद्यामीः कस्यका इमाः फिदुलोकात् पतिं पतीः ।
अथ दीक्षामसृष्टम् । (१७।१।५२)— सिद्धाके
बराके पतिके बर जानेवाली है कल्याण सविष्ठा बरम
करें दक्षताते रहें ।

इय मार्युष मृते पूस्यामि भावपान्तिका । वीर्षांयुरस्तु
मे पतिः जीवाति धारवः शतम् (१७।१।५३)
— यह जी जायका इयम करती हुई यह कहती
है कि मेरा पति दीर्घांशु हो और ली बर्न जीवे ।

आक्रयाकेव दम्पती । प्रजयिमी स्रष्टाकी विश्वमावर्ष्यं
श्रुताम् (१७।१।५७)— अक्रयाक बहूँके कोठेके
समाय वे दम्पती है उत्तम बराबके प्रजाके लाभ
हर्ष जातु प्राप्त करें ।

अभूम यक्षियाः शुखाः प्र ण मार्युषि तारिपत्
(१७।१।५७)— हम पूष और शुह बने और
हमारी जातु वीरे हो ।

मगाईगाधु बधमस्या अप यक्षम मि बधमसि
(१३११६९)— इसके जग-भोगसे हम रोग दूर
करते हैं ।

भमोऽहमसि सा त्वं सामाहमसि अक्षत्वं, घोरहं
पृथिवी त्वं । ताविह सं भवाव मज्जामा जग
पावहं । (१३११७१)— मैं प्राण हूँ वृ क्षति
है गात्र में हूँ और जन्मा वृ है सु मैं हूँ पृथिवी
वृ है वहाँ हम इच्छे रहें और मज्जा उत्पन्न करें ।

म बुध्यन्त सुनुधा बुध्यमाथा दीर्घाधुरवाय शतशार
दाय (१३११७५)— कथम ज्ञान प्राप्त करके
वर्तें ज्ञानी रह ली वर्षा की दीर्घायुके किये बन्ध
कर ।

पूहान् गच्छ पूहवत्नी यथासो दीर्घत माधु सविता
कृत्वातु— वरुणें जा पानी लाविली होकर रह,
सविता तेरी जासु दीर्घ करें ।

व्रात्य

छोऽवर्धत स महानमवर्ध महवेक्षोऽमवत्
(१५११७)— वह वह मया वह बढ़ा हो गया,
वह महावेष्ट हुआ ।

स वेदानामीशां पर्यत् स ईशानोऽमवत् (१५११८)
— वह देवोंका अधिपति हुआ वह ईश्वर हुआ ।

मीकनैवाप्रियं ज्ञातुम्य प्रोच्योति कोहितेन शिष्यम्
विष्यतीति ब्रह्मचारिमो वदन्ति (१५११८)—
मीकेसे वह अधिपति दुष्टको चेष्टा है और कोहितसे
हेचोको वीचता है वेदा महाचारिणोंका कहना है ।

शत्रु दूर करना

यूपमुद्रा मरुताः पृथिमात्तर इत्येव युमा ॥ मृणीत
दाधुत् (१६११२)— हे वधवीर मरुतो ! तुम
मृणिकों माया माननेवाले हृदये युध होकर शत्रु-
कोंका नाश करो ।

स ते राष्ट्र भमन्तु पयसा धृतम् (१६११८)—
तेरा राष्ट्र दूध और पीछे मारता हो ।

विधि राष्ट्रे जायहि (१६११९)— मज्जायें तथा राष्ट्रमें
जागते रहो ।

गोपोष य मे वीरपोषं च येहि (१६११९)— इससे
गोपाकष और वीरपाकषका सामर्थ्य है ।

सर्वा अरातीरबकामधेहीर्ष राष्ट्रमकरा सुमुतावत्
(१६११२०)— सब शत्रुकोपर नाकमय कर और
इस राष्ट्रको जायन्तपूर्ण कर ।

तया वाजान् विम्बकुर्यां जयेम तथा विम्बा
पूतमा भसि प्याम (१६११२२)— जयके प्रका
रके बल और बल जीतेंगे और जयसे सब लेश्मोंका
पराभव करेंगे ।

तां रक्षन्ति कथयोऽप्रमादम् (१६११२३)— कवि
प्रमाद न करते हुए उस अधिकार रक्षण करते हैं ।

सपत्नान्मघराज पन्थपरमत् (१६११२५)— हमारे
शत्रुको बंधी गिरा दो ।

सुष्यज्वरं तस्मिन्मर्षं दुरितानि च सुग्महे
(१६११२८)— दुष्ट ज्वर दूर कल्पना और
पापोंको हम दूर करत हैं ।

सुदृढ शरीर

सर्वाय एव सवपरा सयतनम् स भवति य एवं वेद
(१६११२९)— सब बंधोंसे युक्त सब वीरोंसे
युक्त, सब अवयवोंसे युक्त वह होय है जो वह ज्ञान
जालता है ।

दुःख दूर करना

शिवेन मा बध्नुया पश्यतापः शिवया तन्मोप
स्वुशत स्वर्चं मे । मयि सत्रं बल मा घत
वेधीः (१६११३२-३३)— हे नन्ददेवता ! क्षुभ
इच्छिसे मुझ देको क्षुभ स्वर्गसे मेरी लक्ष्मियों स्वर्ग
करो । मुझे तेज और क्षात्रवक कारण करो ।

निर्गुरमंय कर्त्ता मधुमती वाक् (१६११३)—
दुराधि दूर हो जाती मीठी हो ।

मधुमती स्थ मधुमती वाक्मदुदेयम् (१६११३)—
मीठी जाती हो मीठी जाती हम बोके ।

सुभूती कर्षी मद्रभूती कर्षी मद्र न्दोर्क भूयासम्
(१६११३४)— मेरे काम बचन ज्ञान सुने मेरे
काम कथनावयव सुने कथनात्मकारक बचन में
सुन्या ।

सुभुतिश्च मोपभुतिश्च मा हासिष्यं क्षीपयं बलु
अक्षरं उच्योति (१६११३५)— वचन प्रत्यय

अथि और दूरसे सुननेकी शक्ति हुई न छोड़ें
गहनेके समान रहि और बड़ा ठेक भरे पास रहे ।

मूर्धनि रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् (११।१।१)
बनोंका वन त्याग तथा समानोंमें मैं वन बम् ।

दशम मा येनश्च मा हासिर्धा (११।१।२) — ठेक
और कामि सुखे न छोड़े ।

मूर्धा च मा विधमा च मा हासिधाम् — वन त्याग
और विधेय बनें सुखे न छोड़े ।

अर्लतारं मे हृदयं (११।१।३) — मेरे हृदयको छतल
न हो ।

मालापामी मा मा हासिध मा जने प्र मेपि (११।१।४)
— प्राण जपान सुख न छोड़े मनुष्योंमें मैं जातक
न बम् ।

अजैप्मायासमामायाभूमानागसो खये (११।१।५) —
जात्र हम विजय प्राप्त करेंगे प्राप्त्यको प्राप्त किया
है हम विजय हुए हैं ।

क्षिपते तत्परा वह क्षपते तत्परा वह (१०।१।६) —
ह्रेप करनेवालेको दूर कर धक्की देनेवालेको दूर कर ।

य क्षिप्सो यक्ष सो क्षेपि तस्मा यक्ष् गमयाम्
(११।१।७) — जिसका हम सब ह्रेप करते हैं
जात्र जो हमारा ह्रेप करता है उसको नीच
पहुँचाते हैं ।

तऽमुष्मे परा वहन्तु अरायान् पुर्वाभाः सहाम्बाः
कुम्भीका वृषिकाः पीपकाः (११।१।८) —
वेचिचमय कष्ट आकण्ठि रोम होच विरचिबोको
दूर के जाय ।

तनन विष्पाम्भूत्येन विष्पामि निर्भूत्येन विष्पामि
पराभूत्येन विष्पामि प्राक्षिने विष्पामि तमसेन
विष्पामि (११।१।९) — उससे इस पापका वध
करता हूँ । दुर्भित राष्ट्रीय और रोगके शत्रुको
धीनता हूँ । वरामय और अन्धकारसे शत्रुको
धीन करता हूँ ।

प्रितस्माक अक्षिप्रमस्माकं अगमस्माकं तयोऽस्माक
प्रद्यास्माकं स्वदस्माकं ययोऽस्माकं पशयोऽ
स्माकं प्रया अस्माकं पीरा अस्माकम्
(११।१।१०) — हमारे विजय वर्य सत्य ठेक

आम जात्रसेक वध वध प्रजा कीर हों । वह पर
हमें आत हों ।

स प्राक्षाः पाशास्मा मोक्षि (११।१।११) — वह शत्रु
राजके पाशोंसे ब दूरे ।

तस्येहं बधस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामि हवनेन
मघर्वाथं वावयामि (११।१।१२) — इसके तेज
वध प्राण, आयुको मैं बरता हूँ । इस शत्रुको धीरे
धिराता हूँ ।

वसुमान् भूयासं वसु मयि वेहि (११।१।१३) — मैं
वसुवान् होऊँ वध मेरे वस्त रख ।

अभ्युप

विपासहि सहमान सासहानं सहीपासं । सहमान
सहोमिहं कर्हिं गोमिहं संधमाजितं । ईक्ष
नाम ह इक्ष्मायुष्मान् भूयासम् । (१०।१।१४)
— समर्प्यवान्, वधवान् मित्रकी शत्रुको दान-
वाले अक्षिमान् विरिधन्वी असमर्प्यसे धीरने
वाले भूमिको धीरनेवाले वध धीरनेवाले प्रवध-
नीच त्याग इन्द्रकी हम मर्क करते हैं, मैं धीरपु
बम् ।

मियो देवानां भूयासं (१०।१।१५) — देवोंको मैं शिव
बम् ।

मियो प्रजावां भूयासं (१०।१।१६) — मैं प्रजाओंके
शिव बम् ।

मियो पशूनां भूयासं (१०।१।१७) — मैं पशुओंके
शिव बम् ।

मियो समानानां भूयासं (१०।१।१८) — मैं समानोंके
शिव बम् ।

क्षिपेभ्य मद्य रण्यतु मा च्चाहं क्षिपते रथं (१०।१।१९)
— शत्रुओंको मेरे हिरक धिये बहने कर वीरु में
कमी शत्रुके बन्धी न बम् ।

सुषार्या मा वेहि (१०।१।२०) — जमतेयें हृस रख ।

स नो युध सुमती ते स्याम (१०।१।२१) — वह द
हमें जात्रहैं वध ठेकी वधम समर्पितें हम रहें ।

रथमिन्द्रासि विभञ्जित् सञ्चवित् (१०।१।२२) —
है इन्द्र । तू मित्रको धीरनेवाला और शत्रुको जालने
वाला है ।

सपत्नान् मद्य रण्ययन् (१८११२४)— अरे किये
धनुषोंका बाण कर ।

अरक्षिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः मुकुट
अरेयं (१८११२७)— हृद अवस्थातक वीर्य
बाण होकर विविध कमोंको करता हुआ सहस्रायु
होकर निचबंभा ।

सरस्वती

सरस्वती देवयन्तो इक्षन्ते सरस्वतीमण्वरे तायमाने ।
सरस्वती मुकुतो इक्षन्ते सरस्वती वाङ्मये
वायं वात् (१८११३१)— ऐश कवचकी इच्छा
करनेवाले सरस्वतीकी प्रार्थना करते हैं वह मुक्त
होमपर सरस्वतीकी प्रार्थना करते हैं वचन कार्य
करनेवाली सरस्वतीकी प्रार्थना करते हैं सरस्वती—
विद्या-वन हैती है ।

अलमीया इय आ वेक्षस्ते (१८११३२)— भीरोन
जब हमें है ।

सहस्रार्धमिहो अत्र भार्गवस्योर्ध्व यजमानाय धेहि
(१८११३३)— इसारों प्रकाशक लक्ष्मण और
जबके साथ पुत्रि वज्रमायको है ।

पितृमेघ

असुं य ईषुरवृका मृतशालो मोऽवन्तु पितरो हयेषु
(१८११३४)— जिस जिसका न करनेवाले पितरोंमें
प्रत्येको मृत किया है । जगत् को प्रानकारी पितर
हैं वे सप्त बड़को जगत्मेवाके पितर बुकालेपर हमारी
रक्षा करें ।

ईदं पितृभ्यो नमो अस्तु अद्य ये पूर्वोचो अपरास्त
ईष्टाः (१८११३५)— जो पूर्व और आधुनिक
पितर हैं उनके किये नमन करते हैं ।

मा हिंसिष्य पितरा केन क्षिप्रो यथा भावाः पुत्रपता
कराम (१८११३६)— इसमें मनुष्य होनेके जो
पाप किया हो उसके किये वे पितरों । हमारी
हिंसा न करो ।

ईदं वम क्षत्रिय्या पूर्वज्यैः पूर्वैः पयिष्ठैः
(१८११३७)— मार्ग करनेवाले क्षत्रीय पूर्वज
क्षत्रियोंको वह नमन करता है ।

स तो जीयेष्वा यमेहीर्मायुः प्र जीयसे (१८११३८)—
वह वम हमें इस जीवित लोगोंमें जीमेके किये हीच
बाधु देवे ।

ये पुण्यन्ते प्रधनेषु शूरास्तो ये तनूयजः । ये
वा सहस्रवृक्षिभास्तस्मिन्नेवापि गच्छन्तात्
(१८११३९)— जो धूर पुदोंमें करते हैं, बुद्धोंमें
जो अपना शरीर अगते हैं तथा जो हजारोंका शान
करते हैं उनके पास तु जा ।

स्योनास्मै मय पृथिव्यनुसरा निवेशनी । पच्छाक्षौ
हाम सप्तयाः (१८११४०)— है पृथिवी । हमके
किये मुक्त होनेवाली हो कंटोंसे रहित करनेके किये
आम देनेवाली हो और इसे विस्तृत स्थान और
मुक्त है ।

ये मित्राता ये परोस्ता ये इरघा ये ओक्षिताः । सथा
स्तामन्न आ वह पितृन् हविषे अत्तये
(१८११४१)— जो माडे गये जो बहाले जो
कहाले जो करर हवामें रहे उन सब पितरोंको हवि
कामके किये है अति । के जाओ ।

उद्गन्धर्वी घोरघमा वीलुमतीति मण्यमा । पृथीयाह
प्रयोरिति यस्या पितर आसते (१८११४२)—
बलवाका मुक्तक सबस नीचे है बलन जिसमें है
वह मण्य आचसे है मय नामक तीसरा मुक्तक है
जिसमें पितर रहते हैं ।

हमौ पुत्रजिमे वे बह्वी अनुमीताय पोडये । ताम्भ्यां
यमस्य साधने समितीभ्याम पच्छन्तात्
(१८११४३)— प्रत्ये किसका गया है उसको के जानेके
किये मैं होबैक (गावीके) जोडवा है । वन होमोंसे
वमके घर आते हैं उनके साथ मरही भी जाय ।

यो ममार प्रधमो अर्धार्त्ता याः प्रेषाय प्रथमो लोक
मेतम् । वैभक्त्य संगमनं अनानां यमं रामान
हविषा सपर्यत । (१८११४४)— जो मानवोंमें
प्रथम मरा, जो हृद काकर्म प्रथम गया वच देव
कात वमराजको जो कर्मोंका संपन्न करता है
उसको हवि अर्पण कर ।

कस्ये मुञ्जाना अति यस्मि रिमं आयुर्धमाणाः प्रतर्
सवीयाः । आप्यायमानाः प्रजया धनेमाध

स्याम सुतमयो गृहेषु (१८।१।१७)— आनसे
पवित्र होकर कबीर बालु आराम करके बालको दूध
करते हैं। प्रजा और सबसे बड़े हुए हम वरोंमें
सुगन्धिवुद्ध बने।

वि स्त्रोक पति पथ्येय सूरिः गृण्यन्तु विभ्ये समू
तास एतत् (१८।१।१९)— मैसा विहाय कम
मार्गसे आया है मैसा मेरा स्त्रोक सीधा तुम्हारे पास
बहुतका है। यह सब जगत् देख चुने।

रयि धत्त दाशुये मर्याय (१८।१।२१)— दावी
मनुष्यके शिव बन हो।

पुत्रभ्याः पितरः तस्य सत्वाः प्र यच्छत त इह ऊर्ज
वृषात (१८।१।२३)— हे पितरों! पुत्रोंके शिवे
बसका बन हो वे वही सब जगत् करें।

रयि च नः सर्ववीरं वृषात (१८।१।२५)— सब
वीर पुत्रोंके साथ हमें बन हो।

त पृथासो धृतस्तुतः सोमा विभ्वाहास्मै शरणाः
सम्पन्न (१८।१।२७)— वे घर सुखदायी वीरों
में सर्वदा हमके शिवे आराम जाने योग्य हों।

इहेमे वीरा बहूयो मयन्तु गोमत्प्रवग्मस्यस्तु पुष्टम्
(१८।१।२९)— वही वे वीर पुत्र बहुत हों गीर्वा
वीर वीरोंसे युद्ध में जगत् पुष्टि हो।

परैतु सुगुप्तस्तुत म येतु (१८।१।३१)— धनु रू हो
जगत् हमारे पास जाये।

आ रोह्य विजमुत्तमास्तुपयो मा विभीतम (१८।१।३३)
— हे जूधियों! बहुत सुकोई वही जगत् मा विभीत व
होको।

मर्याऽपमसुतत्वमेभि तस्मै गृहान् कृणुत वाक्स्त
वन्तु (१८।१।३५)— वह सब मनुष्य जगत्
मष्ट करता है, वज्रके शिवे वीरोंसे युद्ध घर करो।

पर्णो राजापिचानं चरुणा ऊर्जो बलं सह भोजो व
माधम्। माधुर्जीवेभ्यो विदधत् दीर्घोमुत्थाव
शतशारदाय (१८।१।३७)— वह राजा वीर-
चक्र पर रखनेका वक्ता है। यह तेज वक्ता, भोजने
साथ हमारे पास आगया है वह वीरोंके बहुत
देना है सी वीरोंकी दीर्घायु करता है।

साक्षात् त्वर्ये पितरो मादधध्वम् (१८।१।३९)— अपने
सब वीरोंके साथ पितर जगत् जगत् प्राप्त करें।

जीवेम शरत्तं शताब्धि त्वया राजन् युपिता रसमाप्ना।
(१८।१।४०)— हम ही वीर वीरों के राजन्।
तेर द्वारा सुरक्षित होंगे।

इह वरह वे पुत्राविति चतुर्थं विभामर्षे है। पाठक इहक
योग वक्ताविति करके अपना काम प्राप्त करें।

ॐ

अथर्ववेद

फा

सुक्तेषु सप्तमः ।

एकादशं काण्डम् ।



केलक

पं० श्रीपाद दामोदर सान्त्वनेकर,

साहित्यशास्त्रज्ञ, वेदाचार्य गीताकृष्ण

अध्यक्ष व्याख्यायनमंडल मान्दवाधर्म पारसी (त्रि मूरत)



तृतीय बार

१९२९ ई १९३० ई १९३१

स्याम भूरमया धृतेषु (१८।३।१०)— बाणसे पवित्र होकर कबील जायु आरण करके पालको दूर करते हैं। प्रजा और सबसे बड़े हुए इन वनोंमें सुगंधितुक्त बने।

वि श्लोक एति पश्येव धृतिः श्रुण्वन्तु विश्वे अमु तास एतत् (१८।३।११)— वेसा विश्वाङ्ग वन मार्गसे जाता है वेसा मेरा श्लोक भीवा तुम्हारे पास पहुँचता है। वह सब जगत् देख सुने।

एति धत्त दातुये मर्त्याय (१८।३।१२)— दाती मनुष्यके किये धन हो।

पुत्रेभ्यः पितरः तस्य वसः प्र यच्छत त इह ऊर्ध्वं दृष्टात् (१८।३।१३)— है पितरों। पुत्रोंके किये वसता बन हो वे वहाँ ऊपर जाय किये।

एति च सः सर्ववीरं दृष्टात् (१८।३।१४)— सब वीर पुत्रोंके साथ दृष्टि बन हो।

त घृष्टासो घृतस्पृष्टः शोभा विश्वाहास्मै शारणाः सप्तवक्त्र (१८।३।१५)— वे घर मुक्तदायी वीरों के सर्वदा हमके किये शरण जाने योग्य हो।

इहेमे पीता बहवो मयस्तु गोमहम्बवग्मम्यस्तु एष्टम् (१८।३।१६)— वहाँ वे वीर पुत्र बहुत हो औषधों और ओषधोंसे पुष्ट भरे जन्मर पुष्टि हो।

परैतु मृत्युरमृत म येतु (१८।३।१७)— धनु दूर हो जगत् सब हमारे पास जाये।

आ रोहत द्यिमुत्तमासुपथो मा विभीतन (१८।३।१८)— है अविभो। उत्तम सुकोठमें बड़ी भयभीत न होओ।

मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्य गृहान् कण्ठत पाकस्य वस्तु (१८।३।१९)— वह मत्त मनुष्य जगत् प्राप्त करता है, उसके किये वीरोंसे मुक्त बन ओ।

एषो रात्रापिपार्श्वं चकृर्वा ऊर्ध्वं चक्षुः सह शोको न क्षामन्। आधुर्ध्विभ्यो विदधद् दीर्घांमुत्पाद शतशारदाय (१८।३।२०)— वह रात्रा पर्श्व चकुर रक्षेका वस्तु है। वह तेज वक्त्र, ओषधोंके साथ हमारे पास जायगा है वह ओषधोंके वस्तु दण है वी वीरोंकी दीर्घायु करता है।

साक्षात् सर्वे पितरो मादयश्चम् (१८।३।२१)— सब वीरोंके साथ पितर जगत्में जायन् प्राप्त करें।

अविम शरयै शतावि त्वपा राजन् गुपिता वृक्षमाणा (१८।३।२२)— हम वी वीर वीरों के राजन्। वेरे द्वारा सुरक्षित रहेंगे।

एष तरह वे सुमाधित वस्तु विमानमें है। पाठक हमसे योग्य वचन करके अपना काम प्राप्त करें।

२	११	अर्वा	२४:	<p>त्रिष्टुप्, १ परातिगामस्य विष्टाद् अगती, २ अनुष्टुप्गता र्वकपवा पय्या अगती, ३ अनुष्टुप्वा स्वरान्नाम्निक, ४, ५, ७ १३, १५, १६ २१ अनुष्टुप्, ६ अर्वा गानत्री, ८ महाबृहती, ९ आर्वा, १ पुराह्वयि त्रिपदाविराद्, ११ र्वकपवा विष्ट कपतापय्या अकवरी, १२ मुरिक्, १४, १०-१९ २१, २६, २७ विष्टाद् गानत्री, २ मुरिमात्रत्रि, २२ विषमपादकाम्ना मि पदा महाबृहती, २४ २९ अगती, २५ र्वकपवातिसकवरी, ३ अनुष्टुप्वा कम्निक, ३१ प्वाह विपरीतपादकाम्ना कर्पण अगती ।</p>
३	५३	अतिवः (१ पर्वणि ११)	अतिवः वार्हस्पत्यार्हव)	<p>१ १४ आहुरी गानत्री, २ त्रिपदा समविषमा गानत्री, ३, ६ १ आहुरी पंक्तिः, ४, ८ साम्नी अनुष्टुप्, ५, १२ १५, २५ साम्नी कम्निक, ७ १९-२२ प्राक्पादसाधुष्टुम्, ९ १०- १८ आहुरी अनुष्टुप्, ११ मुरिवाणी अनुष्टुप्, १२ वाजुवी अगती, १३ २३ आहुरी बृहती, २४ त्रिपदा प्राक्पादक बृहती २६ आर्वा अनुष्टुप्, २७ (२८ २९) साम्नी बृहती, [२९ मुरिक्], ३ वाजुवी त्रिष्टुप्, ३१ अम्भपतिः वाजुवी ।</p>
	(२ पर्वणि १८ ,,)	वोदना)		<p>३२ १८ ४१ (प्र) ३२-३९ साम्नी त्रिष्टुप्, ३९ ३५, ४२ (कि) ३९ ४९ (घ) ३३ ३४ ४४ ४६ (व) एकपदा आहुरी गानत्री, ३९ ४१ ४३ ४७ (य) द्वैती अगती ३८ ४४ ४६ (कि) ३९ ३५-४३ ४९ [व] आहुरी अनुष्टुप्, ३२ ४९ [व] साम्नी अनु- ष्टुप् ३२ ४९ [प्र] आहुरी अनुष्टुप्, ४२ ४९ [व] साम्नानुष्टुम्, ३३ ४९ [म] आर्वा-अनुष्टुप्, ३७ [प्र] साम्नीपंक्तिः, ३३ ३६ ४ ४७ ४८ [कि] आहुरी अगती, ३४ ३७ ४१ ४३ ४५ [कि] आहुरी पंक्तिः ३४ (य) आहुरी त्रिष्टुप्, ४५ ४६ ४८ (य) वाजुवी गानत्री, ३६ ४ ३७ (य) द्वैती पंक्तिः, ३८ ३९ (य) प्राक्पादसा गानत्री, ३९ (कि) आहुरी कम्निक, ४२ ४५ ४९ (य) द्वैती त्रिष्टुप्, ४९ [कि०] एकपाद मुरिक् साम्नी बृहती ।</p>
	[३ पर्वणि ७]			<p>५ आहुरी अनुष्टुम्, ५१ आर्वा अनुष्टुम्, ५२ त्रिपदा त्रिपदसाम्नी त्रिष्टुप्, ५३ आहुरी बृहती, ५४ त्रिपदा मुरिक् साम्नी बृहती, ५५ साम्नी कम्निक, ५६ प्राक्पादसा बृहती । अनुष्टुप्, १ कम्निकगती, ८ पय्यापंक्तिः १४ त्रिष्टुप्, १५ मुरिक्, २ अनुष्टुप् गती त्रिष्टुप्, २६ मन्वे पयोधिमगती, २९ त्रिष्टुप्, २९ बृहती गती ।</p>
४	२६	मार्गयो वैश्वरिः	मार्गः	

५	२६	मद्या	मद्याचारी	त्रिष्टुप्, १ पुरोतिजागतविराद्गर्मा; २ पंचपदा बृहतीगर्मा विराद् सफ्वरी; ६ सफ्वरगर्मा अगुप्पदा; अगनी ७ विराद्गर्मा; ८ पुरोतिजागता विराद् अगती ९ बृहती गमा; १० अरिद् ११ अगती; १२ सफ्वरगर्मा अगु पदा विराद्विजागती, १३ अगती; १४ पुरस्ताज्जोतिः; १५ १६ २२ अगुदुम्, २३ पुरी वास्तव्योतिजागतगर्मा; २४ एकाचमावा आनी तमिद्; २६ मध्ये ज्योतिश्चिरगर्मा ।
६	२३	अम्योतिः	अम्यमा मम्योन्माः	अगुदुम्, २३ बृहतीगर्मा ।
७	२७	अयर्वा	अम्यहर्म वाय्विह	अगुदुम्, १ पुरोतिजागर्मागता; २ २१ स्वरद्; २२ विराद् पद्या बृहती ।
८	३४	कौदपतिः	अयर्वाहर्म, मम्युः	अगुदुम्, ३२ पद्यापति ।
९	२९	कादपनः	अर्जुभिः	अगुदुम्, १ मयपदा विराद् पदाचरी मयवामा; २ परोन्मिह ४ मयवामा वाय्विभृहतीगर्मा परोन्मिह पदाचरति अगती; १ ११ १४ २३ २६ पद्यापति; १५ २२ २४ २५ मय वामा मयपदा सफ्वरी; १६ मय पंचपद विराद् उपरिहा ज्ज्योतिष्टुम्, १७ विपदा पावमी ।
१	१७	बृहतीगताः	विपद्वि	अगुदुम्, १ विराद् पद्या बृहती २ मयः ३ मय विहु मय विमयती; ३ विराद्वारपति ४ विरादः ८ विराद् त्रिष्टुप्, ९ पुरोतिजाद् पुरा ज्ज्योतिष्टुम्, १० पंच पदा पद्या पति; ११ मयपदा अगती; १६ मयः पदाचरी कर्तव्यमस्तु हुप् विष्टुम्गर्मा सफ्वरी; १७ पद्यापति; ११ विपदा पावमी; २२ विराद् पुरस्ताद्बृहती; २५ मयार पतिः ।

इस प्रकार इस दस सूत्रों के अन्तिम देवता और छन्द हैं । इनमें अन्त्याम और मुद्र के दो प्रकरण विशेष महत्त्व के हैं । अन्त्याम का ठक इसका अधिक मन्त्र करे । इस काष्ठके पश्चात् के बारहवें बारहवें मानुस्मृति का शिखर शम्भुओं के आर इस स्वरहरे ५.५५ में इसके पूर्व मुद्रही ठेकाही का वर्णन है । इस तरह वह यथा मन्त्रात्मक विषय इस वाक्य में है, इसका दोन अन्त्याम का ठक करे ।



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

एकादशं काण्डम्

श्रीमत् बभ्रुवाङ्गी त्रिमुखासुखी
कन्दर्प बाणो श्री आर से भद्र ।

ब्रह्मोदन सूक्त

(१)

अग्ने जापुस्वादिविर्नीशितेयं ब्रह्मोदने पंचति पुत्रकामा ।

सप्तश्रपयो भूतकृतस्ते त्वा मन्वन्तु प्रथयां सहै

॥ १ ॥

कुषुत ब्रूम वृषणः सत्तापोऽश्रोषाविता वाचमच्छ ।

अपमद्भिः पृवनापाद् सुवीरो येन देवा असहन्तु वस्पून्

॥ २ ॥

अधेऽवनिष्ठा मधुते वीर्यायि ब्रह्मोदनाय पक्वे जातवेदः ।

सप्तश्रपयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनकस्वै र्वि सर्ववीरं नि यच्छ

॥ ३ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! (जापस्व) प्रकट हो । (इयं वापिता वपिति) वह प्रार्थना करनेवाली बड़ीय माता (पुत्र-
कामा प्रकाश्य पचति) पुत्रोंकी इच्छा करती हुई ज्ञान ब्रह्मदेवाका लक्ष्य पकवाती है । (सप्तश्रपयः सप्त जपयः) श्रुतोंको
प्रदानेवाके सप्त जपि (इह त्वा प्रथया सह मन्वन्तु) वहाँ श्रुतिप्रदाके साथ संलग्न करें ॥ १ ॥

हे (वृषणः सत्तापः) वक्रवल्गु मित्रो ! (ब्रूम कुषुत) श्रुतों करो अश्रितो ग्रहीत करो । (अश्रोषः—अविता
वाच मच्छ) श्रोह न कामेवाकोंकी इच्छा करनेवाली माया लोको । (वाच मतिः पुत्रावपद् सुवीरः) वह मति समु-
ल्लेखको पराजित करनेवाका उत्तम वीर है । [देव देवा वस्पून् असहन्तु] विधिते देवोंके समुल्लेखको पराजित किया ॥ २ ॥

हे अग्ने! हे जातवेद! [मधुते वीर्यायि अजनिष्ठा] वक्रा पराक्रम करनेके लिये प्रकट हुआ है । [अधे—अधोनाथ पक्ष
ये] नीर ज्ञानरसके लक्ष्य पकानेके लिये प्रकट हुआ है । (पृवनापाद् सप्त जपयः त्वा अजीजनकः) श्रुतोंकी आराधना करने-
वाके सप्त जपिबोधित हुये प्रकट किया है । (अर्वि सर्ववीर र्वि नि यच्छ) इह माताके किन्हीं सब प्रकटका वचन प्रदान
कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—माता वचन वीर पुत्र होनेके लिये ईश्वरकी प्रार्थना करे उसके लिये श्रुतीमत्र लक्ष्य पकाने । अर्थात् निर्माण करने
वाके सप्त जपि वक्र माताके सुप्रसा प्रदान करें ॥ १ ॥

वक्तृ मातृ कर वक्तृ कर, श्रोह करनेवाली माया न बोध लेखनी वचन विधिते समस्तविषयी सुबोध होता वो समुल्लेखका इह
मया देया ॥ २ ॥

एवमा वक्रवल्गु करनेके लिये उल्लेख हुआ है । वचन लक्ष्य द्वारा पाकवक्तृ करक सप्त जपिबोध लक्षित करनेके लिये वक्तृ
प्रकारके वीर माताके पुत्र समुल्लेख प्रदान करने लीर उत्तम धन देये ॥ ३ ॥



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

एकादशं काण्डम्

जीमान् वस्तुतादृशी त्रिभुवनवास्यो
वन्द्यं बाह्यो की ओर से भेद ।

ब्रह्मौदन सूक्त

(१)

अग्ने आयुस्वादिविर्नाशितेय ब्रह्मौदनं पंचति पुत्रकामा ।

सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वां मन्यन्तु प्रजयां सुदृह ॥ १ ॥

कुपुत धूमं ब्रूयथः सखायोऽत्रोपाविता वाचमच्छ ।

अवमुग्धिः पृतनापाद् सुवीरो येन देवा असहन्तु वस्यन् ॥ २ ॥

अग्नेऽर्बुनिहा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्वे ज्ञातवेदः ।

सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वांजीवनमस्यै रयिं सर्ववीरं नि रयच्छ ॥ ३ ॥

जने—हे अग्ने ! (आग्रह) प्रकट हो । (धूमं वायिवा जदिति) वह धूमना करनेवाली अदीप माता (पुत्र-कामा ब्रह्मौदनं पंचति) पुत्रोंकी इच्छा करती हुई आज ब्रह्मौदनाका वचन पढ़ाती है । (भूतकृतः सप्त ऋषयः) भूतोंकी पचासैवाके छत जति (इह त्वा प्रजया सह मन्थन्तु) वही दृष्ट प्रजाके साथ मेहनत करें ॥ १ ॥

हे (प्रजयः सखायः) प्रकटान् मित्रो ! (धूमं कुपुत) धूमं करो जदिके प्रदीप करो । (अग्ने—अविता वाचमच्छ) श्रोत्र व करनेवालोंकी रक्षा करनेवाली वाचा कोको । (अवं जतिः पृतनापाद् सुवीरः) वह जति धनु-सैवाके पराजित करनेवाका जलन की है । [देव सैवा वरयुज् जलहन्तु] जिसके सैवाके धनुषोंको पराजित किया ॥ २ ॥

हे जने! हे अग्नेवर्! तू (महते वीर्याय अकविता) बड़ा पराक्रम करनेके लिये प्रकट हुआ है । [अग्ने—बोधनाय पक्वे] और ज्ञानवर्षक अन्न पकानेके लिये प्रकट हुआ है । (भूतकृतः सप्त ऋषयः त्वां जजीवयन्) भूतोंकी उत्पत्ति करने-वाले छत जदिकेनि तुझे प्रकट किया है । (अग्ने सर्ववीर रयिं नि यच्छ) इस माताके लिये सब प्रकारका वचन प्रदान कर ॥ ३ ॥

आचार्य—माता जलम भीर पुत्र होनेके लिये ईश्वरकी प्रार्थना करे उसके लिये सुवीर्य अन्न पकाने । जलपके विराल करने-वाके छत जदिके वचन माताके धुमना प्रदान करें ॥ १ ॥

जल प्रदान कर वचन कर ईश्वर करनेवाली माता व लोक सेवस्त्री वचन जिसके समर्थवर्षकी सुपुत्र होना जो धनुषोंको दूर भगा देना ॥ २ ॥

तू बड़ा पराक्रम करनेके लिये प्रकट हुआ है । जलम अन्न द्वारा पाकवन्न करके छत जदिकेनि । सेतोप करनेके लिये वचन प्रदान करने कीर माताके पुत्र सुपुत्र अन्नपन प्रदान करें और जलम वचन दें ॥ ३ ॥

समिद्धो अग्रे समिष्टा समिष्ट्यस्य विद्वान् देवान् यक्षिष्या एह वक्षः ।

॥ ४ ॥

तेभ्यो इविः भूपयं जातवेधे उत्तमं नाकमपि रोहयेमम्

त्रेधा मागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।

॥ ५ ॥

अश्वान् आनीष्य वि मंजामि सान् घो यो देवानां स इमां पारमाति

अग्रे सहस्वानभिभूरमीदसि नीचो न्युब्ज द्विपतः सपरान् ।

॥ ६ ॥

इय मात्रा मृषिमर्ता मिता च सञ्जातास्ते बहिर्हृतः कुमोतु

साक सञ्जातैः पर्यसा स्रैष्युद्वैनां महुते क्षीर्याणि ।

॥ ७ ॥

कुर्व्यो नाकस्यापि रोह द्विपयं स्वर्गो लोक इति यं वर्दन्ति

इय मही प्रति गृह्णातु यमं पृथिवी इवी सुमनस्पमाना । अयं गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ८ ॥

वर्ष—हे भोव । (समिष्टा समिद्धः स इयस्य) समिष्टासे प्ररिष्ठ हुआ ए प्ररिष्ठ हो । [बहिर्हृतः देवान् इह जातवः] वक्ष्ये योग्य देवोंको ए वक्षी के वा । हे जातवेध ! (तैस्वा इवि भूपयन्) उनको जिसे इवि पकटा हुआ [हम उत्तम नाक अर्धरोहण] इसको उत्तम स्वर्गपर चला ॥ ४ ॥

[यः पुरा त्रेधा मागः निहितः] जो पहले तीन प्रकारका भाग रहा है, वह (देवानां पितॄणां मर्त्यानां) देवोंका पितरोंका और मर्त्योंका है । [अर्धं वा जग्नं विमजामि] मैं तुम्हें एक भागोंको पूषण् पूषण् अर्पण कराऊँ । [मंजामि आनीष्य] उन भागोंको धमकाऊँ । (यो देवानां सः इमां पारमाति) जो देवोंका भाग है वह इस क्षीको आपत्तिसे बत करेगा ॥ ५ ॥

हे मने । (सहस्वान् अभिभूः इह विमि अति) ए वक्ष्याह और अनुका पराजय करनेवाला है । अतः [द्विपतः सपरान् नीचः न्युब्ज] इह करैवाक्य अनुकोंकी नीचे दवा । [इय मात्रा मीचमाना मिता च] वह परिमाण मापा हुआ परिमित प्रमाणमें [वे सञ्जातास्ते बहिर्हृतः कुमोतु] वे सजातीय बीतोंको तुल्य कर देवेवाक्य चलावे ॥ ६ ॥

[पर्यसा सञ्जातैः साकं पयि] ए वक्ष्ये साथ एकजतिमेंके साथ वह । [महुते क्षीर्याणि इमां वक्षः] जिन वान्कमें जिसे हमको पैवार कर । [कर्ष्यः नाकस्य विद्वयं जवि रोह] कषा होकर स्वर्गके ऊपर वह । [यं स्वर्गो लोकः इति वर्दन्ति] जिसे स्वर्ग लोक कहते हैं ॥ ७ ॥

[इय मही पृथिवी देवी] वह मही पृथिवी देवता [सुमनस्पमाना यमं प्रति गृह्णातु] इय विचारवाली होकर वह यमको वाक अपनी रक्षाके जिसे केव । इसमें [अयं सुकृतस्य लोक गच्छेम] हम पुण्य लोकको प्राप्त हों ॥ ८ ॥

भाषार्थ—जति प्रकीर्त कर उत्तम इविका इवण कर वक्ष्ये जगम स्वर्ग अवरण प्राप्त होयाम ॥ ४ ॥
देव पितर और मर्त्य इन तीनोंका भाग अर्पण होता है । अतः वक्ष्ये वह माग्य अर्पण कराया लक्षित है ॥ ५ ॥
वमनन् और अनुका पराजय करनेवाला हो अनुकोंका दूर भगा दे और वे तुल्य कर दें ऐला पराक्रम कर ॥ ६ ॥
वका पराक्रम करनेके निमित्त पैवार है । पूष नीकर लक्ष्यानिवीके वाग पुण्य हो । इस प्रकार पराक्रम करके स्वर्गके नीच बन ॥ ७ ॥

वह इानी बड़ी देवी है अपण ममका हानकैवमपुत्र करके वक्ष्यी रक्षाके जिसे पैवार रह जिससे पुण्यप्राप्तिकी नीच प्राप्त होग ॥ ८ ॥

एतौ प्राधानौ सुपुत्रां युष्मिन् यमीनि निमिष्यन् यत्रमानाय साधु ।

अप्रभुती नि लङ्घि य इमां पृथग्यथ कृष्णं प्रजामुद्धरन्त्युद्द

॥ ९ ॥

गुहाय प्राधानौ सकृदौ वीर हस्त आ तं देवा यत्रिया युष्मदगुः ।

अयो वरा यत्तमास्त्वं वृणीष तास्ते समृद्धीरिह राक्षसामि

॥ १० ॥ (१)

इय तं वीरिदिदमु ते जनिषं गुहान् स्वामदितिः गुणपुत्रा ।

परा पुनीहि य इमां पृथग्यथोस्ये रुपिं सर्ववीर नि यच्छ

॥ ११ ॥

उपसृष्टे द्रुष्ये सीदता युय वि विन्ध्यस्य यत्रियासुत्तुषैः ।

त्रिया समानानवि सर्षन्तिस्वामाचस्पदं द्विपुत्रप्यादयामि

॥ १२ ॥

अर्थ- [एतौ सुपुत्रौ प्राधानौ] ये साधु रहनेवाले हा एकर [यमीनि युष्मिन्] कमरा रखी । [यत्रमानाय साधु निर्दिष्ट] यत्रमानाके विष मोक्षपक्षे रहकर निष्ठाको । [ये इमां पृथग्यथः] जो इस बीरर हमका करते हैं हमका [विजयि] नाश कर । [अयो वरा यत्तमास्त्वं वृणीष तास्ते] वरणी हुई और भरणपोरा करनी हुई प्रजाका उद्धार कर ॥ ९ ॥

हे वीर [सहृदी प्राधानौ इत्ये गुहाय] कलत्र कम करनेवाले ये हा एकर हातमें ले । [यत्रियाः देवा] न वरा या वपुः] पुरव देव से वपुमें आजाते । [यत्रमान् त्वं पुनीष] जो तु मांगता है वे [वरा वरा] वीर व हैं । [ताः सकृदौः] ये दूह राक्षसामि] हम अपासिकोंको सेर किये निह करवा हुआ ॥ १० ॥

(इयं ते वीरिः) यह तुम्हारा पावपाम है और [इयं ते जनिषं] यह तेरा जन्मपाम है । [गुणपुत्रा अतिनि र्वा गुह्य] पूर पुत्रोंका वर्णन मात्रा तुम स्वीकार करे । [ये पृथग्यथ इमां वरा पुनीहि] जो हैनकाके वपु इम वीरोंके वर देते हैं वपुको दूर कर और [अयो सर्ववीर रवि वि यच्छ] इसको सब वीरोंके पुत्र बन दे ॥ ११ ॥

[युयं युयुते वरवते सीदत] तुम सब कलत्र जीवक किये देते । हे [यत्रियाः] पादको । वार [युयैः विन्ध्यस्य] युयोंको वृष्य करे । इम [यत्रमान् उपसृष्टा विना अति स्वाम] सब वपुस वपुमें वपुसे लेह वपुमें । और मैं [द्विपुत्रा वरा परं आगादयामि] वपुसोंका स्वाग वीर करवा हुआ ॥ १२ ॥

प्राधान- ये सोपद्य सब निष्ठापक्ष के एकर हैं । इत्ये वीरका ॥ निष्ठाको । जो वरा लेकर गुह्याग साधु वपुस करते हैं वपुस साधु वर और वरणी प्रजाका उद्धार कर ॥ ९ ॥

वपुसे मिले जो सोपद्य देव हैं वपुसों इय वपुसे गुहा । विष विषयमें तुम्हारा प्रवण होना वम वरीरों गुम प्रम हीने और वपुस वपुस वपुसे निष्ठाको ॥ १० ॥

वर यमपुत्रि है, वही वपुसे वीरपाम होता है, वा वपु पुत्रर हमका वपुस है वपुसो वपुस वर और वर वीरोंके पुत्र बन तुम्हें प्रम हो ॥ ११ ॥

ये वपुसों वपुस वपुसे है वीर वपुसोंको वपुस वपुसे वपुस वपुसे वपुस वपुसे वपुस वपुसे ॥ १२ ॥

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां स्वां गोष्ठोऽध्वरुक्षद् मराय ।

तासां गृहीताद् यत्तमा यक्षिया असन् विमान्य धीरीतरा जहीतात् ॥ १३ ॥

एमा अगुर्धोषितः शुम्भमाना उचिष्ठ नारि त्वसं रमस्व ।

सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजायस्या स्वाऽऽगन् युद्धः प्रति कुम्भ गुंमय ॥ १४ ॥

सुभो आगो निर्हितो यः पुरा वृत्राविप्रशिष्टाय आ भरेता ।

अप यज्ञो गां तु विष्ठा यवित प्रजाविदुः पञ्चविद् बीरविद् नो अस्तु ॥ १५ ॥

अत्रै चरुर्ध्विपस्त्राऽध्वरुक्ष्णुविस्वर्षेष्टस्पर्ता तपैनम् ।

आर्षेया देवा अमितस्त्यं भागमिध तविष्ठा कृतुर्मिस्तपन्तु ॥ १६ ॥

अर्थ— हे नारि ! [पुरा इति] दूर का भय [युधः क्षिप्रं पति] फिर बीर का का [स्वो गोष्ठः] भाग तथा अति सम्पन्न [अर्धोः स्वान् मानेकः] किंच तेन शिष्यै वैवाहिक है । [तासां वत्तमा यक्षियाः] वत्तमें जो पूजनीय किंवा वक्ष्ये शिष्ये योग्य अर्ध है, वत्तका [गृहीतात्] स्वीकृत कर और [धीरी इतरा विमान्य जहीतात्] दुष्टों से इतरोंको पुनर् करके छोड़ दे ॥ १३ ॥

[एमाः] धोषितः शुम्भमानाः आ अगुः] ये किन्हीं सुधोषित होकर बरी आगई हैं । हे नारि ! [उचिष्ठ त्वसं रमस्व] वह नारि वत्तमें प्राप्त हो । वृ [पत्या सुपत्नी] वत्तन वत्तिके साथ वत्तन पत्नी हो [प्रजया प्रजायती] वत्तन वत्तनसे प्रजावाती हो [यज्ञः स्वां आ अगन्] यज्ञ उसे पाऊ बर्तुणा है [कुम्भं प्रति गुंमय] बरेका ग्रहण कर ॥ १४ ॥

हे [जाय] अर्धो ! [वः वः अर्धो भागः पुरा निर्हित] जो अत्यन्त बकबात् नारा पहिले रक्षा दिया है । [अतिप्रशिष्टाः पुरा आगतः] अतिप्रशिष्टी आगुर्धो इष्ट अरकर के आ । [अप यज्ञः वः] वह यज्ञ आपके शिष्ये [गां विष्ठा] गां आगवित् प्रजाविद्] अगवर्धक देवर्ध्वर्धक प्रजाका देवैवाका, [अमाः पञ्चविद् बीरविद् अस्तु] वत्तमा देवैवाका पञ्च देवैवाका और बीर वत्तमेवाका होवे ॥ १५ ॥

हे अर्ध ! [यक्षियाः पुत्रि तविष्ठाः पत्या तथा अति आदर] वत्तक वीरन पोरि और तपःमान्यवर्धे युद्ध अत्र पुत्रो प्राप्त हुआ है । अतः वृ [यज्ञे त्वत्ता तव] इसको जयनी अर्पणतात तथा । [आर्षेया देवाः तविष्ठा] अर्धो और वक्ष्ये अर्धक वत्तमान है [अर्धं भागं अमिषागन्तु तपुभिः तपन्तु] इस अर्धभागके पात जाकर अर्धको अर्धक तपान ॥ १६ ॥

भाषार्थ—भी अर्धे वर तप तव और पूजक देख । अर्धका स्थान मही हा वक्ष्ये वत्त मर कर्मे । जो वत्त आग हा वत्त आग । अर्ध आग पूर रहे ॥ १३ ॥

अथ पुनः वत्त पूजमान पुत्रो भवति । अर्धो अर्धव वत्त जात करे पुत्रुन वत्तम करे, धरका बीरव वत्तमें और वत्त प्रजय वत्त आ रहे ॥ १४ ॥

अर्धे अर्ध वत्त वत्तमेवाका हो वही भाग भाग्ये । वर वत्तमे वत्तम होता रहे । वही आगवर्धक, देवर्ध्वर्धक, वत्तमान आगवत्त वत्त वत्तमेवाका वत्त को वृद्धि आर्धेवाका वी भाग वत्तमेवाका है ॥ १५ ॥

वत्त अर्ध वत्त अर्ध और तपान । वत्तमेवाका है वत्त अर्ध देवताओंकी अर्ध किंवा अर्ध और वत्त वत्तमेवाका वत्तमेवाका वत्तमेवाका ॥ १६ ॥

प्रज्ञाः पुता योषितो यक्षिषा इया आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।

अर्धः प्रज्ञा बह्वलान् पश्यन् नः पक्तीदुनस्य सुकृतमित्ति स्त्रोकम् ॥ १७ ॥

प्रज्ञाया बुद्धा उत पुता पुनेन सोमस्याश्वस्तपुला यक्षिषा इमे ।

अपः प्र विंशत् प्रति गृह्णातु बश्चरुभि पक्त्वा सुकृतमित्ति स्त्रोकम् ॥ १८ ॥

उरुः प्रपश्य महता मंहिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।

पितामहाः पितरः प्रज्ञोपजाह पक्ता पश्यदुशस्ते अस्मि ॥ १९ ॥

सहस्रपृष्ठः प्रतपारो अक्षितो प्रज्ञोदुनो देवयानः श्वरः ।

अमुंस्तु आ देषामि प्रज्ञया रेपयेनान् पत्तिदाराय मृदुतामर्षमेव ॥ २० ॥ (२)

उददि वेदि प्रज्ञया बधयेना नृदस्त्ररथः प्रतरं पैसनाम् ।

क्षिषा संमानानति सर्षान्स्वामापासपृष्ठ द्विपुत्रस्पादयामि ॥ २१ ॥

अर्थ—[इयाः पुताः पुताः यक्षिषाः योषिताः] ये पुत्र पवित्र आर दृग्भाव सिद्धे [शुभ्राः आराः अथ अथमर्पन्तु] और स्वच्छ अथ इस अक्षय पास आजायि । [नः प्रज्ञा बह्वलान् पश्यन् अर्धः] हमें सत्य और उत्तम पशु देवें । [आपश्चरुमव पक्त्वा सुकृतां लोकं एतु] अक्षय बकायेशका पुत्रकोकको प्राप्त हो ॥ १७ ॥

[प्रज्ञायाः बुद्धा उत पुनेन पुता] शत्रुसे पवित्र और अक्षय वा पीछे पुनीत हुए [सोमस्य अंशयः पण्डु कः] ये सोमके अंश देते पावक हैं । हे [आराः] उरु ! [प्रविशतु] तुम अम्पर प्रविष्ट हो जाओ [वा यक्ष मति गृह्णातु] गृह्ये वह अथ प्राप्त हो [अंसे पक्त्वा सुकृतां लोकं एतु] इनको पक्कर पुत्रबानोंके लोकको जाना ॥ १८ ॥

[उरुः महता मंहिम्ना प्रपश्य] बड़ा होकर बड़े महत्त्वके साथ पश्य जा । [सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके] हजार पीठवाला क्षत्र पुत्र लोकमें गिराव । [पितामहाः पितराः प्रज्ञाः उपजाः] पितामह पिता संतान और उनकी संतान देसा क्रम पके । [अहं यक्षा पञ्चदशः अस्मि] मैं पक्षमेवाका पञ्चदशों होके ॥ १९ ॥

[सहस्रपृष्ठः प्रतपारो अक्षितः] हजारों पीठवाला तेजवी पारीशका अक्षय, [प्रज्ञोदुनः देवयानः श्वरः] हाथ बहावैवाके अक्षय प्राप्त होवैवाका देवयान श्वर है । [अमुंस्तु आदेषामि] इसे बिके इनको मैं पारण करा हूँ । [पुनात प्रज्ञा यक्षिदाराय रथः] इनको रीतायके साथ कर देनेके लक्ष्य सिद्ध कर । मैं सब [उरी एव धृक्पण्डु] मुझे ही सुना करे । २

[वेदि उददि] वेदिको कटानो [यनां प्रज्ञया बधये] इनकी प्रज्ञासे बधये कर । [रथः पुत्ररथः] शत्रु कोको जगा हो [यनां प्रतरं पैसि] इनको बिके पीछे पारण कर [समामाह सर्षान् स्त्रिषा अति स्वाम] सब ल मन्त्रोंके बन्ने अधिक हम हो । [द्विपुत्रः अथः पदे पादयामि] शत्रुकोका नीचे गिराया हू ॥ २१ ॥

पारार्थ—ये क्षिषा पुत्र और पवित्र समार्यके बिके मोरव है । उत्तम अथ उदार करे । हमें उत्तम संतान और बहुत पट प्राप्त हो । उत्तम अथका प्रभाव करवैवाका पुत्रभीक प्रदा हो ॥ १७ ॥

वह आपस पवित्र और उत्तम है । अथ अथके साथ मिले । अथ मिलकर कष्टया जायि । अथ अथ इनमें अथय प्राप्त करे । १

बड़ा महत्त्वका रथय प्राप्त कर और पुत्रकोकमें गिरावमाय हा । पितामह पिता पुत्र और प्रवीण लक्ष्यमने अक्षय पश्यता गिराता रहे । हरकको अथय पश्य लक्ष्यकोका जान हा और वह वह हिमें अथमेव पश्यता हू ॥ १९ ॥

वह अक्षय श्वर है इन अक्षय इस अथका पारण पोषण होता रहे । ये अथ सुकृती हुई करे और उनकी अथ ये अथोंसे कर देवैवाकी वर अथ ॥ २ ॥

वह करो प्रज्ञाकी हाथ करो अथकोकी दूर अथानी रीतियोंकी पारण करो, स्वयंसेवकी अथये लक्ष्य करके इनमेंही अथिक अथ जाओ और अथकोकी दया हो ॥ २१ ॥

अम्भ्यार्षर्वस्य पृथुमिं सहैनां प्रत्यर्केना देवताभिः सहैभि । ॥ २२ ॥
 मा स्वा प्रापेच्छ्रपयो माभिन्धारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि रात्रि
 श्रोतेन स्पृष्टा मनसा हितैवा प्रब्रौवुनस्य विहिता वेदिरत्रे । ॥ २३ ॥
 अमर्त्री बुद्ध्याद्यप्ये चेहि नारि तत्रौवुनं सादय वैषानासु
 अवित्रैर्हस्तां सुर्ध्वैर्वा द्वितीयं सप्तश्रपयो भूतकृतो यामकृण्वत् । ॥ २४ ॥
 सा गाथाभि विदुष्योवुनस्य दर्विर्बेष्टामभ्येन चिनोतु
 धृतं त्वा हृष्यमुप सीदन्तु देवा निःस्पृह्यामेः पुनरेनान् प्र सीद । ॥ २५ ॥
 सोमेन पूतो अठरे सीद अक्षयामोर्पुपास्ते मा रिवन् प्राञ्जितारः
 सोमे राक्षन्त्सुबानुमा वपेभ्यः सुमोक्षणा यत्तमे त्वोपसीदोन् । ॥ २६ ॥
 अर्षीनापुर्पास्तपुवोऽभि जातान् प्रब्रौवुने सुहवा जोहवीभि

अर्थ—[एवं पृथुभिः सह अग्निं वाचर्षेण] हम जीको पृथुर्भक्ति साथ प्राप्त हो और [एवं देवताभिः सह प्रत्यर्क] इस जीको देवताभक्ति साथ प्रत्यर्क मिले । [स्वा श्रपया मा प्रापत्] तुझे श्रप न मिले । [माभिन्धारः मा] यम न मिले । [स्वे क्षेत्रे अनमीवा विरात्रि] अपनी भूमिमें नीतोय होकर विराजित हो ॥ २२ ॥

[अत्रैव त्वहा] समस्त कहार्हे । [मनसा हित्य] मनसे तबो [एवा प्रह—बोधवत्त्व वेदि] वह वायु बहनेवाले बहरी वेदि [नरे विहिता] जगें बगाई है । हे नारि ! [ह्युतां अंशहीं कपयेहि] कुछ बाकीको कवर रक और [वम देवतां बोधर्व सादय] वहाँ देवोंका अन्न तैयार कर ॥ २३ ॥

[यदुप्योः सप्तश्रपयः] धृतमात्रको बगानेवाले सप्त अग्निर्भक्ति [अवित्रेः हस्तां वा वृतां द्वितीयं पुनं सप्तश्रपयः] अवित्रिमात्रका हस्ता हाथ बंधा वह चमस बगाना है । [सा दर्विः बोधवत्त्व यामाभि विदुषी] वह कवची बहने के लक्षणमें अमर्त्री हुई [एव अर्षी नाभि चिनोतु] इसको वेदीके सम्पर्कमें लवे ॥ २४ ॥

[मा अठरे हर्म देवा कप सीदन्तु] तैयार हुए बहने के पास देव ला बैठे । [सोमे विः सुमोक्षणा एवाम् असीद] अग्निदेव चमकर फिर हम देवोंको प्रत्यर्क कर । [सोमेन पूतो अक्षयामो वठरे सीद] सोमके पवित्र होकर अग्निर्भक्ति के पदमें ला, [ये प्राञ्जितारः अर्षेवाः मा पिचत्] वेवा प्राञ्जल करनेवाले अग्निपुत्र हुआ भी न हो ॥ २५ ॥

हे [सोम राक्षन्] राजा सोम ! [यत्तमे सुमोक्षणाः त्वा कपसीदन्] जो यत्तम आक्षय्य ठेरे पास ला बैठे [यमो लक्षार्थ जाहव] हमको यत्तम प्राप्त है । [वपयः अग्निमातान् कार्यवन्तु असीदन्] वपयें वपयत् अग्निपुत्र अग्निर्भक्तिमें [अमो हने सुहवा जो हवीभि] कल बगानेवाले बहनेमें कलम तुकाने योग्योंको भी ब्रह्मणा हूं ॥ २६ ॥

मातार्थ देवता और गी नारि पृथुर्भक्ति साथ रसीली गुरीकित रबी साथ प्राप्त कर न दें । वपयें तुम्हें हुआ न हो अग्नि मातृभूमिमें नीरोय होकर विराजते रहें ॥ २२ ॥

वपयें विहित मनसे गुरीकित वह अन्नका स्थान है । वह अन्न छूट पायमें रक और वेदोंकी अर्पण कर ॥ २३ ॥

यदुप्यो कप वेदोंके सप्त-अग्निर्भक्ति वह कवची निर्माण था है । इस कवचीसे नारदार अन्न लेकर वेदीपर रख ॥ २४ ॥

अन्न तैयार करके देवताओंकी अर्पण कर वपयें प्रत्यर्क ही सोमके साथ अन्न आक्षय्य कार्य और अग्निर्भक्ति हुए ही ॥ २५ ॥

आक्षय्य अक्षय्य ही हमरी पीप और अन्न दिया नहि । तप करनेवाले अग्निर्भक्तिोंका कनार क्षय्य अक्षय्य भिन्न नहि ॥ २६ ॥

सुखाः पूता योषितो यज्ञिया इमा अक्षणां हस्तेषु प्रपूयक् सोदयामि ।

यस्काम इदमभिपिञ्चामि षोडशमित्रो मरुत्सान्त्स देवादिद मे ॥ २७ ॥

इव मे ज्योतिरमृतं हिरण्य एक क्षेत्रात् कामदुष्या म पूता ।

इद धनं नि दधे आक्षणेयं कृष्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ २८ ॥

अमौ तुपाना रप आतवेदसि परः कम्पूको अर्प मृद्वि दूरम् ।

एत क्षुभुम गृह्णात्स्य मागमयो विष् निश्रितेमीगवेर्यम् ॥ २९ ॥

आम्यतः पचतो विद्धि मुन्वतः पन्थां स्वर्गमर्षि रोहयेनम् ।

येन रोहात् परमापद्य यद् वयं उत्तम नाकं परम् ज्योमि ॥ ३० ॥ (३)

अत्रेण्यो मृद्विमेवद् वि मृद्विमाज्याय कोक कणुहि प्रविष्टान् ।

पूतेन गात्रान् सर्वा वि मृद्वि कृष्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ— [इमाः सुखाः पूताः यज्ञियाः योषिताः] ये सुख और यज्ञि कियों वस्तुके योग्य हैं । इन्हें [अक्षणां हस्तेषु प्रपूयक् सोदयामि] आक्षणीके हस्तीमें अक्षणा अक्षम कार्यय करता हूँ । [यस्कामः अर्हं वा इदं अभिपिञ्चामि] जिस कामनासे मैं तुम देवताओंके कहेस्वसे यह देता हूँ, [मरुत्सांस्तः इन्द्रः मे इदं दूरात्] मरुतोंके साथ रहनेवाला यह इन्द्र मुझे यह देवे ॥ २७ ॥

[इदं हिरण्यं मे क्षेत्रात् पचम् अमृतं ज्योतिः] यह सुवर्ण मेरे क्षेत्रसे पका हुआ अमर लेखी है । [पूता मे कामदुष्या] यह मेरी हृष्यके अनुसार तुम्ही कामेवादी गी है । [आक्षणेयं इदं वयं विदधे] आक्षणीके यह वन देता हूँ [वा स्वर्गः पन्थां पितृषु कृष्वे] जो स्वर्गका मार्ग है वही मैं पिताओंके किये करता हूँ ॥ २८ ॥

[आतवेदसि अमौ तुपान् वा वप] आतवेद अग्निमें तुम्हेंको आक [कम्पूकम् अर्प अवदूरति] छिन्नकोंके दूर भेक दो [परं गृह्णात्स्य आर्ग क्षुभुम] यह मेह गृह्णके अरुमा भाव है देखा हम मुनते हैं । [अयो निश्रितः आमवेर्यं विष्] इच्छे विपरीत अयोमविष्मा ज्ञाय है देखा हम समझते हैं ॥ २९ ॥

[आम्यतः पचतः मुन्वतः विद्धि] परिवर्ती अक्ष पचानेवाके और औरविस्त विकारवैक्योंके दू जाय । [एतं क्षुभुमं पन्थां अभिरोहन्] इसको खरीके मार्गपर चढाओ । यह [येन परं वयः वापद्य] जिससे परम आत्मीको आक होकर [उत्तमं नाकं परम् ज्योमि रोहात्] उत्तम स्वर्गके परम आकाशपर जा पहुँचे ॥ ३० ॥

— है अम्यतुं । [वनः पूतम् मुक्तं विमुक्तः] इस बर्तनका यह मुक्त लक्ष्य कर । [प्रविष्टान् गात्रायान् कोकं कणुहि] आक्ता हुआ कीके किये क्काम बना । [पूतेन पन्थां गात्रा विमुक्तः] पीते साथ गात्र स्वच्छ कर । [वा स्वर्गः पन्थां पितृषु कृष्वे] जो स्वर्गका मार्ग है उसको मैं पिताओंके किये करता हूँ ॥ ३१ ॥

साधने—इह पक्षे सम्यक्गौरव स्थितोऽपि आक्षणीके हस्तीमें अक्षणा अक्षम दिया जाय । अर्थात् एक एक म इत्य एक एक स्त्रीका पानिपदय करे । जो विद्वान् इहको यह वचनो पूर्ण हो ॥ २७ ॥

यह सुवर्ण है और यह क्षेत्रमे पका हुआ कतम अम्य है । यह मे आक्षणीके देता हूँ । यह कार्यवाही मार्ग है ॥ २८ ॥ अग्निमें तुम्हेंको रख और छिन्नकोंके दूर भेक । येष कतम आम्प परका राजा है वचनो सुरक्षित रख । अम्यका निश्रितका पचत आत होगा ॥ २९ ॥

परिमय करो अक्ष पचको, औरविनीका रत्न निश्रितो इच्छे स्वर्गस्तुक्त मिलेगा आम्प बहेगी औरमेह आर्गव प्राप्त होगा । बर्तन स्वरुह करके बर्तन भी भरकर रखे । पीते सब गात्र स्वच्छ होकर कतम सुख प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥

यन्ने रक्षः समदुमा ब्रैव्योऽग्राहणा यत्ने त्वोपसीदन् ।

पुरीषिण प्रथमानाः पुरस्तादायुयास्ते मा रिपन् प्राशितारः

॥ ३२ ॥

आयैषेणु नि रक्ष ओदन स्वा नानायेषाणामप्युस्मत् ।

अग्निर्मे गासां मरुतेषु सवै विधे वेना अमि रक्षन्तु पक्कम्

॥ ३३ ॥

यक्षं इहानं सवुमित् प्रपीन् पुमोम पेनु सदनं रयीणास् ।

॥ ३४ ॥

प्रजामुतस्वमुत वीषनायू रायश्च पापैरुप स्वा सवेम

॥ ३५ ॥

वृषमा वि स्वर्गे अर्षीनायेषान् गच्छ । सुकृतां लोक सीद तथ नौ सस्कृतम्

समाधीनुष्वातुसमपोक्ष्य पृथः कल्प्य देवयानान् ।

॥ ३६ ॥

पृथैः सुकृतेरनु गच्छम यक्ष नाकं तिष्ठन्तुमाचं सुमरस्मौ

मेन हेवा ज्योतिषा घामुदायन् ब्रह्मीदन् पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।

॥ ३७ ॥ (४)

तेन गधम सुकृतस्य लोक स्रारोर्दन्तो अग्नि नाकमुत्तमम्

अर्थ है [३३] वरुण! [यत्ने= आह्वयः] आग्रहीयान् जो आह्वय करे पास आकर बैठने हैं [प्रथम-समस्त रक्ष आह्वय] इन सबसे बमश्चमि शस्त्रकोही भी बुर कर । [ते प्राशितारः पुरीषिणः] धरेमेके प्राधय करनेवाले अश्वमे [प्रथमानाः आयैषेणाः पुरस्तात् मा रिपन्] बलवती क्षत्रियुज कभी न बह हों ॥ ३२ ॥

हे [ओदन अन्न] । [आयैषेणु स्वा विदधे] अविष्टोर्मे तुष्टे रक्षता हूँ । [अनार्येणामां अग्नि अन्न न बरिते] जो अन्नभक्षण नहीं है उनका भक्षण नहीं करी है । [मे योक्षा यजि] मेरी रक्षा करवैयाका अग्नि है । [सर्वे मरुता विधे देवाः] वे पर्वत अग्नि [रक्षन्तु] सब मरुत और सब देव इस वरिपक्वकी रक्षा करें ॥ ३३ ॥

(यक्षं इहानं सवुमित् सवै ह्य) यक्ष करनेवाला सदा मनुष्य; (पुमोम अपेनु) सपत्निका घर देखी नौ है। (रयीणां) तुष्ट पुरारके पास (योयैः यक्षाऽपुमवै) वर वीर्य आतुः) पुत्रियोंके यक्षाकी पुत्रि और उनकी बीवें जात (रावाः च वर महेम) और सब देव आते हैं ॥ ३४ ॥

(वृषमा अग्नि) वृषकाय है व (वर्गाः अग्नि) सुकृताय है। (आयैषां अग्नीवृषा) अविष्टोर्मे और अविष्टोर्मे पास का, (सुकृतां लोक सीद) पुण्यवाग्योऽस्मान्मे ॥ (यत्ने नौ अस्कृत) यह इस दोबोका सुसंस्कृत कर्म कर रहे ॥ ३५ ॥
हे अग्नि! (स आ विपुष्य) संवत्सर का। अनुसन्वाहि) अनुसन्वाहा के साथ मिलकर जा। (देवमप्य पृथः कल्प्य) देवोंके आनेयोग मागोंके पक्षार कर। (पृथैः सुकृते सवै नाकं तिष्ठन्तु) इन पुण्यकर्मके साथ साथ किरणोंवाले रश्मिरश्मानमें रहनेके लिये (यत्ने अनुगच्छम) यक्षक अनुसन्वाहोकर आर्यमें ॥ ३६ ॥

[मेन उज्योतिषा देवाः] मैं उज्योतिष देव उज्योतिषे देव रश्मिके कहूँ (महोदधं पक्त्वा सुकृतस्य लोकं) ब्रह्म करनेवाला यक्ष ब्रह्मा पुण्यकोकको प्राप्त हुए [तेन रक्षा आरोहणाः] उससे रश्मिगर्प चढ़ते हुए (वत्तमं नाकं सुकृतस्य लोकं) वत्तम सुवत्तम पुण्यकोकको (गधम्) प्राप्त हो ॥ ३७ ॥

भाष्य- जो आग्रह आदेश उभय शत्रुओंको बुर मगा दे। इन शत्रुओंकी आज समर्पण करी जिसके लिये पुण्य ॥ ३२ ॥
म हामीके अन्न दो नहीं दूनाका ध्यान नहीं है। इनसे सबकी का होगी ॥ ३३ ॥

मैं सब धर्मशर्मा कर है इनके यक्षाकी पुत्रि और वीर्यानु करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

वक्त्राम बने अपने पास करी अविष्टोर्मे पीके चको पुण्यके क माग करी और अपने आपकी सुपरकृत करो ॥ ३५ ॥

संवत्सर करो, अनुसन्वाह करी ब्रह्म मेरे आगों सुकृत कर, उज्योतिषकी रश्मानमें रहो, यक्ष करो वरी सुकृतायक मार्ग दे ॥ ३६ ॥

देवक साथ पुण्यकोक प्राप्त करी, रश्मिगर्प करो, इसीके कर्मान प्राप्त होगी ॥ ३७ ॥

यद् यत्रका कथम हे कि मनुष्य(सहस्राण्)वज्रान् नम सद्यश्च
नमः [अग्निम्] मनुष्य परामर्श करेवाचा भवे । और [सत्यवान्
मीनः मनुष्य] मनुष्योंको भीने बहाकर ऐसे बचको कठमे
न मे इतनीही नहीं परंतु बचको [मनुष्यता] करभार देवेवाचो
कहावे । अर्थात् जो पक्षिसे सज्जता करते वे वे अब इसको कर
देवेवाचो भवे । इसकी सखि इसको अपने संहर बहायी चाहिये ।

तत्पुन मंत्रमे [महते वीचीय] बहा पराक्रम करकेसे भिजे
किर सूचना दी है । तृतीय मंत्रमें वही बात कही थी वह
किर वहां दुहराई है । क्योंकि मानवी जीवनमें पराक्रमका
स्वात बहायी केंद्रा है । [पवस्य] रूप पीकर बलवान् बनना
और वहा पराक्रम करवा इदृशको कथित है । इसी तरह
कर्णशेकका शरीर बल पाता है ।

अग्रेके तीस मंत्रमें पत्वारोहारा सोमरस विशाकमेघ वर्णन
है । वह सोमरस सब प्रकारसे मनुष्योंका स्वास्थ्य बढानेवाला
और बरखाइ बढानेवाला है । बह्मात्ममें इसका भवन करके सब
योग्य इसका पान करते हैं । वह सब पिता जाना है बचके
आप निम्नम बंधि है और मुने आदिसे सब भिकाकर भी खाते
हैं । जनेक पीछेसे हल रसका लेवन किना जा सकता है ।

चूरपुत्रा की ।

म्वारहमें मंत्रमें अगर्भ को चूरपुत्रा होती है ऐसा कहा
है । शिशुको वह बल करार रखनी चाहिये । पुत्र बने छत्र
होवे चाहिये । मीन आर करनेवाके वहां होवे चाहिये । गृह
शिवनीको इस वातका प्यान रखना चाहिये । क्योंकि [अर्धवीरा
एवि] सब वीरताके गुणोंके साथ भव प्राप्य कदा मुहुरभीक
बर्मे है । वीर पुत्र होकरही सर्ववीर कुछ बच प्राप्य हीना
बर्मेव हो सकता है ।

वारहमें मंत्रमें दो मंत्रमत्ता सुक्य है । [शिवा अर्धान्
अतिस्वाम] संघातेसे लपटे बहकर ही और [क्षिपताः पथ
अथः आत्तरावधि] सज्जुमीक स्थान भीने कराया हैं । आगे
११ वे मंत्रमें भी वही कहा है । छायाी मनुष्यकी वही उपदेश
करा आर्धम भारण करने चाहिये । इदृश समय वही माने
मनुष्योंको अपने बन्धुका रक्षना चाहिये ।

सिंघोंका कर्तव्य ।

बारमें वानी भरना प्रकम कर्तव्य है । सप्तमसे अष्टम वानी
बारमें भरना चाहिये । वहा मेहर बनन जल भरनेवा बच

की करे शिवा मितवर पानी भरनेके लिये चाह । सप्तम वान
बारमें जला वह (वा ऊर्ध्व मायाः) बल देनेवाला मान है ।
छाया पशु चाहिये भिजे इसकी वही जानवपकता होती है ।
वह उपदेश मंत्र १६ तक किया है ।

सोडहमें मंत्रमें (वहाः) कालन आदि अथ कठमेसे
जाबोजबा करनेका कथन उपदेश है (कटुमिः) कटुमोसे मल
कृत जल ठेकार किना जाय । बिषम लेवन करके सब जानुके
कोप छुट और वीचीयु बर्मे ।

सत्रहमें मंत्रमें कहा है कि शिवां छत्र, पवित्र और इंद्रका
आमृतवाधिते पुत्र होकर बारमें पानी जमे और जल बर्मे,
बहमें उपस्थित हो सबका अतिस्वस्थार करें पशुमें से
संघातोंको तुल करें और बरखी सब सुखवदना करें । शिवां
छत्र मनुष्यता रहने न है ।

अठारहमें मंत्रमें वाचक भी सोमरस आदिसे कथम पान
अथ ठेकार करनेका उपदेश है । कथम अथ पकना शिवां
सुख रहस्यकी है ।

बीसवमें मंत्रमें कहा है कि पितामह, पिता पुत्र अग्नि ११
पुत्रोत्पत्त अतिरिक्त बंध ही । बारमें ऐसा आवापान रहना चाहि
वे और एही सुखवदना होनी चाहिये कि बंस बीसमें न टूटे,
पुत्र वीचीयु हो और बह्म नष्ट हो । ऐव पुत्रोत्पत्त कभी
कम बंध बह्म रह जाये बिधवा रहेया जतना अच्छाही है,
परंतु कमसे कम इतना तो अवश्य रहे । वह सब प्रदीवन अर्ध
ज्ञान बहावेवाके अच्छस होता है । अग्निस्वस्थ बर्मे सुखीर्षव
जब है । इधसे पुत्रि बहती है और बुद्धि बह धीमा शरी
वीक्ष्य है । इधसे मनुष्य (रक्षा सुरस्व) रक्षकोंके दूर क
सकता है और अपने आपको आगे बहा सकता है ।

आगे बीसवमें मंत्रमें कहा है कि (सप्तवाः अतिपाप मा म-
पयः) कारों और बर्मेसे वह दूर रहे । कारोंमें रोय न ही ।
सब प्रकारसे सुकक्या रहे । पाठक जान सकते हैं कि कारोंमें
वीरोवेता करीर छत्र रहनेसे होती है शानीक वीरोवेता कल
पक्षियों आदिब होमेसे होती है और कमावकी वीरोवेता बर्मा
के अपराध न होमेसे ही सकता है । करीर, वानी और कला
मिरोन रहने चाहिये । यदि वह इच्छा है तो अर्धम मिरोव
रक्षनी चाहिये । कुपकसे कारोंमें रोय होते हैं अतः वही वानी
रोनी हीनी है और अपराधकी वरिसे पनाय रक्षी होय है ।

पाठकोंको ज्ञापित है कि वे अपने इस सब क्षेत्रोंमें स्वास्थ्य रखने का बल करें ।

हैर्षसर्वे मंत्रमें प्राणक आदि अथ तैपार होमेपर उषधो पोषधेष्टो विधि बताया है । योनीसर्वे मंत्रमें कण्ठीका उपवींग करने कायकोष्टो कीक करेको कहा है । पञ्चीसर्वे मंत्रमें कहा है कि—

प्राश्रितार* मा रिपन् ।

अथ मलय करनेवाले कुछ वा टोपी न हों । अथ ऐसा कतम हो कि किछे कानेवाले मृत होकर पुत्र होते जाय । पञ्चमे-पञ्चिका यही वाच्य है कि कानेवाले कठे जलंरुते जाय और हवम करें और पुत्र हों । ऐहां अथ पञ्चकर कतम विद्यावोको सिखाया चाहिये । वह सूचता २९ वें मंत्रमें कही है ।

विवाह ।

वतर्हसर्वे मंत्रमें विवाहका विधान संक्षेपसे कहा है । जिन (छन्दस पूजा बोधितः बधिराः) छन्द फलित और पूज्य हैं वह प्राण्य नवां बहुपदी महत्त्व रक्षता है । जिनकी निंदा नहीं करनी चाहिये, उनकी चर चरमें पूजा होनी चाहिये । कहा इन्की पूजा होनी बहां परित्रया रोय्य और पवित्रतासे उचता साम्य होनी । वह वर्णन दिनौका द्वां समाजमें बैठा कथ है इसका स्पष्ट निर्देश कर रहा है ।

इय रित्रयोका विवाह ज्ञानिकोंके प्राण करना चाहिये । (अ-छन्दं इच्छु म इच्छु साधनमि) ज्ञानिकोंके हाथमें इच्छु इच्छु एक एकके हांथमें एक एककी देना योग्य है । एक पुत्र अथैक शिष्य व अरु एकको अथैक पुत्रोंके साथ संरक्ष व करे । एक जी इच्छी पुत्रके साथ समान हो और एक पुत्रव एककी जी के साथ अन्विष्टके साथ रहे । वह जार्ह पृष्टस्वाभमका वर्णन यों अति संक्षेपके साथ किया है । इस मंत्रका इच्छु सम्भ वना महत्त्व है । इसी सम्भके कारण विरहका विधान स्पष्ट हो गया है ।

अने जार्हसर्वे मंत्रमें गृहस्वाभममें आयवेणु (अम-इया) रक्षनी चाहिये नष्ट जायेच है । चर चरमें ग्रीका प्राण्य होना चाहिये । अमवेणु यह है कि जो इच्छा होनेके समय २५ देती है । चरमें कोडे धातुक इच्छे और रोनी होयं इनका प्राण इच्छे कीक होना । इस बीमाका यह महत्त्व है ।

गृहस्थिकोंको तीन बातोंका बलाक करना चाहिये । (उचोतिः अयतं हिरण्यं) ऐकस्वी जीवन, अमरत्व और सुवर्ण । सुवर्ण अर्थात् सोनेका महत्त्व इष्टक नामता है । गृहस्थिकोंके इष्टक अम-बहारमें इष्टक काय पवता है । उषधी वैदिक और सार्वभौमिक अमरत्व वरते प्राण होते हैं । अमृत नाम मोक्षक है, यही अमरत्व है । उष अमृत सुमुख से प्रगता है । उष सुमुखे प्राण को तोड़कर अमरत्व प्राप्त करना मनुष्यका जीवनोद्देश्य है । उष चर्य कर्य इसी अर्थसे धिये जात है । इसी तरह ऐकस्वी जीवन यही स्वर्गीय करना चाहिये । इसी तरह (स्वर्गः पम्माः कृत्वे) स्वर्गीय धर्म ब्रता है । धर्म मार्गके से तीन पदक हैं । धन बर्हाके सुखके लिये चाहिये ऐकस्वी जीवन यर्हाके सम्पन्नके लिये चाहिये और अमरपन पारमार्थिक उपायके लिये चाहिये । स्वर्गका यह स्वरूप यही पाठक देखें ।

गृहदात्र ।

वतर्हसर्वे मंत्रमें पृष्टपञ्चक आर्ष गृहदात्रके कार्यमा गवा वर्णन है । गृहदात्र वरका स्वामी है अथवा घरोंमें जो केव वर है उसमें ऐकसा कार्य होना चाहिये । पुत्री और शि-करोको अन्नक करके स्वच्छ प्राणिकोंके अपने पात्र रक्षता वा हिये । यही विधान सर्व व्यवहारको कार्यके समग्र आभन रक्षता चाहिये । किमर्थको इच्छा और सारस्वको अपने पात्र रक्षता चाहिये । पाठक विचि अमरत्वमें वेवेके उष अमरत्वमें कतम धिदिधि बही वृत्तमात्र विधान है । पदार्थमें मी देखिये उत्पन्नक-को स्वीकारना चाहिये कथे मंचोरो वृत्त इच्छा चाहिये ।

एक माय विरहितिका अथवा वाक्का होता है और दूसरा उपाधिका होता है । विवाह करनेवाले मायको वृत्त करो और उपाधिका मायको अपने पात्र रको यही धीमा साहा विधान है । जो इसको पकड़ने से उचत होय इसमें छेदही नहीं है ।

(अ-स्यता वचतः, छुम्भता विधि) परिभ्रम करनेवाके पञ्चिकाके और रक्ष विच्छाकनेवाले कीक हैं इसको जानो । परिभ्रम करनेसेही ध्यानवोकी उपाधि होती है, अतः परिभ्रम करनेका स्वभाव मनुष्यको अवधाना चाहिये परिपक्व ब्रतमा मी चाहिये । हरएककी परिपक्व अवस्था उचत होगी है यही प्राप्त करनी चाहिये तथा रसमह्य करनेका बल करना चाहिये । वनस्पतियें वारभूत रक्ष होता है उष वारभूत रक्षक प्रवृत्त करना चाहिये और अमरविद्य वाररहित भागकी पैक देना चाहिये । यह वनस्पत म्पारक

उद्दिष्ट विषयही उपनयो है । कार्यर नहयेके विधे मे तीन उपदेश सम्मत् महत्त्व है ।

(दुतेव नात्रात्रु चर्वा विदुषादे) नीचे छत्र गात्रोंकी मन्त्रिका करो । अतीत्यर्थोंकी सुनिश्चित विधे नीकी मन्त्रिक आवश्यक है । नीकी मन्त्रिक पात्रोंके लक्ष्यपर करकेसे आद्य उपदेश सम्मत्त्व रहे है । संविदाकीपर मन्त्रिक करकेसे अभिरोग नहीं होते । अत्रिपर मन्त्रिक करकेसे मन्त्रिक धाम्ना रहता है और गरमी इत्यादि ह इती तरह सम्मान्य अवस्थापर मन्त्रिक कर मेसे अनेक लाभ होते हैं । इसके अतिरिक्त विविध औषधिविधि वृत्तोंके पुनस्तव करनेसे नीक पुन वक्त करते हैं । वैशा मासी वृत्त वमानके उत्तरी मन्त्रिकर मन्त्रिक उद्दिष्टावक और गर्मी इत्यादिनी होती है इती तरह आत्मकम्पादि वृत्त तथा सम्मान्य वृत्त वैदिकार्थमें अविष्ट हैं । इसकी कारीपर मन्त्रिक बही काम राखक है । यह बात इत्यादिमें संशय नहीं है ।

पोषक अन्न ।

अन्न पर धरमे पक्का पाहिजे यह पोषक अन्न होना चाहिये (प्राणितारः सा रिक्त्) उक्त कथने । कार्यरक कमीपुकी नहीं होने चाहिये कमी दिष्टि नहीं होने चाहिये कमी कील नहीं होने चाहिये । ऐसा अन्न पृथ्वीके धरमे पक्का का नि यह वृत्त १२ में संशय की है ।

जो अन्न परिवर्तन किया हो वह (अर्धेयु विदुषे) अन्ति—प्रत्यक्षके अनुसर नहयेताकी विधे समीप परमा चाहिये । न कि (व कर्मावर्णना) अन्तिप्रमाण की कीलके कोकी उक्त उपदेश करना है । अन्तिप्रमाण की संशयित रक्तेके विधे ही हरदृष्टी प्रत्यक्ष करना चाहिये ।

पर कैसा हो ।

कर ऐसा हो कि वहां (वहां उद्गार) धरा तक छोटी रों

(वदने रवीणा) ऐश्वर्यका स्थाप हो, (प्रतीतं वर्त) उद्गी और अनुष्ठित केन्द्र हो, (चोरेः प्रमाणानुत्पत्त) अन्तिपुष्टिके साधनेके साथ प्रमाणानुत्पत्त के अनुत्पत्त केनेसाध हो । वहां (वरुं) गी होती हो और वनर्तनविधोंके साथ [वीरे अन्तु] विधीनु औग हो चर ऐसा हो । धरमे वे न हो रहे । यदि धरमी कमी न हो ऐश्वर्य की वृद्धि हो, धीरे वृत्त रनेली हो, हरदृष्ट उद्गार हो उत्तरार्धगतिकामाध्यक वक्त होता है, न केव अर्धवृत्तवक्त रहे, कोई वृत्ती कमी न हो । वहां वनर्तन न संशय है ।

१२ में संशय [वृत्तमा अन्ति] ए वक्तव्य है ए निर्णय नहीं है ए (स्वर्गीः अन्ति) स्वर्गका अन्तिपरी है, ए उक्तव्यक स्वर्गका अन्तिपरी है । अन्ति विधे नाने अन्तिवोन धरमे और विधे धरमेके अन्तिवोंकी वृद्धि के लक्ष्य प्राप्त हुए वक्त धरमेसे ए वक्त । वही वृद्धिर्वाध केव है, वहां आकर ए वक्तारी उत्तरार्धगत वही धीन है ।

अन्तिमें संशय करते हैं कि (देवनामापक्का अन्न) ऐश्वर्यके अन्तिवोंके मन्त्रोंकी वृद्धि कर वे ही मार्ग वृद्धि के अन्तिवोंके विधे हैं (एवः वृद्धिः) वहां अनुत्पत्तम्) ए वक्त वृद्धि के साथ वक्त वृद्धि और वक्त चाहिये । वृद्धि करके करते वक्त वक्त चाहिये । वृद्धि करनेमें वीरे वृद्धि वक्त नहीं है । वक्त वृद्धि ही वृद्धिवाक्ता मार्गवर्तन हो । अनुत्पत्त वृद्धि वीरे न रहे ।

आद्य जो स्वर्गमें वक्त है वे वही धरमेसे वृद्धिर्वाध केव है । अन्तिः अनुत्पत्तकी वही वृद्धिर्वाध अन्तिवक्त करना चाहिये ।

इति तरह अनेक प्रमाणका उपदेश इस वृद्धिमें किया है, विद्वत्ता मनन करकेसे वृद्धिर्वाधे अन्तिवर्त वृद्धिर्वाध वक्त है ।

रुद्र-देव ।

[२]

[श्रुतिः— अथर्षा । देवता-मन्त्र सर्व-रुद्र]

मन्त्राद्यैर्मुहूर्तं माजमि यातुं सूतपत्नी पशुपत्नी नमो वाय् ।	
प्रतिहितामार्पणं मा वि क्षांष्ट मा नो हिंसिष्ट द्विपदो मा चतुष्पदः	॥ १ ॥
क्षुने क्रोष्टे मा क्षीराग्निं कर्षेमाच्छिन्नेभ्यो गृक्षेभ्यो ये च कृष्णा अक्षिष्पवः ।	
मक्षिकास्ते पशुपदं वयांसि ते विभुसे मा बिन्दन्त	॥ २ ॥
कन्दाय ते प्राणायु वार्षं ते मधु रोपयः । नमस्ते रुद्र कुम्भः सहस्राध्वार्यामस्य	॥ ३ ॥
पूरस्ताव ते नमः कुम्भ उचुरादब्राह्मण । अमीत्रगाव् द्विषस्पर्धन्तारिक्षाय ते नमः	॥ ४ ॥
वृक्षाय ते पशुपते यानि चर्क्षुषि ते मय । स्वुचे रुपाय सृष्ट्यै मयीचीनाय ते नमः	॥ ५ ॥
अक्षैर्म्यस्त उचुराय विह्वार्या आस्थापि ते । । रुद्रायो गुन्धाय ते नमः	॥ ६ ॥

अर्थ— हे [मन्त्राद्यैः] मन्त्र और कर्ष । हे कल्पाद्य और क्षांष्ट । आप दोनो [मुहूर्त] हम सबको मुहूर्त करें । [माजमिपार्श्व] हमपर हमका न करें । आप दोनो [सूतपत्नी, पशुपत्नी] भूयोंके पादक और पशुओंके पादक हैं । [वीं वमः] आप दोनोके मयस्कार हैं । [प्रतिहितां आपतां मा वि क्षांष्टं] वयुत्तर रक्षे और जीये वने वामको हमपर न छेड़ें । [मा द्विपदा चतुष्पदा मा हिंसिष्टं] हमसे द्विपद और चतुष्पदीकी हिंसा न करें ॥ १ ॥

को [कृष्णाः अक्षिष्पवः] कर्षे और द्विपद कुम्भ हैं वन (वृक्षे क्रोष्टे) कुत और वीरुओंके भिन्न लवा (अक्षिष्पवे मयः एतेभ्यः) वनर वनर करनेवाले वीरुओंके भिन्ने (क्षीराग्निं मा कर्षे) क्षीरीयो मय कड़ी । हे [पशुपते] पशुओंके पादक ! [ते मक्षिकास्ते वयांसि] तेही मक्षिकाओं और जीये (विभुसे मा बिन्दन्त) आनेके भिन्ने वन कहे सपत्नीको न मारत करें अथवा आप हमारे सपत्नीका इस तरह मार न करें ॥ २ ॥

हे (मधु) सबके कल्पाद्यों के । [ते कन्दाय प्राणायु] तेरे कन्दकरी प्राणके भिन्ने मयस्कार हो । [ते वाः रोपयः] तेरे जो सपत्नीमात्र हैं हे [अमीत्रं यज्] अमर करने । [सहस्राध्वार्यं ते वमः कुम्भः] सहस्र भेजवाये हुए देवके भिन्ने वमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥

(ते पूरस्ताव उचुराद ब्रह्म अचाराय नमः कुम्भः) तुमसे जागते ऊपरसे और नीचेसे मयस्कार करते हैं । [अमीत्रगाव् द्विषः वरि अम्यारिक्षाव ते वमः] वन और व वृक्षा और अम्यारिक्ष कोकपी तेरे रूपके भिन्ने मयस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

हे पशुपते ! हे मय । (ते मयाय वयः) तेरे मुझके भिन्ने मयस्कार है । (यानि ते चर्क्षुषि) जो तेही आने हैं, वनको मयस्कार है । तेरे (वृक्षे रुपाय सृष्ट्यै मयीचीनाय वमः) वृक्षाद्य वृक्ष और वृष्टके भिन्न मयस्कार है ॥ ५ ॥

(ते अक्षैर्म्यस्त उचुराय विह्वार्ये आस्थापि) तेरे अंगों, वनर आदि और मुझके भिन्ने मयस्कार है (ते रुद्राय मयाय वमः) तेरे सपत्नीके भिन्न और वमके भिन्ने मयस्कार है ॥ ६ ॥

अत्रा नीलशिरःशब्देन सहस्राक्षेण वाभिना । छ्रेणार्धकपातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥
स नो सर्वः परि वृणक्तु विश्वत आप इवादिः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽमि मास्तु नमो अस्तस्मै ॥ ८ ॥
चतुर्नमो अष्टकृत्तौ मवाय दक्ष कृत्तः पञ्चपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पञ्चो विमक्ता गावो अश्वः पुरुषा अजावयः ॥ ९ ॥
तव चतस्रः प्रदिश्वस्तव यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रविन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥ (५)
उरुः कोशो वसुधान्तस्तथाय यस्मिन्निमा विमा सुर्वनान्यन्तः ।
स नो मूढ पञ्चपते नमस्तं पुरः क्राष्टारो अमिमाः श्वानः पुरो यन्त्वश्वरुदो विक्रेम्यः ॥ ११ ॥
घञ्जिर्मापु हरित हिरण्यं सहस्रमि सुतवचं शिखण्डिनम् ।
ह्रस्वेषुंभरति देवदेविस्त्वस्यै नमो यतमस्यां विद्यावतः ॥ १२ ॥

अर्ध/नीलशिरःशब्देन वाभिना अत्रा) नील शिरःशब्देन सहस्राक्षेण अर्धकपातिना तेन मा समरामहि इत्यर्थः अर्धो-
वाये शब्देन विनाशक शब्दे (मा समरामहि) इमं कमी विरक्त य ११ ॥ ७ ॥
(स) मया विरक्तः यः परि वृणक्तु) वह कर्तव्यतां यव करिषे इमे हुरक्षित रवे । (आप हव अमि) क
केते अर्धो भेराय है देवाही (अत्रा मा परि वृणक्तु) वस्तुतेकरी इमे भेर रवे । (मा मा कानि मास्तं) इमे वद य भरे,
(अस्मै वतः अस्तु) हृष्टो वमस्कार हो ॥ ८ ॥
है पञ्चपते । (मवाय पञ्च पञ्चकृत्ता मवाः) कर्तव्य करिष्यामि देवको पार पार तथा जाठ वार वमस्कार हो । [है
दक्षकृत्त वमः] तेरे किये दसवार वमस्कार हो । इत्येवम् पञ्चवाः तव विमक्ताः) वे यं पञ्च तेरे किये रवे हैं, (गावाः) यों
(अश्वः) योयें, पुत्रवाः) पुत्र (अजावयः) गधरिण और भेड़ हैं ॥ ९ ॥
(तव चतस्रः ममिः) तेरी ये सारी विरक्त हैं (तव यौः तव पृथिवी) तेरा पु और पृथ्वी जोय है (तव इमे
वम इव अमरिदं) तेरा ही वह वडा ऐकली अमरिद है । (हव सर्वं अमरमन्वद् यव) तेराही वह सब ऐतमन्वद् है
(यत् प्राणत् पृथिवीमनु प्राणत्) जो पृथिवीपर यौव पारण करता है वह सब तेरा ही है ॥ १० ॥ (५)
(यस्मिन्निमा विमा सुतवचमि अमः) जिसमें ये सब सुतव हैं वह (वसुधान्तः कर्तं वम कोशः) वसुधामन्त्र
विवातत्वात्कम वह विरक्तनी वडा कोश (तव) तेराही है । है (पञ्चपते) पञ्चपाकः । (मा मा मूढ वे ममा) य
तु इमे मूढ है तेरे किये नमस्कार हो । (कोशारः अमिमाः श्वानः पुरः) विचार बीरव, कुते उव पुर हो ।
(अश्वरुदः विक्रेमः) हरे स्वरसे रोमेवाही बाजीको शोककर विमयेवामी किये भी पुर हो कर्तव्य है जोयके
प्रत्ये हमारे पास य अर्ध ॥ ११ ॥
है (शिखण्डि) मकरी पारण करिष्यामि । य [सहस्रमि सुतवचं हिरण्यं हरितं यतुः विद्युत्] ह्यर्थः
वद करिष्यामि शैवको वम करिष्यामि सुतवचं यतुका यतुय पारण करता है । (यत्तव हव देवदतिः कर्ति) यत्तव
वाय देवोवा वद विरक्त है वह (यतः यतमस्यां विधि) विध विधामे हो (यस्मै वतः) यधो वमस्कार हो ॥ १२ ॥

योऽमियातो निलयते स्वां रुद्र निधिर्कीर्यति । पश्चादनुप्रयुक्ष्ये च विद्वस्य पदनीरिव ॥१३॥

मन्त्ररुद्रो सयुजा संनिदानायुमायुगौ चरतो वीर्याय । ताम्भ्यां नमो यतुमस्यां विशीलतः ॥१४॥

नमस्तेस्त्रायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत धे नमः ॥१५॥

नमः साम नमः प्रवर्तनमो रात्र्या नमो दिवा । मन्त्राय च क्षुर्वाय चोमाभ्यामकर नमः ॥१६॥

सहस्राद्यमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्पन्तं बहुधा विपश्चितम् । मोषाराम जिह्वयमानम् ॥१७॥

इयावाचं कृष्णमसित मृणन्तं मीम रथं कृशिनः पादयन्तम् । पूर्वं प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥१८॥

वा नोऽमि सां मुस्य देवदेति मा नः क्रुचः पश्यते नमस्ते ।

अन्यत्रास्मद् दिव्यां छात्रां वि पूजु ॥ १९ ॥

मा नो हिंसीरविं नो भूतिं परिं णो वृकृष्टि मा कुचः । मा स्वया सपरामहि ॥२०॥ (६)

मा नो गोपु वृकृष्टि मा वृषो नो अजाविषु । अन्यत्रोत्र वि वर्तय पिपांरुणां प्रजां ब्रहि ॥२१॥

जर्व—दे वर ! (वाः अमियातोः निधयते) जो हमका होमपर छिप जाता है और (स्वां वि विधिर्कीर्यति) तुझे बलि करवा चाहता है (विद्वस्य पदनीः इव) वाजकके पदकेरके समान (च पश्चात् अनु प्रयुक्षे) उसके पीछे तू उसका बरका देता है ॥ १३ ॥

(मन्त्ररुद्रो सयुजौ संनिदावौ) हरपति करनेवाले और संदा करनेवाले देव पिचकर रहनेवाले कामी हैं । (जर्वी) जर्वी वीर्याय चरतः) ये दोनों ठेकसी पराक्रमके लिये निचरते हैं । (इया वतमस्यां विजि) ये बहावे विज दिशमें हों वहां (ताम्भ्यां नमः) हम दोनोंको नमस्कार दो ॥ १४ ॥

हे रुद्र ! जावते परायते तिष्ठत आसीनाय] जलेशके जानेवाले, ठहरनेवाले और बैठनेवाले [ते नमः] तुझे नमस्कार दो ॥ १५ ॥

[वार्य प्रातः रात्र्याः दिवा नमः] शामके संधी रात्रिके समय और दिवके समय नमस्कार हैं । [मन्त्राय वार्यं च ताम्भ्यां नमः अकर] मन्त्र और वार्य इन दोनोंको नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

[सहस्राद्यं विपश्चितं बहुधा अत्यमर्षं चर्ष] सहस्रनेत्र शाली बहुत प्रकारसे कष्ट देनेवाले रुद्रको [पुरस्ताद् अति पश्यं] आगे देखता हूँ । [इयमात्र जिह्वाया मा कषाराम] उग्र बहिमात्र्यो हृष अयमी जिह्वासे चर्षित न करें ॥ १७ ॥

[इयावाचं कृष्णं अशितं मृणन्तं] अशयुक्त आकर्षक वाज्यमहीत लुब्धकी [मीम रथं कृशिनः रथं वान्धवन्तं] विरथों रथोंके बंधे मारो रथको भी पछुता करनेवाले [पूर्वं प्रतीमः] पहिले प्रती करते हैं और [अस्त्वस्मै नमः अस्तु] इसको नमस्कार दो ॥ १८ ॥

हे पशुपते ! [मन्त्रं देवदेति वाः मा अमियातः] आज्ञावृचकर कैला हुआ हैवांध घल हमारे पास न आये । [वाः मा कुचः, ते नमः] हमपर भोजन हा धेरे लिये नमस्कार हो । [अन्यत्र अन्यत्र दिव्यां छात्रां विपूजु] हमसे पूज दिव्य छात्राको कैर ॥ १९ ॥

[वाः मा हिंसी] हमारी हिंसा न कर, [वाः अवि भूति] हमें उपदेष्ट न कर, [वाः वरिष्टमिव] हमारी रक्षा कर मा कुचः] बंधन न कर [स्वया मा सपरामहि] धेरे स्वयं हम निरोधन करें ॥ २० ॥ (६)

हे [वमः] वपरी ! [मा गोपु वृकृष्टि मा वृषो नो अजाविषु] हमारी भीषं वपुष पेश वधरीवाके विषयमें क्रोध न कर । (अन्यत्र विवर्तय) वृषो स्थानपर नमको लेना । [पिपांरुणां प्रजां ब्रहि] हिंसीकी प्रजाका नाश कर ॥२१॥

यस्य तुक्मा कासिका हेतिरेकमर्थस्येन वृषभः कन्दु एति ।

अमुिपूरे निर्णयेते नमो अस्त्वस्मै

11 22 11

पोऽन्तरिक्षे तिष्ठति विद्यमानोऽयं ज्ञानः प्रपुष्णन् देवपीयूषम् । तस्मै नमो ब्रह्मभिः शङ्कराचार्यैः ॥

सुख्यमारण्याः पृथ्वीं मृगा वनं हिता वृक्षाः सुपर्णाः स्रकुना वयसि ।

तव यच्च पशुपते अस्मिन्तस्तुभ्यं धरन्ति विष्णो आपो नृपे

11 25 11

श्रिःसुमारां अक्षराः पुरीक्या सुषा मत्स्या रक्षसा येभ्यो अस्यासि ।

न त्वं दूरं न परिगृह्णासि च मम सख्यः सर्वान् परि-

पश्यति भूतिं पूर्वेस्माद् स्पृष्ट्वरस्मिन्स्थमुद्रे

11 24 11

मा नो रुद्र त्वमना मा विषेण मा नः सं सा दिव्येनाग्निना ।

अन्यत्रास्मद् विप्रर्ष पाठयेताम्

॥ २६ ॥

मुचो दिवो मव ईकि पृथिव्या मज्जा का पप्र कुर्वन्तरिक्षम् ।

तस्मै नमो यत्तु मर्यादा विश्वीयः ।

॥ २० ॥

अर्थ—[यस समय काशिका है।] विशेष हथियार कदम्बर और लौंछी हैं [शूलजः कदम्बः शूलं इव एवं पक्षिः] कदम्बर कोड़े के शिखिवाले के तरह के कदम्ब मिश्रण है एक पुष्कर विषम हथियार बाण है [कश्चि दूर निर्धनते] जो पक्षि के मिथन करता है, [कस्ते यमा कस्तु] इसके शिखे समस्कार हैं ॥ ११ ॥

[बा. जलपत्रिके विहमिताः सिद्धयति] ओ जलपत्रिके रसिर रहता है और [अथवाचनः वैश्वमीकृतं प्रत्युत्तम्] मंत्र व कर्म में से वैश्वी के द्वारा का नाश करता है । (तस्मै इत्यभिः जगदतीनाम्) उसको वह अभिषेके इत्यादि ब्रह्मकार है ॥ ११ ॥

[illegible][illegible]

हे रघु ! (लक्ष्मणा का मा संज्ञा) । जबसे हमें वीरा न हो, (विष्णु मा) निषकावा न हो [विष्णवे अग्निवा मा]
 निष्क अग्निवे कष्ट न हो । [अगमा२ अगमा३ कृता विपुलं वाचन] हमसे मित्र बनने स्वामना इत निजकी को मित्र ॥ २६ ॥

[illegible]

महं राजन् यजमानाय मृदं यमूनां हि पञ्चपतिर्धर्म्यः ।

यः भद्रपाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृदं

॥ २८ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्मक मा नो महान्तमुत मा नो यक्षमुत ।

मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वः रुद्र मा रीरियो नः

॥ २९ ॥

रुद्रस्यैलबहारेभ्योऽसह्यक्तगिरेभ्यः । इदं महास्येभ्यः शम्भ्यो अकरं नमः

॥ ३० ॥

नमस्ते शोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः । नमो नमस्कृताभ्यो नमः संहृज्जतीभ्यः ॥

नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अमर्यं च नः

॥ ३१ ॥ (७)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

जर्म-दे [राजन् यज] यजमान के देवता । [यजमानाय मृदं] यजमान को हुकी कर, [यमूनां पञ्चपतिः हि धर्म्यः] य
ममूनां पति हो । [यः भद्रपाति] जो भद्र रक्ता है, [देवाः पति इति] देवता हैं देव मानता है, [नम
नमस्ते चतुष्पदे मृदं] चतुष्पदे द्विपदे और चतुष्पदे को हुकी कर ॥ २८ ॥

[मा महान्तं मा हिंसीः] हमारे बड़ों की हिंसा न कर, [मा अर्मक मा] हमारे शक्तियों की हिंसा न कर [मा
यक्षमुत मा] हमारे यमर्य हुक्षर्य हिंसा न कर, [मा यक्षमुत मा] हमारे यक्षरक्ष यक्षेयकों की हिंसा न कर । [न पितरं
मातरं च मा हिंसीः] हमारे पिता माता की हिंसा न कर, है कर [मा स्वां तन्वं मा रीरियोः] हमारे सरीरों को हुकी न
कर ॥ २९ ॥

[रुद्रस्य ऐलबहारेभ्यः असह्यक्तगिरेभ्यः] रुद्र के अलग अलग करनेवाले अलग अलग करनेवाले [महास्येभ्यः शम्भ्यः]
बड़े सुखर्य हुक्षर्य [इदं नमः अकरं] यह नमस्कार करता है ॥ ३० ॥

है देव ! [ते शोषिणीभ्यः केशिनीभ्यः] तेरी बड़ा क्षमशील करनेवाले केव रक्षेवाली, [नमस्कृताभ्यः संहृज्जतीभ्यः]
नमस्कृतों के कृत्य और कृत्य अलग अलग करनेवाली [ते सेनाभ्यः अमर्यः] तेरी सेनाओं के किने नमस्कार हो [न स्वस्ति
अमर्यं च] हमारा कल्याण हो और हमारे किने निर्धनता हो ॥ ३१ ॥ ॥ ७ ॥

प्रथम अनुवाक समाप्त ॥ १ ॥

भव और शर्वके सूक्तका आशय ।

वह एक 'भव और शर्व' देवताके वर्णनपर है। कोई वहाँ वह व समझ कि भव और शर्व ने देवताएं परस्पर मिश्र हैं। 'मवाचवी' ऐसा द्विवचनी प्रयोग है तथापि एकही देवताके ने हो शुभ हैं। सर्वे भिन्नमें व्यापनेवाही एवही देवता है वह सूक्तिमें कल्पित करती है इसलिये कछका नाम भव है और वह कछका संहार करती है इसलिये कछी देवताका नाम 'शर्व' है।

शुक्लमें भी भव और शर्व ने हो नाम एवही वह देवके हैं वही बात देवके इस सूक्तमें है और अन्त्य भी वहाँ वहाँ भव शर्व अविनाश जाने हैं वहाँ ऐशाही अन्न समझना योग्य है। इस सूक्तमें वह भव शर्व पशुपति आदि कछय जाने हैं जो कछ एकही परमेश्वरके नाम हैं।

प्रथम मंत्रमें इस देवताके दो गुणोंका स्मरण कराया है। वहाँ सूचना मिलती है कि यदि दो गुणोंके कारण एकही देवता के दो देव माने जा सकते हैं तो अनेक गुणोंके कारण एकही ईश्वरके अनेक देवताएं मानना समझ है। वैदिक मंत्रमें अनेक देवताओंकी कल्पना इस प्रकार एवही परमात्मपर अभिविधित है। एक ईश्वरके अनेक गुणोंकी अनेक देवताएं मानी मनी हैं।

ईश्वरके मारक गुणको शर्व करके वहाँ कहा है वह देवता अथवा मारक विषय अवका विनाशक कार्य जिन प्राणियोंके करती है कछकी विपत्ती इस सूक्तके अनेक मंत्रोंमें की है —
कृते नृदिव विवार, मन्त्रिकथं कीरे अन्न कन्न वसुध्व नाम विपुल भूमि प्वर क्षत्र ने मारणशायक हैं। मन्त्रिकोंकी दृष्टिके मारक प्राणियोंका है वह मार पाठक निषेध रीतिसे स्मरण रखें। मन्त्रिकोंके मारक अनेक रोग फैलते हैं और प्राणिजोंका संहार होता है। अतः रोगोंके वकनेके लिये पाँती और साधन-ता करनी चाहिये विपत्ति मन्त्रिकों व रोगों और वसुध्व रोगोंके वकने। इसी तरह अन्त्याय मारणशायकके विषयमें वाक्य पादिने। [मंत्र १ देखी]

अग्रे मंत्र ७ तक इसके अंगप्रकारोंको समझकर कहा है। वह एक पशु देवताका उपासना प्रकार है। अतमें मंत्रमें इसके किरीट व हो ऐसी इच्छा प्रकट की है। वही नाम आयेके कई

मंत्रोंमें है (मा समरायहि) वही सध्य आगेके कई मंत्रोंमें बारबार आयेने हैं।

अथय मंत्रमें अनेकवार ऐसे किये समझ किया है। प्रथम मंत्रमें कहा है कि इस ईश्वरताके आजीमही संपूर्ण भिन्न है। इसी कथनसे विधिमिवात्मक देवकी मारकभावके भिन्नसे वह नाम से वहाँ कहा है ऐसा स्पष्ट हो जाता है। क्योंकि सब विषय निर्वाता देव एकही है।

चौदहवें मंत्रमें भव और शर्व ने हो नाम फिर आये हैं। वहाँ द्विवचन देवकेसे ने हो देव परस्पर मिश्र हैं। ऐसी कई बोझी संका हो सकती है परन्तु ने हो देव शुद्धतः भिन्न एक प्रकारतः एक है इच्छा स्वार्थपरम इसके पूर्व किछ का उक्त है। आये १९ में मंत्रतक अनेकके समझी किया है। अने तीस मंत्रोंमें वस्तु पूरा करकेही प्रार्थना है।

छैसवें मंत्रमें अनेक इस अन्तरिक्षमें व्यापता है ऐसा वह कर देवविरोधियोंका नाश करता है वह भी कहा है। वह सर्वव्यापक देवका ही वर्णन मिलनेह है। अनेके दो मंत्रोंमें सब प्राणी कछी एक देवके आचारसे रहते हैं वह देव अपने समकक्षीके देवता है और विचारक मनुष्यका नाश करता है इसलिये वर्णन देवकेदेवोय है।

छत्ताईसवें मंत्रमें वह देव संपूर्ण विचारक वायुका ईश है वह स्पष्ट शब्दोंसे कहा है। वह मंत्र कछे ही संपूर्ण विचारक एक पशु है इसमें अनेक ही कछी रह सकती। अनेके मंत्रमें वह देव (भव) विषयका राजा है ऐसा कहा है। इसके अतिरिक्त (देवाः लभित) वैश्वदेविका इस वायुमें कार्य कर रही हैं ऐसा भी (वा वायवसि) अन्तरिक्ष समझा है वही कछी होता है वह कछय निषेध महावक्य है। इस वायु का पशु एक है और कछकी अनेक कछियाँ इस विषयमें कार्य कर रही हैं। यदि वह कछका पाठकीको ठीक तरह हो आकषी, तो वायुके दिव्य वन जानेमें कार्य उचित ही नहीं है।

अनेके मंत्रोंमें शर्व प्राणपरम नियन्ताकी प्रार्थना है। इस प्रकार इस सूक्तका आशय है।

विराड् अन ।

[३]

(श्रापिः-- अयथा । देवता--आदनः)

(१) तस्योद्वनस्य वृक्षानिः शिरो मल्ल मल्लम्	॥ १ ॥
घाग्रापृथिवी भ्रात्रे मूर्ध्ना च त्रिमूर्तिनी सप्तशृङ्गः प्राणापानाः	॥ २ ॥
चक्षुर्मूलं काम उद्वनम्	॥ ३ ॥
दिविः सूर्यमदिति गर्वम् ही पातोऽर्षाग्निक्	॥ ४ ॥
अस्यः कणा गार्गस्तण्डला मृदुमास्तुपाः	॥ ५ ॥
कम्पे कर्णकोला घ्रातु भ्रम्	॥ ६ ॥
पाममर्षोऽथ मां मानि लाहितमस्य लहितम्	॥ ७ ॥
प्रपु मस्तु हरितं बर्णं पुष्करमस्य गन्धः	॥ ८ ॥
उतः पत्र स्फवारमांवीप अन्तर्गणे	॥ ९ ॥
आत्रामि ज्वरपो गुदा वस्त्राः	॥ १० ॥

[illegible]

प्राणकी विद्या ।

(y)

(ऋषिः-- मार्गशी वैदर्भिः । देवता--प्राणः)

प्राणायामं नमो यस्य सर्वमिदं ब्रह्म । यो मृतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥
नमस्ते प्राण कन्दोय नमस्त स्तनयिस्त्वहे । नमस्त प्राण विष्णवे नमस्ते प्राणु र्वीरे ॥ २ ॥
पद् प्राप्य स्तनयितुनांमिकन्दुत्वार्षधीः । प्र वीषन्ते मयीन् दपुनेऽप्यो बुद्धीर्नि जायन्ते ॥ ३ ॥
यस्माच्च कृतावागतऽमिकन्दुत्वार्षधीः । सर्वं तुहा प्र मोदन् यद् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥
युहा प्राणोऽम्पर्वदीर्घं वर्षेनं पृथिवीं महीम् । पृथ्वस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो मविष्यति ॥ ५ ॥
क्षमिष्वष्टा ओषधयः प्राणेन समवाहिरन् । आयुर्न नः प्रातीतरः सर्वो न सुगदीरक ॥ ६ ॥
नमस्ते अस्तवाग्ने नमोऽस्तु पगयते । नमस्त प्राण तिष्ठन् आसीनायोऽहं ते नमः ॥ ७ ॥

[illegible]

हे भाव ! (कर्त्तृ स्वभावविशेषना भक्तकी कद्रुति) जब तू मेरोके द्वारा जीवितिकेके सम्मुख बड़ी मनसा करत है । तू जीवितिके (प्रतीकके) लक्ष्मी होती है (वर्मान् एवमे) परमेश्वर करती है ओर (जबी कदा विजायते) बहुत प्रसारी विस्तारकी पल होती है ॥ ३ ॥

हे शत्रु ! (कर्ण आगये) कर्ण ! आते ही तब तु (बाणवीर ! अविनाशिक !) भीषेणसि बंधुवर्धन !
कैसे मरता है ! (कर्ण मरने कि आशुषां अविनाशिक !) तब तब मरतु आर्जुन होता है, जो कुछ इस दुष्टी
परे ! ॥ ५ ॥

(बड़ा प्रश्न) जब प्रश्न (पक्षों में) प्रेषित किया जाता है, तब ही प्रश्नकर्ता को (प्रश्न) प्रसीद्ध है। तब प्रश्न प्रेषित होता है [यहाँ समझते हैं कि] जिसका अर्थ (यहाँ के प्रश्न) प्रसीद्ध होता है।

(मज्झिमुल्लास जीवकपट्टः) 'यस्मिन् वरं वृत्तिं होयते तस्मात्तं भवति' (आत्मनः सम्प्रसादात्) स्वयमेव आत्मा प्राणायामं
 ईषिहे प्राण ! (यः आत्मा ईषीयते) एते ह्यस्मात् आत्मा ब्रह्म ही हे और हय स्वयमेव (ह्यस्मात्) स्वयमेव (आत्मा)
 किं हे ॥ ५ ॥

(काव्य से क्या जानु) जानमय का है कावे प्रथमे किं प्रथमकार ते (परावते यमः जानु) यम कावेवाले कावे किं प्रथमकार है। ते प्रायः (किंते) दिप्र हनेवाले और (जानोवाय ते यमः) केनकावे प्रथमे किं प्रथमकार ते ॥ ७ ॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानुते ।

पुराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय त नमः सर्वस्मै त इह नमः ॥८॥

या ते प्राण प्रिया तनूषो ते प्राण प्रेयसी । अथो यत् मैपञ्च तन् तस्य नो वेदि जीवसे ॥९॥

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् । प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यत् प्राणसि यच्च न ॥१०॥

प्राणो पुन्युः प्राणस्तु कमा प्राण देवा उपासते । प्राणो ह सम्यग्वादिर्नमो भूषणे लोक आ देवत् ॥११॥

प्राणो विराट् प्राणो देही प्राण सर्व उपासत । प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहु प्रजापतिम् ॥१२॥

प्राणापानौ श्रीह्रियवाचनद्वयान् प्राण उच्यते । यत् ह प्राण आर्हितोऽपाना श्रीहिरण्यते ॥१३॥

अपाननी प्राणानि पुरुषा गर्भे अन्तरा । यदा त्व प्राणं जिन्वस्वपु स जायते पुनः ॥१४॥

प्राणमाहुर्मातुरिहान् जातो ह प्राण उच्यते । प्राणे ह भूत सर्व्य च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

आपर्वणीरात्रिर्नीर्दिर्वर्तिनुष्पजा उत । आपर्वयः प्र जायन्ते यदा त्व प्राणं जिन्वसि ॥१६॥

नमः- हे प्राण ! (प्राणत) जीवन्मया कार्य का वयसि तुझे नमस्कार है (अपानते) अपानका कार्य करनेवाले तू जिसे नमस्कार है । (पुराचीनाय) आगे पुराणके नाम (प्रतीचीनाय) पीछे इदमेवामी प्राणके जिसे नमस्कार है (सर्वस्मै त इह नमः) सब कार्य करनेवाले तू जिसे बहु जेरा नमस्कार है ॥ ८ ॥

हे प्राण ! या ते प्रिया तनूः] को मेरा । प्राणमम] प्रिय करीर है, [या ते प्रेयसी] और जो तेरे [प्रजापतिवत्] प्रिय भाव है, तथा [अथो यत् मैपञ्च तन् तस्य नो वेदि] अथवा हे वह ! [यत् ह प्राण आर्हितोऽपाना श्रीहिरण्यते] सर्वार्थ करने जिसे हम । ८ ॥ ९ ॥

[पिता पुन्युः इव] जिस प्रकार प्रिय पुत्रके साथ पिता रहता है उस प्रकार [प्राणः प्रजा अनुवस्ते] सब प्रजाको पिता सम रहता है [यदा त्व प्राणं जिन्वस्वपु] जो प्राण चारण करते हैं और [यदा त्व प्राणं] जो नहीं चारण करते, [प्राणः सर्वस्य इवरा] सब सबका प्राणकी ईश्वर है ॥ १० ॥

[प्राणः पुन्युः] प्राण ही पुन्यु है और [प्राणः त्वमा] प्राण ही जीवन्मया जगति है । इसलिये [प्राणं देवा उपासते] सब देव प्राणकी उपासना करते हैं । [प्राणः ह सूर्यश्चन्द्रमा] क्योंकि सूर्यचन्द्रमाकी प्राणही [अथम आह आनरत्] उत्तम की कहे बहुकाल है ॥ ११ ॥

प्राण [वि रन्तु] विशेष तेजस्वी है, और प्राण ही [देही] सबका भरक है इसलिये [प्राणं सर्वे उपासते] प्राण-की ही सब उपासना करते हैं । सूर्य चन्द्रमा और प्रजापति भी (प्राण आहुः) प्राणही हैं ॥ १२ ॥

(प्राणपानौ श्रीह्रियवौ) प्राण और अपान ही प्राण और अपान की हैं । (अपानवत्) जैसा ही (प्राणः उच्यते) पुन्य प्राण है । (यत् ह प्राण आहुः) जो मैं प्राण कहा है और (श्रीह्रिः अपानः उच्यते) प्राण अपानको कहते हैं ॥ १३ ॥

(पुरातः गर्भे अन्तरा) अर्ध गर्भके अन्दर (प्राणसि अन्तरा) प्राण और अपानके अपापर करता है । हे प्राण ! अबतु (जिन्वसि) प्रेरणा करता है सब वह (अथ सः पुन जायत) जीव पुनः उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

(प्राण मातृकाम आहुः) प्राणका मातृका करते हैं और (यदा ह प्राणः उपासत) बहुधा मान्य प्राण है । (पुनं नम च ह प्राणं) भूत जन्मन और सब कुछ वर्तमान वर्तमान का है वह सब प्रत्यक्ष (यत् प्रोक्तं) वा वदता है ॥ १५ ॥

हे प्राण ! (यदा) अबतक तू [जिन्वसि] प्रेरणा करता है सबक ही अपार्वणी आनिरु देवी और अनुवस्वपु [अपानवः] अपानवित [प्र जायते] उत्पन्न होती है ॥ १६ ॥

यो अस्व सुर्व्रन्मन इति सर्वस्य चेहताः । अर्तन्त्रो मर्दना घीराः प्राणो माऽनुं विष्टु ॥ २४ ॥

ऊर्ध्वः सुप्तं आगा ननु त्रिष्व नि र्पथे । न सुप्तस्य सुप्तेष्वनुं द्युपात्र कम्पन ॥ २५ ॥

प्राण मा मन् पूर्वावृत्ता न मन्दया मन्विष्यसि ।

अप्रां गर्भमिव जीवमे प्राणं धूममि त्वा मायै

॥२६॥ (१२)

॥ इति द्वितीयोऽनुशाक्तः ॥ २॥

अर्थ-(१) अस्व अद्वयत्वः) अस्व अस्व करकेके और (चन्द्राः सर्वस्य) इत्यस्य करकेके सबका वा (ईष्ट) २४ : है, वह प्रेक्षक अस्व (अन्तरः) अन्तरादेन होकर (अन्तरा घीराः) अन्तरादेनके पुत्र हीना हुआ अस्व (मा) के अस्व (अनुपपन्न) मदा रहे ॥ २४ ॥

[सुप्तेषु] सब सो जानेवाली सब प्राण [ऊर्ध्वः] ऊपर रहकर [प्राणाः] अस्वना ह [अनु निर्वह विष्टुते] चली । का गिराया नहीं । [सुप्तेषु अस्व सुप्तं] सबके ली जानेवाला इत्यस्य आत्मा [अस्वस्य न अनुपपन्नः] अद्विष्टे मा सुप्त मही रहे ॥ २५ ॥

हे अस्व ! [अस्व मा वर्तमानः] मेरेने पुत्रपुत्र न हीने । [अस्व अस्वः अस्वस्य] मेरेने पुत्र न हीने । [जीवमे अस्व मन्विष्य] अस्व के मन्विष्य अस्व के अस्व । [अस्वमे अस्व मन्विष्य] अस्व के मन्विष्य अस्व के अस्व । [अस्वमे अस्व मन्विष्य] अस्व के मन्विष्य अस्व के अस्व । ॥ २६ ॥

अनुपपन्न अस्वः
द्वितीय अनुपपन्न अस्वः ॥ २ ॥



१५ में संज्ञा 'मातरि-या' शब्दका अर्थ माता के अंदर रहनेवाला, माताके परममें रहनेवाला है। माताके परममें प्राणरूप व्यक्तत्वमें जाग रहा है इसलिये जागृत नाम 'मातरिया' है। परममें इसकी स्थिति प्राणरूप होनेसे इसका नाम ही प्राण होता है। इस कारण प्राण और मातरिया शब्द समान अर्थ वर्तते हैं।

‘मातरिषा आ दूरात जयं वायुः’। वायुः वात आदि, कण्डू भी प्राक्वायक ही हैं। क्योंकि वायुपुत्र प्राक् ही इस आदर में हैं और प्राक्वायक वर रक्ष हैं। प्राक्वायक वरवेले दूरा कण्डू कण्डू है कि सबसे आकारले भूत मयिष्य और वरमायक का कबरी कण्डू रहता है। प्राक्वे आकारले ही सब रहता है। प्राक्वे किन्ना कण्डूमें विद्योकी भी स्थिति कहीं हो सक्ती। पूर्व-कण्डू वह कण्डू और पुनर्जन्म के सब प्राक्वे कण्डू होते हैं। कर्मात् भूत मयिष्य और वरमायक कण्डूमें भी कर्मके सङ्घार प्राक्वे स्थित होते हैं वरवेले कारण नवालीय रीतिसे पुनर्-जन्मादि होते हैं।

औपनिषदों का अर्थ ही होता है कि जब तक प्रकृति बलि शरीरों है। जब प्रकृति का बलि शरीरों का अन्त हो जायेगा, तब किसी औपनिषद का ही अर्थ ही होगा। इसी अर्थ में मैं प्रकृति औपनिषद है कि जो औपनिषद है, ऐसा कहा है कि जब तक प्रकृति का अन्त हो जायेगा, तब किसी औपनिषद का ही अर्थ ही होगा।

इस मंत्र में (१) आर्चयैषीः, (२) मांमिरसीः, (३)
 ऐषीः और (४) मनुष्यमाः के आर नाम आर प्रकार की
 विधिवानुष्ठानों बोध है। इसमें विचार निम्न प्रकार है—(१)
 मनुष्यमाः बोधवत्ता मनुष्यों की वहाँ ने बचिई, अर्थात्
 ज्ञानः, पूर्व, अन्तर्ह ज्ञान, ज्ञान आदि प्रकार की ऐसी वस्तुओं
 और वस्तुओं वकने इतो है जवना समविषय इतमें होता है।
 ये समवी वीर्यबन्धों प्रकार हैं। इन्में अष्ट ऐसी विधि है।
 (२) ऐषीः बोधवत्ता-आर, ऐष मनु आदि ऐवोंके द्वारा जो
 विधिः की जाती है वह ऐषी-विधिवा है। मन्त्रविधिः
 और विधिः, वागुविधिः विमुक्तिधत्ता आदि सब ऐसी वि
 धिवकने प्रकार है पूर्व मंत्र वागु आदि ऐवतामोके वाक्यान्तरों
 मध्ये वह विधिः होती है आर आर्चयैकारण गुण प्राप्त होता
 है—इन्में इसकी वीर्यता बड़ी है। इन्में अतिरिक्त ऐववत्
 ज्ञानः इत आदि द्वारा जो विधिः होती है जवना की

समावेश इतमें होता है। देवब्रह्मण देवताओं की प्रशंसा करते, इन देवताओंके का जो अन्न अपने स्त्रीमें है उसका आरोप्य दीपादन करना कोई अन्त्याभाविक प्रश्न नहीं है। वह बात पुष्टपुष्ट और तर्कमय ही है। (३) जातिरही: औप-
पद्य ८ अर्थों अथवा और हीरामें एक प्रकारका रस रहता है जिसके कारण हमारे अन्तर्मायिकी स्त्रीरस स्थिति होता है। उस रसके द्वारा जो चिपिस्ता होती है वह आति-रस-
चिपिस्ता कहलाती है। मायाविक इष्टाण्डिकी प्रक प्रेरणसे इस रसका अन्तर्मायिकी संवर करनेमें रोगीकी विवृति होती है।
मायाविक चिपिस्तम्भका इसमें विशेष संबंध है। इस अन्त-
रमायिकी संवाचित करके स्त्रीरोगनाके मायकी सुचना देना, तथा
रोगांकी निवृत्ति अथवा कठिनी प्रेरण करनेके लिये संवेचित
करना, इस विनिमेष मुख्य है। किन्तु आरोपके लिये बाह्य रस
योंकी विवेकता इसमें होनेसे इसका अभाविक-चिपिस्ता अर्थात्
अपने विक अर्थके रसद्वारा हीनवस्ती चिपिस्ता करते हैं।
(४) आचरणीय: औपपद्य ८ अ-वर्षा नाम है बोनीका।
मनमें विविध प्रतिरोधोंके विरोध करनेवाला चिपिस्तम्भोंके अन्त-
र्मायिक रसनेवाला बोनी अर्थात् कष्टमत्ता है। इस रसका अर्थ
(अ-वर्षा) निजान्तर, स्थिर स्थिर यतिहीन ऐसा है। स्थित-
प्रक स्थिरबुद्धि, स्थिरमति आदि अर्थ इसका नाम गठते हैं।
बोनी कीम मन्त्रप्रयोगसे जो चिपिस्ता करते हैं उसका नाम
आचरणीय-चिपिस्ता होता है। इसका प्रमत्त परीक्षामयिकी,
मन्त्रकथित और आत्मविद्यामयिकी मन्त्रस्थिति होती है। वह आच-
रणीय-चिपिस्ता पक्षसे जो है वहीच इसमें जो अर्थ होता है,
वह अन्तर्मायिकी स्थिति होता है इत्यर्थमें अन्तर्मायिकी अन्तर्मायिकी
अपवाद इसकी अपेक्षा है। इसमें कोई संदेह ही नहीं है। ये सब
चिपिस्तम्भों प्रकार उपपन्न अर्थ करते हैं कि अन्तर्मायिकी प्रक
स्त्रीरस रहना चाहता है। अब प्रायः सब बातें हैं, सब कोई
चिपिस्ता कष्टमयक नहीं ही समझें। इस प्रकार मन्त्रक यद्यपि
विषय है।

प्राणकी पुष्टि ।

जो मनुष्य प्रणवीं यंत्रिका वर्गमें आता है, उसके लक्ष्यको सिद्धांतसे जानता है। प्रत्येक वस्तुको सिद्धांतसे जानता है। प्रत्येक वस्तु प्रत्येक वस्तुको सिद्धांतसे जानता है। और जिस मनुष्यमें प्रत्येक वस्तु रीतिसे प्रतिष्ठित और नियंत्रित रहता है, उसका ही लक्ष्य लक्ष्य करते हैं वस्तुकी स्थिति

[illegible][illegible][illegible]

कम जाता है जबकी हल ' के साथ ' की मिलानेसे 'बोम'
कम जाता है ।

४-४ ४-४

ਭੋ-੧ ਮੁ-੪੨ (ਆ)

ਸੀਤੀ ਸੀ ਸੀ

पाठक वहाँ सेवों प्रदान के कर दक्ष मन्त्री हैं। अंगरेजों
 द्वारा जो वे बुर रहकर मूल वैदिक कल्पनाओं की पाठक के
 से इससे बड़ा लाभ ही मंतीत हुआ। जो 'सर्व मन्त्री
 पाठक के और 'हैं' शब्द प्राप्त पाठक है। अन्त्य
 प्राप्त के साथ ही कर का अर्थ है। अन्त्य प्रदाता पाठक और
 प्रदाता पाठक हैं, इस वैदिक रूप में अन्त्य का अर्थ
 से बड़ा लाभ ही मन्त्री किया है। वह ही मन्त्री से
 वर में कीता करता है। वहाँ प्राप्त भी हृदय की अंतःका मन्त्री
 मन्त्री मन्त्री में जिज्ञा कर रहा है। हृदय मन्त्री जीव मन्त्री
 मन्त्री मन्त्री है अन्त्य मन्त्री मन्त्री और मन्त्री मन्त्री
 हैं हृदय मन्त्री मन्त्री मन्त्री मन्त्री मन्त्री मन्त्री मन्त्री मन्त्री

ब्रह्म, ब्रह्मदेव	क्यात्मा जीवित्मा, ब्रह्म
हंस-बाह्व	धाम-बाह्व
काम आत्म	हृदय कथन
मानस ब्रह्म	कथाकरण (हृदय)
मैत्रेय ब्रह्म देव	मैत्रेय आत्मा

वीरमे ईशका वीरमे अनेक संश्रुति व्यासना है कछुअ न
 व्यासना हउ अकार देखना बखित है। वीरमे ' जनी अई (पृ
 ५ ११) कहा है। अनु अर्थात् पात्र कछि अंतर रहे
 पात्र में अत्रमा हूँ वह पात्र वच संश्रुत है। वही अत्र वच
 स्वावर्मे है। पात्रके साथ आत्मपात्र अंतरभाव है तब मात्र ईश
 है। यह (स्वमिते) हृदयके आत्म श्रोत्रमें किका चरत में
 ध्यान मेनके समय यह पात्र तुल श्रोत्रमें नीला लयत है और
 बलुपात्र मेरेके लयन कार कछता है। यही अनुसंगनक हीन
 है कि जब बलुपात्रके लयन मात्र वाहर आता है तब प्राणि
 मरता क्यों कहा है पुन बलुपात्रक नेक पात्रको पुन वाहर नि
 कालनेवर भी अनुसंग मरता वही। इच्छा चारन इन मीने
 बलमा है। शिव मन्त्र ईन वही एक पात्र वनी है ही रकन
 पुन ई पात्र कार कछता है वनी वाहर प्राण कार कछे कल
 अत्रमा एक पात्र हृदये रज्जुअने दृष्टाने रहता है नर हृदये
 पात्रमे ही वाहर कछता है। वही वरत पात्रमे शिवाय वही।

तत्पर्य प्रायः अपनी एक कठिनी करीबें स्थिर रहता हुआ कुछ कठिने बाहर बाहर फर्क करता है। इसकिये मनुष्य मरता नहीं। यदि वह अपने दूसरे फेंकने की बाहर निकलने को जाने, कम दिन रात प्रकाश को बना करि कुछ भी नहीं होता जबतक कोई प्राणी कठिनी नहीं रह' धकेला। जीवनके प्रत्यक्ष ही प्रकाश जान होता है। इस प्रकाश वह प्राणको संवेक है। प्रत्येक मनुष्यके प्रत्येक विचार केके इस 'संवेक' का जान ठीक प्रकारसे प्राप्त करना चाहिए। ईश्वर का प्रकाश प्राण उपाधनामा प्रकार की इस संवेके स्पष्ट होता है। प्राणके प्राण 'स' केरका भवन और उपस्थित प्राण 'ह' केरका भवन करके प्राण उपस्थित होती है। इससे विचरी एकप्रता ही प्राणी प्राप्त होती है। वही 'सो' का-रका भवन का प्राणके प्राण और 'ह' का भवन उपस्थितके प्राण कोवेसे ईश्वर वही भवन बन जाता है। वह प्राण उपाध-नामा प्राण है तात्पर्यकिये कोवेसे इतर विचार और विचार प्रकाश ही है प्रत्येक मनुष्य के प्राण केकर प्राणके दूर रहना ही हमकी विचार है। प्राण इतरका और प्राण केविने—

इस कर्ममें जाठ एक है जिसमें प्राण जाता है और निरुपद्रव कार्य-कारण है वह जाठ १२१ में संज्ञा है। मृत्पात्र, एवादिभूत मन्त्रिभूत सर्व कर्मप्रसूति विष्णुवि आका और एकाग्र ने जाठ एक है कर्मका प्रुप्ति केकर िरके कर्मके प्राण एक जाठ एवादि में के जाठ एक है। पीठके मेकरीके इन्धने विरति है। इस प्रदेक एकमें प्राण जाता है और अपने अपने निगन कर्म करता है। जो लक्षण प्राणप्राप्तक जात्रात करते हैं कर्मके अपना प्राण इस एकमें बहूका है इस वास्तव अनुभव होता है और वहांकी विरतिध भी पाया गया है। कर्मों मन्त्रिधमें एकाग्र कर्मका प्राण है। वही मन्त्रिधका प्राण और सुख प्राप्त है। प्राणका एक वह इच्छा है। इस प्राण एक वहके प्राण जाठ एकमें कर्मका प्राणिक द्वारा अपने भी पीठ के अपनेप्राण वह प्राणक है। जाठ कर्मप्राप्त तथा प्राण अत्राण द्वारा प्राणप्राप्तकी जाये और पीठ के प्रति होती है। जाठकी के विरति है कि वे इन जाठकी प्राणों और अनुभव कर्मका प्राण की। प्राणका एक प्राण शरीरकी जाठकी के प्राण सर्वव दक्षता है और दूसरा प्राण प्राणप्राण केन्द्रके प्राण सर्वव रहता है। शरीरिक प्राणिके प्राण सर्वव

रक्षितेवाहे श्रावणे मासच हून प्रत्यक्ष रक्षा वशा सुमय हे परंपरागतिक शास्त्रातले सव सव रक्षितेवाले श्रावणे मासच हून रक्षा वशा कठिन हे । जाणे मागेले साव सव मुचन ये वशाग हे, जो हसच वृषा जय हे वह किसच चिह्न हे जगात कसचा हून भिस्त हो सकता ह । अस्तावे श्रावणे साव ही कसचा हून हो सकता हे ।

अथ लघुपाठो ईदं हे इस विषयमें पहिले ही मंत्रमें कहा है। लघुमें पातिमान और लघुमें सुख वह प्राप्त है। अथ अर्वाय आरमसाधिते स च रश्मिवात्म अथ प्राण आत्मन्य रहित होकर आर धिक्ते स च कार्य करीये समर्थ बनकर मेरे शरीरमें अनुकूलताके साथ रहे। यह इच्छा लघुसंक्षेपमें मंत्रमें आत्म करनी चाहिये। अथ ईदंवाच आत्म होता है प्राणमें आत्मन्य कभी नहीं होता; इनामिरे प्राणमें विक्षय अर्थात् अर्वाय आत्मन्य रहित ऐसा रहा है। वही प्राण पञ्चाश्वमें मंत्रमें कहा है।

सब ईश्वरा आराम लेती हैं, जानकी बनती हैं, से जाती हैं और बीजे निरजानी हैं, परंतु माल ही रातायेन कजा रहकर जायता है, जबस्य मनो इस मीरपक्ष सेरक्षण करयेके सिधे कजा रहकर बहुरा करत है । कभी मोता नहीं कभी आराम नहीं करता और जाने पारये कभी कंक नहीं इरता । सब ईशिया से ही हैं परंतु इस मानस स मा कर्म निर्मये सुना ही नहीं । अर्थात् विधान व केता हुआ वह माल रातरिब खोरये पार्य करत है ।

[illegible]

"हे प्रणव ! मेरे लिये दूर व दो जाओ हीरे का मतलब मेरे
अंतर ही। मैं हीरे जोखन बनाना कहूँगा मैं ही प्रभुपति
मया हार ही बर्ष भी अथवा काल बनती है।"

यह मायु हमारे केन्द्रोंके भीतर जाय जाता है तब हमको माय वसिष्ठकी प्रत्यक्षता हमारे लक्ष्य जाती है और उससे हमारा जीवन होता है। यह माय प्राणनामके समय मनमें धारण करना चाहिये। प्राण ही मायु है, इस विषयमें विप्र संघ देखिये—

आयुर्मे प्राग् ३ अ. १:१६।१

“ प्राण ही आत्मा है ।” जब तक प्रण रहता है तब तक ही जीवन रहता है । इसलिये जो प्राण आत्मा कहते हैं उसको कथित है कि वे अपने प्राणों तथा प्राणिक स्थानों। बलवान् बनते । प्राणिक स्थान वैकुण्ठ ही होता है । वैकुण्ठ बलवान् कर-
केते प्राणों तक आ जाता है और उसके द्वारा प्राण आत्मा ही बनती है ।

असु—नीति

राजकीय, समाजकीय, गृहकीय इन क्षेत्रोंके समान असु
मिति " सहर ह " राज्य नीतिमें प्रसार राजकीयिते स्थल
होता है, इसी प्रकार " असु " अर्थव्यवस्था का व्यवहार करने
की नीति " अनुमिति " सहरके स्थल होती है Guide to
life way to life अर्थव्यवस्था मार्ग " इस
मार्गको असु—नीति सहरके स्थल का रस्ता है यह श्री
माधुसूदन श्री रॉय का सहर स्थल है । देखिये—

॥ सुदीर्घे पुनरुद्भासु चक्षुः पुन प्राप्नोमि हरे ॥ ५॥ श्रीगो॥ ॥
 पुनरुद्भासेन तूर्णमुच्चैः प्रमुनये मुहुरा नः स्वस्ति नः ॥
 ॥ १ ॥ १५५१

हे जगन्नाथ ! वहाँ हमारे लहर पुनः चञ्चल प्रणमोत्तम
 भोग प्रारम्भ करो। लूँध लहर हम बहुत देर तक रुकें। हे
 जगन्नाथ ! हम लहरों को छोड़ कर भी (हमको स्थायित्व के पुण्य
 रखो)।

ભનુદેવે કહ્યું : ' ભવેશ્વરે પ્રાણ બાળન કરાવેલી ટોચી ' '
 અવજાત હોય છે, તબ યનુદી શાંતિ હિન હોયેલાં મી પુનઃ
 જામ રહી પ્રાણ બી આ જાતી છે પ્રાણ બાળેલી સંભાળ
 હાનેર મી પુનઃ પ્રાણે સ્થિરતા બી આ જાતી છે પ્રાણ
 મેં વેળે અવજાત હોયેલાં મી પ્રાણ બાળેલી અવજાત
 હો જાતી છે : પ્રાણુ જાત જાતે જાત સુર-દશમ અવજાત
 હોયેલાં મી હોયેલાં પ્રાણુ જાત જાતે જાત સુર-દશમ
 સુર-દશમ જાત જાતે જાત સુર-દશમ જાત જાતે જાત સુર-દશમ

एकजैसे वह सब कुछ ही सधता है, इसमें कोई छेद ही नहीं।
 तथा—
 जलपूनीति मया जलमासु धारय जीवतामे सु प्रतिशान्
 आशुः ॥

राशि नः सूर्यस्य सहासि पृथक् त्व तर्कं वर्धयन्
इ.स. १९५९/५

‘ हे अमुषीते ! हमारे अंदर सबकी आत्मा करा और हमारी आत्मा सबी शीव करा । सर्वत्र ईश्वर हम करें । ए पीते छीरि बहा । ’

आयुष्य बचावेची रीति हस्य संप्रदाय वर्णन की है। परमो वासमकी धारणा की है। ममकी धारणा एसी दृष्ट और पक्षी करनी का दिये कि मैं रोगकायपक्षी द्वारा अवश्य ही कार्य आयु प्राप्त करूँगा तथा किन्हीं कारणों से मेरी आयु खत्म नहीं होगी हस्यपक्षर मनी पक्षी धारणा करनी करीये। ममकी दृष्ट धारणा ही। मम मनके दृष्ट दिशासंपर ही सिद्ध अवलंबित हकी है। सर्व प्रयासादा ईषि जगुदमात्र सर्वत्र वेदने सुख-सिद्ध की है। प्राण-वास आदि द्वारा जो मनुष्य प्रत्यक्ष बस बहामा काही है उसकी पी बहुल खाकर अपना खरीर पुष्ट रक्तमा काहिये। प्रत्यावास बहुत कर पर पी न कायेने खरीर हस्य दोस्त है। इन्धर्मिय प्रत्यावास कर बमोले कायन है किम अपने भोगवर्षे का अधिक लेवन करे।

इन प्रकार यह वाक्य नीचे व्याख्य है । जहाँ इन मंत्रों का विचार करके ही प्रत्येक आत्मा को अपने स्वामी के द्वारा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है ।

यन्त्रोद्देशे प्राणविषयक उपदेश ।

प्राप्त की वृद्धि

प्रत्यक्ष कार्य करके विधानों के अन्तर्गत निम्न
प्रश्नों का उत्तर दे—

प्रायस्क व्याख्यासमाप्ति ॥ पृष्ठ ११५

ତେଣୁ ଯାହା କଥା ଗୁପ୍ତ ହେବ । " ଜ୍ଞାନୀ ତାହା ବାଣୀକର ବାଣୀ
 ହେବା ସମୟରେ ଯେ ବାଣୀକର ଯାହା ଶୁଣିବ ତାହା କଥା ଗୁପ୍ତ
 ରଖିବ । ଯାହା ଶୁଣିବ ତାହା କଥା ଗୁପ୍ତ ରଖିବ । ଯାହା ଶୁଣିବ
 ତାହା କଥା ଗୁପ୍ତ ରଖିବ । ଯାହା ଶୁଣିବ ତାହା କଥା ଗୁପ୍ତ ରଖିବ ।
 ତାହା କଥା ଗୁପ୍ତ ରଖିବ ।

સુદ્ધા: જાઓ જાઓ બંને વિદિષ્યદૈવ હદ માં જોએ જોયે
વિચીણા: ૩૪ ૬૧૧૬

आत्मा और प्राणसंघके महारथ पता चपटा है । इसका प्रकार देखिए—

पुनर्मनः पुनरभ्युदय आगन्तुना प्राणः पुनरत्नमा म
आगतम् ॥ पुनरुत्पन्नाः पुनः शोभन्ते न आगन्तु वैशालो
अदृष्टवत्पुनः अमिर्मः पातु दुरितान्धकारम् ॥

प ४११५

“ मेरा मन आपुन, प्राण आत्मा बहुत काम आदि पुनः
मुझे प्राप्त हुए हैं । शरीरका रक्षक, सब लक्ष्यका हितधरी आत्मा
पल्लवे हम सबके बचने । ”

ओम्के समय मन आदि सब होंगे जीव हो गई थी
कपले प्राण चपटा वा तथानि उससे कार्यका भी पता हमको
गई था । वह सब बचके समान अब पुनः प्राप्त हुआ
है । वह आत्माओ अविद्य कितावा आकारधारक प्रभाव है ।
वह आत्मसंघ हमको पाते बचाने । प्रत्यक्ष सबेरा सब हम
अविद्योक्त भीन होना और पुनः प्राप्त होना प्रतिदिन हो रहा
है । इसका विचार करनेसे पुनर्जन्मका ज्ञान होता है । क्योंकि ओ
वात सिद्धांत असम होती है वह ही वैसी ही सुस्पष्ट समझ होती
है । और सभी प्रकार महाप्रलयके समयमें भी होती है । निश्चय
सबकुछ एक ही है । अन्तर्गत सब अन्तर्गत के ही रहती हैं,
प्राण कैसे चपटा है और अन्तर्गत है । वैसी लक्ष्य भीन
होती है, इसका विचार करनेसे अपनी जन्मसंघर्षका ज्ञान होता
है और वह ज्ञान अपनी अविद्यका विचार करनेके लिये सदा
बच होता है । अपने प्राणका विद्यमानक प्राणके साथ सर्वत्र
देखना चाहिये इसकी लक्षणा निम्न मंत्र देते हैं—

विश्वरूपायक प्राण ।

ये प्राणा प्राणैव गच्छन्ताम् प ४ १ १४

ये ते प्राणो गच्छन् गच्छन्ताम् प ४ १ १०

“ अपना प्राण विश्वरूपायक प्राणके साथ संगत हो । मेरा
प्राण शत्रुके साथ संगत हो । तत्पश्चात् अपना प्राण आत्म
गई है वह धार्मिक प्राणका एक हिस्सा है । इस दृष्टिको
अपने प्राणकी चपटा चाहिये । सब अन्तर्गत प्राणका समुद्र
मत्ता है सबमेंसे ओकाका प्राण मेरे और आकर मेरे शरीरका
चरण दे रहा है । प्राण प्रत्यक्ष होता है ही धार्मिक प्राण
भरत का रहा है इत्यादि जादवा समय प्राण करनी चाहिये ।
तत्पश्चात् वह धार्मिक दृष्टि सदा चपटा करनी चाहिये । सबकी

अवधिमें एकही अवधि है समष्टिकी अवधिमें अवधिभी मकर
है वह वैदिक सिद्धांत है । इसलिये समष्टिकी अवधि ही
प्रत्यक्ष अवधिमें और अवधि होनी चाहिये । वह सब
प्रकारों ही अवधि है । इस प्राणकी और वातें निम्न मंत्रमें
देखिये—

छन्दोवाला प्राण ।

अविर्भवेति वाति वीर्वाच आत्मस्य वीचा चपटो
प्रहाम्याम ।

चरत्प्राणपराधैर्वाच नस्यापि बहिर्भूतप्राणम् ॥

प १११०

“ (मेरा व) मेरेके समय छन्दोवाला (वाति) शरीर—
सब प्राणपराध वीचके लिये (वाति) प्राणमें चपटा है । (प्रहाम्या)
आप वीचका सब वीचों प्राणका समुद्रमय मार्ग चपटा
है । (बहिः) चरत्प्राण) शरीर स्तुतिमें ही आता (चरत्प्राण)
सुवर्ण वाती (वीच) सर्व शरीर अन्तर्गत प्राण प्राणकी
समा (नस्यापि) वातिका के साथ संगत रहनेवाले अन्त
प्रत्यक्ष (बहिः) चपटा (प्रहाम्या) प्रहाम्या है । ”

वर्षा करमेवाका समुद्रके साथ सुदृढ़ क के अवधि प्राणका
करमेवाका मेवा होता है । वही प्राणका कार्य अपने शरीरमें
है । सब अवधिमें और शरीरके सब समुद्रके साथ लक्ष्य
क सदा आगेव निम्न शरीर रहनेका बड़ा कार्य करमेवाका
महावीर अपने शरीरमें सुस्पष्ट प्राण है । वह मेरेके समान
चपटा है । इसका नाम ‘ अविः ’ है क्योंकि वह
अवधि अन्तर्गत सब शरीरका शरीरका करता है । अपनेके अन्त
कार्य ही वही देखने योग्य है—रक्षक वाति वाति प्रति,
सुनि ज्ञान अवधि प्राण रक्षकित प्राणका वर्य इच्छा
सब प्रहाम्या अविद्यका हिंसा, दाग, भाग और सुदृढ़ इतने
अवधि प्राणके कार्य हैं । वे सब अपने प्राणकाचक अपने
चपटमें हैं । प्राणके कार्य सब चपटमें समस्त होते हैं । प्रत्यक्ष
हम अन्तर्गत लक्ष्य अपने प्राणके वर्य और वर्य चपटमें
चपट करे ।

इतने कार्य करमेवाका शरीरका प्राण हमारी वातिकामें रहा
है । वातिका वीचकी एक ही प्राण हमारे शरीरमें चपट कार्य
करता है । वही इच्छा महारथ है । वह प्राणका मार्ग
‘ अन्तर्गत ’ प्राण है । अन्तर्गत इस समयमें अन्तर्गत है । इच्छा
मार्गका रक्षक करमेवाके ही मह है । ‘ आत्म और चपटप्राण ’

मेरी प्रह हल मर्ममय संरक्षण कर रहे हैं। सबसे स्वाभाविक रणनीति, सबसे पहल करनेवाले प्रह होते हैं। आप और सज्जनोंसे यह शरीर का उलम प्रदान हो रहा है इसलिए मे प्रह हैं। इन से प्रहों का ये प्रमाण मर्म मरण रहित हुआ है अतः प्रह और सज्जनता जन्मे हैं सतत मरण हल ही रही इसलिए ये सज्जनतासे अस्मिता तक ही 'अमृत' ही रहता है। परन्तु आप मेरी प्रह हर हो जाते हैं यह मरण काया है।

इस स्थिति और सुपुत्रा" के तीन माहिर्वा करारमें हैं। इसीसे हमसे "मया वपुषा और सरस्वती बड़ा काया है। अर्थात् सरस्वती सुपुत्रा है। इसमें प्राणवी घेरक लक्षित है। स्थिर चित्तों को बसासता करते हैं अर्थात् यह विचार-ले को परमात्मस्थित करते हैं। उनके अन्तर सुपुत्राधारा यह प्राण विशेष प्रत्यक्ष वस्तु है। तात्पर्य कथाकाव्य प्राण ही प्राणका एक वस्तु है। कथा प्राण यह है कि जो करारमें प्रत्यक्ष है और अल्प-अल्प अर्थात् माहिर्वा काय सर्व-रक्षक के प्राण हैं। इन सब अर्थात् घेरक वस्तु सुपुत्रा काती है। वरदेष्टा अभिष्टा वस्तु इस सुपुत्रामें वस्तु है और इसके द्वारा प्राणों का कार्य भी प्रकट होता है।

सरस्वतीमें प्राण

इस मंत्रमें आत्मनाथ साधककी बहुतसी पुस्तकें सरल
 भाषाओंमें लिखी हैं। इनमेंसे पाठकोई इस मंत्रका विशेष
 विचार करना चाहिए। इस मंत्रमें जिस आत्मकीका धर्म
 जाना है उसीका सर्वत्र हिन्दू धर्ममें वैशिष्ट्य—

अभिधा हेतुता चतुः प्राप्तेव प्राप्त्यती वीर्ये ॥

बार्नेटो बर्मेन्नाड इन्स्टिट्यूट ॥ ४ ३ १८

^{११} अग्निदेव ऐन्द्रके ज्ञान यन्त्र देते हैं करकृपाती प्राण कवित-
के ज्ञान वीर्य देती है ईश (ईश्वर) जीवाम्नाके ज्ञिने वाणी
और बलके व य इतिवक्त्रित कार्य करता है ।^{१२}

इसमें सरस्वती जीवनक कितने धारा बहने देती है ऐसा कहा है। यह सरस्वती काच भी पुरोहित ब्रह्मन्मा मातीका माचक है। अग्निमें काच बन और काच स पत्थरोंका माचक है। इन अर्थमें ही ईश काचक है। पहिला परमात्माका माचक और दूसरा जीवमात्माका माचक है। ईश्वर काच अजगदी। अविनाश माचक है। ईश्वर के सरस्वती काचका मदी काहि अर्थ केचर दिक्कान

कर्म करते हैं। उदाहरण- वह गात 'स्मरण' रकबी खीरे में
वैदिक आध्यात्मिक शक्तियों के बीच में मुद्रा है, यह है कर्म
प्राचीन कायक है। अस्तु अब आपने अपने और दो दो
देखिए-

भोजन वीर प्राण ।

चाप्ययसि चिनुहि देवम् प्राप्त्वा त्वोहाणात् स्व
 प्यन्त्यात् त्वा ॥ श्रीरामाय प्रसिद्धिमायुषे वा ॥ ५० ११०

प्राणाय मे बर्षोंहा बर्षोंसे पदस्थ व्यासाय मे बर्षोंहा
बर्षोंसे पदस्थोहायाय मे बर्षोंहा बर्षोंसे पदस्थ ॥ व श्री
‘तु प्राणय है। ऐसीको प्रथम करो। प्राण पदस्थ को
प्राणको मित्रे तेरा स्वीकार करता हूँ। आत्म्याके मित्रे तै
मर्षाया जाय करता हूँ ॥ मित्रे प्राण पदस्थ श्री! बर्षों
तेबन्दी इच्छिके मित्रे प्राण बनो।”

कार्यक सामग्री आधा इतिहासिक रेगेंगे छह, मिन और एक करत है। कार्याक मंत्रालय प्रत्यक्ष रूप लक्ष्य है और आनुषंगिक है। कुछ प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष विचार होता है। इससे बहुत काम मात्र उभरती है। यह एक है। तथा और एक मंत्रालय—

सदस्यास्य अपि

अने महत्वाचे कठमूर्त्ये कर्तव्ये प्राप्ता महत्त्वाच्या
 ल महत्त्वाचे राव ह्मिने तसे हे विजेत बाळ
 स्वाहा ॥

हे पुरुष भेदभावे काय ? तेरे सैबरी मय रेली
 वरान और वरान मय है । वरानों भरीर तेरा प्रभुत्व है ।
 इतिमि कविपदे जिने हम मेरी प्रसंता करते हैं । ”

[illegible]

प्रकार बहू प्रायस्कृतिक विस्तार हुआ। कृषि सब घरीर
नर सुदनये नूनन नठने हुन है। नही नान है कि प्राय-
कृतिक नन हुनेके कारण नन नन प्रकृतिक ननने नान न हो
नाने है और प्रायस्कृतिक नन हुनेके सब घरीरकी नरीगता
नी लिख हो कनरी है।

इस प्रकार वस्तु है। प्रसारित कर उपदेश है। वस्तु है। उपदेश कर-प्रकार है। इसीलिए वाक्य इस उपदेश की ओर अनुप्राणित है। इस ओर हम उपदेशों को अपने वाक्य में उल्लेख करते हैं।

समय उप नगमक हूमेने गण्डे साव कपका चमिष्ठ
 धर्म है। कई जगो कपका चमिष्ठ प्राय नर जी सम
 छते हैं। उतासना हूरा जी प्रायक बक बडता है उतासनी
 कदावा समवेष्टे हूब निवमने होदी है। अन्व बाँठा कपक
 कपका अन्ववेष्टी ही कार्य है। इसलिये वहाँ हूराही
 निवमने है कि ओ परममोप कपका निवम है उतास प्राय-
 एनित्तव; किताव करवेष्टे किये कपक अन्व आवाकक समवे
 और अन्ववेष्टे समवे कपको किता करें। अन्व कार्य
 वेष्टा प्रायविषय उपवेष्टे वेष्टे हैं।

अथर्ववेदका प्राणविययक उगदेय ।

अथवा श्री गणेशाय नमः ॥ (अ. ३.१२०१)

ममं प्राप्नो हाभीम्यो जमाया ॥ (अ १।२८।१)

आप आपन मुँह मसुने कहानें । आप आपन हसने व डीठें ।" इस मन्त्रोदय आपकी कवित्व स्वभाव बताना है । आपकी कवित्वोदय मसुने अलङ्कार होता है । आप कहने का आपना ही मसुने मय नहीं रहता । मसुने मय हसनेके किने आपकी प्रशंसा करनी चाहिये । देखिये—

श्रेयः प्राप्तं प्राप्तस्वाप्तो वसन्ते मुक्तः ॥

निर्जदे निर्जला नः पादेष्वो मृत्युः ॥ ३ ॥

पत्रां मासः ॥ ५ ॥ (अ १९/४४)

“ हे मातृ ! हमारे प्राणाय रक्षण कर । हे जीवन !
हमारे जीवनको सुखमय कर । हे अविनाश ! अविनाशको
पक्षीवि हमें बना । ”

આથી પ્રાપ્ત થયેલા ઉપકરણ કરવા બાદિયે અવગણનામાંથી
મુક્ત થઈ શકે છે । નિર્ણયિત કાર્યોને સમયાચાર્ય બાદિયે ।

“अति” का अर्थ— प्रवृत्ति, लक्ष्य, उपाय, साधन,
सम्पन्न, योग्यता, कारण, स्थिति, मार्ग, वरदान, प्रतिभवा ।

४ (अ. प्र. भा. भा. ११)

रहता है। अतएव निश्चिततया कर्षण अवगति, कुमार्ग अपकर्ष
अन्योन्य रीति अत्युत्तम देहीबाक शतपत्राद्य रीति, अपरि
यता वह हाता है। मिश्रितके साथ अन्वयात्म निर्विह
आधोनित्ये कल्प जाता है। इसविधे इस डेहेमार्गके प्रपञ्च/म-
ये बन्धनेही सूचना उक्त मंत्रमे ही है। इत्येव यदुप्य को
कक्षाति पाइता है सत्त्वान रहता दुष्प्र कपने आपछ इस
अन्योन्यके मार्गवे बन्धने। मिश्रितके काक प्रारंभमें बडे सुंदर
बिहारी बने हैं। परंतु ये इनमें एवहार भंगता है, बन्धने
उठना बन्ध सुनिश्चय प्रणीत होता है। एवं प्रकटके दुष्प्रसव
प्रपञ्च आत्मव्य कन कन बन्ध सुंदरी ॥ मिश्रितके आपके
कन हैं। जो कीक इस आत्ममें कपने हैं उक्तो उठना सुनिश्च
हो जाता है। इसविधे उक्तति पाइनबने प्रवहन हो जाति है
कि ये इस गुरे राखवे अपने आपको बन्धने। नापलाच
करेबाधनेको वह कपनेके अत्युत्तम है। शीतके बन्ध निवम हसी
उत्प्रेषके अनुहार बने हैं। अपने निवममें किंच प्रकटके आधना
कनी बाहिए इसप्रकारके निवम मंत्रमें किता है-

मैं विस्मयी हूँ ।

सर्वो मे चतुर्वर्षः प्रथमं वनगिह्नमात्रमा पुनरिह
करीष्ये । अस्त्युद्ये नामाहमवगमिष्ये न वनमात्रं विदुषे
यावापुनरिहोद्यो गोपीवासः ॥ (अ. ५।५७)

“सूर्य मेरा नेत्र है जगु मेरा प्राण है अतरेकस्य तस्य मेरा आत्मा है धुबिओ मेरा स्मरण करीत है। इस प्रकारका मैं व्यापारित हूँ। मैं अपने आचरों सु और धुबिओ कोइसे जंतवैत को कुछ है बत बचदे बरहमके जिसे लक्षण करता हूँ।”

आपने कल्पित विपन्न करने के लिये समझि की मर्चाई के लिये
 अपने आपको समर्पित करना चाहिए। और अपनी आंतरिक
 शक्ति के साथ वादा देवताओं का संबंध देखना चाहिए। इसका
 ही नहीं अत्युक्त वादा देवताओं के अंत अपने शरीर में रहे हैं,
 और वादा देवताओं के अंत अंतर्गत वादा हुआ है एक कोशिका
 प्रत्यक्ष है, ऐसी माया प्रत्यक्ष करके अपने आपको देवताओं का
 अंतर्गत तथा अपने शरीर को देवताओं का ही अंतर्गत मंदिर
 समझना चाहिए। गोपतावन में ही वादा प्रत्यक्ष है। अपने
 आपको निश्चय और हीमहीम समझना नहीं चाहिए, वरतु (अहं
 अत्युक्त) वादा (I am invincible) में प्रत्यक्ष है,
 ये वादाप्रत्यक्ष हैं। इस प्रकार ही अंतर्गत प्रत्यक्ष करनी चाहिए।

देखिये वैद्यक वैद्या कपदेव है और साधारण लोग क्या समझ रहे हैं । जैसे जिसके विचार होने हैं वही सबकी अवस्था बनेगी । इसलिये अपने विषयमें कदापि सुख सुखि धारण करना लाज्य नहीं है । प्राणाशाम कर जाने सज्जनको तो अत्यन्त आवश्यक है कि अपने करीरको वैद्यताओंका संविद, अधिका आशय समझे और अपने आपको उच्छा अभिप्रासा तथा परमश्रमावा लक्ष्मी समझे । अपनी मायका जैसी एक होयी वैवाही अनुभव आ सकता है । देखिये—

पंचमुखी महादेव ।

मायापानी स्वाधोदासी ॥ (अ ११।६।१६)

प्रायः, अथवा, यदा उदात्त अति कम जाने है । उप-मायेंक नाम वैद्यके दिखाई नहीं मिले । किसी अन्य अपने हीये पो पता नहीं । यदि किसी विद्वान्को एक विषयमें ज्ञान हो तो सबको प्रवर्धित करना चाहिये । यन् प्राप्ती पञ्चमुखी यह है उक्त जिये तम है व एक प्राणवायवही है । महादेव संप्र-आदि एक यह नाम प्राणवायव है । महादेवके साथ मुख जो प्राप्ती है तबवा इस प्रपन्न मूल विचार है । महादेव मुख-अथ वैद्य है उच्छा नहीं निर्यव होता है । कठपन्नमें एकद्वय दर्शक वर्धन है ।

कठम क्ता इति । इत्येते पुनरे प्राणा जातेकायुक्तः ॥

(कठ भा १४।५)

“ क मते यह है ? पुनर्में एक प्राण है और व्यापकता अत्रमा है । मे म् यह है । अर्थात् प्रवर्ती यह है और इसलिये सब कार्य पशुपति आदि देवताके सब मूल अपने अपने अर्थमें प्राणवायव एक अर्थ की अवस्था है । पशु-पति कृष्ण अन्ध-वक्त्र माल पर पशु कृष्णका अर्थ ईश्वर ऐसा है । इसा इति क मते नीचे पशु अति अल्प प्रकार के अल्प निर्यव है । इस रंति मेरु अनेक स्थानमें प्राणकी रूप रत्ना दिखाई वर्ध । आका इति पाठक एक प्रकार वैद्यका विचार करते । इन स्थानमें श्रवणक सब लक्षणों प्राणवायव प्रायः वसति निर्यव है । इसलिये इस स्थानपर वैद्यक विद्वान्की विद्या । आस कृष्ण मी विषय प्रसंगमें प्राणवायव है । एक माल कृष्ण प्राणवायव आदि संप्रदायाइया इत्यत्र कतिपय है । इस प्राणवायवके पता लगता है क क इत्यत्र वर्धन में आ प्रवर्धन अल्प और पते है

मायापानी वैद्यताओंमें बापु और ईश्वर को देवताई प्रपन्न है । बापु देवताई प्राणवायव सुप्रदेवता है । स्वाय कल्पित से ईश्वर मी प्राणवायव जा सकता है । इस दर्शने ईश्वरदेवता मंत्रोंकी नीचे मंत्र प्राणवायव वर्धन मिल सकता है । इस अल्प अनेक देवताओं द्वारा वर्धने प्राणवायव वर्धन है । किसी स्थानपर अति छोटे है और किसी स्थानपर अति छोटे है । यह सब प्राणवायव वर्धन एकत्र करके संविद्वान् पर पते जा सकता है इसलिये यहाँ वैद्यक कलावाही केक दिखा जाता है कि जिस गर्भमें एक करके प्राणवायव वर्धन जायता है । अल्प प्राणवायव कितनी व्यापक है अल्प वर्धन मिल वर्धन है कि—

प्राणका मीठा बाबुका ।

महत्त्वतो विषयक्यवस्था अनुभवस्त श्रोत देव बाहुः ॥ य एति मनुकका रात्वा तद्भावास्त दृष्टुं निदिष्टम् ॥ २ ॥ माताहिमांशो हृदिता बहुला प्राणा प्रजापाममृतरव नाभिः । हिर नववर्णा मनुकका कलापी महत्त्वान्महत्तरति मर्त्ये ॥ ४ ॥ (अथर्व १।१)

(अर्थः) इस पृथ्वीकी और समुद्रकी बड़ी (रीठा)

कति एते वैद्या सब करते हैं । बड़ाही अल्पका हुआ मीठा-बाबुका लगता है नहीं । प्राण और नहीं अल्प है । अर्थमें की माता बहुलाकी हृदिता प्रजाओंका प्राण और अनुभव नाभि वह मन्त्र—बाबुका है । यह वेदवर्ती तेज कल्पक का है बड़ी और (मर्त्ये पते) अर्थमें अल्प कल्प करेवर्ती है ॥

इस मन्त्रमें मनु—बच्चा लम्ब है । “ मनु ” का वर्ध मीठा का पु है । और कला का वर्ध बाबुका है । बाबुका प्राणवायव अल्पमेरे पाठ होता है । बाबुका माते के पाठके छोटे लम्बे है । कथ मर्त्ये “ मनु—कला अथवा मीठा—मनुका वर्धन है । यह मीठा बाबुका कल्पिनी धर्म का है । अर्थात् वेद प्राणवायव नाभिवा लम्बे रहते हैं प्राण अल्प दशात् कल्पका बाये और नाभि बाबुका दशात् कल्पका बाये मीठा—मनुका वर्धन कर रहा है और करीरकी रक्त ईश्वरक्य के बड़ी लम्ब रहा है । अल्प बाबुका यह लम्बक्य ईश्वरके वेदके एक अर्थात् और अल्प

वर्त्मकारकी कल्पना बाठोंमें मगमें स्थिर हो जकटी है । वह प्राचीनका मष्ठा पाबुध हम मगको प्ररक्ष कर रहा है इसकी प्रेरणाके बिना इस शरीरमें कार्य नाम होता नहीं है । इसकाही वही वीरु सब जगदमें वह मष्ठा—पाबुध 'ही सबका मति है रहा है । सब जगदमें वह प्रायका कार्य देखने योग्य है । मग कहता है कि ' इस मीठे पाबुधमें पुण्य और मगकी सब पाति रहनी है कहाके यह मग का पाबुध बलाया जाता है वही मान और जमून रहता है । " प्राय और जमून एक ही रहता है क्योंकि कर्मन कहीमें प्राय रहता है तब तक मगकी मति नहीं होती । और कभी मानते हैं कि प्राचिनीके शरीरोंमें प्रायही सबका प्ररक्ष है इनलिधे कछे पाबुधकी कल्पना एक मंत्रमें वही है क्वाकि कहीकही रखके भीधे कल्पिका वारी वही पाबुध कर रहा है । इसी मंत्रमें कहा है कि ' वह पाबुध शरीरस्थ वसु आदि देवताओंका बहावक है वह प्रजाओंका मग ही है जमूनका मग्य वही है । वह प्राय मंत्रोंमें एक और चेतना कल्पक भरता है और सब प्राचिनीके बीचमें यह कहता है । ' वह वर्त्म कल्पन आत्मकारके मुक्ता है, परंतु स्वह होमेके कल्पे हरएक इसका बरदेह जान कहता है । तथा—

अपनी स्वतंत्रता और पूर्णता ।

कसौः प्राणः ॥

(५१५)

श्रीरं बभ्रु बाबोऽपिहो वो जसुवाभुवा जयमानुवो

(27 72194)

अनुप्रासः अनुप्रासः म अहमाऽयं मे चक्षुषे मे

कोऽबुधो मे मामोऽबुधो ऽऽराधोऽबुधो मे ध्यामो-

(५१५१)

[illegible][illegible]

पार्थिवः

आहं सर्वं जगत् ।

“मैं संपूर्ण रूप से स्वतंत्र हुए बिना किसी सहायता की ओर
न जाने योग्य समझ किसी कहते जायगी कि मैं अपने योग्य हूँ
हूँ।” वह भावना यदि समर्थ स्थिर हो जायगी तो समुद्र-पथ
किसी किछी बड़-सकती है इसका बिचार पाठक भी कर सकते
हैं। मेरी इच्छा मेरे अथवा मेरे अन्तःकरण ऐसे हूँ
और बलवान् होने चाहिये कि मुझे उनके कारण कभी डर न
हो सके तथा किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता न करता हुआ, मैं
पूर्ण स्वतंत्रता के साथ आनन्द अपने महान् महान् पुष्पाङ्कुर
सहूँ। कोई यह न समझे कि वह केवल स्वतन्त्र है व तुम्हें
यहाँ कह सकता हूँ कि यदि समुद्र-पथ के तैलियन-पथ
अपने आनन्द इस प्रकार पूर्ण स्वतंत्रता बना रहन है और उक्त
व्यक्ति-या पूर्ण विहाय है अपने अन्तःकरण कहते हैं तथा—

प्राणकी मित्रता ।

हृदय प्राणः सद्यो यो बभूव तं रक्षा परमेष्ठिन

पर्यामिरापुरा बबया हवापु ३ (अ १३११७)

“यही ज्ञान हमारा मित्र बने। हे परमेश्वर। हमें यह दीर्घ आयु और ऐश्वर्य सब प्राप्त हो। मानके सब मित्रता का सशर्क इतनाही है कि जाने या देने मान नलिख छोकर रहे। क्या अन्ध अन्धों में प्राय हर न हो। जाने आनुष्यमें वरमेही परमात्माही ही सेवा और हर बना करनी चाहिये। परमात्मा सब अन्ध गुण का नेत्र है वह परम मित्र है। इसी मित्र सद्गुरु का बन होना है और मनुष्य मित्र सब श्याम करता है इनके मरण बन बन के इन मित्रके अनुसार परमेश्वरके गुणोंके निरमल मनुष्य भी प्राप्त करता है। यह कालकलाप और पापनी चकरी का चरित्र है। इन प्रभु को अनुसर जाननी प्रत्यक्षके हो जाता है इनको प्राप्तमित्र किसी विरुद्ध होती है इसकी कल्पना मित्र मंत्र से हो सकती है। नोकर—

तद्वत् प्रायश्चित्तं च सप्त ध्यानाः सहास्रानि च सप्त श्रवणाः ।

कोडरव प्रदमः प्राग ऊर्ध्वो नागवारे को भद्रिः ॥ पांडरव

हितायः प्राण-पौरो न मायौ म नदि व ॥ बोऽस्य

तृतीयः पाण्डुर्हो बानासौ स चद्रवा ॥ ५ ॥ अथ चतुर्थः

प्राज्ञो ऽभि सु मित्रं न्य पथमात्रः ॥ सोऽहं संवत्सः प्राज्ञो
तेति ॥

योगिर्नाम का इमा भाषाः॥ बोद्धव्यं वस्तुः प्राज्ञः दिवो नाम

त इमे वज्रवः ॥ ओऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम
ता इमाः प्रजाः ॥ (अ १५।१५।१ ५)

वज्र (अस्त्रम्) संज्ञाही मत्पुरुषके तात प्राण तात
अपान नात भक्त है। वज्रके आगे प्राणोक्त क्रमका नाम कार्य
अथ अस्त्रव विद् बोध प्रिय आर अपरिमित है। और
वज्रक तात स्वयं प्रमत्ता अति आ वज्र, ब्रह्मा पदमात्र नात
पञ्च और प्रजा है। इमी प्रजा इसके अपान आर व्याकका
कर्त्तव्य वज्र स्वात्ममें ही देखने किया है। वहाँही वज्रको पाठक
है। विचार होमेके अन्तरे वज्र वज्रको वहाँ वही किया है।
मनुष्य अपनी कर्त्तव्यको इस प्रकार बड़ा करता है। मनुष्य
अपने तातो प्राणको अपरिमित रूपमें बड़ा करता है वही अपने
आपको एक प्रजावर्गमें विरुद्ध के कार्यमें अर्पण करता है जो
अपने प्राणको कर्म अर्थात् वज्र करता है वह आश्रिते समान
देखती होता है। इस प्रकार वज्रक वज्रवक्ता नाम समझना
चाहिए। तथा—

समयकी अनुकूलता ।

काको मयः काको प्राण नात नाम समारिहत् ।
काकोम वज्रों में त्यागतेम प्रजा इमा ॥ ८ (अ १५।१५.८)
“कर्मकी अनुकूलता समय मय के अनुसार ता है। का-
की अनुकूलताय समयवर्गोंवा आर्ष हो । है।

काकोम विरम पलम करमा चाहिये। प्रवर्गोंके प्राणका
की अनुकूलता होमेके उत्तम भक्त प्राण होता है। काकोम
विचार नहीं करवा चाहिये। जो अनुकूलता प्राप्त होती है
वज्रका वज्रको अवल करमा चाहिये। प्राणावासादि प्राण
काकोम लेने वचित है कि वह वज्र काकोम विरमपूर्वक अपना
अपना किया करें तथा विरम समय जो करमा वज्र है वज्रको
अवल ही वज्र समय करमा चाहिये। जब प्राणके वज्रक
वज्रवर्ग का कर्म विरमविहित वज्रमें देखिये—

प्राणरक्षक कृति ।

अपी मोक्षमर्तीको वज्रवक्ता वज्र आपुतिः ।

तो से प्राणरम गोप्तातो दिया वज्र व आपुत्यम् ॥

(अ ५३ । १)

“वज्र और प्रतिवीच कर्त्तव्य वज्रोंमें आर आपुति के दो कृति
है। व व व ता प्राणकी रक्षा करते हुए विरात आपुति रहे।”

प्रत्येक मनुष्यमें दो कृति हैं। कृति और आपुति
के दो कृति है। एक कर्त्तव्यको देख करता है और दूसरा

कावनाम रहनेकी चेष्टा करता है। परताह और कावनाम के दो
कृतिम जिन मनुष्यमें जितने द्विग जतनी चेष्टाता वह मनुष्य
की दो कृति है। वे दो कृति प्राणके वज्रवक्ता वज्र को
है आर वज्र के विरम तात आपुति रहे तो मनुष्यकी मनुष्य
वाचा ही हो सकती। कावनाम मनुष्यका मनुष्यको कोर्ता
रहता और कावनाम कावनामरति प्राण वह अपना व्यवहार
करता, उचितक वज्रको मनुष्यकी मति नहीं होती, वह कावनाम
विषय मनुष्यके है।

जो जोय अथ वज्रवक्ताके प्राण अपना वैदिक व्यवहार करते
हैं तथा जो वज्र हीनवीच और वज्रवक्ताके ही विचार कर्म
कार्य करते हैं, उनको इस वज्रका मय आत्ममें बरमा वज्र
है। वज्र कहता है कि मयमें वज्रवक्ताके विचार कार्य करते जो
प्रतिप्राण कावनाम रही। जो मनुष्य अपना आपकी वैदिक कर्म
समझता है वज्रको वचित है कि वह अपने मयमें वज्र की वज्र-
कर्म माय प्राण करे। वैदिक कर्म मनुष्यको वचित नहीं है
वह वैदिक विद्वद् हीन और वज्रवक्ता विचार अपने मयमें कावनाम
करक मनुष्यके वज्रमें है। वज्रक मयका विषय वज्र कर्म
कावनाम वज्रवक्ताको आपुत्यम् है आ आपुत्यम् वज्रका हीन
हिने वज्र वज्रवक्ता वैदिक वज्रमें वज्रवक्ताके अनेक वज्रों
आते हैं। पाठक इस वज्रको हीन प्रकार अपने मयमें वज्र
करे।

वज्रवक्ता वज्र ।

प्र विचार्य मन्वावासावमव्यादाविष अथम् । वज्र वज्रवक्ता
वज्रवक्तावज्र इह वज्रवक्ता ॥ ५ । ता व मय वज्रवक्ता
वज्र वज्र वज्रवक्ता ॥ ५ । मनुष्यों विचार्य वज्रवक्ता
वज्रवक्ता ॥ ५ ॥ (अ ५३ । ५)

“जिसे प्रकार वज्र वज्रके स्वात्मपर वज्र आते हैं उस प्रकार
प्राण और अपान अपने स्वात्मपर आ जाते हैं। वज्रवक्ता वज्र
कावनाम है वह वज्र कर्म होता हुआ वज्रवक्ता रहे। तो वज्र
प्राणको जेरित करता है और वीयातीको वज्र वज्रवक्ता है। वह वज्र
अपि हम प्राणको वज्र प्रकार वज्र वज्रवक्ता है।”

जैसे कामके समय देखते अपने स्वात्मपर आ जाते हैं। वज्र
प्रकारके मनुष्यके वज्रके प्राण और अपान अपने अपने स्वात्मपर
रहे। जब प्राण और अपान वज्रवक्ता वज्रवक्ता अपना कर्म
करे तथा वज्रवक्ता वज्रवक्ता हो वज्रवक्ता और मनुष्य वज्रवक्ता
कर्म वज्रवक्ता कर वज्रवक्ता है। वज्र वज्रवक्ता मनुष्यवक्ता वज्र

निम्नवी होती है, इसका दूध नर्म हलमें दिया है । अतः
ही मठा है, यह हृदयमयमें निवास करती है । इस अर्थात्
मल कष्टका बाह्य है, आदि नर्म पूर्व स्वयं या पुत्रा है ।
यह अर्थात् बली है, यही बली पुरी अमरावती है । यही
एव कृष्ण है । पठक प्रत्यक्ष करके अपने अंदर इस शक्तिका
अनुभव करें और अपना विभव स्थापन करें ।

एव बापों नेहमें अनेक संशयोंका भी जो उपदेश कर
दिया है उसका ध्यान नहि देता हूँ । जिसकी पक्षमें पूर्ण
एव नवमय आनंद प्रकाशित हैं । अतः—

(१) आंतरिक प्राणका बला बापके साथ विरज संभव
है ।

(२) जितना प्राण होता है उतनी ही आत्मा होती है इस-
लिये प्राणशक्ति ही दृष्टि करनेसे आत्माका दृष्टि हो सकती
है ।

(३) प्रत्यक्षमें निम्नवी अनुकूल आचरण करनेसे न
केवल प्राणका बल बढ़ता है, प्रभुत्व भी आदि सभी ईश्वरों
अवस्थाओं और अर्थोंकी दृष्टि बढ़ती है और उत्तम आरोग्य
प्राप्त हो जाता है ।

(४) प्राणानामके साथ सममें हृदय विचारों की चारणा
करके बला कम होता है ।

(५) पूर्व प्रकाशका स्वन तथा मोक्षमें बीका स्वन कर
के प्राणानाम की शीघ्र सिद्धि होती है ।

(६) प्राणशक्ति विप्रस करना हृदयका कर्तव्य है ।
कभीकि आत्माकी दृष्टिसे साथ प्रेरित प्राण शरीरके प्रत्येक
अंगमें जाकर वहाँके स्वास्वकी रक्षा और बलकी दृष्टि
करता है ।

(७) इसी पलमें प्राण अंग, स्वास्व बल और उत्तम-
न में भेद है तथा अन्य उक्त प्रकाशकी वही प्रमेय है ।

(८) संतोषादिति और पवित्रताके प्राणका समर्थ बढ़ता
है ।

(९) प्राणका बीरके साथ संभव है । बीररक्षणमें प्राण-
शक्तिकी दृष्टि होती है और प्राणानामके बीरकी स्थिरता होती
है । इसप्रकार इनका परस्पर संबन्ध है ।

(१०) परमेश्वरकी कृपाका और संगीतका अनुभव इस
सोमके प्राणका बल बढ़ जाता है ।

(११) प्राणशक्ति रक्षा और अभिवृद्धिके लिये यह
८ (अ दू मा. की ११)

अन्य इश्वरोंके सुखोंकी आशाना चाहिये, अर्थात् अन्य ईश्वरोंके
सुख प्राप्त करनेके लिये प्राणकी दृष्टि करनी बड़ी चाहिये ।

(१२) एव शक्तितामें प्राणशक्तही मुख्य और प्रमुख
शक्ति है ।

(१३) प्राणमें प्राण प्राणका पोषण करना चाहिये ।

(१४) प्राण सम और नर्ममें सुदृढ़ और पवित्रता
रखनी चाहिये । इससे बल बढ़ता है ।

(१५) सोमके साथ अपनी एव ईश्वरशक्तियों कि प्रकाश
आशाना लीन होती है और उत्तमके साथ पुनः कि प्रकाश
स्वयं रूपमें कार्य करते समर्थ हैं । इसका विचार करना बार इसमें
प्राणके कार्यका अनुभव करना चाहिये । इस आत्माके आत्माकी
विकल्प शक्ति जानी जाती है ।

(१६) कर्तव्य रोगबीजों और आंतरिक दोषोंकी प्राण ही
दूर करता है । अतः प्राण है स्वयं शरीरमें अदृष्ट है ।

(१७) प्राणके साथ प्राणशक्ति आत्माके आरोग्य का
विषय संबंध है । इसलिये ऐसा उत्तम शक्ति मोक्ष करना
चाहिये कि जो आत्माके आरोग्य कादिका दृष्टि कर सके ।

(१८) सहज स्वन करनेसे शरीरमें प्राण कार्य करता
है ।

(१९) प्राण संभवके निम्नवीके विप्रस स्वनकार करनेसे
एव शक्ति कोल होकर अस्वयं प्राप्त होती है । इसलिये हृदय
प्रकाशकी निवृत्ति बल आचरण करनेकी प्रवृत्ति की रचना
चाहिये ।

(२०) अग्नि बापु रमि अग्नि बापु देवताएं अपने शरीरमें
प्राण प्राण बहुत आदि रूपसे रहती हैं । इस प्रकार अपना
शरीर देवताओंका शरीर है और मैं उन एव देवताओंका अधि-
पति हूँ । यह आत्मा सममें स्थिर करनी चाहिये । और अपने
आपको कष्ट व्यवसायकी समझना चाहिये ।

(२१) अपने आपको अवस्थित निम्नवी और शक्तिका
पैर मानना शक्ति है ।

(२२) प्राण ही यह है । अतः प्राण एव प्राण प्राण-
का है ।

(२३) प्राणके आधारे ही एव विश्व चल रहा है । प्राणि-
वीके अंदर यह बड़ी विशाल शक्ति है ।

(२४) है सुवचनेसे अस्वयं ही अपनी एव शक्तिशाली
विप्रस करनेका ऐसा दृष्ट निवृत्त करना चाहिये ।

(१५) अपने आपकी कमी हीन हीन दुर्बल नहीं समझना चाहिये परंतु अपने प्रभावका और ही तथा रचना चाहिए ।

(१६) अथर्वमें ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि जो कुछ वह देखे सोझी । मैं सब वहीको बुर करकेवा सामर्थ्य रखता हूं । वह सब समर्थ रखना चाहिए ।

(१७) सब शक्तिमात्र परमेश्वर मेरा मित्र है इस बातपर पूर्ण विश्वास रखना, तथा सबको अपना पिता, माता माई आदि समझना । सबमें और मेरेमें स्वयं काक अवस्था में रहनी है ।

(१८) लोग कर्ममें नोचन करने लगना । काककी अनुकूलता प्राप्त होनेपर सबका मुँह न करना । आजका कर्मका कर्मके लिये न करना ।

(१९) शक्ति और आपत्ति कारण करनेसे कृति होती है ।

(२०) दीन आनु ही बड़ा मन है उनकी ओर जो बहना चाहिए । निर्दोष करनेसे सब मनकी इच्छा होती है ।

(२१) ब्रह्माह वाचनमात्रा शक्ति आपत्ति कर्तृत्वका भी भावना और भोगमात्र कृतिका साधन विना न। सफल है ।

(२२) तथा कारण कर्मके लिये ब्रह्म होना चाहिए ऐसा कोई कार्य करना नहीं चाहिए कि जिससे नीचे गिरनेकी शंका बना हो सके ।

(२३) इस अनुमन्य शरीरमें आकर भविष्यी कृति और सब अमल की कृति करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिए । जीवन का बही रहने दे ।

(२४) अपने अविशेषक काय मुक्त करने अपनी विप्रव कें प्रयत्न करनी चाहिए ।

(२५) हरबारी अनेक और महिमाकाय तक इन शीतो शक्तिको एक ही शब्दार्थमें समझना चाहिए तथा इन शीतोका सम विचार करना चाहिये ।

(२६) गोपीधरि कथमुच देवोंका वननिवास है ।

(२७) अपने ही हरबारी ब्रह्ममात्रा है वही सर्व और वही अमरावती है । वही देवोंकी अवस्था है । ब्रह्मावती हरबारी ब्रह्म प्रकाशमान है ।

(२८) जो आत्मनिष्ठता विचार करता है वही स्वकीय मोक्षका साधन है अपनी शक्तिमें अंधेरा करता है ।

(२९) कर्म ही अपने स्वकीय काके अविशेषक कारण प्रेरणा चाहिए । वही विचारोंकी गति वही है वही शक्तिवश

चाहिए, वही आत्माका स्थान है ।

(३०) निष्कले साधन पुण्यार्थके ब्रह्मके कृतिसे स्वयं प्रकृत्यात्म वाणी अपनी सब प्रकारके कृति पर ब्रह्म है ।

इसप्रकार ब्रह्मजीवा आत्मन है । पाठक इच्छा करके विचार करें और अपनी कृतिसे किये उपदेशों को लें । तथा प्राप्त बोधके अनुसार अप्रयत्न करने अपने और अपने अनुभव और विषयसे कृतिसे साधनमें उदा उत्तर दें ।

इस लेखमें बोधके ब्रह्ममत्र लिये हैं जिनमें प्रत्येक एक एक विचार रीतिसे स्पष्ट है । परंतु इसके अतिरिक्त अन्योक्त्यों के सुक्तमें सुद्ध रीतिसे भी प्राप्तिपात्रा करन है सबको लें और हीनी चाहिए । आशा है कि पाठक स्वयं प्रकृत्यात्म अनुभव करने तक और करनेके विभिन्न कर्ममें अपने लक्षमें समर्पित करेंगे ।

सर्व अनुमन्य लेखके विना सब प्रकारकी श्रेष्ठ शक्ति कृति इसलिये प्रथम प्राप्तिपात्रा साधन स्वयं करन चाहिए । जो अनेक प्राप्तिपात्रा साधन स्वयं करने लें सब सुविधाओंमें आकर बराबर प्रकाश अनुमन्य पश्ये, उनको ही वैदिक श्रेष्ठोपा आत्म ज्ञान होना कर्म है । इसलिये पाठकोंके प्राप्तिपात्रा है कि वे प्रथम अनुमन्य उप स्वयं अनुमन्य लेखका पलन करें, और पश्चात् द्वितीय प्राप्तिपात्रा की शोध करने पीछेसे आनेवाले उपनिषदों का सुमन करें । हरएकके कोई कोई ब्रह्मके महान् कर्म किसे लें सफल है । आशा है कि पाठक ब्रह्माहके साधन अपूर्ण कर लें ।

उपनिषदोंमें प्राण-विद्या ।

वेदार्थमें जो अन्तर्गताविद्या है वही उपनिषदोंमें अन्तर्गता अन्तर्गताविद्याके अनेक श्रेष्ठोपा प्राप्तिपात्रा नामक एक सुक्त लें है । यह लेख वेदके अंतर्गता है तथा उपनिषदोंके अंतर्गता भी है । इसमें पूर्ण वेदार्थोंकी प्राप्तिपात्रा साधनकायसे वही है जो अन्तर्गताविद्या प्राप्तिपात्रा देखनी है ।

प्राणकी श्रुति ।

प्राण सब शक्तिमें सबसे अनेक शक्ति है इस विषयमें निम्न वचन देखिए—

प्राणो ब्रह्मोति ब्रह्ममात्रा । प्राणाह्वय कर्मिमाणि यदाणि जायते । अल्पम आत्मानि जीवन्ति । प्राण ब्रह्ममात्र है

वि बंधीत्ये ॥

ਦਿ. ੪. ੩. ੩੩

‘प्राणही नष्ट है क्योंकि प्राणमे से सब मूल उत्पन्न होते हैं प्राणसे जीवित रहते हैं और अन्तमे प्राणमेंही। आकर मिल जाते हैं।’

[illegible]

॥ विष्णुमन्त्राद्युक्तः । सर्वं च ज्ञानं च प्रथमं कारिण्ये

हर्ष आन्ते शिरोऽप्यङ्गमा रुचिर्वा पञ्चमार्गं वासुदेव

आमूर्त व सरमाप्तिरेक दधि: ॥ ५ ॥ ग्राम व १

प्रादेशिक स्तर पर प्रथम अनुसूचित। एक जाति का प्रमाण कि
 यह एक जाति है और दूसरी रवि है। जयपुर में अर्द्धरक्त ही जाति
 है और अर्द्धरक्त का सुविचार अमर जिल्ले हरे और अर्द्धरक्त
 पदार्थ मात्र है रवि है।”

अर्थात् एक श्रमसक्ति और दूसरी शक्तिकि सबसे प्रथम
काम है। श्रम माय विना को प्रकृति ज्ञात होना ऐकिये-

15.

10

आदिपुत्रः

सिद्धांतः

514

जी. प्रकाश

Positive

Negative

[illegible]

कठम कुपो रैव हृदि प्राण हृदि ॥ अ. १११९

एक देव कीनसा है ? प्राण है ।" अर्थात् सब देवोंमें
मुख्य एक देव कीनसा है । अतःमें निवेदन है कि प्राणही सब
के मुख्य और बड़ा देव है । और देखिये—

પ્રાણી જાત સ્પેશિયલ સિપ્પટ # ૩ ૫/૧/૧૧ થી ૬/૧/૧૧

प्राणही सबसे सुखम और भद्र है।” सब जन्म हुए इसके
आचारसे रहते हैं। तथा—

(१) प्राज्ञो वै यः सत्यस्य प्रतिष्ठितम् ॥ इ ५१११७

(२) प्राणो वा अमुकम् ॥ ५, ११६।३

(३) प्राणी के समस्त अङ्ग २।१।२

(४) प्राप्ति के वषों तकम् ३३ ११२६

[illegible]

प्राण फ़ोस आता है !

परमात्मने ज्ञान की कलाति की है इसका सर्वत्र पूर्ण स्मरण ही पुण्य है। परंतु इस श्रवणक्रिया प्रति प्राप्तिरोंके लिये हेतु है। इस विषयमें निम्न श्रवण करने योग्य है—

अद्विष्ट उदयन् अयावी दिशो वसिष्ठि तेन प्राप्यान्
प्राप्यान् रश्मिषु संविबले ॥ बह्विनां वासीषीं घटु
रीषीं यदधो बह्वर्षं बह्वरा दितो वासवं प्रकाश
वति तेन सर्वान् प्राप्यान् रश्मिषु संविबले ॥ १ ॥
उ एव वैश्वानरो विषक्याः प्राप्नोऽग्निवद्वले ॥ तरेण
एवाभ्युपगृह् ॥ ७ ॥ विषकुर्य इति जालवेदं वरापर्व
ज्योतिषिकं तर्पणम् ॥ सहस्रादिभिः एतत्ता वर्तमानः
प्राप्याः प्रजामाप्नुवन्त्येव सुखं ॥ ८ ॥ अथ उ ११९

“सूर्यका जन्म बरबन होता है तब उसी दिशा में सूर्य जिनको के द्वारा प्राण रखा जाता है। इस प्रकार सूर्य सूर्यविराजिते द्वारा ही प्राण पहुँचता है तब वह सूर्य ही अस्तन पैदा कर भूमि है ॥ वह सूर्य (विद्य-रूप) सब कारका प्रकाशक (हरिन्) भनसारदा हरन कारनैव ता, (जाता-सैवर्त्त) धर्मोदा कपारक एक मेह विमले पुन मेहर्त्त प्रकाशोने लहर्त्तों विरजित बाव प्रथमदेवाता वह प्रकाशोदा प्राण उदभवो प्राण होता है ॥”

यह सूर्यका वर्णन क्या रहा है कि सूर्यक प्रकाशे मात्र क्या
 वर्णन है । सूर्यकिशालाके विना प्रकाशी शक्ति नहीं हो सकती ।
 इस सूर्य किशालाका मूल प्रकाश यह सूर्य देव ही है । इसी कारण

पहिली पाठ को हममें कभी दे नह नह दे कि बहुत लोग आदि
इंद्रियां शरीरमें तथा सूर्य के चंद्र बाहु आदि अंगठमें
देव हैं और वे सब प्राणक बसमें हैं। आणकी सक्ति इनके
अंदर आती है और इनके द्वारा कार्य करती है। जिस प्रकार
एक आंखमें बाहर आंखको देखनेके लिये समय बगानी है,
वही प्रकृत सूर्यके अंदर निधम्यायक प्रकृति रहकर प्रकाश
कर रही है। इसलिये आंखकी दृष्टि और सूर्यकी प्रकाशसक्ति
आंख और सूर्यकी वही है प्रत्युत प्राणकी है इसी प्रकार
अन्य इंद्रियों और अंगठोंके विषयमें जानना उचित है।
देव कल्प जैसा शरीरमें इंद्रिय प्राणक है वही प्रकार अंगठमें
अग्नि बाहु आदि देवताओंकी भी प्राणक है। पाठक इस दृष्टिको
धारण करके अग्नि सक्ति देवताओंके सर्वोच्च विचार करें।

इसका सुकसमें दूसरी बात यह है कि, जमि सूई, ईद बाहु, हुपिरी जल आदि धर्म प्राकृतिक होनेसे इन देवताओंके सुकसमें भी प्राकृतिक प्रकटित हुई है। इसलिये जो सज्जन जमि आदि सुकसोंका विचार करते हैं वे कष्ट सुकसमें विधायक प्राकृतिककामी विचार करें। अर्थात् जमि सूई आदि देवताओंके नामोंका 'अथ' जैसे समझकर उन सुकसोंका कार्य करें। जो सुकस सामान्य कार्यको हमारे लक्षके कार्य इस प्रकार हो सकते हैं। देखिये—

प्राणरूप अपि ।

अग्निना रविमन्त्रवत् सोऽग्नेयं शिवं दिव्ये ॥

बसन्तः वीरवत्सलम् ॥ १११३ ॥

“ (अग्निवा) प्रायसे (१५६) कासा और (पार्श्व) पुष्टि (दिने दिने) प्रसादन (अमृत) प्राप्त होती है । और कीर्ति सुख वर भी मिलता है । ”

यह आर्त स्वयं ही है कि प्रायः आत्मा आत्मा तो न ही
 शरीर की सोच बचनी और न शरीर की पुष्ट होनी फिर न
 भ्रमना ही दुःखाय ही है। इस प्रकार बहुत विचार हो जाता
 है यहाँ जतना स्वयं नहीं है इच्छा नहीं है। केवल दिव्य
 ही किना है। केवल गुरु दक्षिण का इन्द्रिय पता कम आता
 है इच्छा पठने को उचित है कि है यहाँ स्वयं प्रायः
 किना है। आत्मा नरते करत किनी न किनी कम न किनी
 प्रायः ही ही और नरते नरते नरते नरते ही ही ही।

सबत सुनतामैं हीसरी बात यह है कि कामि अग्नि घरके गूढ़ कबोसैं प्राणविषास महद्व बसमैं वर्धन किया है। इसका बौवास। स्वष्टीकरण देखिए—

(१) देवाती बहेगमः अस्ति ॥ पात्र 'इन्द्रियोकी' नाम-
देवाता है, सूनाबको' नामाया है प्राच्यनाम द्वारा विद्वान्'
उपनि प्रप्त करते हैं ।

(२) पितृणां प्रथमा कथा नदि = सेतूने पाठक कवि-
 बर्मि सवसे भेद और (प्रथमा) पहिले बर्नेकी पाठककवि-
 प्रथम है और बड़ी (स का) अक्षरमध्यम धारणा करती है।

(३) लक्ष्मीना सर्व वरित व्यसि = सत लक्ष्मीवर्णा वस
(वरित) वास लक्ष्म लक्ष्मी लक्ष्मण प्राय ही करता है ।
तो लक्ष्मी, दो काम दो वास और एक मुख में सत लक्ष्मी है
ऐसा वेद और लक्ष्मीवर्णों में कहा है ।

(४) अवधारितरत्नं चरितं नमि = (अ-वर्ण, आगिरत्नं)
 स्थिर अंगोके रत्नोद्य (चरितं) यन्म अवर्ण प्रमय प्राय ही
 करता है। प्रायः अरय योव रत्न सय अमोमि प्रमय करत
 है अर सर्वथ पर्वथ कर सर्वथ उधि करता है।

[illegible]

इसलिए विचारोंके पूर्णतः कथामा अधिक रचना होगी। पठक इसका विचार करें। पूर्णतः तथ्याभिव्यक्ति प्राणाय प्रेरक भावना" कहा है और कुछ इतिहासके "बहुमुखी प्रेरक वाच्यी भावना" कहा है दोनोंका तात्पर्य एक ही है। कुछ वाचक विचारोंके द्वारा इसके मूलभावोंको जान सकते हैं।

पूर्वोक्त ईशोपनिषद् के वचनमें 'अथैवाहं' का अर्थ जानने
है "अन्तर्गत अद्वैतब्रह्म में आत्मा वही मात्र ब्रह्मस्वरूप
के दिग्ग वचनमें है-

॥ प्रत्ये तिथिप्राप्त्यन्तरो वं प्राप्नो व भेद एव प्रत्यः
 क्षीरं यः प्राप्नोमरा वमसति एव उक्तारमा जठरम्विषयतः

214195

जो प्राणके अंदर रहता है प्राणके अंदर रहनेपर भी जिसकी (प्राण व देह) प्राण कायना नहीं जिसका शरीर प्राण है जो अंदरके (अर्थात् वायुवर्ति) प्राणका नियंत्रण करता है, (पृष्ठ :) यह ठीक अलवासी अंदर जाता है ।

प्रायः ऊपर रहनेवाला और शायदा नियमन करनेवाला वह जानता है। इस समयके अनुसार जामाया भवके साग भिन्न भेदके है वह बात एतद होयी है। मैं जानता हूँ प्रायः मेरा ज सुख है और प्रायः आश्रित संतुष्ट है। हवा और धरती है वह मेरा वैभव और साक्षात्त्व है। इसका मैं क्या समझूँ बहूँवा और मित्रों तथा दुस्त्रियों बहूँवा वह भिन्न भिन्न है। ऊपर कहना है इस प्रायः सर्वत्र अन्य ठीकते भिन्न भवने में हुआ है—

प्राप्तो वै रं प्राप्ते हीमयि सार्वामि भूतामि रम्यते ॥

419212

પ્રાણો વા હવર્ચ પ્રાણો હીંદી સર્વેમુખાવક ૩૧ ॥ પ્રાણો
 ને વતુઃ પ્રાણે હીમામિ સર્વાનિ મુશાનિ વુચ્ચતે
 ૩૨ ॥ પ્રાણો ને સપ્ત પ્રાણે હીમામિ સર્વાનિ મુશાનિ
 સર્વમિદ્ ૩૩ ॥ પ્રાણો વ હ્રુષ પ્રાણો દિ ને હ્રુષ પ્રાણો ૩૪ ॥

1993

“आय ‘र’ है क्योंकि जब मूल आयमें रहते हैं। प्रायः ‘अथ’ है क्योंकि प्रायः अथ। अथवा है। आय ‘वत्’ है क्योंकि प्रायमें जब मूल संयुक्त होते हैं। आय ‘आय’ है क्योंकि जब मूल आयमें लम्बक रहित होते हैं। आय ‘अथ’ है क्योंकि प्रायः अथ। अथ ‘अथ’ है क्योंकि अथ।”

इसका अर्थ है मुझ बच्चे को अच्छी शिक्षा देने का भरपूर
 है।' काम बच्चे की शिक्षा के अभाव में रोना शुरू हो गई।

वहाँ केवल शुभवाचक है। इस सङ्घबनोस स्वइ पत्त जम जाया ह कि वैदिक समयमें सङ्घोंका विशेष स्थिति भी उपवीम होता था और सामान्य स्थिति भी होता था। वहाँ सामान्य स्थिति प्रयोग है। वहाँ सामान्य स्थिति प्रयोग होता वहाँ ससका वैदिक अर्थ करना चाहिए और वहाँ विशेष स्थिति प्रयोग होता वहाँ बोध—सहीच अर्थ समझना चाहिए। इस प्रकार एक ही सङ्घ के दोनों अर्थ होसैवर भी सम्भविक लोक व्यवस्था कर्णो अ सङ्घी है। जाया है कि सङ्घ इस व्यवस्थाके वर्धमान देखेंगे। वह बात वैदिक अर्थ करके सम्य विशेष व्यवस्था है इसलिये वहाँ किसी है।

अर्गोफा रस ।

शरीरके अर्धमें एक प्रकारका जीवकण व्यापारका रह है ।
इसका वर्णन निम्न अंशमें है--

कांविदसोऽगात्री द्वि रसः ब्रह्मे वा अगात्री रसः
 तदभावात्स्मात्कस्मादागात् प्राण ब्रह्ममपि तदेव परब्रह्मसि ।

U 912198

“प्रायः ही अगैर एस है हबिबि मिस अंगरे मान
जका बाप है यः अंग सभ जका है ।”

[illegible]

तुलास्व प्रवर्तो वातुमन्यसि कपचठे, ममः प्रान्ते,

आप्यस्तेजसि तेजः परस्माद् दृढतायाम् ॥ छी ड ११८६

“पुरुषकी वाणी धर्ममें सब प्राणमें, अथ एकमें और एक परदेवतामें उद्यम होता है।” यही परंपरा है। परदेवताका स्वरूप यही आत्मा है। आत्मविद्याकी परम्पराके इस प्रकारके स्थित होती है।

प्राण और अन्य क्षक्तियां ।

प्रायः आचार्य जनेक कण्डिवाँ हैं, कदापि प्रायः ज्ञान सर्वत्र
देवतेके किये विप्र मंत्र देखिये—

तीन छोक।

बानेबाबे कोकः मनो अन्तरिक्षकोकः प्रायोदयी कोकः ॥

(१० ११५५)

वह काली पृथ्वीकोक है, सब अन्तरिक्षकोक है और प्राय स्वर्गकोक है । "

इसीविध प्राणावायु के अन्धासुके स्वर्गवासकी प्राप्ति होती है । देखिये प्राणकी कितनी वैजृता है ॥ इस प्रकार उपनिषद्में प्राणविद्या है । विस्तार करनेकी कोई आवश्यक नहीं है । थोड़े-से आत्मज्ञान वालोंका खोजेका नहीं किया है । इससे उपनिषद्में ही प्राणविद्याकी सम्पत्ता हो सकती है । जो पाठक इसकी और अधिक गहराई देखना चाहते हैं वे स्वर्ग उपनिषद्में इसको देख सकते हैं । स्पष्टा है कि पाठक इस प्रकार इस विद्याका अभ्यास करेंगे ।

प्राणावायुसे बहुत प्रकारकी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं ऐसा प्राणके विविध भागोंमें किया है । प्राणावायुका अभ्यास किए बिना ही। कष्ट शक्तियोंकी प्राप्ति होना असम्भव है । अभ्यासके बिना शक्ति की प्राप्ति संभव ही असम्भव है । प्राणावायुका अभ्यास करनेके लिये प्राणकी सत्ता की सम्पत्ता प्रथम होनी ही आवश्यकता है । वह कार्य थोड़ा ही है किन्तु इस केवलका उपयोग ही सकता है । इस सुखः। जरूरी प्रकार पहलेके पञ्चाङ्ग व्यवहारान् अपनी प्रत्यक्षद्विधा आत्मज्ञान करना चाहिये । अपने प्राणका वह स्वरूप है उसका वह महत्त्व है और इसकी व्याख्यासे ही प्रकाश स्पष्ट हो सकता है हरगि विषयकी उत्तम कल्पना इस सुखके अभ्यासके हीनी । इसी कल्पना एक हीनेके पश्चात् प्राणावायुका अभ्यास करनेसे बहुत लाभ हो सकता है ।

इति द्वितीय अध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य ।

(५)

(ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारीष्मन्भरति रोहसी शुभे तस्मिन् देवाः संमनसो यवन्ति ।

स द्वाभार पृथिवी दिव्यं च स आचार्यः उपसा विपतिं

॥ १ ॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवमनाः पृथग्दत्ता अनुसवन्ति सर्वे ।

शत्रुर्वा धनमन्यायुन् शर्वाक्षिद्रत् त्रिभुवाः वदसहसाः

सर्वान्ति देवास्त्विषा विपतिं

॥ २ ॥

अर्थ—ब्रह्मचारी (जने रोहसी) पृथिवी और पुष्कोट हव सोर्बोको (हवन्) पुनः पुनः अनुसृत करता हुआ (चरति) चलता है, हवन्ति (उभेयम्) इस ब्रह्मचारीके अंतर्गत सब देव (धर्मवत्ता) अनुसृत सबके साथ (सवन्ति) रहते हैं (य) वह ब्रह्मचारी पृथिवी और (दिव्यं) पुष्कोटका कारण करता है और वह अपने उपरके अपने आचार्यको (विपतिं) परिपुष्ट करता है ॥ १ ॥

इस विषय संबंध और वृत्तव्य मे (कौं) सब ब्रह्मचारीको अनुसरते हैं । (यवः त्रिभुवः) तीन तीन (त्रिभुवाः) तीन तीन और (वद-सहसाः) छः हजार देव हैं । (सर्वाक्षिद्रत्) इस सब देवोंका (या) वह ब्रह्मचारी अपने अपने (विपतिं) पाकव करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—[१] पृथिवीमे एक पुष्कोटवर्त्यता की जो विधि वत्ता है उसको ब्रह्मचारी अपने अनुसृत करता है [२] इससे उस ब्रह्मचारीमे सब देव अनुसृत वत्तव्य विधाव करते हैं [३] इस प्रकार वह पृथिवी और पुष्कोटको अपने अपने उपरके पाक करता है और [४] सभी देव वह अपने आचार्यको भी परिपुष्ट करता है ॥ १ ॥

इस विषय आदि सब ब्रह्मचारीक कथन होती हैं । और ब्रह्मचारी अपने अपने उपरके कथन करता करता है ॥ २ ॥

आचार्यं उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कण्ठे गर्भमुन्तः ।

॥ १ ॥

तं राश्रींस्तिष्ठ उदरे विमर्ति तं ज्ञात ब्रह्ममसिर्भयन्ति देवाः ।

इयं ममिदं पुष्टिनि घौष्टिनीपोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया भवेण सोकात्तपमा विपतिं

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी पुनं वसानुस्तपसोर्दक्षिणम् ।

तस्मान्ज्ज्ञानं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अध्वरेण साकम्

ब्रह्मचार्येण समिधा समिद्धः कार्प्यं वसाना दीक्षिता दीर्घश्मश्रुः ।

स सद्य एति पूर्वस्मादुदरे समुद्रं सोकान्संगुण्यं सुदृगाचारिकम्

॥ ६ ॥

अर्थ ब्रह्मचारीको (उपनयनार्थः आचार्यः) अपने पाप करनेवाला आचार्य उसको (ज्ञाता गर्भ) अपने अदर करता है । उस ब्रह्मचारीको अपने उदरे (विद्याः राश्रीः) तीन राश्रितक रक्ता है, जब वह ब्रह्मचारी (ज्ञात) द्वितीय अम्भ केन ब्रह्म जाता है, तब उसको ब्रह्मके जेबे में (देवाः) विद्वान् (अग्नि अथर्वि) सब प्रकारके इच्छा होते हैं । (इयं पुष्टिनी) वह पुष्टिनी पृथ्वी (समिधः) समिधा है और (द्वितीया) दूसरी समिधा (पौ) पुष्टिक है । इस (समिधा) समिधाके वह ब्रह्मचारी अतारिणी (पुष्टिनि) पूर्वता करता है । समिधा मेखला अम करनेका अम्भान और तब इसके द्वारा वह ब्रह्मचारी सब (सोकान् विपतिं) कोकोको पूर्व करता है ॥ १ ॥

[ब्रह्मचः पूर्वः] ज्ञानके पूर्व [ब्रह्मचारी ज्ञातः] ब्रह्मचारी होता है । [पुनं वसानः] उन्मत्ता घाग्य करता हुआ अपने (उन्मत्त-अतिष्ठ) अदर करता है । उस ब्रह्मचारी से [ब्राह्मणं पश्यं ब्रह्म] ब्रह्मसम्बन्धी वेद ज्ञान [ज्ञातं] अस्ति होता है तथा सब देव अदरके साथ होते हैं ॥ २ ॥

(१) (समिधा समिद्धः) तेजसे अक्षित (कार्प्यं वसानः) कुण्डलमें आग्य करता हुआ (दीक्षितः) अपने अनुष्ठान आचार्य करनेवाला और (दायः शत्रुः) वही वही वही मृत पारम करनेवाला ब्रह्मचारी (पृति) अक्षित करता है । (२) (ताः) वह (सोकान् संगुण्यं) कोकोको इच्छा करता हुआ अपना कोकसमस्त करता हुआ और (सुदृगा) आचार्य उसको (आचारिकम्) अन्तर देता है आत (३) अपने अदर अनुष्ठानक (सद्यः पति) अग्नि ही अनुष्ठान है ॥ ६ ॥

आचार्य—[१] जो आचार्य ब्रह्मचारीको अपने पद रक्ता है वह उसको अदर और ही प्राप्त करता है । [२] जातो वह द्विज उस पुष्टिके पेटमें तीन एभि रहता है और वह अपने ब्रह्म अम्भ हो जाता है । [३] जब वह द्विज मन जाता है तब ब्रह्म अम्भान सभी विद्वान् करते हैं ॥ ३ ॥

पुष्टिनी और पुष्टिके इनकी समिधानिसे ब्रह्मचारी अतारिणी पूर्वता करता है । तथा ब्रह्मचारी अम आत तब अदर करके सब अम्भानको आचार्य देता है ॥ ४ ॥

ज्ञानमार्गके पूर्व ब्रह्मचारी वचना आचार्य है । ब्रह्मचर्यमें अम और तब करनेसे अन्धकार प्राप्त होती है । इस प्रकारके ब्रह्मचारी ही परमसमाधि वेद ज्ञान अक्षित ज्ञान है तथा देव अदरके सब अनुष्ठान होते हैं ॥ ५ ॥

(१) समिधा कुण्डलिन आदिसे सुसंयमित योग हुआ वही वही वही मृत आग्य अम्भानका तेजस्वी ब्रह्मचारी विद्वान् हुआ आचार्य करनेसे अदर अपनी अग्नि करता है । (२) अन्धकार अम्भानिसे अन्धकार अम्भानि करता हुआ अपने अम्भानके अम्भानमें अम्भ हो अन्धकार करता है और आचार्य अपने अम्भान वसाना है । (३) इस प्रकार अम्भानिसे अदर करता हुआ वह पुष्ट करके अदर अनुष्ठान अनुष्ठान है ॥ ६ ॥

अर्वागप इतो अन्यः पूषिष्वा अमी समेतो नर्मसी अन्तरेमे ।
 तयोः भवन्ते रुमपोषि वृक्षास्ताना तिष्ठति सर्पसा अश्वचारी ॥११॥

अमिकन्दन् स्तनयमरुमः शितिक्रो वृहच्छेपोऽनु भूमौ जमार ।
 ममचारी तिष्ठति सानौ रेतः पूषिष्वा एन जीवन्ति मृदिश्रुमर्तसः ॥१२॥

अग्नौ घ्ये चन्द्रमसि मातरिश्वान् अश्वचारीष्पु समिधमा दधाति ।
 तासांमर्षाणि पृथग्भे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्धमार्पः ॥१३॥

आचार्यो मृत्पुर्कः सोम ओषधयः पर्यः ।
 जीमूता मासुन्तस्त्वानुस्तेरिद स्वेतरामृतम् ॥१४॥

अमा धूर्तं कृणुते कर्तुमाचार्यो मृत्वा वरुणो यष्टदैष्टु प्रक्षार्पते ।
 तद् अश्वचारी प्रार्थच्छुन् स्वान् मित्रो अश्वमारमनः ॥१५॥

अर्थ—(अर्वाद् अग्नः) इमार एक है और [इतः पूषिष्वा अग्नः] इन पूषिष्वासे वृक्ष जमरा है । व [अमि] कोनों [इम अमरा नमसी] इन पूषिष्वा और पुनोच्छे कीजते [स्तनय] निकलते हैं । [तयोः दवा रुमसः] उनकी वरु वरु निर्मले [अमि अमरे] कर्मणी हैं । अश्वचारी तपसे [ताद् आविष्टति] उन किरनोंका अपिष्टाटा होता है ॥११॥

([अमिकन्दन् स्तनयम्] पञ्चवा करनेवाका [अमर मित्रिणः] मृ और काम रगसे युक्त [वृहद् दीपः] बड़ा प्रभाववाकी [अश्वचारी] अश्व मर्षाद् उरुको ताक के अनेकाका भेष [भूमौ अग्नौ जमार] भूमि पर योग्य भोजन करता है । तथा [सानौ श्रुमर्तः] पडाह कार श्रुमर्त [रेतः जिहति] उनकी वृद्धि करता है । [एन] वससे [मृदिश्रुमा मर्तसः] चारों दिवासे जीवित रहती है ॥ १२ ॥

अग्नि सर्व चक्ष्मा वायु [अप्यु] अक्ष इनमें अश्वचारी समिधा डालता है । इनके तेज पृथक् पथद् [अग्नि] मेघोंमें रंजित करत है । (तासां) इनसे (पर्यं) वृष्ट (आपः) अक्ष नार (जातव) धी नार पुनर्की तराति होती है ॥ १३ ॥

आचार्य की मृत्पु वरुण सोम ओषधि तथा पथक है । उसके ओ (मर्षाणः) कारिषक भाव हैं व (जीमूता) मेघवर है व (रेतः) इनक द्वारा ही (इदं काः आसुतं) वह दवाप रहा है ॥ १४ ॥

(अमा) दृश्य मरुतम (केवळ वृक्ष) वरुण दृष्ट तम करता है । आचार्य वरुण वरकर (अमा-वती) दम पञ्चकके विषममें (वरु वर दे-छद्) ओ ओ चाहता है (तद्) वरुको मित्र अश्वचारी (ताद् आप्तव्यः) अपनी आनछाकेसे (अमि मावच्छन्) देता है ॥ १५ ॥

भाष्य— ओ अमर्ष का इस त्रिकोणमें दर्श कर रहे हैं । उनका अकिष्टाना अश्वचारी है ॥ ११ ॥

मेघ अश्वचारी है वह अमर तपसे भूमि की शांति करता है । अश्वचारी इनम वह वाय मेघ ॥ १२ ॥

अश्वचारी अग्निदेवके समय आग्नेय आहुति चालना आगुका गुण करता है ॥ १३ ॥

आचार्य देवनाम है वह अश्वचारीके लक्षण बखान करता है ॥ १४ ॥

प्रदृश्यवत् लक्षणके ही दिव्य तेज अथवा तेजस्वी रूपका अमाह अचजित ईष्ट है । आचार्य वरुण वरकर ओ दृश्य करता है वरुकी वृद्धि दिव्य अपनी शान्तक अनुष्ठार करता है ॥ १५ ॥

पुष्पं सर्वं प्राजापत्याः प्राणानात्मसु विप्रति ।

तान्सर्वान् ब्रह्मं रक्षति ब्रह्मचारिण्यामृतम्

॥ २२ ॥

देवानामेवत् परिपूतमनस्याकूटं चरति रोचमानम् ।

तस्माज्जातं ब्रह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाभ्यः सर्वं अमूर्तेन साकम्

॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म ब्रह्मणं विमर्ते तस्मिन् देवा अधि विधेः समोक्ताः ।

प्राणापानौ ज्वनयन्मातृ कृपान् सार्धं मनो हृदयं ब्रह्म मेधासु

॥ २४ ॥

चक्षुः श्रोत्रं यज्ञो अस्मासु प्रेक्षासु रेतो लोहितमुदरम्

॥ २५ ॥

तानि कर्तारं ब्रह्मचारी संलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।

स स्नातो बभूव विज्जुः पृथिव्यां बहु रौचते

॥ २६ ॥ [१६]

अर्थ—(सर्वं प्राजापत्याः) राजापति परमात्म्यादि कारण कृत् कृत् सब ही पदार्थ पुष्प पुष्प (आत्मसु प्राणात्) अपने अंदर आत्मो (विज्जुः) काय करते हैं । (ब्रह्मचारिणि आमृतं) ब्रह्मचारीमें रहा हुआ (ब्रह्म) ज्ञान (तात्) चर्चा रक्षति) उन सबका रक्षण करता है ॥ २२ ॥

देवोक्ता (पदम्) वह (परि—हृत्) कलाह देवोक्ता (अन् अन्तरात्) सबके केन्द्र (रोचमानं) केन्द्र (चरति) चरता है । सबसे (ब्रह्मणं) ब्रह्मणंको (ज्येष्ठं ब्रह्म) केन्द्र ज्ञान हुआ है और (अमूर्तेन सार्धं) अगर अपने साथ (सर्वं देवः) सब देव सब हो गये ॥ २३ ॥

(आत्मन् ब्रह्म) ब्रह्मदेवताका ज्ञान ब्रह्मचारी कारण करता है । इसलिए हममें सब द्रव्य (आदि समोक्ताः) रहे हैं । वह ज्ञान अपना कृपान् सार्धं मन हृदय, ज्ञान (मातृ) और सखा (स यत्) प्रकट करता है ॥ इसलिये है ब्रह्मचारी । (अस्मासु) हम सबमें चक्षुः, श्रोत्र, वस जल (रेतः) वीर्य, (लोहित) रक्त और (उदरं) पेट (भिह) पुष्ट हो ॥ २४-२५ ॥

ब्रह्मचारी [तानि] सबके विषयों [कर्तारं] योजना करता है । [समिक्तरं पृष्ठे] सबके समीप तब करता है । हम ज्ञानसमुद्रमें [तप्यमानः] तप होकरका वह ब्रह्मचारी [त स्नातः] जब स्नानक हो जाता है तब [बभूवः विज्जुः] अत्यंत तेजस्वी होनेके कारण वह इस पृथिवीपर बहुत चमकता है ॥ २६ ॥

अन्वर्थ— ब्रह्मचारी वह तेज सबकी रक्षा करता है ॥ २२ ॥

ब्रह्मचारीके तेजसे अगर हुए है ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारीके तेजसे सबकी पुष्टि होती है ॥ २४-२५ ॥

ब्रह्मचारी अपने तेजसे चमकता है ॥ २६ ॥

आचार्योऽग्रेष्ठः प्रह्वारिः प्रह्वारिः प्रह्वारिः प्रह्वारिः प्रह्वारिः प्रह्वारिः प्रह्वारिः प्रह्वारिः ॥१॥
 प्रह्वार्येषु तपसा राजा राष्ट्रे वि रक्षति । आचार्योऽग्रेष्ठः प्रह्वारिः प्रह्वारिः प्रह्वारिः ॥१॥
 प्रह्वार्येषु कृपाः युवान् विन्दते पतिषु अनुग्रहान् प्रह्वार्येषु पात्र्योऽप्युतं विजिगीषति ॥१॥
 प्रह्वार्येषु तपसा देवा मृत्युमपाप्नोत । इन्द्रो ह प्रह्वार्येषु देवस्यः स्वशरामरत् ॥१॥
 मोर्षवशो मृत्युमपनोरात्रे वनस्थतिः । संतुस्तरः सहर्तुमिस्ते आता प्रह्वारिः ॥२॥
 पार्ष्णिना द्विष्याः पुत्रं आरण्या ग्राम्यावपु ये ।
 अपुत्राः पश्चिमेव ये ते जाता प्रह्वारिः ॥ ११ ॥

अर्थ— आचार्य ग्रेष्ठकारी होता चाहिये [ग्रेष्ठपतिः] ग्रेष्ठपात्रक भी ग्रेष्ठकारी होता चाहिये । इस प्रकारका ग्रेष्ठ
 [गिराजति] विशेष कोसला है । जो [वक्रो] मन्त्री [नि-राज] राजा होता है, वही इस कदम्बा है ॥ ११ ॥
 ग्रेष्ठकारीका तपसे साधनेसे राजा राष्ट्राधिकार करछत्र करता है । आचार्य भी ग्रेष्ठकार्यक साध करनेसे ग्रेष्ठकारी
 ही इच्छा करता है ॥ १० ॥
 कृपा ग्रेष्ठकार्य प्राप्त करनेके पश्चात् तदन पतिको (विन्दते) प्राप्त करती है । [अनुग्रहान्] देव दे
 (अर्थ) मोक्ष भी ग्रेष्ठकार्य प्राप्त करनेसे ही प्राप्त करता है ॥ १० ॥
 ग्रेष्ठकार्यक तपसे सब देवोंमें मृत्युको (मृत्युमपनो) प्राप्त किया । ईश्वर ग्रेष्ठकार्यके ही देवोंको (स्वः)
 (काम्यार्थ) दत्ता है ॥ ११ ॥
 पार्ष्णिना पश्चिमपक्षिणी (पार्ष्णिना) कहल गच्छता (पार्ष्णिना) कहल गच्छता करनेवाला पश्चिम, पश्चिम, पश्चिम
 (अर्थ) पश्चिम के सब ग्रेष्ठकारी (जात्राः) हो गये हैं ॥ ११ ॥
 (पार्ष्णिना) पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाले (आरण्या ग्राम्यावपु) अरण्य और ग्राममें उत्पन्न होनेवाले जो (अणु
 पशवः) वक्रादि पशु हैं तथा (द्विष्याः पार्ष्णिनाः) आकाशमें लक्ष्मी करनेवाले जो पक्षी हैं वे सब ग्रेष्ठकारी (अणु
 पशु हैं ॥ ११ ॥

आचार्य— अब विहङ्ग ग्रेष्ठकारी होने चाहिये सब ग्रेष्ठकारी—ग्रेष्ठपात्रक भी ग्रेष्ठकारी होने चाहिये । इस प्रकारका ग्रेष्ठ
 चाहिये । जो मोक्ष गतिन ग्रेष्ठपात्र प्राप्त करनेसे वही पुत्रोत्पत्ति होने तथा जो विशेष राजपुत्र होने से ही ईश्वर काम्यार्थ ॥१॥
 राजा राजपुत्रग्रेष्ठपात्र कृपा लावेसे ग्रेष्ठकार्य प्राप्त करनेसे राष्ट्राधिकार करछत्र करता है । आचार्य भी ऐसे ग्रेष्ठकारी
 ही इच्छा करता है कि जो ग्रेष्ठकार्यक प्राप्त करता है ॥ १० ॥
 ग्रेष्ठकार्य प्राप्त करनेके पश्चात् कृपा अपने मोक्ष प्राप्त करने दत्ता करती है । देव और भीष्म भी ग्रेष्ठकारी करते हैं इसमें
 पात्र आर देव तथा करछत्र ॥ १० ॥
 ग्रेष्ठकार्यक प्राप्त करनेके पश्चात् ही सब देव अमर बने हैं । तथा ग्रेष्ठकार्यके काम्यार्थ ही देवराज ईश्वर सब दत्त देते
 हैं ॥ ११ ॥
 सब ग्रेष्ठकार्यके पुत्र है ॥ ११ ॥
 सब ग्रेष्ठकारी अणु है ही ग्रेष्ठकारी है ॥ ११ ॥

एतत्समे सुखं विद्याय अवलम्बत इत्युक्ते । इत्युक्ते कीदृशं मे मंदमा
अथवा कश्चिन्मे मंदमा वह केचन कथयन्त्यस्य ही होवा
प्रवृत्ति विनयीक कथयित न होवा । परंतु इस विषयमें लक्ष्य
सम्यक् सिद्ध विवेक ज्ञेय ही पुण्य ही कर सकना है ।

इत प्रकर (१) तीन (२) तीन (३) तीन की
और (४) छः हजार देवताओंका स्वरूप । स्वयं और
माहम्यम् । अथर्ववेदके आधीन व सब देव रहते हैं । का
अथर्ववेद की वचना और बोधार्थि स पक्ष नहीं करता उभे
आधीन उक्त देव रह नहीं सकते । जब ये देव स्वराधीन नहीं
रहते होकरमे माया स्वरूप होकर लगते हैं तब वही माया
पक्ष अवस्था हो जाती है । अनेक इतिव स्वरूप हीनेसे प्रपञ्च
की अवस्था क्षिति वि। सङ्गीत है इसकी अवस्था पठक स्वर्य
कर सकते हैं ।

अथवा दीर्घाक्ष्य लघ्वीपञ्चम अवयवमप्य उच्य
विचारोक्ता प्रथम वम शिष्य ईश्वरोपानवा अग्नि सव माहना
से नहीं क ना है कि, अपने कर्मा में विद्यमान वेद । आगे लक्ष
अपने आधीन ही जान अर्थात् अपने अर्थ ही अर्थ कथिनी
स्वाधीन होकर मायावर्ष अग्नि पुण्यने विद्यमान हो ज्ञान ।

इत प्रकर अथर्ववेद की पांच भिन्निका कर्तव्य इत मंत्रमें हुआ
है । पठक इत मंत्रक कर्तव्य की आवश्यक कोम करें और कर्तव्य
हो सके वहीकर प्रत्यक्ष करके इस रहने में अन्ती कथिनी करनेका
प्रत्यक्ष करें ।

अब आगे के तीनों मंत्रमें अथर्ववेदमंत्रमें पांचके योग्य
“ तीन वचनके अक्षरीय विचारण ” कथ्यम् । साधारण
मनुष्य तीन वचनके अक्षरमें लक्ष्य हो रहा है इस तीनों
अक्षरीय विचारण करवा और तीनों कभीकी प्राप्ति करवा इस
अक्षरमें होता है ।

गुरुशिष्य-संवाह ।

इस सुशोभ मंत्रके पहले अर्थनाममें कहा है कि, अब
अथर्ववेदका तीनों विषय समझकर अपने जप रहना है तब
वह इनकी जाने मंदर कर केगा है । “ वही मंदर क जेध
तत्तरी केवल अपने विचारमें वचना कुलमें संश्लिष्ट करवा
हस्ता ही नहीं है परंतु इन विचार को अलग हारने रहना
है । हरने अवस्था जाने कथने रहनेका लक्ष्य वह है कि,
जसने सिद्धाक्ष कृत् भी नहीं रहना है । शिष्य प्रत्यक्ष अपने
पक्षमें लक्ष्य परिचारमें होता है उनमें कोई बात छिपी नहीं
रहती । परंतु इस अक्षरपीछ अर्थ ही अर्थके मंत्रमें होता

है इनमें हृदयमें कोई बात जसने छिपी नहीं रहती ।
वही सुश्लिष्टवत्ता लक्ष्य है । गुह अपने विचारमें कोई बात
अलग पक्षमें विचारण कर ना रहे, जो विद्या स्वयं प्राप्त हो है
तब पूर्ण ही तब विचारण वह मा, गता विचारणी आचार्य के मंत्र
रहकर माह गुहके छिपी वक्ष्य संज्ञक न रहे ।

तीन रात्रिका निशास ।

इत मंत्रका दूसरा वचन है । “ वह आचार्य अपने मंत्र
उक्त अक्षरकारी तीन रात्रिका समय स्वप्न होनेतक भाव
करता है । उक्तमें अक्षरकारी को प्रत्यक्ष करनेका लक्ष्य पूर्ण
रहनेमें वचना ही है । वही तीन रात्रिका भाव रहना है ।
तीनमें तब विद्य “ ऐसा नहीं कहा है, परंतु तिष्ठा रात्रि
(तब रात्रि) ऐसा कहा है । रात्रि सव अवधारण
भाव वक्ष्य है और अथर्ववेद अक्षरमा केवल स्वर ही
अथर्व तीन रात्रिका लक्ष्य तीन प्रत्यक्षका अक्षर है । इस
विचारण रात्रि गुहका पाठ रहनेका आक्षर देव विद्य हास है
कि तीन प्रत्यक्षका अक्षर दूर होनेतक प्रत्यक्ष पाठ विचारण करा
है । एक अक्षर लघ्वीपञ्चम सुश्लिष्टवत्ता होता है परंतु
अक्षर अक्षरका विचार ही होता है और तीनों अक्षर अक्षर
स्वरके लक्ष्य विषयमें अक्षर होता है । इस तीनों अक्षर
की दृष्टि क ना ही विचारणवत्ता उक्त है । उक्त तीनों अक्षर
के लक्ष्य अक्षर अथर्ववेद रात्रिमें प्रत्यक्ष कथ्य है । आचार्य
कृताते कालपूर्वका उक्त होनेके पाठ वह प्रत्यक्ष विचारण
अथर्ववेदपीछ करके स्वरूप और पवित्र प्रत्यक्षमें आता है ।

वह तीन रात्रिकोंका विचार कर्तव्य प्रत्यक्ष ही अक्षर है ।
पाठक विद्यापूर्वक वही देखे । वहा बोधार्थ विचारण विद्य
कथ्य है ।

शिष्यो वागीर्ष्यमदीयुरे वैदमक्ष्य अथर्व अतिविद्यमन्त्रम्

(पठ ११५)

वह मन्त्रिण्याते कहता है कि दू कमस्वर वरने बोध
अथर्व अतिविद्य में वरने तीन रात्रि रहा है ” इस अर्थ-

आधु व म् सुशोभम् । (पठ ११६)

तीन वर माह कर । लक्ष्य अथर्व मन्त्रिण्याते तीन वर
माह विद्य । उक्तमें वर माह । वर (१) आधुवेदका,
(२) अक्षर आधुवेदका और (३) अक्षर विचारणी
ही वचना है । इन अक्षरपूर्वमें मन्त्रिण्याते विद्या है वही
प्रत्यक्ष मन्त्र “ वर ” है इस अक्षरार्थ-रूपके १७ वरमें
भी “ आधुवेदका ” अथर्व “ आधुवेदका ” मन्त्र है । “ देव

पर देता है ज्ञानवा श्रमकसे देता है उसका संश्लेष सिद्ध करता है अज्ञान प्राप्त ज्ञानका संश्लेष सिद्ध हो करना चाहिये। ज्ञानरूपसे त्रिगुणकी स्थिति गुरुशिष्यनामे मन्त्रों में यह बात भी जान लेंगे, वे इस यज्ञका भावचर ही-क समझ सकते हैं।

संज्ञके आत्म मानमें कहा है कि, उक्त प्रकारके 'प्रज्ञापन' में उचित मरुत साथ अनुकूल मन बाध करके सब देख रहता है। प्रथम संज्ञके स्पष्ट चरममें इसका विचार हो ही जाता है। इस प्रकार सुधारण प्रज्ञापारीको सब इतिहास और अवयव उचित मन ही इच्छाके अनुकूल रहते हैं, वह अवधि हो जाता है। मन आदि का सिक इतिहास समझ आर सब बाधा है। प्रतीक समझ आते वह बाध और बाध होता है। यह अवधि है। जिसको पूर्ण इतिहास से मन 'सिद्ध होता है' उद्योग नाम 'मन' है और उद्योग मन का नाम ही से-मन' है। इससे पाठक जान सकते हैं कि का प्रथम उद्योग प्रज्ञापारी हाथ है वही जन्म काचर आचार्य मनसे पूर्ण मन अथवा 'मन' कहा है। आचार्य ही नाम 'मन' होता है।

ब्रह्मचारीकी मिथा ।

[illegible]

ब्रह्मचरि फल आत्मयज्ञ ।

यस दस प्रजा वा पूर्व म म न सभा हो खाता ह तब
हू मद्रास (१) इस बिनीत भाग्यो बा समिपनि बर कर
इसन करता है । इस का कवन सब मद्रासपी

अपनी सच भिन्नता व्यक्त करनी होती है। यही सच है। हमें
 स्वीकार है। जो आज हुआ था वह सबकी भाँति सिधे अंश
 के अन्तर्गत आता है। आत्मसत्य है। यही सच है, मानसिक और
 आत्मिक अन्तिमता समस्त वस्तु अंशों अपनी पूर्णता
 तक इस अन्तर्गत आती है।

आ कल मल दिया जाता है इसका समर्थन इन्हीं
महार्थों के सिद्धि करनेका कामही करता है। अमेरिका एक
अन्य इतिहास है। समाजवाद एक अनन्य एक इतिहास है। इस अनन्य
इतिहास की अंतर्गत एक अनन्य इतिहास समाज की पुनर्जाति के सिद्धि
करने का प्रयत्न समर्थित कामादी है। नही करता है नही पुन
और उपायका है। ओलिवर के पास हाथ है, उद्योग का
संपूर्ण समाजके उद्योग सिद्धि कामादी उस अतिशय अपने
काम उद्योग है। इस प्रकारका आत्मवक्तव्य समाज की पुनर्जाति
है।

हो कोय ।

दासों मजदूरी को कोटोकोट बर्बाद है। एक मूक का भेद
 है आर दूध का पुष्प का बोझ है। यहाँ बोझ मजदूरी
 इन्होंने रखा है। मजदूर का यह मुँह अपने शिक्कों को हक
 पोती कोटोटी िस देता है। वह आन्धी दुष्टों की फँस
 है। निहाय का दुष्टों पृथिवी अन्तरेक और पुष्प का एक
 दास अपने पिछे रहते हैं और वह कृपा अपने शिक्कों
 का देकर जाता। मजदूर करता है। इस मजदूर वह कृपा
 करता ही नहीं है कि पृथिवी और पुष्प का दस्तवर्ष करोती
 दुष्टों हैं मुँहों की अपूर्व कल्पना भिन्न है। कृपा नहीं
 इच्छा करता दूध का एक विषय दास करता है।

कोशरुच्यं मद्यपारी ।

[illegible]

देवोंका सेज ।

देवोंमें मन्त्रमें देवोंका तेजका वर्णन है । का उल्लास और स्तुति होता है जो सबसे श्रेष्ठ मांस कापन करता है और जो स्वर्ग तेजपुत्र होकर दुर्मन्त्रोंकी भी तेजस्वी करता है वह देवोंका तेज है । राष्ट्रमें विद्वान् एवं हाथे हैं और वे कुछ प्रकरका वैतन्त्रपूर्ण तेज अपने राष्ट्रमें कापन करते हैं । शरीर में जल-नैत्रिय तथा अत-करन आदि देव हैं कि जो अत शरीरमें रहकर लघवे की विमलता स्फूर्ति का कार्य करा रहे हैं । तथा संपूर्ण अन्तरमें पूर्वावस्थाधिक देव अपना विमलता तेज फैलाकर सब जगत्को चेतना दे रहे हैं । तत्परव वह कि सर्वत्र वही विवम है कि जो देव होने हैं, वे भेद तेजका प्रसार करके विमलता बसाह करन करते हैं ।

। वही तेज जल और स्फूर्ति महाप्राणीके फैलती है और देवोंमें कार्य करते हैं तथा अमरपन भी देती है ।

उपदेशका अधिकारी ।

जीवीय और पक्षोपदे मन्त्र में महाप्राणीक विवेक ज्ञानका उल्लेख है । महाप्राणी विमलता जल प्राप्त करता है और इस विवेक उल्लास अत्युत्त तेज फैलता है । इन हस्तुवे लघवे अन्तर सब देवताएं ओतभात होकर रहती हैं । लघवे कोई देवता और लघवी क्षति अकम नहीं होती । अन्तर सब देवताओंकी पूर्ण क्षतिके बावद वह अपना कार्य चलाता है । प्राणावामादि योगवाचन द्वारा वह अपने प्राण अंगन, अंगन आदि सब प्राणोंको अपने आधीन करता है । प्राण वक्त ईश्वरे अलक्ष्य मन बक्त होता है क्योंकि कि प्राण और मन शरीरमें एकज मिलेहुने रहते हैं । यदि प्राण विवेक रहा तो मन विवेक रहता है और मन स्थिर होनेपर प्राणकी चेतनता भी दृष्ट हो जाती है । प्राण और मन स्थिर हुम्नेसे हृदयवर्ती दिव्य

क्षति प्रकट होती है तथा हृदय और मन विमलता होनेसे योगवाचनमें ज्ञानका संभव हुम्ने और बहने लगता है । जब लघवी योगवता होती है कि वाणीद्वारा वह अपने ज्ञानका प्रसार करे । इसी प्रकारके लघुपन लघवेतकके वस्तुत्वसे जगता प्रभावित होती है । कभी कि लघुका कथन अत्युत्तरेके अनुकूल होता है ।

इस प्रकार अन्य चाहते हैं कि अपने लघुचारका कोई लघुप्रेत लघवे प्राप्त हो । जहाँ कुछ महाप्राणी बहुवता है बहुते लघुजन लघवे करते हैं कि हे महाप्राणी ! हमें लघुप्रेत हो । बहुत मात्र अन्ति ईश्वरीय क्षति बहाव तथा लघुकी वीरिय का प्रभावशाली करनेकी रीति बतानो । कोई कहते हैं कि अन्तरी लघुप्रेत बहा कष्ट दे रही है इसलिये क्यों कि विमुक्त लघु केसे प्राप्त होना ? कई महाजन पूछते हैं कि येष्ट छीक करनेका क्याव क्या है । हाजमा छीक नहीं है इसका कोई क्याव करो । वे पूछते हैं कि हमारा जीव स्थिर नहीं रहता और जल भी लघुप्रेत हो गया है; इसके विवेक क्या करन करके चाहिये ।

पूर्वोक्त प्रकार जो लघु प्राण लघु पूछते हैं उनका वस्तुत्व कातर महाप्राणी देता है, वाचन और मुक्तिपूर्वक लघुकी लघु लोका विरसन करता है और लघुकी छीक मार्यपर चलाता है । इसकी योजना होवेपर भी अन्तरी आश्रित लघुके लघुके लघु पक्षि स्वभावमें रहता हुआ लघु करता है और ज्ञान क्षतिके विचार करता हैं । रहता है । इस प्रकारका लघुकी लघु अपने लघुकी लघुपति करता है और लघुप्रेतके प्रभावसे लघु प्रभावित लघुप्रेतलघुवे पुष्क होता है, लघु अन्तरी तेजस्वी होवेसे इस लघुप्रेतपर लघुकी लघुमा अन्तरी बहती है । वह महाप्रेतका तेज है इसलिये हरएकही महाप्रेतके लघुप्रेतलघुका पालन करके अपनी लघुप्रेतलघुका विचार करना चाहिये ।

पापसे बचानेकी प्रार्थना ।

(६)

(ऋषिः—श्रुताविः । देवता—चन्द्रमाः, मन्त्रोक्ताः ।)

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोपवीकृतं श्रीरुचः । इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १ ॥
 ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं बिष्णुमथो मरुतम् । अर्षं विश्वसन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ २ ॥
 ब्रूमो देव सवितायै आगारमुत पूषणम् । स्वर्गारमाश्रित्य ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ३ ॥
 गन्धर्वीप्सरसां ब्रूमो अश्विनां मण्डलस्पतिम् । अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ४ ॥
 अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसाधुमा । विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ५ ॥
 धातं ब्रूम पृथ्व्यन्तर्निष्ठमथो दिव्यं । आशाश्च सखीं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ६ ॥
 मुञ्चन्तु मा सप्रध्यादिहोरात्रे अर्षो ह्यपाः । सोमो मा देवो मुञ्चन्तु यमाहश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥
 पार्थिवा दिव्याः पृथक् आरण्या उत ये मूयाः । मुञ्चन्तान् पृथिवीं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ८ ॥
 मवाश्रुर्षोविदं ब्रूमो रुद्रं पञ्चपतिम् यः । इपूर्या ऐर्षा सवित्र ता न सन्तु सदा श्रिताः ॥ ९ ॥

अर्थ— अग्नि वनस्पति औपवि (वीरका) तथा इन्द्र, बृहस्पति और सूर्य (ब्रूम) हम सब प्रार्थना करते हैं कि (ते) न (मा) अहंसः । हम सबकी पापसे (मुञ्चन्तु) बचाने ॥ १ ॥

राजा वरुण मित्र (अश्वी) और मरु अथ विरुवा ॥ २ ॥ धरिता देव वाता पूषा (अश्वि वज्रम) अथ पृथ ॥ ३ ॥ पृथक् और अथारमण अश्विनी देव मण्डलस्पति, (वा अर्यमा नाम देवा) और सो अर्यमा नामक दे ॥ ४ ॥ अहोरात्र सूर्य और चन्द्र ने (वर्षा) दोनों (विश्वान् आदित्यान्) सब आदित्य ॥ ५ ॥ (वाता) अथ पञ्चम अश्वि (अश्वी) और दिवा (आशाः) सब सखी (मूयाः) हम सब प्रार्थना करते हैं कि (ते) न (मा) अहंसः ॥ ६ ॥
 ७) ने हम सबकी पापसे बचाने ॥ ८ ॥

अहोरात्र वा अथर्व (मा अथर्व्यात् सुग्रन्तु) सुभे अथर्वसे मुक्त करें (वा अथर्वमा इति बाहुः) अथि अथर्वमा अथर्वमा दे वद सं वद (मा सुग्रन्तु) सुभे अथर्वसे मुक्त करें ॥ ७ ॥

(पार्थिवः पृथिवः पृथक्) पृथ्वीसे ऊपरके पृथक् और आकाशमें रहनेवाले पृथक् (यत ये आरण्या धृता) और पृथक् रहनेवाले पृथक् हैं अथर्वसे बचाने का मत है कि ये हमें पापसे बचाने ॥ ८ ॥

मय आर रुद्र (वा पञ्चपति यत्र) वा पञ्चपति यत्र है (वा पूर्वा इत्यु) जो हमसे बाध (सं विद्या) हमें पति ६ (ता) ने (वा सदा श्रिताः सन्तु) हमारे अथि सदा बचानेवाली हो ॥ ९ ॥

दिषं ब्रूमे नर्धत्राणि धूमिं यक्षाणि पर्वतान् । समुद्रा नद्योर्विश्वन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १० ॥
 समर्पन् वा इदं ब्रूमेऽग्रे देवीः प्रजापतिम् । पितृन् यमभैष्ठान् भूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ ११ ॥
 ये देवा दिविपदो अन्तरिक्षसदस्य ये । पृथिव्यां स्रक् ये भिवास्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १२ ॥
 आविस्था रुद्रा बर्षावो दिवि देवा अर्षर्षाणः । अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १३ ॥
 यमं ब्रूमे यजमानमृचः सामानि भेषजा । यज्ञेयि होत्रा भूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १४ ॥
 पर्वं राज्यानि धीरुषां सोमभैष्ठानि ममः । कुर्मो मञ्चे ययः सवस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १५ ॥
 उरायान् ब्रूमे रक्षांसि सर्पांश्च पुण्यवृत्तान् पितृन् । मृत्युनेकंश्च भूमस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १६ ॥
 श्वान् ब्रूम श्वतृपर्वानार्तवानान् हावुनान् । समाः सवत्सुरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १७ ॥
 एतं देवा दक्षिणतः प्रभाद् माश्वं उदेत ।

पुरस्तादुत्तराच्छ्रक् विधे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १८ ॥

विश्वान् देवानिदं ममः सत्यसैवानुवाच ऋषिः विश्वामि पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥ १९ ॥

अर्थ- (दिषं) बुराई करनेवाला धूमि, (यक्षाणि) बध्म, पर्वत पर्वत, (देवता) ब्रह्मदेव ॥ १० ॥ समर्पित (वापः देवी) वह प्रजापति (यमभैष्ठान् पितृन्) मरार और ब्रह्मका अधिपति यम ॥ ११ ॥

(ये दिविपद देवा) जो धुमेरमें रहनेवाले देव हैं (य ये अन्तरिक्षसदा) और अन्तरिक्षमें रहनेवाले हैं (ये स्रक्) जो समर्थ देव (पृथिवी भिवाः) पृथिवीका आधार करने हैं (ते यः सवः) मुक्तम्) वे हम सबको पापसे बचाव ॥ १२ ॥

आविष्ठा रुद्र, बध्म (दिवि अ-वर्षाणः देवाः) धुमेरमें जो निवास करने हैं तथा (मनीषिणः अङ्गिरः) भवनपीठ अधिरक्ष हैं (ते यः सवः) मुक्तम्) वे हम सबको पापसे बचाव ॥ १३ ॥

यजमान [यजः] यज्ज्येष्ठ सव्य [यजः] देवके सव्य [यजः] यज्ज्येष्ठ [होत्राः] होमहवन करने ॥ १४ ॥
 [मीषां सोमभैष्ठानि यज्ज्येष्ठानि] जिसमें सोम अन्न है ऐसी भौतिकयुक्तोंके यज्ज्येष्ठ राज्य करने [यजः] भाग [यजः]
 और और [सहः] कष्टाधीन पाप को [भूमः] हम कहते हैं कि [त] वे हम सबको पापसे बचाव ॥ १५ ॥

[उरायान् रक्षांसि] अश्वक शस्त्रोंके सर्पों पुण्यवर्तों और पितृ [एककर्म मृत्यु] एक ही मृत्युओंको ॥ १६ ॥
 श्वान्, श्वतृपर्वके पशुओं, [आना] हाथपाङ्गु [श्वतृपर्वके वनवासे] जन्मों [समाः सवत्सुरान् मासां] सम वर्ष
 एकपर और महीनोंमें हम कहते हैं कि वे हमको पापसे बचाव ॥ १७ ॥

है (देवाः) देवी (दक्षिणतः पृथ) दक्षिण दिशासे आना पश्चात् (माश्वः) पूर्व दिशामें बहनेको प्रसन्न होना
 (भिषे स्रक् देवाः) सब समर्थ देव (उरायान् रुद्राणाम् सव्य) ब्रह्मक उत्तर दिशामें रहने होकर (ते यः) हम
 सबको पापसे बचाव ॥ १८ ॥

(यजमानम्) यजमान (यजः) यज्ज्येष्ठ सव्य (यजः) देवोंको (यजः) बध्म कहते
 हैं कि वे (विश्वामि पत्नीभिः सह) अपनी सब स्त्रियोंके साथ आकर (यजः) हम सबको पापसे बचाव ॥ १९-२० ॥

सर्वान् दृवानिदं स्तूपः सत्यमर्थधानुतावृषः । सर्वाग्निः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥२०॥
 मृतं स्तूपो मृतपतिं मृगानामृतं यो वृक्षी । मृगानि सर्वां सुगन्धं तं नो मुञ्चन्त्वहंसः ॥२१॥
 या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा इदंस्तुतवः । सवस्सरस्य ये दद्यान्ते नः सन्तु सदा विराः ॥२२॥
 पन्मातली रथक्रीतमुमुर्न वद भेषजम् । तदिन्द्रो अप्सु प्रावेक्ष्यत् तदापो दत्त भेषजम् ॥२३॥

॥ इति उगीषोऽनुवाकः ॥

(वा वृक्षी) को सबसे बड़ा करेगा। है वृष (मृगानां मृतपतिं) मृगोंके अधिकारिकों तथा (मृतं) मृतको (स्तूपः) करते हैं कि (सर्वां मृगानि सगन्धं) सब मृत मिश्रकर हम सबको पावते बनावे ॥ २१ ॥

(याः पञ्च देवीः प्रदिशः) जो विष्णु पाँच दिशाएँ हैं (ये दद्यान्तु भेषजः देवा) जो वरद द्यु देव हैं (ये स्तूपस्तु देव्यः) जो सर्वके दाहक समान हैं [ते वाः सदा विराः सन्तु] वे हम सबका सदा छुन दें ॥ २२ ॥

[आठौंकाः] मातलि [यत् रथक्रीतं ममुर्न भेषजं वेद] जिस रथके द्वारा बात समरपन देवदाते औषधका समर [इन्द्रः सप्त अप्सु प्रावेक्ष्यत्] इन्द्रने सप्त आकाशका जकोम प्रविष्ट किया है, दे [अप्सुः] जको [सप्त भेषजं दत्त] ज औषधको हमें दीजिये ॥ २३ ॥

मातली—हम सब देवताओंकी बहादुरतासे मनुष्यमान पावते कब पावे ॥१-२३ ॥

इस छंदका विचार ।

इस छंदमें मान्योकी काण्वि छः करनेके लिये अवशिष्ट शब्दोंका निष्काप करकेके लिये देवताओंकी प्रार्थना है ।

इस प्रार्थनाकी विशेषता यह है कि यह प्रथम शर्वाका मृत शब्दात् काण्वि है । यह अन्तेके मिश्रण की जानेवाली प्रार्थना है अतः इसमें ते की सुस्पष्ट अवस्था है इस सब प्रार्थना करनेवालोंको पण्ये छंद करने देना बहुतबड़ा प्रशंसनीय है । छन्दिक प्रार्थनाका महत्त्व वैदिक सारस्वतमें विद्यमान है क्योंकि उससे अंशकारित गद्यही है ।

अब इस छंदमें जिस देवताओंका नामनिर्देश आया है उनका वर्णनइस प्रकार है—

पृथ्वीस्थानीय देवता ।

१ अग्नि १

२ वसवपति २

३ अनेपति ३

४ देवाः ४

५ ५ ५

६ वायव्य ६

७ वसता ७

८ पार्ष्णिपति ८

९ वायव्यः ९

१० अग्नि १०

११ ब्रह्म १	३ अंग १५
१२ परैव १	३१ यवः १५
१३ समुद्र १	३२ सद्यः १५
१४ नदी १०	३३ वराह १६
१५ वेद्यमार्गः १	३४ रक्षांसि १६
१६ पृथिव्यां यन्त्रः द्विधा १२	३५ सर्प १६
१७ वस्त्राः [अष्टौ] १३	३६ पुण्यजन १६
१८ वनवासः १३	३७ मृत्यु (एकघात मृत्यवः) १६
१९ अङ्गिरसः १३	३८ जल (हाव्य) १७ २१
२ अक्ष १७	३९ मृत्युपति १७
२१ वनमाला १४	४ अर्ध १७
२२ जल १४	४१ हाव्य १७
२३ सामग्रि १४	४२ लमाः १७
२४ भेषजानि १४	४३ संवत्सर १७
२५ वस्तु १४	४४ मासाः १७
२६ होत्राः १४	४५ विवेकेषाः १८ १९
२७ धीरुणां यन्त्र राज्यानि १५	४६ देवपञ्च १९
२८ सोम (वनस्पति) १५	४७ मृत २१
२९ वर्ष १५	४८ मृतानां, मृतपति २१
	४९ भेषज २३

अन्तरिक्ष स्थानीय देवता

१ शिवदे ४	११ शकुन्तल ८
२ अप्सराः ४	१२ अक्ष ९
३ कर्मात्मा ५	१३ अक्ष ९
४ वायु ६	१४ अक्ष ९
५ पञ्चम्य ६	१५ मृत्युपतिः ९
६ अन्तरिक्ष ६	१६ इन्द्र ९
७ दिशः ६	१७ वज्र ११
८ सप्तः जायाः ७	१८ पितर ११ १६
९ सोमः ७	१९ अन्तरिक्षसप्त देवाः १२
१० पक्षिमाः ८	२० यज्ञः (एकघात) १३

गुस्थानीय देवता ।

१ इन्द्र १	२ सूर्य १ ५
२ उदरपति १	३ रागा यन्त्रः २

अचः सामानि छन्दांसि पुराणं यज्ञं वा सह । उच्छिष्टाञ्जहिरे सर्वे द्विषि देवा दिविभितः ॥२४॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमार्क्षिर्विह्व क्षितिह्व या । उच्छिष्टाञ्जहिरे० ॥२५॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽसीमोवमुदश्च ये । उच्छिष्टाञ्जहिरे० ॥२६॥

देवाः पितरो मनुष्या ऽगर्भर्षाप्सरसश्च ये ।

उच्छिष्टाञ्जहिरे सर्वे द्विषि देवा दिविभितः ॥ २७॥ (२१)

अर्थ— अच सामान्य छन्दा, पुराण और यजुर्वेद अथ अथर्व वेद, योत्र [अति अक्षितिः] मोक्ष और अर्चन
पदार्थ प्राणाय मोक्ष प्रमोद, [असीमोः सुख] प्राणाय अर्चन देव पितर, यजुष्य वीचर, अप्सरा, मुनीक्य रहने।
सब देव वे सब [उच्छिष्टाञ्जहिरे] उच्छिष्टसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २४-२७ ॥



राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदन्वुरः । अर्कश्चिमेधाबुच्छिष्टे जीवर्वाहमदिन्तमः ॥७॥
 अग्न्याधेः मयः वीक्षा क्रामप्रच्छन्दसा सह । उत्सवा यज्ञाः सुत्राण्युच्छिष्टेऽग्निं समाहिताः ॥८॥
 अग्निहोत्रं च भद्रा च वषट्कारो मृत तपः । दक्षिणेष्ट पूर्वे चाच्छिष्टेऽग्निं समाहिताः ॥९॥
 पञ्चरात्रो द्विरात्रः संधः क्री प्रक्रीरुक्कम्पुः ।
 योषं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याग्नौ विधवा ॥ १० ॥ (१९)
 चतुरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रो मयः सह ।
 षोडशी सप्तरात्रोच्छिष्टान्बह्विरे सर्वे ये यज्ञा अमूर्ते हिताः ॥११॥
 प्रतीहारा निधनं विश्वजिवाभिजिह्व यः ।
 साहातिरात्राबुच्छिष्टे द्वादशरात्रोऽपि तन्मयि ॥१२॥
 सूनृता सनतिः क्षेमः स्वधोर्मासुत सहैः ।
 उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यङ्मः कामाः कामेन तावपुः ॥१३॥
 नवमूर्ती समुद्रा उच्छिष्टेऽग्निं भिता दिवं । आसूयो मास्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥१४॥

अर्क- राजसूय अथवा अग्निहोत्र (उत् अथवा) वह हितादिष्ट वत् अर्क-अथमेव (मदिन्तमः जीवर्वाहः) अथवा
 वेदेवत्ता जीवोका राजसूय वत् ये सव उच्छिष्टमै ही स्थित हैं ॥ ७ ॥

(अग्न्याधेय मयः वीक्षा) अग्न्याधान वीक्षा (अग्न्या सह कामया) अग्नौ के अग्नौ पूर्वा करवेत्ता के
 उत्सवाः यज्ञाः यत्राग्निं उत्सव वत् और सव सव ये सव उच्छिष्टमै स्थित हैं ॥ ८ ॥

अग्निहोत्र, भद्रा वषट्कार मृत तप बह्विना सह पूत व सव उच्छिष्टमै रहते हैं ॥ ९ ॥

पञ्चरात्र द्विरात्र संधः क्रीः प्रक्रीः अथवा व सव वत् और (पञ्चरात्र अथवा) पञ्चरात्र अथवा अंत (निधना उच्छिष्टे मयः
 भिता) निधना सव उच्छिष्टमै अतमोत हुए हैं ॥ १० ॥

सूनृता सनति क्री सनति (कामया) सनति अथवा अत सव वत् और सनति सनति सनति (सनति) सनति
 (सनति और सनति सनति व सव वत् उत्सव वत् और (सनति सनति) सनति सनति रहते हैं ॥ ११ ॥

प्रतीहारा निधनं विश्वजिह्व, कामाः कामेन, तावपुः अथवा सनति सनति सनति (सनति) सनति
 रहते हैं ॥ १२ ॥

(सूनृता सनति) सनति सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति
 सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति
 रहते हैं ॥ १३ ॥

सव सनति सनति सनति (सनति) सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति
 (सनति सनति) सनति सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति सनति (सनति सनति) सनति सनति
 रहते हैं ॥ १४ ॥

उपहस्ये विपुत्रं य च यथा मुहो हिता ।
विमेति मुता विमुस्यादिष्ठणे वनितु पिता ॥ १५ ॥
पिता वनितुरुच्छिन्नाऽमे पौत्रे पिता मुह ।
म धिपति विमुस्याग्रानो वृषा भूम्यामतिष्ठ्य ॥ १६ ॥
क्षुन मय तपा राष्ट्र भवे यमेष्ट फमे व । भूत मेविष्णुद्विष्ठे वीरुहमीवतु पते ॥ १७ ॥
ममदिगत आहनि धुव राष्ट्र पदुर्ग्य । गुरुमराऽष्टुद्विष्ठ इतो व्रैषा प्रहो हसिः ॥ १८ ॥
चतुर्द्वार आप्रियमानुमास्यानि नीरिद । उच्छिष्ट पुत्राहात्री वधुवृषाम्पदिष्ठ्य ॥ १९ ॥
अधमाया य मामाधार्या क्षुभि मुह ।
उच्छिष्ट पौत्रिनीरावः स्वनयितु ध्यानमही ॥ २० ॥ (२०)
प्रहोः गिहता अमान् आपवषा वीरुहम्भना ।
अग्रानि विपुत्रा वषवृद्विष्ठ मरिगा भिता ॥ २१ ॥
गाद्विः प्राप्तिः समान्निर्वाप्तिमहं पयुत । अस्यामिगद्विष्ठ म्रिषाहता निदिता हिता ॥ २२ ॥
यष प्राजनि प्रापत वरुण पयपति चतुषा ।
उच्छिष्टाग्रान् मरे द्विषि दुषा दिविभिना ॥ २३ ॥

अचः सामानि छन्दांसि पुराणं यज्ञेषा सह । उच्छिष्टास्त्राग्निरे सर्वे विधि देवा दिविभितः ॥२४॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमार्धतिष्ठ क्षितिष्ठ या । उच्छिष्टास्त्राग्निरे० ॥२५॥

आनदा मोदाः प्रमुदोऽमीमावमुदश्च ये । उच्छिष्टास्त्राग्निरे० ॥२६॥

देवाः पितरो मनुष्या ऽगर्वाप्सरस्तृष्ट य ।

उच्छिष्टास्त्राग्निरे सर्वे विधि देवा दिविभितः ॥ २७ ॥ (२१)

अथ— अथा यस्मिन् छन्दे पुराणं और यजुर्वेद, प्राच आचम्य चक्षुः श्रोत्र [अग्निः अग्निः] आदिभिः और अमलि पदाय आनन्द, मोद प्रमोद, [अमीमोदा मुदा] प्रमुद अर्धं देव, पितर, मनुष्य, अर्वा, अप्सरा, पुतायै एतेषां सब देव ये सब [उच्छिष्टास्त्राग्निरे] उच्छिष्टमे अग्नये हुए हैं ॥ २४-२६ ॥



उच्छिष्ट सूक्तका आशय ।



इस सूक्त की प्रतीति अत्यंत सरल होने के कारण इसका नामार्थ
बृहद् विश्वनाथ की ओर आकर बतला गया है ।

उच्छिष्टका अर्थ ।

उच्छिष्ट "अर्थात्" कर्त्तव्य प्रमाणों के अभाव में जो उरुच
स्वभाव में अवशिष्ट रहा है । किन्तु वन के पत्तों को आग अथ
विष्ट रहा है उसका नाम उच्छिष्ट है । पुनश्चात्तमें कहा
है—

विश्वान् उच्छिष्टम् । पशोऽस्तौहामवशुभः ।

(म. १०.१.११८)

'विश्वान् पुनश्च उरुच स्वामिने वसित हुआ है और उसका
एक लक्ष यही इस विषय में पुनः पुनः होता है ।' एक आशय
यह निश्चय बतला और विमलता है, यद्यपि जो विश्वान् पुनश्च अथ
पिष्ट कर्त्तव्य प्रमाणों रहा है वह वैसा ही एकत्रमें रहता है ।
इस तरह परमेश्वर एक अवस्था आशय निश्चयकार होता
रहता है और उस सब मूल स्थितिमें अवशिष्ट रहा है । इसी
का अर्थ उच्छिष्ट है । यही कर्त्तव्य प्रमाणों अवशिष्ट रहा है ।

(उच्छिष्ट नाम रूप) इसी परमेश्वर में नामरूप रहा है
इसका अर्थ है वह कुछ उच्छिष्ट है ऐसा कहा है क्योंकि जो
कुछ हुआ विषयों है वह कमबलता है और नामरूपता ही है ।
विश्वान् रूप नहीं और विश्वान् नाम नहीं ऐसा कहा कुछ भी
नहीं है । अर्थात् विश्वान् नामरूपत्वक है । इन विषयों का नाम
कैसे है और नाम कैसे ही आशय के अर्थ में वह रूप जाता है
यही नामरूप है और वह सब नामरूप इस उच्छिष्ट परमेश्वरमें
रहा है ।

नाम भी उच्छिष्टमें है और रूप भी उच्छिष्टमें है इसका
अर्थ है वह उच्छिष्ट परमेश्वरमें नामरूप रहा है ऐसा कर्त्तव्य हुआ ।
कैसे कहा वह नाम और चेतना रूप वह सब मिश्रित रहता है ।
अर्थात् वह मिश्रित ही नामरूपत्वक परमेश्वर होकर हमारे
आशय में जाता है । इसी तरह उच्छिष्ट परमेश्वर नामरूप आशय
करके विश्वान् होकर विश्वरूपी ब्रह्मा आशय में आता
है । यही परमात्मा विश्वरूपत्वक और अवशिष्टता है १११ अर्थात्
यमें कहा गया है और अन्तर्गत आशयार्थों वर्णित हुआ है ।

उच्छिष्टमें रूप ।

उच्छिष्टमें नामरूप रहा है । यही मन्त्रमार्ग मुख्य है । आगे
इसी का स्वीकार ही है, वैसा—उच्छिष्टमें जोह, इस आशय
विषय, आशयविषय सब भूतमात्र जब समस्त अर्थ वातु
(मन्त्र १—२) वी भूमिवा, सर्व (म. १४) अन्तः पावर पिता
आपविषयस्थितिवा वात अन्तः, विमुक्त बुद्धि, (म. २१) जो
प्रायः वर्णित रहता है जो आशय वैसा है, जो आशयमें है
(म. २३) देव, वितर, समुच्च, गंभीर अपर (म. २४) देव
उरुच करवैसा है इस देव (म. ४) । यह सब उच्छिष्टमें
है वे सब कर्त्तव्य परमात्मा हैं । इनका नाम उच्छिष्ट—पर
मन्त्रवाही है ।

उच्छिष्टमें नाम

अथ नामका अर्थ है—अथर्व वृद्धि, सामर्थ्य,
उशीर रत्नवर्ण हींकार एव सामर्थ्य नामक, (म. ५)
इन्द्राग्निवै लूक, परमात्मवृद्धि महाप्रकाशित, (म. —६)
ऊर्ध्व पुराण (म. २४) में सब नाम हैं पद्य शब्द हैं ।
अथर्वशील यह विस्तार है और वे सब नाम उच्छिष्टमें
आधारपर रहते हैं ।

इस उच्छिष्ट नाम और रूप उच्छिष्ट अर्थमें रहते हैं जो
रूप है वह उच्छिष्टका ही रूप है और जो नाम है वह उच्छिष्ट
उशीर का नाम है । इसीप्रकार वे नामरूप सबमें रहते हैं ।

उच्छिष्टमें कर्म ।

नाम और रूप ही प्रियतम उच्छिष्ट मन्त्रमें है वह बात इस
विषय में कहा कर्म कहा रहता है वह प्रथम उपरिष्ठ होता
है उसका अर्थ भी इस मन्त्रमें विना है कि सब प्रथम सब नाम
उच्छिष्ट मन्त्रमें ही रहते हैं देखिये— उच्छिष्ट नामरूप आशय
अर्थ, अपर, अर्थमैव (म. ७) अर्थमात्र हींकार अर्थ
अर्थ (म. ८) अर्थमैव, अर्थ उपर अर्थमात्र, अर्थमैव
(म. ९) अर्थमात्र अर्थमात्र अर्थमात्र अर्थमात्र अर्थमात्र,
अर्थमात्र अर्थमात्र अर्थमात्र (म. ११) अर्थमात्र, अर्थमात्र—
अर्थ (म. १२) आदि सब अर्थमैव ही हैं और वे सब

करी उच्छिष्टमें रहते हैं उर्ध्व उच्छिष्ट जगह आचारपर इस छूर्ण कर्मकार्यको व्यवस्था रही गयी है। अर्थात् सब कर्मोंका आचार मध्य ही है।

उच्छिष्टमें काल।

काल भी उच्छिष्ट जगह आचारसे रहता है अथः कहा है कि— अर्ध माघ (मघ) माघ (मघिना), अश्व (म २), मघन वर्ष सवासर (मं १८) यह सब उच्छिष्ट जगहमें रहा है। मृत अविष्कार (मं १०) छूर्ण काल और कालके अवयव इतना तरह उच्छिष्ट जगह आचारसे रहे हैं ऐसा कहा है।

कालके साथ कर्मका संबंध है पुरातन किरात आदि अनेक वस्त्र कालमर्त्या के साथ संबंध रहते हैं। कई इष्टिनां छोटे कालखंड के साथ समन्वित हैं और कई सत्र दीर्घकालके हैं। तथापि सब वस्त्र इस तरह कालसे समन्वित होते हैं। अर्थात् जैसा नामरूपका परस्परसंबंध है वही तरह काल और कर्मका परस्परसंबंध है। पाठक इसका अच्छी तरह विचार करें और इसका अनुभव करें।

अथा, तप अत दीक्षा (मं ९) मूर्त नम्रभाव क्लृप्त स्वभाव—अर्थात् अपनी भारनाशक्ति वस्त्र अक्षतत्व सहनशामर्थ्य क्षमता वाचना (मं १३) अत उप

अत, धर्म भीष—पराक्रम लक्ष्मी क्षोभा (म १०) छूर्णित संकल्प क्षात्रवत् (म १८) विधि वस्ति, उपविष्ठा, महरन इति (मं १२) अर्थात् माघ, मघा (म १५) ये सब जो कर्मके साथ संबंध रखनाछे उन दे वे भी मानवकी उद्घाटित किने व्यक्त आश्रयक हैं। वे सब उच्छिष्ट जगह आचारपर रहते हैं।

ऐसा प्राण्यो समीप रहते हैं और जो आंसते देखते हैं वे सब प्राणियोंका उच्छिष्ट जगह आश्रय पाकर रहते हैं अर्थात् वह उच्छिष्ट जगहसे पुनर्जन्म नहीं है। (मं १३)

सत् अवत् अवयव मृत्तु म और म (वस्त्र और काल) यह सब इन्द्र उच्छिष्ट जगहमें ही रहता है अर्थात् जो सब वहाँ है उस सबका संबंध परब्रह्मसे है परब्रह्मसे पुनर्जन्म नहीं होता वही है।

इसमें अनेक बहोकेनाय आवे हैं इनका स्वयं बहुरूपों व्याख्याने प्रथममें विचार किया जायगा। क्योंकि कर्मका बहुरूप का विषय है।

जो विद्युत्प्रवर्धन का विषय वहाँ कहा है वही जोमहक ब्रह्माणाके ११ में व्याख्यामें विस्तारसे कहा है और बहुरूपों व्याख्यामें भी अधिक ही विस्तारसे कहा है। पाठक पुनः करके देखना उत्तम आवे।

शरीरकी रचना ।

(८)

(अग्निः—कौरुपयिः । देवता—अप्यात्म, मन्युः)

य मनुर्जायामावहत् सकल्पस्य गुहादग्निं । क आस जन्त्याः केवरा कर्त ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥१॥
 तपमैवास्ता कर्म चान्तर्महत्त्वमिवे । त आस जन्त्यास्ते वरा प्रथमं ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥२॥
 दधं साकर्मजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा । यो वै तान् विधात् प्रत्यक्ष स वा अथ महद् वदेत् ॥३॥
 प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षिषिश्च शिर्विंश वा । व्यानोदानौ वाह मनस्ते वा आकृतिमावहन् ॥४॥
 अक्षोता आसभूतवोऽयौ धाता बृहस्पति । इन्द्राग्नी अग्निना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥५॥
 तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्त्वमिवे । तपो ह अथ कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥६॥

अर्थ— (यत् मन्युः सकल्पस्य गुहात्) जब कल्पारम्भे सकल्पके वरसे (जायाँ जायि जावहत्) अपनी स्त्रीको प्राप्त किया विवाह करके अपने घर के आत्मा इस समय (के जन्माः) कीन जन्मा पृथक् कीन के और (के वरा) कीनसे वरपक्षके कोन के और उनमें (का व ज्येष्ठवरा अवगत) कीन मेह वर माना गया था ॥ १ ॥

(महति कर्मणि जन्ता) बड़े महाकारके जन्त (तथा कर्म व वास्ता) तब और कर्म के दो पक्ष के (ते जन्त्याः) ते वरा जन्त) के ही कर्मापक्षके और वरपक्षके कोन के और इस समय (अथ ज्येष्ठवरः अवगत) अथ ही समयमें मेहवर था ॥ २ ॥

(देवेभ्यः दधं देवाः साकर्मजायन्त) देवोंसे इस देव धाव धाव वरें हैं (वाः वै तान् प्रत्यक्षं विधात्) जो निश्चयसे इनकी प्रत्यक्ष जायता है (सः वै अथ महद् वदेत्) वही निश्चयसे जायती महत् प्रत्यक्ष ज्ञान कह सकता है ॥ ३ ॥

(प्राणापानौ, चक्षुः श्रोत्रं वा अक्षितिः वा क्षितिः वा) प्राण अपान चक्षुः श्रोत्र ज्योतिष और शीतिष आदि, (दधान-उदानौ वाहवः) व्यान उदान और वाणी तथा मन (ते वै आकृतिं जावहत्) ते ही निश्चय संकल्पकृतिसे जावय करत हैं ॥ ४ ॥

(अथवा) अथो वाता बृहस्पतिः इन्द्राग्नी अग्निर्वा) अथ वाता बृहस्पति इन्द्र अग्नि अग्निनी के देव (अजन्ताः जन्तवः) वही वने के (तर्हि ते कं ज्येष्ठं उपासत) उन के किस मेह प्रत्यक्ष उपासना करते थे ॥ ५ ॥

(तप कर्म व एव) तप और कर्म (महति कर्मणि जास्ता) बड़े सधार ध्यपर्ये थे । (कर्मणा तपः ह कर्ते) कर्मोंसे तप करता हुआ (ते तप ज्येष्ठ उपासते) के अब वह मेहकी उपासना करते थे ॥ ६ ॥

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामंखातय इह विदुः ।

यो वै तं निषाम्नामया स मन्येत पुराणविदः ॥७॥

इत इन्द्रः कतः सोमः कतौ अग्निरेवायत । कतस्वष्टा सममवत कतौ धाताऽवायत ॥८॥

इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरधिरेवायत । त्वष्टा ह अग्ने स्वष्टुर्धातुर्धातुर्धातुर्धातु ॥९॥

ये स आसन् दर्शं जाता देवा देवेभ्यः परा । पत्रेभ्यो लोकं दत्वा कस्मिंस्ते शोक आसते॥१०॥

यदा केयानस्य स्तार्ष मांस मज्जानमामरत ।

शरीरं कृत्वा पार्वत कं होममन प्राविशत ॥१३॥

इत केनाह कतः स्नाह कतो अम्मीन्यामरत ।

अहगा पर्वाणि सज्जानं को मांस कत आभरत ॥१२॥

समिधो नाम ते देवा ये सँमागन्तसमभरन् । सर्वे संसिन्ध्य मर्त्ये देवाः पठुपमाविञ्चत् ॥११॥

॥१॥

[illegible]

(कुण्ड इन्द्रः कुण्ड सोमः कुण्ड अग्निः अजायत) किण्वे इन्द्र सोम और अग्नि उत्पन्न हुआ । (कुण्डः तप्यः अजायत)
 किण्वे तप्य उत्पन्न हुआ और (कुण्डः अजायत अजायत) किण्वे पाता क्या है ॥ ४ ॥

(इन्द्राय ईशः सोमाय सोमः) इन्द्रो ईश, सोमो सोम (अग्नेः आसो अजायत) अग्निं अग्निं इन्द्राय हुता (सोमः सोमः) त्वं सोमो त्वं सोमं हुता तवा (यानुः यानुः अजायत) यानुं यानुं हुता दे ॥ १ ॥

(य त द्य देवाः) यो मे दद्य देव (पुत्रा इत्येवः) आता आत्मन् पूर्ण समयमे देवसि उत्पन्न इत्ये मे (पुत्रस्य मे देवाः) अत्र पुत्रावो दद्यात् देवा (तच्छिष्टम् नोक्त आत्मने) किम् नोक्तम् रहते अये ? ॥ १ ॥

(कदा केद्यात् अस्ति रत्नाय) यत्र केद्यो हृदिये स्थायुषो [मोक्ष मज्जाम् आसरेत्] मोक्ष भार मज्जाम् दृष्टो
मरिदा ओर [शरीर कादवत् दृष्टा] शरीरमे पीयमाना म्निता एव बहु मरनेवाका [क ओक् अनुमतिमिदम्] दिव स्ते
अनुमत्ता एव प्रविष्टा हुता । ॥ ११ ॥

[illegible]

अ. दे. व. [सर्वकार्य संस्थान] अथ ज्ञान चरित्र के सारिता नीच कर [देवा पुत्र आदिपुत्र] के देव पुत्र के प्रति प्रति
१५६५ ११ ॥

(५) जयि : कैमया नाव हे विमल (एक जडीबस्ता पारा) जांवां और जामुनाम बावोवो (सिता हल्दी मुखं) वा हाव और मुखवा (गुप्ती बावोवो) वंठ हेली और पकडिवा (जल समुदावार) वर वर के (सिता हे १४ १४)

शिरो हस्तावयो मुखं विद्वां ग्रीवाश्च कीर्कसाः।

त्वचा प्रावृत्सु सर्वे तत् सधा समदधान्मही

॥१५॥

यच्चच्छरीरमश्वत् सधया संहितं महत् । येनदम्य रोचते को अस्मिन् वर्षमामरत् ॥१६॥

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदखानाश्च वृष्टः सुती । ईशा वर्षस्य या ज्ञाया सास्मिन् वर्षमामरत् ॥१७॥

यदा त्वष्टा व्यसृजत् पिता त्वष्टर्य उत्तरः । गृह कृत्वा रस्य देवाः पुष्टप्राविशन् ॥१८॥

स्रग्मो वै तन्दीर्घिरेति पाप्मानो नाम देवताः । स्रग्मो खलत्स्य पाठित्य शरीरमनु प्राविशन् ॥१९॥

स्तेर्य दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यशो यशो बृहत् । वलं च स्रग्मोर्लभ्य शरीरमनु प्राविशन् ॥२०॥

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः । सुषेच सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२१॥

निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यश्च हन्तेति नेति च । शरीरं भद्रा दक्षिणार्धश्च चानु प्राविशन् ॥२२॥

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदप्युद्देश्यम् । शरीरं भद्रा प्राविशश्च सामाद्यो यज्ञः ॥२३॥

आनन्दा मोहा प्रमोदोऽमीमोदमुदश्च ये । हसो नरिणा नृचानि शरीरमनु प्राविशन् ॥२४॥

(शिरः हस्तावयो मुखं) शिर हाथ और मुख (विद्वां ग्रीवाः च कीर्कसाः) बीम तर्ज और इडिवां (तत् सधया प्रावृत्सु) तत् सधया प्रवृत्त करने (मही संघा समदधान्) मही ओझसेही अस्मिते ओझ दिया है ॥ १५ ॥

(तत् सधया महत् शरीर) को वह सधा शरीर (संघा संहित) संघा नाम ओझसेही अस्मिते द्वारा बाधा मया, (यच्च दम्य रोचते) जिससे काम वह प्रकाशित है (नरियन् च वर्ष आमरत्) इससे जिससे वर्षों भर दिया है ॥ १६ ॥

(सर्वे देवाः उपाशिक्षन्) सब देवों ने शिक्षा दी (तत् सती वृष्टः आखानाश्च) वने सती वृष्ट-वर्षा प्रवृत्ति के आनन्द में । (या यच्च हन्ते ईशा बाधा) को उनको वरने रखनेवाले की ईश अस्मित नाम मानी है (सा अस्मिन् वर्ष आमरत्) उसने इसमें वर्षों भर दिया है ॥ १७ ॥

(वा त्वष्टाः पिता उत्तरः त्वष्टा) को त्वष्टाका पिता उत्तरतः अष्ट त्वष्टा है उसने (यदा पञ्चमम्) जब इस शरीरमें पितृ शिवे (सर्वे गृह कृत्वा) सब मरचकर्मकला कर करके (देवाः पुष्टप्राविशन्) देवों ने पुष्टमें प्रवेश किया ॥ १८ ॥

(स्वप्नाः तन्दीर्घाः निम्नः) निम्न आकाश पापमान्य च (पाप्मानो देवता ये नाम) पानी मन्की देवताएँ हैं तथा (नरा आनन्दं यस्मिन्) नृकायस्या आनन्द और श्रेष्ठ नाम होना के सब (शरीरं अनुप्राविशन्) शरीरके अन्दर प्रविष्ट हुए ॥ १९ ॥

(स्तेर्य दुष्कृतं वृजिनं) सोरी बुराकार और दुष्टिगता (सत्यं यशः बृहत् यशः) सत्य यज्ञ और यश बल (वलं च स्रग्मोर्लभ्य) वल आश्रय और आनन्द के सब (शरीरं अनुप्राविशन्) शरीरके अन्दर प्रविष्ट हुए ॥ २० ॥

(भूतिश्च वा अभूतिश्च) ऐश्वर्य और शरीर (रातयोऽरातयश्च) रात और ईश्वरी, (यज्ञः च यज्ञः) यज्ञ और सधया की लम्बा (शरीरं अनुप्राविशन्) शरीरमें प्रविष्ट हुई ॥ २१ ॥

(निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च) निन्दा और स्तुति (यश्च हन्ते इति च हन्ति च) जो हानि कर ना करत है (भद्रा दक्षिणा भद्राश्च) भद्रा दक्षिणा और भद्रा है सब शरीरमें प्रविष्ट हुए ॥ २२ ॥

(विद्याश्च वा अविद्याश्च) विद्या और अविद्या (यश्च अस्मिन् वर्षे यश्च) जो अस्मिन् वर्ष भर नाम दे वह (यश्च काम यशो यज्ञः भद्रा शरीरं प्राविशन्) यज्ञेय कामेय यज्ञेय आनन्देय शरीरमें प्रविष्ट हुए ॥ २३ ॥

(आनन्दा मोहा प्रमोदोऽमीमोदमुदश्च) आनन्द मोह प्रमोद और हारकविषय के सब (हसो नरिणा नृचानि) हसने वालों और नृच (शरीरं अनुप्राविशन्) शरीरमें प्रविष्ट हो गए ॥ २४ ॥

विना नाम तो उप बनता ही नहीं अथः कर्म सुकन है श्रेष्ठ (अथवा प्राचीन देहमें) हुआ है। इस अकन देवको ही प्रकृति उपपत्ति भी एक पवित्र कर्म है। (मं ६) सभी उपाय इस कर्मसे ही एक रहा है। कर्मके बिना पुत्र भी नहीं होता। यह एकदर मनुष्य को पुत्र कर्म करने चाहिये।

इस करीबी रचना होनेके पूर्व एक विस्तृत सूत्र भी, इसका नाम प्रकृतिको भूमि है। इसी सूत्रपर इस करीबी रचना होता है और इस रचनाके करनेके क्रिये से वह देव अकनपने कहा करते हैं और करीबी निर्मित करने हैं। इस स्वाम, आदि के नाम तथा उसके कर्म को जानना है उसके पुत्रपत्ति कहते हैं। (मं ७) जो पक्षि का और भी फिर क्या बचना है उसका पुत्र (पुत्रा अति नर) कहते हैं। इसको बचाकर नामा चाहिये।

ये वा देव इस पित्रवरीमें आकर बसे हैं वे कहते आते हैं। मूल-देव कहा मे आरंभ करते वहाँ आने और फिर स्वायत्त आकर बसे। इसकी आज कभी चाहिये। (मं ८) इन्द्र, सोम आदि स्वयं। यथा इन सब देवोंके ऊपर अकन देव उतरन हो गये उनके भी ये ही नाम हैं। जो पिताका नाम है वही पुत्रका होता है क्योंकि नाम रिक्त न मिले हुए अथवा बोधका होता है और पिताका ही पुत्र सुत्रमें आता है। इसलिये पिताका नाम पुत्रको दिया जाता है अथवा वहाँ इन्द्रके इन्द्र ही हुआ ऐसा कहा है। (मं ९) इससे एक इन्द्र विष्णुआने विष्णुआने वहाँ रहनेवाला है और हुआ। उसका पुत्रकही इन्द्र पित्रवरीमें रहनेवाला है। इसीकारण अन्य देवोंके विषयमें कमकाय चाहिये।

ये देव एक हैं और प्रत्येक बड़े देवका एक एक अकन पुत्र हैं। इसकारण एक बड़े देवोंके देव पुत्र इच्छित्वदेहमें आकर बसे हैं। पित्रवरीमें ये देव देव एक स्वायत्त रहे हैं। इन देव देवोंके अपने देव पुत्रोंका निर्माण विना और इनको इस पित्रवरीमें बसायेगए स्वयं विना और ये अपने मूल स्थानमें आकर रहे। (मं १०) मिथमें कहा सुत्र है उसका अकन पुत्र मेरेविन बड़े नेत्रके स्वायत्त एकदर सुत्रदेव अपने पुत्रोंके स्वायत्त ही विराजता है। इसी कारण अन्त्याय देवोंके विषयमें कमकाय चाहिये इसका देवताके वायव्य उपाय करने का। वायव्य वही वायु मिलने की कीर्ति आकरवत्ता गयी है। जो देव का अकनपत्ति को कल्पना पुत्रपत्ति करने है वह नहीं है। हर एक देवका अकन अवतार मानव-देहमें

(अथवा प्राचीन देहमें) हुआ है। इस अकन देवको ही अवतार कहा जाता है। बड़े देवका एक अकन अकन वत्ता है और इस पतनकीन देहका तारन क मेके क्रिये वत्ता रहा है। अब ये अकनपत्ति वहासे नाम करते हैं तथा देह देहका पतन होता है फिर वह देह उठता वही अकन वायु दे अवतार आया जाता है। देवी-वायव्य होनेकी अवस्थामें वह देह पवित्र माना जाता है, देवोंके अमल होनेक समय इसे कार्य होता भी नहीं।

अब इस करीबीमें विविध देवोंमें आकर वहाँ केव हस्ति, स्वायु, वांस मज्ज आदि पर विना और करीबी देहका देह अवतारोंके पुत्र विना तथा व देव कहा गये हैं। (मं ११) अर्थात् देव अवतार कर्म करनेके पश्चात् वे वहाँ रहे अथवा नहीं वे कर्म कर्म। इसका उपाय वही है कि वे वही मिलन करने करते हैं क्योंकि सुत्रके समय ही वे करते हैं। इस देवों केवता देव कहा रहता है इसका काम उपनिषद्के आकार देव उतर है—

मिथ देव	करीबी देवता
पायवा	आने अतना
सूत्र	वेत्र (वायु)
सूत्र	वायव्य (वायु)
आय	रत्ना (मित्र)
अति	वायु (वायु) पुत्र
विना (आकाश)	कान
वायु, वा	प्रम स्वयं
आयति वस्तुतः	वेत्र (वायु)
कोहीने आका	एक, अति
वी	पायक अतिप्रम
अन्त्याय	अति वत्त देव, अति
पुत्र	पाय (वायु)
कर्म (पर्याय)	कर्म (वायु, सुत्री)
सूत्र-आय	वीर्य [रत्न]
अन्त्याय	वायु वस्तुतः

इसकारण अनेक देवोंके अक वहाँ करीबी आकर बसे हैं। ये ही देवताओं का अक अवतार है। इसका कर्म अतिप्रमों में विचारने किन है मिथपत्ति देवोंके उपनिषद्में वह कर्म अधिक स्पष्ट है। वेत्र स्वायु इसी वायु वत्त-वायु, वांस

कहा कि छिछे छोरे किम तगह मों विसे भये ऐया प्रभ [मंत्र १२ में] पूजा गया है। एवोस्त काइको देखनेस इसका छीतर मित्र बचता है।

इस रचनाओंका नाम 'छेल्फ' है। सम्प्रदू सिचन करके दाहि, बाँधनवाले अर्थात् अपना हथाल मशीन करमवाल जीवन्मम करवावाले से बना है। इस सब देखो (छर्च मार्यं संतिषय) सब सम्प्रवर्धमान अंशोको अथवा देहको जीवन्ममसत कुछ किया है। इसी दार्ढ्यके सिम से सब देव (पुर्व अविचल) संमिचरदमे लागर बने है इस छीरमें आकर अपने आपसे रंवावने रहे। (प ५५)

किम अरुम कड पंद जागु मिर हाथ मुक्त पोंठ, ईसवी पछिमलं जिदु मईन चरमकी हुजरां लवा के सब माय बनाव और माइ दिव १ / में १४ १५) अत्राकव ईचने अपने अपने चरं किने अपने अपने अवबन बना दिने और 'रंवा' नामक देवता है जिसने इसकी ओर दिखा और सिम कीइयेन वह छाँर अत्राक एक केना बन गया है। इसमें १५ सोमा और अठित भरवैशाखी की एक रचना है। (म १४)

ये सब देव संमिचिन हुए, इन देवोंका बड़ा अंशमम हुआ, यह बात एक कता देहीके नाम की। बड़ी लती देवी सब अवबरोको अपने वसुमें एकद्वैशाके आत्मदेवकी मारी है। बड़ी मायां बड़ीका द्युति सोमा और समीबता रकने बनी है। (म १०) इसी वजु और बरकी छाही होवैशा पर्वत इस मूलकके बनेक का संकीने है।

ये सब देव सब छातीर हैं। अतः लवा नाम छातीर देवताका होता है। जो छोटे केवल एक इस छातीरकी था मरी चरमके सिने बड़ा जाने हुमे है चरमे ओ सबका मजि हाथ देव होता है इसको सब छातीरोंका कार्यर होवेस लवा कहते हैं। इसका पिता चरममा, सब देवीका देव, सब छातीरोंका छातीर कर्तारि विराजमान है वह भी वरा 'लवा' ही है। सबसे पहिले पाकर सब छोटे छातीर इस छातीरमें सुरम्य रहते हैं सब एक एक ह्रासले एक एक देव छातीरमें बसत चलाता है मार अपने अपने हथाल में विराज्य है। इस [मंत्र छर्च इरवा] मन्त्रे चरकी सुबोव रचना करके [देवा पुर्व अविचल] सब देव मनुष्यके देहमें डुबकर अपने स्वाममें रहते हैं। [म १०] यह सब पाठ-

मिक मावैवांका है पंहु बही देवीकी अमर छिचिनी रहनेके कारण वह मावैवांका वह अमरता बना है। अब देव बहीका वह समाज करके चले काले हैं इस समय यह वह मर जाता है। देवाका अमर छिचि इस तरह अनुमयमें आतो है।

इस छातीरमें मित्र जायति, तम्हा (सुस्ती) -ठपयिता, विष्णु (पापवासना)- पुत्र मावका पाप-पुत्र बरा- (इवाज)- तादम आछिच (मत्राव)- बहुदय होवा, पाठिअ (देवतम - कृष्णार वालाका चन होना और काले हावा, स्नेह (चोर)- अस्नेह, दुःकृत सुदत मुक्ति (दु-दिमता) सरकता लग्न अपना वह अवत नष्ट मवत, वल-वमहीमता छात्र-विचलता भोज (छात्राकित) अछिचि मूले देव (अमूनि (मिचलता) (रति) शर- (मारि) रंजुकी, लुवा (मूल)-मूल न लयमा, लुवा-म्याव न लयमा मिम-दुति (लयमा) हो और मा चरका (इना इति न इति), मदा-मभदा वलना अद-विचन, विद्या अविद्या ज्ञान-अज्ञान अमर-दु न मी-द-वह हाव-विचन मरिह (अमर)- मार मृच अनुम आत्मप प्रमप-वीम प्रवेय-विवाय के सब माव छातीरमें चले लगे हैं। ये माव छातीरमें प्रवसत विचार्य देते हैं। (म ११ १५)

माय, अमल म्याव उरवा चहु भोज सिम, अछिचि माकी मय के इस ही छिचिनी छातीरमें रहती है और सकत चरं करती है। (म १६)

आतीरविच-अथके सम्प्र अनुमूल- अतिमल छर, सरम विचम विवाता-अचमता रवा छिचि इपनता- उरवाता गुत्र मचर लुच-मिचि मजु-कृत वीचल-मय के सब माव छाती में प्रविष्ट हुए हैं। (म १०-११) एक बड़े इयक सिने रंता की वयाकर सब देवकी जाति कीक पमोशमके चलती हामी है। उन देवके सब देव छातीरमें पुन जाते हैं। 'विचि मरिह' अमुमें लयाके छर्च छातीरका मरिह उक्त छातीरका हावक ईहका वराचत रहता है और सब वराचत लय निजाके का रके देवताका मय भी रहता है अमर देवपंथकी ही वराचत वलन मीमर । निजाक वरमा पुत्र छातीरके अम मजुम हंते हैं, इसका बड़ी कारण है। इन देवमें छातीरका सब करव होता है इस सिने पुत्र मचकर निजा मिला होता है। इसके देवका की वमर

युद्धकी तैयारी ।

[९]

(शशि—काकायनः । देवता अर्बुदिः)

ये बाहवो या इयं चो घनैर्नां वीर्याणि च । अमीन् परंशूनां पुंष चित्ताकूट च यदुदि ॥
 सर्वं तदुर्बुदे स्वमुमित्रैर्म्यो ह्यस कुरुक्षारांश्च प्र ईक्षेय ॥१॥
 उचिष्ठतु सं नक्षत्रं मित्रा देवब्रजा युयम् । सद्यैषा गुप्ता र्चः सन्तु या नो मित्रार्पणबुदे ॥२॥
 उचिष्ठतु मा रमिसामादानमदानाम्पाम् । अमित्राणां सनां अभि र्चयमर्बुद ॥३॥
 अर्बुदिर्नाम् यो देव ईक्षानश्च यर्बुदिः । याम्यामृत्तरिक्षमावृतमिय च पृथिवी मही ।
 याम्यामि र्भिदिम्यामृद जितमन्त्रैर्मि सनया ॥४॥
 उचिष्ठ त्वं देवब्रजावुदे सेनया सुह । भुक्त्वमित्राणां सेनां योगेभिः परि वारय ॥५॥
 सुप्तं ज्ञातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्ष्यन् । तेभिष्ट्वमान्यै हुने सर्वं उचिष्ठ सेनया ॥६॥

अर्थ—हे (अर्बुद) अनु । मात करमेवान् । (ये बाहवः) जो व हुए हैं (या इयं चो) का नाम है जो (अमित्राणां) अमित्राणां उचिष्ठतु देवब्रजा है तथा (अमीन् परंशूनां पुंष चित्ताकूट च) अमित्राणां करों का अमित्राणां तथा (यदुदि चित्ताकूट च) जो वृक्षों तथा है (उचिष्ठतु) उस समय (य अमित्राणां देव कुरु) ए अनुमोदी अति विश्वाम्भे विषे देवा का और (उदारांश्च प्र ईक्षेय) वने वने उचिष्ठतु अमित्राणां देवा १ ॥

हे (मित्रा देवब्रजा) मित्रो ! और हे देवब्रजा ! (अर्बुद उचिष्ठतु) तुम वडा (सं नक्षत्रं) तैवार हो आगे ।
 हे (अर्बुदे) अनुके मात करमेवान् । (या वा मित्राणि) जो हमारे मित्र हैं, वनेको तुम आत्मने रखा आर (यः सद्यः) युयः सन्तु तुम्हारे वन वैमिष देके हुने और उचिष्ठतु हैं ॥ २ ॥

हे (अर्बुदे) अनुमित्राणां । (अमित्राणां आरमेवा) वही युद्धका आरम करो (अमित्राणां-संज्ञायां) अमित्राणां वने वने (अमित्राणां सेना अमित्राणां) अनुमोदी केवाओको वर को ॥ ३ ॥

(या अर्बुदि नाम देव) जो अर्बुदि नामक केवाओका है और (या अर्बुदिः इत्यम्) जो अर्बुदि नामक केवाओका बुद्धिवा है । (याम्यामृत्तरिक्षमावृतं) अमित्राणां अमित्राणां वर हुना है (ह्यस च मही पृथिवी) वह वही पृथिवी जो अमित्राणां है । (याम्यामृत्तरिक्षमावृतं) अमित्राणां वर हुना है (याम्यामृत्तरिक्षमावृतं) वर अर्बुद और अर्बुदे द्वारा केवाओ अनुके अति विश्वाम्भे, अतः हमने वरान् ये मात हु ॥ ४ ॥

हे (देवब्रजा अर्बुदे) देवब्रजा-अनुमित्राणां । (एवं सेनाया सुह उचिष्ठ) तु देवाके साथ वडा । (अमित्राणां सेना) अनुमोदी वनेको (अमित्राणां अनुमित्राणां वरिवाच) अमित्राणां वरिवाच के वर दे लडा वर ॥ ५ ॥

हे (अर्बुदे) अनुमित्राणां । (उदाराणां समीक्ष्यन्) सर्वत्र अर्बुदे कात वरारोंको देखकर (अर्बुदे हुने) वनेको अर्बुदि हैं ही (अमित्राणां) देवब्रजा एवं उचिष्ठ) वर वनेको साथ और अमित्राणां केवाओ के वर वर वडा ॥ ६ ॥

प्रतिमानाभुमुखी कृपुरुषां च क्रोशतु । विरेक्षी पुरुषे इते रक्षिते अर्धुदे तर्ष ॥७॥
 सकर्षन्ती कुरुक्षं मनसा पुत्रमिच्छन्ती । पतिं आर्तरमात्स्नान् रक्षिते अर्धुदे तर्ष ॥८॥
 अलिस्तेषां आप्मदा शुभाः श्वेनाः पतत्रिणः ।
 ध्वारुक्षः शकुनं वस्यन्त्यन्वमित्रेषु समीक्ष्यन् रक्षिते अर्धुदे तर्ष ॥९॥
 अथो सर्षं शार्पदु मधिका स्य्यतु क्रिमिः । पौरुष्यस्यि कुम्भे रक्षिते अर्धुदे तर्ष ॥१०॥ (२५)
 आ रूढीते सं वृहते प्राणापानान् न्यर्धुदे ।
 निराशा आवाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्ष्यन् रक्षिते अर्धुदे तर्ष ॥११॥
 त्वं वैपय सं विबन्तां मियामित्रान्त्सं सूत्र । उरुग्राहैर्षां हृक्षैर्विष्यामित्रान् न्यर्धुदे ॥१२॥
 मुहन्त्ववां बाह्वमिषाकूत् च यद्वदि । मैषामुच्छेपि किं चन रक्षिते अर्धुदे तर्ष ॥१३॥
 प्रतिघ्नानाः सं बाधन्तः पटुगर्भानाः ।
 अघारिणीर्विक्रेषोऽकवस्यः पुंशे इत रक्षिते अर्धुदे तर्ष ॥१४॥

अर्थे ४ (अर्धुदे) अनुनासक वीर ! (तव रक्षिते) ते आक्रमण होयेपर (पुरुषे इते) तनुके वीर मारपर डकरी को (विरेक्षी कृपुरुषी) बाधो को लोकर आत्मरक्षाहित कार्यो (अपुमुखी प्रतिज्ञावा) अर्धुदे तर्षे करे हुए मुकसे कर्ता पौरुषी हुए (क्रेषो) वषा आकार कर ॥ ७ ॥

५ (अर्धुदे) अनुनासक वीर ! (तव रक्षिते) तेरे आक्रमण होयेपर (ककरी मकबन्दी) डकरी वीर विली हुई (मनसा पुत्र इच्छन्ती) मनसे पुत्रको कम्पा करेवाली (पतिं आर्तरं आह स्वान्) पति आई और अपने बाधो (विषा पौरुषात्) अनुनासक वीर शर्प से ॥ ८ ॥

६ (अर्धुदे) अनुनासक ! (तव रक्षिते) तेरे द्वारा अनुनासक होयेपर (अलिस्तेषां आप्मदाशुभाः) अनाथों को वषे मीन आनेवाले पक्षी (शुभाः श्वेनाः पतत्रिणः) गाय श्वेन आदि पक्षी (ध्वारुक्षः शकुनः) कोने और पटुसे पक्षी (अमित्रेषु स्य्यन्तु) अनुनासक वीर केवाच मांश खाकर तुम हो नह तु (समीक्ष्यन्) देखता रह ॥ ९ ॥

७ (अर्धुदे) अनुनासक वीर ! (तव रक्षिते) तरे द्वारा अनुनासक होयेपर (पौरुष्यस्य कुम्भे) तनुके पुरुषके सुतेपर (सर्षं सर्षं शार्पदु) लव आकर (मधिका बुद्धिः स्य्यन्तु) मधिकवा और कहे वष तुम हो जाय ॥ १० ॥

८ (अर्धुदे न्यर्धुदे) अनुनासक वीर ! (तव रक्षिते) तेरे अनुनासक होयेपर (समीक्ष्यन्) और देखे देखकर इसका होयेपर (प्राणापानान् वृहन्त सं वायुहोतृ) तनुक आर्षोने पकडी और वषा इसका कर । वरुते (अमित्रेषु विरघ्नानां बाधो सं बाधन्तु) अनुनासक वीर को लोकर मय जाये ॥ ११ ॥

९ (अर्धुदे) अनुनासक वीर ! (अमित्रेषु वरेषु) अनुनासक वीर को (सं विबन्तां) तनु मकसे मकसे कर जाय । (मैषा मय्य) अनु मयभीत हो । (यद्वदि) वाक्यः अमित्रान् विषय) वषे पकडको वृद्धोने देखने पकड कोने अनुनासक वीर ॥ १२ ॥

१० (अर्धुदे) अनुनासक वीर ! (तव रक्षिते) तेरे आक्रमण होयेपर (पटुगर्भानाः) इनको अनुनासक वीर को (यद्वदि विषाकूत् च) को हृषके संकल्प हो वे निःकरण वषे (पौरुष्यस्य कुम्भे) इन अनुनासक वीर को न मय ॥ १३ ॥

११ (अर्धुदे) अनुनासक वीर ! (तव रक्षिते) तेरे आक्रमण होयेपर (पुरुषे इते) तनुके वीर पुरुष मारपर डकरी को (उरुग्राहैर्षां हृक्षैर्विष्यामित्रान्) अर्धुदे तर्षे करे हुए (अघारिणी विरेक्षः) वषा (तव सं वषाकर पक्षोभं व श्वेनाः) वीर पौरुषी रह ॥ १४ ॥

श्रुत्वितीरप्सरसो रूपका उतावुदे । अन्ताःपात्रे रेरिहनी रिशां दुर्विहितैषिणीम् ।

सदास्ता अर्धुत्तु त्वमभिनेम्यो दृष्टे कुरुदाराश्च प्रदर्शय ॥१५॥

सुहोऽधिषट्कुमां सर्षिकां सर्वनासिनीम् । य उतारा अन्ताहिता गार्वाप्सरसम् ये ।

सर्पा इतरज्जना रक्षीसि ॥१६॥

चतुरैर्घ्राष्टपायदतः कुम्भहृक्कौ अमुकमुखान् । स्वम्यसा ये चोन्नयसाः ॥१७॥

उत्तु वैपय स्वमर्धुदेऽमिश्राणाम्भूः मिथः । जयांश्च विष्णुमामिश्रां जयतामिन्द्रमदीना ॥१८॥

प्रस्तीनो मृदित सर्पां हुतोऽमिश्रां न्यवुदे ।

अभिजिज्ञा घूमजिज्ञा जयन्तीर्यन्तु सनया ॥१९॥

तयावुद प्रजुचानामिन्द्रो हन्तु रररम् । अमिश्राणां क्षीपविर्माभीषां मोक्षि कम्भन ॥२०॥ (२६)

उत्कंसन्तु हृदयान्पुष्पं प्राप्य उदीपतु । होष्कास्थमनु वतताममिश्रान् मोत मिथिर्वः ॥२१॥

ये च बीरा य चाधीराः पराञ्चो घृष्टिराश्च ये । तमया ये च तूपा अर्थो वस्तामिष्टासिनः ।

सर्वास्तां अर्धुदे त्वमभिनेम्यो दृष्ट कुरुदाराश्च प्रदर्शय ॥२२॥

अथ-हे (अर्धुदे) सत्रनासक बीर ! (अमित्रीः) कुरुदाराश्च अप्सरस) कुतोश्च ताव केदर वन्देवाना शिवा (उत) और (अम्याः पात्र रेरिहनी रिशां) कर्तव्यके अम्यार वाग्देव की हिंसक वसनावधानी (दुर्विहितैषिणी) दृष्ट दृष्टिवादी कृतितां (सर्पाः) ता त्व अभिज्जना इति कुम्भ (ये सव तु अनुभोक्ता त्वकामिके किमे तेनार कर और (उतारां च प्रदर्शय) दृष्टक अक नी रिशा ॥ १५ ॥

(य हो अधि चैकमां) जात्राकमे धूममेककी (क्षीकां सर्वनासिनीं) छेदी और छेदे स्थानपर रहनेवाली रिश पक्षिकाकी रिशा । (ये अमित्रीः ता उतावाः) जो क्षिप्रकर रके हुए रके दृष्ट अक हैं उनका प्रयोग कर । (य गम्भवी) अप्सराः य सर्पा इतरज्जना रक्षीसि) अथक अम्य । सर्व राजान आ इतर केव हैं तथा जो (यतु व्याहृ स्थावदतः) कार भौवोवले कति दा जाले । कुम्भमुपकाय अमुकमुखान्) चहेके धमन कुरुदानी और मुंरके रथ विरमेवाके (ये स्वम्य कम्भ ये च उन्नयसाः) जो मयभीष्ट होनवाले और कालेवली हैं, उन सबको अनुमोदने रिशा ॥ १६ ॥

हे अर्धुदे ! (त्वं अभिज्जनां यन्तु मिथः कहेवय) तु हय अनुमोदने लेवाकमुखीके अथमवाय कर । (विष्णुः अमिश्रान् घातुम्) वनजाल वर अनुमोदने जाते और (इन्द्रमेदिनी जयतां) राजा और मित्र दोनों विजयो हो १७ ॥

हे अर्धुदे ! (अमिश्राः प्रस्तीनः मृदितः दृष्टः क्षयां) अनु येरा जाकर पाटा हुआ सर जाय । अम्यः (प्रेम्ता अधि विज्ञाः घूमजिज्ञाः जयन्तीः) अनुमोदने जाय अमित्री उतावादि आर धूमकी रिश व विजय कराती हुद यने ॥ १८ ॥

हे अर्धुदे ! (सर्पाः अनुचानां अभिज्जनां) उक्त लेवाके जगाए यवे अनुमोदने (यो वर क्षीपविः इन्द्रः हन्तु) सुधन बीरोके समर्थ बीर मार डाले (अमीषां का जय मा मोक्षि) अनुमोदने चर्ष भी व वने ॥ १९ ॥

(उतारां च प्रदर्शय) सत्रभीष्ट इत्यय ककक जाव (प्रायाः कर्षाः उदीपतु) अनुभवा प्राप्य कपर ही कपर जला जाय (अमिश्रान् मोतमिथः अनुवर्ततां) अनुमोदने सुख सुख जाय । वरदु (मिथिर्वा मा उत) हयारे मिथोके वर वरन हो २० ॥

हे अर्धुदे ! (ये च बीराः ये च चाधीराः) जो धैर्यवाले आर जो भीक हैं, (ये वराञ्चः ये च तूपाः) जो दूर जागेवाले और जो वरिद हैं (तमया ये च तूपाः) अम्यधारले बी येरे हुए हैं (अथो वस्तामिष्टासिनाः) और जो वरकोके वसत गुवाय वरनवाले हैं (सर्वांस्तु ताव ताव अभि जयन्तः एते कुम्भ) उक्त सबको तु अनुभावी रिशकेने किमे जागे कर अर (उतारां च प्रदर्शय) रेरिहक अमीके अनुमोदने प्रति रिशा ॥ २१ ॥

अर्धुदिहन् त्रिपञ्चिह्नामिश्रान् नो वि विध्यताम् ।

ययैषामिन्द्र वृत्रहन् हनोम शचीपतेऽमिश्राणां सहस्रशः ॥ २३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोपचीतुन वीरुषः ।

गन्धवाप्सरसं सर्पान् देवान् पुण्यज्वनान् पितॄन् ।

सर्वास्तौ अर्धुद स्वममित्रैर्यो ह्ये कुरुदाराश्च य ईर्यय ॥ २४ ॥

ईसां यो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

ईसां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।

ईसां व ऋषयश्चकुरमित्रेषु समीक्ष्यन् रदिते अर्धुदे तव ॥ २५ ॥

तेषां सर्वेषामीशानां उत्तिष्ठतु म नैवाश्च मित्रा देवजना युयम् ।

इमं संप्राम सुमित्र्य यथास्त्रोक्तं वि तिष्ठन्वम् ॥ २६ ॥ (२७)

अर्थ (अर्धुदिहः च त्रिपञ्चिहः च) अर्धुदि और त्रिपञ्चिह ये हजार वीरन वच (य अमिश्रान् विविध्यतां) हमारे कनुओं के मार दें । (वृत्रहन् शचीपते इन्द्र) वे वृत्रनाशक शचीपते इन्द्र प्रभो । [यथा पूर्वा अमिश्रान्ते सहस्रशः हजारान्] इन कनुओं को सहस्रों की संख्यामें हम मार दें ॥ २३ ॥

हे कनुदे ! वनस्पतिओं और वनस्पतिसे बन पड़ाओं कीकचियों कलाओं यंत्रों अपहरा कर देव पुण्यजन और पितृकी तु [आदित्य इव इन्द्र] कनुओंको दिका और [कुरुदारां च कुरुदारां] रक्षितक कलोंको बचावित कर, मित्रे कनु कर जाय ॥ २४ ॥

हे कनुदे [यव इति] तुम्हारा आश्रमण होमिए [अमित्रेषु समीक्ष्यन्] कनुओंका मित्रिजन वरमेके पकाव इन्ने कनुओंके रूप [यथा देवः कुरुदारा ब्रह्मणस्पतिः] आदित्य देव कुरुदारा की मरुत [ईसां यथा] कचिकार करें । इन्द्र, अग्नि, वसु, मित्र प्रजापति ये देव [याः ईसां कनुः] तुम कनुओंपर कात्म करें । (आचरयः) कचि-रोम [ईसां कनुः] कात्म करें । अर्थ

हे [मित्रा] मित्रो, हे [देवजना] देवजनों ! [कुरुं तेषां कुरुं कुरुदाराः] तुम इन वच कनुओंके अनिरुते से [उत्तिष्ठन् स मरुतः] कओ ठीकर हो जाओ । [इमे समाने संविजः] इन कनुओं के समान प्रकर कच प्राप्त करके [यथास्त्रोक्तं] कचने कचने देव काकर तुमसे रहो ॥ २६ ॥



युद्धकी रीति ।

[१० (१२)]

(श्रुति-भृगुगीता । देवता-त्रिपथिः)

उचिष्ठं सं नक्षत्रसुदीराः केतुमिः सह । सर्पा इतरब्जना रक्षास्यमित्राननु भावत ॥१॥

ईशां यो वेदु राक्ष्य त्रिपथे अरुणैः केतुमिः सह ।

ये अन्तरिक्षे ये द्विपृथिव्या य य मानवाः ॥

त्रिपथुस्ते चेत्तसि दुर्धमान उपासताम् ॥२॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अयो विकसकृतीमुखाः ।

कृष्णादो धातरहस्य आ संखन्त्वमित्रान् वधेण त्रिपथिना ॥३॥

अन्तर्धेहि जातवेदु आदित्यं हृष्यं वहु । त्रिपथेरियं सेना सुहितास्तु मे वधे ॥४॥

उचिष्ठं त्व देवद्वानुर्बुध सेनया सह । अयं अग्निर्व आहुतस्त्रिपथेराहुतिः प्रिया ॥५॥

अर्थ- हे (वराहाः) अपने अधिकपर वरार हुए नीर ऐगिको ! (वेदुभिः सह उचिष्ठं सं नक्षत्रं) अपनी पञ्चाङ्गे साथ उठो नीर उबार हो जाओ । हे (सर्पा इतरब्जना) सर्पों और हे अन्य जीवो । हे (रक्षासि) रक्षायो ! हमारे (नमिनाम् अनुमानम्) अनुभावर पड़ाई करा ॥ १ ॥

हे (त्रिपथः) त्रिपथि वक्रयुक्त नीर ! (अयो केतुमिः सह) अयं अरुणैः साथ (ईशां वा राक्ष्यं वेदु) अयं अयं अविचारितोक्त यह राक्ष्य व देसाही मैं माफता हूँ । (ये अन्तरिक्षे ये द्विपृथिव्या य य मानवाः) जो अन्तरिक्षमें जो पृथिवीमें नीर जो पृथ्वीपर मनुज ये उक्त यो (दुः-आमानः) दुष्ट नामवाके हैं ये वध (ये हि ईशो चेत्तसि वराहम्) त्रिपथि नीरके पित्तमें रहें अर्थात् यह नीर अयं यो वध मिथार करे ॥ २ ॥

(त्रिपथिना वधेण) तीन उभिनोकाके वधके साथ (अयोमुखाः सूचीमुखाः) अयोके मुखवाके सूचिके अयं यो वधे (अयो विकसकृती मुखाः) अरुण के अयं मुखवाके (कृष्णादो धातरहस्य) मांस खानेवाके और वधुके देवके वधके साथ (अग्निनाम् अनुमानम्) अनुभावर जाकर गिरे ॥ ३ ॥

हे जातवेदु आदित्य ! (वहु हृष्यं अयः अग्निः) ए अनुमानवाके बहुत सुन्दर भूमिमें पिया दे । (त्रि-पथि रहें सेना) त्रिपथिवर अयं करवेवाही यह अयं (मे वधे सुहिता अस्तु) मेरे वधमें अयं प्रकाश रहे ॥ ४ ॥

हे (देवद्वानुर्बुध) अयं अयं अनुमानक नीर ! (एवं सेनया सह उचिष्ठं) एवंके साथ उठ । (वा अयो वधि जाहुतः) एम जीवों के वध करवकी वधि अया वधा है। (त्रिपथोः आहुतिः त्रिपथिना अयं वधके-अग्निः एत वधि जाहुति अर्थात् अयं है ॥ ५ ॥

क्षितिपदी सं पंतु धारभ्येक्ष्य पतुपदी । कृत्येऽभिज्ञेभ्यो मधु शिपेधेः सह सेनया ॥६॥

चमाक्षी सं पंतु कृषुकर्णी च क्रोशतु । शिपेधेः सेनया क्षिते अरुणाः संतु केतव ॥७॥

देवायन्तां पक्षिणो ये पर्यास्यन्तरिक्षे क्षिति ये चरन्ति

श्यांभो मक्षिकाः स रमन्तामामाभो गृध्राः कर्णये रदन्ताम् ॥८॥

यामिन्द्रेण सैवा समघस्या प्रक्षणा च बृहस्पते ।

तयाहमिन्द्रसुधया सर्वां देवानिह हृष इतो खपत मामृतः ॥९॥

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो प्रक्षसक्षिताः । असुरक्षर्यण वृष शिपेधे दिव्याभयन् ॥१०॥ (२८)

येनासौ गुप्त आदित्य उमादिन्द्रस्य तिष्ठतः ।

शिपेन्धि देवा अमज्जन्तौक्षते च पलाय च ॥११॥

सर्वोक्तान्समखपन् देवा आहुस्यानया ।

बृहस्पतिराङ्गिरसो बभूव यमसिञ्चतासुरक्षर्यण वृषम् ॥१२॥

बृहस्पतिराङ्गिरसो बभूव यमसिञ्चतासुरक्षर्यण वृषम् ।

येनाहमुम् सेना नि लिप्सामि बृहस्पतेऽभिज्ञान् हुन्म्योक्षसा ॥१३॥

वर्ण- (क्षितिपदी चतुष्पदी ह्यं धारम्भा) श्वेत पांशुका नीर वार पांशुका यह वाष्पकी पांशुका (स घटु) वायु करे । (कृत्ये) निवार करनेवाले । (शि-पेधेः सेनया सह) शिपेधे नामक वज्र वारण करनेवाली देवके साथ (यामिन्धेः मधु) कर्णके साथ करनेके क्षिते तैवार हो ॥ ६ ॥

(चमाक्षी सं पंतु) ईदृशे व्यंज वक्षित होकर धारकता गिर जाने (कृषुकर्णी च क्रोशतु) कर्णमें क्रोश होकर धारक रोगा हो । (शिपेधेः सेनया क्षिते) शिपेधेकी सेनाका खप होवेपर (अरुणाः सेतवः समुद्र) अरुण रंगके अरुण खड़े हो जाय ॥ ७ ॥

(ये क्षिति अमरिषः च चरन्ति) वी बुभुक्षु और अमरिषयोर्धर्म सचार करते हैं व (यमसि अम-अयन्तां) पक्षी वृष और वृषाव । (आदित्यः मक्षिकाः स रमन्तां) हिस पक्ष, मक्षिकावां धारके सुखे जाने कम जांवा । (यामाद् गुध्राः कर्णये रदन्तां) देवा जोस जानेवाले पक्षि सुखोंके जा जाय ॥ ८ ॥

हे बृहस्पते ! (इन्द्रेण प्रक्षणा च सर्वां देवां) इन्द्र और प्रक्षणाके द्वारा क्षित वक्षिणे (समघरयाम) क्षिता या । (तया इन्द्र सुधया सह सर्वां देवान्) वरुण इन्द्रकी वक्षिते में सब देवोंके (हृष हृषे) बड़ा मुकाता हूँ और कहता हूँ कि (इतो खपत मामृतम्) बड़ा भीत को, बड़ा नहीं ॥ ९ ॥

(यामिन्द्रस्य सुधयाः) यामिन्द्रस्य सुधया और (गुध्राः कर्णयोः) कर्णके तीक्ष्ण हूए सब मधु (अमुरक्षर्यण वषं शिपेधेः वषं) अमुरक्षर्यण शिपेधे नामक वज्र (दिवि आगवधं) बुभुक्षुमें आगवध केते रहें ॥ १० ॥

(येन असौ आदित्यः गुप्तः) जिसके द्वारा वह सर्व अरुणिक हुआ है, (उमा इन्द्र च तिष्ठतः) और उमा इन्द्र के दोनों अरुणिक रहते हैं । वरु (शिपेधेः अमज्जन्तौक्षते वृषा च) शिपेधे नामक वज्रके वीर और वरुके क्षिते (देवा अमज्जन्तौक्षते स्तोत्रादि क्षिताः) ॥ ११ ॥

(यमसिञ्चताः बृहस्पतिः स अमुरक्षर्यण वषं) यमसिञ्चता बृहस्पतिने जिस अमुरक्षर्यण वज्रके [यमसिञ्चत] वीर वर तैवार क्षित [अरुणा वायुया] वर वज्रके रसीकाव [देवा सर्वां क्रोशन् अमरुध] सब देवोंके सब क्रोशका भीत क्षिता ॥ १२ ॥

[यमसिञ्चताः बृहस्पतिः स अमुरक्षर्यण वषं वज्रं यमसिञ्चत] यमसिञ्चता बृहस्पतिने जिस अमुरक्षर्यण वज्रकी वीर-

युद्धकी रीति ।

[१० (१२)]

(श्रुतिः—भृगुविराट् । देवता—त्रिपथिः)

उचिष्ठं स नक्षत्रसुदाराः केतुर्मिः सह । सर्पा इतरयना रक्षास्त्रमित्राननुं पावत ॥१॥

ईशां यो वेदु रात्र्य त्रिपथे अरुणैः केतुर्मिः सह ।

मे अन्तरिक्षे ये द्विषि पृथिव्या य च मानवाः ॥

त्रिपथस्ते चेतांसि दुर्जामान् उपासताम् ॥२॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अयो विक्रहकृतीप्रुखाः ।

ऋष्यादो वाररहस आ सजन्त्रमित्रान् वसेण त्रिपन्थिना ॥३॥

अन्तर्षेहि जातवेदु आदित्य कृण्वतु वदु । त्रिपथेरियं सना सुहितास्तु मे वधे ॥४॥

उचिष्ठं त्व देवप्रनापेदु सेनया सह । अय वरिष्ठ आहुतक्षिपन्धेराहुतिः प्रिया ॥५॥

अर्थ— हे (वराहः) जयमे वाक्यपर जयार हुए नीर वैमिथे । (विपथिः सह उचिष्ठं स नक्षत्रं) जयनी प्यवाको साव कठे और तेवार हो जाके । हे (सर्पा इतरयनाः) सर्वे और हे जयमे कोपी । हे (रक्षांसि) रक्षाको । इनके (अमित्रान् अनुपावत) अनुधोपर बहाई करा ॥ १ ॥

हे (त्रिपथः) त्रिपथि वक्रकुच नीर । (अरुणैः केतुर्मिः सह) काक लपटोंके साथ (ईशां वा रात्र्यं वेदु) जय ल वाकिरात्रिको वह रात्र्य व ऐशाही मे मानता हूँ । (मे अन्तरिक्षे ये द्विषि पृथिव्या य च मानवाः) जो अन्तरिक्षमें जो पृथ्वीमें और जो पृथ्वीपर मनुष्य हैं जयमे को (दुर्जामान्) दुष्ट नामवाके हैं ये सब (चेति उचिष्ठं) चेतांसि वराहको । त्रिपथि नीरके चित्तमें रहें अर्थात् वह नीर लज्जा कोल बिचार करे ॥ २ ॥

(त्रिपथिना वसेण) तीव्र सेविनीवाके वक्रके साथ (अयोमुखाः सूचीमुखाः) दोनोंके मुखाके सुईके समान मोक वाके (अयो विक्रहकृती मुखः) कठोर कंठके समान मुखाके (ऋष्यादोः वाररहसः) पांच वाक्यवाके और वायुके वेनके चलेको नाम (अमित्रान् वा अनुपावत) अनुधोपर जाकर गिरे ॥ ३ ॥

हे जातवेद आदित्य । (वदु कुण्वतु जयमे वैदि) ए अनुपावके बहुत सुंदे भूमिमें गिरा दे । (मि—मित्रा इत्येतेना) त्रिपथिवाक्य वाक्य करवाको वह एता (मे वधे सुहितास्तु) मेरे वधके लज्जा प्रकाश रहे ॥ ४ ॥

हे (देवप्रनापेदु) विष्णु जय अनुपावक नीर । (अयं सेनया सह उचिष्ठं) येनकि जय कठ । (वा अयं वरिष्ठ आहुतः) तुम कोर्वाक जिये वह एतद्वकी यकी जयना यना है । (त्रिपथेः आहुतक्षिपन्धेराहुतिः प्रिया) त्रिपथि नामक वक्रके जिये इत त्रिपथि आहुति करवात मित्र है ॥ ५ ॥

यथं कवची यथाकवचोऽभिप्राये यथाजर्मनि । ज्योत्स्नाः कवचाश्चैरज्ज्मनामिहत् श्याम् ॥२२॥

ये वमिषो यऽर्मागोऽभिप्राये ये च वमिगः । सर्वास्तौ अर्धदे हताश्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥२३॥

ये रथिना ये अरथा अंसादा ये च सादिनः ।

सर्वीनदन्तु तान् हतान् यूथाः इयेनाः पतत्रिण ॥२४॥

सुहस्रकुण्ठापे स्वेतामात्रिणी सेना मरे वृषानाम् । विविदा कृष्णाकृष्ण ॥२५॥

मर्माविषं रोहवत् सुवर्णैरदन्तु वृषिर्वै मृदितं शयानम् ।

य इमां प्रतीचीमाहुतिमभिप्राये ना पुण्यस्तति ॥२६॥

या देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराचंम् ।

तयेन्द्रो हन्तु वृषहा वज्रेण त्रिपिचिना ॥२७॥ (३०)

॥ इति पंचमोऽनुवाकः ॥

॥ एकादश काण्डं समाप्तम् ॥

अर्थ—(१) य कवचाः । जो कवचवाही है (२) यः य कवचवाः अभिप्राये) और या कवच न वारण करनेवाले अनु है, (३) य जर्मनि) और जो रथमें है यह सब जानु (ज्योत्स्नाः कवचवाही अज्ज्मना अभिप्राये) यथे पाछे और कवचके पाससे तथा रथके आसतसे जानक होकर गिर जान ॥ २२ ॥

(ये वमिषा ये अर्मागः) जो कवचवाही और जो कवच न वारण करनेवाले और (ये च वमिगः अभिप्राये) जो कवचवाही जानु है हे कर्तुं । (तान् सर्वास्व हताम्) उन सब मारे हुआओ (भूम्यां जगत्) भूमिपर कुपे जायें ॥ २३ ॥

(ये रथिना ये अरथाः) जो रथवाले और जो रथीय (ये अरथाः ये च सादिनः) त्रिपके पास चोके नहीं हैं और जो घोड़ा सवार है (सर्वास्व हताम् हताम्) उन सब मारे हुए जानुओंके (देवाः इयेनाः पतत्रिणः अदन्तु) योंन सब मारे जायें ॥ २४ ॥

(मरे वृषानां अभिप्राये) वृषम मारी मरी जानुओंकी सेवा (विविदा कृष्णाः कृष्णाः) लज्जेसे विद्व हई और निहत्त जाकर होकर मरें ॥ २५ ॥

(२) अभिप्राये) जो जानु (३) इमां प्रतीचीं आहुतिं पुण्यस्तति) हमारी इस पूर्वाभिप्राय कबी हुई ऐश्वर्यकी आहुतिसे बाध मुक्त करना चाहता है (सुवर्णैः मर्माविषं रोहवत्) वार्णसे लज्जेका करन होवेके कारण रोहवत् (सुवर्णैः मर्माविषं रोहवत्) सुवर्णोंके मर्माविषसे मर्माविष होनेके कारण भूमिपर पड़े सब जानुओं दिख पड जायें ॥ २६ ॥

(या देवाः अनुतिष्ठन्ति) जिसका देव अनुष्ठान करते हैं । यस्या विराचं नास्ति) जिसका विराच नहीं होता है (तया त्रिपिचिना वज्रेण) कर्तके द्वारा तथा त्रिपिचि वज्रेके (वृषहा हन्तुः हन्तुः) वृषवाहक हन्तु जानुका हनन करे ॥ २७ ॥

सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वर्षद् कृतम् ।

इमां शुपन्महाभुविमिहो ज्ञेयत् मामुतः

॥ १७ ॥

सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिपंचेराहुतिः प्रिया । सर्वां महतीं रक्षत ययाग्ने अहुरा मिताः ॥ १५ ॥

बाहुरमित्राणामिन्द्राण्यथा ॥ इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा क्षंकन् प्रतिधामिषुम् ।

आदित्य एषामुक्ता वि नांक्षयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पथाम् ॥ १६ ॥

यदि प्रयदेवपुरा मरुत वमीभि चक्रि ।

तनुपान परिपार्थ कृष्णाः सधुपोचिरे सर्वे तदंगस कृषि

॥ १७ ॥

कृष्णादानुवर्षयन् मृत्युना च पुरोहितम् । त्रिपंच मेदि सेनया अयामित्रान् प्र पंचत् ॥ १८ ॥

त्रिपंचे तमसा त्वममित्रान् परि वारय । पृथग्न्यप्रणुषाना मामीषां मोक्षि कृष्यन् ॥ १९ ॥

क्षितिपदी स पतस्त्रिमित्राधामम् सिधः । मुक्षन्त्यामूः सना अमित्राणां न्यबुदे ॥ २० ॥

मूढा अमित्रा न्यबुदे ज्योषां वरवरम् । अनया अङ्घ्रि सनया ॥ २१ ॥

अर्थ- हर तेभ्य देवा [तैम अम् सना मि कृष्णाभि] तस्य वक्ष्यते इत्यन्त्येवार्थो वाच्यः ॥ हे मृत्युदे ! [ओजसा अमित्रान् इत्यम्] समस्तैः सारभोगा नाश करता हू ॥ १७ ॥

[ये वर्षद् कृत अश्नन्ति] जो वर्षद्कारणसे अन्न भक्षण करत हैं वे [सर्वे देवाः अति-आयन्ति] तब देव अन्न अतिक्रम करतें हैं । हे देवा ! [इमां आहुतिं शुपन्त] इस आहुतिसे स्वीकार करो और [इमां कृत मा अमुतः] यही अहम्मे अति को बहुरि मही ॥ १४ ॥

[सर्वे देवाः अति आयन्तु] सब देवयन्त कारणसे अतिक्रम करे [त्रिपंचेः आहुतिः प्रिया] त्रिपंचि वज्रोक्ति करित प्रिय है । [वया अये अहुराः मिताः] त्रिपंचे मारमयी अहुरोंका पराक्रम विधा था तब [महतीं सर्वां रक्षत] सभी रक्षिणी तुम सब भितकर रक्षा करो ॥ १५ ॥

[बाहू अमित्राणां इन्द्राणि अयत्] कम्पु कर्णजोके बायोके अग्रनायोको वाच्य करे । [इन्द्रः एषां बाहून् प्रतिभनक्तु] इन्द्र इषां बाहुजोके टाक वे । वे हरत [इतु प्रोचतां मा क्षंकन्] वाच्य वज्रपरीपर लम्बायेके सिधे समर्थ न हीं [आदित्या इन्द्राणां मित्राणि अयत्] एवं इन्दे अजोके वाच्य करे । [चन्द्रमा अगतस्य पथां युतां] चन्द्रमा अगतस्य पथाम् मार्ग रोक देने ॥ १६ ॥ (यदि इन्द्रपुरा मेतुः) यदि पूर्व देव अग्रोन् अनुकूप राक्षत बहोत दूर गमन मन है और उन्मोमे (मरुत वमीभि चक्रि) शत्रुसे कथकोके सकार विधा है और (पृथग्न्यप्रणुषाना) सगिरके रक्षण और अग्रमित्राका सब रक्षण करते हैं और बी (त्रिपंचि) कष्टकर कर रह हैं (तत् सर्वं अन्नस कृषि) इस सबको बीरत बनाओ ॥ १७ ॥

हे त्रिपंचि ! (इन्द्राणां अनुकृतम्) अंगममजोको वेरकर (मृत्युना च पुरोहितः) मृत्युदे कामे रक्षकर (सनया प्रिये) सनाके वाच्य कामे वदः । (अमित्रान् अन्न प्रयच्छन्) कम्पुको जीत को कार कथको प्राप्त कर अग्रोन् अपने आधीन का ॥ १८ ॥ हे त्रिपंचि ! (त्वममित्रान् तमसा परि वारय) तू कम्पुजोका अन्नकारणसे वेर (पृथक्-आत्म-अनुकृतां लमीनां) इन्द्राणांके वेरित हुए इन कम्पुजोके (कृष्णा मा माधि) सिधिका मी मत छोड ॥ १९ ॥

(क्षितिपदी अमित्राणां अम्पुः सिधः संयत्तु) क्षित पर्वतवासी क्षिति कम्पुजोके इस योगका करार पदे । हे मृत्युदे ! (कृत अम्पु अमित्राणां मिताः सुकृतम्) वाच्य वे कम्पुजोका सवाए नीहित हो कार्य ॥ २० ॥

हे मृत्युदे ! (अमित्राः मूढाः) कम्पु मूढ हो कार्य । (एषां वरं वरे अङ्घ्रि) इसके मुखिकाको पराक्रम कर । और वरको (वदता देवता अङ्घ्रि) इस देवको अति से अथवा मार बाक ॥ २१ ॥

यथं कथं यथाकृत्योऽभिज्ञो यथाज्मनि । ज्ञापयिष्ये कथं यथाशैरज्मनाभिहतं शयाम् ॥२२॥

ये धर्मिणो यः सर्वाणां अभिज्ञा य च धर्मिणः । सर्वास्तां अर्थदे हताच्छ्वानोऽदन्तु मृम्याम् ॥२३॥

ये रयिता ये अरथा अंसादा ये च सादिनः ।

सरीनदन्तु तान् हतान् युथाः श्येना पतत्रिण ॥२४॥

सहस्रङ्गणा श्वेतामाभिरी सेना ममरे वृषानाम् । विविदा कङ्कशाकंश ॥२५॥

सर्पाविधं रोहयत सुरगैरुदन्तं नृभिर्नृमृषितं शयानम् ।

य इमां प्रवीचीमाहुतिर्मात्रो ना युयुत्सवि ॥२६॥

या देवा अनुमिषन्ति यस्या नारित विराधेनम् ।

तथेन्द्रो हन्तु वृषहा वज्रेण शिषेन्विना ॥२७॥ (३०)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ एकादश काण्ड समाप्तम् ॥

अर्थ— (यः च कथयः) जो कथयवादी है (यः च कथयः अभिज्ञः) और जो कथय व पारय कामेयके अनु है, (या च अज्मनि) और जो रथों के सह साथ अनु (ज्ञापयः कथयवादीः अज्मना अभिज्ञः शयानः) उनके पासवे और कथयके पासवे तथा रथके आवागमि वागम होकर गिर जाय ॥ २२ ॥

(ये धर्मिणो ये धर्मिणः) जो कथयवादी और जो कथय व पारय करनेवाले और (ये च सादिनः अभिज्ञः) जो कथयवादी अनु है वे अर्थदे । (हताच्छ्वान् हतान्) उन सब मारे हुए हैं (मृम्यां यावः अदन्तु) मृमिपर कुछ पावे ॥ २३ ॥

(ये रयिताः य अरथाः) जो रथवाले और जो रथहीन (ये ज्ञापयः ये च सादिनाः) जिनके पास मोड़ नहीं है और जो मोड़म सवार हैं (सर्पाश्च वृषाश्च) उन सब मारे हुए अनुओंके (युथाः श्येनाः पतत्रिणः अदन्तु) पांच २५ आदि सब आदि ॥ २४ ॥

(सरीन वृषानां अभिज्ञी सेना) पुत्रों मां वही अनुओंकी सेना (विविदा कङ्कशाकंश) शरीर विद हुए और विदु लङ्घन होकर गिरें ॥ २५ ॥

(यः अभिज्ञः) जो अनु (या इमां प्रवीचीं आहुतिं वृषानाम्) इमारी इस पूर्वाभिज्ञता जयी हुई है अर्थको आहुतिके साथ पुत्र करण वागम है (सुरगैः सर्पाविधं रोहयतं) सर्पोंके समीक केन होमेके करण रोहयत (नृभिर्नृमृषितं शयानम् अदन्तु) नृओंके विषयके मरित होमेके करण मृमिपर पड़े सब अनुओंके दिष्ट पद्य जाय ॥ २६ ॥

(या देवाः अनुमिषन्ति) भिक्षु देव अनुमन करते हैं । (यस्या विराधेन मरित) मितरा मिरोम नहीं होता है (वया शिषेन्विना वज्रेण) वरुके द्वारा वया शिषेन् वज्रे (वृषहा हन्तुः अदन्तु) इनवागम हन्त अनुका हनन करे ॥ २७ ॥

भयानक युद्ध ।

युद्ध है वहा मनासक परतु अथवाक मानव-जातिके हृदय परिष्टुय नहीं होते तपतक युद्ध अपरिहार्य ही है । जब युद्ध उठनेवाला नहीं है तभीसे कम जातिबीज युद्ध उठ नहीं सकता तब इसे परिणामकारक बनाया चाहिये । अतः युद्धकी परिणामकारक बनानेके लिये और छात्र मानकी छवि करनेके लिये वेदमें कई सुक्त रिये हैं जिनमें वह सुक्त विशेष महत्त्व रखता है । पाठक इस छवीके इस सुक्तका अध्ययन करें ।

अजनेवाले और अपने जीवनको पूर्णतया समर्पण करने युद्धके लिये तैयार रहें (वशात्) जीवनपर तयार हो जाय । विकल्पन अपने जीवन की शिता म करें । जब वेमाके बीर अपने अपने अपने केवल भक्त हैं के लिये उन्हें और तयार हो जाय । अपने अपनेकी रक्षा करना ऐतिह्योना करनेका है । जब ऐतिह्य अर्थात् अपने साथ अपनी सहायता करनेके लिये आये तब और विकल्पन करवत जाता है । (मं १) वही सुक्त, राजस और अन्न कोषमी करवत हमला करनेके लिये आये होखते हैं । जो भी अपना मित्रवक हो वह तब एक मित्रारसे भक्त हो अपनेमें युद्ध न हो अन्येका मित्रार सिद्ध सिद्ध न हो तब एकही विचारसे एक कोशनामें अभिहित होकर एकसे कई और एककी पूर्णतया साथ परास्त करें ।

वज्रनिर्माण ।

विशेष नामक एक प्रकारका वज्र है । वह वहा प्रकार होता है । तीन स्थानोंमें इस वज्रमें तीन शिता जाता है । इसलिये इसका नाम विश्वि रखा गया है । विश्वि वज्र है, वह जल मित्र सिद्धि में है ।

वज्रम सिद्धिना । (मं ३ १०)

व वज्रम सिद्धिना । (मं ११ १३)

वह विश्विवाका वज्र है तबमें तीन शिता होती है और वह पानीमें सिद्धि करने बनाया जाता है । अर्थात् वह वैश्वनास की ही देना चाहिये और तयार पानीमें अपना ऐकाधि इस वज्रपरि मित्रार बनाया जाता है । इसके निर्माणके विषयमें इस सुक्तमें जोड़ेते विरत हैं । जो पाठक वज्रनिर्माण की विधा

आजना चाहते हैं उसकी इस तरहके विरत नाममें रख लेना है ।

छात्र झण्डे ।

अल्प रक्तके छात्र केकर तथा अपने वज्र साथ रखत तब ऐतिह्योना तैयार होना चाहिये । इस छविके तब तब छात्र होकर राजा ऐतिह्योना समर्पित करने देना जान करे— हे छत्र ऐतिह्यो । आप सभी इस राज्यके तब तब हैं आप ही इस राज्यके रक्त हैं और आप ही इसके महामने हैं । जो इस मूलक वर मनुष्यमात्र हैं जिनमें जो युद्धरत अथवा युद्ध है [इ— नाम] युद्धका छात्र मित्रार का प्रसिद्ध हुआ है उसकी रक्त देना आप तब वीर्यवान् करण है । इस मूलक का राज्य विरक्त करनेके लिये तब युद्धरत हुए हैं । आपके हाथमें विश्वि नामक वज्र छवि काको वज्र है । वज्रकी सहायतासे आप हरएक तबकी रक्त मकते हैं अतः युद्ध कोयोंकी रक्त देना वह एकमात्र अल्प करण है वह तब अपने जितमें आप [छत्र सिद्धि वज्र] रहें और इसे कभी न छोड़ें । [मं १] जिस कारण अल्प करण युद्धकी रक्त देना है तब कारण आपने हाथमें रक्त कोरे कभी नहीं होना चाहिये कि जो शीघ्रतुन ही । इस अल्प आपकी अपना मानव वरंवार देखना चाहिये । देना मानव करने तथा अपने ऐतिह्योना उत्साहित और उत्पन्न करें ।

बाजोंका स्वरूप ।

विश्वि वज्र के साथ मानवारी ऐतिह्य की रहें । दोनों ही बहारी करवत एक साथ हो । तब अल्प प्रधर के लिये हवि परतु सुतीन मेंमें निम्नलिखित कर्णोका अल्प है ।

बौधुका— जिनके अल्पनाथमें अल्पका कर्ण है जिनके नामकी शोक तीक्ष्ण रह सकती है—

१ सूचीमुका— सूचीके अल्प नाममानवकी वज्र । देना तब करने करीरमें तीक्ष्णसे युद्ध मकते हैं ।

२ रिक्तवीमुका— कर्णके अल्प कादेशर सुक्तके

अथर्ववेदके एकादश काण्डकी विषयसूची

पृष्ठ ६

पृष्ठ ६

१ ब्रह्मचर्यस मृत्युको दूर करो	२	प्राणका मंठा आचुक्	५०
२ मनुष्यक सूक्त और मन्त्र	३	अपनी स्वतन्त्रता और पूर्णता	५१
३ ऋषि—देवना—छद्	४	प्राणकी मित्रता	"
४ अग्नीव्रत—सूक्त	७	समयकी अनुकूलता	५२
५ धान वदनेधारा अन्न	१५	प्राणरसक भाषि	"
६ शत्रुओंको परास्त करना	"	वृत्तताका धर्म	५३
७ शत्रुपुत्रा स्त्री स्त्रियोंका कर्तव्य	१६	बोध और प्रतिबोध	"
८ प्राणितारा मा रिपन्, विवाह	१७	उद्यतिही तेरा मार्ग है	"
९ गृहपञ्च	"	धर्मके दृष्टि	"
१० पोषक मन्त्र घर कैसा हो	१८	अधवाका सिर	५४
११ रुद्र—देव	१९	ब्रह्मलोककी प्राप्ति	५५
१२ मन्त्र मार शर्वका सूक्त	२४	देवोंका कोश	५५
१३ विराट् मन्त्र	३५	ब्रह्मकी नगरी अयोध्या नगरी	५६
१४ अन्नका महत्त्व	३७	अयोध्याका राम	"
१५ प्राणकी विद्या	३९	उपनिषद्में प्राणविद्या	५७
१६ प्राणका महत्त्व	४०	प्राणका श्रेष्ठता	"
१७ मन्त्रसे ब्रह्मप्राप्ति	४१	प्राण कहाँसे आता है ?	५८
१८ प्राणकी पृष्टि	४२	देवोंका धर्म	५९
१९ प्राणसूक्तका आराधना	"	प्राणस्तुति	"
२० अग्निम प्राणायामक उपदेश	४३	प्राणरूप अग्नि	६१
२१ मनु—मूर्ति	४४	प्राणका प्ररक	६०
२२ पञ्चवेदमें प्राणविषयक उपदेश	४५	अगोंका रस	६१
२३ वायन और प्राणदाकि	"	प्राण और अन्य शक्तियाँ	"
२४ प्राणकी प्रतिष्ठा	४६	परीक्षा	६४
२५ सम्पूर्ण—प्राण प्राणदाता अग्नि	४७	धर्म, रुद्र भाविष्य	"
२६ प्राणक साथ इन्द्रियोंका विद्यात्म	४८	तीन लोक	६५
२७ विद्युत्प्राणक प्राण	"	२८ ब्रह्मचर्य	६६
२८ मन्त्रवाक्य प्राण	४९	२९ ब्रह्मचर्य सूक्त	७२
२९ सरस्वतीमें प्राण	५०	व्यवसायोंकी अनुकूलता	७३
३० भास्वर मार प्राण सहस्राक्ष अग्नि	"	देवताओंका साक्षात्प्राप्त	७४
३१ मध्यपर्वका प्राणविषयक उपदेश	५१	तीन और तीन रूप	७५
३२ मे विद्ययी दृष्टि	५२	गुरुद्विष्य—संपन्न	७६
३३ पंचगुर्या महादेश	५३	तीन रात्रिना निवास	७७

अमका तरवज्ञान	७९	१४ पापसे बचनेकी प्रार्थना	१०
मृत्यु स्वीकारनेकी विद्यता	८०	१५ इस सूत्रका विचार	११
तपस उन्नति	८१	पृथ्वीस्थानीय वृत्तता	
ब्रह्मचारीकी हजबज	८२	अन्तरिक्षस्थानीय वृत्तता	११
ब्रह्मचारीकी शिक्षा	८४	गुह्यस्थानीय वृत्तता	११
ब्रह्मचारीका आरमयक		१६ उच्छिष्ट ब्रह्म श्रुत	११
बो बोध, बोधारस्तक ब्रह्मचारी		१७ उच्छिष्ट श्रुतका आशय	११
बो भक्ति	८५	उच्छिष्टका अर्थ	"
ऊर्ध्वरेता मेघ और ब्रह्मचारी		उच्छिष्टमें रूप उच्छिष्टमें नाम	"
यदे ब्रह्मचारीका कार्य	"	उच्छिष्टमें कर्म	"
छोटे ब्रह्मचारीका कार्य		उच्छिष्टमें काल	१०
आचार्यका स्वल्प		१८ शरीरकी रचना	१०१
आचार्य राज्यशासन	८७	१९ शरीरकी रचना-योग्यता	१०१
ब्रह्मचर्यसे राज्यका संरक्षण	"	२० पुत्रकी पैदागी	१०१
कन्याओंका ब्रह्मचर्य	"	२१ पुत्रकी नीति	१११
पशुओंका ब्रह्मचर्य	८८	२२ पुत्रकी रीति	१११
अपमृत्युको हटानेका उपाय		२३ मयामक पुत्र	१११
मीनभि मादिकोंका ब्रह्मचर्य		ब्रह्मनिर्माण	
पशुपातयोंका ब्रह्मचर्य		काल हण्ड बालोंका स्वल्प	१११
देवोंका तज	८९	पूर्वका प्रयोग	१११
उपदेशका अधिकारी		तमनात्मका प्रयोग	१११
		समोहनात्मका प्रयोग	"

ॐ

अथर्ववेद

का

सुक्तेषु सप्तमः ।

द्वादशं काण्डम् ।

— ११ —

लेखक

प० श्रीपाद दामोदर सातयलेकर,

साहित्यशास्त्रविद् वेदाचार्य गीतानुशा

सम्यक्त व्याख्यायकस्य भाग्यशालिनः पारखी (जि मृत)

— १ —

तृतीय वार

मार्ग २ (सन् १८७१ वन १९५)

राष्ट्रका धारण ।

सूर्य बुद्धितमसं दीक्षा तपो ब्रह्म युद्धः पृथिवी धारयन्ति ।

सा ना मृतस्य मध्यस्य पत्न्युत्तं स्नात्वा पृथिवी नः कृणातु ॥ १ ॥

[अध्याय ११/११]

सत्यमेव धारकता उग्रता वक्रता उप नर्वात् हहमहमकीकृता ज्ञान बद्ध नर्वात् वातन-
क्षयर्षेय मे छात शुभ मातृभूमि की वातका करते हैं । नर्वात् विष कोमोसि मे छात शुभ विविध
प्रमाणों रहते हैं वे लोग अपनी मातृभूमि की उग्रता रक्षा कर सकते हैं । और जो कोम हन
शुभोसि विरहित होते हैं वे अपनी मातृभूमि की रक्षा नहीं कर सकते । मातृभूमि लोगोंके मूल,
वर्तमान और भविष्य की सुरक्षा करनेवाली होती है । देखी वह हमारी मातृभूमि हमारे लिये
हर एक विकासो मित्पुत्र कार्यक्रम उत्पन्न करे । ”



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

द्वादश काण्ड ।

यह द्वादश काण्ड अथर्ववेदके द्वितीय महाविभागका पाँचवाँ काण्ड है। इसमें पाँच सूक्त हैं इसके अनुसारक, एक और मंत्रसंख्या निम्नलिखित प्रकार है।

अनुसूक्त	सूक्त	वर्णित	मंत्रसंख्या
१	१	५+(११)	११
२	२	५+(५)	१०
३	३	१	१
४	४	४+(१३)	१७
५	५	४(वर्णाव)	४१

१ व कुल-मंत्रसंख्या

इस सूक्तके ऋषि देवता छन्द अथ है।

ऋषि-देवता-छन्द ।

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	छन्द
१	११	अथर्व	भूमि	मिथुण; १ अथर्व; ४-१ १ १८ अथर्व वद्वरा अथर्व; ७ अथर्वरात्रि; ८ ११ अथर्व वद्वरा विराट्छिः; ९ पण्डितुम्; १२ १३ १५ अथर्वरा छन्दरी (१२ १३ अथर्वरात्रि); १४ महावृद्धी; १६, २१ एकान्ताना अथर्वी मिथुन, १८ अथर्व वद्वरा मिथु अनुबुध्मर्माविछन्दरी; १९, २ छरीवृद्धी (२ विराट्); ३५ अथर्व वद्वरा विराट्छिःगती २३ अथर्व विराट्छिःगती; २४ अथर्वरा अनुबुध्मर्मा अथर्वी २५ अथर्व वद्वरा अथर्वरात्रिगती छन्दरी; २६—२८ १३, १४, १९ व ५ ५१

५७ ५६ ५९ ६३, अनुहुमः (५३ पुरो वर्तते)
 ३ विराड्वावर्ति, ३२ पुरस्ताज्ज्येतिः। १४
 व्यस्य वदपवा त्रिभुविरुत्तममतिवर्तते ११
 विपरीतपारब्धमती वेतिः। ३० व्यस्य वदपवा वदो
 ३३ व्यस्य वदपवा कर्तुमती कर्तरी, ४२ वरावदुपु
 ४३ विराडास्तारपंक्ति, ४४, ४५ ४९ व्यस्यः। ५१
 वदपवा अनुहुम्यर्मा पुरास्तवरी, ५० वदपवा रति-
 यमुहुम्यर्मा परमिचववरी, ५८ पुरोमुहुपु, ५१ व्यस्य
 वदपवा अनुहुम्यर्मा कर्तुमती कववरी, ५२ पंक्त-
 अनुहुम्यर्मा परमिचववरी ५३ पुरोतिमापवा वर्तः।
 ५८ पुरस्ताद्बृहती ६१ पुरोवर्तिता, ६२ पयसिपु।

१	५५	युगः	जग्निः म-प्रोक्त वचसा ११—१३ युगः	त्रिभुपुः	१—५ १२ ९, १४—३६ ३८—४१ ४३ ५१ ५४ अनुहुमः (१३ कर्तुमती वरावृत्तिः, १८ त्रिभुव, ४ पुरस्तात्कर्तुमती), ३ व्यस्यारतिव- ६ मुरिषीर्षी वेतिः। ७ ४५ व्यस्यः, ८ ४८, ५१ मुरिषः, ९ अनुहुम्यर्मा विपरीतपारब्धमती वेतिः ३० पुरस्ताद्बृहती, ३२ त्रिपरेक्यवसाव मुरिषी पावती, ४४ एकावसाव द्विपवा जातो वरती ४६ एका द्विपवा साम्नी त्रिभुपुः ४७ पंक्त- वर्तवरीवचवर्मा जगती, ५ उपरिष्ठद्विराद् बृहती ५२ पुरस्ताद्विराद् बृहती, ५५ बृहती वर्मा।
---	----	------	--	-----------	--

२	६	यमाः स्वराः	ओङ्वाः जाग्निः	त्रिभुपुः	१ ४२ ४३ ४७ मुरिषः, ८, १२ २१ २३ ३१ व्यस्यः, ३३ १० स्वरावाची वेतिः, ३४ विराट् यमाः, ३९ अनुहुम्यर्मा, ४४ पुरावृत्तिः, ५५—६ व्यस्य वदपवा यंहुम्यर्मापवा व्यस्यवर्तिव्यस्य व्यस्यवर्मापवापुतिः (५५, ५७—६ वृत्ति ५१ विपद वृत्तिः) ।
---	---	-------------	-------------------	-----------	--

३	५१	कडवपः	वजा	अनुहुपुः	७ मुरिषः, ९ विराट्, उरिमावृत्तिवर्मा, ५२ मू- लीयमा।
---	----	-------	-----	----------	--

५	७२ ६ वचस्य ६	अथवावाचीः	मदगविः		१ व्यापवापवापुपु, २ मुरिषवापवापुपु, ३ व्य- स्य वदपवापुपु, ४ व्यापवापुपु, ५ व्यस्य वेतिः।
---	-----------------	-----------	--------	--	--

१ ५ ५

७ साम्नी त्रिभुपु, ८ ९ जातो अनुहुपु
 (८ मुरिषः), १ व्यस्य (१ पुरस्ता-
 ११ जातो त्रिभुपुपिपु ।

१	पञ्चम	१६	१२ विराट्पिपसा पावत्री; १३ आसुरी अनुष्टुप्; १४ २६ छान्दी छन्दः; १५ पावत्री; १६ १७ १९ २ प्राजापत्यानुष्टुभः; २८ वासुकी अष्टौ; २९ २५ छान्दीनुष्टुभः; ३० छान्दी वृहती ३१ वासुकी त्रिष्टुप्; ३२ आसुरी पावत्री; आर्षी छन्दः ।
४	"	११	३८ आसुरी पावत्री; ३९, ४० अनुष्टुभः; ४१ छान्दी अनुष्टुप्; ४२ वासुकी त्रिष्टुप्; ४३ छान्दी पावत्री; ४४, ४५ छान्दी वृहती; ४६ त्रिष्टुप्; ४७ अनुष्टुप्; ४८ छान्दी छन्दः; ४९ अष्टौ पावत्री ।
५	"	८	४९ छान्दी पङ्क्तिः; ५० वासुकी अनुष्टुप्; ५१, ५२ त्रिष्टुप्; ५३ आसुरी वृहती; ५४ छान्दी वृहती; ५५ विष्टुप्; ५६ आर्षी वृहती ।
६	"	१५	५७ ५८ ५९-६० ६१-६२ ६३ प्राजापत्यानुष्टुभः; ६४ आर्षी अनुष्टुप्; ६५ छान्दी वृहती; ६६ ६७ प्राजापत्यानुष्टुभः; ६८ आसुरी पावत्री ६ पावत्री ।
७	"	१२	६९-७० ७१ ७२-७३ प्राजापत्यानुष्टुभः; ७४ पावत्री; ७५ प्राजापत्या पावत्री; ७६ आसुरी पङ्क्तिः; ७७ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ७८ आसुरी छन्दः ।

इस तरह इन सूक्तों के अन्तिम, वेपता और छन्द हैं । वहाँ प्रत्येक सूक्तकी वेपता विभिन्न है । अतः प्रत्येक सूक्तका अर्थ और भावार्थ केवल वही विवरण जहाँ जहाँ भी लिखा जायगा । इसमें पहिला सूक्त मातृसूक्तिका सूक्त है वह वही मन्त्रोक्त और बीच में है वह अन्तःके अन्तिम—





अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

द्वादश काण्डम् ।

मातृभूमिका सूक्त

[१]

सुस्यं बृहदुतमुग्रं व्रीडा तपो ब्रह्मं युद्धः पृथिवीं चारयन्ति ।
सा नो मृतस्य मर्त्यस्य पत्न्यस्य स्त्रोकं पृथिवी नः कुणोतु

॥ १ ॥

वर्ध— (बृहद् सप्तम्) बड़ी या बड़क अग्रमित्र (मृतम्) मर्त्यार्थं ज्ञात, (पत्न्यम्) स्त्रोकं तत्र (तपः) तपो
उत्थान या वर्धका पत्न्य (व्रीडा) बुराक कामके करनेमें अनुराई—बुराता (ब्रह्म) बड़ा ज्ञान (युद्ध) युद्ध दाव
जयवा ज्ञान ये गुण (पृथिवीम्) भूमि है या राष्ट्र (चारयन्ति) पावन पोषण और रक्षण करते हैं । [सा पृथिवी]
यह मातृभूमि (मृतस्य) प्राचीन और (मर्त्यस्य) मर्त्यत्वके तथा वीर्यमें या जातिवाले वर्तमान जन्मके सब पराधीनी
[वही] पावन करवेवाली, देसी यह हमारी मातृभूमि (नः) हमको (नः) बड़ा भारी (स्त्रोकं) स्त्रोक (कुणोतु)
करे ॥ १ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य यह चाहता हो कि राष्ट्रपर अपनी सत्ता अधिकार, बना रहे वधमें निश्चिन्तित गुणोंका होना
आवश्यक है कस्यचित्ता कस्यमकीलता, महत्वाकांक्षाके साथ वर्ध आत्म करने और वधको विरुद्ध करनेका बड़ा बलविक्रि-
का साथ ज्ञान है साहस और तेजःकेता वर्धनेच्छा ईश्वरोंका मित्र प्रतीका बचना और स्वात्मना बचना कान्त ज्ञान
और अभावजन्य, प्रोत्साहित ईश्वरमक्ति, अस्वीकार किये हुए कर्ममें रहता विषयानुसार कबलेका अन्त्याह एवं वर्धक
कई बहावक पराधीन विपुल संग्रह आचरण एक दुष्टका अन्तर करना एकतासे रहना हुम्न और नागरिकों के हुम्न
कोषोंको बहावक करना बड़ा कर्षण स्थापना करना मातृभूमिपर बड़ा मित्र इसप्रति । जिस मनुष्यमें ये गुण होते हैं वेही
वर्धने राष्ट्रको संयोजक बने और नवा राज्य प्राप्तकर सकते हैं । इस पक्षिके मन्त्रमें राष्ट्रवर्धक मनुष्योंके किये जायवक गुणों
का स्पष्ट उल्लेख कर वह वर्धका की गयी है कि—है मातृभूमि । हम पूर्वोक्त संज्ञा ज्ञान गुणोंके युक्त हो तैरा रक्षण करते
हैं और वरा ऐसा कामको ठीकर हैं । जो अपने आचारके मृत वर्धका और मर्त्यत्व तीनों कर्मोंके सम्पूर्ण पराधीन जन्म
प्रकारके जीवन करते हैं जन्म है । अब कि हम रात दिन तैरा रक्षण करते हैं तू भी हमारी क्षीति बहावक करन है ॥ १ ॥

असुप्रार्थं वस्यतो मानवानां यस्यां उग्रतः प्रवर्तः सुमे वहु ।

नानावीर्या आपधीर्या विमर्ति पृथिवी नः प्रवर्ता राध्वर्ता नः

॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामर्षं कृष्टयः सवमुषुः ।

यस्यामिदं विन्वति प्राणदेज्जु सा नो भूमिः पृथयये दधातु

॥ ३ ॥

यस्यामर्षतस्तः, प्रदिशोः पृथिव्या यस्यामर्षं कृष्टयः सवमुषुः । -

या विमर्ति वहुधा प्राणदेज्जु सा नो भूमिर्गोम्वप्यर्षं दधातु

॥ ४ ॥

वर्षं-(यस्या) जिस हमारी मातृभूमिमें (मातृभूमि) मलयदीक मनुष्योंके (म[—व—] प्यत) मध्यमें (मल) बीचोंबीच उग्रता रहनेपर भी परस्पर (वहु) बहुवर्ती (समे) समाना (मलयपथ) और देव्य वा मैत्रीभाव है; (या) जो (नः) हमारी (पृथिवी) मातृभूमि (नानावीर्याः) शौर्योके दूर करनेवाकी अनेक उत्तम गुणयुक्त (बोधवीः) वनस्पति (विमर्ति) चरण करती है वह मातृभूमि (वः) हमारी (मध्यता) कीर्ति या वरदात्री इदिका (राध्वता) साधन करे ॥ २ ॥

(वर्षां समुद्रः) जिस हमारी मातृभूमिमें महासागर (उत) और (सिन्धु) अनेक नद्व नदी (वाप) अर्ध शीत नार ताक तकका बहुत है (यस्याम्) जिस मातृभूमिमें (अजस्र) सब आशिके भक्ष और कष्ट तथा बाध इत्यादि बहुत बचसे उपजते हैं (यस्यां इहै प्राण्य) जिसमें, उद्यीव (पृथक् विन्वति) प्रली चकते फिरते हैं मिली, (कृष्टयः) कुम्भक लेटी करनेवाले मनुष्य विष्णुकर्माधिपारद कारीगर तथा बहोमगधीक जन (सवमुषुः) बहुत अनेक ड्रुप हैं (सा) इस तरह की (भूमिः) हमारी मातृभूमि (नो) हमको (पृथये) समस्त योग देवर्ष (दधातु) दे ॥ ३ ॥

[यस्याम्] जिस हमारी मातृभूमिमें [कृष्टयः] वधमयीक तथा सिक्काचारीमें विपुल निज परिश्रमसे लेटी अनेक कामे [सवमुषुः] हुए हैं [यस्यां पृथिव्याः चक्रा पविताः] जिस भूमिमें चार दिशाओं और चार विदितानों (वस्तु) पावक गेहूँ आदि उपजाती हैं (या बहुधा) जो अनेक प्रकारसे [प्राण्य पृथक्] प्राण चारण करनेवालों को अनेक विविधताओंका [विमर्ति] चरण-लोचन करती है (या वा भूमिः) वह हमारी मातृभूमि इस सब के बिने (सोऽु नो) नष्ट दधातु) न तो और अन्नादिमें रखकर चरण-लोचन करे ॥ ४ ॥

भाषार्थ जिस हमारे राज्य वा देश के मनुष्यों में परस्पर हो; वही है, मनुष्य अनेक तर्ज देव्यमान है । विवेचन करने अनुभा कायों में अन्तर्हि हमारी सब प्रकारकी रक्षा करनेवाले लोकपालियों में परस्पर देव । मत्त है और वे एक ही निज नव काम करते हैं । जिस भूमिमें उत्तम प्रकार की पृथिव्यारक शाल्वैसाद्यक अनेक कौलवियों और सब तरह की वनस्पतियों पैदा होती हैं वह हमारी जिस मातृभूमि हमारी कीर्ति और वरदात्री दिग्मन्तरमें कैमनेके सिधे कारकीर्तुत हो ॥ २ ॥

जिस हमारी मातृभूमि में सागर महासागर नद्व नदी ताकन हुए वायली नहर होतें इसादि कोटीमें अनेक मित्रनेके अनेक अनेक साधन हैं और जिस भूमि में सब तरहके विपुल अन्न पैदा होकर सबके कामोंको मिलता है । जिस सब प्रली धान मुकी है तथा जिसमें चारीगर लाल कलाआसामें युक्त है (विलास लोच कोटीके काम में प्रयोग है) अन्न लोच भी वधमा है वह हमारी मातृभूमि हमें सर्वत्र उत्तम उत्तम लोच पचाने और एवम वदेवाती है ॥ ३ ॥

जिस हमारी मातृभूमिमें अजस्र वधागी तथा वसाकीराल कोटी गादिमें प्रबंध और परिश्रमी लोच होती आये हैं और जिस भूमि को चारों दिशा और विदिशाओं में सबत्र उत्तम पन्न साधन एवं वल्लभ होता है जिसके कारण हममें पट्ट पट्टी काटकर, वनस्पति और अन्न प्रोचका तथा की उत्तम प्रकार पावक पावक अर सब इन दामा है वह हमारी मातृभूमि ॥ सर्वत्र अन्न को अर अन्न इत्यादि देनेवाली देव ॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा अमुरानम्यवर्तयम् ।

गवामश्वानां वयंसम विष्टा मय वर्षाः पृथिवी नो दधातु

॥ ५ ॥

विश्वमरा वसुधानीं प्रतिष्ठा हिरण्यवद्या अगतो निवेष्टनी ।

वैश्वानर विभ्रती भूमिरधिभिन्द्रऋषमा प्रविणे नो दधातु

॥ ६ ॥

यां रक्षन्त्यस्वमा विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमममादम् ।

सा नो मधु मिय ईदामघो उधतु वर्षसा

॥ ७ ॥

अर्थ—(वस्त्रम्) जिस हमारी मातृमृमिमें पुराने समयके आज लोग (पूर्व जना) एक बुद्धि थीय देखवसे प्रसिद्ध सब मांसि पूर्ववीर युद्ध [विचक्रिरे] जिस पराक्रमक कथन करती तरह करते रहे हैं [वस्त्र देवाः] जिसमें विश्व और वीर (अमुग्रा) विमानित सब वर्षा वर्षासी कामकाजी लोगोंको [अम्यवर्तयम्] कीवते रह हैं। जो [वसां वस्त्रानां वसाः] गेहों कोके बार पशुपक्षियोंको [वि-ष्टाः] विशेष सुख देनेका स्थान है [सा म-पृथिवी] वह हमारी मातृमृमि हमको [मयम्] देख्य और [वषाः] ठेक बीर्य और विश्वास (दधातु) दे ॥ ५ ॥

जो [विश्वमरा] सबकी पोषण करनेवाली [वसुधानि] सोचा थीरी वीरा पक्षा आदि अनेक रत्नोंकी काम है [प्रतिष्ठा] सब वस्तुओंकी आचारमूल [हिरण्यवद्या] सुवर्ण आदिकी काम जिसमें वस्त्रकर्म है [अगता] अतिने समय बीय वा पक्षी हैं उबकी [निवेष्टनी] बलावेवाली (वैश्वानरम्) सब मांसिक मनुष्योंके समूहसे मरा हुआ राष्ट्र वा देश (विभ्रती) बारन करती हुई हमारी (भूमिः) मातृमृमि (अमिम्) अमामयी मेठा (इन्द्र वृषमी) सत्त्वोंको बाध करनेवाली धूरवीर और आदिओंको तथा [मः] हमको (प्रविणे) बन [दधातु] बारन करनेवाली हो ॥ ६ ॥

अर्थ—[वस्त्रम्] जिहा लम्बा अन्धक्य आदि रहित [देवाः] विश्व और वीर कृष्ण सब [वीं विश्वदानीम्] सब प्रकारके पक्षीकी देनेवाली और जो हमारे किये [मधुमि व दधाम्] मधुर मित्र दितका पक्षियोंको दुहनेपर देती है, [पूर्वी मृमिम्] वही वा विलुप्त हमारी मातृमृमि [अममादम्] अमादरहित हो [रक्षन्ति] रक्षा करते हैं, [सा] वह भूमि [मः] हमको [वर्षसा] धूरवा, वीरवा शान तथा देखवसे [उधतु] हमें पून करे ॥ ७ ॥

मातृमृमि— जिस हमारी मातृमृमिमें हमारे प्राचीन पूर्वजों—अपनों के अपने हाथहाथ शत्रुओंके अपनी वीरताशाय और वीरोंके कपटी कथन—कृष्णता और वीर आदिमें कपटी आदिमें कथन के बने परक्रम किये थे, जिस हमारे देखसे विश्व, धूर वीर स्वाधीन और आधीन लोगोंके मिलकर उत्पन्न दिव्य आतमवी पातली और हुए लोगोंके मठ किना वा और जो सुवर्ण भूमि सब पशुपक्षियों को भी उत्तम विद्या-स्थान देती है, वह हमारी मातृमृमि हमारा ज्ञान विज्ञान और ठेक बीर्य और वीर्य पूर्व रूपसे बलावेवाली हो ॥ ५ ॥

सबका पोषण करनेवाली रत्नोंकी बारन करनेवाली सब पक्षियोंकी आश्रय देनेवाली सुवर्ण आदि काम रखनेवाली पायस् स्वार समय बीयों वा पक्षियोंको स्वान देनेवाली, सब प्रकारके मनुष्यों वृद्ध राष्ट्र वा देशकी वक्तियों तथा वीर देनेवाली मनुष्य है वह हमारे मेठा आदिमें सब वीर सुवर्ण तथा हमको सब प्रकारके देख्य देनेवाली हो ॥ ६ ॥

जिहा लम्बा अन्धक्य अज्ञान आदि दोषरहित सब मांसिक मधुर और वृषमी, वसुधानी विश्व धूर और विलुप्त लोग सब पक्षीकी देनेवाली जिस विलुप्त भूमिमें अमादरहित हो रक्षा करते हैं वह हमारी मातृमृमि सब काम और विन तथा दितका पक्षियोंके हमें पूर्व सुवर्ण करे और हममें शान धूरवा और सब उत्तम कर हमारे रक्षा करे ॥ ७ ॥

यार्धवेऽर्धं सल्लिखमग्र आसीद् या मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।

यस्या हृदय परमे व्योमन्सत्येनाहृतममूर्तं पृथिव्याः ।

सा नो भूमिस्त्रिविंशत् बलं राष्ट्रे दधात्समे

॥ ८ ॥

यस्यामायः परिचरा संभ्रान्तीहोरात्रे अप्रमादं धरन्ति ।

सा नो भूमिर्भूरिधारा ययौ दुहामथौ उधुतु बर्धसा

॥ ९ ॥

बामश्चिन्नावर्मिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे । इन्द्रो यां चक्र आरमन्नेऽनमिषां क्षत्रीवर्ति॥

सा नो भूमिर्विंशत्ततां माता पुत्राय मे पर्यः

॥ १० ॥ १

वार्ध—[या] जो भूमि [व्योम] पहले [सल्लिखं अर्ध] अर्धक मीठर [मनीषे] समुद्रमें (आसीत्) की [लक्ष पृथिव्याः हृदयम्] जिस पृथ्वीका अन्तर्भाग [अमूर्त इव] अ०र आत्मके तरह [परमे] सारक संवत्सर के पहले [क-सुतम्] व्याप्त है जो भूमि [परमे व्योमम्] महत् आकाशमें है, [याम्] जिसकी [मायामिः] उलझनामें है [मनीषिणः] मनबलीक विद्वान् [अन्वचरन्] अन्वकी तरह सेवा करते जाते हैं [सा याः भूमिः] वह भूमि हमने [वचने राष्ट्रे] वस्तु-राज्यमें [विचक्रमे] चक्र या दासि, [चक्रमे] घूर्णना कीरता, कारीरक चक्र निराल केवल [उधुतु] धारण करे ॥ ८ ॥

[यस्याम्] जिस भूमिमें [परिचराः] सब ओर जानेवाले परिवाहक यन्त्रवाली [माया] बलकी ली [वर्मिमाताः] समष्टि की [बर्धसा] रात दिन [अग्रं] अग्रं मानवान् वह [धरन्ति] परिग्रहण करते हैं [वने] और भी जो [भूमि धारा] अर्धक तरहका [पयः] जाने तथा पीनेकी वस्तु-जोष्य वा रस आदि दूध की हामी [दुहाम्] देता है [सा नो भूमिः] वह हमारी मातृभूमि [बर्धसा] ऐसा प्रत्यक्ष वह बर्ध करती [वरति] बढावे ॥ ९ ॥

[याम्] जिस भूमिका [मनीषो] अविद्यमान अर्ध और इन्द्रा दूध पीरने [अमिमाताम्] मायव किया [वार्ध] विष्णुः] जिसमें पाककरने [विचक्रमे] मातृ मातिका पराक्रम दिखाना है [इन्द्रा] अन्वचरान् [मनीषिः] अविद्यमान कर्मकुशल मानवान् उ वने [यां अग्रमये अमिमाताम्] जिसको कारकहित किया है [सा याः माता भूमिः] वह माताके समान हमारी मातृभूमि [पुत्राय पयः] देता दूधको दूध देती है सेवाही [पुत्राय मे] हम सब उन्हीं [विचक्रमाम्] जानेपीनेकी वस्तु प्रदान करे ॥ १० ॥

अन्वार्ध— जो भूमि पृथ्वी समुद्रके धर्मों की । जिसके बाहर मीठर परमेश्वर व्याप्त है जो आकाशमें अग्र है और पृथ्वी सेवा विचारवान् ओषध विशेष अर्थमें शुभ प्रकल्पित तथा उलझता करते हैं वह हमारी मातृभूमि हमारे अग्र व्योम संवत्सर विद्वान् घूर्णना अविद्यमान हमादि शुभ सर्वत्र बर्धसाही हो ॥ ८ ॥

वार्ध येवोंका एक प्रविष्टावकी एक समान मिश्रण है । वैदिकी विषयक अग्रवत् अग्रवत् जिसे एक समान होता है ॥ ९ ॥ लोभ कारक संवत्सर जिस भूमिमें रात दिन समय आचरण व अग्रवत् दूध सर्वत्र एक समान संवत्सर करते रहते हैं और जो मातृ वत् अग्र प्रकारके अन्न-अन्न देता रहती है वह हमारी मातृभूमि हमारी सेवाकितान् द्वारा हमारी रक्षा करे ॥ १० ॥

जोष्योषा दोषन करनेवाले और अग्रवत् अन्न करनेवाले ओषध जिसकी सर्वत्र अन्नार्थ किया करते हैं जिसके जिसे अन्न पत्नी ओषध वत् अन्न प्रदान करत हैं और अन्नी दूध पुत्र जिसे अपना मित्र समझत हैं वह हमारी भूमि जिस प्रकार अन्न अपने बन्धनों दूध निकाली है, उतही प्रकार हमें सर्वत्र अन्नोपयोग के पदार्थ देवे ॥ १० ॥

गिर्यस्ये पर्यता हिमवन्तोऽरण्य ते पृथिवि स्योनर्मस्तु ।

पुत्रं कुण्यां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवं भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्तम् ।

अक्षीतोऽहो अक्षतोऽर्षस्तं पृथिवीमहम्

॥ ११ ॥

यत् ते मर्ष्यं पृथिवि यच्च नर्ष्यं यास्तु ऊर्ध्वस्तन्मृः सप्तभूयः ।

तास्तु नो वेष्टामि नः पदस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।

पुर्षेन्यः पिता स तं नः पिपर्तु

॥ १२ ॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तुन्वते विश्वकर्माणः ।

यस्यां मीयन्ते स्वर्वाः पृथिव्यामूर्ध्वाः क्षुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।

सा नो भूमिर्वर्षयत् वर्षमाना

॥ १३ ॥

अर्थ— हे [पृथिवि ते विश्वः हिमवन्तोऽरण्यः पर्यताः अरण्यं च त [मातृभूमि] पहाड वनसे वने पर्यंत और सब तुने [स्योनर्मस्तु] सुकने वैश्वदेवे [अस्तु] हो इस पक्षोंमें साक न रहने का कहित हो इसलिये तुम [अमरम्] सत्त्व नरक-योग्य करनेवाली हो, [कुण्याम्] कुविहीन कपक हो [रोहिणीम्] बुद्धिहीन की कपक करनेवाली हो, [विश्वरूपाम्] सब तरहका रूप धारण करनेवाली [विश्वाम्] स्वर [पृथिवी] सभी विस्तृत करी थी [इन्द्र—गुप्तम्] पीछे छिपित [भूमिम्] मनुष्यामीने [अजितः] जिसे साकमें नहीं जीता [अहम्] तुम आहमें जिसे जानि नहीं पड़ती, [अक्षयः] कहींपर किसी जगमें जिसे जान नहीं हुआ [अहं अरण्यहम्] देखा रहकर मैं इसका अधिपति या स्वामी होऊंगा ॥ ११ ॥

हे [इति यत् ते मर्ष्यम्] भूमि! जो तेरे मर्षमें है [नर्ष्यं च नम्यम्] जो नामितवान है, (ते वा ऊर्ध्वः) जो तुम्हारा वक्ष्य या अक्ष योष्य [उन्मः] घरोरकारी अर्थात् [मनुष्य संवभूयः] आपसमें संगठित हुए अर्थात् यज्ञ हुए हैं, [तास्तु] इस उनके समाजमें (नः) हमको [वेष्टामि] स्थापित कर और इस तरह [पदस्व] हमारी रक्षा कर [भूमिः] भूमि! तुम हमारी [माता] माता हो [अहम्] हम सब [पृथिव्याः पुत्रः] पृथिवीके पुत्र हैं [वेष्टामि] वरकसे या तुम्हारे जो ज्ञान या रक्षा करे वह पुत्र है । भूमि! हम तरे तुम्हारे पूर करें इससे पुत्र हैं [पुर्षेन्यः] एककी बुद्धिसे दोषन करवाने के हमारे पिता अर्थात् सप्तर्षिपक्षि पालन करनेवाले हैं [स तं नः] वह हमें विजय [पिपर्तु] पावन करे ॥ १२ ॥

(यस्याम् भूम्याम् वेदिं परिगृह्णन्ति) जिस भूमिमें सब ओरसे वेदीका स्वीकार करते हैं । (यस्यां यज्ञं तुन्वते) जिसमें वज्रपि के साधन करनेवाले सब लोग (यज्ञं तुन्वते) परोपकारका यज्ञ यज्ञकार्य करते हैं जिसमें वने कोशिका साधारण हो वा वने कोशिका नालय हो [विश्वं य पृथिवीं पुरस्तात्] जिस पृथिवीमें पहले [अहम्] पक्षि करनेवाले, [क्षुक्राः] वीर्यपुत्र (आहुत्याः) आहुतिके साथ (स्वर्वाः) सभी वृष होते हैं अर्थात् अष्ट अष्ट वरुण [मीयन्ते] करते जाते हैं, [सा नो भूमिः वर्षमाणा] वह वृष्टि हम लोगों द्वारा बहाई गई हो हम लोगोंका [वर्षयत्] वज्रपि करे ॥ १३ ॥

भाषार्थ— हे मातृभूमि! तुम्हारे का पहाड और वनसे वने हुए पर्यंत है तथा मा अहं वने अरण्य हैं इनमें तरे घाट वनी न रहें व घाटघाट होकर वही वनका वन करनेवाले वनवासी जगम हुआलिये तुम शिव और वीरुहारा स्थित हो ऐसी वरुणवर्षय तुम्हारे हम साकमें द्वारा पण्डित न होते हुए तथा मृत अवस्था यावत न होते हुए आनन्दसे रहें और मरुत् पर्वतोंको बात हो, पण्डितों अर्थात् अधिपतिमें रहें ॥ १३ ॥

यो नो देवेद् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासां नमनसा यो ध्येन ।

तं नो भूमे रचय पूर्वकृत्वरि

॥ १४ ॥

त्वन्म्रातास्त्वयि चरन्ति मर्त्योस्त्वं विमर्यं त्रिपदस्त्वं चतुष्पदः ।

तद्येमे पृथिवि पञ्च मानवा येम्या न्योर्तिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्तस्यो

रुक्षिर्मरितनोति

॥ १५ ॥

ता नः प्रजाः स दुहतां समग्रा प्राचो मधु पृथिवि वेदि मधम्

॥ १६ ॥

अर्च- हे [पृथिवि यः वा देवत्वं] मनुमूनि] को हमसे द्वेष करता है, (यः पृतन्यात्) जो सेनासे हमारा बरामब करवा रहा है (वा ममसा) को ममसे हमारा बलिहारा रहा है (अभिदासां) को हमने दास वा गुलाम बनाया जा रहा है (यो ध्येन) को यम कर्म कर हमें कह पहुँचाया जा रहा है हे (पूर्वकृत्वरि, पदिकेसे ही दासबान्त करनेवाली मनुमूनि । (य इत्यर्थ) वसन्त ऋतु कर ॥ १४ ॥

हे (पृथिवि) हमारी मातृमूनि] को (मर्त्याः) मनुज (त्वन्म्राताः) तुम्हारेही में पैदा हुए हैं (त्वि पृथिवि) तुम्हारेही में चकटे फिरते हैं किन्तु (त्रिपदः) दो पाँववाले अर्थात् मनुष्योंको (चतुष्पदः) चारपाँवोंको [त्वं विमर्यं] बरामब पोषण करत हो [येम्याः मर्त्येभ्य] किन्तु मनुष्योंको जिन्हें [चतुष्पदम्] जीवबन्धक हेतुमत् [न्योतिः] अब [उद्यन्त स्योः रुक्षिर्मरि] उदित हुआ सूर्यकिरणोंसे [वातकोषि] विस्तार करता है [हमे] वे हम कोष [पंच मानवः] पाँच प्रकारके मनुज [एव] तुम्हारी सेवा करनेकी इच्छा करते हैं ॥ १५ ॥

हे [य इति यि ताः] हमारी मातृमूनि ! इस सब कोष तुम्हारी [प्रजाः] प्रजा [समग्राः] सब [दानाः] दानों [मधु] मधुर मेसपूर्व [मधुराणाम्] एवम् हो जोहों [मधम्] हमको भी मधुर बन्धन बोजेकी वृत्ति है ॥ १६ ॥

प्राचार्च- हे मातृमूनि ! तेरे मंथर और छमर को भी प्रार्थन है अब सबकी ओर तेरी सत्त्वकों हाथसे रक्षा करनेके लिये को विद्याम् ब्रह्माम् अतः ब्रह्माम् मनुज एवम् होकर पला करते हैं उनके सब संघमें हमें स्वभाव है और हमारी रक्षा कर लिये हे हमारी माता और हम तेरे पुत्र हुए कहे लुकायमाने हैं इस प्रलम्ब (मय) द्वारा वाग्मविक कल्प होतें हैं इसलिये हम ब्रह्म मय सिद्ध (पञ्चक) हैं ब्रह्ममें वह निमित्त समझमें नहीं कर हमारी रक्षा करे ॥ ११२ ॥

विश्व भूमिके बीच मरुकी वैदिके पाठ आकर ब्रह्म करनेके लिये ठेगार रहते हैं विश्व भूमिके बीच सबसे बरोबर को लक्षिके कम करते रहते हैं और जिनमें विवेक कर लक्षिकमरुत तथा बल्लेत्पादक वह जिसे जानते हैं इसी प्रकार वराह वैदेयके मानव और अणुके उदैव विने जाते हैं । हमारा हाथ लक्षिके पवित्रात्मी वह हमारी मातृमूनि हमारे लिये लक्षिकसे लक्षिकी कारण हो ॥ १३ ॥

हे हमारी मातृमूनि ! जो हमसे सम्बन्ध द्वारा बंध करते हैं जो हमारे वैरी सेना के हमपर चढ़ाई कर हमें जीतना चाहते हैं जो हमारा नाश करनेके लिये बड़े पैठें हैं जो हमें परलोक और गुलाम बनाया चाहते हैं जो ममसे हमारा बलिहारा लोचते रहते हैं हमारे सब सब करकेही प्राप्तिरूपसे सम्बन्ध कर ॥ १४ ॥

हे हमारी मातृमूनि ! जो हम कोन तेरेसे बल्य हो तेरेही आचारस अन्ते सम्पूर्ण व्यवहार करते हैं, जो सम्पूर्ण पृथ्वी मनुज और अन्य सम्पूर्ण प्राणिमात्रक तु आचार सेवक पालनी पोषणी है, जिस हमारे जीवनेके लिये वह देई व्यवहार है अपनी अनुत्तम विरभीको पारी आर देखावा रहता है वे हम पाँच प्रकारके मनुज विद्याम् सूर्यकी ज्योती, क्षीरकी क्षीरपिण्डके मनुज तुम्हारी सेवा करनेकी इच्छा करते हैं ॥ १५ ॥

हे हमारी मातृमूनि ! इस सब बीच आपसमें भी वाचयते हैं वह सब हितकारी मधुर और परस्पर मेसपूर्ण हो सब लक्षिकारी तथा बद्ध न हो; हम सब जीवोंकी एकता हो आपसमें मेसके मीठा बन्धन बोजेकी वृत्ति है ॥ १६ ॥

विश्वस्य मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं चर्मणा घृताम् ।

क्षिवां स्योनामनु चरेम विश्वा

॥ १७ ॥

महत्सुचस्यं महतीं चमूधिय महान्वेगं पञ्चपुर्वेषुष्टे महास्तेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।

सा नो भूमे प्र रौच्य हिरण्यस्येव सद्यश्चि मा नो द्रिश्यत कम्पन

॥ १८ ॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निभाषो विश्वस्यधिरर्हमम् ।

अधिरन्तः पुंरुपेय गोप्यध्वेष्यध्वयः

॥ १९ ॥

अर्थ—(विश्वस्य) सब (मोषधीनाम्) चरान्ति कुछ कटा आदि की [मातरं पक्षी पृथिवीम्] वह माता मि
सीसी लम्बी चौड़ी स्थिर पृथिवी (चर्मणा) सब हाथ धरता बीरता आदि चर्मसे (घृताम्) पालित पो बत
(क्षिवां) कस्तूराम्बी (स्योनाम्) धुक की इन्धेवाकी (भूमिम्) मातृभूमिकी [विश्वा] सवा [मनुचरेम] हम सेवा
करें ॥ १७ ॥

हे मातृभूमि ! तुम हम सबका [महत् सचस्यम्] एक साथ मिळकर रहनेका स्थान हो, इस तरह तुम [महती
चमूधिय] बड़ा होती रही हो । [ते] तुम्हारा [पञ्चपुर्वेषुष्टे] दिकवा ओठना [महान्] बड़ा [भेगः] बग
वा मनुष्य होता है । इस प्रकारकी [लाम्] तुम्हो [महान् ईश्व] वास्तव वास करनेवाले बड़ा हाथ, वन जंगल
देवर्ष, मनुष्य सब बीर [अममादम्] आत्मसीक साथ [रक्षति] तुम्हारी रक्षा करते हैं । [भूमे] हे मातृभूमि ! [सा]
ओ तुम [हिरण्यस्य इव] सोनेकी तरह [सद्यश्चि] कमकटी हुई [माः] हमको [कम्पन] कोई भी आपस [द्रिश्यत]
बीरभाव न रखे ॥ १८ ॥

[भूम्याम्] पृथिवीके मध्यभागमें [अग्नि] अग्नि है, [मोषधीषु] औषधियोंमें (अग्निः) अग्नि है जिन औषधियों
के सेवनसे सब रक्ता है दीवज अर्थात् मूल कपटी है [जायः] जल (जले) जब दीवजमें होता है उस वह अग्नि
(विश्वस्य) विष्णुके कर्ममें आसिकी जायज करता है । (अममादम्) पत्थरमें चकमक उत्पत्तिमें (अग्निः) अग्नि है (पुंरु-
पेय) मनुष्योंमें (अममा) भीतर आसिकीके कर्ममें (अग्नि) अग्नि है (गोप्य ध्वेषु ध्वयि) गल बोले आदि पशुओंमें
(अग्निः) अग्नि है जिससे सबका मोक्षन करता है ॥ १९ ॥

धार्वा—जिसमें सब तरहकी लतम औषधियां और कस्तूरितो सबकी हैं, जो बड़ी लम्बी चौड़ी और स्थिर हो,
जिसा धरता सब बीर आदि कदाचार और सद्गुण कुछ पुरुष जिसकी रक्षा करते हैं, जो कस्तूराम्बी और सब प्रकारके
सुखदायक हमें देती है, सब मातृभूमिकी हम सवा सेवा करें ॥ १७ ॥

हे भूमायी मातृभूमि ! तू हम सबको एकत्र रहनेका स्थान देती है; हम सब ओगोंका समावेश हेनेबेबेन तेरा विस्तार है;
तू आकाशमें दिष्टो दीकते जिस देवके आसी है वह बैम बहुतही बड़ा है; जगत्, पूरा बीर कस्तूरी और पशुपताकी छत्रप नाथ
करनेवाले बीर पुरुषकी चौकरीके साथ तेरी रक्षा कर सकते हैं; जगती भीड़ और विमतवेर्ष नहीं कर सकते; तू सब ओमेंके
कामन तेजस्वी है; हमें भी तेजस्वी कर और ऐसा कर कि हममेंसे कोई भी वरपरका ज्ञान न करे सब एक मलके व्यवहार
करें ॥ १८ ॥

सब धार्वा अस्मिन् है । सब अग्निहारा भूमि औषध सबरूपि जल (जेषादिक) पत्थर, मनुष्य सब बोले इत्यादि
पृथिवीके शरीर ओष तेजस्वी दीकते हैं लगी प्रकार हम मनुष्य की सब सब ज्ञानोंके भेका हैं अर्थात् मनुष्य की रक्षा कर
और दीवर्षी अग्नि को शरीरमें प्रवेश कर सब अग्नि तेजस्वी हैं ॥ १९ ॥

अग्निर्दिव आ तपस्ययेदेवस्योर्बन्तारिधम् । अग्निं मतीस इधते इम्यवाहं पृतत्रिबेदा ॥ २० ॥

अग्निवासाः पृथिव्यसितस्तृप्तिर्वीमन्त संश्रित मा कृणोत ॥ २१ ॥

भूम्या इधेभूम्यो ददति यज्ञ इव्यमरकृतम् ।

भूम्या मनुष्या बीवन्ति स्वधयामेन मस्याः ।

सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु अरदष्टि मा पृथिवी कृणोत ॥ २२ ॥

यस्ते गुच पृथिवि सधूम्य य पित्रत्योर्पधयो यमार्पः ।

य शन्धर्वा अप्सरसंभ मेजिर तेन मा सुरभि कृणु मा नो दिक्षत कश्चन ॥ २३ ॥

अर्थ- (दिवः) आकाशमें (लग्न) सूर्यके रूपमें जाण है । (आत्परि) ओ सच ओ प्रकाश देवा हुआ तब प्राण (देवस्य अन्नः) प्रकाशमय तब अग्नि प्रकाशत (उच) बडे (अन्तरिक्ष) प्रकाशमें प्रकाशित होता है, इस आ कर्मके रूपमें अग्नि निधमात्र है । (इम्यवाहम्) होम की हुई वाह्युति का के आवेवाका (पृत-त्रिबे) की ओ एक करवेवाका (अग्नि) औसिक अग्नि अनुमोक्त बहुजनपर रोगोंके नाशके लिये (मतीसः) मनुष्य लोग (इधते) होम करते हैं ॥ २० ॥

[अग्निवासाः] आग्निं अवास [अग्निपुत्रः] काके कज्जकसे ओ जागा जाच वह अग्नि (पृथिवी अग्नि) इमिमें रूपमें हो (मा) सुप्तको (शिवीमन्त) प्रकाशपुत्र (कृणोतु) करे ॥ २१ ॥

मनुष्य जिस मतिमें (भूम्या वाह्यत) अर्ककृत सुप्तकृत (इवम्) जाहुमिपुत्र (यज्ञ) यज्ञ (देवस्या) देवत्वमें (दृष्टि) देते हैं । इससे अग्नि मतिमें (शक्यवाक्येन) कथम अथ का नेवने की वस्तुसे (मस्याः) मायवमी मनुष्य (मनुष्याः बीवन्ति) बीते हैं । (सा मा भूमिः प्राणं दधातुः) वह भूमि हमें एक वायु (इवातु) दे और वही भूमि (मा) सुप्ते (अरदष्टि) जायी बुद्धि का कृति (कृणोतु) करवेवाकी हो ॥ २२ ॥

दे (पृथिवि) यस्ते यन्का संवसुव पृथिवी ओ तेरमेंसे रम्य वेदा होती है (य) जिस यन्का (ओषधया निम्ने) ओषधियाँ प्राप्त कराती हैं (मा) जिसे (आत्ः विप्रति) एक प्राप्त कराता है, जिसे (गन्धर्वा) सूर्य प्राप्त करने (अप्सरसः य) विरम जाच कराती है (य गन्ध) जिस गन्धका (मेजिरे) सुख लोग (तेन) सुगन्धित (मा) कृणु वो [सुरभि] सुगन्धितपुत्र [कृणु] करा । [मा] इस लोगमें [कश्चन] कोई भी [मा दिक्षत] किसीसे देव न करे, जो लोग आत्ममें निष्ठासे रहें ॥ २३ ॥

आचार्य-आवाहमें पारो और अन्ना प्रकाश वैशानवकी सूर्य वायवी एक वही मारी अग्नि है । जमते इतने हुए होम का इवमन्ना वरी और केन के के लिये तथा सुपथी अग्नि और पुत्र की विप्रति के लिये अनुपम पुत्र अद्विष्ट होम करते हैं । वह अग्निमें हुआ भा दिन रात इवम करता है ॥ २० ॥

जिस हमारी मनुष्यमें पारो और आत्म अवास है और जिस भूमिका वरी फाला है, वह भूमि हमारे रूप की ओ वज्रवा बहामेवाकी हो ॥ २१ ॥

जिस हमारी भूमिमें मनुष्य वज्र करते हैं और इसमें जलम जलम पशुओंका इवम करने वायु और जल अग्निमें उद करते हैं जिस भूमिमें बड़ो कारण जलम बुद्धि होकर विपुल अन्न कथयता है जिसका आचर मनुष्य आत्ममें निष्ठा करते हैं मा जाहुमि इसकी जलम जलम कर वरी जाहुव देवेवाकी हो ॥ २२ ॥

दे अन्धमि । का सुहृदमें जलम सुपथ है वह आत्मा और वनश्रमियोंमें अचर होती है वही सुगन्धितकी वरी करनी जिसके वरदान करते हैं । हमें एक कारण सुपथके मूषिक चला और हमारे बीच आई आचरमें निष्ठासे देव न करे, जो लोग वरावर वैशानव रहें ॥ २३ ॥

यस्ते गन्धः पुष्करमाश्लिषेत् यं सैनम् सुर्पाया विभाहे ।
धर्मर्त्याः पृथिवि गन्धमग्ने तेन मा सुरभिं कृणु मा नो दिशत कश्चन ॥ २४ ॥
यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु मग्नो रुषिः ।
यो अयेषु हरिषु यो मृगपूत इस्तिपु ।
हन्वापि वषो यद् ममे वेनास्मौ अपि स संज मा नो दिशत कश्चन ॥ २५ ॥
क्षिळा मयिरम्मा पांसुः सा भूमिः संपृता ध्रुता
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकृन् नमः ॥ २६ ॥
यस्यां बुधा धानस्पृश्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवी विश्वायसं ध्रुतामृच्छावदामसि ॥ २७ ॥

अर्थ-हे [पृथिवि याः त एवम् पुष्कर] को सुगन्धी गन्ध कमकसे [आश्लिषेत्] मथित हुई है, [अग्ने] पाहिजे [य मर्त्य धर्मर्त्याः] जिस गन्धको जानु जाति देवता [सुर्पाया] उपाने [विभाहे] विभाहके समान [सैनम्] धारण करते हैं, [तेन मा सुरभिं कृणु] उस सुगन्धिके हमें सुगन्धित करो । [कश्चन] कोई भी [याः] हम कोपोंसे [मा दिशत] हेच न करे ॥ २४ ॥

हे [ममे] भूमि, [या ते गन्धः कीरेषु पुष्पेषु स्त्रीषु पुंसु मग्नः] बीर पुष्पोंमें क्षिपति आचारण पुष्पोंमें पतने-मग्न बनिक्रम है [यः अयेषु उत मृगपूत इस्तिपु] को भोरोंमें जापाचोंमें, हाथियोंमें, [य एव वषोः] को उज्र वन है [हन्वापि] बिना उकाही काकाचोंमें को पक है [वषो] दिग्ग वनके [वस्त्राम् अपि] हममें भी वही वन (सैनम्) पैदा कर है । [कश्चन मा दिशत] हममें कोई किसीके होइ न करे ॥ २५ ॥

को (क्षिळा अम्मा पांसुः) क्षिळा पथर पत्थर और कृष्टिपुक्त (भूमिः) भूमि है (सा भूमिः) वह कृष्टि हम कोपोंसे बिना अनेक विज्ञान और बीरतासे (ध्रुता) मकीमांति रक्षित हुई [संपृता] अच्छी तरह बोरवताने धाव ध्रुवित हुई कवकलेयी, (तस्यै हिरण्यवक्षसे) इस भूमिके निचले सोनेकी काव है (यम अकृन्) बमस्कार करत हैं ॥ २६ ॥

(वस्या) जिसमें (धानस्पृश्या) बरबरवि (ध्रुवाः) वेक और कटा जाति (विश्वहा) धरा [पृथिव्या] स्थिर (तिष्ठन्ति) रहते हैं (विश्वायसं) पूर्वोक्त गुणोंसे जो लवके कारण करबेबाकी है (ध्रुताम्) धारण की गई अर्थात् अच्छीमांति सुरक्षित रही गई [पृथिवी अकृन्] इस पृथिवी की हम सुकमवथा [आवहामसि] मर्षिता गाते हैं ॥ २७ ॥

अर्थ- हे मातृभूमि ! जो सुगन्धि तुम्हारे कमकमें है सुर्पायके समय जिये यानु क जाती है वह सुगन्धिते हमें सुगन्धित करो । हममें कोई किसीके होइ न करे । हममें सबका एक वृक्षके साथ सबै वने और वन समानके किने विद्यमान हैं ॥ २४ ॥

हे मातृभूमि ! बीर पुष्पों तथा आचारण की पुष्पोंमें हाथी बीजे बीजने जायिये महापात्रियों मृच्छादिनी कम्पाचोंमें भी ठेक है वह हममें भी बचपनके ही हो । हममें कोई भी किसीके होइ न करे ॥ २५ ॥

जिस हवारी मातृभूमिके कारण धिक्का पत्थर और धूल है और जिसके भीतर ध्वनि रत्नाधिक अमूल्य पदार्थ बहुतसे हैं वह मातृभूमिके हम बमस्कार करते हैं । बचपन का कौन जाति गुण हममें बने रहते हैं सभी पक हमारी मातृभूमिके धारण है इतकिने हमको इस प्रकार आचारण करना चाहिये कि ये गुण हममें सर्वदा बने रहें और हमसे धरा मातृभूमिके तथा होती रहे ॥ २६ ॥

जिस हवारी मातृभूमिके एक और बरबरवि बहुतपनके हैं और वन स्थिर हो रहते हैं, जो अपने अनेक ध्वनि बने हुए

उदीरोणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।

पुनर्या दक्षिणसुख्याभ्यां मा व्यथिष्यमहि भूम्याम् ॥ २८ ॥

विमृग्वरी पृथिवीमा वंदामि क्षमां मुमि प्रक्षमा वावृधानाम् ।

ऊर्ध्वं पुष्ट धिर्भरीमममाग घृतं त्वाभि नि विदिम भूमे ॥ २९ ॥

शुदा न आपस्तन्वे श्वरन्तु यो नः सेदुरध्रिये तं नि दध्मः ।

पवित्रेण पृथिवि मोत् पुतामि ॥ ३० ॥ (१)

यास्ते प्राचीः प्रदिक्षो या उदीचीर्वास्तं भूमे अधराद् यार्धं पुमात् ।

स्यानास्ता मम चरते भवन्तु मा नि पैम्भु मुर्वने क्षिभिषाणः ॥ ३१ ॥

अथ- [उदाराणां] अथवा क्षिर [उत वासीनः] कहे हुए [तिष्ठन्तः] कहे हुए [प्रक्रामन्तः] दक्षिणसुख्याभ्यां पश्चिमां दक्षिणे या बायं पश्चिमे दक्षिणे हुए [भूम्यां मा व्यथिष्यमहि] अगिमें हम किसीको दुःख न दें ॥ २८ ॥

[विमृग्वरी] विमृग का उल्लेख योग्य [प्रक्षमा] परमात्माले [वावृधानां] वार्य वर्य [उत] अथ वा दक्षिणवादी [पुष्ट] पुष्टि वर्धनवादी [धिर्भरीमा अ] धी और क्षमते पदार्थ अथवा [विमृती] वायव्य अक्षिणी [पुष्ठी] कर्म की वादी [क्षमां] प्रणिमात्रक विद्याम योग्य [मुमि] मातृभूमिसे [वावृधानि] वार्यना करते हैं । [भूमे] इलाही मातृभूमि । [त्वां] तु द्वारा [अभिवेदीयेम] हम जापरा करें ॥ २९ ॥

है [पृथिवी] मा भूमे । हमारे धरीको छुने के लिये [शुदा न आपा] विमृग अथ [श्वरन्तु] वहा की [या मा] जो हमको [अग्निने] अग्नि है वा प्रिय नहीं है [सेदुः] उल्लेख अकारण [पवित्रेण] पवित्र जो हमारा कर्म है [मा जम्भामि] बतसे मुझ पवित्र करता हू ॥ ३० ॥

है [भूमे] मातृभूमि । [या ते प्राचीः] जो तुम्हारी पूर्व दिशा है [या उदीची] जो दक्षिण की दिशा है [या ते पश्चिमाः] जो तुम्हारी उपदिशा अग्नि पूर्वदिशा, वायव्य दिशा के पार कोमैकी दिशाएं हैं [या ते अधरा] जो तुम्हारे नीचे हैं [या ते पश्चात्] जो तुम्हारे पृष्ठभागमें या पीछे हैं [याः] वन वन दिशाओंमें [चरते] क्रम क्रम करके फिरते हैं, [मम चरते] ममन्तु । मुझ मुझ की देवताओं हैं [मुर्वने] जिस देवता हम [क्षिभिषाणां] तैं [मा विरतं] कहीं हमारा अथवा पाप न हो ॥ ३१ ॥

मुनें व मी वी है और कवका अन्तर्गत है, हमने कवका तरह सुरक्षित रखी नहीं वरन् पृथिवी ही हम भेवलीहोत स्तुति करते हैं ॥ अन्तर्गत— हम किसीके दुःखका कारण न बने ॥ २८ ॥

विमृग्वरी दक्षिण की दक्षिणको लक्ष्य करनेसे अनेक लाभ हो सकते हैं जिसे अत्यन्त वाचस्पत्यु वादेपरसे अपनी क्षमिसे प्राप्त किया है वरन् दक्षिणको लक्ष्य और पुष्टिकरण अनेक भोजनके पदार्थ अथवा आदिवा जो वरदान करती है, मंदी कोरी का प्रणिमात्रके रहनेके कारण है वरन् भूमे हम वाचना करते हैं कि हे मातृभूमि । तुम हमें कहना हो ॥ २९ ॥

है इलाही मातृभूमि । तुम वायव्य अक्षिणी पुष्टि के लिये विमृग अथ वहाती हो । जो कोई हमारा अग्नि करनेकी इच्छा करे अथवा हमारा अग्नि करे उल्लेख अकारण हम भी ऐसा ही वर्तन करे और जम्भु जम्भु करने हम अपनी हा मर्यादें क्षमि करे ॥ ३० ॥

है इलाही मातृभूमि । तुम्हारी जो वा दिशा पूर्व की उपदिशा है हममें वन वन्य तुम्हारे दित वरदानों होई वही प्रचार मेरे दिग्ग के लिये वन्य करते हुए हम भी वन कवका सम्मान करें, हूँ वहा वही रहे अपनी योग्यता वडाते हैं, मुझसे रहे और हमारा अथवा पाप नहीं न हो ॥ ३१ ॥

मा नः पश्यान्मा परस्तामिदिष्टा मोत्तराश्चरादुत ।

स्वस्ति भूमे नो भव मा बिन्दन् पारपण्यिनो श्रीमो यावया वृधम् ॥ ३२ ॥

यावत् तेऽपि विषयाणि मये हृदि पठिता । तांस्तु वसुधा मेष्टोत्तरासुतरा समां॥३३॥

यच्छपानः पर्यावर्ते दक्षिण मध्यमणि भूमे पार्श्वम् ।

रुद्रानाम्स्वा प्रीतिं सतः पृथीमिगच्छेत्तमे । मा हिंसीस्व नो मूढे सर्वस्य प्रतिष्ठावरि ३४

यत् तं मूमे विखनामि सित्र तदरिगेहत्तु। मा ते मर्मे विमृगरी मा ते हृदयमपिपम्॥३५॥

बर्न-हे । भूमे। पञ्चात् नः सा कुशिका । साभूमि । सा तुम्हाहे पुनमाग है व हमारा मनु व को [सा पुत्रात् । सा वसात् उत वसात् सा कुशिका] जो तुम्हा पूरे है उता है वा नीचे है वही हमारा नाव न को [वसति] हमारा बहवत् हो । [परिचयः] साक कोग हवै [सा विष्णु] न जायै [किष्ण] उत कारवोकि [वष] वषके किये [वरीवः] जो हम कोमोसि मयसे ज्ञात हो [वावव] वव जाव व ३२ ३

[पूने मदिना] हे हमाी मातुसुमि ! —अजबे सवाहरी भालव दनेकाळे [सुर्वेन] सुर्वेले [बायल ते मजि दिव
 स्वामि] बडावक मज जोर हय मुश्कार दस्कारको देखो हे [वाग्न उतरां उतरां सवां य जसु मा देग] बडावक
 लोको लोको मेरी उमर बहरी जाय मेरी इंदिया मेक बादि अवका अवका बाय कमेले विधिक न हो जयां करीत उबनें
 कमी न हो, जयवी पूरी उमरवक हय मज उतरा कमी करि रेडें ॥ ११ ॥

हे [भूमे] हमारी मातृभूमि । [वर] जब [ज्ञानान्] समझे हुए [इच्छित वस्तु पावै] चाहिये और यदि [अनिर्वाणों] का यह [वर] जब तुमपर [प्रतीती] पावेस को और पाँच कर [ज्ञानान्] पुढागि । पीछे नीचे कर [अविश्रम] कष्टन को जब [शान्ति] [लोभ] प्रताप ही [जब] लोगों को सहारा देवे बाका [भूमे] मा [सिद्धि] हे हमारी मातृभूमि हमारा वाहन कर ॥ १४ ॥

ह [धृमि] हमारी मान्यधर्मि [व] पुम्हारे [वर विद्वानामि] ओ हलसी कोषकर हय बाबें [वत् शिव रोदतु]
 यह कन्द उग और रहे [सिमुगति] जियेव ओखबे कोष हमारी मान्यधर्मि [व] पुम्हारे [मय] मान्यधर्मि
 भिनी उरह की छति बा बाह न पदह ओर [वे जार्ति] पुम्हारे जर्तिव [हारबे] मय बा जित [वा] ह जिय न हो ३३५५

साधन— हे हमारी वस्तुसूचि ! हमें किसी प्रकार से इसमें न पहुँचने का तराई हमारे लक्ष्य ही हो । हमारा ध्यान जो हमारे हृत्त में समझ पड़े और हमारे अंगुष्ठा नीचे आ जाए हमारे अङ्गुलीयों को मांस करनेका प्रयास करते रहें ॥ १२ ॥

ह मातृभूमि ! अबतक हम प्रजास और स्वामी स्वायत्ताये तैरी काहरी भीतरी शक्ति सुभ्य दृष्टिसे देखते रहे तबतक हमारी काहरी इन्द्रिया और भीतरा बुद्धि अपना जगना काम करवली कमरे रहे ॥ ३३ ॥

हे हमारी मातृभूमि ! जिस समय हम तेरे मक विधायन करनेके लिये बाह्र ए अथवा सत्रे तेरे ऊपर सार्व सत प्रभाव होने कायम हो जिसके कि हम केन्द्रके नीचे ऊपर बाह्र हमारा गठन न कर सकें ॥ ३८ ॥

हे हमारी मातृमणि जहाँ तुम धँसा गीली हो कहे सम समाय कर जो हथ बोले वह जख्म उभे और गहे । तुम्हारे कंधा सीमा रहने हवरे जकासाय और फिर जानका दीन बना दे जो तुम्हारे लिय कम कम तुम जनक बने पाठ वा फटे न पहुँचे और तुम्हारे जिने जो हल अफवा टग मग अस्थि बिने हैं कि तुम्हारी उच्छति करे जो दुःकृत वा ह । हम सदा मङ्गल विष्ट रहे ॥ ३५ ॥

प्रीप्पस्ते मूमे वर्पाणि श्रुदैमन्तः शिशिरो वसन्तः ।

॥ ३६ ॥

अनर्बस्ते विहिता हापनीरहोरात्रे पृषिभि नो दुहताम्

यार्प स्रपं विजमाना विद्वग्नी यस्यामास्तन्मृषो ये अप्सवन्तः ।

परा दस्पुन् ददती देवपीयूनिर्न्त्रं मृषाना पृषित्री न मृषम् ।

श्रुक्रापे दध्न इषमाय वृष्ये

॥ ३७ ॥

यस्या सदाहविर्धाने यूगे यस्या निमीयते ।

अज्ञाणो यस्यामर्थेन्तृग्मिः साज्ञा यजुर्विदः ।

युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोमनिर्द्राव पातये

॥ ३८ ॥

जब है (इषित्री भूमे, विष्णु मातृभूमि) (ते दीप्याः यव कि सगद् देमन्ताः शिशिरः वसन्ताः) सुमने है जो गरमी बरसात बरद् देमन्त शिशिर वसन्त (ज्वन्ताः ते हापनी) ये क मनु वयमामे (विहिता) स्थिति की गई हैं और (महोरात्र) रात्र तथा रात्र (ना दुहताम्) हमको सुत देमन्ताके पदार्थ है ॥ ३६ ॥

(वा विद्वग्नी) जो विद्वेध का ज्ञेय योग्य है (विजमाना अपसवन्) जो शिकरी हुई बकरी है, (ये अप्सु) जो जलो में (जन्ताः मृषाः) विजमानाके भाग में अग्नि है (यस्या मासम्) जिसमें है वह हमारी मातृभूमि (देवपीयून्) देवोंके हितक (दस्पुन्) ज्ञानमात्रके उत्पन्न ज्ञानार्थी का प्रत्यक्ष (ज्ञाता) ज्ञान (ज्ञानेन) दीर्घमुखा (वृषमाय) निष्पन्न करनेवालेको (दध्ने) पात्र क री है और ज्ञातको (वराहवती) बुर करता हुई (इषा) सत्यता [इषा] माध करनेवाले हुए बीरों [वृषाना] वरक करनेवाली बर्षाद् अपनेमि भिक्षावेवाली हमारी मृत्भूमि है ॥ ३७ ॥

(यस्या मृगे) जिस भूमिमें घर है (हविर्धाने) जिसमें हविष्य जर्जर हवयके पदार्थ सुरक्षित रह लगे है (यस्या यूगः निमीयते) जिसमें वज्रपट्टन रके जात है (यस्या यजुर्विदः अविजः) जिसमें यजुर्विदके ज्ञानार्थी आश्रय बल करने का वरान्तवाले (या यो ज्ञाताः ज्ञाताः भाः साज्ञाः य अर्थेन्त्र) जिसमें ज्ञात और ज्ञानार्थक ज्ञानार्थी आश्रय तथा वय परमात्माका प्रत्यक्ष करते हैं ज्ञात (सोम पातय) सामपात्रक किये (इषाव युज्यन्ते) इ इषा प्रत्यक्ष करते हैं ॥ ३८ ॥

हे मातृभूमि ! तू ज्ञान होवेका ज्ञान गुण तुम्हारा ही है व ज्ञान शिखी शिखरी भूमिमें का ज्ञान नहीं होती (ते वरीये ये ज्ञाः ज्ञान ज्ञान ज्ञाने समकर्म ठपके फल प्राप्त करते हैं) सुख दर्ता रहें जब जब ज्ञानके प्राप्त और दिव ठप भक्ति हैं सुख करने हैं ॥ ३६ ॥

जो हमारी भूमि ऐसी है कि इसे जितना ही जीवते हो हममें ज्ञानार्थक कार वस्तु मिलती रहे शिकते देखते ज्ञाने ऐसीमें विजमाने ज्ञान हमें ज्ञान मिलते है वह हमारी मनुमान सज्जनकों बुद्ध देमन्ता दुष्टों का (वा रक्तं हितं ज्ञेयं वा) कर्त है वह हमारा । मनुमान कारमात्र वर का ही अर्थ पात्र वरती है ॥ ३७ ॥

जहाँ रहे ज्ञानार्थक ज्ञानार्थी कार पात्र फल भिक्षा है इषाके धिक् हुआ कि वह हमारी मातृभूमि वरि वर भूमि है ॥ ३८ ॥

यस्याः पुरो देवकृता धेनु यस्यां विवर्तते ।

प्रजापतिः पृथिवीं विश्वमभ्यामाश्रमाशां रण्यां नः कृणोतु

॥ ४३ ॥

निधिं विश्वगी बहुधा गुहा वसुं मणिं हिरण्यं पृथिवीं ददातु मे ।

वसुं नि ना वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्पर्माना

॥ ४४ ॥

अनु विश्वनी बहुधा विश्वं वसु नानाभरणं पृथिवीं पथाकृतम् ।

सुहस्रं चारुं त्रिंशत्सं म द्वां ध्रुवं धेनुमनपरस्फुरन्ती

॥ ४५ ॥

यस्तं सूर्यो वृद्धिस्तद्वदस्मा इमं नः श्रेयो ममथो गुहा श्रेयं ।

क्रिमिर्जित्वैव पृथिवीं यद्यदन्ति प्रावृषिं तन्न सर्पन्मार्गं सृष्टुं यच्छिव तेन नो मृद ॥ ४६ ॥

अर्थ [यस्याः देवकृता पुराः] जिस मातृमणिके अगर देवीके कन्या या बलाव है [यस्याः क्षेत्रं विवर्तते] जिसके प्रदेश प्रायसे मनुष्य अपने अपने काम आतीं लाइसे कर सकत है [प्रजापति] प्रजाका वास्तव उस भूमिको जो [निधि] सारक पदार्थोंकी पैदा करवाती है, [गुहा] उस हमारी मातृमणिके [आसीं आसीं] मन्त्रक विधाओंमें [रण्यां] रमणीय क ॥ ४३ ॥

[बहुधा गुहा] बहुत तरह की काममेंसे [वसु] वन [मणि] रत्न हीरा पत्ता आदि [हिरण्यं] सोना कपी आदि [पृथिवीं] मन्त्रक [विश्वगी] चारण करने वाला हमरी पृथिवी [मे] हमको वह सब [वसु] दे [वसुदा] दे [सुमनस्पर्माना] पक्की देवदात्री [रासमाना] राज करवाती [देवी] देवस्वरूप हमारा सब काम साधनेवाली [ध्रुवं धेनुमनपरस्फुरन्ती] उससे ध्रुवाक्षर होकर [म] हमको [ममथो गुहा] वन है म क क व

(बहुधा नवाचर्माना) बहुत तरहके जमीन मायनेवाली (विषयवस्तु) जमीन भाषा जोकरेवाली (वसुं) जलमनुष्यावली (यथा जोकरं) जैसा एक वरमें कोई रहे उस तरह (विश्वगी) चारण करनेवाली (वसुमन्त्रुया) जिसका नाम न हो दूसरी (यथा पृथ्वी) स्थिर भूमि (विश्वमभ्यामाश्रमाशां) हमारी तरह पर (मे) हमको (देवता) देव गुहा] देव जगत् देवी है उसी तरह हमें जगत् है ॥ ४५ ॥

दे (पृथिवी से) हमारी मातृमणि हमारी (वाः सर्वः भूमिकः) जो सर्व का बीज (सुहस्रम्) ऐसे जीव की आदि जिसके काटनेसे जल बहिक जगती है (हेमन्त मन्त्र) प्रविशवाद्यक जगत् जगत्के देवता करनेवाली (ध्रुवा) या जिसके जलसे सुखी पैदा हो (क्रिमिः) ऐसे कीड़े (गुहासरे) जगत्केमें पड़े सोका करते हैं (मातृवः) वास्तव के मातृमणमें (वसुः जलं व वसुं वसुमन्त्रुया) जो वसुमन्त्रुया वसुमन्त्रुया है वा रम्य है (ध्रुवः सर्वः) जो रम्य करते हैं वे सब (वाः माः जगत्सुहस्रम्) हमारे पास व आते (वसुं सिरम्) जो हमारे किये कलशमन्त्रकी हो (तेन व मृद) उससे हमें सुखा कर ॥ ४६ ॥

साधन-जिस म ममथो देवीशाला जगत्के जमीन जगत् है जिसके प्रत्येक प्रायसे मनुष्य अपने पदार्थोंके म क मन्त्रोंके उर्ध्व में सर्वत्र जगत् है जगत्को जो वसु है जोईसाय जिसका सुखा और उन्नत नहीं है जहाँ सब तरहके पदार्थ पैदा होते हैं उस भूमिका प्रजाका वस्तु पूरा करे जहाँ सब विधाका अधिक प्रकार कर और वह भूमे प्रायः पदार्थों तथा जीवोंके प्रजनन रहे ॥ ४३ ॥

जिसमें रम और सुखी आदि की बहुतसी कामें हैं और जो हमें सत्य वन रत्न आदि देती है वह मातृमणि वह हमें सबकी देवदात्री ही ॥ ४५ ॥

यद् यदांमि मधुमुत् तद् वेदामि यदाञ्चे तद् वेनति मा ।

स्विपीमानस्मि जूतिमानशान्पान इमि दापेतः

॥ ५८ ॥

स्रतिवा सुंरमिः स्थाना कीलाहोप्री पर्यन्वती। धूनिरधि मवीतु मे पृथिवी परंसासु॥ ५९ ॥

यामुन्वेष्टद्विषां विषकर्मन्तरर्णय रजसि प्रविष्टाम् ।

मुञ्चिष्य१ पात्रं निहितं गुहा यद्याविभोर्गे अमव-मानुमद्वर्षः

॥ ६० ॥

स्वर्मेस्यावपनी जनांनमदितिः कामदुष्ठा पश्याना ।

यत् तं कुनं तद् तु आ पृथ्याति मुञ्चापतिः प्रथमुजा अतस्य

॥ ६१ ॥

अर्थ—[यद्] हम अपने हाथ वा पैरके मङ्गलार्थों को [यदांमि] करते हैं [तद् मधुमुत् यदामि] वह विष्णु के सत्वर इश्वरीयें कहते हैं [यद् इति] को ५८ है [तद्] वह यम [मा] हमको सहायक को [यद् स्विपीमान्] मैं प्रकाशनाम तजस्वी इतिमान् जो [जूतिमान्] कामनाम हो इसके [शान्पान्] दुपरे को हमारी मूर्तिमें डूले हैं [यवइमि] वनका मांस करते हैं ॥ ५८ ॥

[स्रतिवा] स्रतिवाकारक [सुंरमिः] सुगन्धिवुक्त [स्थाना] सुक्त देवताकी [कीलाहोप्री] वन में देवताकी [पयस्वता] जहाँ बहुत जल हो देवी [मे धूनिरा मूर्तिः पयसा सह] हमारी मूर्ति आग पदार्थ को जलें काममें आये इनसे इमि [यवि मवीतु] कः ॥ ५९ ॥

[यद्] जब [विषकर्म] सब काम करवाके [रजसि अर्चये] अ-रजिस्में [यज्यः प्रविष्टां याम्] ईश प्रविष्ट मिस मूर्तिमें [यमिका] अर्थात् पदार्थोंके [यमिष्यन्] सेवा करने की इच्छा करना है तब [गुहा मर्त्ये] गुप्तस्थानमें रहकर हुआ [साक्ष्य पश्याम्] जोअर्थके जोअर्थ जब आदि [मानुमद्वर्षा मानुमद्वर्षे] [माये] राजको किने [यतिः अमवत्] अमर होता है ॥ ६० ॥

हे मातृमूर्ति [त्वं यवामि अदितिः] तुम कोमोरी हुआ व देवताकी [कामदुष्ठा] इच्छित पदार्थों की देवताकी [पयसा] स्तुति के को [यमिका] मितमें अर्पण करके जोअर्थके बहुत जल यवता है [यमि] ऐसा तुम को [यत् तं कुनं] जो तुम्हारेमें बनी है [तत् तु अतस्य] तो तुम्हारेमें जो यज्ञ किया जाये हैं [यममया] यज्ञक अर्पितें ज्ञ हुआ [यजति] परे इतर [मानुमद्वर्षे] तुम का देव है ॥ ६१ ॥

भाष्य— हम का कुछ भी माग्य करने वह यम हमारी मानुमूर्तिमें किने दित्तकारी होता जो कुन द्य कोअर्थके देवोंके ५८ ५९ की यममूर्ति की देविने सहायक होता इति यवामि यजते यज्ञ यज्य मानुमद्वर्षे ही के अर्थके होता है तजस्वी वन-वृद्धिमान ही को हमारे कतु हमारी मानुमूर्तिमें लीज करके व का हम माग्य करते हैं ॥ ५८ ॥

स्रतिवा सुक्त जल पानी अर्पित की देवताकी हमारी मानुमूर्ति हमें जल मीथके पदार्थ और धररर देवताकी ही तब तरह और हमारी सेवा करती रहे ॥ ५९ ॥

जहाँ जल तरह के यवोंक कामकाके कुछक पुरव मानु मूर्ति की सेवा करने के किने अदितर होते हैं यव मानुमूर्ति गुप्तस्थानमें रहकर हुआ तथा पश्या हुआ यज्य [यी केवल यवों ही के किने है] औरर जवके कायम अमर होता है । अर्थात् इनके उपमोपके बारे पयसा कहें साक्ष्य ही मिक लगते हैं ॥ ६० ॥

हे हमारी मानुमूर्ति य हम जवका ज्ञ देवताकी दे अर्पित पदार्थोंकी देवताकी दे द्यजिने जो ठरे में बनी है ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयस्मा असम्यं सन्तु पृथिवि प्रसृताः ।

दीर्घं न आपुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्वाम ॥ ६२ ॥

भूमे मातुर्नि बेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।

सविधाना दिवा कवे धियां मां भेहि भूर्त्याम् ॥ ६३ ॥ (६)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

हे [पृथिवि ते मत्स्यः] भूमि ! तुम्हा में उत्पन्न सब कोय [अनमीवाः] रोगरहित [अयस्माः] क्षयरोगरहित [असम्यं उपस्थाः] हमारे पास रहनेके [सन्तु] हो [मा आपुः दीर्घं जयतु] हमारी उमर बढी हो हम बहुत दिन जीये [कवे प्रतिबुध्यमाना] हम ज्ञान विज्ञानपुत्र हो [तुभ्यं बलिहृतः स्वाम] तुम्हें बलि करमार देनेवाण हो ॥ ६२ ॥

हे [मातर् भूमे] मातृभूमि ! [भद्रया] बलवानसे बढायेवाली बुद्धिसे हमें [सुप्रतिष्ठितम्] सुस्थिर या पुष्ट कर [मा] सुख से [विवेक] रक्को [त्वा] प्रतिरिष (सविधाना) सब बातकी जानबैवाली करो [कवे मां] हे ज्ञानरत्न जमी ! हमें [भूमी धिय बेहि] पृथिवीमें ज्ञेयति प्राप्त हो ॥ ६३ ॥

आचार्य देहमती मातृभूमि का हम काय तुम्हारेसे उत्पन्न हुआ है व विशेष बलवान् बर्बात बुद्धिमान् जन्मिल पच रहें और मातृभूमिके हितके लिये अपने विवेकसे स्वार्थ का बलि देनेमें कसत रहें सब माति तुम्हारा हित काममें लाने रहें ॥ ६२ ॥

हे मातृ भू मे । सुख बुद्धिमान् कर और तेरे विषयमें प्रतिरिष विन्या करनेवाले सुख विचार और दावर्धों मनुष्य को वच सुख भरवी भूमिमत् जन्मति प्राप्त कर देनेवाली है ॥ ६३ ॥

प्रथम सूक्त समाप्त ॥३॥



ये मेघर्षो अम्बरसो मे चारायाः किमीदिनः ।

पिप्प्राचान्तस्रो रक्षसि तानुस्र्धुमे यावय

॥ ५० ॥ (५)

यां द्विपादः पृथिवः स्रपतन्ति इमाः सुपुर्णाः धंकुना ययासि ।

यस्यां वातो मातरिष्येभे रत्नांमि कृष्णवपुष्ययस्य पुषान् ।

वातस्य प्रवासुपुषामर्तु वात्ययिः

॥ ५१ ॥

यस्यां कृष्णमंरुण च सहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामभि ।

वर्षेण भूमिः पृथिवी पुनावृता सा नो दधातु मद्रयो प्रिय धामेतिधामनि

॥ ५२ ॥

यौध म इद पृथिवी चान्तरिक्ष च मे व्ययः । अग्निं सूर्यं भावो मघां विधे इवांस स इदुः ॥ ५३ ॥

अर्थ है [सूय मे तानुस्र] यन्तुभूमि को जिसके अन्तर्गत ही हमारे वय करनेको उपाय है [यप् सास] वर्तमानकाल काकमी है [ये चारायाः] को निर्धन है तिमोरिका । पर उनके हरनेवाले हैं [पिप्प्राचान्] मांस खातेवाले हैं, [अम्बर] राखती स्वभाववाले हैं [सर्पम् अम्बरम् वायव्य] मन्त्रको हमसे दूर हटा ॥ ५० ॥

हमारी बहम तमास है [१] द्विपादा इमाः सुपुर्णाः लङ्गनाः ययामि पक्षिण मरगन्ति] जहाँ दो पांखवाले जीव हैं मरकट जादि पक्षा उड़ते हैं [यस्यां मातरिष्येभे वातः] आकाशमें बहनेवाली वा सत्कार करनेवाली हवा [यस्यां कृष्णमं] पूरक उपाही हुई [पुषान् पुषावयन्] वहाँको जड़ते दनाचलते हुई [इहते] बहती है । [तस्य वातस्य अं वपुषां] उस वायुकी मातृको [अभिः] सेव वा प्रकाश [अनुवपते] अनुवरण करना हुआ बहता है ॥ ५१ ॥

[यस्यां मद्रयो कृष्ये मघन च] प्रिय भूमिमें घसोमव मघनम और प्रकाशमव विध [सहिते] सहिते (अहोरात्र) दिन और रात [अभिः विहिते] होत है [सा पृथिवी भूमिः] वह विरल भूमि [वर्षेण पुषा सा] हरिते वषी हुई [मद्रया] कृषकण्ड साव [प्रिय धामनि धामनि] विरकारी स्थानोंमें [या] हमको [इदुः] वा ॥ ५२ ॥

[या] प्रकाशमव आकाश [पृथिवी] भूमि [अन्तरिक्षम्] आकाश और पृथ्वीका बीच [मात्रा पुषा] अग्नि की सूय [१] देवता च] मघ प्रकाश कामवास देव तथा पिहन् योग विजयो वा स्ववहात्कपुर [इद] पर सव [ये] सुप्रको [येषां] वायुवायुवाकी पुष्ट [म वपुषा] हमारी सखी व्यास वा वायव्यमव [येषां] वायुकी तरह हैं ॥ ५३ ॥

आचार्य है हमारी मातृभूमि ! जोहिमक माकमी जीवन परवय हरनवाले पाँखादारी अवात्यकारी माथिक और म लज्जा है इनको दूर करो ॥ ५० ॥

पिप्प भूमिमें लक्ष्य आकाशमें हीन जादि पक्षेक वायव्यने लड़ते हैं जहाँ भूमिसे उड़ते पक्षीको बचावते जान ॥ ५१ ॥

होइ लक्ष्यने बहती है मर मंगलकी अग्नि जहाँ मरीम जनकली है ॥ ५२ ॥

प्रिय भूमिमें ठीक प्रकाशने रात और दिन दात है और वपुषी सखी वपुष्य राखी है मर हवाकी विरल मद्र भूमि हमें दिवका स्वर्गमें लुप्तने रके ॥ ५३ ॥

एव वा अंगम, भवत वा मघनम सव वषावकी वहायवाले हमारी मुदि पडे और कीर्तिरके पापे मोर म्नास हो ॥

अहमेस्मि महेमान् उचरो नाम भूम्यामात्रमीपाहोम्य विधापाहोमाशां निपासुहि ॥५४॥

अदो यद् देवि प्रथयमाना पुरस्ताद् बुवैरुक्ता व्यमर्षो महित्वम् ।

आ त्वां सुभूतमविशन् तदानीमकंरयथा प्रदिग्धवत्सः ॥ ५५ ॥

ये ग्रामा यदरथ्य थाः सुभा अग्नि भूम्याम् । ये संग्रागाः समितयस्तेषु चाहं घदेम ते ॥५६॥

अथ इष रजो दुधुन वि तान् जनान् य आक्षिपन् पृथि्वीं यादजायत ।

मन्त्राग्रत्परो सुनस्य गापा वनस्वरतोना शुभिरावधीनाम् ॥ ५७ ॥

अर्थ- [अहं महमानः] गामी सरसी, स्या दुःख मह अनेवाक [जान] पक्ष और प्रतिपत्ति [उत्तराः] अहहतर [सुभो मस्ति] समीपे [अस्मां आगतः] इ एव इमं बोधे [विशय इ] । वलय विजवा [अमापद्] सव और पराक्रम करनेवाला [विधापाः] यव शास्त्रोंका माता करनवाका [आश्रय] हू य ५४ ॥

दे [अग्नि] । अथ मातृभूमि तुम (वत्) अथ (पुरस्तात्) पश्चिम (दक्षिणः) इहो और विद्या विजिगीषु या व्यवहारकुशल कोगोशाना [प्रथमाया] पक्षवात होकर [उक्ता] प्रगति हो गई तब [व्यमर्षः] विशेष उरध्वरोधे कृषी [कृषीम्] तब इसका [जनक अग्निः] पारो दिशाबोधे [सुभूतम् याद्वारम्] बड़ी मातृका [अक्षय्यवधाः] प्रत्यक्ष हो गई, हे भूमि यह तुम्हारे मांसा [था] तुममें [आविष्टम्] अब भी पड़ेगी भी ही हो ॥ ५५ ॥

[ये ग्रामाः] जो गाँव या गाँव [यद् अरथ्य] जो वन [थाः] सभाः । जो राजसभा स्वापसभा धर्मसभा आदि [ये संग्रागाः] जो युद्ध [थाः] यन्त्रिण [जो बड़ा बड़ा परिवर्त] [अभिभूतान्] हमारी भूमिमें [अग्नि] है [तेषु] इन वनको [त] तुम्हारे वा में [आक्षिपन्] अग्निका कहना ॥ ५६ ॥

[यात्] अथ [पृथिवीम्] भूमिमें कोई युद्ध आदि [आक्षिपन्] आकर बड़े या बसाया जान तब [यात् जनान्] उन राजनेवाक मनुष्योंको [या रजः] जो केनाक आनेके उदा पृथ्वी [अथः इव वि दुष्ट] कोशोंके अन्तर्गत अमान बड़ी बड़ [मन्त्रा] प्रसन्न करनेवाली [मन्त्रायाः] मन्त्रवागी अथ अनेवाली [सुनस्य गोपा] संसार की रक्षा करनेवाली [वनस्वरतोना] जो वनी । य शानाः] वनस्थिति और जीपावधिका प्रदत्त करनेवाली है ॥ ५७ ॥

मातृभूमि- ये अरबी मातृभूमिके जिसे तथा उनके कुछ विधा य परदेके निवे हर सरहके पक्ष पक्ष काजके वैवार हैं । और प्रभावके सब पाहोकोके पाला बहना । एक भी शाहय रहने नहीं हूँगा ॥ ५४ ॥

हे मातृभूमि वहनके साथ अब तुम्हारी रजुति करते थे तब समय तुम्हारा महान और कीर्ति करो दिशाबोधे देव गाँव भी, बड़ी तुम्हारा महान अब भी वैशाही पक्ष ॥ ५५ ॥

हे हमारी वनसमिति । तुम्हारे मज्जा कहो मज्जा वन अमा परेवत् संसार विधा मनुष्य पक्ष हो गई वही हम तुम्हारी सर्वका करें । अर्थात् वनी तुम्हारे आह्वानकी बात म कहें ॥ ५६ ॥

तुम्हें विजयी हो आदि देव का पारोके अक्षय्य पून उदहर मनु के भित्तोंके जनक वर्ण है । अथवा अब दिग्ग विशेष धारणके निव मनुष्य अमा अथवा एकाग्र होत है तब तब अनेक की वन सम्पत्ति एक वि धन अति सम्पत्ति होनी है यह पृथिवी म को अक्षय्य है पानी मय देव का स क्षम करने वनी और अथ आदि महान पक्ष देवकी है ही है । इसविधि बड़े मातृभूमिके अंतर्गत अथ सर्व पक्षमें रहने ॥ ५७ ॥

यद् यदाभि मधुमत् तद् यदाभि यदाभे तद् धनन्ति मा ।

स्विर्पमानस्मि जूतिमानश्चान्यान् इमि दाधंतः

॥ ५८ ॥

सुतिषा सुंरभिः स्थाना श्रीलाहोभी पर्यन्वती।धूमिरभिं प्रवीतु मे पृथिवी पर्यसासद्॥५९॥

यामुन्वेच्छद्विषा विश्वकर्मान्तरर्णव रश्मि प्रविष्टास् ।

मुजिष्प्यं१ पाश्रुं निर्वितु गुहा यद्वाभिर्भोगे अमवमानुमङ्गयः

॥ ६० ॥

स्वर्गस्यावर्पनी जनानामर्दितिः कामदुषां पयसाना ।

यत् तं कुनं तत् त आ पुंयाति प्रजापतिः प्रथमुज्जा श्रुतस्य

॥ ६१ ॥

अर्थ—[यद्] इस अर्थसे रहू वा इसके पड़ानेमें जो [यदाभि] करते हैं [तद्] अष्टमत् यदाभि] यह द्वित्व और धनुर उचारी कहते हैं [यत्] के] को करते हैं [तत्] यह धन [मा] इसको सहायक हो [यह स्विर्मान्] इन प्रकाशमान तेजस्वी शक्तिमान् को [जूतिमान्] जलधाय हो इसके [यामान्] दूसरे को हमारी भूमि को घेरे लगे हैं [यदाभि] यका नाक करते हैं ॥ ५८ ॥

[यन्तिषा] यन्तिषाका [सु मिः] सुगन्धिपुष्प [स्थोवा] सुक हेनेवाली [श्रीलाहोभी] यह की हेनेवाली [पर्यन्वती] वही बहुत बल हो देवी [मे पृथिवी भूमि परसासद्] हमारी भूमि आग कर्षण को शीघ्र काजमें लावे इसके इमि [अभि प्रवीतु] क ॥ ५९ ॥

[यत्] यह [विश्वकर्मा] सब काम करने वाले [रश्मि ज्वरं] वह तपस्वि [यन्तः प्रविष्टां याम्] शीघ्र प्रविष्ट भिन्न भूमि को [यिषा] यकाभिं यकार्योके [यमिष्प्यम्] देवा करने की इच्छा करता है उस [गुहा निर्वितुं] गुहस्थानमें यका हुआ [मुजिष्प्यं पाश्रुम्] योद्धाके बीच बल लादि [यामुमङ्गयः यामुमङ्गो] [यामे] उपभोगके क्रिये [कामिः कामयते] प्रयत्न होता है ॥ ६० ॥

हे अमृतमूर्ति [तं जनाः] अहिंसितः] तुम लोगोंको तु क न हेनेवाली [कामदुषां] शक्ति पद योंकी हेनेवाली [पयसा] स्तुति के बीच [यामानो] यिनमें अच्छी तरह बोनेसे बहुत बल उपजता है [यमि] ऐसा तुम हो [यत्] के क म्] आ तुम्हारेमें कभी है [कामे] कामय [तो तुम्हारेमें जो बल भिन्न जाते हैं [यममङ्गः] य वह लादिमें प्रयत्न हुआ [प्रयपति] पर-परा [यामुमङ्गि] पूज कर देते हैं ॥ ६१ ॥

भावार्थ— हम को कुछ भी मायब करने वह सब हमारी मातृभूमि के लिये द्वित्वारी होता जो कुछ हम जाँचके देखते वह सब भी म धूमृमि ही के लिये सहायक होता इसी प्रकार हमारे सब काम मातृभूमि ही के लयन होते । इस तेजस्वी कर पुष्टिमान ही जो हमारे बहुत हमारी मातृभूमि रोहन करने वनका हम नाक करने ॥ ५८ ॥

कामि सुक लज पत्नी अदि की हेनेवाली हमारी मातृभूमि हमें सब जीवके परार्थ और दूसरे हेनेवाली ही वह तरह और हमारी सेवा करती रहे ॥ ५९ ॥

जहाँ सब तरह के शरीर क निशके कुछ पुष्ट मधु भूमि की सेवा करने के लिये करिबद होते हैं वहाँ मातृभूमि पुष्टमय है यका हुआ तथा पाका हुआ बाक (जो केवल मधो ही के लिये है) लाकर सबके काममें प्रयत्न होता है । अर्थात् हमके उपभोगके लिये परार्थ कुछ कुछ ही निकलते हैं ॥ ६० ॥

हे हमारी मातृभूमि तु हम सबका सुख हेनेवाली है, शक्तिय पद योंकी हेनेवाली है इत्यदि को छेरे में कभी ही लिये वरदेकर पूज करे ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयमा असम्यं सन्तु पुयिनि प्रवृत्ताः ।

दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना नृप तुम्यं बलिहृतः साम ॥ ६२ ॥

भूमे मातृनि वेदि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।

सविदाना दिवा कवे भिषां मां धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥ (६)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

हे [पुयिनि ते प्रवृत्ताः] भूमि । तुम्हारे में उत्पन्न सब लोग [अनमीवाः] रोगरहित [असम्यः] सवरोगरहित [कलम्ब उपरवाः] हमारे पास रहने के [सन्तु] हो [नः आयुः दीर्घं भवतु] हमारी उमर बड़ी हो हम बहुत दिन जीवें [नृपं प्रतिबुध्यमानाः] हम जान विशावशुद्ध हो [तुम्यं बलिहृतः साम] तुम्हें बलि, करभार देनेवाके हो ॥ ६२ ॥

हे [मातरं भूमे] मातृभूमि । [भद्रया] बलवानको बलानेवाली बुद्धिसे हमें [सुगोष्ठीकृतम्] सुगिरि वा युक्त कर [मा] तुम्हारे [निवेद्य] हमको [भद्रा] धनरिज (सविदाना) सब बातकी जायनेवाली करो [कवे मां] हे कव्यवद् बानी । हमें [भूत्यां भिय वेदि] भूमिमें भयति प्रसन्न हो ॥ ६३ ॥

भावार्थ हे इसमती मातृभूमि । हम जान तुम्हारेमें उत्पन्न हुए हैं वे विरोग रहित बलवान् बुद्धिमान् जयति पन्न रहें और मातृभूमिके हितके लिये हमने लिये हैं हमारे बलि देनेमें उत्पन्न रहें सब माति तुम्हारा दित करनेमें सत्कर रहें ॥ ६२ ॥

हे मातृभूमे । तुम बुद्धिमान् कर और मेरे भियर्धमें अधिकतम विन्या करनेवाके सत्कर विचारों और दृढधी मनुष्य को तथा तुम मरती भूमेवत् सम्पत्ति प्राप्त कर देनेवाली हो ॥ ६३ ॥

प्रथम सूक्त समाप्त ॥१॥



मातृभूमिका वैदिक गीत ।

जिस देश में जो लोग रहते हैं वह उनकी मातृभूमि कह
 जाती है। जिस भारतीयों की मरतभूमि थी थी श्रीमों की भी
 भूमि, अर्थात् की ईश्वरभूमि और इसी तरह दूसरे-दूसरे
 देशों की अपना अपना मातृभूमि है। जिस तरह माता
 रक्षमाँस का हृदय बन्धन देह बनाता है, उसी तरह मातृभूमि
 में सत्य होमेबादे अन्तः पायी, बहोली हृदय और बन्धन
 दिया मे इस देश के मनुष्यों के देह बनाते हैं। इसलिये हर
 देश को अपनी मातृभूमि समझना, देश के निवासियों का
 स्वभाव होता है।

परमेश्वर का निवास ही है कि माया के रूपपर अपने का ही अभिचार रहना चाहिये क्योंकि माताके स्पर्शों में जो रूप परमेश्वर अपने अन्ततः निवासों से उत्पन्न करता है, वह उस माया से उत्पन्न होनेवाले रूपों के सिद्ध ही रहता है। अपने का पाप्मन सचकी माता के रूप से ही होता चाहिये। माया का रूप वीना अपनेका अन्तर्निहित अभिभावक ही और वह सचकी चर्च भी है। यदि कोई अन्तरहस्त नामक अपनी माताका रूप पीकर सुन्दर नामकी या ताका भी रूप बनाएस्तर्हि जिनका और दूसरे अपनेको भूषा देनेवा सी वस्तुका वह नाम परमेश्वरके नियमोंके विरुद्ध होता। और यह अन्तरहस्त वस्तु ईश्वर के नियमोंके अनुसार अवरुधी समझा जानेवा। इसी तरह एक देखते मातृभूमि के मातृक रूप। इसके मातृभूमिके मातृकाकी परतल अगले और सच इसमें अन्तर्गत होनेवाले अन्तर्गतिके पदार्थ सच इसके निकटियों को न बदर करने ही सुखके जिनके उपयोग करें ती वह उनका बहुत बड़ा अन्तराग होगा। किन्तुकी भी भूषणा न चाहिये कि जो स्थिति माता और अपनेकी है वही मातृभूमि और अपने के पदार्थों की है।

प्रत्येक मनुष्य आत्मा है कि मित्र जर्मन बहुराष्ट्रा है वह परवर वसका मित्रता प्रेम रहता है। रशिये कमजोर होकर जाता है और वह जर्मनियों को बहुत अपने योग्य होने के जाता है। स्थायी सरकार ऐसे जोरों पर बहुराष्ट्रा बना दी है जर्मन स्थायी मुद्रक है वह है कि मित्रों की जर्मनी कमजोर पूर्वजों जर्मनी को बहुत बलीका अधिकार होता चाहिए। जोरों बहुराष्ट्रा बली है इसलिये वह जर्मनी को योग्य होता है। मित्र तरह एक छोटासा जर्मन मित्र

एक कठिना, हाथ है, कसी तरह देण नह एक कठा बा
 और नह पर सब देखा विधीय है। नहि कठिना रूप
 पर पर घुसे देखोके कमाना जीग मिळकर हमका रई को
 बांधी बसुधोवर-सपना, अधिकार, बचाई, जो बसुधोवर
 अपराध एक पर पर हमका करमेके, हाथके, बचाई है।
 सहीके सुभाव विष्णु-बचने कृष्ण, राम, लक्ष्मण हह बचन
 है। वह छिड़ करमेके पकड़ा बसुधोवर नही है। हह, कठिना
 नहि कठिना कठिना जीग नही बहने है। कठिना कठिना
 कारमार कठिना कठिना हथिये नही है, कठिना कठिना
 तराही तराही कठिना कठिना कठिना नही कठिना कठिना
 कठिना कठिना कठिना कठिना कठिना कठिना कठिना
 कठिना कठिना कठिना कठिना कठिना कठिना कठिना
 कठिना कठिना कठिना कठिना कठिना कठिना कठिना

[illegible]

महर्षि अपनी माताका रूप पीता है इसलिये इसका नाम मातृवर गुरुत्व प्राप्त रहता है। मनुष्य अपनी मातृभूमि के होनेकाले अनाम, अन्ध, अन्ध मूक इसलिये कहते हैं और उन बने हैं। इसलिये इसका अपनी मातृभूमि पर प्रेम रहता है। इसलिये कवि विश्वरूप मातृभूमि के नाम बने हैं, जो तरह की माता के नाम कहते हैं और गुरुत्व को स्थापित करते हैं।

पाश्र्वों की वह बात सुना चुक। वह जानै की भावस्थवत्ता नहीं है कि माता और मातृभूमि के विश्व में किसे हुए कल्प है। कि वेम जपजाले है। कल्पके मित दिव रज में जेवत येक है। मातृदेवताके कल्प में जेवत जेवत करता है। कि कल्प किसी कल्पमें हो नहीं सकता। माता क्या है। कल्प प्रेम की मूर्ति है। कल्पके जेवको कल्प किसी बात की कल्प ही नहीं है। कल्प प्रेम वास्तवमें अनुपम है। यदि मातृ प्रेमकी कोई कल्प देनी ही हो तो वह मातृ-प्रेमकी ही कल्प है, वही नहीं।

भूमे मातृविधिं मा भद्रया सुवर्तिष्ठितम् ॥

(अथर्व ११।१।६३)

हे (मातः भूमे) मातृभूमि । मुझे अन्नमन्त्र अन्तर्भावित
पुत्र कर ^१ अर्थात् मेरा सब प्रभारसे कल्याण कर । इसमें
“ भूमे मातः ” आदि पद्योंसे मातृभूमि की योग्यता जान
सकते हैं । इसी तरह—

सा नो भूमिः पूर्वपथे दृष्टा ॥ १ ॥

सा नो भूमिर्गोप्यन्ते दृष्टावु ॥ ४ ॥

सा नो भूमिर्भूरिबारा पथो दृष्टावु ॥ ५ ॥

सा नो भूम्यर्चयन्तृर्धमाणा ॥ १३ ॥

सा नो भूमिरास्त्रावु वदन्तं कामवाग्मते ॥ ४ ॥

सा नो भूमिः प्रसुतायां सप्तत्वाप्तसप्तमं मा पृथिवी
कृत्योपु ॥ ४१ ॥

(अथर्ववेद १२।१)

“ यह हमारी मातृभूमि हमें अपूर्व पथ प्रदर्श देवे । यह
हमारी भूमि हमें पार्थिव और अन्न देवे । यह हमारी भूमि हमें
बहुत दृष्ट देवे । यह हमारी भूमि हमारा अभय करे । यह
हमारी भूमि हमारी इच्छासुख प्रदान देवे । यह हमारी भूमि
हमारे अन्नप्राप्तियों को दूर करे और सुख उत्पन्न करे । ”

निकले सर्वशक्ति ध्यान रखनेसे निश्चित होना कि इन सब
शक्तियों में भूमि शब्द मातृभूमि के अर्थसे अना है ।

“ मातृभूमि हमारे लिये वह करे वह करे आदि रचना
काम्यमन्त्र अन्तर्भावित है । इसका अर्थ वास्तवमें यह है कि मातृ
भूमि की दृष्टसे हमारे हाथसे वह कार्य हावे या वह कार्य हो-
कर वह फल मिले । “ क्योंकि प्रत्येक काममें इस तरह की
अर्थकप्रति वाचता रहती है । इन सब प्राचनार्थोंका सांख्यिक
अर्थ निम्न रहता है और अन्तर्भाव मात्र निम्न रहता है । इस
विषयमें वह मन्त्रमन्त्र मन्त्र देखिये—

सा नो भूमिर्विद्वन्मता माता पुत्राव मे पत्न्या ॥ १ ॥

(अथर्ववेद १२।१)

“ ॥ हमारी मातृभूमि मुझे अर्थात् अन्न पुत्रको बहुत
दृष्ट देवे । यह मन्त्र भित्तिका अन्तर्भावित है और आन्तरिक
है देखिये । माता और पुत्रका अर्थक दृष्ट पत्नीसे ही प्राप्त होता
है । मातृभूमि दृष्ट पुत्र होता है वह सब जानते हैं । मातृभूमि
दृष्ट इन सब अर्थों से इसलिये नाम हमारी माता है । भूमि का
अन्तर्भाव रत्न आदि दृष्ट हमें मिलता है, इसलिये यह हमारी

माता है । यह सर्वशक्तिध्यान और धीमा अन्तर्भाव है । इसका
अर्थक काही समय उपलब्ध मन्त्रका जो माय अर्थात् मेरी
माता मुझे ही दृष्ट देवे ^१ और इसी तरहसे सर्वशक्ति हमारी
मातृभूमि में पदा होनेवाले उपयोगक पदार्थ हमें हैं । भित्तिका और
दृष्टा कोई अर्थ हमारे दूर न ले जावे । आदि अर्थका या
माय है वह बहुत अच्छा है और योग्य है । इस तरह
पाठकपद्योंसे अन्तर्भाव पान लेना चाहिये ।

अब कोई यह भी कह सकता है कि “ भूमि या हमारी
भूमि ” आदि शब्दोंसे “ हमारी मातृभूमि ” यह आन्तरिक
वर्तमान निश्चित करता और इस बातका निम्न निम्न लिये हम यह
भी नहीं कह सकते कि मातृभूमि के कारण हमारे सर्वशक्तियोंमें
पूर्वपथसे अर्थक दिशा हुआ है । यह सर्वशक्ति योग्य है और
उपलब्ध निश्चित करने लिये हम यह मन्त्र पाठकोंके सम्मुख रखते
हैं—

सा नो भूमिर्विद्वन्मता माता पुत्राव मे पत्न्या ॥

(अथर्व १२।१।६)

“ यह हमारी मातृभूमि हमारे अन्न पुत्रमें (अन्तर्भावित)
लेख और रत्न रत्न । ”

इसमें “ अन्न पुत्र ” का अर्थ और हमारी भूमि
का अर्थ एवम् है । हमारे अन्न पुत्रमें अर्थक “ हमारी
मातृभूमि में लेख और रत्न की बात है । हमारी मातृ-
भूमि में या हमारे मातृ में आदि शब्दोंका अर्थ नहीं
है कि हम मातृ में या हमारे रत्नप्राप्तियों में और
यह मातृ प्राचन निश्चित कार्यवाही मात्र करता है । परन्तु
“ हम मातृ में ” या रत्नप्राप्तियों में लेख और रत्न रत्न
करने से यह कहना कि “ हमारे मातृ में या हमारी मातृभूमि
में लेख और रत्न रत्न अर्थक अन्न प्रदान करता है ।
इससे दृष्टि है “ मातृभूमि हमारा मातृ, हमारा रत्न ” आदि
शब्दों में भित्तिका मात्र रत्न प्राप्त हुआ है ।

अब इसी मन्त्र के अन्तर्भाव (हमारे अन्तर्भाव मातृमें)
उपलब्ध और भी दृष्ट अर्थक अन्न प्रदान करते हैं । इसका
अर्थ निश्चित करना चाहिये । मातृभूमि की दृष्टि से मातृ निश्चित
दृष्टा में होना चाहिये यह हम अन्तर्भाव से दृष्ट है । हम अन्तर्भाव
से सुनिश्चित होता है कि मातृभूमि को मातृ आना ही
चाहिये कि हमारा मातृभूमि मातृ में अन्न हो । अन्तर्भाव
सुनिश्चित अर्थक अन्न अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव है । अन्तर्भाव

“ पापी कोयोंका सुद बंद करो और नदी घाट कुत्तर फेंको । ’ इसी तरह तीवरे प्रकारके सुखोंका क्रम है । उस सुखोंका विषय नहीं नदी बतलाते । केवल ११ में कायिके अठारें सुखोंका एक संज्ञा यहाँ दत्त है और बाकीके प्राण और मज्जाबन्धके सुखोंका वर्णन विस्तारमयसे छोड़ देते हैं ।

उत्तमाह पुष्पमिदं ज्ञोति सम्पत्ते ।

सर्वा अस्मिन्नेवा गावो गोष्ठ इवास्ते ॥ १२ ॥

(अथर्व ११।६)

“ इसलिये इस (पुष्प) पुष्पको ज्ञात करते हैं । क्योंकि जिस तरह कर्में अपने गोचनेकी वषाहमें रहती हैं, उसी तरह सब देवताएँ इसीके आश्रयमें रहती हैं । ’ इस मज्जाकालके सुखके अर्थका सूत्र देखो—

तेषां सर्वेषामीक्षाया वसिष्ठः संवदन्त्ये मित्रा देवदत्ता
पुष्पम् इमं संश्रामं संश्रित्य यथा कोऽपि निशिदिन्यहः ॥ १३ ॥

(अथर्व ११।७)

“ मित्रो ! तैसाही करो उठो । इस पुष्पमें जीतनेके बाद अपने अपने देवकों कामों । ’ उसी तरह—

सहस्रकुम्भया सेठामामिनी सेषा समसे यथामाम् ।

निविदा ककुत्रा कृपा ॥ १५ ॥ (अथर्व ११।१०)

“ पशुओं केमध्यमें इसकी सुरसे पुद्गलमें पतें । इस तरह सब वर्णन अन्त्यात्मज्ञानके बाद कई बार आ चुका है ।

इस अन्त्यात्मक कल्याणकी व्याख्या आया हुआ नहीं वह समझे क्योंकि वह तीन अथवा इसी तरह आया है । राम और अतुलके वषाहके समान भी नहीं हुआ है । इसलिये “ अन्त्यात्मक के बाद स्वात्मज्ञानके लिये पुद्गल होमा स्वात्मा मिदं है । इस सब सुखोंके बाद वैदिक राष्ट्रीय आया हुआ है । इससे वह अत्यंत कहते हैं कि जिस सुखके बारेमें वह ज्ञान सिखा गया है वह मूल शास्त्रमें राष्ट्रीय महत्त्व है क्योंकि वह पुद्गलके समान आया हुआ है ।

इस सुखके बारेमें विचार करनेके लिये हमें वही देखना चाहिये कि अन्त्यात्मज्ञान मज्जाकाल अथवा विषयोंका पुद्गल राष्ट्रीय कालके क्या संभव है ।

[१] अन्त्यात्मज्ञान ।

पुद्गल मन अर्थवाद, नाम इतिव और घटीरके सब जगों

को आत्माका आधार है । ये सब नहीं रुकित हैं । इनकी योग्य ज्ञान होना अन्त्यात्मज्ञान कहा जाता है ।

ये सब रुकित हैं हममें हैं । हम निरन्तर कुछ नहीं हैं । हमने अपनी ये नहीं नहीं कावितता हैं । इनको चरनेवाले हम हैं । वह अपनी कविता अन्त्यात्मज्ञानमें मग्न होनी है । अन्त्यात्मज्ञान प्राप्त करनेके पूर्व ही मनुष्य अपनेको सुख और निर्मल समझता है वह वह अन्त्यात्मज्ञान प्राप्त करनेपर स्वामी सुख और समर्थ समझने लगे तो उनमें कोई आश्चर्य नहीं है । इसलिये रामचन्द्रजी को अपनेको देवताम और परलोक समझने के ही अन्त्यात्मज्ञान प्राप्त होनेपर है वही भी अपने अन्तः समझने लगे और अपने पुद्गल बंधे विपरीत है वही भी अपने अन्तः अन्तः वचने में समर्थ समझने लगे । वह जल अन्त्यात्मज्ञान में प्राप्त हो सकती है ।

[२] मज्जाज्ञान ।

मिथुनकी सन्निवर्तनरुद्धि का अस्तित्व स्थिर और नर सब में एकता है । इस ज्ञान से सब संहार की तरह देखने की दृष्टि बन्द जाती है ।

जैसे अपने अन्तर की कविता का और अथवा की कविता ज्ञान रहता है, इसलिये जैसे जीवन क्रम करते सब जग का मोह का होना अनन्तमय है । वह अपने अन्तः कोने रक्षा करता है और कुछ कोयों का नाश करता है । वह सब का अन्तरी तरह पाक्य करके अन्तर्गत रक्षित रहता है । अथवा की ओर एकता की वस्तु दृष्टि वस्तु होती है, इसलिये सब की ओर वाक्यवचनों का मोह नहीं होता नर व वैदिक का बोध नहीं होता या देवदत्तके कारण वह अपने अन्तः का कोश नहीं करता ।

इसके बिना इस ज्ञानसे पुद्गल एक अज्ञ हो सकता है । वह है कि इन्हींपर मिलने पुद्गल स्वामी के लिये होते हैं, वे नहीं होमें और समझे जिन वस्तुओं की वह नहीं करते हैं वे ही पशुधर्म । क्योंकि मज्जाज्ञान का कारण वस्तु दृष्टि नहीं हो जाती है । और फिर वह स्वामी के कारण वस्तुओं को वस्तुतः करवाते, वह बात अनन्तमय है । अथवा के वस्तुओं की गुण देवदत्त का नाश करने के लिये ही वस्तु ही तत्त्वतः स्वामी के कारण निश्चयी । आजकल जिन तरह स्वामी के महान् होटी है वस्तुतः रम्पु का मिथुनरूप लड़नेके लिये संघटित राष्ट्रीय अन्तः

ये रहे हैं, केवल अपनी येनामें तोये हैं इसलिये हममें को यह देना और दूसरों की सज्जति कम करनेके को राष्ट्रों के ध्मात्मसंस्कार कम हो रहे हैं। यदि हर एक देशमें आन्तरिक झग और प्रक्षोभ हो जाये तो वे एक वेद ही जायेगे । राष्ट्र की को क्षात्रपति के वह बहुत बड़ी महाकाय है उस भक्ति को प्रजापति मनुष्य ही अगली तरह समझ सकता है । प्रजापतिमन स्पर्श कोय एक राष्ट्रीय क्षात्रपति का रूपकोय करके जगत् में जगद्गुरु की पापी सारज के समते हैं । इस एक शक्ति का विचार करनेसे मन्त्र होना कि पहले प्रजापति प्राप्त करके छिड़ करके जगदी काहिने और उसके बाद राष्ट्रीय महाकायका जगत्का काम काहिने । यही वेदी की भाषा है जो वही उनकी कर्तव्य दुर्योधनको बलकी है । यह वह हमारे वैदिक जन्म है । परन्तु यह एक एक जगत् को राष्ट्रीय कर्मों बलमई । वह बात बचने जतिप्राचीन काय में मरतकर्मों काही की लपति वह बादमें छुट हो गई और फिर वह यही की छुट नहीं हुई । वह बात फिर छुट करनेके लिये हमें स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिये और वह बात जगत् में प्रकटित करनेपर जगत् में छिंटि रखनेका महाकाय उसको बल-कामा चाहिये ।

इस तरह प्रजापति बुद्धि पूर्ण यही जो चाहिये और उसका महत्त्व क्या है वह साक्षात् बलकाय है । वस्तुमें वह बात निस्तुत करके लिखनी थी । परन्तु बैठा करनेके लिये जगद्गुरु की है । इसलिये वह निजम काशिको दिना है । अब इसके लिये वैदिक राष्ट्रीय बलिष्ठा स्वरूप बलमला है ।

वर्तमानके लक्षमें मनुष्यके वैदिक राष्ट्रपति के ऊपरमें धाम्म्य बलिष्ठा है के कि- जितनी बली आनन्दक है जगदी की है । उसके बावकी की मन्त्र ही कामना कि एक राष्ट्रपतिम निज राष्ट्रपति की दृष्टि रिक्तता महत्त्व है । अब हमें वह देना है कि इस राष्ट्रपतिम मंत्र की काम मरतकर्मों काही का देव करके है । इसलिये प्रथम पहला ही मंत्र देना चाहिये ।

नार्वं ह इत्तुमं दीक्षा सरो महाकायः पुत्रिर्षी
चारमिति ।

मा सो भूतद्व अन्तर पान्थुर्षी कोर्क पुत्रिर्षी मा
ह्मोपुष्ट ।

(अ १११११)

सर्व वीक्षण जगत् जगत्ता सर्व काम और वरा
५ (अ. प्र. भा. की ११)

अ वि गुण मनुष्यमि को जगत् करके हैं । यह हमारे भूत भक्ति-पन्थ जगत् वर्तमान भिन्नभिन्न पञ्चम कामों की दृष्टि मनुष्यमि हमें कार्य करनेके लिये निस्तुत स्थान देव ।

इस मंत्रके पहले काये भागमें वह सच तीरते बलमला है कि मनुष्यमि की काम कोनसे लीम धाम्म्य कर सकत है । वह सब कोनके बाद रखने कायक बात है । मर मनुष्य जगत् राष्ट्रपति पारव नहीं कर सकते और बलमला पोषण ही कर सकते हैं । जो लीम विषय गुणोंसे युक्त है, वे ही राष्ट्र की सज्जति कर सकते हैं । दूसरे लीम विषय सज्जति लिये कायक बात है । वह बात पहले मन्त्र स्वरूप है और उसके बादको देवना चाहिये ।

सर्वप्रथम राष्ट्रपति गुण लक्ष है । जिन मनुष्योंमें सर्व विषय सज्ज-पानम आत्मनर्भस करने करने की उत्तरता है वे ही राष्ट्रपति । जगत् कर सकते हैं । जिनमें उत्तरता है जगत् को सज्ज अन्तर पञ्चम करके है वे ही स्वाध्याय उत्तर कर सकते हैं । लक्ष्य जगत् की लक्ष उत्तर है । लक्ष्य का मन्त्र सज्ज मन्त्रार्थक और उसके अधिक महत्त्वका होता है । इस विचारसे ही विद होता है कि वैदिक राष्ट्रपतिमें काय आनन्द महत्त्व गुण है । अब वह बात सब पर प्रकट है कि उत्तरता क्या उत्तरके निस्तुत प्रजापति-पान रामा रामाके विद्वत् काममें का सकती है । आनन्द विषय मा पा सकते हैं । उसके व्यक्तिगत लक्ष सामाजिक लक्ष की राष्ट्रपति काहिने हो सकते हैं । विदवादी व्यक्तिगत लक्षका पान करनेमें जगत् के मन्त्र कामों की लक्ष्य में अधिक उत्तर एवं लक्ष है किन्तु वे सामाजिक और राष्ट्रपति पान जगत् मनुष्याधिक लक्षका पान नहीं कर सकत । सामुदायिक लक्षका पान के जगत् ही वे जगत्पति का काम करके सकता है । यदि मा । जगत् काय कि सामुदायिक लक्ष क्या है और जगत् पान कि जगत् हो जगत् है पान ही जगत् रीतिसे जगत् पान करे, तो केवल ही गुण के ही जगत् मन्त्र कर्तव्य होता ।

जगत् के जगत् गुण पान जगत् पोषण है । वह भी जगत् के जगत् महत्त्व है और जगत् का पान लक्ष्य है वह होता है । जो मनुष्य जगत् पान नहीं करने और जगत् का पान नीचा नहीं है जगत् जगत् जगत् है । मन्त्र जगत् है । वे जगत् जगत् ही जगत् की बलि जगत् जगत्

ही धन देकर सबका परामर्श हो।

मंत्रमें 'अ-उ-वाच' 'अ' है। यह अतीव महत्त्वका है। यान् मेहोको प्रयानता ही 'अ' वा 'ए' एक समाजके समुच्चो का दूसरे समाजके विरोध होने लगेगा। एक समाज दूसरे को प्रतिपक्ष करने लगेगा। दूसरोंको मित्रावरण करने ही अतिविराद होनेका प्रकट करने समान। एक हीजन आतिथिमें सेनापत्य होता है। आतिथिमें सबके विरोध आदि बातें इस सम्बन्धे बतलाई जाती हैं। परस्पर बाधा करने ही यह नाम 'संवाच' है। संवाचका अर्थ है आपसी युद्ध। जब युद्ध होने लगेते हैं तब राष्ट्रकी शक्ति खत्म होती है। जब एक समाज दूसरे समाजको बाधा पहुँचाता है एक कति जब दूसरी शक्तिके कष्ट पहुँचाता समर्थ है तब राष्ट्र की शक्ति होती है। इसीमें राष्ट्रहितको राष्ट्रमर्त्यता—आतिथि भ्रमण—समाजमें एकताका होना परम अनिवार्य है। नही वता कल्पनेके डेढ़ मंत्रमें कहा है—

वक्ष्या-मात्रवाक्यं मन्त्रतः बहु कार्यवाचम् ।

'यिष मातृभूमिके मनुष्योर्मि बहुत विदेशभाषा रहता है।' यही मातृभूमि अपने सुपुत्रोंको उत्तम चमके से चलाती है। परन्तु यिष मृगिक जीव आत्मरक्षण के लिये कहते हैं बहोको जगता आधा पेट रहता है। कोई कंका हो। कोई झाड़ी हो कोई भूक ने वा छाया के हृदय हो। इसका आशय कि वे जो कुछ करें मातृभूमिके लिये करें। अपने गुणगणिकके चरित्रन उन्हें गुणगणिकों का मूल गुणवाचक या बखाना चाहिये। कुछ लोग गीतें ही और कुछ वाक्यान्त ही तो दोनों मिश्रण अवश्य ही आवश्यक दोनोंको अपनी शक्तियोंका मेल करना चाहिये और उन्हें मातृभूमिके वैशिष्ट्य बखाना देना चाहिये। सभी राष्ट्रकी शक्ति होती। मनुष्यमें जो (शक्ति) उत्पन्न (कर्म) समता, धीर (प्रवृत्ति) शीघ्रता रहती है, वह एक दूसरेका वात परस्पर मित्र बनी रहती है। एक मनुष्य यदि किसी एक कठमे ऊँचा है तो वह दूसरी शक्तियों का भी होता है। वहाँ विदेश का भी ऊँचा हुआ तो शक्तियों उत्पन्न वहाँ कम हो जाता है। कोई शक्तिशाली गृहस्थान हो तो ज्ञान में उत्पन्न इनका ज्ञान बँटता है। विष्णु मनुष्यका वाक् प्रकट करने का शक्तिशाली है। इसी मनुष्य ज्ञानके चरित्रक और एकत्र एकत्र कठमे एक दूसरे के विरुद्ध आते जाते

अपनी उत्पत्ति करें।

मानवोद्यम कर्तव्य नहीं है कि अनेक मनोंके रहते भी अनेक भावोंके अपना मार्ग निकालें। जो मनुष्य कर्ममें समर्थ है उसीको मानव कहते हैं। मनुष्य कर्मयोग्य अनेक उत्पन्न नहीं करता वह शीघ्र विचार कर सबका काम करता है और उत्पत्तिकामार्गमें जाने जाता है। जो अपना परिशिष्टिका विचार नहीं करते, अपनी शक्तिके लिए प्रयत्न नहीं करते किन्तु आपसके झगड़ ही बढाते हैं, वे दो वैवाक्य हमेशा ही मानव या मनुष्य नहीं कहें जा सकते।

इस मन्त्रा उपदेश हम लोगोंकी वर्तमान दशा में अवश्य तरह उपयोगी हो सकता है। उपर्युक्त मंत्रोंके पढ़नेसे ज्ञात होता कि इस वैदिक राष्ट्रकीवर्तमान दशाविषयमें एकता बढाकर सिद्ध जो कुछ करना चाहता है वह दिया गया है। जब हम अपने तो सबका उपदेश करें चाहें तो न करें। यदि हम उससे ऊँचा न कहें तो हममें वर्तमानका क्या शक्ति शक्ति है अनुमानिकीय। एकदम उपदेश गुण केवल प्रत्येकको काम के लिये सिद्धि हमारे देशके प्रति हमारा प्रयत्नका जाता कि प्रचार दे। इस अर्थको जानकर उसे अपने अपने मनमें कायम की रक्खना होना। मित्रमित्रित मन्त्रों का अर्थ—
सन्तानात्मिकता का मन्त्र मन्त्रात्मक विमर्श शिष्टाचार—
मातृभूमि। उसके प्रतिपक्ष में मानव के लिये उचित मनुष्य मन्त्रों का उचित रूपों शक्तिमित्रितमन्त्र १५५

१५५ मातृभूमि। ठीके उत्पन्न हुए हम सब मनुष्य गुणपर ही पूरे हैं। यही शिष्टाचार और मातृभूमिका वाच्य करती है। हम सभी प्रकारके मनुष्य पर ही हैं। हम मानवोंका प्रतिपक्ष उपदेशका लूने अपनी शक्तिके तेज और अपूर्व देता है।

इस मन्त्रमें सर्वप्रथम नहीं बतलाया गया है कि हम मनुष्य भूमात्मन [मनु-आत्मन] हैं। उत्पन्न हुए हैं और गुणपर ही पूरित करते हैं। वह भाव स्पष्ट रूप में अतिरिक्त है। प्रत्येक राष्ट्रमन्त्र अपने मनमें नहीं मान सकता है। यदि नहीं रक्खता तो उसे अवश्य ही रक्खना चाहिये। सभी वह राष्ट्रकी उच्च शक्ति बच बच कर अपने मातृभूमि हमारी मानविकता का आत्मिक धारा नहीं वास्तविक मान्य है। यह अनुभव शिष्टाचार अतिरिक्त हुआ कठनीय वह मानवोंके वह मन्त्र मातृभूमिके देना करेगा।

यक्ष्मरोगनाशन ।

[२]

(अग्निः—मृगुः । देवता—अग्निः, मन्त्रोक्ताः २१-३३, मृत्युः)

नृद्धमा रोह न ते अत्र लोह इहं सीसं मागधर्यं तु एहि ।

यो गोपु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्व साकर्मधराह परं हि ॥१॥

अपयंसदुःश्रुताभ्यां करोषानुकरणे च । यक्ष्मं च सर्वं तेनो मृत्यु च निरञ्जामसि ॥२॥

नितितो मृत्यु निर्क्षिति निररां तेमञ्जामसि ।

यो नो इष्टि तमद्वयय अकृष्याद् यक्ष्मं विष्मस्वमुं ते प्र सुवामसि ॥३॥

यद्यग्निः कृष्याद् यदि वा अग्न इम गोष्ठ प्रविषेष्टान्योक्ताः ।

तं मापज्य कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गन्धस्वप्सुपदोऽप्युघ्नीन् ॥४॥

अर्थ— (नहं आरोह) महार नह (त नह लोक न) हरे किं नहं स्थान नही है । (इह सीसं त मागधर्यं) नह सीस वेग अमय है । (एहि) तु इधर जा । (यः गोपु यक्ष्मः) जो गौरीमें छबरोम है (पुरुषेषु यक्ष्मः) जो पुरुषोंमें रोग है (तेन साकर्म त्वं अपयंस परा इहि) उस रोगने साथ तू नीचेकी ओरसे जा ॥ १ ॥

(अपयंस - दुःश्रुताभ्यां तेन कर्म अनुकरणे च) पापी और दुष्टके साथ उस कृति और अनुकरणके द्वारा (यक्ष्मं सर्वं मृत्यु च) सब रोग का मृत्युको जी (इतः निःजामसि) यहाँसे दूर करते हैं ॥ २ ॥

(इष्टि मृत्यु निः) यहाँसे मृत्युको (अत्रि निः अग्निः निः अत्रामसि) दू कर्म कर छत्रको दूर भाग देते हैं । ते अत्रि ! (य नः इष्टि) जो हमारा हृत् करता है (य अग्निः) उसको खां अर्थात् उलका भाग कर । (य न हिंसा) निरका हम हृत् करते हैं (त न ते प्रसुवामः) उलको तरे पाव जा दूत है ॥ ३ ॥

(याद् अत्राद् आगः) यदि अग्नि आनेवाला आगि कर (य द्वा अग्नि—लोका अग्राः) यदि परकारसे रहित अग्रा—हिंसक— (इम गोष्ठ प्रविषेष्ट) इस गोष्ठ कर्म प्रविष्ट हुआ हो (तं मापज्यं कृत्वा) उलके साथ—घी—पुष्ट बनाकर (दूरं अहिणोमि) दूर भाग दवा हूं (स गन्धस्वप्सुपदोऽप्युघ्नीन्) वह लोकोमें रहनेवाले आगकोके पाव कोने ॥ ४ ॥

आचार्य नहं रोम मनुष्योंके रक्तजले न रहे । चिकी दूरके स्थानपर वह पक्ष जाय। जो रोग मनुष्यों और पशुओंमें हो वह परम दूर होवे । सब मनुष्य और पशु मोगम और रक्तम हो ॥ १ ॥

सब रोग अगियों और दुराचारियोंके साथ दूर भक्त जायें । वैदी ही कृति और अनुकृति होवे कि निरसे सब रोग दूर हो चले ॥ २ ॥

यदि मृत्यु दूक दीक्षा और मृत्यु दूर हो । हम सब इनका हृत् करते हैं हमजिसे वे हमारे पास न रहें ॥ ३ ॥
अत्राह अग्नि यदि चिकन चले प्रविष्ट हुआ हो अर्थात् यदि चिकन पर चिकनी मृत्यु दूर हो तो वही अत्राह अर्थात् चिकन चलाए उस चिकन वह मनुष्य दूर जाने अर्थात् मृत्यु । कर यहाँ न आवे ॥ ४ ॥

अथैभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोम्भ्यो अथैभ्यस्त्वा ।

निःकम्पाद् नुदामासि या अग्निर्जीवितपोर्षनः

印光集

यस्मिन् देवा अमुंजन् यस्मिन् मनुष्या उत । तस्मिन् घृतास्तावौ मृत्वा स्वर्गमे दिवः ॥१०॥

सर्विदो अथ आहुत म नो मास्पकमीः । अत्रैव दीदिति यवि ज्याक् ष स्रि ह्य ॥ १८॥

सीसं मद्भुवं नृब मृद्भुवमपौ सकेसुके च यत् । अयो अय्या रामायौ क्षीप्रेकिमुपवर्षे ॥१५॥

सीसे मल सादयित्वा क्षीपाक्षिप्रपरीण ।

अध्यामसिक्त्यां भृष्टा शुद्धा भवत युद्धियाः

॥ ३० ॥ (८)

पर मृत्योः अनु परेऽङ्गि पन्थां यस्तं एव इतरो देवयानात् ।

चक्षुष्मते शृण्वते ते प्रवीमीहमे वीथ सुहर्षो भवन्तु

॥ ३३ ॥

धर्म (वः सोपयोगः) यतिः सः कर्माहं) सो जीवनाहं कर्माहं यतिः हे वसन्ते । अन्तेऽपि पुनरेव यो
 योऽपि । सः यत्नः यत्नो गोर्वा गोर्वा योर्वा (विः पुनराहं) विः यत्नः योर्वा यत्नः योर्वा ॥ १४ ॥

है अथ । (परिमल देखा मनुष्य) जिसमें देव कुछ हुए, (उस वस्त्र मनुष्य) और जिसमें मनुष्य
 भी कुछ हुए, (यस्मिन् मनुष्यः सदा) उसमें मृत-बाहुति देकर कुछ होकर [सर्व दिवस] वस्त्र
 पर ॥ १७ ॥

(कष्टदुःख ज्ञाने ।) आहुति सिद्धे बुद्धि आभिः । (समिद्ध आ वा मा आभि वपकनी ।) मरीच होकर दू हस्ता यत्किं मय मय कर । (मय दूय आभि दीरिधि) वक्षं पुत्पानमै मकरजिह्व हो । (दूयं म्योक् हजे) दूयंमे शिखर ल यत्किं ॥ १८ ॥

(यह सीधे मद्धर्म) को सीधेमें क्या हो (यह मद्धर्म) वही कथा थीर हो [सकमुके मंत्री] विष्णु
महिमें उपकर क्या है (यसो मन्त्री रामावां उपवर्ति सीधेमें) थीर हो मेहमें कहे रंगवाकोमें क्या विर लखने विर
मेमें क्या है उप मन्त्री कुरु करो ॥ १२ ॥

(श्रीसे मङ्ग वाङ्मोक्ष) श्रीसे मङ्ग वाङ्मोक्ष (उपर्युक्त श्रीसे मङ्ग) शिराभर शिर रत्नकर, (वसिष्ठा)
 वसिष्ठा मुखा) वसिष्ठा मुखा (वसिष्ठा : वसिष्ठा) वसिष्ठा और मुखा हो जायो ॥ २० ॥

हे मुन्नी ! (ऐश्वर्यामय हजरा का ठंठ) ऐश्वर्यामये भिन्न को ठेठा वह मान है कस (वरं पन्नां वसुधा इति)
 पावे मर्त्यो ह्य वसा का । (अमुष्मन्ते अमृतं त मयीमि) नांकावले भीर सुखमेवले दुर्गं ये वह वसुधा हूँ । (इमे रोम
 वहा मयम्) हे भीर वसुधा हो ॥ २१ ॥ (अ. १ ॥ १३६, १३७)

भाषार्थ—इसके प्रेतपाहक जगिणों का शूर शरणा गौरव है ॥ ६५ ॥

वसुधै कुरुते कुलम् । इति श्रद्धां नमस्कृत्य । एवं चरन् वसुधै कुरुते । इत्येवं प्रमाणं तु यत्

वसुधै कुरुते कुलम् । इति श्रद्धां नमस्कृत्य । एवं चरन् वसुधै कुरुते । इत्येवं प्रमाणं तु यत्

बड़की बामि प्रजाई होकर बहार के फलर से आवे । कपरी मरकबाने जमी होकर रहे । कपरीक प्रजाई प्रसिद्ध रहे ।

अपेक्षित मूल्य क्या हो वह स्थान कुछ और परिवर्तन करना चाहिये ॥ ११-१ ॥

मनु हम सबसे बड़ा रहे, हमारे पास न आज। हमारे कंधाओं पर हनुमान और श्रीरोच तथा दीर्घायी बनें ॥ १॥

इमे क्षीवा वि मुतेरावबृद्धमर्धु मद्रा वेवहृतिर्नो अय ।
 प्राञ्चो अगाम नृतये हताय सुषीरोओ विदधमा बदेम ॥२२॥
 इमं जीवेम्यः परिधि दधामि मैपा जु गादपरो अर्धमेतम् ।
 छतं जीवन्त छरदः पुरुषीस्तिरो मृत्यु दधता पर्वतेन ॥२३॥
 आ रौहतायुर्जरसं वृणाना अउपूर्व यतमाना यति स्य ।
 तान् मुस्त्वष्टा सुबनिमा सुबोपाः सवमायुर्नयतु जीवनाम ॥२४॥
 यथाहाम्यस्तुपूर्व मरन्ति यथर्ध्व ऋतुभिर्नन्ति साकम् ।
 यथा न पूर्वमपरो ब्रह्मस्येवा चातुरायूपि कल्पयैषाम् ॥२५॥

अर्थ—(इमे क्षीवाः मृतैः आ बृहन्) ये जीवित कोय मरे हुनोछे भिरे हुए हैं । (वा वेवहृतिः अय धया अमृत) हमारा ईश्वरवाता आत्म कल्याणमयी हो गयी । (नृतये हताय धाम्नाः अगाम) नृत्य और हास्यके छिपे हम सब आपि बने और हम (सुषीराः निर्वर्ण आ बदेम) उन्नत और होकर नृत्यका विचार करेंगे ॥ २२ ॥ (अ. १ ११८१)

(जीवेम्यः इमं परिधि दधामि) जीवोंके किये मैं यह मरणा देता हूँ । (एपां अपरः एतं अर्धं मा जु गाद) हमसेछे कोई एक भी इस अर्धके पार करी मत जाने । (छत छरदः पुरुषीः जीवन्तः) अतिदीर्घ छी वयोमय जीवन्त अनुमय करते हुए (पर्वतेन मृत्यु तिरो वरतां) पर्वतके द्वारा मृत्युको परे रखें ॥ २३ ॥ (अ. १ ११८२; पञ्च ३५१५)

(अरधं वृणानाः आयाः आरोहत) वृद्धावस्थाका स्वीकार करते हुए दीर्घ आयुको माग्न करो । [अनुपूर्व यतमानाः यति स्य] पहले कीछे दूसरा छिपि तक प्रयत्न करता रहे यत्नमें रहे । [सुबनिमा सुबोपाः वृद्धा] उन्नत अग्रमवाका वृद्धावस्थाका लक्ष्य [तान् वा जीवनाम अर्धं आयुः वयतु] आप सबको दीर्घजीवनके छिपे अपूर्ण आयुतक के जाने ॥ २४ ॥ [अ. १०१८१९]

[यथा ब्रह्मवि अनुपूर्व मरन्ति] जैसे दिन वृद्धके पीछे दृष्टा देते जाते हैं । [यथा कतवाः ऋतुभिः प्राकं वन्ति] जैसे ऋतु ऋतुओंके व्याप कछते हैं । [यथा पूर्वं अपरं न ब्रह्मवि] वैद्या पहिलेको वृद्धा नहीं छोड़ता है वाता । [एवा एपां वार्युपि कल्पय] इसकी आयुकी योजना कर ॥ २५ ॥ [अ. १ ११८५]

धामार्थ—ब्रह्मा जो ओप व्यभिच है न पारों ओरछे मुठोछे भिरे है अर्थात् सबके पारों और मृत बन हैं । हम ईश्वरवाता काके कल्याण प्राप्त करें । हम हास्यमें और नृत्यमें अपना योग्य समय व्यतीत करें । हम सब उन्नत और बने और मुदये अपना लक्ष्य प्राप्त करें ॥ २२ ॥

जीवोंके किये आयुव्ययी मरणाः निधित हुई है । कोई मृत्युवृत्त दीर्घजीवनकी मरणा य छोडे अर्थात् अल्पमुमें न मरे । सब कोय अतिदीर्घ आयुतक जीवित रहें और मृत्युको दूर करें ॥ २३ ॥

इयदपरपाओ प्राप्त होकर दीर्घ आयुका स्वीकार करें । एकके पीछे एक अर्थात् हृदये वयस्य तदन बडे बृद्धके पूर्व तदन न मरे । दीर्घ आयुव्ययी प्राप्त करकेछा यत्न प्रयत्न करें । ईश्वर सब माग्न करकेछाओंकी दीर्घायु देवे ॥ २४ ॥

जैसे दिनके पीछे दिन आयुके पीछे आयु और जैसे पहिलेके पीछे दृष्टा जाता है वैसे ही हृदये पीछेछे तदन बडे जायें, हृदोके पूर्व कोई न मरे अर्थात् सब कोय हृद होकर ही पूर्ण आयुकी सम्पत्तिपर मरे ॥ २५ ॥

अश्मन्बती रीपते स रमश्च धीर्यश्च प्र तरता सखायः ।

अथा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीषानुचरेमामि वाञ्छान् ॥१६॥

उचिष्टता प्र तरता सखायोऽश्मन्बती नदी स्पन्दत इयम् ।

अथा जहीत ये असमर्षिवाः शिवान्स्त्रोनानुचरेमामि वाञ्छाम् ॥१७॥

वैद्यदेवी वर्षेष्ट आ रमश्च शुद्धा मन्तः शुष्यः पावकाः ।

अतिक्रामन्तो इरिता पदानि श्रुत हिमाः सर्व्वीरा मदेम ॥१८॥

उदीचीनैः पथिर्मिर्वापुमाक्षिरतिक्रामन्तोऽर्षण् परेमिः ।

त्रिः सप्त कृत् शर्षः परेता मृत्यु प्रत्यौहन् पदुयोपनेन ॥१९॥

अर्थ-[अश्मन्बती रीपते] पत्थरोंवाली नदी वेगधे चक रही है । [अरमश्च] रमझो [धीर्यश्च] धीर्य धारण करो और [सखायः प्रतरता] है मित्रो । है जानो । [ये असन् दुरेवा अनमीषानुचरेमामि वाञ्छान्] जो दुन्दुवारी हैं उनके यहां ही चक हो । [अचरेम अनमीषान् वाञ्छान्] बखि हम पार हो जायेंगे तो भीरोग बन् प्राप्त करेंगे ॥ १६ ॥ [अ० १ ५३१६] पृष्ठ २५५१]

है [सखायः] मित्रो । [उचिष्टत प्रतरत] उठो और तेरो । [इय अश्मन्बती नदी स्पन्दते] वह पत्थरोंवाली नदी वेगधे चक रही है । [ये अश्मिवा अश्मन् अश्म जहीत] जो अशुभ है उनके यहां ही चक हो । [अचरेम अश्म स्त्रोनान् अमि] बखि हम और कामगे तो हम शुभ और सुखदायक अशोकों प्राप्त करेंगे ॥ १७ ॥ [अ० १ ५३१६]

[शुद्धा शुष्य पावकाः मन्तः] शुद्ध वसिष्ठ और मन्त्रहित दोकर [वर्षेष्ट वैद्यदेवी आरमश्च] जलान्ते जिधे विश्वदेवी उपासना आरंभ करो । [इरिता पदानि अतिक्रामन्तः] पापके स्थावकों को दूर करते हुए [सर्व्वीरा मदेम हिमाः मदेम] सब बीरोंके जमेक हम की वर्ष एक आरंभते रहेंगे ॥ १८ ॥

[वापुमत्रिः नदीचीनैः परेमि पथिमिः] वापुमत्रि के ऊपरके श्रेष्ठ जायेंगे [अवराम् अतिक्रामन्तः] नीचोंका जमेक क्रमय करते हुए [परेता मृत्युः शर्षः कृत्] दूर पड़ने के हुए अथि तीन बार छाप भमच उपस्था करके [पदुयोपनेन मृत्यु प्रत्यौहन्] अपने पहिन्नाछले मृत्युको दूर करते रहें ॥ १९ ॥

अथार्थ-यह संसार एक नदीमयी जलरोंवाली नदी है अर्थात् इसमें दुःखोंके और शोकोंके बड़े पावर हैं । इस नदीका जल जो बहा भरी है । इसजिधे इस नदीके पार करनेके छिपे जलधाराके वीरगायुध संयुक्त करवा चाहिये । इस तरह मित्रर वल्ले तो पार कर सकते हैं अपरमें छूट बड़ाजोते तो इस नदीमें बह जायेंगे । का थोले जलके पास धनदायक हैं इन वरको वरें चक है । अब आप देरकर पार हो जाओगे तब वही जलम जलम बीरोंको प्राप्त कर लयेंगे । परंतु यदि जलदायक बीरोंका भार अपने ऊपर लयेंगे तो तुम बच मारके कारण ही दूध जाओगे ॥ १६-१७ ॥

दुष्ट पवित्र और मन्त्रहित वको और ईश्वरकी भक्ति करो । पापके स्थानमें अपना पद न रखा । इस तरह मित्रों वरका आनन्द हो गई ॥ १८ ॥ १८ ॥

प्रायश्चित्तका अभ्यास करके श्रावकी स्थावीरता करेच्छते गोपी रघूक जरीरों मित्रों वनाकर अपने आशान करते हैं । ये हैं । अब उपराने इस पदुको पुत्र करके नीचजीवी बनते हैं ॥ १९ ॥

मुष्णोः पद योपयन्त एत प्राणीय आयुः प्रवृत्तं वर्धना ।

आसीना मृत्यु नुदता सचस्थेऽथ जीनासौ विवथमा वरेम

॥३०॥ [९]

इमा नारीराषिधवाः सुपत्नीराजनेन सर्पिषा सं स्पृष्टन्ताम् ।

अनघसौ अनमीषाः सुरत्ना आ रौहन्तु जनेपो योनिमग्रे

॥३१॥

भ्याकरोमि इषिपाहमेतौ मर्षणा व्यैह कल्पयामि ।

सुधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि क्षीर्वाण्युषा समिमान्सृजामि

॥३२॥

यो नो अग्निः पितरो हस्त्वन्तराविवेष्टामृतो मर्त्येषु ।

मम्यह त परिं गृह्णामि देव मा सो अस्मान् द्विषतु मा वयं तम्

॥३३॥

अपाह्वस्व गार्हपत्यात् क्रुष्यावा प्रेत दक्षिणा ।

म्रियं पितृभ्य आत्मने असम्यः कणुता म्रियम्

॥३४॥

वर्ध- (मुष्णोः पदं योपयन्तः) मृत्युके पांचको दूर करते हुए (एतद् आयुः प्राणीयः प्रवृत्तं वर्धनाः) यह आयु हीन और केह बनाकर बाल्य करते हुए (प्राणीयः मृत्यु नुदता) बाल्यवादि करते हुए मृत्युमें दूर करो । (अथ जीनासः सच स्थे विवथं वाचकम्) और यदि बीबीगे तो अपने बरमे बच्ची पात करोगे ॥ १ ॥ (क. १ ११६१२)

(इमा नारीः सुपत्नीः कविधवाः) ये किना उत्तम धर्मपरिवर्ती बनें बार कभी विधवा न बनें । (अनघ न घर्षिणा संस्पृष्टन्ताम्) तथा अजय और युव क्षीरको लगावे (अथ अनमीषाः अजयनः सुरत्नाः) रोगरहित अश्रुरहित होकर उत्तम रखीये युक्त हों । ऐसी (अनघाः अमे योनिं गमोहन्तु) क्षीरां प्रथम अपने बरमे डीरे स्वावपर करें ॥ ३१ ॥

[अहं एतौ इषिपा व्याकरोमि] मैं हूँ दोनोंको हमिले विधेय उचल करता हूँ । [मर्षणा बर्धं विस्मययामि] क्षान-
धे मैं इसकी विधेय कल्पय करता हूँ । [पितृभ्या अजरां स्वधां कृणोमि] पितरोंके क्षिमे मैं अविवाही स्वधेय पारक कधि देता हूँ । [इमान् क्षीर्वाण्य आयुषा संस्पृजामि] इसको क्षीर् आयुके युक्त करता हूँ ॥ ३२ ॥

दे [पितराः पितरो] [वा. वा. अमृता अग्निः] हमारा जो अमर अग्नि (सर्वेषु प्राणु अमृता अग्निदेव) सर्व हरनेमें अनेक उपाय करता है [तं ह्यहं ममि परिगृह्णामि] उक्त विषय अग्निके मैं अपनेनें बारन करता हूँ । [तः कल्यात् मा द्विषतु] यह हमारा ह्य न करे तथा [तं वने मा] उक्तका हम ह्य न करें ॥ ३३ ॥

[गार्हपत्यात् अपाह्वस्व दक्षिणा क्रुष्यावा देव] गार्हपत्य अग्निके इदकर दक्षिणके ओर देवतांसमस्तक अग्निके प्रति कर्तौ । और [पितृभ्यः कान्धने मर्षणाः पितं कणुता] पितरोंके क्षिमे अपने क्षिमे तथा मर्षणोंकेक्षिमे म्रिय करो ॥ ३४ ॥

भावना-- इस रीतिसे पापका पाप अपने शिरपरसे दूर करते हुए अपनी आयुध अतिक्षीर्ष बनाकर आश्रम प्राणवागद्विष्टात् मृत्युके दूर करने और क्षीर्ष जावन प्राप्त करक उत्तम स्थानमें विराज कर अपना जीवन बहकन बनाओ ॥ ३० ॥

किना उत्तम धर्मपरिवर्ती बनें ये कभी विधवा न बनें । ये क्षीमायवयुक्त होकर अपने घरमें अतन आदि द्वारा सुकोषित करे । क्षीरमा बनें अश्रुरहित होकर अश्रुरहित रहें और उत्तम आयुष्यके सुखीयित रहें । अपने बरमे ये किनां मुमुक्षित पीतें हुईं महत्त्वका स्थान प्राप्त करें ॥ ३१ ॥

इसच द्वारा मृत और बीबीगोंके अर्वाह क्षीर्वाण्ये आन पट्टयय है । क्षानधे हूँ इसकी विधेय कल्पना हो गइती है । इससे मृतोंको स्वाववारक कक प्राप्त होता है और अग्निदेवोंके क्षीर्ष आयुध प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

यह अमरधर्मयुक्त अग्नि मनुष्योंका शिवकर्ता होकर सबको धिष है । इसको मनुष्य प्रदक्षित करें और उचकी उदावयये कधि प्राप्त करें ॥ ३३ ॥

मनुष्योंको ऐसा आचारन करना चाहिये कि जिससे आपका हित हो ज्ञानिबोध कथन बने और निवर्षेय नष्ट हईयन

द्विमागघनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्त्या । अग्निः पुनर्यं ज्येष्ठस्य यः क्रम्यादनिरादितः ॥३५॥

यत् कुर्वते यद् वनुते यच्च वृक्षनं विन्दते । सर्वं मर्त्यस्य सम्प्राप्तिं क्रम्यादनिरादितः ॥३६॥

अयश्चिपो इतवर्षा मवति नैनेन इतिरवर्षे । छिनत्ति क्रम्या गोर्धनाद् यं क्रम्यादनुवर्त्ते ॥३७॥

सुहृर्गृध्रौ प्र वनुत्याति मर्त्यो नित्यं । क्रम्या यान्तिरिन्ति कादनुविद्वान् वितावति ॥३८॥

प्राक्षाः गृहा स संन्यन्ते क्षिया यन्मियते पतिः ।

अथैव विद्वानेप्सोः यः क्रम्यादं निरादपत् ॥३९॥

अर्थ— (वः अपिरादितः क्रम्यात् अग्निः) जो व पुष्पावा हुवा प्रेमासमझक अग्नि होता है, वह जो [ज्येष्ठस्य पुनर्यं द्विमागं यं आदाय] वने मर्त्यको अपने दो माय प्राप्त होनेपर भी [अचक्षां प्रक्षिणाति] एरीहने लक्ष्मी कीक्या करता है ॥ ३५ ॥

[क्रम्यात् अतिरादितः यैव] प्रेमासमझक अग्नि यदि व पुष्पावा जान तो वह [ज्येष्ठस्य तत् सर्वं न अति] ज्येष्ठ वह सब वह करता है कि जो [यत् कुर्वते] जो खेरीके भिक्षा है [यद् वनुते] जो अपने संविद्यामन्त्रे प्राप्त होता है और [यद् व वनेन विन्दते] जो कारीगरोंके भिक्षा है ॥ ३६ ॥

वह मनुष्य [अयश्चिपो इतवर्षाः मवति] अपवित्र और निस्तेज होता है [एनेन इतिः अचरे व] इतव दिया हुआ वह जाने योग्य नहीं होता, [क्रम्याः योः यथात् क्षिमाति] क्षिमा गौ और वने वह क्षिया जाता है, [यं क्रम्यादनुवर्त्ते] जिसके साथ अयमासमझक अग्नि चलता है ॥ ३७ ॥

[यान्ति विद्वान् क्रम्यात् अग्निः] जिसको वह अयमासमझक अग्नि [विद्वान् यान्ति वितावति] कामकर पीछे पीछे पड़ता है, वह [मर्त्यो नित्यं] मनुष्य कबको प्राप्त होकर [एनेन सुहृः अयश्चिपो] प्रकोमर्त्यके साथ बारबार हुआ रहा रहा है अर्थात् रोता रहा है ॥ ३८ ॥

[वः क्षिया पतिः क्षिमाति] जब लीक पति मर जाता है, व [गृहा प्राक्षाः स संन्यन्ते] घर पीछे पीछे पुक होते हैं। सब समय [विद्वान् प्राक्षा एव ऐप्सोः] श्रावी माझय ही हुकाने योग्य है [यः क्रम्यादं निरादपत्] जो अयमासमझक अग्निको हटा सकता है ॥ ३९ ॥

मात्रार्थ— है। पुरुषवर्ष रवीकारवेदे ज्योतिषिक मनुष्य नहीं करता रहे ॥ ३५ ॥

प्रेमासमझक अग्निको लक्ष्मी तरह निमित्तपूर्वक वाला न किया तो ज्येष्ठ पुनर्यं पुनर्यको दो माय प्राप्त होनेपर भी लक्ष्मी एरीहनेक कष्ट भोगने लगे हैं इच्छामें अन्तेष्टिके अग्निको निमित्तपूर्वक काष्ठ करवा चाहिये ॥ ३५ ॥

अग्निवे अटीपरसे तथा वैशिक विद्याको प्राप्त हुआ वन भी वह होता है यदि अन्तेष्टिकी अग्निकी क्षमति नहीं माय ॥ ३६ ॥

अन्तेष्टिकी अग्नि घटत मनुष्यको साथ रहनेसे मनुष्य अपवित्र और निस्तेज होता है। उचका जब अयमन होता है, पक्षी इति नौने और वन वह होती है। इच्छामें लक्ष्मी क्षमति करके मनुष्यको स्वनामिके पवित्र लक्ष्मी चाहिये ॥ ३७ ॥

जिसके घरमें लक्ष्मी जिन मनुष्योंमें वह अन्तेष्टिकी अग्नि बार बार प्रज्वालित होता है अर्थात् जिसमें बारबार अग्नि हाती है उसको बहुत कष्ट होते हैं और वे कोप बारबार पति पीछे हुए घर हुओंके कामोंका कर्म करते हुए पुष्करते पड़ते हैं ॥ ३८ ॥

जब किसी लीक पति मर जाता है तब उस घरमें नहीं पीछा होती है। जब सब विद्वान् माझयको हुकाने ॥ ३९ ॥

यत् रिमं घर्मलं चकृम यथं दुष्कृतम् । आपो मां तस्माच्छुम्भन्त्वयोः सक्तमुक्ताश्च यत् ४०[१०]
ता मेघरादुदीधिरावधृष्टन् प्रजानुधीः पृथिविर्देवयानैः ।

पर्वतस्य घृष्टमस्याधिं पृष्ठे नवाभरन्ति सरितः पुराणीः ॥४१॥

अर्थे अक्रव्याभिः क्रव्याद् नृदा देवयमनं वह ॥४२॥

मं क्रव्यादा विवेद्याय क्रव्यादमन्वगात् । व्याघ्रौ कृत्वा नानानं व ईरामि शिवापरम् ॥४३॥

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्नृभ्यामिधिर्गोविपस्य उमयानन्सुरा भितः ॥४४॥

जीवानामायुः प्र तिर स्वर्ग्ये पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।

सुगार्हपत्यो वितपन्नरविमुषामुषां भेषसीं घेक्ष्मै ॥४५॥

अर्थ [यत् रिमं घर्मलं] जो वाय और मज्जिला [यत् च दुष्कृतं चकृम] जो दुराचार हमने किया है, [तस्मादुष्कृतम् अयोः] वध विपातक अग्निसे [आपः मां शुम्भन्तु] जल मुझे पवित्र करे ॥ ४० ॥

[ताः मेघरादुदीधरीः] वे भीचे उपरकी ओरसे जाती हुई [प्रजानुधीः देवयानैः पृथिविः जलवृष्टम्] जल गत कर देवयानके मार्गसे बारबार चकती है [घृष्टमस्य पर्वतस्य अपिपृष्ठे] हाथ करनेवाले पर्वतके ऊपर [पुराणीः पुरातः पुराणि] पुरानी कविचों नवीन होकर चकती हैं ॥ ४१ ॥

हे अग्ने ! तू [अ-क्रव्याद् क्रव्याद मिः शुभ] मांसमच्छक व चक्कर दाँडाहारीको दूध कर । और [देवयमनं वह] देवोंका बलव बरनेवालेको पात कर ॥ ४२ ॥

[मं क्रव्याद् अमिधाय] इसके पास मांसमच्छक जा गया है । और [व्याघ्रौ कृत्वा नानानं व] यह मांसमच्छकके पास चला गया है । [व्याघ्रौ मायाय कृत्वा] हथ कर आर्योंको निमित्त बनाकर [ईरामि शिवापरम्] उस अनुमती में दूर करता हूँ ॥ ४३ ॥

[अन्तर्धिः अग्निः] देवोंको अपने अन्दर रहनेवाला [मनुष्यान् परिधिः] मनुष्योंका घरायनकर्ता [गार्हपत्यः अग्निः] गार्हपत्य अग्नि [उमयानं अमरा भितः] देवोंके मध्यमें रहता है । ॥ ४४ ॥

हे अग्ने ! [तं जीवानां आयुः प्रतिर] तू जीवोंकी आयु निर्दिष्टताके साथ पार कर व मृताः पितृणां लोक अपि गच्छन्तु] जो मर चुके हैं वे पितृलोकमें चले जावें । [सुगार्हपत्यः अरायी वितपन्] उत्तम गार्हपत्य अग्नि अनुष्ठेय कर दे । [भेषसीं भेष्ये भेषसीं भेष्ये] प्रत्येक उवाकाक इसके लिये उवाकालय कर देवे ॥ ४५ ॥

भावार्थ— जो वाय दोध और दुराचार प्रेतदाहक अग्निसे कारण होता है, वधसे अग्नि उन्मत्तमानसे हावी है ॥ ४० ॥ अग्नि पर्वतोंपरसे भीचेकी ओर चकती है व यन्त्रके दिग्गोमें छुट जाता और हाथके दिग्गोमें नवीन हाकर चकती है । (४१ ताह) मनुष्य मरनेके पश्चात् दुरा प्रतीत कारण करके नवीनया बनकर विहरता है ॥ ४१ ॥

मित्रसे देवोंके अंदरसे हथ होता है, वह अग्नि प्रेतदाहक अग्निसे दूध करे, अन्तरा वर वरमें इधियां हो और मनुष्य दीर्घायु हो ॥ ४२ ॥

एक अग्नि प्रेतदाहक है और दूसरा देवयानक है । दोनोंमें मच्छक साथ है, परंतु एक धिय है और दूसरा अग्नि है । मनुष्य ऐसा व्यवहार करे कि जिससे अग्नि बचा प्रतीत रहे और अनुष्ठेय करी प्रतीत करनेवाला बनकर व आय ॥ ४३ ॥

देवोंके अन्दर रहनेवाला मनुष्योंका रक्षणकर्ता गार्हपत्य अग्नि दोनों अग्नि और शत्रुके अग्निबोमें रहता है ॥ ४४ ॥

अग्निमें हथ करनेसे मनुष्योंकी आयु दीर्घ होती है । इसी हथवच मुताबिके पितृलोक प्राप्त होता है । गार्हपत्य अग्नि अनुष्ठेय दूध करता है और अग्निदेव उवाक प्रत्य कर दया है ॥ ४५ ॥

सर्वीनये सर्वमानः सप्तत्तानैशामूर्जि रयिमस्मानुं वेदि ॥४१॥

इममिन्द्र वक्षि परिमन्वारमर्घ्यं स पो निर्वैधव्यं दुरिताववाधात् ।

तेनाप हस श्रुमापतेन्तु तेन रुद्रस्म परि पाताद्याम् ॥४२॥

अनृपाहं प्लवमन्वारमर्घ्यं स पो निर्वैधव्यं दुरिताववाधात् ।

आ रोहव सधितुर्नावमेतां पृथ्विर्धूमिर्मिरमतिं वरेम ॥४३॥

अहोरात्रे अन्वेपि विभ्रतुं क्षेम्यस्तिष्ठतु प्रतरंशः सुवीरः ।

अनातुरान्तसुमनसस्तन्य विभ्रज्ज्योगेश्व नं पुरुषगमिधरेषि ॥४४॥

ते वुवेर्यु आ वृषन्ते पापे जीवन्ति सर्वदा । कृपाद् पानधिरितुकादर्थ इवानुवर्ते नृभम् ॥५०॥

अर्थ—हे अग्ने ! [सर्वान् सप्तत्तान् सहमानः] सब कर्मजनों परास्त करता हुआ तू (पना रति कर्म अन्तर्गत वेदि) इमका धन और सब हमारे ऊपर स्थापित कर ॥ ४१ ॥

[हमें इन्द्र वक्षि परि मन्वारमर्घ्यं] इस देवर्षियुक्त पात्रकको अनुकूलतापूर्वक चुक करो । [सः पो निर्वैधव्यं दुरिताववाधात्] वह हमें विद्वन्वीर्य पात्रके लुप्तये । [तन आपतनं सर्वं अयत्त] उल्लेख द्वारा हमका कर्मबन्ध कर्म का नाश करो । [तेष रुद्रस्म अन्तः परिपत्त] उल्लेखी सहायतासे रुद्रके अग्रसे सब ओरसे अपने आपको दुरितों करो ॥ ४२ ॥

(अनृपाहं प्लवमन्वारमर्घ्यं) यकात् वीर्यको तेवत करो । (सः पो निर्वैधव्यं दुरिताववाधात् निर्वैधव्यं) सब आपतको निवृत्त पात्रके बचाव । (पान धिरितुकादर्थ) इस सविताकी वीर्यपर करो । (वृषन्ति सर्वदा वरमि वरेम) कः वही विद्वान् वीर्यकोते दुरितोंसे अग्रसे अपने पास होवेंगे ॥ ४३ ॥

तू [वही रति क्षेम्य प्रतन्यः] विभ्रतुं युक्त देकर तुम्हारे पार कर्मबन्धका [सुवीरः विभ्रतुं विभ्रतुं वरमि] उल्लेख वीर्यको युक्त वीर्यका नाम कर्मबन्धका स्वयं किए होकर अनुकूल रहता है । हे [तन्य] पवन हे विद्वाने ! [सुमनसः अनातुरान्तः विभ्रतुं] उल्लेख मन्त्रको वीर्यको मनुष्योंको वारण करता है, देखा तू [पुरुषं एव दुरितार्थिना पृथि] सदा मनुष्योंके सुमनसे युक्त होकर हमारे पास रह ॥ ४४ ॥

[ते देवराजः आहवन्ते] जो देवोंसे अपने आपको बलवत् करते हैं वे [सर्वदा वरं जीवन्ति] सदा वीर्य वरणीय करते हैं । [कृपा कृपाद् अग्नि अग्निहोत्रं अनुवर्ते] विभ्रतुं मन्त्रमन्त्रक अग्नि पात्रके ही नाम करता है [वरः इव नरे] वैसा वीर्यका वीर्यका नाम करता है ॥ ५० ॥

भाष्य—अग्नि सब कर्मजनों परास्त करे और उनके धन और सब हमारे पास आकर रहे ॥ ४१ ॥

वह अग्नि वरदाता, तुम्हारे पास पुरुषावेषाण और सब कामनाओंको पूर्ण कर्मबन्धका है । उल्लेख मनुष्य परते वरते हैं । इससे रुद्रस्म नाश करता योग्य है और वक्षि पात्रपात्रके कर्मजनोंसे वरान भी होतछता है ॥ ४२ ॥

वकरणी वीर्य तेवत करो और उल्लेख मन्त्रक अन्तर्गत पार हो जाओ । इस वीर्यपर करो देवी कर्म वीर्यको सहायतासे दुरित सन्तुष्ट परामर्श करे । (अनातुरान्तः वीर्यक मनुष्योंसे दूर करने ॥ ४३ ॥

वर-वरं पर्वत रहता है सब उल्लेख कोते हैं उल्लेख युक्त प्राप्त करते हैं, वर पुरुषोंका वीर्य उल्लेख होता है । वर पर्वत देवे पर्वतपर उल्लेख विद्वाने रुद्रकर मनुष्य वीर्य और अन्तर्गत पर्वत (पर्वत विद्वान् वीर्य वर वरते हो) ॥ ४४ ॥

जो अपने आपसे देवोंसे अलग करते हैं वे वरमानोंसे मनुष्य होते हैं और उल्लेख वीर्य नाश होता है वीर्य वर वर वरता है ॥ ५० ॥

येभिदा घनकाम्या ऋष्यादा समासते । ते वा प्रयेषां कुम्भी पर्यादधति सर्वदा ॥५१॥

प्रेषं पिपतिपति मनसा मुद्रा वरते पुनः । ऋष्याद् गानधिरन्तिष्ठावन् विद्वान् वितावति ॥५२॥

अविः कृष्णा मागधेवं पद्मनां सीसे ऋष्यादपि चन्द्र त आहुः ।

माषाः पिष्टा मागधेवं ते हृष्यमरण्यान्या गृह्यै सधस्व ॥५३॥

इषीकं जरतीमिष्टा त्रिस्त्रिपञ्च दण्डन नृदम् ।

तमिन्द्र इष्मं कृत्वा यमस्याधि निरादधौ ॥५४॥

प्रत्यम्बमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पद्मां वि धाविषेष्ट ।

पराभीषामघ्नं विदेष्टं क्षिमेपायुषा समिमान्त्यजाभि ॥५५॥ (१२)

वर्ण—[ये वधदा वधकाम्याः] जो वधदाहोम परतु वधकोमी हैं [ऋष्यादा स आसते] मांसमन्त्रक क्रिये एकत्र बैठते हैं, [ते ये वधेनां कुम्भी सर्वदा पर्यादधति] ये विश्वसे वृक्षोंकी ईषीपर सदा मन्त्र रचते हैं ॥ ५१ ॥

[मन्त्रा म पिपतिपति ह्य] ये मन्त्रे मानो गिरना चाहते हैं [पुनः पुनः आचरते] और फिर कौटना चाहते हैं, [पद्म विद्वान् ऋष्याद भविः अतिष्ठत्वा ननु वितावति] जिसको मानवा हुआ मांसपक्षक अति पास जाकर पीछे पड़ता है ॥ ५२ ॥

हे [ऋष्याद] मांसपक्षक मन्त्र ! (पद्मनां कृष्णा अविः ते मागधेवं) पद्मनोंमें कृष्णी घेह ठेरा जाय है । पद्मा [सीसे कर्णं धरि ते आहुः] सीस और ओहमी ठेरा ही कहते हैं । [पिष्टाः माषाः ते हृष्य आगधेव] पिष्टे उड़द ठेरा हृष्यमाय है । अथ च [जरतान्वा पद्मं सधस्व] मन्त्रे गहर आयमें रह ॥ ५३ ॥

हे इष्म ! [जरती इषीकं] अतिजीवै मूँहको [त्रिस्त्रिपञ्च दण्डं नरे द्रुम] त्रिकोंका पुंन समिपा और मन्त्रकी बाहुति देकर अर्घ्य [त इष्मं कृत्वा] इसको ईश्वर बनाकर [यमस्य अर्घ्यं निरादधौ] यमकी अग्निका आधान करें ॥ ५४ ॥

[प्रत्यम्बं वरक प्रत्यर्पयित्वा] अतु होवेनाके सर्वको मन्त्रार धर्मयक करते [पद्मां प्रविद्वान् वि वि धाविषेष्ट] सम्मर्त्यक आचनेवाका धर्मयकमें विशेष दीष्टिसे प्रविष्ट होता है । [अमीषां अन्तु परादिष्ट] यह सूत्रोंके अमीषोंको परम अधिको देवदा है और [इमान् दीर्घेन अनुष्ठाने से पूजाभि] मैं इन जीमिषोंको दीर्घ अनुष्ठे सेपुष्ट करता हूँ ॥ ५५ ॥

माधर्मे जो वधदाहोम और वधकोमी होते हैं वे सदा वृक्षोंके पद्मने लवण अपनी दष्टी रचते हैं, वे दुग्धि पात हैं और वे वधदाहक अग्निज मन्त्र होत हैं अर्थात् अन्त्यापु होते हैं ॥ ५१ ॥

जिनके पास सदा सधदाहक अग्नि रहता है अर्थात् जिनके चारों वांशार मरुत होता है, वे वांशार दुग्धी कष्टी और मर्त्य होत हैं । इनको सन्निध है किने प्रत्यक करक अपना मन्त्राव करके उपाय करें ॥ ५२ ॥

पिष्टे उड़द का हृष्य बनाकर उड़द हृष्य अग्निमें किया जाने । कृष्णी घेहका हृष्य वा पूत हृष्ये हृष्य किया जाय । इस तरहका सधदाहक अग्नि मनुष्य स्वामने पूर बनमें प्रविष्ट किया जाने । अर्थात् येतथ हृष्य मरारो बुर हो ॥ ५३ ॥

इस सधदाहक अग्निमें जीवै इषिक, त्रिषकी पुत्र अग्निपा और सरकंडेकी आनुतिना हो जाने । इस साधने इस समयको अग्निज आधान किया जाय ॥ ५४ ॥

कर्मार्थको जाननेवाला मनुष्य अत्यंत सर्वार्थी बनना करके अपने आपको धर्मार्थके योग पवित्र बना रहता है । मृणोको परम गतीकी ओर हृष्यद्वारा प्रविष्ट करके जीवित मनुष्योंकी कष्टी हृष्यक दीर्घानु करवा नाम है ॥ ५५ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

यक्ष्मरोगको दूर करना ।

इस द्वितीय सूक्ष्म मुक्त विक्कन वक्कमरोगके दूर करवका है। इस रोगका दूर करा परमेस्वरकी प्रार्थनासे मुक्तकरा करेवका कलम बपेके यहाँ दिया है। ईश्वरप्रार्थनासे बला मारी बक है। जो मन एकम करके प्रार्थना करते हैं और बपना हबन ईश्वरके सामने खोब बैठे हैं, अन्यत्र होकर ईश्वरको आत्मनि देख करते हैं उनको ही। इस बकका अनुभव हो सकता है। अतः कोई जठक हब बकसे संशित न रहें, इसका ही यहाँ कलम है।

नीचेके मार्ग ।

पहले मंत्रज्ञ बनाने यह है—जैसे नाम बुर नाम बाधा है, जैसे कलुषों को रोप है वह भीजते मारते कीचड़ नाम जाने। अर्थात् बुर नाम जाने मनुष्यके पास न रहे। भीजते मारते (नष्ट) करनेके उपाय ही भीजते मारते ही रहना है। मनुष्यकी पुरीषमात्र (पाशना अपना कीचड़ होमेक मारने) पशुविष मारने (नशील कर्पूरे रोमरसिका मारने) वायुविष मारने (विषके अम्लाद्याय मल बुर होते हैं) ये सब मारने परीक्षारहित किये हैं। शरीरकी संविराही से सब बीरिन हैं किमर्थक मल करने करते हैं। पाठकोंके कथित है कि वे विचार करें कि वे मारने अपना अपना कार्य ठीक प्रकार कर रहे हैं या नहीं। यदि कर रहे हैं तो ब्रह्म है, नहीं तो उनके ठीक कार्य करनेसे सिधे प्रभु करकेका काम करना अत्यन्त है अपना मनुष्यी भेद ही बाधने।

पापाचार और दुष्ट विचार ।

द्वितीय मंत्रमें ब्रह्मदेव और इन्द्रदेव वर्णन किये गये हैं और इन्द्रदेव की वे दोहीं मृत्यु के पराजयक पशुधर्मियों हैं, ऐसा स्पष्ट सूचित किया है। अतः मनुष्यों की पराधीनता और इन्द्रदेव के ब्रह्म की शक्ति है। इन्द्रदेव और पशुधर्मियों के परस्पर घर्षण है। इन्द्रदेव की शक्ति है और पशुधर्मियों पर शक्ति का प्रयोग है। इन्द्रदेव मनुष्यों की शक्ति का प्रयोग है। इन्द्रदेव और इन्द्रदेव ब्रह्म की शक्ति है।

मनुष्य को पवित्र होता है वह कृति और मनुष्य के द्वारा ही होता है। मनुष्य प्रथम दृष्टिकोण कुछ विचार रखता है और कम विचारोंकी मनुकृति (मनुकरण) करता है। पक्षि केवल मनुकरणकी ही इच्छा होती है पंडित मनुष्य करते करते कैशे ही विचार करते लगता है। इसी तरह बने साधारण पहले देखता है और कैशे करतेकी चेष्टा करता है। इसके प्रथम केवल मनुकरण इच्छा ही प्रबल रहती है। बाहु मन्मात्र होकर नहीं स्वयंसे जगता है। पक्षि मनुष्यता करकेके विकर्मों की बड़ी क्षममानता प्राप्त करने पावित्त ।

उत्पत्ती की जगह आचारमिथ्या की अनुकूल और इति जगह
बोध्य है इत्ये मनुष्य की उच्छिष्ट होती। परंतु मनुष्य जगह
वाणीक अनुकरण नहीं करता प्रत्युत मनुष्य को ज्ञेय से
अनुकरण करना पसंद होता है। इसलिये वेद व्यवहार करना
है कि देखो देख बुद्धि अनुकरण करोय तो मनुष्य हर है।
अवधारण रीति मनुष्य इस विषय में प्राप्त प्रेय से
मनुष्य भव हर होता।

कण्वसी, वारिग्रन्थ और सुत्त ।

गुप्त, शक्तिवा और कन्नड़ी इनके दूर तकके प्रचार के
 प्रमाण हैं। कन्नड़ी के शक्तिवा भाषी हैं और शक्तिवा के
 प्रचार का यह होता है। वे दक्षिण के राजा हैं। ब्राह्मण
 विपत्तियों और अनेक जीवन यह मनुष्यों के प्राप्त करने वाले
 नहीं अनेक जीवन जगत्तक है, जो उनके प्राप्त करने
 चाहिए।

बर्फ फिन्डी स्थानपर आग्रेके समान जलका मध्यमकरी देव-
हक अग्रे पड़बता है जर्नीर बर्फ फिन्डीके ऊर्ध्वमें पृथु हो
नई है ती बहाके सब मूलमुळे हर प्रकारसे बूर करना कठिने
नह अनुसार संज्ञक बर्षेय है । इस स्थानपर व्यापक
निषिद्ध कसेक है । मायक रस केन्द्र लक्षणे बने सब कसे-
के मध्यमक बसता है । एकदिव बूई माय बहुत जलमें मिले
जेने । कसेमें जल वर्नात कामका बाहिरे तीव्र बार कसे दूरी

तस्य भौर हास्य ।

धार्मिक मंत्रों व हा ई कि व जा हयतीन वहाँ प्रतिष्ठित
 है, उनके चारों ओर [सूते: आवाहन] मृत कर्म हैं अर्थात्
 वे इस कतरात्मक प्रमाण परत हैं । इससे चारों ओर आत
 होके, पातु खनन रत्न वद मर हो जानने व हमें दिखाई
 नहीं देत । वे तो मृत हो चुके हैं । वो प्रतिष्ठित हैं उनके
 [मृत वे हयन] मान्ये और ईश्वरके किम अर्थात् उनके
 आवाहनकृतके निंद ही इस कारण आदि है ।

मनुष्यके स्वरूपके विषये सु-य और हास्यकी संश्लेषण आवश्यक है। हास्यके समझी प्रसन्नता रहती है और चरित्रके पुष्टिमें बराबर बहता है। वाच एक बड़ा उत्तम म्प्राप्ति है और आनन्दके साथ विना जाता है। वाचोंके वाच संख्या वाचिने कार उत्तम बड़ा काम प्राप्त करता चाहिये। आनन्दक वाचक मुनि मानते हैं प तु वाच कोई मुनि जीव नहीं है वाच कमेकाकोमि बड़े कोम मुने होय। परंतु वाच श्रोतव्यवचक है मेने का कामकारी हो।

[ह्रींकारः विरलः भवत्यम्] इमं जलम पीर तत्रै पीर
 कमुधे दू करयेन ही विचार करे । इस तरह जो जिध
 केप्रस बन होया उसका दू कारना चाहिये । ऐसे एक कल
 दू होयने ता पूर्व आरमभ जलम स्वास्थ्य अमुक मानव
 और पूर्व हुआ मत माना । वही मनुष्यका प्राण है । अतएव
 किसी स्थावर कल रहेमा तबतक किसी प्रकार कुछ प्रस
 नहीं हो सकता । इसलिये कमुधे काय देया वतीन कल
 चाहिये कि वह दूर हो और उसके हम स्थान रहे । वही
 [मया देवहृदि ।] वल्लभकाय प्रार्थना हम करत है ।
 अर्थात् हाएव मनुष्यके अंगुलि है कि वह हम वल्लभमयी
 प्रार्थनाके करे और अदमा कल्याण प्राप्त करे ।

मनुष्यकी आयुष्यमर्यादा ॥

[illegible]

अनुष्ठानसे अपनी सामुदायिकता बना सकता है अपना स्वयं
 पारिवारिक द्वारा बना भी सकता है । इस तरह दोनों बातें
 संभव हैं इनमेंसे संग्रहमें कहा है कि (मनु आश्र-
 म-वर्ण) अनुष्ठान अर्थात् कर्म करने वाला मनुष्य अपने व्यवहार में
 जो वह किया करता रहे वह उद्धरण (उद्धरण) अपने बंधन
 कर लेते । इस प्रकार व्यवहार करी कि जिससे वह मनुष्य बने
 हो सके ।

बीबीबेई नेत्रों में कहा है कि इस्लामशासक रबीकर करते हुए चीरबु (आरोहण आज़ा) चाल करे। अर्थात् अन्न अन्न न मरो। अन्न १५ प्रतिशत तक करे हुए फ़ारुशी कर करे। [बालन्या यति रथ] चीरबुआसक कर करते हुए अन्न धुविम में रहा। इन बर्तनिकशासक उल्लेख न करो। एषा न न ता तुमध [बीबीबेई सर्व आमु अहद] दीर्घावक किने पूर्व आमुतक जामेदी समावसा दीने।

[illegible]

स्वर्ग और ओदन ।

(३)

(अग्निः—यमः । देवता—स्वर्गः, ओदनः, अग्निः)

पुमान् पुसोऽग्निं निष्ठु चमेहि तत्र ह्यस्य यत्तमा प्रिया तं ।

यान्त्वाग्नें प्रथम संभेष्यन्तद् वां यो यमरान्ये समानम् ॥१॥

साधद् वां यधुन्तनि क्षीरार्णि तावत् तेजस्तत्तिषा चार्क्षिनानि ।

अग्निः शरीरं ससते यदैषोऽघां पुक्वन्मिथुना स भवायः ॥२॥

—सर्गसिद्धाक समुं द्रव्याने स स्मा समेतं यमराजैषु ।

पूवौ पुवित्रैरुप तर्क्ष्येषा यद्यद् रेतो अग्निं वां सधुर्भ ॥३॥

अथ— (पुषः पुमान्) मनुष्याग्निं वायवाद् पुक्वत् (अग्निविद्) अग्नौका वायवाता यमरा विराजः । (यमं हि) कामरूपर वदः । (तत्र ते यमरा मिवा ह्यस्य) यदां यो तेरे विराज विव हैं इनको बुका । (अग्ने वायवाते प्रथमं संभेष्यन्तः) वाहिके को धरने प्रथम मित्र करने थे (तद् वां यमः) वह आपका सामर्थ्य (यमरान्ये समानं) यमराजमें समान है ॥ १ ॥

(तावत् वां यधुः) वैसी यमवाद् आपकी छवि है (अग्निं क्षीरार्णि) वैसी आपके पराक्रम हैं । (वायत् तेजः) वैसा वायवा तेज है (तत्तिषा यधुर्भवाग्नि) और वैसी आपके बल हैं । (यदा वाग्निः पृथः क्षीरं ससत) जब आप क्षमिपाने समान हूय जलोको प्रसिद्ध करता है (अथा) तब है (मिथुना) बलिबली (पुक्वत् समवायः) परिपक्व होनेके पक्वत् रूप बलक होते हो ॥ २ ॥

(अग्निम् कोके स पुतं) इस कोटमें मित्रकर रहो । (देवयाने उ सं पुतं) देवयानमें मित्रकर रहो । (यम-राजैषु य यमेतं) निबन्धाके यमरमें यो मित्रका जाना । (यद् यद् वां रेतः) यो यो तुव दोनोंका बीरं पराक्रम आदि (उं यधुः) मित्रकर होनेवाला है (अत्) वह (एतौ) स्वर्ग पावन होते हुए तुम दोनों (यव हवेषां) मरु करो, अपने यम बुकाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ— मनुष्योंमें या सचन अग्निः वक्वन् दायः यही सचका आपकाता हान प्राप्त है । वैसा मनुष्य अग्निप्राप्ता रहे । वह सुखर आपनवा बैठे । वह अपने हितकारी मनुष्यमित्रोंको बुधने, सचको एकत्र मिलावे । वह मित्रत्व ही कर्त्तव्य करता है । अतः इसीसे राजकाय मित्रद्वय होता है । राष्ट्रमें वह शाक यकाय छितिले बाँटी ऊपर, अर्थात् किन्हीं एकमें वह सम्मिलित रहित देखित न होवे ॥ १ ॥

ऐना हमेसे ही उसकी पुरखी दानी उनसे वा यम होना सचका तेज किमया और बल बहना । जैना अग्नि यम-विज्योका तेज बहना है वैसा वह सचका बल मनुष्याका तेज बहना है इन्हें सब प्रकारकी कायबोको परिपक्वता होती है और इनको छवि ही ही सचको है ॥ २ ॥

हमें मित्र रहें आपमें कभी विरोध न रहे । इस कोटमें कालके बादमें देवयानके यमरमें और यमराजमें भी मित्र रहने काय है । आपकी कुछ हीनेत्र ही बुका होना । यो कुछ बीन पराक्रम करना हो वह सब स्वर्ग पावन होकर अपना यमद्वय करते करो ॥ ३ ॥

आपस्पृशासा अमि सं विश्वामिमि जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
 तासा भद्रध्वममृत यमादुर्यमोद्वनं पचति वां अनित्री ।
 य वां पिता पचति यं च माता रिप्राभिर्गुक्त्यै धर्मसाध वाचः ।
 स औदुनः सुतधारः स्वर्गं तुमे व्यापि नर्मसी मनुस्वा
 तुमे नर्मसी तुभयांभ लोकान् य पचनानामभिज्ञताः स्वर्गाः ।
 तेषां ज्योतिषमान् मधुमान् यो अप्र तस्मिन् पुत्रैर्जरासि सं भवेषाम्
 प्राचीप्राचीं प्रदिक्ष्मा रमेषामेवं लोक भ्रष्टानाः सचन्ते ।
 यद् वां पक्क परिनिष्ठमयी तस्य शुभंय इम्यती स भवेषाम्

[११४]

[११५]

[११६]

[११७]

सर्व- है (पुत्राः) पुत्रो ! (वाता भविष्येति सर्वं) बड़ोंमें सुने । हे (जीवधन्यः) जीवको दान करनेवाले ! (सं जीवं धन्य) दान जीवकाओ को दान होकर (तासां भद्रं यममृतं) उन जीवकाओके कष्टको दान करी । (वां अनित्रीं) वं लोगों वं कविनी पचति) जिस कष्टपात्रको आपकी अपनी-पकड़ि-पकड़ि रही है दान सब (माताः) अपने करते हैं ॥ १४ ॥

(वां पिता माता च) अपने माता और पिता (रिप्राभिरगुक्त्यै) पापमुक्त करने किये (वां पचति) जिसको परिचर्य कर रहा है (याः सवयसाः स्वर्गः मोक्षः) वह लोगों के लिये लोक देनेवाला स्वर्गलोक सब (यस्मिन् तमे वमसी व्यापि) अपनी महिमाके दोनों लोकोंमें व्याप्त है ॥ १५ ॥

(ये वमसी अभिज्ञताः ज्ञाताः) जो जाचकोंके दान होनेवाले स्वर्गलोक हैं इन (जमे पमसी मनुस्वा च लोकान्) उन दोनों लोकोंका ॥ १६ ॥ (तेषां वा मधुमान् ज्योतिषमान्) इनमें जो मीठा और तेजस्वी कार्य हैं, वे दान करो । (परिनिष्ठं जमे) इनमें मुख्य ज्ञानपर (पुत्रः) आदि भवेषाम्) पुत्रोंके साथ दान करनेवाले दान करो ॥ १७ ॥

(प्राचीं प्राचीं भवेयं आयेयौ) पूर्व दिशाकी ओर आगे बढ़ो, (पूर्व लोक भ्रष्टानाः सचन्ते) इन लोकोंमें जो बान्धवोंका दान करते हैं । (यद् वां पक्कं परिनिष्ठं) जो तुम्हारा परिचर्य होकर कष्टमें इन किया गया है । (स्वती) कीपुत्रो ! (ताव गुह्यं सचयेत्) इसकी रक्षाके लिये गुह्यरक्षणका आचार करो ॥ १८ ॥

भावार्थ- हे अपने आत्माके पद परगमने वाले ! तुम अपने जीवमें दान करो कमी बहुत न करो । जिस कष्टको दान करने के लिये तुम्हारे लिये कष्ट प्रदान करनेके लिये ही तुम्हारी पकड़िमाता दान नहीं करनेवाले देकर कर रही है ॥ १४ ॥

पात्रवृत्ति और ममिम व नीके दोहोंके दान होना चाहिये । वही माता पिता और पुत्रोंको भी करना चाहिये । इनमें वनाचें दान करो । इनमें कष्टमा स्वयमुक्त प्राप्त हो सकना है जो दान-पर लोकमें मिलनेवाला है ॥ १५ ॥

पक्कतमोद्वनं जो भुममौक्त प्राप्त होते हैं इनमें जो कष्टमें भुम स्वयं है जो अधिक मुक्तदानी और अधिक तेजस्वी । पक्कको दान करके दान करनेवाले पुत्रोंके समेत वही कार्यरत रहा ॥ १६ ॥

भद्राये प्रजापति विज्ञाते आये वडा भद्राये ही पचति प्राप्त होती है । जो दान परिचर्य दान हुआ है इनमें । करनेका दान निवृत्त करी ॥ १७ ॥

दक्षिणां दिक्षमभि नक्षमाभौ पर्वावर्तयामाभि पात्रमिस्तु ।
तस्मिन् वां युमः पितृभिः सन्निवानः पक्काय धर्मं बहूलं नि यच्छात् ॥ ८ ॥
प्रतीचीं दिशामिपमिद् पुरं यस्यां सोमो अत्रिपा मृक्षिता च ।
तस्यां भवेयां सुकृतः सपेयामर्षा पक्काभिपुना स मर्षायः ॥ ९ ॥
उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावर्षं विद्यामूर्दीची कृणवन्मो अग्रम् ।
पाक्ष्त्तु छन्दुः पुरुषो बभूव विद्यैर्विद्याज्ञैः सह स भवेम ॥ १० ॥ (१३)
पुत्रेयं विराज्ममो भस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मर्षमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्वरातु इयं इव गोपा अभि रक्ष पक्कम् ॥ ११ ॥

अर्थ—(दक्षिण दिक्षं अभिपक्षमाभौ) दक्षिण दिशाकी ओर अपना कहम बहाते हुए (पुरं पात्र अभिपवावर्तयौ) इस राजके पात्रोंको भ्रमण करो । (तस्मिन् वां) उसमें तुमको (पितृभिः सन्निवानः यम) पिताओंके साथ रहनेवाला यम (पक्काय बहूलं धर्मं निमच्छात्) परिपक्व होनेके लिए बहुत कुछ प्रहार करे ॥ ८ ॥
इयं प्रतीची) वह पश्चिमदिशा है (इयं दिक्षां वा) वह दिशाओंमें से दक्षिण दिशा है । (यस्यां सोमः अत्रिपा मृक्षिता च) जिस दिक्षामें सोम अत्रिगणों की सुकृताका है (तस्यां भवेयां) उनमें जाकर करो और (सुकृतं सपेयं) सुकृतको प्राप्त होओ । (स मिश्रयो भवा पक्काय सं मर्षायः) ह कीपुत्रको ! पक्काय परिपक्व होनेपर मिश्रक ब्रह्मविषी प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

(उत्तरं राष्ट्रं प्रजया उत्तरावर्षं) केन्द्र राष्ट्र सुपञ्चले अधिक केन्द्र होता है । (मूर्दीची दिक्षां वा अग्रं कृणवन्) वह उत्तर दिक्षा हमको जाने बहाते । (पुरुषः पक्ष्त्तु छन्दुः बभूव) मनुष्य पक्षिज कर्मकाक होता है । हम जन (यमो विश्वमी) सह सं भवेम) सर्व लोगोंके साथ परिपूर्ण उत्तर होने ॥ १० ॥

(पुत्रेयं पक्का विराट्) वह पक्क दिक्षा की सोमादायक है (यस्यां यमः यस्तु) इसके लिए यमबहा हो । (पुत्रेभ्यः उत मर्षं शिवा यस्तु) वह पुत्रोंके लिये और मरे लिये दान्य हो । हे (विश्वर अदित देवि) विश्वका हित करनेवाली अन्न देनेवाली देवी ! (सा नः इयं इव) वह तु हमें अन्नक समान (गोपा पक्कं अभि रक्ष) सुरक्षित करती हुई परिपक्व करने सुरक्षित कर ॥ ११ ॥

भावार्थ— पुरुषाधर्ममें दक्षिण दिक्षामें जाये बहाते हुए अपनी आज्ञाके उद्देश्यके साथ रहे । वहाँ तुम्हारी परिपक्वता होनेके लिये निगमक देव तुम्हारी पहायता करना । वही तुम्हें सुख देता हुआ जाये के आपका ॥ ८ ॥

पश्चिमदिक्षा निधनार्थ दिक्षा है, वहाँ सोमदेव सुख देता है । इत्ये—पुरुषाधर्ममें—विद्याम करक अच्छे धर्म करो और अपने आपको परिपक्व करते हुए उत्तर ही जाओ ॥ ९ ॥

मर्षाभी उत्पत्तिसे राज्य अधिक लेना होता है । अधिक लेना होता ही उत्तर [उत्तरावर्ष] दिक्षाका संदेश है । मनुष्योंके राज मेर है और उनकी सर्वोत्तम ब्रह्मविष्यन्तसे ही हो सकती है ॥ १० ॥

वह पश्चिमदिक्षा है वह अन्न देनेवाली देवी है इस मायामूर्तिके लिए मेरा नमस्कार है । वह तुम और मेरी संतानोंके लिये दान्य होये । वह हमारी उपाय रक्षा करे ॥ ११ ॥

पितृषु पुत्रानभि स र्व्वञ्जस्व नः श्रिवा नो वाता इव पान्तु भूमौ ।

यमोदुन पश्यतो वेष्टते इह सं नुस्तपं दुष्ट सत्य च वेष्टु ॥११॥

यष्टत् कृष्णः शृङ्गुन एह मस्ता त्सरन् विपश्यत् बिलं आसृताम् ।

यदा हास्या ईर्ष्यास्ता समकृत् उखल्लेखं सुसंलं भ्रूमतापः ॥१२॥

अथ प्राजा पुपुषुभो बयोषाः पूतः पवित्रैर्यं हन्तु रथः ।

आ रोह चर्म महि छर्मि यच्छ्र मा हर्म्यती पौत्रमर्षं नि गोताम् ॥१३॥

वनुस्पतिः सह देवैर्न आगम् रथः पिशाचो नृपचार्यमानः ।

स उच्छ्रयाते प्र वदासि वाचं तेन लोकौ अभि सर्वांश्च जयेम ॥१४॥

अर्थ — पिता इव पुत्रान् नः अभि सं भजस्व) कैसे पिता पुत्रोंको देखे पुत्र हम सबको मिले । (एह दूरी क वाता ताता वस्तु) इह भूमिमें हमारे किये सुख वातु बढ़ते रहें । है वेष्टते ! (इह सं नुस्तपं पश्यः) यदा कि प्रकल्पे ये दो पक्षों हैं (सं वा तप ज्ञानं च वस्तु) वह हमारे तप और ज्ञानको जाने ॥ ११ ॥

(यष्टत् कृष्णः शृङ्गुन इह आसृताम्) यदि कृष्ण पक्षी-कीटा यदा वाकर (एहत् विस्तरं बिले ककभ्र) दिक्कत हुआ छिपछिपकर अपने बिलमें-बारमें-दुष्टकर बैठ जाय (यष्टत् वा भार्यस्ता हासी) अथवा यदि पीछे हासी पायी हासी (उखल्लेखं सुसंलं भ्रूमतापः) ककभ्र और मृगकर्म पीछा करे (आता सुम्नत) वह कक हर्षे होने करे ॥ १२ ॥

(अथ प्राजा पुपुषुभो बयोषाः) वह पक्षर पिशाच आकारवाका कक है- कक कृष्टकर तेवर कर देता है (पवित्रा पूतः रथः अप हन्तु) पवित्रता करनेवाले साधकोंके पुत्र रोषा हुआ वह पुत्रोंका नाश करे । (छर्मि चर्म) चर्मपर बैठ (महि छर्मि यच्छ्र) वहा सुख है । (हर्म्यती पौत्रं अर्षं वा विगाता) छिपुर्भोगर पुत्रका क न जाय ॥ १३ ॥

(वनस्पतिः देवैः सह च आगम्) इह अथ देवकानिभिः साथ यदा हमारे पास जानवा है । रक्षमा निजकर अप वाचमान) वह राक्षसों और पिशाचोंके दूर करता है । (स उच्छ्रयाते वाचं प्रवदति) वह कंचा उठता है और प्रवदति करता है (तप ज्ञानं चोदय अभिजयेम) उससे अथ कोकोंको जीतेगे ॥ १४ ॥

भावार्थ — पिता पुत्रोंको प्यार करता है वीहा प्यार सब परस्पर करें । हमे अच्छाया दियकरों हों । बढ़ते किये ज्ञान परिपाक व वाके तप और ज्ञानका महारण करें ॥ ११ ॥

व द कीटा नाकर एकदम अपने दोषमें लुपे अथवा पीछे हाथों दासी ककभ्रमृगकी पीछा करे, वो व द लेते नाम नही अर्थात् पीछे हाथों कीर्त हमको स्पष्ट न करे ॥ १२ ॥

एतपीका ककभ्र और मृगक वाच स्पष्ट करके किये अच्छा है । पक्षिों वासी आ देके स्वरक करो और वनस्पति जो दिष्टी चर्म आदिपर रखे और कृष्टा । कृष्टयमे कच होय वृ ह्वी और वह पाव दियकरों होय । इधमे वीपुर्भोगर पुत्रे नाशका दुष्ट रहता न पके अर्थात् पुत्र रोग महीं मरे ॥ १४ ॥

वनस्पति वन रोमचोमकपी राक्षसों और पिशाचोंके दूर करता है, पक्षीों प्रोचता है कि ककभ्र वनमे वन पुत्र का रति ॥ १५ ॥

सुप्त मेघान् पश्यन् पर्यगृह्णन् य एषो ज्योतिष्मो उत यश्चर्क्य ।

अथस्त्रिंशद् देवतास्तान्संपन्ते स नः स्वर्गमपि नैव लोकम् ॥१६॥

स्वर्गं लोकमपि नो नवासि सं ज्ञायया सह पुत्रैः स्याम ।

गृह्णामि हस्तमनु मेत्वश्च मा नस्तारीभिर्भ्रीतिमो अरतिः ॥१७॥

प्राहिं प्राप्मानमति तौ भयाम तमो व्यस्य प्र वृदासि पश्यु ।

वानस्पत्य उद्यता मा जिहिंसीर्या तण्डुल वि शरीर्वेषयन्तम् ॥१८॥

विषम्वेषा पुतपृष्ठो यविम्यन्तस्यौनिन्नोक्तमुपं याद्येतम् ।

अथैहमुपं यच्छ ह्ये त्वं पुतावानप तश्च विनस्तु ॥१९॥

अन्ध-पश्यः सुप्त मेघान् वरि अगृह्णन् पशु आरों पशोंको देखते है । (अथः त्रिंशद् देवताः तान् संपन्ते) पचीस देवताएँ उनका देखन उरत हैं । (मा एषा उजोतिष्मन् उत या चर्क्य) जो हवमें तेजस्वी और जो हवमें नृचम होता है (वा नस्तारीभोर्भ्रीतिम्) वह लोग हमें स्वर्गलोकमें प्रान्न करावे ॥ १६ ॥

(नः स्वर्गं लोकं जनिवामि) हमें ए स्वर्गलोकमें अनुपाता है (ज्ञायया सह स्वाम) श्री आर पुत्रादि साथ हम वही लुकाये रहें । (हस्तं गृह्णामि) शिशुका मैं पाकिमहन कर्क बह श्री (मा अत्र न पश्यु) मेरा बड़ा अनुग्रह करे । (विनस्तुः अरतिः) नः मा तारीय) दुर्गति भी अनु हमें कष्ट न देवे ॥ १७ ॥

(मा वत्मान प्राहिं) उध पापके उलट होवेवाले रोमका । अति बचाम) पार करेंगे । (तम एव य स्म प्रवृत्ति) अवेरके पुत्र करने मनोहर बचन बोझेंगे । है (वानस्पत्य) वन पक्षिसे बने हुए । ए (उद्यतः न विमो) उद्यत मत दिखा कर । (मा तण्डुलं) आनकका पात्र न कर । (देववन्त मा वि शरी) देव बननेकी इच्छा करनाकरिदा पात्र न कर ॥ १८ ॥

(विषम्वेषाः पुतपृष्ठः यविम्यन्) आरों और कैसा हुआ श्री शिशपर बन्ना है पूजा होता हुआ । पाकि वन लोकें उपवर्द्धि) एक स्वाममें उलट हुआ ए इस लोकमें प्रान्न हो । (अथैहमुपं यच्छ ह्ये त्वं पुतावानप तश्च विनस्तु) एक बनेका एव पात्र के और (एव एव पश्यान् विनस्तु) वह एव और शिवकोंसे पूर करे ॥ १९ ॥

आचार्य आरों वझेंगे श्री अग्नि पशुओंके पूज करि पशुओंका उपहार होता है । तैंत देवताओंका हमवझेंगे संवत् काया है । पुत्रपशुमें तेजस्वी होवेवाका और कृष्णपशुमें क्षीन होवेवाका योग अर्थात् वह हमें स्वर्गलोकी पशुप्राप्ति ॥ १६ ॥

पापुके पीछे हम स्वर्गको प्राप्ति होने तकत वहां श्री आर पुत्रोंके साथ आनदने रहेंगे । मैं शिशु श्रीय पाकिमहन कष्टमा वह श्री मेरे साथ मेरी अनुग्रहिनी होकर रह । हमें कोई दुर्गति और अनु कमी वष्ट न देवे ॥ १७ ॥

रोम आचार्य रोम कपड होते हैं उधके पुत्र करना चाहिये । अज्ञानमन्धर पुत्र बना चाहिये । मनोहर भावना बचका चाहिये । पुत्रके बना कककमूक विभीषा पात्र न करे उधमें पात्रकोंका भी पात्र न हो । वचो पात्र मन्ध करनेके इच्छुकका कमी पात्र न हो ॥ १८ ॥

अत्रय कैसा हुआ आज हममें केकर नामके पुत्र और शिवकोंका पुत्र करके उद्यत नामका कष्ट करे ॥ १९ ॥

अथो सोऽहः संमिता आह्वयेन धीरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् ।

अथान् गृहीत्वान्गारमेधामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्यम्

पृथग्गुणानि बहुधा पञ्चनामकंरूपा भवसि सं समुद्रया ।

एतां स्वस्य सोऽहिर्नीं तां जुष्टसु प्रावां शुम्भाति मस्य रश्मिपतां

पृथिवीं स्वां पृथिव्यामा वैश्यामि तनुः संमानी विकृता स एषा ।

यद्यं पुच छिन्नितमपेणन तेन मा सोऽहोर्भुजावि तद् वषामि

अनित्रीन् प्रति हर्षासि मूनु स स्वां दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।

उक्ता कुम्भी वेष्टां मा व्यविष्टा यज्ञापुषैराज्येनारिपक्ता

॥२॥ (१७)

॥२॥

॥२॥

॥२॥

अर्थ— (माध्यमेन अथः कोऽहः संमिताः) माध्यमे के ज्ञानसे हीयों कोऽह प्राप्त हुए हैं । (अथो सोऽहः पृथिवीं) वह हनु वह अन्तरिक्ष और वह पृथ्वी है । (अथान् गृहीत्वा) अथु आरयेवां) पान्यसे अहोंको लेकर बहुगुणानि पदकना आरंभ करो और (आप्यायन्तां) बुझिके प्राप्त हो तथा [पुनः शूर्यं आगन्तु] फिर अग्नपर हुए होनेके लिये प्राप्त किया जाये ॥ २ ॥

[पञ्चनाम पृथक् बहुधा कृण्वति] पञ्चभिः पृथक् पृथक् अनेक रूप हैं तथापि [अथदया पदकना भवति] अनेक महिमासे प्रोक्त पदकप होता है । [एतां तां अहिनीं स्वस्य जुष्टस्य] इस काक स्वस्थके दूर कर । [मस्य रश्मिपतां] असा घोरी बहोंको मुक्त करता है ऐसा ही भोज्य [प्यामा शुम्भाति] पत्थर भी छुटका करता है ॥ २१ ॥

[स्वां पृथिवीं पृथिव्यां आनेश्यामि] पृथ्वीतलको पृथ्वीमें ही व्यापित करता हूँ । [तनुः संमानी विकृता स एषा] वह तनी [छिन्नितमपेणन] छिन्न हुए तनु है । तनी तेरी समानी) समानी अर्थात् वधिवकी हुई (प्रकृतिरूप) रूप है । (यद्यं पुच छिन्नितमपेणन) जो कुछ बहिमनेके विना वा लुप्त गया है (तेन मा सुक्षोः) इस कारण वह नष्ट है । [तद् मस्यमा भविष्यामि] वह ज्ञानद्वारा डीक करता हूँ ॥ २२ ॥

[अनित्री मूनु इव] अनेकी जैसे अनेके पुत्र ० कती है वैसे ही [स्वां प्रति हर्षासि] छड़े प्यार करती है । [पृथिवीं पृथिव्यां दधामि] पृथ्वीतलको पृथ्वीके साथ मिळता हूँ । [उक्ता कुम्भी वेष्टां मा व्यविष्टाः] बड़े बड़े कर्म आपपर न हूँ [यज्ञापुषैः आरज्यमवतिष्ठता] मे यज्ञाधर्मों और हव तबके स्थापित हुए हैं ॥ २३ ॥

भाषार्थ— माध्यमे के ज्ञानसे भूमे अन्तरिक्ष और पृथ्वीतली प्रति शक्ती है। वैसे ही अनेके प्राप्त स्वरूप होता है इस छ होता है और अतम स्वयं काय मिळता है । इस तरह आरंभ पान्य स्वरूप करना योग्य है ॥ २ ॥

पञ्चम मे अनेक रसकप हैं परंतु औषधि एक होती है । वही औषधि काक समीको डीक करती है । योही कने काक करता है उस प्रकार पौनका फलरभी बहोंको काक करता है ॥ २१ ॥

पृथ्वीमे पृथ्वीतलसे है इसी तरह अतम तलम अनेकमें हैं । मूल प्रकृति गुणधर्मों से प्रचये विभक्तकर वह छिन्न स्ती है अतः वह विभक्त है । उपनामके इसमें विनाश होता है । ज्ञानसे वह विभक्त कर्म भी का चकती है ॥ २२ ॥

माया पृथ्वी वह प्यारके पकड़ती है वैसे ही बतनीय कर्तया चाहिये । बतनीके अन्तराधार रोचना वही चाहिये । जो बहका आ द बतनीमें भी भरा होता है और बहकावनीय उससे संवध जाता है ॥ २३ ॥

अग्निः पर्वन् रथतु त्वा पुरस्तादिन्त्रा रथतु दक्षिणतो मुरुत्वान् ।

बर्हमस्त्वा दंष्ट्रादरुण्यं प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोम स देवाय ॥२४॥

पूताः पवित्रैः पवन्ते अन्नाद् दिवं च यन्ति पृथिवी च लोकान् ।

ता बीजिता जीवर्धन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यधिरिन्धाम् ॥२५॥

आ यन्ति विषः पृथिवी संचन्ते भूम्याः सचन्ते अभ्यन्तरिक्षम् ।

बुद्धाः सुतीस्ता उ शुर्मन्त एव ता नः स्वर्गमग्निं लोकं नयन्तु ॥२६॥

उतेषं प्रम्वीरुत सर्निवास उत भुक्ताः शुच्ययमामृतासः ।

ता ओद्भूत इर्मतिम्नां प्रविष्टा आपः शिषन्तीः पचता सुनाधा ॥२७॥

सक्याता स्तोकाः पृथिवी संचन्ते प्राणपानैः सर्निता ओषधीभिः ।

असंख्याता ओष्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्याप्तिः शुच्ययः शुचिस्वम् ॥२८॥

अर्थ—[पचत् अग्निः पुरस्तात् त्वा रथतु] पचानेवाका अग्नि ठीक आगेसे रथा करे । [मरुत्वान् दक्षिणतो रथतु] मरुतेमें दक्षिण दक्षिणकी ओरसे रथा करे । [प्रतीच्याः बर्हमः बर्हमे त्वा दंष्ट्रा] बर्हमसे बर्हम मुझे बाबा (मे) पारमें सुख करे । [सोमः त्वा उत्तरात् दंष्ट्रायै] सोम तुझे उत्तर दिशासे ओढकर सुरक्षित रखे ॥ २४ ॥

अन्नात् [पवित्रैः पूताः] अन्नात् पचन्ते] पवित्रसे पुनीत होकर मर्त्यसे आकर स्वर्गसे पवित्र करते हैं । [दिवं पृथिवी च लोकं यन्ति] तु और पृथिवीको प्राप्त होते हैं । [ताः बीजिताः जीवधन्याः प्रतिष्ठाः] वह जीवन देवताकी और जीवनको सम्पत्ता देनेवाली तथा स्वयं आकर देनेवाली [पात्रे आसिक्ताः] पात्रमें डाली गई अकपाराओं को [अग्निः पति इत्यां] अग्नि चारों ओरसे तपाये ॥ २५ ॥

[दिवा आभसि] जलवातमें सुकोकसे जाती है [पृथिवी संचन्ते] पृथ्वीपर एकत्रित होती हैं, [भूम्याः अभ्यन्तरिक्षं पचिषन्ते] मृमिसे वायुस्वरूपसे अभ्यन्तरिक्षमें जमा होती हैं । ये (मुक्ताः सुतीः ताः च सुमन्त एव) सुखहुए एक स्वर्गसे पवित्र करते हैं । [ताः नः स्वर्गं लोकं अग्निरयन्तु] ये हमें स्वर्गलोकको प्राप्त करावे ॥ २६ ॥

(उत एव प्रम्वीः उत संनिवासः) एक मित्रवत् प्रमाणपुत्र है और समस्त [उत भुक्ताः भुक्ताः बहुलासः च] और वह बह्वर्धक, पवित्र और बलुत है । [ताः प्रविष्टाः सुवीयाः आपः] वह जलमय शिखरमय उत्तम काना हुआ एक [इपदीम्ना ओषधं पचत] शीघ्रवर्धने किये जायक एक पकता है ॥ २७ ॥

[संख्याताः स्तोकाः पृथिवी संचन्ते] गिनेबुने अकविदु पृथ्वीपर आते हैं । ये [अयम्यमानैः ओषधीभिः अमिताः] जीवाधिकसे जाय मित्रवत् प्राणपानके गुणोंसे युक्त होते हैं । [असंख्याताः ओष्यमानाः सुवर्णाः शुचयः] असंख्यात विकारे हुए उत्तम रागवाले सुख कलायुः [सर्वं व्याप्तिः व्यापुः] सब पवित्रको व्यापते हैं ॥ २८ ॥

भावार्थ— अग्नि इन्हें बर्हम और सोम से देव पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशासे स्वर्गसे रथा करे ॥ २४ ॥ मेकसे दक्षिणात् पृथ्वीपर जाया एक पार्थिवी भरकर रथा जाता है । वह एक जीवार्थी जीवन देता पुत करता और पचन कराता है । इसकी अग्निहारा जलम किता जाने ॥ २५ ॥

एक वायुस्वरूपसे उत्तर जाता है और दक्षिणे दक्षिणसे नीचे पृथ्वीपर जाता है । वह सुख अवस्थामें स्वर्गसे सुख करता हुआ सुख पहुँचाता है ॥ २६ ॥

अने प्रमाणप्राप्ति प्रसङ्गोंपर बह्वर्धक पवित्र रीति बल करकेका है । ऐसा उत्तम एक अविच्छन्न स्थितिसे जाने हुए अकला पाक करनेमें अनुक्त ॥ २७ ॥

सुख लेते एकके विदु औषधीयसे विभिन्न प्रकार प्राणियोंके प्राण पारण करते हैं । परन्तु असंख्यात सुख अकविदु उत्तर उत्तर विकार करते हैं । ये ही जलम किता रहते हैं ॥ २८ ॥

उद्योषन्त्यमि वस्मन्ति वृत्ताः फेनमस्मान्ति बहुलांश्च विन्दन् ।

योषेव हृष्टा पतिमृत्विषयैस्तैस्तन्पुल्लैर्मेषता समापः

[११९]

उत्थापय सीदतो बुध येनानुमित्रात्मानममि स स्पृष्टन्ताम् ।

अमांसि पथिरुद्रकं यदेतन्मितास्तन्पुलाः ग्रहिणो यवीमाः

[१२०] (१५)

प्र यच्छ पथि त्वरया हरीषयर्हिसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।

यासा सोमः परि रात्र्यं बभूवार्मन्पुला नो वीरुर्वा भवन्तु

[१२१]

नर्षे बहिर्दोषानां स्तुवीत प्रिय हृदयशुभो वस्मन्ति ।

तस्मिन् कृषाः सह दुषीषिष्ठन्तिश्च श्राभन्त्युपुमिर्निषयं

[१२२]

घनस्पते स्तुवीर्या सीद बहिर्दोषोमैः संमिता कृषताभिः ।

स्वोद्वैव रूपं सुकृतं स्वचित्पेना एता परि पात्रे वदभाम्

[१२३]

वचन—[एताः वचनोपनिषत् अमिषस्मन्ति] एता एक मुद्र करवा है पुढारवा है [येन बहुकान् (कान् ए व अत्यन्ति) केम और हृष्टवचो केमता है । [ये [वायः] कको । [कोपा पति हृष्टा अत्यन्ति वाय सजवति] कंती कृष्ण की पतिको देकर कान् अर्जके किये एक होती है उसी प्रकार [एताः वद्वैवैः समकल] इस वाचकके साथ यह एक मिक जाने ॥ ११९ ॥

[बुध सीदताः एताम् उत्थापय] नीचे बैठे हुए इस वाचकको ऊपर उठाओ । [अमांसि अग्रमानं अमिषस्मन्त्यम्] ककोके साथ यह स्वयं अच्छी तरह झुलक हो जाय । [पय एतद् उद्रकं पात्रैः समाधि] यह एक पात्रोंके सिंघे दार मिक है । [इमाः ग्रहिणः वद्वैवैः मिताः] तथा ये चारों दिशाओंमें जानेवाले वाचक भी मने हुए हैं ॥ १२० ॥

[यच्छ प्रमथ्य] फाटा हो [त्वरया] तीव्रता कर और [ओषं हर] घडां के का । [बहिर्दोषः ओषधीः पर्वन् वस्मन्ति] दिशा व करते हुए काककी पर्वतको क्यदा जाये । [रात्रौ रात्र्यं सोमः पति वस्मन्ति] इस नीचाविके तान का रात्रा सोम है । [वीरुर्वा भवन्तु] नीचाविके हमारे साथ ओषधीव हो ॥ १२१ ॥

[नर्षे बहिः ओषधीः स्तुवीत] मनीस कडाई इस वाचकके किये कैसाओ । [हृदयः प्रियं शुभम्] वस्तु वस्तु यह सब हृदयके किये प्रिय और कैसाके किये सुंदर हो । [तस्मिन् कृषाः वीर्या सह विसन्तु] वही कैसाके समेत कर देव का जये । [मिषय इम कृत्यभिः श्राभन्त्यु] देकर हुए अच्छी कृत्योंके अनुपान खाये ॥ १२२ ॥

[घनस्पते स्तुवीर्या सीद वसन्ति] हे वसन्तिधिये उत्पन्न स्वयं । इस कैसा जामतपर बैठ । [बहिर्दोषैः देवताभिः संमिताः] अग्रिमोम पत्रके देवोंके संगमिता हो । [एताः वचनोपनिषत् रूपं सुकृतं] एता अपने ककोके ठेरे रूपको सुंदर बनाये हैं । [एता एताः पात्रे परि वदभाम्] ये छात्रवाक इस वाचकमें रहें ॥ १२३ ॥

मार्ग—[एक तप जानेपर उठकता है उद्रक करता है, पूर और उद्रुद्धोंके ऊपर फैलाता है मुद्र करनेके काल उत्पन्न करता है । पैरी कस्तुर की पठिके साथ मिकती है वेश ही वह एक वाचकके साथ मिक जाता है ॥ ११९ ॥

वाचक पत्रकेके समक साथ पत्रकेपर नीचेके ऊपर करने चाहिये विषयके ये सब अच्छे साथ मिक जायें । पत्रकेके पात्रमें वाचक और एक भी मिकने चाहिये ॥ १२० ॥

आमासी कडाईके किये नीच अच्छा फाटा हाथके ओषधीगले पात्र जोखकर काये, परंतु ओषधीयोंस वाच व का । ये सब छाक सोम रात्रके रात्रमें हैं । हृदय ही हृदया पोषण होता है ॥ १२१ ॥

वाचक पत्रकेपर ककोके रककेके किये बई चडाई कैसाओ । यह पैरी हो कि जो नीचाविके किये सुंदर और हरारे मिके प्रिय हो । वही सब देव वाचक बैठें और मनेच्छ कय करे ॥ १२२ ॥

वस्तुसम अपने स्वामनर दया जाय । वह स्तुम तर्कनके इतिहासेक बना है । अग्रिमोमके हृदय कय सुंदर वचन गवा है । हृदके साथ पात्रमें वह मान रहे ॥ १२३ ॥

पृथ्वां ध्रुवस्तु निशिषा असीध्यात् स्वर्गः पक्वेनाम्भभवात् ।
 तपैन जीवान् पितरंश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गन्तुयान्तमग्नेः ॥३४॥
 धर्ता ध्रियस्व पश्ये पृथिव्या अम्युतं स्वा देवतांश्चपावयन्तु ।
 त स्या दपती बीर्बन्ता बीवपुत्राणुर् वासयातः पर्यभिषानात् ॥३५॥
 सर्वान्त्समागो अभिषिष्य कोकान् यावन्तः कामाः समतीवृपस्तान् ।
 वि गहियामायवर्न च वविरैकस्मिन् पात्रे अम्युर्दैनम् ॥३६॥
 उपे स्तुषीहि प्रधप्य पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि चारयैत् ॥
 बाभेबोक्षा तर्कं स्तनस्युमिर्म देवासो अभिहिक्कुषोत् ॥३७॥

अन्व— [निशिषाः पृथ्वां ध्रुवस्तु] अथवा पाकक हाता हात कर्को [पक्वेन अथवाते स्वः असीध्यात्] पके भोजने हाते स्वर्गप्राप्ति की हक्का करे । [पितरः पुत्राः च एव वपजीवात्] पिता और पुत्र इसपर विहित हैं । [एतं अग्ने गन्तुं स्वर्गं गमय] इसको अग्नि के पात्रके स्वागते प्रति पहुँचाओ ॥ ३४ ॥

[धर्ता ध्रियस्वः पश्ये पृथिव्या] भाग्य करनेवाला तू अग्नि इषिकी के आभापर स्थिर रहे । [अम्युतं स्वा देवताः पावयन्तु] न दिक्नेवाले तुझे देवताई हिका देवें । [बीवपुत्रो बीवन्तो वपती] जिसके पुत्र जीवित हैं ऐसे जीवित को पुत्र [तं स्वा अतिषानात् परे कए वायवातः] तुझे अतिषानके स्वागते उदा देवें ॥ ३५ ॥

[तान् सर्वान् कोकान् अभिषिष्य] उच अच कोकोको जीतकर [समागाः वाचन्तः कामाः समतीवृपः] संमत हुए विच कामकाकोको तुमसे तुल जिरा है । [अम्युतं च पात्रे अभिषिष्य] कइसी बार अम्युत अदर वाक हो और [एकस्मिन् पात्रे एव अग्नि कजूर] एकही पात्रमें इसको एक ॥ ३६ ॥

[उपे स्तुषीहि पुरस्तात् प्रधप्य] बी बाको आगे कैकाको [घृतेन पुण्य पात्र अभिषात] बीसे बह पाम भर दो । [देवाः] देवों । [स्तनस्युं तर्कं बाधा कृता इव] स्तन पीनेवाले बड़बड़की जैसी गौ चाहती है वैसी ही देव इहे [अभि हिक्कुषोत्] मजबूतकर कइ करके हुए स्वीकार करें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—को अथवा समझ करके उठकी पककर हात करता है वह हात वपक हात करता रहेवा ही वह स्वर्गका अधिकारी होता है । इसी अग्ने को परिधायिक बन जीवित रहते हैं । और वह अथवा हवन अग्निमें करता है जो अग्नि इसको रक्षितें वपुषात है ॥ ३४ ॥

अग्नि सबका भाग्य करता है, वह अस्थिर स्थिर रहे । देववाचन उच अग्ने स्वागते हका हैं । जिनके पुत्रोंमें जीवित हैं देवे वीपुत्र अभिषानके अग्निमें उठाकर हवनस्वागते रहें ॥ ३५ ॥

एवमहि अच कामको वज्रात जीतकर अपना अच मजबूतपाओको तुल करनेके विधि इस अग्निमें वपन वातकर वपन बोधा वाच इव वात्रमें के जो ॥ ३६ ॥

वात्रमें बी कामी उच कैकाको विधि पात्र भर दो चारों ओर लगाओ । उचमें अच रचकर वह देवताओंको दो, ने रचका स्वीकार करें । जैसे रतन पीनेवाले बड़बड़की बी स्वीकार करती है ॥ ३७ ॥

उपास्तरिरकरो लोकमेतमुक्तः प्रवक्ष्यामसमः स्वर्गः ।

वसिष्ठायातै महिषः सुपुष्पो वेवा ऐन देवताभ्यः प्र यच्छान्

॥१८॥

यर्षजाया पचति स्वत् परापरः पतिवा आये स्वत् तिरः ।

स तत् सुवेष्टां सह वा सर्वस्तु सपादपन्ती सह लोकमेकम्

॥१९॥

यार्वन्तो अस्याः पृथिवी सचन्ते अस्मत् पुत्राः पति ये सप्तपुत्रः ।

सर्वास्तौ उप पात्रे ह्येष्टां नामिं भानानां शिष्टवः समायान्

॥२०॥

वसोर्या धाता मधुना प्रपीना पुष्टेन मिथा अमृतस्य नार्मयः ।

सर्वास्ता अर्ष रुचे स्वर्गं वप्यां ध्रस्वुं निधिषा अमीन्ध्यात्

॥२१॥

वर्ण- दूने [एत लोक अर्षः] इस लोकको बचाना और [वप अस्याः] वपको व्यवस्थित किया है । [वप्य अस्याः वप्य प्रवर्षा] जिसके सहाय कोई नहीं है ऐसा वह स्वर्ग ब्रह्म ब्रह्म । [वसिष्ठ महिषः सुपुष्पो आयातै] वसिष्ठ महिषः सुपुष्प-दूने-आयात करता है । [एन वेवा देवताभ्यः प्र यच्छान्] इसको देव देवताओंके किये देते हैं ॥ १८ ॥

(वत् वत् स्वत् परा परा वाया पचति) को कुछ ठेरेसे अन्न ठेरी वर्मपत्नी पचती है, है (जाने) की । (त्वत् तिरः पतिवा) ठेरेसे निकल कियकर पति को कुछ करता है (उप अर्षजाया) वह तुम दोनों मिठावो, (व वा सह त्वत्) वह तुम दोनोंका साथ साथ किया हुआ हो (एन कोई सह उपपादपन्ती) तुम दोनों एक ही ओरसे साथ साथ मग्न करते हो ॥ १९ ॥

(वायव्या अस्मत् अस्या पुत्राः) जिसने मुझसे इस नीचे उलट हुए पुत्र (ये परि संवत्सरा) को वहां जाते के हैं और जो पृथिवी सचन्ते) मातृसुमित्रि केवा करते हैं (वत् अर्षजा पति उपपादपन्ती) वह सबको वायव्य ओरसे निकल पुकारें । (मिथा अमृतस्य नार्मि अमृतस्य) पुत्र भी आते हुए इस एक ही केन्द्रमें आ जायें ॥ २० ॥

(वा मधुना प्रपीना पुष्टेन मिथा) जो मधुसे भरकर और पीने मिलित (अमृतस्य वायव्य वसोः वात्) अमृत केन्द्रमूल वसो की धाराएं हैं (वा सर्वाः सर्वैः अर्षजा) इन सबको सभी करने पात रहें । (निधिषा अमीन्ध्यात् ध्रस्वुं अमीन्ध्यात्) निधिषा रक्षक साह बर्षोंकी आयुमें इसकी इच्छा करे ॥ २१ ॥

भावार्थ-— ईश्वरने इस लोकको और स्वर्गको बचाया और विस्तारने करके कैलाश है । वसिष्ठ महिषः सर्व विपश्यते है । वह देव इसके महाशक्ति सुप्रकाशित होते हैं ॥ १८ ॥

वसी को करे अन्ना पति वा करे वह सब मिठावा जाये, दोनोंका मिलकर एक संसार हो । दोनोंमें भव न हो । दोनों मिलकर कर रहें और ब्रह्म ही परब्रह्मर्षी कोमा बचाने ॥ १९ ॥

पतिवायेको जिसने पुत्र हो अन्ना संसार ही जीवनके समय सबको एकत्र पुकारा जाये । क्योंकि एक देव है आत्मा परब्रह्मर्षी है । सब मातृसुमित्रि केवा करें ॥ २० ॥

ये देवर्षिके प्रयास करव और पीने मिले हुए अमृतस्य देवको स्वर्गमें है इनकी इच्छा वचनाव अपनी आयु पर होनेके बचाव करे ॥ २१ ॥

निधिं निधिषा अभ्यनिमिच्छादनीधरा अमिदः सन्तु मेइन्म ।

अस्मार्मिर्भुचो निहितः स्वर्गोद्धमिः कण्ठैस्त्रीन्स्वर्गानरुधत् ॥४२॥

अधी रक्षस्तपसु यद् विदेधं क्रुम्यात् पिप्पलाध इह मा प्र पास्त ।

नुदाम एनमपं रुध्मो अस्मदावित्या एनमार्तिरसः सधन्ताम् ॥४३॥

आवित्येभ्यो अक्विरोभ्यो मण्डिद पुतेन मिभ प्रति वेदयामि ।

झुदईस्तौ बाह्यगस्यानिहस्पेत स्वर्गो मुकुतापपीतम् ॥४४॥

इद प्रापमुत्तम कान्धमस्य यसांछोकात् परमेष्ठी समार्प ।

आ तिष्ठ सपिर्भुतवत् सपंकष्येप मागो आर्तिरसो नो अत्र ॥४५॥

वर्ष—(निधिषा एव निधिं लब्धीकृतम्) मिथिका रक्षक बलमात्र इव मिथिकी इच्छा करे । (वे लम्बे लम्बीधरा अमिद सन्तु) जो दूसरे देवर्षीय है वे चारों ओर भटकते रहें । (अस्मामिः दृष्टः स्वर्गः मिथिः) हमारे द्वारा दानसे प्राप्त हुआ स्वर्ग सुरक्षित रखा है । वह (मिथिः) कण्ठ ग्रीव स्वर्गात् बलकृतम्) तीनों विभागोंसे तीन स्वर्गोंके ऊपर रहते हैं ॥ ४२ ॥

(यद् विदेधं रक्ष अग्निः तपसु) जो ईश्वरके विरोधी राक्षस हैं उनको यदि तप देवे । (क्रुम्यात् पिप्पलाध इह मा म्यात्) रक्षकमनुष्ठानक क्रोध वहाँ उत्पन्न भी न करें । (एव पुनः) इस दूसरे हम मृत कर दें (अस्मत् बलकृतम्) अग्रेसे इच्छा पात्र जाने नहीं देते । (आवित्याः अक्विदः एव सपन्ता) आवित्य और अक्विद इस दूसरे पर रहें ॥ ४३ ॥

(इह मा पुतेन मिभ) वह मनु जीसे मिथित हुआ (आवित्येभ्यो अक्विरोभ्यो प्रतिवेदयामि) आदित्यों वार अति रणों किये है ऐसा कहता हूँ । (झुद-इस्तौ बाह्यगस्यानिहस्पेतुः) जो झुद हाथ बायी मनुष्यका आदि नहीं करते वे पुनः प्राप्त होते हैं । वे (एतं स्वर्गं अग्नि इव) इस स्वर्गको पात्र हों ॥ ४४ ॥

(यसांछोकात् परमेष्ठी समार्प) जिस कोकसे परमेष्ठी परमेश्वर प्राप्त होता है (अस्म इव उत्तम कान्धमस्य) इसका वह उत्तम भाग मेरे प्राप्त किया है । (सपिर्भुतवत् सपंकष्येप) जीसे पुनः मय वहाँ एक बार मिथि (या एव मागो अत्र अग्निरसः) हमारा वह आय आदित्योंका है ॥ ४५ ॥

मार्गार्थ—मिथिका रक्षक बलमात्र दानद्वारा भेद देवर्षीय इच्छा करे । जो दूसरे देवर्षीय है वे चारों ओर भटकते रहें । हमारे दानसे प्राप्त हुआ स्वर्ग ही वह है या तीनों विभागोंसे तीनों स्वर्गोंसे भेद है ॥ ४२ ॥

या ईश्वरके विरोध करते हैं जो रक्षक या नाश करते हैं उनको पात्र जाने न दो रह रखा । वे समापके कृत हैं ॥ ४३ ॥

झुद और भी एक देवताको दिया जाय । या मिथिकी विद्या नहीं करते उनको पनिग्र हाथ रहते हैं । वे ही स्वर्गको प्राप्त कर सकते हैं ॥ ४४ ॥

अग्नि परमेश्वर काष्ठको प्राप्त होता है अतः उत्तम स्थान मनुष्य प्राप्त करे । या जीव मनु अग्निर तपन लब्ध जाये और देवताकाके उद्देशसे अर्पण किया जाये ॥ ४५ ॥

सत्यायं पु उपसि देवताभ्यो निषिं श्वेषि परि दध एतम् ।

मा नो घृतेऽर्घं गान्धा समिस्थां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पूरा मत्

[४६१]

अह पंचाम्यहं वंदामि ममेव कर्मन् कुरुषेऽधि आया ।

कौमारी लोके अचनिए पुत्रोऽन्वारमेयां यय उधरायत्

[४७१]

न किस्विपमश्च नाधरो अस्ति न यन्मित्रैः समर्ममान् एति ।

अर्नत् पात्र निहितं न एतत् पक्कारं पक्व पुनरा विश्राति

[४८५]

त्रिष त्रिपाठां कृण्वाम सप्तस्ते बन्तु बभुमे द्विषन्ति ।

धेतुरर्नद्ववान् वयोषय आयवेव पौर्षेयमर्प मृत्यु जुदन्तु

[४९५]

सप्तप्रपौ विदुरन्यो अन्य य ओषधीः सधते यश्च सिन्धून् ।

यार्धन्तो दुवा विन्याः सधन्ति हिरण्यं ज्योतिः पधतो वभूव

[५०॥ (१७)]

अर्थ— (सत्याय उपसि देवताभ्यो) अर्घ्य, उप और देवताओं के किये (एव शेषाधि विधि परि दधा) ॥ ४६१ ॥
 (मा नो घृतेऽर्घं गान्धा समिस्थां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पूरा मत्) जोल और सपानें वह हथके दूध न होने और (अह पंचाम्यहं वंदामि ममेव कर्मन् कुरुषेऽधि आया) मुझे कोइकर घृतेको भी न मिले ॥ ४७१ ॥

(अह पंचामि अह वंदामि) मैं पक्का हूँ मैं दान देता हूँ । (मम जाया कस्मे कर्मन् अधि) मेरी कर्मन्तों द्वारा मम कर्मों का पक्का करती है । (कौमारी पुत्रा लोका अचनिए) कुमार पुत्र इस लोक के किये हुआ है । (अन्वारमेयां यय उधरायत्) उधर उधर (अचनिए) उधर अचनिए उधर करनेवाला अपना लीजकर अचनिए के लीजकर करे ॥ ४८५ ॥

(न किस्विप) यही अर्थमें कोई बात नहीं । (न जायतः अस्ति) न कोई जायतमें भी रहता है । (एतत् पात्रं न पूर्णं भित्ति) यह पात्र बरिपूर्ण रहा है । (पक्वः पक्कारं पुत्रा आश्राति) पक्का हुआ पक्वपक्वके पात्र फिर आ जाता है ॥ ४९५ ॥

(त्रिपाठां त्रिष कृण्वाम) मित्रों का त्रिष हम करे । (बभुमे द्विषन्ति) जो द्वेष करते हैं व कर्मों में जाँच । (धेतुः अनद्ववान् वयोषयः आयवेव) गौ और बैल के बल ही करते हैं । व (पौर्षेयं मृत्यु न्य जुदन्तु) मनुष्य की मृत्यु दूर करें ॥ ४९५ ॥

(यार्धन्तो) अन्तर्गत से विदुः) अग्नि परस्परको आते हैं । (वा ओषधी सधते वा व सिन्धून्) जो औषधियों को भाग रहता है और जो दुर्गाओं को रहता है । (यार्धन्तो) देवा दिवि आचरन्ति) अर्धन् देव पुत्रों के प्रकाश से रहते हैं । (हिरण्यं ज्योतिः पधतो वभूव) अर्धन् ज्योति अर्ध पक्वपक्वके द्वारा के किये मिले ॥ ५० ॥ (१७)

भाषा— अह पंच और देवताओं के किये वह हथ हथके करते हैं । वह हथ हथके किये प्रकार दूर न होने न उधर दूर ही और न मम में दूर ही अर्घ्य उपसा हथके पात्र रह ॥ ४६१ ॥

मनु व अह पंच और दान करे । जो भी कर्मों में दधत्त यत्न करे । इस तरह दान पुत्रों उत्पन्न करे और उधर अचनिए करे ॥ ४७१ ॥

दान करनेमें कोई बात नहीं न हममें दूध दूध रहता है वह इस मित्रों के साथ भी जाता नहीं । वह दान प्रकाश दूध दान आ न परिपक्व होनेपर फिर हल कर्म दानों के बल बलिया ॥ ४८५ ॥

मनुष्य अनद्ववान् दित करे । देवी अर्धन् दूर दूर देव । जो अग्नि दूध मनुष्य का आरोग्य भाग जो वन देवी है और म वन दूर करती है ॥ ४९५ ॥

एषा त्वचां पुरुषे स नमूवानां प्राः सर्वे पृष्ठो ये अन्ये ।

ध्रुवेणात्मानं परि चापपाधोऽमोहं नासो मुखमोहनसं

॥५१॥

यक्षुषेण वदा मत् समिस्थां गदा नदा मर्तुतं विचक्राम्या ।

समानं तन्तुमामि सुषर्सान्ती तस्मिन्स्पर्शं धर्मस सादयाधः

॥५२॥

उषं धनुष्पापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।

विषम्येषा घृतपृष्ठो मयिभ्यन्तसर्पोनिर्लोकमुषं याजेतम्

॥५३॥

तन्मिस्त्रिर्गो बह्वृषा वि चक्रे यथा विद आत्मभुन्यवर्जाम् ।

अपावैव कृष्णं कर्षती पुनानो या लोहिनी तां वै अमी जुहोमि

॥५४॥

अर्थ—(पुरुषे एषा त्वचां सवक्षुष) मनुष्यमें यह त्वचा जन्म त्वचाजैसे उत्पन्न होती है । (ये अन्ये सर्वे पृष्ठो) जो दूसरे पुरु हैं वे पृष्ठ नहीं हैं । (ध्रुवेण आत्मानं परि चापपाधः) धौर्मेधे अपने आपको मोहनेके लिये को । (नासो — उतं नासः मोहवक्ष्य युक्तं) निककर युवा वक्ष्य चारकोपर हाकने योग्य वक्ष्य वक्ष है ॥ ५१ ॥

(यक्षुषेण वदा) को केकीमें तुम बोलते हो (गदा पशिसां) को खपायें बीकते हो (नदा वा विचक्राम्या मर्तुतं वदा) को पक्षी इच्छते अन्नस भावस किया हो अन्नस (उषं धूमं पर्युत्पातयासि) सब दीप उसीमें रख दो और (समानं तन्तुं धमिसवर्जाम्) समान वक्ष्य पहनाव तुम कर दो ॥ ५२ ॥

(उषं वदुष्य) इष्टि की शक्ति करो, (देवाय अपि गच्छ) क्योंकि पाद जाओ (त्वचा परि पूल उत्पत्तयासि) त्वचा के करका धूरां कदा हो । (विषम्येषा घृतपृष्ठो मयिभ्यन्तः) विषमं विलुप्त घृतके मुख होनेकी इच्छा करनेवाला (सपो मि एत कोक उपवाहि) अन्तर्हीन होकर इस कोकमें पाद हो ॥ ५३ ॥

(स्वर्गो बह्वृषा तन्मं विचक्र) पुकोक ही बहु प्रकारके अपने शरीरकी बनाव है (यथा आत्मन् अन्ववर्गं विद) आत्मवत् दूसरे वर्गकी सी देखता है । (कर्षती पुनानः) तेजस्वी बाकारको पकित करता है (कृष्णं वपावैव) हाके कमरे में करता है (या लोहिनी तां वै अमी जुहोमि) को हाक कम है उलको बारीमें रख करता है ॥ ५४ ॥

भाष्य—अग्निशैल परस्पर कर्मच होकर लोहायमें और दूसरा अग्नि रहता है । आकाशमें प्रकाशकेयुक्त देव अपना प्रकाश धारण करता है ॥ ५१ ॥

सब अन्य पक्ष नहीं हैं, उनको ईश्वरमिथित वक्ष है । परंतु मनुष्यके लिये मोहनके वक्ष चाहिये ऐसीही त्वचा मनुष्यको स्वप्नमें मिठी है । इक्षुषि विचक्राकर वक्ष नुकी और पहनी । वही वक्ष चरक बाधिर भी बाधनेके लिये रखे ॥ ५२ ॥

को केकीमें अन्नस बोलते हैं या खपायें और जो पक्षी इच्छास अन्नस बोलते हैं उनके धन रापक्ष दूर करी प्रपाक्य बारण करी और समानताके लिये समान ही वक्षस पहनाव करो ॥ ५३ ॥

इष्टिका योग्य उपयोग्य करो वक्ष स्वर्ग जाते न हो । देवताकी उपासना करो अपनी निर्दोषता करो । यक्षमें प्रसिद्ध होओ, इष्टिकरक पहार्य पाद रखी इस मुखमें मानववातिकी देवा करो ॥ ५४ ॥

पुकोक ही अनेक रूप धारण करके इस दिग्गो बनाव है । हावी सबके अन्ववर्ग ही देखता है । मनुष्य तर्कशुन्यको ॥ को परपुत्रको बकने और लोभुषस भाव करे ॥ ५४ ॥

प्राच्यै त्वा विष्टेऽद्येऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आविस्वायेषुमते ।

एत परि दघस्त नो गोपायतास्माकमैतौः ॥

दिष्ट नो अत्र अरसे नि नैपज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्स्वर्ष पुक्केन सह स भवेम ॥५५॥

दक्षिणायै त्वा विष्ट इन्द्रायार्धिपतये तिराभिराजये रक्षित्रे यमामेषुमते । एतं ०।० ॥५६॥

प्रतीच्यै त्वा विष्टे वरुणायार्धिपतये पृदाकये रक्षित्रेऽन्नायेषुमते । एतं ०।० ॥५७॥

उदीच्यै त्वा विष्टे सोमायार्धिपतये स्वर्वाय रक्षित्रेऽध्वन्या इषुमस्यै । एत ०।० ॥५८॥

ध्रुवायै त्वा विष्टे विष्णवेऽधिपतये कुरुमार्धग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ॥ एतं ०।० ॥५९॥

ऊष्वायै त्वा विष्टे बृहस्पतयेऽधिपतये शिवाय रक्षित्र वषायेषुमते ।

एत परि दघस्त नो गोपायतास्माकमैतौः ॥

दिष्ट नो अत्र अरस नि नैपज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्स्वर्ष पुक्केन सह स भवेम ॥६०॥ (१८)

॥ इति सूतीयोऽनुवाकः ॥

अथ— (प्राच्ये दिष्टे) पूर्वे दिक्षामे (अद्ये अधिपतये) अग्नि अधिपति (रक्षित्रे असिताय) रक्षककर्ता प्रीति (इषुमते आविस्वाय) इषुवाका आदिभ्य (रक्षित्राये दिष्टे) रक्षित्र दिक्षामे इन्द्र अधिपति रक्षककर्ता तिराभिराजये स म इषुमान् (प्रतीच्ये दिष्टे) पश्चिम दिक्षामे वरुण अधिपति, रक्षककर्ता पृदाक इषुवाका अथ (उदीच्ये दिष्टे) उत्तर दिक्षामे सोम अधिपति स्वर्ग रक्षककर्ता ओषधीभ्य इषुमती है (ध्रुवायै दिष्टे) ध्रुव दिक्षामे विष्णु अधिपति कुरुमार्धग्रीवा रक्षिता और औषधियां इषुवाकी है (ऊष्वायै दिष्टे) ऊष्म दिक्षामे बृहस्पति अधिपति शिवा रक्षिता और वषा इषुमान् है । इसके किये (नम परिपद्यः) हम इसका दान करते हैं । (स वा येन सह स स्वीकार करके हमारी रक्षा करो । (अरसाक वा पयोः) हमारी उच्छतिसे किये सहामक हो । (अथ वा जलं रिक्तं विषेव २) वहाँ हमारी मृदु आधु होनेके किये योग्य मार्गसे हमें के जल । (वरा वा मृत्यव परि वरसु) मृदात्स हमें मृत्युवक पशुधारे । (अथ पक्केन सह स भवेम) और पतिपत्न्य पुक्केने साथ हुआ पुन उत्पन्न होते ॥ ५५-६० ॥

भाष्य— प्रत्येक दिक्षामे अधिपति रक्षक और इषुमान् बोध है वे सबकी रक्षा करे । उनकी हय योग्य दान से न पालन करते हुए हमें उच्छतिपशुधारे । वे हमें इच्छावस्थावक सुपक्षित पशुधारे और वहाँसे मृत्युवक से धर्म मृत्यु से परेपश्य कर्मकर्मसे अथ हम फिर जन्म जन्म और वहाँ उच्छतिसे प्राप्त करने ॥ ५५-६० ॥

गृहीत अनुवाक समाप्त ॥ ३ ॥

स्वर्गका साम्राज्य ।

स्वर्गका साम्राज्य सब मानव जातिके लिये खुला हुआ है। इसको प्राप्त करना और वहाँ शीर्षकाव्यक्त रहना हा एकमे लिये बोनय है। परंतु यह सुकृतका लोक होनेसे यह पदम हमें लिये लिया प्राप्त नहीं हो सकता। यह बात सबको समझें रखनी चाहिये। यह स्वर्ग इस मूल्यके भी है और परमेश्वरके भी है। परमेश्वरका स्वर्ग प्राप्त करनेके लिये भी नहीं प्रकट करना पड़ता है। इससे स्पष्ट होता कि वहाँ जवना परमेश्वर स्वर्गलोक प्राप्त करना मनुष्यके पुनर्जा-पनपर अवलंबित है। इस लुकका लक्ष्यसे यह तात्पर्य है। सब समझें: इस बातोंमें जो मुख्य मुख्य उपदेश कहे हैं उसका निरीक्षण करते हैं—

बलका महत्व ।

स्वर्ग प्राप्त करनेमें बलका महत्व है। बलके लिये जोह बलति प्राप्त नहीं हो सकती। यह बल हरएकको प्राप्त करना चाहिये। मनुष्यमें जो सबसे अधिक सामर्थ्यवान् और प्रभावशाली होता वह राष्ट्रका अधिपति या तो। कोई दुर्बल एकमात्र न रहे। क्योंकि राष्ट्रकी बलति प्रकट राजकाशिवर ही अवलंबित रहती है। शिर्षक राजाके कारण वेपूर्ण राष्ट्र दुर्बल हो जाता है। अतः युक्त प्राप्तिही शक्ति करनेसे लोको लोको बलति है कि वे सामर्थ्यवान् प्रकटकी राष्ट्रविप्लवाके स्वावपर सिद्धि करें। यह अधिपति अपने पुनोन्म सामर्थ्यवान् मनुष्यविशेषोंके सहका करे और उनकी सहायतासे राष्ट्रका शासन चलावे। इसका शासन निर्भरन करे और सबकी बलति होने योग्य मुख्यवस्था रहे। इसका नाम सम्राज्य अर्थात् विश्वमें अनुसार चक्रेनाम राज्य है। [१]

इस तरह राज्यकाय होनेके बलान् आपकी उचित है कि आप अपनी तबि लूम और परिश्रम करें अर्थात् पुनोन्म रूप प्राप्त करें शीर्ष अर्थात् अधिक बलोंको प्राप्त करें। अपने राष्ट्रमें दूरगति और सामर्थ्य लितना अधिक होगा तबना ही आपका कर्त्तव्य होनेवाला है। अतः राजा सब सामर्थ्य ज्ञान और दूरगति बलना आपका मुख्य कर्त्तव्य है। परिपक्व होनेपर ही विद्वान् उत्पन्न होती है अतः आपकी

उचित है कि आप अपने आपकी परिपक्व करें जिससे आपका कर्त्तव्य होगा। [२]

एकताका संदेश ।

इस लोकमें तुम सब मिलकर एकतावसे रहो परमेश्वर उपाधना भी मिलकर करो राज्यम्बवस्था भी मिलकर चलाया, जो कुछ पराक्रम करना हो वह मिलकर ही हो सकता है। मिलनेसे ही बल बढता है। मिलनेसे लिये अपनी एकता और विरोधता उपादन करनी चाहिये। जितना उपठन होया उतना बल बढ़ेगा और जितना बल बढ़ेगा उतना प्रभाव विशेष होगा। इस तरह वह एकताका संदेश माननी उचितके लिये वहाँ कहा है। [३]

सब जोयेति वह कहना है कि वे अपने जीवनको धन्य बनानेके लिये प्रयत्न करें। यह प्रयत्न जितना मिलकर होगा उतना बल तुम्हें प्राप्त होया। अतसमें दूट रहनेसे तो नहीं मानका बीज बढेगा। तुममेंसे प्रत्येकको जलूत प्राप्त करनेका अधिकार है। बरमे ही पुन और एहपति मिलकर रहते हैं, वहाँ एकताका उपदेश मिलता है और वहाँ प्रकाश प्राप्त हो सकती है इस एहसासमें माता भव फलती है जिसे भव जाता है पुन जन्म-न कर्म करते हैं। इस तरह वरस्वरको सहायता करनेसे सबको बलविक्रम प्राप्त हो सकता है। इस तरह विचार करके पाठक एक-ताका शेष प्राप्त करें और सबका आचरण करके उन्नत हो जायें। [४-५]

बारे पुनर्जापन को हुए है न कर्मकार केमत रहे हैं, इसकी बलाभास केवा ही रही है तदर्थका आज्ञा तथा योग्य होनेसे इसीको मिल रहा है वही इस लोकका तेजस्वी स्वर्ग है जो प्रत्येक मनुष्यको प्राप्त करना चाहिये। [६]

चारों दिशाओंमें हलचल ।

उचितके लिये हलचल तो चारों दिशाओंमें एक करनी चाहिये। पूर्व दिशा जन्मकी दिशा है सब प्रयत्न इसी

दिखाये प्राप्त होता है। यज्ञाशान् जोष ज्ञान प्राप्त करने ज्ञानका प्रसार एवं करें। यज्ञा सुष घनको प्रकाश देता है ऐसा प्रकाश घनको मित्रे। ज्ञानका उपवीम अपनी रक्षाके लिये किया जाने। अथर्वस्य मित्रकर कार्य करें और सब काम करनेसे सुप्रसन्न हो। [८]

ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् यज्ञताके उद्योग करने चाहिये। यज्ञता म रही तो सब बल निष्फल हो जाता है। वह संदेस वसिष्ठ दिया व रही है। वहां वस अर्थात् निवासक वस है। वह करता है कि निवासमें रहा। निवास अन्तरकर अन्तर तो मरा वस उद्योग है। उद्योग सुदृढता वहां हा सज्जा। इस निवासके साथ पितर भी व। वे सबके रखक हैं। रक्षा करना और निवसतिरुद्ध आचारण न करना ही वहां का उपदेश है। जो वह उपदेश केकर उपरुद्ध वसने वे ही उन्नत हो सकते हैं। [८]

अभिषि दित्वा विभक्तको सुचना देती है। जोष सुप्रसाध करनेके पश्चात् मित्रम अवस्थ लेता चाहिये मित्रके साथ-और प्रवास करनेका एक प्राप्त होता है। अर्थात् विभक्त अर्थात् पुत्रादीके लिये होना चाहिये। वहां छोटा वि नौवयिवा है निवास करनेके एक पुत्रि और आयु बढ़ती है। [९]

उपर दित्वा उन्नत अवस्था प्राप्त करनेकी सुचना दे रही है। अपने पशुकी अवस्था उन्नत करो भेद करो सब प्रकारके कार्य वही पशु पशुको समुदाय उन्नत हो अन्तर्गत सज्जि करो किन्ति भी अपने पीछे न रहो। वह उपदेश वहां मिलता है। [१०]

मुप्रदित्वा स्विताशान् संदेस दे रही है। अपने वचनपर स्थिर रही अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर रही मुद्रा में अपने रक्षान पर स्थिर रहा अर्थ वचन न हो। अपनी रक्षा करनेके लिये पुत्रादी जोष तीर्थके पावन करनेके लिये अपने पुत्र काम करनी के लिये स्थिर होनेको सुचना इस दिशाध मिलती है।

इत एव न सब दिक्ताई मनुष्यको वे उपदेश दे रही है। वह उपदेश मुद्राकर मुद्रावर्तों उन्नतिका वाचन करनेका कार्य विहित हा सज्जा है। इस मार्गक मनुष्य जाय और अपनी उन्नति का वाचन को [११]

ऊत्सुल और मूत्सुल

पुर्वोक्त पावन उद्योग तीर्थके दिना अपने। यन्मनु वसं मुद्रा और कन्वापकरी रक्षा करने। उत्सुल तीर्थ और वसं वसि मनुष्यमें वह और सबको वस मी प्रवास प्राप्त हो। परम उत्सुल और मूत्सुल पानीके कोई न पियारे स्थिति वह मूत्सुल रक्षा तो ही अन्तर कार्य कर करता है। वह पशु स्थानमें रह और वाचन अग्नि स्पर्श करने की वता लो [अर्थात् वसं वसका उपदेश वह है कि [मर्त्य] यज्ञा शाक किने नावत जाता आदि कोई न जाने। परंतु परम उत्सुल मूत्सुल स्पर्श हावत पीछा मूत्सुल और उत्सुल मूत्सुल हाव हावके शाक किने वाचक मनुष्य कार्य। यज्ञ-वस इच्छा विचार करें। क्योंकि इस कार्यके लिये पशु को वस धारु हुए हैं। वंशसे स्पर्श करनेके वाचनके जीवनन वह होते हैं और हावके शाक करनेके वे जीवनन इच्छा रखे जाते हैं। वे उपदेश हाव वताता चाहता है कि यज्ञा पशुका वाचन कोई न जाने और वंशके विहित वाचक वे कोई न केन। इस परीक्षा जीवनानु प्राप्त होते और उन्नत आरोध रहेगा। जीवनक वैदिकवर्मा ऐसा है कि जो अपने ऐसा करेगा और करने के काम करनेकीने तो वैदिक उपदेश मानेगा? [१२-१४]

वही कहती है वना उत्सुल और मूत्सुल वैदिकवर्मा है जो उत्सुल और पशुको वस कोमल दूर कर करता है। वह इस उत्सुलको वाचना है। अनया इस कोमल मुद्रा। जो ओष वर परम उत्सुल मूत्सुलके वाचनके शाक करने उत्सुल सेवन करने वनपर तक्षकों और दिक्ताशेका इच्छा वही हो सकता। [अर्थात् वा मर्त्य-वंश-हाव सबे वस आदि कार्यके उन्नत वाचन वे ही उत्सुल और पशुका वस। अतः ओष वसकर रहे] [१]

पशुपालन।

पर परम वा आदि पशुपालन पावन हो। पर वस नक्षत्राण होते रहे। पर परम देवताओंका स्मरण होता रहे। वस वाचु आदि देवता किसी भी परम अन्नक व रहे। वही भी अन्नकता उत्सुल न होवे। [१२]

गृह्यपद्धत्या ॥

भी और पुत्र तथा सुप्रति मिश्रकर वर होता है। वे व परम मित्र उत्सुल रहे। इस पद्धताक विषयमें अपने

कई ३५ २ में जो उपदेश आया है वह पाठक नहीं देखें। वह उतम उपदेश है और हर एक गृहस्थाश्रमीको सदा आत्ममें धारण करने योग्य है। पुरुष जिस क्रीडा पाणिग्रहण करे वे दोनों परस्पर अनुसूक्तोंके साथ रहें, आपसमें झगडा न बनावें आपसमें झगडा करेगे तो बुद्धि और नासको प्राप्त होमि वह हर एक गृहस्थाश्रमी स्मरण स्वभावादि है। वरके सब लोग आर्क्ष-प्रसन्न और मित्रमुक्त रहें और प्रकृत धर्म लयनी उद्योगिता प्राप्त करते हैं। [१]

एक मित्रकर दक्षतासे सब रीतोंको दूर करें अज्ञान और अंधकार दूर करें। घरमें अन्नभार न रहे क्योंकि अन्न घरमें रोगजन्य रहते हैं और रोग होते हैं। अतः घरमें बहुत अन्न न रहने पावे ऐसा घर बनाया जाय। घरघरमें लक्ष्मीका बना अन्न और मूल्य है। और उधोमें आपस प्राप्त करने समझा है। अन्य घरक लोग रहे। [१८]

अन्न मूल्यके धाक किये जानसे हुए आदि दूर घरके किये हुए करते रहे। इस हुए-अन्नसे आपस आदि धाक किये जाय, हुए इत्यादि आदि और लक्ष्य प्राप्त किये जाय। इनका ही धेन पुरस्ती करे। (१९)

जिस रीतों कोकोका आश्रय और स्थाय्य प्राप्त होता है ऐसे हुए आपस ही तरह स्वयं होते हैं। [वन-महीन हुए धाक किये आपस ता रक्षकों और पिताको अर्थात् लक्ष्य रीतोंको पुष्पलक्षि है।] वे आपस को अन्न और मूल्य हुए तथा अन्नसे धाक होते हैं वे जो आपसान करनेवाले अर्थात् सब घरघरकी बुद्धि करनेवाले हैं। (२)

घरमें पुनः पुनः केकेकर इस तरह आपस स्वयं किये जाये। अन्तर्गत जो अन्न (घर) लक्ष्मी होता है उसका मूल्यके रूप पूरक इत्यादि आते। अतः पीपी वक्ष्य स्वयं करता है ऐसा ही अन्न मूल्यका है। वे आपस स्वयं किये आपस और इनका धेन पुरस्ती कर। पशुओंमें विविध रंग होते हैं परंतु एक ही अन्न काकर के लोपुष्ट होते हैं। इस प्रकार विविध रंगलक्ष्य मनुज इन आपसोंमें धेन करके हुए, हुए और विविधो बने। (२१)

पक्षानेका कार्य।

अब पक्षानेका समय आता है। इसका किये बहुत प्रकारक वर्तन होते हैं। वे वर्तन मित्र ही अनेक प्रकारक बनाये जाते हैं। वे पूरे रहे न हो खुशाले नहीं। किसी समानपर द्वारा

हो तो उसको द्वारा वह किया जाये। किसी मता पुत्रको प्या रहे संभाष कर लेती है वह प्रसन्न वे वर्तन वर्त जाय। ऐसे वर्त जाय कि वे न टूटें। केकली बरकोई पक्ष आदि वर्तन खुलेपर समानकर रहे जाय। हमें समझ रहे जाय और वे पात्र दूज आदि स्थिति रहे। (२२—२३)

इन पक्षोंका रक्षा करो मोरसे जाने। अग्निसे रक्षा हो अर्थात् पात्र अक्षी तरह वक्ष्य हुआ हो। वक्ष्यदेवताके अक्ष्य इसकी रक्षा हो अर्थात् पक्षीमें धाक जानेवाला न हो, वक्ष्यदेवता द्वारा इसका दूज जानेका समय न हो। (२४)

जलका महत्त्व।

पृथ्वीके जलमें मांस वक्ष्य संवर्धकमें जाती है वहां मांस बनते हैं उससे हडि हीकर फिर वह जल पृथ्वीपर आता है। वह जल प्रसिद्धो जलन देनेवाला और जीवनदायक बनाता करनेवाला है। वह पक्षोंमें अक्ष्य रक्ष्य और पक्षोंके समय वह पात्र खुलेपर रक्ष्य आदि है। वह परिशुद्ध जल मनुष्योंके पुष्प देनेवाला है (२५—२६)

वह जल मनुष्योंमें वक्ष्य अतः प्रसन्नता उत्पन्न करता वीर्य बढ़ाता पवित्रता करता और रोमांश मनुष्योंको दूर करता है। वही जल गृहस्थोंके अन्न पक्षोंमें प्रयुक्त होने। [२७]

जोकाका जल दक्षिण मूर्धिर निरकर औषधिवनस्पति-नीम काकर-उषध पुष्परी औषधिर वनस्पति है। वह मनुष्योंका हित करता है। इसके अतिरिक्त इतना हितकारी पक्ष अन्न मेकोई वक्ष्य ही गिरता है वह सब जल के अभावता है। [२८]

अब वर्तनमें जल काकर तथाका जाता है तो जलके अनु एक खुलेपर जलमें ही और एका प्रतीत होता है कि वे परस्पर मुक्त करते हैं अर्थात् करते हैं वा अन्न करता है। जैसी ही पक्षोंके देखकर उसके मांस अक्ष्ये मित्रता आहोती है ऐसा ही जल पक्षोंके समय आपसोंका आपस मित्रता है जिससे आपस वक्ष्ये हैं। [२९]

पक्षानेका समय वर्तनमें जलका वक्ष्य नीचे आवन अक्ष्य आर अक्ष्ये नीचे अन्न अक्ष्य है। अर्थात् अक्ष्यी तरह आपस विद्यमान आदि है। निजक अब हर एक आपसक धाक अक्ष्य

तद्विधि प्राप्त है और प्रायः उत्तम रीतिसे एक कार्य । [३]

आत्ममात्री ।

येसे प्राप्त करने होते हैं उसी प्रकार आत्ममात्री प्राप्त होती ही रीति है । उत्तम परब्रह्म, सुख आत्मा के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर ।

एकमेपर ।

प्राप्त करने पर उसके लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर ।

एक तरफ नष्ट करनेसे प्राप्त करने के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर ।

अर्थात् सुखोपयोग विषय प्राप्त होनेसे ही प्राप्त होने हैं । विषयके विना मोक्ष मिथ्या व्यवहार है । वह एक वस्तुके लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर ।

सुखमेपर एकता ।

ही एक करती है प्राप्त भी प्राप्त करने के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर ।

आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर ।

सुख प्राप्त करने के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर ।

देवनिन्दकको दूर करो ।

कई लोग देवताओंकी निंदा करनेवाले होते हैं, उनके व्यवहार बाहर करना चाहिये । उनके बाईं करियर को देना चाहिये । एक तरफ बाईं करियर को देना चाहिये । एक तरफ बाईं करियर को देना चाहिये । एक तरफ बाईं करियर को देना चाहिये । एक तरफ बाईं करियर को देना चाहिये ।

परमेश्वरी प्रभावति ।

परमेश्वरी प्रभावति प्राप्त करने के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर । आत्ममात्री के लिये है । उसकी प्राप्ति ठीक कर ।

आदर्श गुरुवाचन ।

मेरा नाम परब्रह्म है, मैं सब देता हूँ मेरी परमेश्वरी प्रभावति है । मेरा नाम परब्रह्म है, मैं सब देता हूँ मेरी परमेश्वरी प्रभावति है । मेरा नाम परब्रह्म है, मैं सब देता हूँ मेरी परमेश्वरी प्रभावति है ।

मैं सीब जीवन प्राप्त करके उसका उपयोग धर्मार्थ करने के बिने कल्प्य। ऐसा हर एक गृहस्थीको कहनेका औमान्य प्राप्त हो। नही एक बड़ा ऐश्वर्य है। जिसका ऐसा कृत्य हो वह कृत्य है। इसी तरह नही हमारे करिये पाप करनेवाला कोई न रहे दास हमेके समय उसमेंसे कुछ पाज रखयेबाना कृत्य कई न हो चारों ओर मित्र बने, दासके पास सदा भरपूर हो और सब सुख कर्मका परिपक्व फल ऐसे गृहस्थीको प्राप्त होता रह। वह है आदर्श गृहस्थाश्रम। गृहस्थी मित्रोंका मित्र को सतत प्रवत्न करता रहे बीका ह्मन सेने वैकोंका उपयोग सैरीके बिने होता रहे देश और मृत्यु दूर होता रहे। (४०-४१)

परस्परका हृदय अन्तर्गत चाहिये। मित्रताके बिना इसकी कार्यवाही असम्भव है। हृदयके आँखोंके बिना संवेदन की नहीं हो सकता। जोभी दूसरी आँख देखे, वो सब योग्य अनुभव को हृदय और ठेठ देखेके बिना देखे है। वास्तव में सबके अन्दर बिना भी वो सब करना चाहिये। अपने अन्दर काजरीय बहाना और लक्ष्य अपना। रक्षा करनी चाहिये। वह कार्य रक्षा करके ही कार्य हो प्रयोज्य है। अतः यदि इस ध्यान-देवके बिना न रहे सब योग्य संवर्धनी बने। (५-५१)

जो किसी कार्यके लिये लक्ष्य बनाया है वह सब प्राप्त होता है। फिर वह लक्ष्य भाग्य लक्ष्य है। वा. धनकामसे हो। लक्ष्य लक्ष्य एक ही वस्तु है और वह वेद एक-मात्र लक्ष्य है। लक्ष्य विना किसी लक्ष्य होती नहीं है। [५२]

ये छवि होती है वह सबकुछ उत्तम अवस्था में। जहाँ-तु जहाँ
भरने में कामे हो। सब प्रकार से अच्छे रहने की दिशा में स्थापने

मलिनता न रहे । अपना प्रभाव चारों ओर फैलाभा घृत
जादि पदार्थ भरपूर रहें अन्तर्ही म्युलता न रहे । [५३]

उप निम्न दृष्ट स्वर्गपात्रके ही उत्पत्ति विविध स्वरूपे बना है। इस निम्नमें उत्पत्ति राज और तम गुण है। निम्न ही उत्पत्ति, रक्षिता और मन्त्रिता सुप्रसिद्ध है। मन्त्रिता दृष्ट करनी चाहिये तेजस्विताके अन्तर्गत चाहिये और राजगुणका राज करना चाहिये। यह एक उच्चतिका निम्न स्वर्गपात्रात् है [५४]

हर एक दिवसमें लक्षित १६५ करोड़ अनामकारी टैनिज
रखकर अपने राष्ट्रीय सुरक्षा तत्त्व करवा पादिगे । ने १६५ करोड़
करों और सुरक्षित हुए आय इसका योगक्षेम लक्षा-
नके लिये उबको योग्य गवर्नर हैं । इनकी रक्षासे सुरक्षित हुए
आय इत्यादिवाक्य अन्वयी उक्तलिख कर्य करें । इस तरह
करनेसे बड़ी रचवधान होय । और मुम्बुके पञ्चायत स्वर्गमन्त्र भी
प्राप्त होय । [५५-६]

बहालक इस सूच्यमें मंत्रांध सरक आसन पुनी म्माये
रिवा है । मंत्रांध ह्मन्माय इसध पाठक जान सकेय । इस
सूच्यमें बेरये इस भूयोको ही स्वर्गमाय बनविही विधि बतावी
है । जो लोय ऐषा करेन तेन केवल इस घषामे जति जो
स्वर्गमुख प्राप्त करेन वरिमु सारौतर मिळवेवाने स्वर्गलोक भी
मिःसनेइ प्राप्त करके वही बहुत समय भर्त्स सुष्ट प्राप्त
करके जराय सुखमें अन्न केकर हिर भी आविधी उन्नति
प्राप्तव करिये ।

आद्य है कि वह उपदेश बरिष्ठ धर्मियोंके आचरणमें
आजकल और सब बखारका स्तम्भबान बन गये ।

तरह मिथ जाँई जाता है और नाम
जाँई । [३]

छाकमासी ।

बेड़े बालक पकने होते हैं
पकनेकी भी रीति है । उताम पर-
मिने की । उछकी धारा ठीक करा
आदि हाथों की । उछकी ऐसा -
उछ न बिकने । औकबिबोकी दि
हमपर न हो । [३१]

पकनेपर ।

बालक पकनेपर उछकी बर्तन
रखनेके किने उछाम कई बर्तन
पर फैलावी बाहिने और उछपा
बाहिने । वह उछ देखा करम
और उछकी मजोहर मजोत
परिबर्तित घनेत आकाश आ ।

इस तरह उछ करनेके न
छाठ बर्तन कोई पकस्की इस
रहने मिलेगा । बर्तन पिछा
बही भूजोकरम स्वर्ण है

(३३-३५)

संपूर्ण सुखोत्तमोत्तम ॥
विजयके विद्या मोम मि
किने बही महत्त्वकी ॥
मछु (उछा) आदि
भीक है । इनका स्व
बलताओंके बहोत
इस भूजोकरम स्वर्ण पु
इछकिने यह मोम पु
उछकी उछ देवताओं

ॐ

भी कुछ करती है
अपने कार्य करते हैं ।
और उछकिने किने करे ।
॥ उछा है उछा मोमम
पुमिनी और परिबर्तित आ-

पदोरस्या आधिष्ठानाद् विस्मिन्नुर्नाम विन्दति । अनामुनात् स क्षीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥५॥

यो अस्या कर्णीवास्कुनोत्पा स देवेर्षु वृषते ।

उक्ष्मं कुर्व इति मन्यते कर्णीय कण्ठे स्वम् ॥६॥

यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कर्षित् प्रकुन्तति ।

ततः किञ्चोरा त्रियन्ते यस्ताश्च पातुको वृकः ॥७॥

यदस्या गोपती सत्या लोम व्याहृतो अजीहिहत् ।

ततः कुमारा त्रियन्ते यस्मै विन्दत्यनामुनात् ॥८॥

यदस्याः परप्लुत्तं छन्दं वासी समस्पर्ति । ततोऽप्येकं आपते तस्मादभ्य्यप्यदेनसः ॥९॥

चार्यमानामि जायते देशान्तस्राक्षयान् वृक्षा ।

तस्मात् ब्रह्मन्यो देवैषा तदाहु स्वस्य गोपनम् ॥१०॥ (१९)

अर्थ—(अस्याः पदोः) अविद्यागत्) इस गीके पाँच रक्तेके स्थायसे (विस्मिन्नुर्नाम वा ३०)विस्मिन्नु नामक रोग होता है।

(याः मुखेन उपजिघ्रति) जिसको मुँहसे सूँघती है वे(अनामनात् संक्षीर्यन्ते)य जायते हुए ही क्षीय होकर नष्ट होते हैं ॥५॥

(यः अस्याः कर्णी वास्कुनोति) जो इस गीके कर्णोच्छे हु का देता है, (सः देवेर्षु आमुषते) वह मर्त्यो देवोंपर आगत करता है जो गायपर (उक्ष्मं कुर्व इति मन्यते) बिह्व करता हु देता मानता है वह (स्व कर्णीय कण्ठे) अपना स्व स्पर्श करता है ॥ ६ ॥

(यः कश्चिद् कस्मैचिद् भोगाय) जो किसी भोगविशेषके लिये (अस्याः बालान् प्रकुन्तति) इस गीक पाँचोंके काटता है उससे (ततः किञ्चोराः त्रियन्ते) उससे बाँकक मरते हैं तथा (वृकः वल्गवः च पातुकः) मेंढिया बर्षोंका पात करता है ॥ ७ ॥

[यः अस्याः सत्याः गोपती] यदि इससे साथ गोरक्षक रहके हुए भी यदि [व्याहृतः लोम अजीहिहत्] कौवा-बर्षोंको जोकेता तो (ततः कुमाराः त्रियन्ते) उससे बर्ष मर जाते हैं और (अनामनात् यक्ष्मः विन्दति) सहजहीसे क्षय रोग पकड़ करता है ॥ ८ ॥

(यः अस्याः परप्लुत्तं छन्दम्) इस गीका शून्य बार गोबर (वासी समस्पर्ति) नौकरानी छेक देनी तो उससे (ततोऽप्येकं वृक्षाः) एक-एक वृक्ष (अप्येकं वृक्षाः) अप्येकं वृक्षाः) बिह्व होता है ॥ ९ ॥

(चार्यमाना वसा स—आक्षयान् देवान् अभिजापते) उत्पन्न होते ही गी आक्षयोंके साथ देवोंके लिये होती है । (तस्मात् ब्रह्मन्यो देवाः) इसलिये वह गी आक्षयोंको देवी आह्विये : [यः स्वस्य गोपनं ब्राह्म] वह अपनी मुर—किता है देता कहते हैं ॥ १० ॥

माचार्य—गीके पाँचके रम्यमें विस्मिन्नु नामक रोग फैलता है। जिसे पाँच सूँघती है उसका होता है और वह मरता है ॥५॥

गीके कर्णोंपर बिह्व करनेसे जो गीको वेचना होती है उससे गीके स्वामीका मन कम होता है ॥ ६ ॥

यदि कोई मनुष्य अपनी सजायके लिये गीके पाँच कटेगा तो उससे बाँकक मर जायेंगे ॥ ७ ॥

यदि पक्षिका गीकी रक्ताक्षी करता हुआ गीको जोका कट देवे, तो उस पक्षिकके मन मर जायेंगे ॥ ८ ॥

यदि गीकी पुरिवादि मीठा मूल और गायर हथर उभर केक देवे तो उस पापके सखका रूप बिह्व जायगा ॥ ९ ॥

यौ जो उत्पन्न होती है वह आक्षयोंके लिये ही देवीके उत्पन्न भी होती है । इसीलिये उक्तका राज मादर्थ्यको देना अधिक है । सबसे दाया की हो रखा होती है ॥ १० ॥

य एनां ननिम्रायन्ति तेषां देवकृता वृक्षा । अन्नज्यस्य तद्वद्भुजन् य एनां निमिवायते ॥११॥

य अपिपेभ्यो यार्थज्ञयो देवानां गां न विस्तति ।

आ स वेवेपु वृक्षते ब्राह्मणानां च मन्यये ॥१२॥

यो अस्स स्वाद् वृक्षामोगो अन्यामिच्छतु तर्हि सः ।

हिंसे अर्धचा पुरुषं वाचित्तां च न विस्तति ॥१३॥

यथा शेवधिनिहितो ब्राह्मणानां तथा वृक्षा ।

तामेतवृच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिन् जायते । ॥१४॥

स्वमेतदृच्छायन्ति यद् वृक्षां ब्राह्मणा अभि ।

ययैनानन्यस्मिन् बिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥१५॥

अर्थ— [ये एनां ननिम्रायन्ति] जो ब्राह्मण इस गौको मांससे खाते हैं [तेषां देवकृता वृक्षा] इनके जिनके पक्ष गौ देवोंने बनाई है । [यः अपिपेभ्यो यार्थज्ञयो देवानां गां न विस्तति] जो इसको अपनी मित्र है करके अपने ही पास रखता है । वन्य शान नहीं देता (एतः अन्नज्यस्य तद्वद्भुजन्) वह उसका कृत्य ब्राह्मणोंपर ब्रह्माचार करता ही है ॥ ११ ॥

[आ स वेवेपु वृक्षते ब्राह्मणानां च मन्यये] जो मांससे खाते क्षत्रियगोत्रके (देवानां गां न विस्तति) देवोंकी गौ देता नहीं (सः ब्राह्मणानां मन्यये) वह ब्राह्मणोंके कोपके जिनके [वेवेपु जाह्नवे] देवोंमें आचार करता है ॥ १२ ॥

[यो अस्स स्वाद् वृक्षामोगो अन्यामिच्छतु तर्हि सः] वह जो दूसरी की मारता करे । [हिंसे अर्धचा पुरुषं विस्तते] शान न दी हुई गौ उस पुरुषकी हिंसा करती है कि [वाचित्तां च न विस्तति] जो वाचना करनेपर भी नहीं देता ॥ १३ ॥

(यथा निहित शेवधिः) ऐसा सुरक्षित कायना होता है [तथा ब्राह्मणानां वृक्षा] वैसी ही । अन्नज्यसे वह गौ है । [यस्मिन् कस्मिन् च जायते] जहाँ कहीं उत्पन्न हुई हो [यद् वृक्षां ब्राह्मणा अभि] उसके पास से ब्राह्मण पशुपति ही है ॥ १४ ॥

[ययैनानन्यस्मिन् बिनीयादेवास्या निरोधनम्] यदि ब्राह्मण गौके पास जाते हैं तो [एतत् स्वं वृक्षं ब्रह्मण्यन्ति] वे अपने अपने पास ही जाते हैं । [बिनीया निरोधनं] इस गौको प्रतिषेध करना मानो [यथा एवायं ब्रह्मण्यभिन्विनीयात्] ऐसा है । जो दूसरे अर्थमें कह देता है ॥ १५ ॥

अथार्थ— ब्राह्मण वाचना करनेके जिनके आगेपर समझे भी प्रधान न करना । वन्य ब्रह्मण्यपर करनेके समझ है । क्योंकि देवोंने ही इनके जिनके वह बनाई होती है ॥ ११ ॥

अतः जो मांससेपर भी ब्राह्मणोंकी गौ नहीं देता वह मानो देवोंपर ही आचार करता है । उससे उपर ब्राह्मणोंके ओर देवोंका आचार होता है ॥ १२ ॥

यदि मीचे किसीको काम होता हो तो वह दूसरी मीचे वह प्राप्त करे । क्योंकि जो योको मांससेपर भी नहीं देता वह भी उसकी वाचना करता है ॥ १३ ॥

वह जो ब्राह्मणोंकी ही है ऐसा सुरक्षित कायना होता है वैसी ही वह है । कहीं किसीके पास भी उत्पन्न हुई हो प्रिय ही वह होती है ब्राह्मण अपने मांससे आनेके ॥ १४ ॥

ब्राह्मण जिस गौकी मांससे है वह वन्य ही होती है । अतः इनको उस गौका शान न करना अवगत है ॥ १५ ॥

चरेत्तिना त्रैहायणादविज्ञातगदा सती । तृष्ठां च विद्याभारद ब्राह्मणास्तर्षेभ्याः ॥१६॥
य एनामर्षशामाह दधाना निहित निधिम् । उभौ तस्मै भवाश्चर्या परिक्रम्येपुमस्यतः ॥१७॥
यो ब्रह्म्या ऊचो न वेदार्थो अस्या स्तनानुत् ।
उभयेनैवास्मै दृढे दासु वेदशङ्कद् वृष्णम् ॥१८॥
दुर दम्नैनमा श्रये याचिषां च न दित्सति ।
नास्मै क्षमाः समृध्यन्ते यामदेव्या चिकीर्षति ॥१९॥
वृषा वृष्णमयाचन् मूर्खं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामदेवदेव न्येति साजुषः ॥ २० ॥ (२०)
हेह पञ्चानां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽदेवद् वृष्णम् ।
वृषानां निहित आग मर्ष्येभ्यैप्रियापते ॥२१॥

अर्थ [वाचिष्ठ—यदा सती वा त्रैहायणाद् चरेत् एव] ब्रह्मज्ञानमवाप्ती गौ तीन वर्ष होनेपर माताक साथ भूम
ज्ये । इति । [यदा विद्यात् तर्हि ब्राह्मणाः पुण्या] यी देने योग्य होनेपर, तो उसके किंचि ब्रह्मज्ञान होने नाथ ॥ १६ ॥
[यः देवाणां मिहितं विधिं पुनो जपतां वाह] वेदोंके विहित कर्माणा रूप इस गौको न देने बोध ॥ [तस्मै
भवाश्चर्या उभौ परिक्रम्य ह्यु अस्यतः] उठे अब और सब दोनों केरकर बाल मारते हैं ॥ १७ ॥
(यः ब्रह्म्या ऊचो न वेदार्थो अस्या स्तनानुत्) जो इसके दुग्धाखण्डों और इसके स्तनोंको नहीं
जानता (वेद् दासुं बलक्य) वह यदि बाल दमेधे सपर्य हुमा तो [उभयेन अस्मै दृढे] वह गौ उधे उल्ल दोनोके दूध
दती है ॥ १८ ॥

[वाचिष्ठो न दित्सति] मांसेपर भी ब्राह्मणको जो नहीं ही जाती वह पी (दुर—दम्न्या एव मास्ये) बल होने
धे कटिब होकर इसके साथ रहती है । (अस्मै क्षमा न समध्यन्ते) इसके मनोरथ सफल नहीं होते [नो ब्रह्म्या
चिकीर्षति] जिसे न शान करने क्षमावा चाहता है ॥ १९ ॥

(ब्राह्मणं मुक्तं कृत्वा) ब्राह्मणकी मुक्त करने (देवाः वतां जपान्) देव गौकी पाचवा करते हैं । [भद्रदत्
साजुषः] न देवेनात्मा साजुष्य (तेषां सर्वेषां हेहं वि पृति) उस सबके क्षेत्रको प्राप्त करता है ॥ २० ॥

[मातः देवाणां मिहितं आग मिश्रिजालते वेत्] साजुष्य देवोंका मिश्रित भाग करने पाछ यदि रजोपा और
[ब्राह्मणेभ्यः वृषां ब्रह्मद्] ब्राह्मणोंको भी न देगा तो [पञ्चानां हेहं वि पृति] पञ्चानोंके क्षेत्रको भी प्राप्त होता है ॥२१॥

साजुष्य—तीन बरतक लीके बलकन रथानी पाके पथात् कोई पांमने न जाये तो सुबोरन ब्राह्मणकी आज्ञा करे और
उधे देवे ॥ १६ ॥

यौ देवोंको कर्माणा है । जो उधे नहीं शान करता उसके साथ अब और करे करते हैं ॥ १७ ॥

जो लीक शान करता है उसके दूध याचि पर्वात मिश्रणा है ॥ १८ ॥

वा मांसेपर भी लीक शान ब्राह्मणोंको नहीं करता उसके चरमें जो बलमें नहीं रहती । गौ न देवेनाके भी भागवा प्राप्त
नहीं होती ॥ १९ ॥

देवोंका मुक्त ब्रह्मण है । ब्राह्मणके मुक्तके ही देव मंगते हैं । अता शान न देवेनात्मा साजुष्य देवोंके क्षेत्रको अपने कर
केता है ॥ २० ॥

कोई साजुष्य इस देवोंके भावको ब्राह्मणोंकी शान न देगा तो पञ्चानोंके क्षेत्रको प्राप्त होगा ॥ २१ ॥

यदुन्मे श्रुत यावत्पूर्वाक्षणा गोपतिं वृक्षाम् । अयेनां देवा अंशुबन्धेव हं विदुषो वृक्षा ॥२२॥

य एव विदुषेऽवृक्षाद्यान्येभ्यो ददव वृक्षाम् ।

दुर्गा तस्मा अभिधाने पृथिवी सहैवैवता ॥२३॥

देवा वृक्षार्थपात्रं यस्मिन्ने अजायत । तामेतां विद्याभारतः सह देवैरुदाजत ॥२४॥

अनपस्यमवर्षणं वृक्षा कृणोति पूरुषम् । ब्राह्मणैश्च याचितमर्थेनां निप्रियायते ॥२५॥

अधीपोमाभ्यां कामांश्च मित्राय वरुणाय च ।

तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वपि पूज्येऽददत् ॥२६॥

यावदस्या गोपतिर्नोपवृणुयादर्थः स्वयम् ।

चैरदस्म तावद् गोपु नास्व भुत्वा गुहे वसेत् ॥२७॥

अव- (यत् गोपतिं सत्तं बन्धं वसां वाचमुः) यति गौके स्वामीके पास वृक्षरे ली जाकर लौकी मांसे (यत् यत् देवा यत् अमुषम्) इस विषयमें देवोंने देखा कहा है कि (विदुषः वसा हं) विद्वान्की ही मी है ॥ २२ ॥

(या एव विदुषे अवरुषा) जो इस तरह विद्वान्की मी य देकर (अन्येभ्यः वसां ददव)-वृक्षों को देवोंको देवे (वसन्ति अविधाने सह देवता इन्धी दुर्गा) वृक्षके किय उसने कालमें सब देवताओंके साथ पृथ्वी दुर्गाको होती है ॥ २३ ॥

(यस्मिन् अमे अजायत) जिसमें गौ पादिके हुई (देवा वसां अवाचत्) देवोंने उसीके पास गौकी वाचना ली (वारदः विद्याम्) वारद सत्यके कि (यं देवांश्च यत् यदाजत) उक्त गौकी देवोंके पास उक्त होती है ॥ २४ ॥

(ब्राह्मणैः वाचितां यमां वि मित्राय वरुणाय) ब्राह्मणोंके द्वारा वाचना होनेपर भी जो वसन्ती मित्र समग्रक करने का रक्षा है वह (वसां पुनश्च वनपत्रं अस्पर्शं कृणोति) गौ उस मनुष्यको संवासीहीन और अस्पृश्यताका करती है ॥ २५ ॥

(अधी सोमाभ्यां मित्राय वरुणाय कामांश्च तेभ्यः) यति सोम मित्र वरुण और काम इनके किये ही (याचन्ति वाचन्ति) ब्राह्मण गौकी वाचना करते हैं वता (अददत् देवु आमुष्ये) न देनेवाका उक्त देवोंपर वाचना करता है ॥ २६ ॥

(यावत् अस्या गोपतिः) जबतक इस गौका स्वामी (स्वयं अस्या न उपवृणुयात्) स्वयं वाचार्थ नहीं सुने, (तावत् अस्या गोपु वसेत्) जबतक इसकी गोपतिं न चला करे पशु (शुला अस्या गुहे न वसेत्) सुकनेके पत्रतक वही सत्तं घरमें न रहे ॥ २७ ॥

भाषार्थ- गौका स्वामीके पास वृक्षकी वाचना लीके जाने जायान परत देवोंको आका है कि विद्वान् ब्राह्मणों की मी देवी चाहिये ॥ २२ ॥

जो विद्वान् ब्राह्मणोंकी मी न देकर वृक्षकी देता है उसकी वसे कथ प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

जहां गौ उतपन्न होती है वहां वही देव उसकी वाचना करते हैं । और देवोंकी वह देवते घबड़ी उपाय होती है ॥ २४ ॥

ब्राह्मणोंकी वाचना होनेपर जो मनुष्य योद्धा दान नहीं करता उसको छतान नहीं होती और उसके पास पशु के कथ होते हैं ॥ २५ ॥

म ह्यत्र जो गौकी वाचना करते हैं वे देवक यति आदि देवताओंके किये ही वाचना करते हैं करने किये नहीं मनुष्य कथमें न देवा देवताओंक अपमान करता है ॥ २६ ॥

जब तक गौका स्वामी ब्रह्मा संयत्नोव नहीं सुनता तबतक उसका पास जो रहें । अत्रवाच मुनिके पद्यात् उक्तके वरुण मी न रहे ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋचं उपभुत्स्याथ गोप्यधीचरत् ।

आयुश्च तस्य भूतिं च वेषा वृथान्ति हीहिताः ।

॥ २८ ॥

वृथा चरन्ती वहुधा देवानां निहितो निधिः ।

आविष्कृत्युष्य रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ।

॥ २९ ॥

आधिरास्मानं कथुते यदा स्थाम जिघांसति ।

अथो ह ब्रह्मभ्यो वृथा याम्भ्याम कथुते मर्न-

॥ ३० ॥ (२१)

मर्नसा स कल्पयति तद् कुर्वो अपि गच्छति ।

ततो ह ब्रह्माधो वृथामुपप्रयन्ति पार्षितुम्

॥ ३१ ॥

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन वेषताम्यः ।

दानेन राजन्वो वृथायां मातुर्हं न गच्छति

॥ ३२ ॥

अर्थ—(यः कस्या गोपयि वाचः उपभुत्) जो इस गौका स्वामी ऋचायें सुखकर (अप गोपु अधीचरत्) पक्का यो गोबोले ही अपने गोको चराना करता है (वेषाः हीहिताः वक्ष आहुः च भूतिं च वृथान्ति) देव कोपित होकर वसन्ती जातु और संपत्तिको बिनाह करते हैं ॥ २८ ॥

(वक्ष वहुधा चाम्नी देवानां निधिः निहिता) यौ बहुत कामोंमें प्रत्यक्ष करती हुई देवोंका सुरक्षित खजाना ही है । (यदा स्थाम जिघांसति) जब वह रहनेके स्थानके पास जाना चाहती है तब (क्पाणि आविष्कृत्युष्य) नयेक रूप प्रकट करती है ॥ २९ ॥

(यदा स्थाम जिघांसति) जब रहनेके स्थानके पास जाना चाहती है, तब (अरामार्थं वाचि कुम्भोति) अपने मातृको प्रकट करती है । (अथो ह ब्रह्मभ्यः याम्भ्याम मर्नः कथुते) ब्रह्मणोंकी पाचनाके किये वह यो अपना मर्न करती है ॥ ३० ॥

वह गौ (मर्नसा कल्पयति) मर्नसे कल्पय करती है (तद् कुर्वो अपि गच्छति) वह कल्पय देवोंके पास पहुँचता है (ततो ह ब्रह्माधो वृथामुपप्रयन्ति उप प्रयन्ति) उसके पक्का ही ब्रह्मण गौकी पाचना करनेके लिये भाते हैं ॥ ३१ ॥

[पितृभ्यः स्वधाकारेण] पितरोंके किये स्वधाकारके [देवताभ्यः यज्ञेन] देवताओंके मर्नसे तथा [दानेन] दानसे [राजन्वः वृथायां मातुः हं न गच्छति] क्षत्रिय वीची माताका कोप प्राप्त नहीं करता ॥ ३२ ॥

आचार्य—मंत्रगोप सुननेके पक्का यदि वीके स्वार्थवि यो अपने चरमें रही ता उसके पक्षर देवोंका कोप होता है ॥ २८ ॥ यो वह देवोंका सुरक्षित खजाना है । जब वह अपने स्थानपर जाना चाहती है तब वह नयेक रूप प्रकट करती है ॥ २९ ॥ जब वह यो अपने स्थानके पास जाना चाहती है तब जाने मानके प्रकट करती है मर्नसा वह मर्नसे मर्नसाओंकी पाचना है । देवा मर्न प्रयत्न करती हैं ॥ ३० ॥

गौ वह संप्रत्य मर्नमें जाती है वह कल्पय देवोंके पास पहुँचता है देव ब्रह्मणोंको प्रेरणा करते हैं और ब्रह्मण गोध मातृको किये भाते हैं ॥ ३१ ॥

स्वधाकारसे पितरोंको तुष्टी नइसे देवाकी संप्रत्य और चाम्ने अम्योंकी तुष्टी होती है इत्यन्तरे वीध दान करनेके लिये मातृका कोप क्षत्रियपर नहीं होता है ॥ ३२ ॥

वृद्धा माता रोजन्यसि तथा सधृतमग्रुः । तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मस्यः प्रवीर्यते ॥११॥
 यथान्य प्रगृहीतमालुम्येत् सुचो अग्र्ये । ॥१२॥
 एवा ह ब्रह्मस्यो वृद्धामग्र्यं वा वृद्धतेऽर्धवत् ॥१३॥
 पुरोवाञ्छवत्सा सुदुषां लोकंऽस्मा उर्यं तिष्ठति । ॥१४॥
 सास्ते सर्वांस् कामान् वृद्धा प्रवृत्तये दुहे ॥१५॥
 सर्वांस् कामान् वमरान्ये वृद्धा प्रवृत्तये दुहे । ॥१६॥
 अर्धदुर्नरिकं लोकं निरुद्धानस्य वाप्तिताम् ॥१७॥
 प्रवीर्यमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वृद्धा । ॥१८॥
 वेहते मा मन्यमानो मुत्सोः पाक्षेपु वक्ष्यताम् ॥१९॥
 वो वेहते मन्यमानोऽमा च पर्वति पञ्चाम् । ॥२०॥
 अप्यस्य पुत्रान् पीत्रोश्च याचयति भुवस्सर्तिः ॥२१॥

अर्थ—[वृद्धा राजन्वत्स मत्ता] गौ क्षत्रियकी माता है [तथा अग्र्यः सं भूतं] ऐसा पहिलेसे ही हुआ है + [व
 मग्रभ्यः प्रवीर्यते] वो गौ ब्राह्मणोंके किने ही जाती है [तस्या अग्र्यं वाहः] उसका वह दान ही नहीं है [तस्यै
 वह गौ ब्राह्मण ही ही होती है] ॥ ११ ॥

[वृद्धा अग्र्ये प्रगृहीतं वाचं कुचं वाहयेत्] वैसा ब्राम्हिने किय किया हुआ भी कुचासे गिराता है [वृद्धा
 मग्रभ्यः अर्धवत्] ऐसे ही गौ ब्राह्मणोंको न देनेवाला [अग्र्ये अर्धवत्] ब्राम्हिने किये अपराधी होता है ॥ १२ ॥

[पुरोवाञ्छवत्सा सुदुषां लोकंऽस्मा उर्यं तिष्ठति] वचकनी वचा जिसके पास है ऐसी उचल बूज देनेवाली है
 पत्नीकेने इस दाताके पास वाचन करी रहती है । (या वृद्धा अस्ते प्रवृत्तं सर्वान् कामान् दुहे) वह गौ इस कामों
 किय सब कामवाए पूर्ण करती है ॥ १५ ॥

[वमरान्ये वृद्धा मन्यमानो मुत्सोः पाक्षेपु वक्ष्यताम्] वमरान्यमें गौ दाताके किने सब कामवाए ऐसी है । [वच
 निरुद्धानस्य वारकं लोकं वाहः] और वाचना करनेपर न देनेवालेको मरक कोक है ऐसा कहते हैं ॥ १६ ॥

[प्रवीर्यमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वृद्धा] सत्पात्र उत्पन्न करनेवाली भी अपने स्वामीके किने कुछ होकर निकलती
 है । वह कहती है कि [मा वेहते मन्यमानः मुत्सोः पाक्षेपु वक्ष्यताम्] मुझे पर्वतिवासी करनेवाला मुझको पक्षि
 काये ॥ १७ ॥

[वा वृद्धा वेहते मन्यमानः] वो गौको वरम गिरानेवाली घानकर [अमा च वक्षी पचते] वरमें गौको पचता
 [वर्यं पुत्रान् पीत्रोश्च याचयति भुवस्सर्तिः] इसके पुत्रों और पीत्रोंको ब्रह्मसर्ति मीन मंगलता है ॥ १८ ॥

भाष्यार्थ— वो क्षत्रियकी माता कही जाती है इसका ब्राह्मणोंको भवान करना दान कहा है क्योंकि वह मग्रभ्यो
 होती है ॥ ११ ॥

वैसा सदाचर भी ब्राम्हिने गिराता है । वैसा ही पौत्र दान न करनेवाला गिराता है ॥ १२ ॥

दान ही हुई भी दाताकी परशुकेने हर एक प्रकारकी कामवा चक्र करती है ॥ १५ ॥

पौत्रान करनेवालेकी समस्त कामवाए अपराधमें सफल होती है परंतु दान न देनेवालेको तो मरक ही प्राप्त होता है ॥

पौत्रा वक्ष्यताम् करनेवालेकी भी कुछ होकर पात्र ऐसी है कि वह भुवसे पाक्षेपि वाचा काये ॥ १७ ॥

वो गौको वैसा घानकर अपने वरमें पचता है उसके पुत्र-पौत्रोंको ईश्वर मीन मंगलता है ॥ १८ ॥

मृदुपात्रं तपति चरन्ती गोपु गौरपि । अयो ह गोपतये वृषाद्वदुपे विपं दुरे ॥ ३९ ॥

प्रियं पशूनां भवति यद् वृषाभ्यां प्रदीयते

अयो वृषायास्तत् प्रिय यद् देवत्रा इविः स्यात् ॥४०॥(२१)

वा वृषा उदकं त्ययत्त देवा यद्वा उदकं । तासां विलिप्त्य मीमांसदाकुंरुत नारदः ॥ ४१ ॥

तां देवा अमीमांसन्त वृषेया इ मन्त्रेति । ताम्रवीभारद् यथा वृषानां वृषतमेति ॥ ४२ ॥

कवि तु वृषा नारद यास्वर्ष वेत्य मनुष्यजाः ।

वास्तवा पृच्छामि विद्वांस कस्या नाम्नीयादब्राह्मणः ॥ ४३ ॥

विलिप्त्या वृहस्पते या न सतपसा वृषा ।

तस्या नाम्नीयादब्राह्मणो या आर्षेयं त भूषाम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—(गोपु यौ चरन्ती अपि) यौवमेति गो चरती हुई जी (यथा महत् कल्पति) वह वृषा तप देती है । (अयो वाउदके गोपतये विपं दुरे) मागे दान न करनेवाके गौके स्वामीके किये वह विप देती है ॥ ३९ ॥

(यद् वृषाभ्यां प्रदीयते) जो ब्राह्मणके किये ही जाती है वह (पशूनां प्रियं भवति) पशुओंके भी हितकारी होता है (अयो वृषायाः तत् प्रियं) जीव गौके किये वह प्रिय है (यद् देवत्रा इविः स्यात्) जो देवोंके किये इवि होवे ॥ ४० ॥

(वाः वृषाः देवाः) जिन गौबोंको देवताओंने (यद्वा उदकं उदकं त्ययत्त) पशुके आकर संकल्पित किया था (तासां मीमांसदाकुंरुत नारदः) उन्की मन्त्रात्मक ओषध कीकाजी गौको चारहने अनुभव किया ॥ ४१ ॥

(तां देवाः अमीमांसन्त) उस विषयमें देवोंने विचार किया (वृषा इव वृषा) वह गौ अपने वस्त्रमें रहने योग्य नहीं है । (नारदः तां अमीमांसन्त) चारहने उसके विषयमें कहा कि (यथा वृषानां वृषतमेति इति) वह गौओंमें अधिक वह होवेवाली है ॥ ४२ ॥

हे नारद ! (याः त्वं मनुष्यजाः केच) जिनको तू मनुष्यमें उत्पन्न जानता है वे (कवि तु वृषा) गौके कितनी बड़ा है । (त्वा विद्वांस पृच्छामि) तुम विद्वांसके मैं पृच्छा हूँ कि (कस्याः अन्त्यात्मका न वशीयात्) किसका आत्मन्धिक अस्ति न काये । ॥ ४३ ॥

हे बृहस्पते ! (वा भूमा आसतेव) जो देवर्ष व्याहता है वह (विलिप्त्या वा न सतपसा वृषा) अधिक भी देवताकी गौ है जो सुवर्ष ही वृष होती है और जो धनको वह है (नाम्नीयादब्राह्मणः वशीयात्) अन्त्यात्मके उदक भव न जान्य चाहिये (वा भूमा आसतेव) जो देवर्ष चाहे ॥ ४४ ॥

आचार्य—जो गौका दान नहीं करता उसने किये वस्त्रों को विप दुरती है ॥ ३९ ॥

गौका दान करनेसे पशुओंका हित होता है गौओंका हित होता है । क्योंकि गौके हृन्मयदान रत्नानाके किये विच्छेद है ॥ ४० ॥

पशुके आकर सब देवताओंने मित्रका यौकी रत्नकी उभयोंका अधिक भी देवताकी है वस्त्रों योग्य विधेय है ॥ ४१ ॥

देवोंने मित्र उदकाका कि वह स्वामीके वस्त्रमें रहने योग्य नहीं है क्योंकि वह उत्पन्न यौ है अतः वह दानके योग्य है ॥ ४२ ॥

मनुष्यके पास जो गौके होती हैं उभयोंके योग्य भी वस्त्र भव अन्त्यात्मक स्वामी न काये ॥ ४३ ॥

विचार यह हुआ कि अधिक भी देवताकी धर्मका वस्त्रमें रहनेवाली और जोकरके वस्त्र रहनेवाली वे तीन तीनों दानके योग्य है अतः वस्त्र भव अन्त्यात्मक स्वामी न काये ॥ ४४ ॥

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विद्वेयं वृक्षा । कृतमासी मीमत्तमा यामर्दत्वा परामर्षतु ॥ ४५ ॥
 विक्षिप्ती या वृहस्पतेऽथो सुतवर्षा वृक्षा ।
 तस्या नाभीयादग्राक्षणो य आशंसित भूत्याम् ॥ ४६ ॥
 श्रीभि वै वंशाजातानि विक्षिप्ती सुतवर्षा वृक्षा ।
 ताः प्र यच्छेत् प्रक्षम्यः सोऽनामस्कः प्रधापती ॥ ४७ ॥
 पुतद् वीं प्राक्षणा इविरिति मन्वीत याचितः ।
 वृक्षां वेदेन याच्यैषुर्पा मीमार्दुपो गृहे ॥ ४८ ॥
 वेवा वृक्षा पर्येषदुन् न नोऽहारिति हीहिताः ।
 पुतमिर्हर्मिर्मैह तस्माद् वै स परामर्ष ॥ ४९ ॥

वर्ष- हे वारह । (ये ममः अस्तु) उसे किये नमस्कार है । (अनुष्ठु विद्वेयं वृक्षा) अनुष्ठुकासे विद्वेयको वीक्षण करी जायिगे । (आसी कृतमा मीमत्तमा) इसमें कीनसी मयात्मक है । (यां अर्दत्वा परामर्षतु) जिसका नाम व अर्ध परामर्ष होगा । ॥ ४५ ॥

हे वृहस्पते ! (या विक्षिप्ती यो सुतवर्षा वृक्षा) जो अधिक भी देवेवाकी और पुतको वर करवेवाकी और इनके पक्ष रक्षेवाकी गी है (अनामस्कः तस्या व अजीवात्) अनामस्क उसका नाम व करने (वाः पूजां याचयेत्) जो देव सन्धिकी इच्छा करता है ॥ ४६ ॥

[श्रीभि वै वंशाजातानि विक्षिप्ती सुतवर्षा वृक्षा] गौरी तीक्ष्ण याचिवां हैं-एक अधिक भी देवेवाकी दूसरी तीक्ष्ण वर होवेवाकी और तीक्ष्ण अर्धो वर होवेवाकी । [वाः वाः प्रक्षम्यः प्रयच्छेत्] उसके दो प्रक्षमोंको देवा [वा अनामस्कः] वह प्रधापतिके पास विरपायी होता है ॥ ४७ ॥

हे प्राज्ञो ! [पुतद् व इति] वह आपका इति है [इति याचितः मन्वीत] देवा याचना करनेपर आप स्वकी कहें । [वृक्षां वेदेन याच्यैषुर्पा] गौरी जब इसके पास याचना की जाती है तब [वा मीमा अर्दुपो गृहे] वह अपने छोटी है अर्धावके घरमें रहना ॥ ४८ ॥

[वाः व अर्दत्वा इति हीहिताः देवाः] हमें इसके विषय नहीं इस कारण कोचित हुए देव [वृक्षां] ऐसे [पुतम् मेह पक्षवत्] हम मकोसे भयक विषयमें रहने करते [अनामस्कः तस्याः परामर्षतु] इस कारण उसका नाम पुतम् ॥ ४९ ॥

भाषा-जिस वीक्षा नाम व करनेसे अधिक हाथिकी संभावना है वह कीनसी को है । ॥ ४५ ॥

मीमोमी तीक्ष्ण याचिवां है एक अधिक भी देवेवाकी दूसरी इनके पक्षमें रक्षेवाकी और तीक्ष्ण वीक्षण पक्ष होवेवाकी के तीक्ष्ण प्रकार की गी हैं जिनका नाम वीक्षा स्वामी व करने । स्वामी के गोप्रां प्राक्षमोंका नाम देने विशेष न निर्णय होता है ॥ ४६-४७ ॥

प्रागनेपर वीक्षा स्वामी यह कि है प्राज्ञो ! वह आपका नाम है । गोचनेपर जी जो व देव उसके घरमें वा है अर्दत्वा इति करवेवाकी होती है ॥ ४८ ॥

अर्ध नाम व करनेसे देव याचित होकर उसके घरमें भोग करते हैं और इस कारण उसका परामर्ष होता है ॥ ४९ ॥

उत्तैर्ना भेदो नादंदाद् वक्ष्यामिन्नेष याचितः । तस्मात् त वेदा आगुप्तोऽवृक्षमहमुच्ये ॥ ५० ॥

ये वक्ष्याया अदानाद् वर्धन्ति परिरापिणः ।

इन्द्रस्य मुन्यवे ज्ञानमा आ पुंभन्ते अर्षिण्या ॥ ५१ ॥

ये मोर्षति पराशीयाद्याहुर्मा ददा इति । छत्रस्मास्तां ते हेति परि यन्त्यर्षिण्या ॥ ५२ ॥

यदि हुता यद्यहुताममा च पश्यते वक्ष्याम् ।

वेदान्तसम्प्राप्तानुत्वा सिद्धो लोकामिर्मेच्छति ॥ ५३ ॥ (२३)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अर्थ— [इत इनां वरा इन्द्रो वारितः भेषः] और इस गौको इन्द्रसे वाचना करनेपर भी भेदने [न अददात्] नहीं दिया [तस्मात् आगुप्तः वेदाः] सं अहमुच्ये अवृक्षम्] इस वापके कारण वेदोंने उस पुत्रमें काट बना ॥ ५० ॥

[ये परिरापिणा वक्ष्यायाः अदानाद् वर्धन्ति] जो कुछ कोष गौका दान न करनेका माग्न बोलते हैं वे [ज्ञानमाः अर्षिण्या इन्द्रस्य मन्त्रवे ज्ञानमा] कुछ मनुष्य गौकीवरा के कारण इन्द्रके कोषकेलिये काट करते हैं ॥ ५१ ॥

[ये मोर्षति पराशीका] जो गौके रक्षसीके दूर के काकर [अथ व्याहुः मा वा इति] कहते हैं कि मत दान कर [ते अर्षिण्या छत्रस्य अस्तां हेति परि वन्ति] वे न समझते हुए चक्रके फेंके हुए हथीपारके प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

[यदि हुता यदि अहुता] यदि दान की गई अथवा न की गई [वरा अमा च पश्यते] गौको अपने घरमें जो वक्ष्या है वह [य माददात् वेदात् ज्ञाना] माददनेका साध वेदोंका अपराधी बनकर [सिद्धः] कृषि होकर [लोकान् वि मेच्छति] इस लोकसे निरता है ॥ ५३ ॥

चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥ ४ ॥

भावार्थ— गौ की वाचना करनेपर भी जो नहीं देता उसके राजघरमें भेद उत्पन्न होकर पुत्रमें उसका परामर्श होता है ॥ ५० ॥

जो गौका दान न करनेके निमित्तमें उपदेश करते हैं उनका भी इन्द्रके कोषसे नाश होता है ॥ ५१ ॥

जो कोष गौके रक्षसीके दूर के काकर गौ दान न करनेका उपदेश करते हैं उनका नाश चक्रके राजघर होता है ॥ ५२ ॥

जो गौके अन्नको चरते पकते हैं उनपर वेदों और माददनेका कोष होता है और वे निरते हैं ॥ ५३ ॥

चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥ ४ ॥

बाह्यणकी गौ ।

[५]

(ऋषिः— अथर्वार्षः । वेचता-ब्रह्मगविः)

(५१)

अमेण तपसा सुष्टा ब्रह्मणा विचरें मिता ॥ १ ॥

सुस्थेनावृता भिया प्रावृता यक्षसा परिहृता ॥ २ ॥

स्वचया परिहृता ब्रह्मया पर्युता वीक्षया गुप्ता यक्षे प्रविष्टिता लोको निघनम् ॥ ३ ॥

ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽविपतिः ॥ ४ ॥

तामाददानस्य ब्रह्मगुर्वी जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥

अप क्रामति सुचुता वीर्वी पुण्या लुप्सीः ॥ ६ ॥ (१४)

(५२)

ओजस्य तेजस्य सख्यं बलं च वाक् वेदित्त्य च श्रीस्य धर्मस्य ॥ ७ ॥

ब्रह्म च अथ च राष्ट्रं च विद्वंस्य विविधं यक्षस्य बर्धस्य इविष्य च ॥ ८ ॥

अर्थ— (अमेण तपसा सुष्टा) अथ और तपसे उत्पन्न हुई (ब्रह्मणा विचरा) ब्रह्मसे प्राप्त हुई और (यते मिता) जन्मे आभयपर रही है ॥ १ ॥ (सुस्थेनावृता) वस्त्रसे आवृत (भिया प्रावृता) भीसे धरी हुई और (यक्षसा परिहृता) यक्षसे धरी है ॥ २ ॥ (स्वचया परिहृता) अपनी वारणसे छुड़कित हुई (ब्रह्मया पर्युता) अज्ञानसे युक्त (वीक्षया गुप्ता) वीक्षणसे छुड़कित हुई (यक्षे प्रविष्टिता) यक्षमें प्रविष्टित हुई और (लोको निघनम्) इस लोकमें आचरणसे प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥ जो (ब्रह्म पदवायं) ब्रह्मपद परचमूत्र है वसन्त (अविपतिः ब्राह्मणः) स्वामी ब्राह्मण है ॥ ४ ॥ (तामाददानस्य) उस ब्राह्मणकी भोक्ता कनवाके (ब्राह्मणस्य विपत्तः क्षत्रियस्य) ब्रह्मणस्य वास करनेवाले क्षत्रिय की भय (सुचुता वीर्वी पुण्या लुप्सीः) कन वीर्वीवती पुण्यमयी लुप्सी वृत्त होती है ॥ ५ ॥ [१४]

(५३)

आज तेज (छत्रः) पक्षधराधर्म्य यक्ष वाली इष्टियकति (श्रीः) श्रीमा धर्म ॥ ७ ॥ (ब्रह्म) ब्रह्म (अथ) अथ राष्ट्र (विद्वंस्य) विद्वान् (विविधं) विविध (यक्षस्य) यक्ष ॥ ८ ॥ आज इन वक्ष

मृत्युर्दिष्टकृण्वत्युः॥ ओ वृष पुच्छ पुर्यस्पन्ती	॥ २१ ॥
सर्वज्यानिः कणा परीवृज्यन्ती राजप्रसू मोहन्ती	॥ २२ ॥
मेनिद्रमामा ना दीपत्किर्तुग्धा	॥ २३ ॥
सेदिरूपतिष्ठन्ती मिथयाघः परीमूढा	॥ २४ ॥
नरम्या ३ मुखेऽपिनमामान श्रतिर्हिन्यमाना	॥ २५ ॥
अघर्विषा न्निवर्तन्ती तमो निषठिता	॥ २६ ॥
अनुगच्छन्ती प्राणानुर्य दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्ये	॥ २७ ॥ (२६)

(५१४)

वैरं विकृत्यमाना पौत्राघ विम्राज्यमाना	॥ २८ ॥
द्वष्टद्विर्दिष्टमाना म्यु द्विष्टता	॥ २९ ॥
पाप्माभधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना	॥ ३० ॥
मिष प्रयस्यन्ती तुक्मा प्रयस्ता	॥ ३१ ॥
अत्र पुष्पमाना दुष्पुष्प्ये पुष्पा	॥ ३२ ॥
मूलचर्हणी पपाक्रियमाना धिर्विः पर्पाकृता	॥ ३३ ॥

अर्थ कदा करेद्यम् । अथ यथेष्टका अथवा हाती के ३१३ (कर्मेवरीयमवस्थी सवज्यानिः) वन कल बाहेर
 पवता नाथ करेद्यम् । हाती के और (महन्ती राजप्रसू) मृत्यु करनर वृषाघ ही बनती है ॥ २२ ॥ (मुखमाघ मेने)
 मुखो द्राग दुरी मम बनन छत्रका हाती के (पुष्पा पात्राघः) दुरी अनेकर । अर्थात् दास बनती है ॥ २३ ॥
 (उचिर्हन्ती छदि) पात्र अती हातर विनायक हाती के और (पराभुता मिथयाघः) हाथे हावर इन्द्रदुष्ट अन्त्ये
 छत्रुके भवन देता है ॥ २४ ॥ (म्यु द्विष्टता) मृगमे गोपी आनर छठीक समान और (पाप्माभधीय)
 नाथिद हातर विनायक हाती के ॥ २५ ॥ (मिष प्रयस्ता) बढी दुष्ट भवानक विपदनी और (विव द्राग कृ)
 बढी है ॥ पाप्मा पुष्पमाना अथवा हाती के ॥ २६ ॥ (अनुगच्छन्ती) प्राणानुर्य मो (दासयति)
 प्राणानुर्य दासयति) ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य नाथ बनती है ॥ २७ ॥

(५१५)

(विद्वन्मना १ वी) ॥ अ वाट देवाट वर बनती है अर (विम्राज्यमाना पौत्राघ) वाटर विम्राज्य करनर दुरीके
 बनाना है ॥ २८ ॥ (द्वष्टद्विष्टता) अ अनर देवाट वर बनती है अर (द्वष्टा उचिर्हन्ती) हाथ हावर
 इन्द्रदुष्ट ॥ २९ ॥ (पाप्माभधीय) अन्त्ये हातर राजप्रसू हाती के अर (पारुष्यमवधीय) नाथी
 हाती के ॥ ३० ॥ (मिष प्रयस्ता) बढी हातर वर हाती के और (विव द्राग कृ) बढी है ॥ ३१ ॥
 (पुष्पमाना) अन्त्ये हाती के ॥ ३२ ॥ (अनुगच्छन्ती) प्राणानुर्य मो (दासयति) प्राणानुर्य दासयति)
 ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य नाथ बनती है ॥ ३३ ॥

(३ वामाभधीय) अन्त्ये हातर वर हाती के अर (पपाक्रियमाना) पपा अन्त्ये हातर वर हाती के अर (मूलचर्हणी)
 मूलचर्हणी ॥ ३४ ॥ (धिर्विः पर्पाकृता) धिर्विः हाती के अर (पर्पाकृता) हाती के ॥ ३५ ॥

असंज्ञा गन्धेन शुशुर्वधियमाणाक्षीविष उच्यता ॥ ३४ ॥
 अभूतिरुपधियमाणा पराभूतिरुपहवा ॥ ३५ ॥
 सूर्यः क्रुद्धः पिश्यमाना क्षिमेदा पिशिता ॥ ३६ ॥
 अवतिरिश्यमाना निर्भेतिरक्षिता ॥ ३७ ॥
 अक्षिता ओकाच्छिनसि अक्षगवी ब्रह्मज्यमसाधामप्याध ॥ ३८ ॥ (२७)
 (५१५)

तस्या आहनेन कृत्या मेनिराशसन वलग ऊर्ध्वप्यम् ॥ ३९ ॥
 अस्वगता परिहृता ॥ ४० ॥
 अग्निः कृष्माद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्य प्रविश्यासि ॥ ४१ ॥
 सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृथति ॥ ४२ ॥
 छिनत्प्यस्य पितृषु परा मावयति मावषुधु ॥ ४३ ॥
 विवाहां ब्राह्मन्सर्वानपि धापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥
 अवास्तुमेनमस्वर्गमप्रजसं करोत्यपरापरुणो भवति क्षीयते ॥ ४५ ॥
 य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादपे ॥ ४६ ॥ (२८)

अग्ने (अग्नेश्च अक्षता) वह पक्षे वेहोमी करती है (अभूतिरुपमाणा अक्षता) उच्यते आनेपर लोह पैदा करती है और (उच्यता अक्षतिविष) उच्यते पक्षे लोहके समान होती है ॥ ३४ ॥ (उपधियमाणा अभूतिः) पाच धी गई निपति बहती है (अप हवा पराभूतिः) पाच रक्षी पराभूतक्य होती है ॥ ३५ ॥ (पिश्यमाणा क्रुद्धः सूर्यः) पीछी आते समन क्रोधित करके समान और (पिशिता क्षिमेदा) पीछी हुई दुष्कर नाश करियेवाली होती है ॥ ३६ ॥ (अवतिरिश्यमाना अवतिः) आनी आनी हुई निपदा होती है और (निशिता निर्भेतिः) आनी आनेपर निराशत बनती है ॥ ३७ ॥ (अक्षिता अक्षगवी) आनी हुई ब्राह्मणकी बी (अक्षतर्ध अरमात् अक्षुष्मात् य लोहपत्त क्रियावि) ब्राह्मणपाठकीये इस ओपक्षे और परकोछे बकाश देती है ॥ ३८ ॥
 (५१५)

(तस्याः आहनेन कृत्या) उच्यते वह पाठ करियेवाली है (आहनेन मेनिः) उच्यते उच्यते करना पक्षपाठसमान है। और (उच्यते अक्षतिः) उच्यते उच्यते अक्ष विनाशक होता है ॥ ३९ ॥

वह (परिहृता अक्षगता) धी आनेपरभी अक्ष्ये पाच नहीं रहती अर्थात् अपवा पाठ करती है ॥ ४० ॥
 (ब्रह्मगवी ब्रह्मज्य अग्निः भूत्वा ब्रह्मज्यं प्राविश्य अग्निः) ब्राह्मणकी यो मांसयज्ञक व्याप बनकर ब्राह्मणपाठकीये अग्नेय करके चले या जाती है ॥ ४१ ॥ (अक्ष्ये सर्वा भेदा सुक्ष्माणि वृथति) इत्येते एव भेदो और सूक्ष्मो काय बहती है ॥ ४२ ॥ (अक्ष्ये पितृषु पितृषु) इत्येते पितृके वस्तुओंके जेवती है और (मावषुधु परामावयति) माताके वस्तुओंके परास्त करती है ॥ ४३ ॥ (अक्षियेण अक्षुर्वधियमाणा अक्षगवी) अक्षियेके द्वारा पुनः अपच न ही मनी ब्रह्मणकी बी (अक्षियेण विवाहात् सर्वान् ब्राह्मणान् धापयति) अक्षियेके सब विवाहों और सब आतापार्थीय नाश करती है ॥ ४४ ॥ (य एवं विदुषो अक्ष्येन अपजसं करीति) इत्ये परक किञ्च आध्वरहित और अक्षरहित करती है (अपरापरुण भवति क्षीयते) अक्षरहित रहित हाथ है और नष्ट होता है ॥ ५ ॥ (यः अक्षियः विदुषः ब्रह्मज्यं यो एवं आहने) जो अक्षिय विदुषः ब्राह्मणकी योके इक्षी तरह क्षीयता है ॥ ४६ ॥ [२८]

(५१६)

क्षिप्रं वै तस्याहर्नने गृध्राः कुर्वन्त ऐसम्भम्	॥ ४७ ॥
क्षिप्रं वै तस्याहर्नने परि नृत्यन्ति कृष्णिनीराग्नानाः प्राणिनोरांसि कूर्वाणाः प्रापमैसम्भम्	॥ ४८ ॥
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृक्षाः कुर्वन्त ऐसम्भम्	॥ ४९ ॥
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासीं ३ विद् नु ता ३ विदिं	॥ ५० ॥
छिन्ध्या छिन्धिषु प्र छिन्ध्यापि क्षापय क्षापय	॥ ५१ ॥
आवदानमाजिरासि अक्षय्यमुप दासय	॥ ५२ ॥
वैशदेवी शोऽप्यसं कृत्वा कृत्स्नमावृता	॥ ५३ ॥
ओषन्ती समोषन्ती अक्षयो वज्रः	॥ ५४ ॥
धुरपविर्मुत्पुर्मुत्वा वि भाव स्वम्	॥ ५५ ॥
आ दत्ते जिनतां वर्षे दृष्टं पूर्वं प्राक्षिपः	॥ ५६ ॥
आदाय ज्ञीत जीताय लोकेऽमुज्झिन् प्र यच्छसि	॥ ५७ ॥
अज्ये पदवीमिव आक्षुणस्याभिर्हस्ता	॥ ५८ ॥
मेनिः क्षुर्या मवापादयविषा भव	॥ ५९ ॥

(५१६)

अर्थ— (तस्य आहर्नने गृध्राः क्षिप्रं वै ऐसम्भं कुर्वन्ते) उक्त कुर्वन्ते इत्यन दोनेपर धीय क्षीप्र ॥ क्षीयम्भं यद्यपि है ॥ ४७ ॥

(तस्य आहर्नने) उक्त की मकली पिताको देखकर (केहिनीः प्राणिना उरसि अग्नानाः प्रापं ऐसम्भं कुर्वन्ति) बाल जोकर हाथोंके आगिगौर मार मार जुग छन्द करती हुई जिहीं इतस्तथाः गायती है ॥ ४८ ॥ (तस्य वास्तुषु वृक्षाः ऐसम्भं कुर्वन्ति) उक्त के घरोंमें आगिसे धीम ही अग्नि छन्द करने कहेते हैं ॥ ४९ ॥ (क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति) धीम ही नरके विषयमें पूछते हैं कि (यत् तत् अज्ञीय) कैसा वह था (इह तु यत् इति) क्या वह वही है ॥ ५० ॥ (छिन्ध्या अक्षिप्य अक्षिप्य) उक्त के हाथों अक्ष काशे और नुकसे करो । (क्षापय क्षापय) बाध करो उक्त काध करो ॥ ५१ ॥ (आजिरासि) अन्नरसकी छानि । (आवृता अक्षय्यं वज्रमावृता) अक्षय्य की मोठी छीटनेके आदरका बाध करो ॥ ५२ ॥ (वैशदेवी हि कृत्वा) जब वैशदेवी विनाशक छानि (अक्षय्यं वाह्या अक्षय्ये) विषयकी है ऐसा करते हैं ॥ ५३ ॥ (ओषन्ती समोषन्ती अक्षय्यं वज्रः) तापकायक का करनेवाली वह अक्षय्य की वज्रका छानि है ॥ ५४ ॥ (धुरपविषा मुत्पुर्मुत्वा विषा विषा) तत्पूरक कामा विषय वनकर उक्त मृत्यु करवैके किये दोष ॥ ५५ ॥ (आदाय यथा इह पूर्वं च प्राक्षिप आहर्नने) विनाश करनेवालेका तत्पूरकता और आगिगौर तत्पूरती है ॥ ५६ ॥ (ओत आदाय अमुज्झिन् करोते) विषय जाली पुष्टकी पकड़कर परीक्षमें (जीताय प्रवर्तयति) उक्त काद विष तत्पूरती है ॥ ५७ ॥ (अज्ये) अक्षय्य की । तत्पूरक कामा विषयका परीक्ष यत्पूरकता अक्षय्यका अक्षय्य है ॥ ५८ ॥ (मेनिः क्षुर्या मवापादयविषा भव) विनाशक छान यत्पूरकता अक्षय्यका अक्षय्य है ॥ ५९ ॥

अन्ये प्र शिरो जहि प्रसज्यस्व कृतार्गसो देवपीयोराचसः ॥ ६० ॥
 स्वया प्रमूर्णं मुदितमभिर्देहतु दुश्चितम् ॥ ६१ ॥ (२९)

(५।७)

पुंश्च प्र वृंश्च स वृंश्च वृश्च प्र वंश्च स वंश्च ॥ ६२ ॥
 प्रसज्य देवपय आ भूलावनसदह ॥ ६३ ॥
 यथायाद् यमसाधुनात् पापकोकान् पराचरतः ॥ ६४ ॥
 मुना स्व देव्यन्ये प्रसज्यस्व कृतार्गसो देवपीयोराचसः ॥ ६५ ॥
 वज्रैश्च छतर्पयन्ना तीक्ष्णेन क्षुरमृष्टिना ॥ ६६ ॥
 प्र स्कुचान् प्र शिरो जहि ॥ ६७ ॥
 लोमायस्य सं छिधि स्वर्चमस्य वि वेष्टय ॥ ६८ ॥
 मांमायस्य घातय स्नावायस्य स वृह ॥ ६९ ॥
 अस्वीन्यस्य पीडय मज्जान्तमस्य निर्वेदि ॥ ७० ॥
 सर्वास्यान्ता पर्वाणि वि श्रेषय ॥ ७१ ॥
 अभिरंनं क्रम्यात् पृथिव्या जुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षा महतो वरिष्मः ॥ ७२ ॥
 सूर्यं या विय प्र जुदता न्यो पतु ॥ ७३ ॥ (३०)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ इदं च काण्ड समाप्तम् ॥

हे [अन्ये] अन्ये गी । त् [प्रसज्यस्व कृतार्गसो देवपीयोराचसः शिरः प्रसजि] प्रसजातकी पापी दमर्षिक
 यथाया पापीय शिरः काट काट ॥ ६० ॥ [स्वया प्रमूर्णं मुदितं दुश्चितं अग्निः वृश्च] येरे इत्यं माप मया वद प्रह हुमे
 हुहुमुदि फरकी अग्नि यथा वे ॥ ६१ ॥

[पुंश्च प्रवृंश्च स वृंश्च वृश्च प्र वंश्च स वंश्च] अतः अधिक काट अस्वीन्यस्य काट [वृह प्रवृह सीवृह] अतः अधिक अन्तः अच्यो तरहये
 यथा ॥ ६२ ॥ हे [अन्ये देवि] अहिंसनीय गी हेमि । [प्रसज्य आमुकात् अपुष्टयह] यथापातकीयेः समूल यथा काट
 ॥ ६३ ॥ प्र [यथा यमसाधुनात् पराचरतः पापकोकान् यथात्] यथा यमसाधुनात् परके पापी कोकोके अति वृह जाय [एवा
 कृत्ययसः देवपीयोः अरायसा प्रसज्यस्व] इह तरह पापी देवस्यु केवृह यथापातकी यमुष्मका [शिरः स्कुचान्] शिर
 और कंधे [घातपर्वणा क्षुरमृष्टिना तीक्ष्णेन वज्रैश्च पञ्चहि] की गोकर्माके क्षुरके समान बारबाके तीक्ष्ण वज्रके पाट काट
 ॥ ६४-६७ ॥ [अस्व कोमाणि वि छिन्धि] इहके अग्नि काट काट [अस्व स्वर्चं वि वेष्टय] इहकी त्वचरो त्वेष्ट
 [अस्व मांमायि घातय] इहके मांमायि काट काट [अस्व स्नावायि संहृह] वरके स्नायुम्भोके कुचय [अस्वीनि
 पीडय] इहकी इष्टिमोष पीडा हे [अस्व मज्जान्तं निर्वेदि] इहकी मज्जान्तो नाश कर [अस्व सर्वा पर्वाणि विश्लेषय]
 इहके यथा पर्वाये अस्व कर ॥ ६८-७१ ॥ [एवं क्रम्यात् पृथिव्याः जुदतां] इहकी गंधयमका अग्नि पृथिव्यांके
 यारर विक्रमे और [वत् ओषत्] अतः देवे ॥ [वायुः महतो वरिष्मः अन्तरिक्षात्] वायु वरके मापी अन्तरिक्षांके वृह
 के ॥ [सूर्यः पतु दिव प्र जुदतां] सूर्य इहे धुमिकके वृह कर देवे और [वि ओषत्] अतः देवे ॥ ७२-७३ ॥

पैरोको केकर पावर भूमिमें जाते हैं और गौबोस परबेके भिन्न काम होते हैं और स्वन ह्वर उबर मलकती रहते हैं । ऐसी रक्षामें कोमे गोके पीछ पककर उनको छलाते हैं । पृथक् हो वह सूचना मत्र ८ में हैं । यथाविभा योही योग्य रक्षा करे कोमे आदिसे योको पीका तो नहीं होती है इस निश्चये प्रबचनका रहे । रजुबसमें शिखीप राजा कैली पतिव्रती योही रक्षा करता था वैली रक्षा हरएक वीरका करे । कोई बीजनम्बु योको पीका न देवे । ऐसी रक्षा करने-कला ही दुवेतन मोरक कहलियेगा ।

गोबर और मूत्र ।

ब्रह्म मंत्रमें योका गोबर और मूत्र ह्वर उबर न केक बरी आका कही है । किंहीं किंसेन स्वायमें उनको अर्वाव पोवरको और मूत्रको सुरक्षित रक्षना चाहिये । क्योंकि वह कचम काह है किसेने पान्न पक्ष फूक लाय अग्नि उत्तम पैसा हा छकती है । ह्वर उबर मोकराली पक्ष हैवी और कचसे बनी हावे होम । ऐसी अवस्था किंसीमी गृहस्थके घरमें न हो इसलिने वह आका की है गोबर और मूत्र ह्वर उबर केक दवा [एवम] पाप है वह पतनका रतु है । वह पना पाह न कर ।

अने इक्षमसे हावकतक के मंत्रामें फिर कहा है कि वह बी किन्तु सुवान सवाचारी प्रकल्पकी होती है । [अर्थ] अविश्वकोके अनुचार आचारन करनका को ही इसका वान करा चाहिये ।

भैरवमें मंत्रमें कहा है कि बी जीवन पत्नार्थ पसे प्रक होय है वयका निचार हाता योका वान करनेके समय न करे । क्योंकि वयका वह मेल्य अन्व रातिसे मी प्राप्त होय । यदि कोई हाता वान देनक समय वह विचार काने कि अरे तुझ तो इनसे वह वान मिलेगा और न इन मेल्य ऐस कुछ प्राप्त कल्या इच्छा वान करनेके मुखे वे इच्छा उठये वयन ह ह । कोई हाता ऐसे कल्पके निचार मनमें न काय । इस प्रकार निचार मनमें कानेके वान ना सब महत्त्व वह ही जानना । समयमें बी मनकी उपचाय होती है वह इन प्रकारके निचारसे कल्प कर होय ।

छोमहमें मंत्रमें फिर कहा है कि बी तो ऐस कलाय प्रकल्पकी ही धन है । यक स्वायके प्रस भा वह तीन वर्षमें रह उचके पक्षात् वह सुविधा करपाय प्रकल्पकी बी

वान । योग्य प्रकल्प प्रार्थना करनेके लिये व आने तो बेले प्रकल्पकी ईच्छा चाहिये परंतु कमी बसोभवको वान देना नहीं ।

आम ११ में मंत्रतक वानका ही महत्त्व बर्णन किया है । १२ में मंत्रमें विद्वान् प्रकल्पकी ही भाषा हाय करन चाहिये वह वात फिर कही है । ऐककों अविश्व पदमें तो उनको बनी नहीं चाहिये । केवल विद्वान् ही वान केमेका अधिकारी है वह वात हरएक वान देनकाको स्वरध रकमी चाहिये । इस तरह वान हाते रहें व ती कल्पका उदात्त होना । कुप-त्रम लिये वान ही कलापत करनेका हाते हैं ।

आम ठेठमें लयमें शिखे ही वकसे कहा है कि यदि कोई मनुष्य ऐसे विद्वान्को वान व केकर वान अधिद्वान्को देय्य तो उसको बहा कुल होय ।

आपके तीव्र मंत्रमें कहा है कि प्रकल्प अम्नादि वत । ओके करनसे वाके वृत्तुधारीकी आहुतिर्था देत हैं और वेवतकोका वीतप करत हैं इसलिने उनकी बी वान करना चाहिये । यदि वान न किया तो वज्रमानको बहा पक्ष भोवना पड़ेगा । आगे ३२ में मंत्रतक बरी निबध कहा है ।

क्षत्रियकी माता ।

३३ में मंत्रमें कहा है कि बी क्षात्रवकी माता है (वहा राजनवक माता) इक्षमन क्षात्रवकी उचित है कि वह जाकी माता मावकर कचम उच्छार बचावेतन कर । योको यदि कोई मनुष्य कर देवे तो क्षात्रिय अपनी माताका कष्ट वनकाम समझकर बचावतन दृष्ट वन ।

आम ५३ में मंत्रतक अर्वाव सूचनी प्रमाप्ति तक बीका वान सुवाम प्रकल्पका वना चाहिये वान व देनका माव वीहनी मयन न वारन करे वान देवेके कल्याण आर व देवेके कुल हाता है वहा बर्णन है ।

इस मंत्रमें वह स्वामावर पादाम न वन बी स्वर्ग अपन लिये [पण्य वहा] बीका पक्षात् है " एते कायन है । जिनको वेवकी जापाका करिष्य नहीं है वे इससे एका अनुमान करेके लिये वाके वचना अर्वाव माताका वका हा बहा अर्माह है । बी मय ऐसा निचार मन में काने उचक विकल्पके निरासक लिये वही पौराण्य किहनेके अवरन पता है ।

वेदों के अन्तर्गत अथर्ववेद होते हैं जिससे यो अथर्व
‘यौंसे उत्पन्न हुए पराजोका भाष्य’ होता है । अथर्व वेदों
पनति का अर्थ ‘यौंसे उत्पन्न रूप भूत रही काक आदि पक्ष-
म है योहृत्पक्षे । किन्ता पाण्डु ऐवार करता है । ऐसा है । इसी
प्रकार यो वा नका ’ के अर्थ से वेद, रही काक हृत्
आदि पराजो है यौंसे ही इस अथर्वके अर्थे यौं रक्त हृत्
अथर्वका अर्थ योवर योमृत् आदि यो है । इसारे विचारसे
रूप रही काक हृत् आदि अर्थ ही नहीं केना चाहिये । पाठक
हृत्पक्ष विचार करे और इस मंत्रोक्त आशय समझे ।

अथर्व अनुवाक समस्त ।

पञ्चम अनुवाक ।

इस पञ्चम अनुवाकमें ७ पर्याय (निवाय) और १ रत
हैं । अतः यथार्थ सूक्तमें यौंकी महिमा कही है और अथर्ववेद
कोई न छीने आश्विनको यो दासमें यो आदि यो आश्विन-वर्ष
विद्या आश्विनको समझते हैं उनको यो पुत्राद के बने है
उनके सर्वश्रेष्ठ भाग होता है इसादि अर्थ है ।

विश्व नही होयेगे अतः सूक्तके विवेक स्वीकार करने
आवश्यकता नहीं है । यो पाठक अथर्व अर्थे यो अर्थ
समझते अथर्व आश्विन सहस्रहीमें आ समा है । अर्थ ही
कल्पनासे पूर्ण है और यही दृष्टिसे यह सूक्त देखना चाहिये ।

पञ्चम अनुवाक समस्त ॥

इति अथर्व अनुवाक ॥ १२ ॥



द्वादश काण्डकी विषयसूची ।

राष्ट्रका धारण	२	सौ धर्मोंकी पूर्ण भाषा	१०
धार्मिक देवता छन्द	३	स्वर्ग और मोक्ष	११
मातृभूमिका स्तुति	७	स्वर्गका साम्राज्य	७७
मातृभूमिका वैदिक गीत	११	बलका महत्त्व	
स्तुति का उपयोग	१७	एकताका संदेश	
मातृभूमिकी कल्पना	१८	चारों दिशामोंमें इच्छा	"
अध्यात्मज्ञान और राष्ट्रमूर्ति	२०	ऊँचा और नीचा	७८
अध्यात्मज्ञान	२२	पशुपावन	
महात्म्य		गृहस्थावस्था	"
देवी द्वारा बचाए हुए स्थान	३८	पक्षिकाका जीवन	७९
कृषि-क्षेत्र	४०	जलका महत्त्व	
देव-क्षेत्र	४१	शाकमात्रा	८०
विद्यामोंका क्षेत्र	४२	पक्षिपर	"
मंत्रोंकी सहायता	४३	कुटुम्बमें एकता	"
परमयोगनाशक	४५	देवमित्रको दूर करो	
परम योगको दूर करना	५१	परमेश्वरी प्रज्ञापति	
आधेक मार्ग		आदेश गृहस्थाधर्म	
पापाकार और दुष्ट विचार		ब्रह्मा गो	८२
क्यूँही शक्ति और मृत्यु		ब्राह्मणकी गो	९२
विद्वत्	५७	गौका महत्त्व	९८
इसका अर्थ	"	ब्राह्मण क्यों पावन करते हैं ?	
सर्वप्रकाशका महत्त्व	५८	बालका अधिकारी ब्राह्मण	
शुद्धि का उपाय मृत्यु और हास्य	"	धौकी रक्षा	"
मनुष्यकी आध्यात्मिकता	५९	गोबर और मूत्र	९९
नदीका प्रसङ्ग वेग	६०	शत्रुकी माता	१





ॐ

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य ।

त्रयोदशं काण्डम् ।

लेखक

प० श्रीपाद वामोदर सातपथ्यकर,
साहित्यवाचस्पति वेदाचार्य गीतगोवर्धन
मध्यक्ष स्वाध्याय मण्डल आनन्दाश्रम कल्लापारकी (त्रि. सुरत)

तृतीय वार

सप्तम् १००३ अंक १८३१ सम १९५१



राष्ट्रधारक ।

ये देवा राष्ट्रमृतोऽमृतो बन्ति सूर्यम् ।
 तैष्टे रोहितः संविदुनो राष्ट्र रक्षातु सुमनुस्यमानः ॥

अक्टोबर १९१९

(ये राष्ट्रभूता देवा) जो राष्ट्रका धारणोपन करनेवाले देव [सूर्य अमिता बन्ति]
 सूर्यदेवके कारणों कोर जूटते हैं [वे: संविधान: सुमनुस्यमान: रोहित:] इनके ज्ञान रहनेवाला
 कष्टम संस्करणका रोहित अर्थात् सूर्य [ये राष्ट्र रक्षातु] ऐसे राष्ट्रका धारणोपन करे ।

राष्ट्रका धारणोपन करनेवाले ज्ञानदेव बलदेव कर्मदेव धर्मदेव और कर्मदेव ने पंच कन
 सूर्यदेवको अपना आदर्श माने कैसा सूर्य सन जनत को प्रकाशित करता है वैसे ये अपने राष्ट्रको
 ज्ञान बल कर्म धर्म अग्नि द्वारा प्रकाशित करें । इनकी संश्रयसे कार्य करनेवाला राष्ट्रका भूतल
 हमारे राष्ट्रका कष्टम रीतिसे धारणोपन करे ।



मुद्रक तथा प्रकाशक—एसंत श्रीपाद सातवळेकर श्री ए
 स्वाभ्यासप्रकाशक भारतमुद्रणालय किछा पारखी (जि. सुरत)



अथर्ववेदका सुबोध

भाष्य ।

त्रयोदश काण्ड ।

यह त्रयोदश काण्ड अथर्ववेदके सुवीच महाविभागका पहिला काण्ड है । पहिला महाविभाग १ से ७ तक के सात काण्डोंका है । दूसरा महाविभाग ८ से १२ तक के पाँच काण्डोंका है और तीसरा महाविभाग १३ से १८ काण्डोंका है । इस सुवीच महाविभागका यह तेरहवाँ कांड पहिला है । इस काण्डमें बार सूक्त हैं और बारों सूक्तोंमें 'अथर्वम रोहित काण्डिका' का वर्णन है । इस काण्डकी मंत्रसंख्या इस प्रकार है—

सूक्त	अनुवाक	वृत्तानि	मंत्रसंख्या
१	१	१	१
२	२	७+१ मंत्र	८६
३	३	२+१ "	२६
४	४	१ वर्णाक्षर	५६
४ सूक्त	४ अनुवाक		१८८ कुल मंत्रसंख्या

अथ इनके अग्नि वृत्तों और छन्द देखिये—

अग्नि वृत्तों और छन्द ।

सूक्त	मंत्रसंख्या	अग्नि	वृत्त	छन्द
१	१	मन्त्रा	अथर्वम रोहित काण्डिका	विष्णुपु । ३ ५ ९, १२ अथर्वम १५ अथर्वमन्त्रोक्त अथर्वम ८ ध्रुविक १ अथर्वमन्त्रोक्त

३ मयूतः

२८ ३१ ऋषिः

३१. अङ्गुलीयत्नम् ।

१३ अतिशयान्वरपर्याप्तित्रयती, १४ विपदापुराणवर्णन
विपरतिपाद्यकम्पना पक्षिः १८ १९ कर्मसंरतिवर्णन
(१८ परशकाला मुरिङ्क) २१ जार्वा विपदावर्णन
२२ २३ २४ प्रकृता, २५ विराट् परोक्षि १८ १,
२६ २७ ४ ४५-५५, ५५-५६; ५७-५८ मन्
पुष्पाः (२८ मुरिङ्क, ५२-५५ पञ्चमर्षि, ५५ मन्
ती नृहतीनर्मा, ५७ कर्मसंरति) २१ पञ्चमर्षि कर्मसं
रतिवर्णन कर्मती, २५ विपरिज्ञानवृहती, २६ विपदा
वृहती, २७ परशकाला विराट् अतिवर्णनी, ४१ विपदा
वर्णनी, ४२ विराट् महावृहती, ४४ परोक्षिङ्क, ५
५ पाञ्चमी ।

१ १२-१५, १९-४१ मनुष्यः, १, १, ५, ३१
 नवमः १ आस्तारपेयः, ११ बृहदीन्वरी ११ १
 अथर्वानवमः, २५ मनुष्यो आस्तारपेयः, ११ पु-
 ण्यविषयस्य सुरिन्वरी, २० विराट्पदी, ११
 आस्तारपेयः मनुष्यः, २० वनपदी वनपदी, ११
 १४ आर्षा पदी, २० वनपदी विराट्पदी मन्त्रः
 ४४, ४५ नवमः [४४ मनुष्यस्य पुत्र आस्तारपेयः
 ४५ अतिनापयवर्गः] ।

१ चतुरस्रधाभाष्यपरा आकृतिः १-४ प्रत्यक्ष
चतुरस्र [१ ३ अक्षिः २ मुरिक् ४ अक्षिः]
[५-७ चतुरस्रधाभाष्यपरा [५, ६ अक्षिः
७ अक्षिः]]
१-१२ चतुरस्रधाभाष्यपरा अक्षिः १-१२ चतुरस्र
[१-१२, १३, १४ चतुरस्रधाभाष्यपरा १५ मि-
तः, १६ अक्षिः, १७ १८ १९ १ १९ अक्षिः
१८ १९ अक्षिः, १९ १८ १९, अक्षिः १९
मुरिक्], २ २२ प्रत्यक्षभाष्यपरा अक्षिः २३
२३ २५ चतुरस्रधाभाष्यपरा [२४ अक्षिः २५
२६ अक्षिः, २६ २५ अक्षिः]

१ ११ अथापस्तम्बः १२ विष्णुः १३
शम्भुः १४

१४ मुष्टि काली त्रिभुवू, १५ आसुरी चक्र १६
१७ प्राजापत्यत्रिभुवू, १८ १९ आसुरी बलत्रा।
२० मुष्टि प्राजापत्य त्रिभुवू, २१ आर्षा वायव्य।
२२ एकपदा आसुरी वायव्य, २३ आर्षा अमुत्रु, २४
२५ प्राजापत्यत्रिभुवू।

22

2

आपल्या हर्ष

रेडिफा

बापिपुत्रः

1

20

u (1) 32

(7) 4

(4) -

92

- (૧) ૧૦ , ૨૧ ૩૩ ૩૫ ૪ ૫ અપ્પીય.૨૫૫; ૩ ૩૩,
૩૦ ૩૬ ૪૪ ૫૪ ૫૫ ૫૬ ૫૭ ૫૮ ૫૯ ૬૦ ૬૧ ૬૨ ૬૩ ૬૪ ૬૫ ૬૬ ૬૭ ૬૮ ૬૯ ૭૦ ૭૧ ૭૨ ૭૩ ૭૪ ૭૫ ૭૬ ૭૭ ૭૮ ૭૯ ૮૦ ૮૧ ૮૨ ૮૩ ૮૪ ૮૫ ૮૬ ૮૭ ૮૮ ૮૯ ૯૦ ૯૧ ૯૨ ૯૩ ૯૪ ૯૫ ૯૬ ૯૭ ૯૮ ૯૯ ૧૦૦
અપ્પીય.૨૫૫; ૪૪ ૫૫ ૬૬ ૭૭ ૮૮ ૯૯ ૧૦૦
(૫) ૧ , ૪૪ ૫૫ ૬૬ ૭૭ ૮૮ ૯૯ ૧૦૦
અપ્પીય.૨૫૫; ૪૪ ૫૫ ૬૬ ૭૭ ૮૮ ૯૯ ૧૦૦
અપ્પીય.૨૫૫; ૪૪ ૫૫ ૬૬ ૭૭ ૮૮ ૯૯ ૧૦૦
(૬) ૫ , ૫૫ ૬૬ ૭૭ ૮૮ ૯૯ ૧૦૦
અપ્પીય.૨૫૫; ૫૫ ૬૬ ૭૭ ૮૮ ૯૯ ૧૦૦

હવે જ્યારે હવે મુખ્યેક શ્રવિ દુયત્તા યાદ ઇત્ત હૈ । હવે અવ મુખ્યેકો દુયત્તા દુક હૈ હૈ હવે અવ આતી મુખ્યેકો
અવ અપ્પીય.૨૫૫; ૫૫ ૬૬ ૭૭ ૮૮ ૯૯ ૧૦૦

वह निःसंदेह एक है ।

स एष एक एकपुत्रक एष ॥ २० ॥

मर्षे शसिन् देवा एकपुत्रो भवन्ति ॥ २१ ॥

अथर्ववेद १३।४

"वह एक है, वह लगेका एक लखत व्यापक है निःसन्देह एक ही है सब लम्ब देव उसमें एकस्य होते हैं ।

वह परमेश्वर केवल लगेका एक ही है, निःसन्देह उसके सामान्य द्वारा कोई नहीं है ।



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

त्रयोदश काण्डम् ।

अध्यात्म—प्रकरण ।

(१)

उदेहिं वामिन् यो अप्सर्वन्तरिद राष्ट्रं प्र विंश सनूतवत् ।

यो रोहिणो विश्वमिदं ज्ञानं स त्वां राष्ट्राय सुभूत विमर्त

॥ १ ॥

उद्वाज आ गुन् यो अप्सर्वन्तर्विंश आ रोह त्वयोनिपो-याः ।

सोमं दर्शनोऽय ओषधीर्गामर्तपदो द्विपद आ वैद्यपद

॥ २ ॥

अर्धे—हे (वामिन् । इत् पृष्टि) आसर्व्ववात् अतमरेव । इत् इत्यको प्राज्ञ हो । (वा अप्सु अन्ता) को इ आसो मय मामेकि परे है, वह इ (इत् सनूतवत् राष्ट्रं प्रविश) इस मिय राष्ट्रमें प्रविष्ट हो (वा रोहिणं इत् विश्वं ज्ञानं) जिस रीतिसे वह ज्ञान उत्पन्न किया है (वा त्वा राष्ट्राय सुभूतं विमर्त) वह मुझे इस राष्ट्रक किए ज्ञानम भरमरोपमपूर्णक ज्ञानम करे ॥ १ ॥

(वा अप्सु अन्ता) को आसोमय मामेकि अन्तर विद्यमान है वह (वाजः इत् आगन्) आसम्भ ऊपर आताया है । (वा रोह—वायवः विश्वः) जो तेरी जगत्में ही जगत्में है उनमें इत् (आरोह) इत्थ स्वामर्ग विराजमान हो । (इत् ओमं इवायः) इस राष्ट्रमें सोमर्षि वनस्पतिर्षीय पोषण करते हुए (अथा ओषधीः गाः अनुपदः द्विपदः) जग, ओषधियों गौर्षे अनुपद और द्विपद मामेकिओ (आनयय) मित्राण करानो ॥ २ ॥

माधार्म्य—प्रत्येक आत्मा अभ्युदय और निर्भयक प्राप्त कर । प्रत्येक मनुष्य राष्ट्रीय उन्नतिके साथ अपनी उन्नति करे । अपने राष्ट्रपर प्रेम करे और सकल उन्नति करनेका प्रयत्न करे । इस मूर्तिदेवसे इस जगत् को उत्पत्ति को है वही मुझे राष्ट्रीय उन्नति करनेके निधि दृष्टगुह करेगा ॥ १ ॥

मनुष्यका धामर्त्य वही है जो सकल धामर्त्य विद्यमान है । उस धामर्त्यसे पुण्य होकर अपनी कर्मातीव प्रशान्ति—अथ इ अपने राष्ट्रमें रहकर अभ्युदय प्राप्त करना चाहिये । वही अन्त राष्ट्रमें रहकर वनस्पतिर्षी जन्मदान ओषधियों, और और अनेक द्विपद तथा अनुपद वस्तुओंका धारण करे ॥ २ ॥

युममुग्रा मरुतः पृथिमातर इन्द्रेण युवा प्र सृणीतु धृन् ।
 आ यो रोहितः धृजवत् सुदानवक्षिपुष्पासौ मरुतः स्वादुसमुदः
 रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गमो जनीनां अनुपासुपस्वम् ।
 तामिः संरम्भमन्म विन्दन् पदुर्विर्गातु प्रपक्ष्यभिह राष्ट्रमाहाः
 आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहापीव स्यात्स्यन्मुघा अभय ते अभूत् ।
 तस्मै ते धावापुषिषी रेवतीभिः कामे दुहावाभिह शर्करीभिः
 रोहितो धावापुषिषी अञ्जानं तत्र तन्तुं परमेष्ठी रतान ।
 तत्रे क्षिभिरेऽञ्ज एकपादोऽर्धदुह धावापुषिषी रसेन

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

अर्थ- हे (मरुतः) मरुतेक कन्येवाके बीरो । (युमं कपः पृथिमातरा) युम कप बहुत धूर को धूमिले लगे
 माला मानेवाके हो युम (इन्द्रेण युवा कपुत्त मनुवीर) इन्द्रके साथ रहकर कपुत्तोंका बाध करो । हे (आनावा) रोहित
 आ सुवधत्) उद्यम दान देवेवाके बीरो । वह सूर्यवत् हमारी बात सुने । (वि-संज्ञाया मरुतः स्वादुसमुदः) वह
 तीव्र गुण्य धन्य अर्थात् इन्वीर मरुतके बीर उद्यम बाध देवेवाके हैं ॥ ३ ॥

(रोहितः रुहः रुरोह) मरुतकाय सूर्यदेव कप्य स्वाप्ये विराजमान हुआ है, अर्थात् (कपुतां जनीनां प्रतां
 गमो बाहोह) जीर्णोकी गोमैं वह गर्भ देह गया है । (पदुर्विर्गातु प्रपक्ष्यभिह) का विहायने लगे
 द्वारा कप्य मरुतके प्रपक्ष किया । वह (राष्ट्रमिह राष्ट्रमाहाः) उद्यतिका माला बाधता हुआ वहाँ एकमेक
 करता है ॥ ४ ॥

(ते राष्ट्रमिह रोहित आहापीव) ते राष्ट्रको वहाँ वसी सूर्यदेवके काया है । (स्यात् स्यन्मुघा) कपुत्तोंके
 पूर किया, और (ते नमन् अभूत्) तेरे किए विर्यवता हो गयी है । (तस्मै ते रेवतीभिः शर्करीभिः धावापुषिषी
 काल दुहाव) उस तेरे हितके किए कल और शर्कराहता के कपुत्तोंके और पुषिषीको वहाँ इस राष्ट्रमें वनेक मरुते
 हैं ॥ ५ ॥

[रोहितः धावापुषिषी अञ्जानं] इस सूर्यदेवके इस कपुत्तोंके और पुषिषीकोके उत्पन्न किया है । [तत्र रसेन
 कपुत्त रतान] वहाँ वरमानने मृगजमानके किया है । [तत्र एकपादः अञ्जः क्षिभिरे] वहाँ एकपाद अञ्जने कप्य
 किया है । उद्यते [रसेन धावापुषिषी अर्धदुह] अपने कपुत्तोंके और पुषिषीके धुत्त बनाता ॥ ६ ॥

अर्थ- वह लगे अपनी मातृपुषिषी रक्षा अपने उद्यम जीर्णो करे । मातृपुषिषी कपुत्तोंका बाध करे । मरुतें उद्यमज
 हादुसमुद मान धारण करे । जो बीर मरुतेक कन्येवाके होते हैं वे ही उद्यम बाध देवेवाके होते हैं ॥ ३ ॥

वह सूर्य कपुत्तोंके प्राप्त हुआ है माली वह अपनी मातृपुषी पीरने बैठा है । इस उद्यम माली को विहायने उद्यम
 मरुत धारण किया है । वह मरुत अपने उद्यम होता है स्वयं उद्यतिका माय बाधने के और राष्ट्रको भी कप्य करता है ।
 इस सूर्यदेवके ही तेरे राष्ट्रको कप्य हितमें काया है । कपुत्तोंके कपुत्तोंका पूर किया और पुषिषीके कप्य किया है । इस राष्ट्रमें
 रुरोहोके लिए इस भूमिमें कप्य और कप्यता पणति हैं ॥ ५ ॥

इस सूर्यदेवके कपुत्तोंके और पुषिषीकोके कप्यता है । वहाँ वरमानने मृगजमानके किया है । वहाँ रसेन
 कप्य किया है । उद्यते अपने कप्यके इस पुषिषीके धुत्त ॥ ६ ॥

रोहिणो धावापृथिवी अहवत् तेन स्थस्तिमिह तेन नाकैः ।

तेनान्तरिक्षं विमिता रजोसि तेन देवा अमृतमन्वाधिन्दन्

॥ ७ ॥

वि रोहिणो अमुष्य विश्वरूप समाकुर्वीणः प्ररुहो रुहम् ।

दिवं रुहना मंहता मंहिष्ठा स ते राष्ट्रमनक्तु पर्यसा ध्रुवेन

॥ ८ ॥

यास्तु रुहः प्ररुहो यास्तु आरुहो यामिरापुणासि दिवमन्तरिक्षम् ।

तासां म्रष्टणा पर्यसा चावृषानो विशि राष्ट्रं जागृहि रोहितस्य

॥ ९ ॥

यास्तु विश्वस्पर्शः संभमूषुर्वत्स गोमृत्रीमनु ता वृषागुः ।

तास्त्वा विधन्तु मनसा क्षित्रेन समीता वृत्तो अग्नेर्वि रोहितः ।

॥ १० ॥ (१)

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाकै अस्याद् विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः ।

तिग्मनामिन्ध्र्योर्विषा वि मासि तृतीयं चक्रे रजोसि प्रियाणि

॥ ११ ॥

अर्थ— (रोहितः आवापृथिवी अहवत्) सूर्यदेवने द्युलोक और पृथिवी लोकको घुमते देखा । (तब तब दृष्टः नाक स्थिति) उर्ध्वोरे लगानामक मुखार्थे लोक ऊपर धाम रहा है । (तेन अन्तरिक्ष रजोसि विमिता) उसने अन्तरिक्ष लोकको बनाया और (तेन देवाः अमृतं अन्विन्दन्) उर्ध्वोरे द्वारा सब देवोंको अमरत्व प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥

(रोहितः प्ररुहः दृष्टः च समाकुर्वीणः विश्वरूपं वि लभुषत्) सूर्यदेवने ऊर्ध्व और नीचे सब दिशाओंको हृह्ना करने सब विश्वके रूपको बनाया विचार किया । वह (मंहता मंहिष्ठा दिव कृत्वा) अपने बड़े सामर्थ्यसे द्युलोकपर नाक होकर (त राष्ट्रं पचसा ध्रुवेन सं जनयन्) तेरे राष्ट्रको भी और दृष्टके भरपूर करे ॥ ८ ॥

(या ते वृष्टः प्ररुहः वा ते आरुहः) जो तुम्हारे जाने पीछे और ऊपर बढनेके मार्ग हैं (यामिः विश्वं अन्तरिक्षं आवृषासि) जिसके द्वारा तू द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकको भरपूर करता है (तासां म्रष्टणा पर्यसा चावृषागुः) उनके वधवर्धक रसके बढता हुआ तू (रोहितस्य विशि राष्ट्रं जागृहि) सूर्यदेवजी मजामें और राष्ट्रमें जाग्रत रह ॥ ९ ॥

[ते वपसाः यम विष्ठा संवभूयुः] तेरे प्रकाशसे जो प्रजाई उत्पन्न होवनी है [या इह वार्षं माषाणीं भव भव्युः] वे प्रजापद बहः क्षीराम और अपने प्राणप्राणवर्धकी वशातसे जन्मल्लभ होकर बढनी हैं । [ताः सिधेन मनसा त्वा विधन्तु] वे प्रजापद क्षुमसंजनयुक्त मनसे उसे अन्ध्र मरिचि हों । (समीता रोहिता वाद्य जनयन्) समीता और सूर्य स्त्री बन्धः मित्रकर जागे वरें ॥ ११ ॥

(युवा कविः विश्वा रूपाणि जनयन्) वक्ष्य श्रावी सब कर्म के रूपको प्रकाशित करता हुआ (रोहितः ऊर्ध्वः नाके अधि ब्रह्माद्) सूर्य ऊपर स्वर्गमें उड़ा है । वह (अग्निः तिग्मेन पयोतिवा विधासि) अग्नि तीव्र बकाशसे प्रकाशित है । वह (तृतीयं रजसि विधासि चक्रं) तीव्र अन्तरिक्ष लोकमें विश्व पदार्थोंको बनाता है ॥ ११ ॥

धार्वाय-सूर्यदेव ही दृष्टी अन्तरिक्ष और द्युलोक को घुमते देखा है उर्ध्वोरे सब देवोंको अमरत्व प्राप्त हुआ है ॥ ७ ॥ सूर्यक धारण ही सब कर्म को घुमते रूप दिया है । वह अपनी महिमामें सर्वलोकपर बढकर सब राष्ट्रों दृष्ट और भी भरपूर करता है ॥ ८ ॥

जो लोक मार्ग सर्वधामको प्राप्त करनेके हैं उनके ऊपर ही तथा धृगधुव आदिसे हृहनुव हाते हुए सब राष्ट्रों और सब प्रजाओं वरत प्राप्त रहा ॥ ९ ॥

सूर्यदेव ही ने सब प्रजाजन-सब प्राणिपान-उत्पन्न हो गये हैं वे सब प्राण/धुव के प्रकाशसे जरा वगचित रहते हैं । वे सब ही सब प्रजापद वरत क्षुमसंजनयुक्त मनसे ईश्वरमें आश्रय कर रहे । समीता और पुत्र मित्रकर सब तबसे प्राप्त हों ॥ ११ ॥

सहस्रवृद्धो वृषभो ज्ञातवेदा घृताहुतः सोमवृष्टः सुवीरः ।

मा मा हासीन्नायितो नेत् स्वा बह्वानि गार्धपं च मे वीरपोषं च वेहि ॥ १२ ॥

रोहितो यज्ञस्य अनिता मुक्षी च रोहिताय चाचा ओत्रैश्च मनसा शुहोमि ।

रोहितं देवा यन्ति सुमनस्वर्माना स मा रोहिः सामित्यै रोह्यतु ॥ १३ ॥

रोहितो यज्ञं व्यदिधावु रिभ्यर्कर्मणे तस्मात् वेद्यास्युप मेमान्यागुः ।

धोच्येयं ते नामि सुवर्नस्वार्थि मृत्तमनि ॥ १४ ॥

आ त्वा करोह पृष्टस्यूत पश्चिकरा ककुब् वर्षेसा जातवेदः ।

आ त्वा करोहोष्मिहाश्वरो वषट्कार आ त्वा करोह रोहितो रेतसा सह ॥ १५ ॥

अर्च-वह (जातवेदा सहस्रवृद्ध वृषभः) अपने हुए सब पदार्थोंको जातवेदका हकारों क्रमोंसे पुनः वृद्धि करनेका [घृताहुतः सोमवृष्टः सुवीरः] कृत्वी आहुतिवा स्वीकारमेवाका सोमका हवन जिसपर होता है ऐसा ज्ञान वीर वह है । वह [गार्धपः मा मा हासीन्] नाचना करनेपर मेश आग न कर । तथा [रवा इव च बह्वानि] ऐसे निबलसे मैं यही छोड़ूंगा । [स गो-पोषं वीर-पोषं च वेहि] मुझे पोषात्मकता तथा वीरोंके पाकवत्ता सामर्थ्य दे ॥ १२ ॥

[रोहितः यज्ञस्य अनिता मुक्षी च] पूर्व यज्ञका उत्पत्तकर्मी और यज्ञका मुक्त है । [चाचा ओत्रैश्च मनसा व रोमि दाव शुहोमि] बलीसे कानसे आर मनसे इस सूर्यके किये हवन करना हुआ । [सुमनस्वमानाः देवाः रोहितं यन्ति] उन्नत सकल करनेवाक देव सूर्यको प्राप्त होते हैं । [सः सामित्यै रोहिः सा रोह्यतुः] वह क्षमाके किये अनेक उन्नतियोंसे मुझे उन्नत करे ॥ १३ ॥

[रोहितः रिभ्यर्कर्मणे यज्ञं व्यदिधावु] सूर्यसे रिभ्यर्कर्मणि किये यज्ञ किया । [तस्मात् वेद्यासि मा उप वा पुः] उस यज्ञसे ये वेद मरे पात्र प्राप्त हुए हैं । [वषट्कार मन्त्राणि अग्निं ते वाग्निं बोधेनार्] अतः इस मुद्राके महत्त्वके वीच तेरा मुद्रा नाय है देसा मैं करता हू ॥ १४ ॥

हे (जातवेद) सब उन्नत हुएको जातवेदाक ! (त्वा सुवर्ती वा करोह) तुझपर-सुवर्ती नहीं है, [वत रिति मा ककुब् नचमा वा] रिति और ककुब् अपने वेदके साथ चले हैं । (उष्मिहाश्वरोः त्वा वाकरोह) उष्मिहाश्वरके वाक भी तेरे उतर चले हैं । तथा (रोहितः रेतसा सह) सूर्य अपने वीरोंके साथ है ॥ १५ ॥

आचार्य यह सब तत्त्व सब देखनेवाला सूर्य अपने कर्णोंको प्रकाशित करता हुआ वृष्टाकर्म रहा है । अब अपने प्रकर तेजस साथ प्रकाशता है और तीसरे ओकमें रहकर सब का भिग करता है ॥ ११ ॥

यही सूर्य नाम है जिससे पुत्र और वीरको आहुतिवा होयी जाती है । वह तेरा कभी क्षाग न करे और मैं सबका रभी क्षाग न करूँ । इससे हमारी पायें तथा कर्णोंमें हृष्ट हुए हों ॥ १२ ॥

इसी सूर्य का वह है यज्ञमें अग्नि कपते नहीं मुक्त है । हवन करने के समय यानी अन्न और यज्ञस्य साथ पात्र न-बोम होना चाहिए । हम उन्नत करनेवाके सब इष्टीको प्राप्त होते हैं । वह तुझपर जगा करे और क्षमाओहता वा मानवी उन्नति दाना समग्र है वह मुझे प्राप्त करावे ॥ १३ ॥

सुवर्णक द्वारा ही सब सुम कर्णोंका स्वीकरण यज्ञ बना है । इससे जी सामर्थ्य प्राप्त होता है वह सब मुझे प्राप्त हो । इस सब सेवारक मन्त्रमें महारथी उन्नते यही मुक्त है ॥ १४ ॥

हमारी उन्नत ककुब्, उष्मिहाश्वर, वषट्कार आदि सब उन्नी एक देवका वर्णन कर रहे हैं । याना वह इन्ने रहा है । ॥ १५ ॥

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिव्यं वस्तेऽयमन्तर्दिग्म् ।
अयं मन्त्रस्य विष्टपि स्वर्लोकांश्चान्नये ॥ १६ ॥
वाचस्पते पृथिवी नः स्त्रोना स्योना योनिस्तस्या नः सुश्रेष्ठा ।
इद्वैव प्राण सस्ये नो अस्तु त त्वा परमेष्ठिन् पर्यधिरायुषा वर्षसा दधामि ॥ १७ ॥
वाचस्पत श्रुतवः परम्ये नो वैश्वकर्मणाः परि ये संवभूवुः ।
इद्वैव प्राणः सस्ये नो अस्तु त त्वा परमेष्ठिन् परि रोहितु आयुषा वर्षसा दधामि ॥ १८ ॥
वाचस्पते चीमनस मनस गोष्ठे नो गा अनय योनिषु प्रजाः ।
इद्वैव प्राणः सस्ये नो अस्तु त त्वा परमेष्ठिन् पर्यधिरायुषा वर्षसा दधामि ॥ १९ ॥
परि त्वा धातु सविता देवो अर्धिवर्षसा मिश्रावर्कमावामि त्वा ।
सर्वा अरावीरवक्रामश्नीद राष्ट्रमकरः सूनतावत् ॥ २० ॥ (२)

अर्थ- (अयं पृथिव्याः गर्भं वस्तु) यह पृथिवीके समर्थ वस्तु है । (अयं दिव्य अन्तरिक्ष वस्तु) यह पृथुलोका और अन्तरिक्ष लोकमें वस्तु है । (अयं मन्त्रस्य विष्टपि स्वर्लोकांश्चान्नये) यह प्रकाशलोका और शिरोधार्यपर स्वर्गलोकमें व्यापक है ॥ १६ ॥

हे (वाचस्पते) वाणीके स्वाध्याम् । (वा पृथिवी स्त्रोना) हमारे किए पृथिवी सुखकर होवे । (योनिः स्योना) हमारे किए हमारा घर सुखदायी हो । (गा त्वा सुश्रेष्ठा) हमारे किए विद्योके सुखदायी हों । (इदं एव नः सस्ये प्राणः अस्तु) वहाँ ही हमारे सस्यमें प्राण रहे । हे परमेष्ठिन् । (त त्वा अग्निः आनुषा वर्षसा परि दधामि) तुझको यह अग्नि धातु और तेजके कारण करे ॥ १७ ॥

हे वाचस्पते ! (ये वो विश्वकर्मणाः परम्ये नो संवभूवुः) जो हमारे संवर्ण कर्मोंका पावन करनेवाक पाँच ऋतु उत्पन्न हुए हैं । वहाँ ही प्राण हमारे सस्यमें रहे । हे परमेष्ठिन् । उस तुझको यह (रोहितु) सूर्य धातु और तेजके साथ प्राण करे ॥ १८ ॥

हे वाचस्पते ! हमारा (मनः चीमनसं) मन उत्तम सुधम्यकल्पबुद्ध हो । (न गोष्ठे वा अनय) हमारी गोष्ठ-कर्मों गोष्ठके उत्पन्न कर और (योनिषु प्रजाः) करोति वस्तुओंको उत्पन्न कर । वहाँ हमारे सस्यमें यह प्राण रहे । हे परमेष्ठिन् । उस तुझको (सर्वा) ये धातु और तेजके साथ (दधामि) कारण करता हू ॥ १९ ॥

(सविता देवः आ परि त्वा) सविता देव तेरे कारणों कोर रहे । (अग्नि वर्षसा मिश्रावर्कमावामि) अग्नि अपने तेजके और मिश्र तथा वस्त्र छरी धारों कोरके रक्षा करें । (सर्वा अरावीः अश्वक्रामश्नीद) सब शरद्वर्णों केपर बड़ाई करते हुए आगे बढ़ तथा (इदं राष्ट्रं सूनतावत् अकर) इस राष्ट्रको आनंदपूर्ण कर ॥ २० ॥

मार्तण्ड-३॥ एक देव इन्द्रो अन्तरिक्ष और पृथुलोकां अंतर विद्यमान है । वह सुवर्णक उत्पन्न स्वावत्तर रहता हुआ अपने व्यापक है ॥ १६ ॥

हे वाणीके वाणी । हमारे किए पृथ्वी पर विद्योका अग्नि सब पदार्थ सुखदायक ही । हमने प्राण दीव्यप्रत्यक्ष रहे आर हमें यह दीव्य धातु और तेजके साथ प्राप्त हो ॥ १७ ॥

आ विधि कर्म करनेवाके ऋतु हैं वे हमें सहायक हों उत्पत्ति हम दीव्य धातु और तेजकितता प्राप्ति हो । १८ ॥

हमारा मन सुधम्यकल्प करनेवाका हमें हमारी माध्याम्य में विपुल नीति और परम वीर वीरता हो । ये परममाद्य धारण दीर्घतु और तेजस्विताके साथ करता हू ॥ १९ ॥

य त्वा पूर्णती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणभ्रपः

- ॥ ११ ॥

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णी वृद्धती सुवर्ची ।

तमा बाजान् विमरुषा अयेमु तया विम्राः पूर्वना अमि स्वाभि

॥ १२ ॥

इद सवो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पूर्णती येन याति ।

तां गन्धर्वाः कश्यपा उभयान्ति तां रक्षन्ति कृषयाऽर्प्रमादम्

॥ १३ ॥

सूर्यस्त्राश्वा हरयः केतुमन्तुः सवो वहन्त्यमुताः सुख रथम् ।

पूतपावा रोहितो आर्षमानो दिवं देवः पूर्णतीमा विषख

॥ १४ ॥

यो रोहितो वृषमास्तिग्मशृङ्गः पर्यधि परि धूर्ध्वं वभूव ।

यो विष्टभाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अभि सृष्टिः सृजन्ते

॥ १५ ॥

अर्थ—हे (रोहित) सूर्य ! (य त्वा वृषतीः पृथिः वहति) जिस वृषको विभिन्न रथवाली बोरी क जाती है, वह (अथर्व रिणन् शुभा यासि) पानीको चलावा हुआ प्रकारके साथ वृष रीतिसे चलाता है ॥ ११ ॥

(रोहितस्य अनुव्रता) सूर्यके अनुवृत्त चक्रवेराकी (सूरिः सुवर्णा सुवर्चाः वृद्धती रोहिणी) ज्ञानी उच्चम रत्नको, तेजस्विनी बनी रोहिणी है । इससे (विमरुषाम् बाजान् अयेम) हम अयेक प्रकारसे बल प्राप्त करेंगे और (विम्राऽर्प्रमादम् बाधित्याम) सब अनुवृत्तों के बाधोंको परास्त करेंगे ॥ १२ ॥

(इद रोहितस्य सवः रोहिणी) वह सूर्यका घर रोहिणी है । (असौ पन्थाः येन वृषती याति) वह मार्ग है जिसे इसको विमरुषावाली बोरी जाती है । (तां गन्धर्वाः कश्यपाः उभयान्ति) इसको गन्धर्व और कश्यप उन्नत करेंगे । (कथम्) तां अग्रमाद् रक्षन्ति) ज्ञानी प्रमादरहित होकर इसकी रक्षा करते हैं ॥ १३ ॥

(केतुमन्तुः अमुताः हरयः जना सूर्यस्य रथ सदा सुख वहन्ति) प्रकारबुद्ध जगत्पतिमान् जोड़े सूर्यके रथसे सदा सुखरूपक चलाते हैं । (पूतपावा आर्षमानाः सवः रोहित इमा वृषती विष विषख) वृषके पवित्र करनेवाला तेजस्वी सूर्यदेव इस विभिन्न रथवाली ममा समेत कुत्रोक्तों प्रसिद्ध होता है ॥ १४ ॥

(वा तिम्रशृङ्गः वृषमा रोहितः) जो तीक्ष्ण तीगवाला चक्रवान् रोहित (अग्नि परि, धूर्ध्वं परि वभूव) अग्नि और सूर्यके चारों ओर होता है । (यो वृषती विषम विष्टभाति) जो वृषती और वृषकोकको बल रक्षता है [उत्पत्य देव सृष्टिः अग्निसृजन्ते] इससे देव सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ—सब देव हमें प्रशान्त हो । सब शान्त पलात हो और वह हमारा राज् कार्यप्रशान्ततासे पुष्ट हो ॥ १० ॥
सूर्यके विभिन्न रथवाली किरणें सूर्यतरणके बलवत्क जाती हैं जिससे हमें प्रकारके विकारा हैं ॥ ११ ॥
सूर्यपञ्चमम बलको कहते हैं इससे हमें अयेक प्रकारके बल और बल प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥
सूर्य ही इस अनुवृत्त कर्त्तृक घर है सब विभिन्न रथवाली किरणोंसे वह शक्ति फैलती है । कभी कभी विभिन्न रथवाली कभी कभी अग्नि प्रारम्भ करते हैं ॥ १३ ॥
वे प्रशान्तमान अनुवृत्त जगत्पति पुष्ट सूर्यकिरण तथा सुखरूपक हैं । इन पुष्टिकरण किरणोंसे पुष्ट सूर्य देव सूर्यके प्रशान्तता है ॥ १४ ॥
वह तीक्ष्ण तिरज्ज्वल्य चक्रवान् सूर्य चारों ओर वृषकर सब अकारके प्रशान्तता प्रारम्भ करता है ॥ १५ ॥

- रोहितो विवमारुहन्महताः पर्यर्णभात् । सर्षीं करोह रोहितो रुहः ॥ २६ ॥
- वि मिमीष्व पर्यस्वतीं घृताचीं वेषानीं चैनुरनपस्पृगेषा ।
इन्द्रः सार्धं पिबतु क्षेमो अस्त्वभिः प्र स्वौतु वि सूषो तुदस्व ॥ २७ ॥
- समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताघृतः ।
अमीपाद् विश्वापाह्विः सपत्नान् इन्तु ये मम ॥ २८ ॥
- हृत्वेनान् प्र दहृत्वरियो नः पुतन्वति ।
कृष्याद्वापिनां वय सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९ ॥
- अवाचीनानव अहिन्रु वज्रेण बाहुमान् ।
अर्धा सपत्नान् मामकान्घेस्तेजोभिराविवि ॥ ३० ॥ (६)
- अग्ने सपत्नान्धरान् पादयासद् व्यधया सज्जातमुत्तिपांन वृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मिश्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यमानाः ॥ ३१ ॥

सर्व- (महताः सर्वभात् रोहिता विक्रि परि आकृष्ट) कहे समुद्रमे सर्व द्रव्यकोकले भी ऊपर कहा है । (रोहितः सर्षीं करोह) यह सर्व सब उन्मत्ताभीपर कहा है ॥ २६ ॥

(परस्वतीं घृताचीं वि मिमीष्व) दूधवाची और घीवाची गीको सिद्ध करो [एषा देवायां वेदुः अवपस्पृक] वह वृषोभी गौ इहकच न करेवाची है । (इन्द्रः सार्धं पिबतु) इन्द्र सोम पीव (क्षेमः अस्तु) मयका क्षेम हो (अग्निः प्र स्वौतु) अग्नि स्तुति करे (सूषाः विदुस्व) अरकोको दूर कर ॥ २७ ॥

(अग्निः समिद्धः घृतवृद्धः घृताघृतः समिधानः) अग्नि उत्तम प्रदीप्त होनेपर भीकी आहुतिवां वाककर कहाया हुआ भूमी प्रकार बल्ले बना है । वह (अमीपाद् विश्वापाद् अग्निः ये मम सपत्नान् इन्तु) सबत्र विजय करके सबकोको दूर करेवाका अग्नि को मेरे घरके हैं उन सबका नाश करे ॥ २८ ॥

(वा अग्निः वः पुतन्वति) ओ कष्ट हमपर लेना पडाकर हमका कराता है (एषान् इन्तु प्रवदतु) इस घात-कोको मां अग्नी प्रकार मरम कर । (कृष्याद्वा अग्निः वय सपत्नान् प्र दहामसि) मांसमक्ष अग्निद्वारा हम चरकनोंको मरम करते हैं ॥ २९ ॥

हे इन्द्र ! (वज्रण बाहुमान् अवाचीमान् अवजहि) बल्ले बहुत सामर्थ्यवान् होकर अरुकोको भीके दबाकर मार दे । (अर्धा मामकान् सपत्नान् अग्नेः तेजोभिः अविभि) और मेरे अरुकोको अग्निके तेजोभि अपने बल्ले करता हूँ ॥ ३० ॥

हे अग्ने ! (सपत्नान् अमीपाद् विश्वापाद् पादव) हमारे अरुकोको हमारे अग्निकभीक गिराओ । हे वृहस्पते ! (सूषा-पार्धं सज्जात व्यधय) कष्ट तेनेकोके सजातीय आकके व्यापा कर । हे इन्द्राग्नी ! हे मिश्रावरुणो ! (अग्नि -मन्यमानाः अवधरे पद्यन्ताम्) हमारे कष्ट मिश्रक कोषवाले होकर भीके गिर जाव ॥ ३१ ॥

यावार्ध- सर्व वद्व होनेपर आकके मयपक ऊपर पडता है और वहासे अपने ऊपर प्रकृता है ॥ २६ ॥
उत्तम दूध और भी दनेवाची पीवें पाओ जग उनके दूध भी अन्नकके दहन किया जावे । वही दूध अग्निके धन सोम रूप दिया जावे । इससे सबका कल्याण हो और वह बल प्राप्त करता सबका मका करे ॥ २७ ॥

अग्निमें भीक दहन हो अग्नि उपासनाके उपाय भी देखना हैं और सब मिश्रकर अपने आकनोंके दूर मया देवें ॥ २८ ॥
अग्नि बाहरका धन लेकर अपने ऊपर आगवा तो भीक उनको पडाका करते मया देवें । अपने अरुके को कर होगे उनको भी अपने रक्षना पाविए । ओ कष्ट गिर ऊपर न कर कहे ॥ २९ ३० ॥

उधस्त्वं देव सूर्ये सपत्नानव मे जहि ।

अथैनानशमना जहि ते यन्त्रषधमं तमः

वत्सो विराजो वृषभो मदीनामा रुरोह अक्रपृष्टोऽन्तरिक्षम् ।

घृतेनाक्रम्युर्विन्ति वत्स ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्षयन्ति

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।

प्रज्ञां च रोहामूर्तं च रोह रोहितेन तन्वत्स स्युषस्त

ये देवा राष्ट्रमोऽमितो यन्ति सूर्यम् ।

तैष्टे रोहितः सविद्वानो राष्ट्रं वधातु सुमनस्यमानः

उत् त्वा युष्मा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्या वहन्ति ।

तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्धम्

जये— हे सूर्यदेव । (त्वं वत्सम् अ सपत्नान् अचक्रति) ए वत्सो वृषभो मदीनामा वाक्य कर । (वत्सम् अचक्रति) इव सपत्नानां पत्न्यके वाक्य कर । (ते वत्समे तमा वत्सु) ये पहले अचरेमें जाये ॥ १२ ॥

(विराजः वत्सः मदीनां वृषभः अक्रपृष्टः अन्तरिक्षं वा करोह) विराजः वत्सः सविद्वानो वहाविराजः कृष्णः पीठवत्का होकर अन्तरिक्षपर चढा है । (घृतेन वत्सं अक्रमं जहि अर्चयन्ति) घृतेन वत्सवत्पी सूर्यकी पूजा करते हैं । वत्सवं (वत्सं वत्सं ब्रह्मणा वर्षयन्ति) ब्रह्म होता हुआ भी इसीको ब्रह्म वत्स स्युषयोधि वहाते हैं ॥ १३ ॥

(दिवं च रोह पृथिवीं च रोह) द्युलोके पर चढ और पृथ्वीपर चढ । (राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह) तन्वत्स चढ और वनपर चढ । (प्रज्ञां च रोह अमूर्तं च रोह) प्रज्ञा और अमरपदपर चढ (रोहितेन तन्वत्स स्युषस्त) जने काकमर्त्ये मेरे करीरको पूर्य कर ॥ १४ ॥

[ये राष्ट्रं वत्स वत्सः सूर्यं जमितः वाप्ति] जो राष्ट्रंपोषक देव सूर्यके चारों ओर घूमते हैं (तेः उर्विदात्तं हेमि सुमनस्यमानः) ते राष्ट्रं वधातु] इनके द्वारा मिटा हुआ रोहित सुमनस्य होकर ठेरे राष्ट्रका वारण करे ॥ १५ ॥

[ब्रह्मपूताः वत्साः त्वा उत् वहन्ति] सप्तके वत्सि वृष्टु वत्स तुल्ये ऊपर उठते हैं । [अश्वमतः हरवाः स्या वत्सि] मायसे जानेवत्के बोले तुल्य अश्वमत हैं । [समुद्रं जयेति तिरः जति रोचसे] समुद्र जयन्त्याहार ए जति जयन्ति करता है ॥ १६ ॥

धत्वा— परमेश्वर कृपा करे और हमारे कर्तुओंका बल कम करे । कर्तुं नीच स्वानर्धे आता जाये ॥ १७ ॥
सूर्यं वत्सवर्धकं बुद्धिवर्धकं है । इसका वत्सवा अति है । जसिमें भीके इतना कार्यसे जलनी पूजा होती है । सूर्यं त्वत्सं च रत्नरूपं है और यही महा पाप यज्ञसे सृष्टियों द्वारा बचाया जाता है ॥ १८ ॥

तत्सं, पृथ्वी राष्ट्रं वत्स प्रज्ञा अमरपद जहि विवर्धये प्रगति संपादन करवा चाहिये । इस कार्य करनेका बल प्राप्त करना है । ता सूर्यं ब्रह्मणो जये करीरका संवर्धन होकर दो विषये मिलकर बल प्राप्त होकर लक्ष्य कार्य सिद्ध होय ॥ १९ ॥

राष्ट्रं च मरणपोषण करनेवाले देव सूर्यको ब्रह्मपूजा करते हैं इसलिये सूर्यक प्रकाशमें रहते हैं । ये बल प्राप्त करते हैं । ल सुवैरुक्त करते हैं राष्ट्रं वत्स करके योग्य बनते हैं ॥ २० ॥

सूर्यं उदय होते ही सप्तकोण और बल प्राप्त होते हैं । सूर्यनिरण सूर्यक निकले हैं और समुद्रतक बल भूमिपर गल्य होय है ॥ २१ ॥

रोहितं चावापुष्विवी अधि श्रिते वसुधिति गोविति सधनाश्रिति ।

सहस्रं यस्य अनिमानि सप्त च धेनुष्वेव ते नमि भुवनस्याधि मज्जमनि ॥ ३७ ॥

यथा योसि प्रदिशो दिशम् यथाः पञ्चामृत वर्षणीनाम् ।

यथाः पृथिव्या अदिष्या उपस्थेऽह भूयास सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥

अमुश सन्निह वैरयेतः सस्थानि पश्यसि ।

वृत्तः पश्यन्ति रोचन विषि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥

देवो देवान् सर्वयस्यन्तर्भरस्पर्शिवे ।

समानमग्निमिधते सं विदुः कुवयः परे ॥ ४० ॥ (६)

अबः परेण पर पुनारंभ पदा वृत्तं विभ्रंती गौरवस्थात् ।

सा कद्रीची क स्विदर्थं परागात् कस्मिन् दृते नहि यूये अस्मिन् ॥ ४१ ॥

अर्थ— [वसुधिति गाविति सधनाश्रिति रोहिते चावापुष्विवी अधिश्रिते] जब गौहं और पृथ्वी के मास करनेवाले सूर्यके चारों ओर पृथ्वीके और सूर्यके दहरे हैं [यस्य सहस्रं सप्त च धेनुष्वेव ते नमि भुवनस्याधि मज्जमनि] जिस धरे हजार और सप्त मज्जम हैं [उपस्थारं यथा योसि प्रदिशो दिशम्] इस जगत् की अधिमार्गें तेरा ही केन्द्र हैं देवा मैं कर्तृणा ॥ ३७ ॥

[प्रदिशः दिशः च यथाः योसि] दिशा और उपस्थारोंमें यथाची होकर तु जाता है । (पञ्चामृत उप वर्षणीनाम् यथाः) पञ्च और प्रजाओंमें वसुधेवी होकर तु जाता है । [पृथिव्याः अदिष्याः उपस्थे यथाः] पृथ्वीके ऊपर और अदिति की ओर मैं वसुधेवी होकर [यथाः सविता इव चाक भूवर्त्म] मैं ऐसे सविता समान सुवर वर्म ॥ ३८ ॥

[अमुश सन्निह वैरयेत इतः सन् गामि पश्यसि] वही रहकर वही का ज्ञान प्राप्त करते और वही रहकर सबको देखते हैं । [इतः विमि रोचन विपश्चित सूर्यं पश्यन्ति] वहीसे सूर्यको मैं प्रकाशमान ज्ञानी सूर्यको देखते हैं ॥ ३९ ॥

[देवः देवान् सर्वयसि चर्यन् जगत् चरति] प्रकाशमान होकर जगत् प्रजाओंको घूम करता है समुद्रक जगत् के चार करते हैं [समानं अग्निमिधते] समान तेजस्वी अग्नि को प्रदीप्त करता है । [कुवयः परे विदुः] ज्ञानी सबको परे जानते हैं ॥ ४० ॥

[यथा गौः अबः परेण परः] जगत् पदा म ही विभ्रती] वह जगत् निज ज्ञानवालेको दूरके पक्ष और परवालेको प्रामाण्यके वक्षों वक्षोंको चारण करती हुई [वृत्तं अस्थात्] ऊपर उठती है । [सा कद्रीची क स्मिन्] अब पदा भगात्] वह कद्रीची जाती है और किस जगत्भरणे पात्र जाती हैं वह [नव स्थित यूये] कहीं प्रसूत होती है । [अस्मिन् यूये च] इस जगत् में तो वही होती है ॥ ४१ ॥ (अ. ११५४१३, पृथ्वी ५५११०)

भावार्थ— जब गौहं और पृथ्वी के मास करनेवाले सूर्यके चारों ओर पृथ्वीके और सूर्यके दहरे हैं जब सप्त मज्जम दहरे हैं तो ही ३७ ॥ यथा उपस्थारं पञ्च, प्रजाजगत् भूमिं योसि प्रदिशो दिशं चरन् सूर्यं है । सूर्य की जावर्त्त मावकर जगत् जगत् सूर्यके अध्याम निर वर्म ॥ ३८ ॥

सूर्य रहकर भी देखता है । सूर्यको मैं रहता हुआ चर्यन् प्रकाशता है ॥ ३९ ॥

सूर्य सप्त मज्जम प्रकाशकेन्द्रों की प्रदीप्ति करता है । सबक उदयसे अग्नि प्रदीप्त होता है । ज्ञानी जगत् सूर्य की भव प्रदीप्त हैं ॥ ४० ॥

वह भी जगत् दूरके वक्षों पात्रको और पात्रको पक्षों दूर वक्षों चारण रोचन करती है । वह वक्षों जगत् कि जगत् जगत् पात्र पृथ्वी है वही प्रसूत होती है । इसकी जगत् जगत् । वह वक्षों जगत् तो वही रहती है ॥ ४१ ॥

एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्याष्टादशी नवपदी बभ्रुवृषी ।

सहस्राक्षरा ध्वनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि धरन्ति

॥ ४२ ॥

आरोहन् याममृतः प्राय मे वर्षाः ।

उत् त्वा यद्वा ब्रह्मपूवा वहन्त्यभ्यगतो हरेयस्त्वा वहन्ति

॥ ४३ ॥

वेदु तत् ते अमर्त्य यत् तं आक्रमण द्विवि ।

यत् ते सधस्य परमे व्योमिन्

॥ ४४ ॥

सूर्यो सा सूर्यः पृथिवी सूर्य आपोऽस्ति पश्यति ।

सूर्यो भूतस्यैक ससुरा ऋरोह दिवं महीम्

॥ ४५ ॥

उर्वीरासन् परिधयो वेदुर्भूमिरकल्पत् ।

सत्रैतावमी आर्षस हिम प्रस ज रोहितः

॥ ४६ ॥

अर्थ—[या एकपदी द्विपदी चतुष्पदी अष्टादशी नवपदी बभ्रुवृषी] यह एक ही बार आठ बीर जीपद्माक्षी तथा बभ्रु होके ही इत्यन्त अनेकक्षी [सहस्राक्षरा] सुवनस्य पङ्क्तिः [सारांश] अक्षरोक्षी सुवनकी पङ्क्ति है। [तस्याः समुद्राः] अर्थात् निकटवि [हस्ते] सब समुद्रके रख बहाते हैं ॥ ४२ ॥ (भा. १।१९। १४१; अर्थ १।१९। १४१)

(अमृतः) जो आरोहन् मे क्या प्रत्यक्ष अमर दूध दुग्धकोक पर आकर होकर मेरे भावन की रक्षा करा (आमृतपूवा) यद्वा वह वह (वि) दुग्ध मेरे पङ्क्ति हुए ब्रह्म बहाते हैं तथा (अभ्यगतः) हरेयः स्वा वहन्ति) मागस्य पोके दुग्ध के कहते हैं ॥ ४३ ॥

हे (अमर्त्य) देव ! (यत् ते द्विवि आक्रमण) जो तेरा दुग्धकोकमें आक्रमण है और (यत् त परमे व्योमिन् अमर्त्य) जो त पर के आकाशमें आक्रमण है (यत् ते बह) तेरा वह दुग्ध विधित है ॥ ४४ ॥

(सूर्यः सा सूर्यः पृथिवी सूर्यः आपः अस्ति पश्यति) सूर्य दुग्धकोक पृथ्वी और सब के अलग दृष्टिसे देखता है। (सूर्यः भूतस्यैक ससुरा महीम् दिवं आकरोह) सूर्य सब भूतका एकमात्र भोज है वह बहे दुग्धकोक पर आकर हुआ ठहरे ॥ ४५ ॥

(उर्वीम परिधयः आसन्) बड़ी परिधिसे ही (युधिः वेदिः अकल्पयत्) युधि वेदी बनयी पत्नी। (उत् रोहितः हिमं प्रस ज पृथी आबध) बड़ा सूर्यसे क्षीय और उज्ज्वल के अग्नि रखे ॥ ४६ ॥

भावार्थ—यह क्षीयक्षी की अर्थात् क्षान्धक्षी वाली एक ही बार आठ अक्षर की पारोवाके अन्तर्में विभक्त हुई है। वह अनेक प्रकारकी है और हजार अक्षरों तक इसकी मनीरा है। यानी वह सब सुवनोके दूर्व करकेक्षी है और इसके निमित्त अन्त रख कहते हैं ॥ ४२ ॥

सूर्य क्षीय रख है अक्षरमें बहकर अनेको अमर्त्य देता है। सब वह उर्वीय पहिया बहाते हैं सबके निमित्त बहने धन समस्तमें पहुँचाते हैं ॥ ४३ ॥

सूर्य दुग्धकोकमें स्थान कसक महार वह सब क्षीय क्षीय बहाते हैं ॥ ४४ ॥

सूर्य दुग्धकोक आकर पृथ्वी आप अग्निमें देवता है। सूर्य ही उर्वीय प्रकाशक है। वह पृथ्वी और अक्षरको अक्षरित करता है ॥ ४५ ॥

इस ब्रह्म प्रारंभ भूमिकी वेदीपर हुआ। इसकी परिधिसे बड़ी मिलतुन थी। क्षीयक्षी और उज्ज्वल के ही अग्नि रख बहाते हैं ॥ ४६ ॥

हिमं प्रुसं चाघाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।

वर्षाज्यावृषी ईजाते रोहितस्य स्वविदः

॥ ४७ ॥

स्वविदुः रोहितस्य ब्रह्मणाधिः समिष्यते ।

तस्माद् प्रसस्तस्माद्विमस्तस्माद् यद्योऽजायत

॥ ४८ ॥

ब्रह्मणाधी वावृषानो ब्रह्मवृद्धो ममाहुती ।

ब्रह्मदावृषी ईजाते रोहितस्य स्वविदः

॥ ४९ ॥

सस्ये अन्यः समारहितोऽप्यन्यः समिष्यते ।

ब्रह्मदावृषी ईजाते रोहितस्य स्वविदः

॥ ५० ॥ (५)

य वारः परि दुर्ममति य वेन्त्रो ब्रह्मणस्पतिः ।

ब्रह्मदावृषी ईजाते रोहितस्य स्वविदः

॥ ५१ ॥

वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिव कृत्वा दधिणाम् ।

प्रुसं तद्वधिं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्ववृष्येणान्येन रोहितः

॥ ५२ ॥

वृषमान्ये प्रुसो अग्निर्वेदिभूमिरकल्पत ।

तत्रैतान् पर्वतान्धिर्गामिकूर्ध्वो अकल्पयत्

॥ ५३ ॥

वर्ष- (हिमं प्रुसं च आघाय पर्वतान् यूपान् कृत्वा) धीव नीर उज्ज्वलान् वधाकर पर्वतको धूप बनाकर (वर्षाज्यावृषी समिषः रोहितस्य ईजाते) वर्षाकल्प कृतको प्राप्त करनेवाला ये दोनों अग्नि आत्मन्ववृष्येण रोहित स्वके क्रिये पशु करते हैं ॥ ४७७ ॥

(स्वविदः रोहितस्य ब्रह्मणा अग्नि समिष्यते) आत्मन्ववृषी स्वर्गके मन्त्रोक्ते अग्नि प्रवीण किया जाता है । [तस्माद् प्रुसं तद्वधिं हिमः तस्मात् पशुः अजायत] उदय उज्ज्वला उदय धर्मी नीर उदय पशु होता है ॥ ४८४ ॥

[ब्रह्मणा वावृषानो ब्रह्मवृद्धो ममाहुती] ज्ञानसे बढ़नेवाले, भेदके ज्ञान प्रवीण होनेवाला मन्त्रसे हवन क्रिये पशु, हो जाती है । (स्वविदः रोहितस्य ब्रह्मणा अग्नी ईजाते) आत्मन्ववृषी स्वर्गके प्रकाशमें मीससे प्रशंसित हुए वे दो अग्नी प्रवीण होते हैं ॥ ४९१ ॥

[अन्ना सजे समहितः] एक सजमें स्थिर है [अन्ना अप्यु समिष्यत] हवन अजमें प्रवीण होगा है । [स्वविदः रोहितस्य ब्रह्मणा अग्नी ईजाते] आत्मन्ववृषी स्वर्गके प्रकाशमें वे मीससे प्रवीण हुए दोनों अग्नि प्रवीण होते हैं ॥ ५०० ॥ [५]

(वारः दुर्ममः ब्रह्मणस्पतिः वा वे परि दुर्ममति) वायु दुर्मम और ब्रह्मणस्पति ये जिसके किए प्रकाश पैदा रहे ॥ पशु (स्वविदः) आत्मन्ववृषी स्वर्गके लिए वे अग्नि प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५१३ ॥

(भूमिं वेदिं कृत्वा दिवं दधिणा कृत्वा) भूमिमी वेदी बनाकर दधिको दधि बना करके (प्रुसं तद्वधिं कृत्वा) प्रुसं तद्वधिं रोहित विधि आत्मन्ववृष्येण चकार) उज्ज्वल कृतको वधाकर अग्नि करके दधिकरण नीके स्वर्गमें सब जगत् को आत्मन्ववृष्येण वधा किया है ॥ ५२३ ॥

[पर्व आत्मं, प्रुसः अग्निः भूमिं वेदिं अकल्पयत्] धृष्टिको भी उज्ज्वलाको अग्नि भूमिको वेदी बनाया गया । (तत्र अग्निः गीर्धः यूपान् पर्वतान् कर्णान् अकल्पयत्) वहां अग्निमें धर्मोक्ते हवन पर्वतको ऊंचा बना दिया है ॥ ५३३ ॥

गीर्मिरूर्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमग्रवीत् ।

॥ ५४ ॥

त्वयीद सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च माग्यम्

स यज्ञः प्रथमो भूतो मर्त्यो अजायत ।

तस्माद् अज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोधते रोहितेन अपिभामृतम्

॥ ५५ ॥

यश्च मां पृथा स्फुरति प्रत्यहं सूर्यं च मेहति ।

तस्य वृक्षामि ते मूले न प्लवां कुरुवोऽपरम्

॥ ५६ ॥

यो मांमिच्छापमृत्येऽपि मां चापि चान्तरा ।

तस्य वृक्षामि ते मूले न प्लवां कुरुवोऽपरम्

॥ ५७ ॥

यो अथ देव सूर्य त्वां च मां चान्तरावति ।

दुष्यन्त्य तस्मिन्मर्मलं दुरितानि च मुञ्चते

॥ ५८ ॥

वर्ष (गीर्मिः कर्वाण् कल्पयित्वा रोहितः भूमि मग्रवीत्) अर्द्धेति वर्षर्तको कृत्वा अजायत सर्वं भूमिरे लोकं वि (यद् भूतं यच्च माग्यं सर्वं त्वयीदं जायताम्) को हो तुम्हा कोत को होनेवाला है, यह सब तेराही बनने रहे ॥ ५४ ॥

(सः प्रथमः यज्ञः भूतः माग्यः अजायत) यह पहिला यज्ञ भूत और अमिष्यके किए गया । (तस्माद् इदं सर्वं अज्ञं यद् किं च इदं विरोधते) इससे यह सब अज्ञ हुआ को कुछ यह विराजता है यह (अपिभामृत्येऽपि मां चापि चान्तरा) रोहित कविने—सूर्यदेवने मरत्य किना हुआ है ॥ ५५ ॥

(मा मां च पृथा स्फुरति) को मेरेसे पृथक् स्फुरता है (सूर्यं च प्रत्यहं मेहति) किना सूर्यके सम्मुख रह करता है (तस्य ते मूले न प्लवां कुरुवोऽपरम्) उस पुष्पक मूल करता है, उसके पत्ताएँ न बननी करेगा ॥ ५६ ॥

(मा मां मिच्छापमृत्येऽपि) को तू मुझे अपनी जानाई रक्षकर बचाता है (मां चापि चान्तरा) मे और अमिष्यके बीचमें गुजरता है उस देश मूल में करता है जिससे तू इस तरह अपने जाना न कर छोड़ता ॥ ५७ ॥

हे देव सूर्य ! (यः अथ त्वां च मां चान्तरावति) को आज तेरे और मेरे बीचमें आता है (अपिभामृत्येऽपि मां चापि चान्तरावति) इसमें हुए सब कुछ कल्पना और पाप जमा वेते हैं ॥ ५८ ॥

आचार्य—पर्वत भूषण बसने गये छवि नीचा कार्य करने कभी और क्षेत्रपट्टपूर्वक यह सब प्रार्थन हुआ ॥ इसमें वात अमिष्यकी होकर कार्य करने लगा । कार्य की रक्षिका नामकी के विधि रखी गयी । इस वस्तुसे सबमें आत्यधिक सब जानना ॥ ४५-५८ ॥

को भूत अमिष्य और वर्तमान है यह सब इसीसे अग्रयित है ॥ ५४ ॥

यही वह भूत अमिष्यके किए आरंभ हुआ । इसी वस्तुसे सब कुछ गया ॥ ५५ ॥

मा मां पृथा स्फुरति सूर्यके सम्मुख गूनाधि नक आया करता है यह वस्तुकी है ॥ ५६ ॥

को अपनी जानाई गुजरेको रक्षता है अमिष्य तथा सूर्य और उपायक के बीच जाना रहता है यह भी रक्षक

मा प्र याम एषो यथं मा युष्मादिन्द्र सोमिनः ।

मान्त स्युर्नो अरातयः ।

॥ ५९ ॥

यो युद्धस्य प्रसाधनस्तनुर्वैश्वर्यात्ततः ।

तमाहुतमक्षीमहि

॥ ६० ॥ (६)

॥ इति प्रथमोऽनुषासः ॥

वार्त्त—' वथं यथः मा प्रयाम) हम मार्गको व जोहें दे इन्द्र ! (सोमिनः यस्मात् मा) हम सोम वापसे सी दूर न
कर्म, (मा अरातयः अन्त्या मा उत्सुः) हमारे कुछ हमारी उपाधिके बीचमें व कहे रहें ॥ ५९ ॥ [अ. १ । ५० । १]

(या यद्धस्य प्रसाधनः अन्तुः वैश्वेण आततः) जो यद्धका साधक आत्मन्तु वैश्वसि कैसा है, (तं आहुतं अक्षीमहि)
उसका वैभव हम करें ॥ ६० ॥

(५) अ. १ । ५० । २

मावाक्— हम अथवा कुछ माने कमी व जेहें । यद्धसे दूर न हों । हमारे साथ कमी प्रयत्न न हों ॥ ५९ ॥

ओ यद्ध एव वैश्वसि वैश्वस्य अक्षय होकर रहा है, वह हम उत्तम रहे ॥ ६० ॥

प्रथम अनुषासक अन्त्या ॥ १ ॥

॥ २ ॥

उदस्य केतवो विधि युक्ता आर्जन्त ईरते ।

आदित्वस्य नृपक्षतो मर्हिषतस्य मीक्षुषः ।

॥ १ ॥

विष्ठां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्षिषां सुपक्षमाशु पतयन्तमर्षवे ।

स्वर्षाम् हर्षं भुवनस्य गोपां या रक्षिमिर्दिक्ष आमासि सर्षाः ।

॥ २ ॥

वार्त्त—(मीक्षुषा महिषतस्य नृपक्षतः अस्व आदित्वस्य) विषय करनेवाले वहे ज्ञान करनेवाले अनुष्णके (वरीक्ष्य
इस पूर्वके (युक्ता आर्जन्तः केतवः उत्त ईरते) कुछ तेजस्वी किम उचित होकर चमकत हैं ॥ १ ॥

(मर्षिषा प्रज्ञानां विष्ठां स्वरयन्तः) प्रकाशके आपक दिशानोंको प्रकाशित करवैवाके (नृपक्षं आशु पतयन्तः)
कसुममें वचन फिरनोंके क्षाय चकनेवाके [नृपक्षस्य गोपां हर्षं स्वर्षाम्] मिश्रचकने रक्षक स्वकी हम प्रमदा करते हैं ।
(या रक्षिमिः सर्षाः दिक्षः आमासि) जो अपने फिरनोंहारा सब दिशानोंको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

आवाक्—हर्ष के इति होती है वह वधा मती है अनुष्णोष्ण मिश्रण करता है नुमिकी आदिष आरम करता है इत्यं
वरण दीक्षर चारों ओर स्वयं प्रकाश होता है ॥ १ ॥

वह हर्ष अपने प्रकाशके सब दिशानोंको प्रकाशित करता है अन्तरिक्षमें व्यापक करता है वह सब सुषमोंको रक्षा करने-
वाक है इत्यं स्तुति करवा योग्य है ॥ २ ॥

यत् प्राक् प्रत्यक् स्वधया यासि धीम् नानारूपे बह्वनी कर्षि मायसा ।
तदादित्य मङ्गि तत् ते मङ्गि भयो यदेको विभ्व परि भूम जार्षसे ॥ १ ॥
विपश्चितं तराणि आज्वमानं बहन्ति य हरितः सप्त वृद्धीः ।
सुताव् समारिद्रिर्धमृभिनाय त स्वां पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४ ॥
मा त्वा दमन् परियान्तमाजि स्वस्ति दुर्गो अति याहि धीमम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो बदेर्षि ॥ ५ ॥
स्वस्ति तं सूर्य चरसे रषांश्च येनोपावन्तौ परियासि सप्तः ।
य ते बहन्ति हरितो वर्हिष्ठाः सुतमश्वा यदि वा सप्त वृद्धीः ॥ ६ ॥
सुखं सूर्य रथमभ्रमन्तं स्पेन सुवाहिमर्षि सिष्ठ बाविनम् ।
य ते बहन्ति हरितो वर्हिष्ठाः सुतमश्वा यदि वा सप्त वृद्धीः ॥ ७ ॥

अर्थ—(यत् प्राक् प्रत्यक् स्वधया यासि धीम् नानारूपे बह्वनी कर्षि मायसा) जो तू पूर्व और पश्चिम दिशामें अपनी चारक शक्तिके साथ बीज जल दे (मायसा माताकसे बहनी कर्षि) अपनी शक्तिके अनेक रूपवाले दिन और रात बजाता है । हे कारिज ! (यत् ते मङ्गि भयो यदेको विभ्व परि भूम जार्षसे) वह तेरा ही बड़ा महिमा है । (यत् प्राक् प्रत्यक् स्वधया यासि धीम् नानारूपे बह्वनी कर्षि मायसा) जो अनेका रूप बजाते हुए प्रभाव करता है ॥ ३ ॥

(वृद्धीः सप्त हरितः) वही सप्त किरने (य आज्वमानं तराणि विपश्चितं बहन्ति) जिस तेजस्वी तराणों के जाली देवकी के जाती है । (यं मङ्गिः स्वस्ति विभ्व अतिमात्र) जिसको अपना आमाने बहनेवाले बहने पुष्पों तक पहुँचता है (तं स्वां जाजि परियान्तं पश्यन्ति) उस पुष्पको चारों ओर घूमने हुए देखते हैं ॥ ४ ॥

(परियान्तं भाजि वा मा दमन्) चारों ओर घूमनेवाले पुष्पको घायु य बहा देवे । (स्वस्ति, दुर्गो अति याहि धीमम्) मुक्तकृत्याय कडिग आनके पार कीजनाके शक्त । हे सूर्य ! (विभ्व च देवी पृथिवी च अहोरात्रे विमिमानः बदे र्षि) दुष्टकाय और दिव्य पृथिवीको अहोरात्रको निरीक्षण करता हुआ तू जाता है ॥ ५ ॥

हे सूर्य ! (तं चरसे रषांश्च स्वस्ति) तरे चलनेवाले रथके लिए शुभमगत हो । (विभ्व अभी अभी सप्त वरि रक्षे) प्रिये होनों क्षीमाबोधक तरकाय जाता है । (सप्त वृद्धी यदि वा वर्हिष्ठाः हरिताः सप्त जयाः ये ते बहन्ति) इस किरने विंवा चलनेवाली या अथवा किरने जिस पुष्पको चलाती है ॥ ६ ॥

हे सूर्य ! (अभ्रमन् स्पेन सुवाहिं बविनम्) तेजस्वी सुखदायी चलनेवाले बतिवाले बहने रथपर चढ़ । (सप्त) उस पुष्पको साथ किरने अपना शेकनों किरने के चलाती है ॥ ७ ॥

भाषार्थ— आ पूर्व दिशामें उदय होकर पश्चिम दिशामें अस्त होता है जो अपने प्रकाशके दिन और अस्तपड़ने में निमित्त करता है उदय म हमा बहा दे बहा धम रमें बहा प्रभावशाली है ॥ ३ ॥

छात तजस्वी किरने सुबधा प्रकाश प्रभावशाली बजाती है । जाली ओग इसका महारण जावते हैं । वह तू पुष्पों पर उदर बहने अपना तब फैलता है ॥ ४ ॥

तू अभी और प्रकाश फैलाता है तेरी किरने की प्रभावशाली है तरे प्रकाशके बहने चरमान होता है । तू पुष्पों और पुष्पोंके प्रकाशित करता हुआ विभ्व और दुर्गो अति याजि करता है ॥ ५ ॥

तेरा रथ बहने चला है इसके तू उदयन आतकक आचरण करता है । जात किरने और अर्धत प्रकाश तेरा प्रकाश वर ११ ॥ ६ ॥

सप्त धर्मो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीर्युक्त ।

अमोघि सुक्रो रजसः परस्ताव विधुयं देवस्तमो दिवमारुहन्

॥ ८ ॥

उत् फेत्तुना बृहता देव आगन्तुर्वायुक् समोऽभि ज्योतिरिमेत ।

दिव्यः सुपर्णः स धीरो व्यस्मिददितेः पुत्रो मुर्वनानि विश्वा

॥ ९ ॥

उषन् रस्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।

उमा संमुग्री ऋतुना वि मांसि सर्वालोफान् परिभूर्भाजमानः

॥ १० ॥ (७)

पूर्वापरं चरसो माययैती क्षिप्रु क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।

विश्रान्तो मुर्वना विषटे हैरण्यैरन्य हरितो वहन्ति

॥ ११ ॥

वर्ण- (सूर्यः हिरण्यत्वचसः बृहतीः सप्त हरिताः यातवे रथे जयुक्तः) सूर्यने सुषर्णके समान चमकनेवाके गये सात दिन जयनेके क्षिप्रु अपने रथमें छोड़े हैं । (सुक्रः देवः तमो विधुयं रजसः परस्ताव अमोघि दिवं आरुहन्) सुक्र अपने अच-कारको आत्मसे हराकर रजोकोषके परे छोड़ दिया और स्वयं देवकोषपर गया ॥ ८ ॥

(देवः बृहता कैतुना उत् जायन्) सूर्यदेव अपने प्रकाशके साथ उषन्को प्राप्त हुआ है (तमः जयायुक् ज्योतिः जयैव) उसने जयकार हुड़ किया और ठेठका आत्म किया है । (सः दिव्यः सुपर्णः अदितेः धीरः पुत्रः विश्वा मुर्वनाभि व्यसन्) उस दिव्य प्रकाशमान अदितिक धीर पुत्र सूर्यने सब मुर्वनोंको प्रकाशित किया है ॥ ९ ॥

(उषन् रस्मीन् वा तनुषे) उषन् होनेपर किरणोंको लूँ फैलाता है । (विश्वा रूपाणि पुष्यसि) सब रंगोंको पुष्ट करता है । (उमा संमुग्री ऋतुना विमांसि) दोनों समुद्रोंको बहाके प्रकाशित करता है और (परिभूर्भाजमानः सर्वां कोषन्) सबपर प्रभाव करता हुआ ठेठस्त्री लूँ सब कोशोंको प्रकाशित करता है ॥ १० ॥ (७)

(यातोऽर्णवम् क्रीडन्तौ मायया पूर्वापरं चरतः) ये दो नावक जहाँ लूँ और जग्न केरने हुए, स्वकक्षिसे जाने पीके चले हैं । और (वर्णसं परिगतः) समुद्रतक जलम करते हुए पहुँचते हैं । [अग्नः विश्वा मुर्वना विषटे] उनमेंसे एक सब मुर्वनोंको प्रकाशित करता है और (अग्नः आत्तं विदधन् नव जायते) दूसरा जलुओंको बनाता हुआ नवा नवा बना करता है ॥ ११ ॥ (वर्णसं ७८१ (८६) ११; १७१११२)

भावार्थ— सप्त रथ ठेठस्त्री सुक्रवाही, प्रतिमान् चमकान् है । उषती किरने सप्त प्रभाव बता रही हैं ॥ ८ ॥

सूर्य अपने चमकनेवाही किरणोंके साथ अपने रथमें विराजता है । यह प्रकाशमान देव जग्न-भारको दूर करके उषको दूर भग देता है और देवकोषमें विराजता है ॥ ८ ॥

सूर्य उषन् होता है उससे जग्नकार हुड़ होता है उषने प्रकाशके सूर्य विष प्रकाशित होता है ॥ ९ ॥

सूर्य उषन् होनेपर उषन् प्रकाश फैलाता है, समुद्रतक सूर्य भूमिपर सब कोक यज्ञकी शुरु करते हैं । १० तरह सब जलसे रेशीयमान होता है ॥ ११ ॥

किरास्त्री चरके छोड़े गये (चंद्र और सूर्य) नावक अपनी कक्षिसे जाते हुए समुद्र तक पुरपाच करते हुए जाते हैं । जयने के एक जयनेके प्रकाशित करता है और दूसरा जलुओंको बनाता है । इसी तरह सब गृहस्थोंक पुत्र अपने पुरपाचके जग्न को प्रकाशित करे ॥ ११ ॥

विषि स्वात्रिरभारयत् सूर्या मासाय कर्षवे ।

॥ ११ ॥

स एषि सुधृतस्त्वपन् विश्वा मृतावचाकंसत्

उभाधन्ती समर्षधि वत्सः सैमातराविष ।

॥ १२ ॥

नन्वेष्टवितः पुरा अहं देवा अमी विदुः

यत् संमुद्रमनु ध्रुव वत् सिंहासति सूर्यः ।

॥ १३ ॥

अध्वास्य विस्ततो महान् पूर्वभापरस्य यः

त समामोति ब्रुविमिस्ततो नाप चिकित्सति ।

॥ १४ ॥

तेनामृतस्य मध्वं देवानां नाप रुन्धते

उदु त्य जातवेदस देवं वहन्ति केवराः ।

॥ १५ ॥

इतो विश्वाय सूर्यस्य

अर्थ—हे सूर्य (मासाय कर्षवे अतिः) त्वा विषि अघारयत्) सहिते ब्रह्मणे के लिए अतिने तुझे द्रुकोकमें अन्न मिले

(सः उपन् विश्वा भूता अघचारयत् सुधृता एषि) वह उपता हुआ सव भूतोंको प्रकाशित करता हुआ त्वं ब्रुविमि होकर ब्रह्मण दे ॥ ११ ॥

[वत्सः मातरी इव जनी भन्ती सं समर्षधि] वैसा ब्रह्मण मातापिताओंको प्राप्त होता है वैसा ए दोनों जिनका भागोंको प्राप्त होता है । (वत्स इत्य उता जनी देवाः एवम् महा सिद्धिः) निम्नपर्यन्त इससे पूर्व ही वे देव इव जन्मने आनते हैं ॥ १२ ॥

(यत् समुद्रं अनुध्रुवत् एव सूर्यः सिंहासति) जो समुद्रमें आधमयके रहता है वह सूर्य प्राप्त करना चाहता है । (यत् ना पुरा अपरः न महान् अध्वा विस्ततः) इसका वह पूर्व पश्चिम तथा मार्ग फैला है ॥ १३ ॥

(त ब्रुविमिः समामोति ततो न अपचिकित्सति) उस मार्गको वह देवोंसे समस्त करता है, उस मार्गके वह हल कर भवको नहीं जाने देता (तेन देवानां अमृतस्य मध्वं न अवरुन्धते) उस कारण देवोंके अमृत अन्नके अन्नको ही नहीं होता ॥ १४ ॥

(देवताः त्वं जातवेदस इव सूर्यं) जिनका वह बने हुएको आननेवाले सूर्य देवको (विश्वाय इत्ये) समस्त जन्म के ब्रह्मणे के लिए (वत्स उ वदन्ति) ब्रह्मण ब्रह्मणमें प्रकाशित करते हैं ॥ १५ ॥ (अ १ । ५ । १, वा वत्स अ १, अपरं २ । १७ । १३)

मार्गार्थ— सूर्य कीने ब्रह्मणे के लिए द्रुकोकमें प्रकाशित होता है वह प्रकाशता है ब्रह्मण भारत भी करता है ॥ ११ ॥
देवा तथा माता पिताओंको प्राप्त करता है नैकाही सूर्य उदय और अस्तके प्राप्तको प्राप्त होता है । इसका वह उप सव देव अघारयत् अन्नत दे ॥ १२ ॥

या समुद्रसे रात्रिदे है वह सूर्य प्राप्त करता है इस सूर्य का वह पूर्वसे पश्चिमतक मार्ग ब्रह्मण दे ॥ १३ ॥
वह अपने मातृका सीमाओंके अघारयत् करता है अपना सव इधर उधर जाने नहीं देता । इस कारण ब्रह्मण अमृतस्य मध्वं न अवरुन्धते प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

सूर्यदेवी हिमने जन्म लिएको प्रकाशित करनेके लिए ही प्रकाशती है और उदयको वह आनने भारत करती है ॥ १५ ॥

अप त्पे तामसो यथा नक्षत्रा मन्त्युक्तुर्मिः ।

सुराय विश्वचक्षसे

॥ १७ ॥

अर्धमस्य केतवो वि रश्मयो ज्ञानं अनु । आर्जन्तो अमर्षो यथा

॥ १८ ॥

तारणिर्विश्वदर्शवो ज्योतिष्कदेसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन

॥ १९ ॥

प्रस्पृक् देवानां विश्वः प्रत्यङ्मुखेषि मानुषीः

प्रस्पृक् विश्वं स्वर्गदे

॥ २० ॥ (८)

येनो पावक चक्षसा मनुष्यन्तु ज्ञानं अनु ।

त्वं चक्षसा पश्यसि

॥ २१ ॥

वि धामेषि रश्म्युभयमिमानो अस्तुर्मिः ।

पश्यन् जन्मानि सूर्य

॥ २२ ॥

वर्ष- (वषा ज्ञे तामसः, नक्षत्रा ज्ञानानि । अप यस्मि) ज्ञेते व चोत्तर वैद्ये नक्षत्रपत्र रात्रिके घात कृत मस्य जाते हैं और (विश्वचक्षसे सुराय) सप्तारके प्रकाशित करनेवाले सूर्यके किम् स्थान करते हैं ॥ १७ ॥ (अ १ । ५ । १ ; अर्धम १ । ४० । १४)

(वषा ज्ञानानि । अमर्षः) वैद्ये नक्षत्रपत्रके ज्ञान होते हैं (अस्व केवल रश्मयः ज्ञान् अनु वि अर्धमन्) इच्छे पञ्चकनी किञ्च ज्योतिषि मति जाते हुए दीक्षते हैं ॥ १८ ॥ (अ १ । ५ । १३, वा प ८ । ४ ; अर्धम १ । ४० । १५)

हे (रोचन सूर्य) प्रकाशक सूर्य । त् (तारणिः विश्वदर्शक ज्योतिष्कदेसि) तारक विश्वको दृष्टविधाका और प्रकाश करनेवाका है (विश्वं वा भासि) सब जगत् को प्रकाशित करता है ॥ १९ ॥ (अ १ । ५ । १४)

[देवानां विश्वः प्रस्पृक्] देवीकी प्रजापति मति और (मानुषीः प्रस्पृक् रश्मि) मानवी प्रजापति मति पृथक् होता है तथा (स्वः दिक्षे विश्व प्रस्पृक्) प्रकाशके दर्शनके किम् सब विश्वके मति जाता है ॥ २० ॥ (अ १ । ५ । १५)

हे (पावक चक्षसा) पवित्र करनेवाका ज्ञेय देव । [येन चक्षसा त्वं ज्ञान् मनुष्यन्तु अनु पश्यसि] जिस नेत्रके त मनुष्योक्ति करनोत्पन्न करनेवाके मनुष्यको देखता है सबसे सुखे देख ॥ २१ ॥ (अ १ । ५ । १६)

हे सूर्य । [अस्तुर्मिः अक्षः सिमानः] रात्रिकोके दिक्को मापता हुआ [इयु रश्मः धी देवि] विस्तृत जन्मरिक्त क्षेत्रको और मनुष्यकोको मापता होता है और [जन्मानि पश्यन्] सब जन्म क्षेत्रोंको देखता है ॥ २२ ॥ [अ १ । ५ । १७]

मार्ग- कैते और स्वामि जाते मय जाते हैं देखेही सूर्यके जाते सब नक्षत्र माप करते हैं और सूर्यदेवके किम् स्थान हुआ क्षेत्र होते हैं ॥ १७ ॥

नक्षत्रपत्रके ज्ञानिके समाम इसके किरण ज्ञान तैजस्वी और सबको प्रकाश देवैवाते हैं ॥ १८ ॥

सूर्य देखती है तारक है सबको सब दृष्टविधाका है कातिको कैलासीवाका है सबसे सब जगत् देखती होता है ॥ १९ ॥

वैद्य और मानवी प्रजापति हितार्थ सब सूर्य कहित होता है । सब विश्वी वह तैजस्य मार्ग रक्षता है ॥ २० ॥

सूर्य जिस देवमय नेत्रके पुरुषाणी मनुष्यको देखता है जती नेत्रके वह सुखे देखे अर्थात् वह सुखपर प्र करे ॥ २१ ॥

द्विषि त्वात्रिधारयत् सूर्या मासाय कर्षवे ।

स एषि सुधृतस्त्वपन् विश्वा भूतान्चार्षक्यत्

॥ १२ ॥

उभाबन्तौ समर्षसि वस्सः सैमावराविष ।

नन्वेष्टवद्वितः पुरा मन्त्रे देवा अमी विदुः

॥ १३ ॥

वत् संमुद्रमनु श्रित वत् सिपासति सूर्यः ।

अध्यास्व विरवतो महान् पूर्वधार्परश्च यः

॥ १४ ॥

स समामोवि ब्रुविमिस्ततो नार्ष चिकिस्सति ।

वेनाम्वरस्म मय्यं देवानां नार्ष कन्धते

॥ १५ ॥

उदु त्पं जातवैदस देव वहन्ति केतवः ।

इष्टे विश्वाय सूर्यम्

॥ १६ ॥

अर्थ—दे सूर्य (मासाय कर्षवे अग्निः त्वा द्विषि अथारयत्) मन्त्रिने ब्रह्मणे के लिए अग्निने अपने दृष्टिकोणों का रूप निरूपित (सः एषि विश्वा भूता अथारयत् इत्युक्तं एषि) वह अपना हुक्म सब भूतोंको प्रकाशित करता हुआ स्वयं क्षुण्ण होकर चलाता है ॥ १२ ॥

[वस्सः मातरी इव अग्नौ अन्तो सं कर्षसि] कैसा बलवा मत्तासिवाओंको प्राप्त होता है कैसा वृक्षों अग्नि धर्मोंको प्राप्त होता है । (वत् इत्युक्ता अग्नौ देवाः एतत् बलं निष्ठा) निम्नपूर्वक इससे पूर्व ही वे देव इव अग्नि को आसते हैं ॥ १३ ॥

(वत् संमुद्रं अनुश्रित वत् सूर्यः सिपासति) जो समुद्रको आधरयते रहता है वह सूर्य मात्र करता चलाता है । (वत् सः एषि अपरा य महान् अध्या विरवत्) इसका वह पूर्व पश्चिम तथा सर्गों केका है ॥ १४ ॥

(स ब्रुविमिः समामोति ततो न अपथिस्तिष्ठति) इस मातृको वह वेगोंसे समाप्त करता है, उस मार्गके वह हम कब्र भवको नहीं जाने देता (वेन देवानां अम्वरस्म मय्यं न अवरन्धते) उस कारण देवोंके अमृत अन्नको नष्टको ही नहीं होता ॥ १५ ॥

(देवतः एव जातवैदस इव सूर्य) फिर उस बने हुएको आकस्मिके सूर्य देवको (विश्वाय इष्टे) समस्त देवों के इष्टोंके लिए (उदु उ वहन्ति) कष्ट कायमें प्रकाशित करते हैं ॥ १६ ॥ (अ. १. १. १२, वा. अ. १. १. १२, अथर्व १. १२. १२)

वार्त्ता—सूर्य मन्त्रिने ब्रह्मणे के लिए दृष्टिकोणमें प्रकाशित होता है वह प्रकाशता है चक्षुष्य वारण भी करता है ॥ १२ ॥ कैसा बला भावा विरवोंको प्राप्त करता है वैराही सूर्य तत्त्व और अस्तके प्राप्तिमें प्राप्त होता है । इसका वह तत्त्व एव बलवत् आसते हैं ॥ १३ ॥

जो समुद्रमें रतादि है वह सूर्य प्राप्त करता है, इस सूर्य का वह पूर्वोपधिगतकक्ष मार्ग ब्रह्माग्री है ॥ १४ ॥ वह अपने मार्गका सीमासे समाप्त करता है अपना मन इतर कब्र होने नहीं देता । इस कारण कष्टको अवरन्धका भाव नष्टमें प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

पूर्वदेवकी अग्निमें सूर्य निधने प्रकाशित करनेके लिए ही प्रकाशता है और कष्टको उक्त भावमें वारण करती है ॥ १६ ॥

अर्तन्त्रो यास्मन् हरितो यदास्थात् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।

केतुमानुषन्तर्हमानो रजोसि विद्या आदित्य प्रवतो वि मासि

॥ २८ ॥

वण्महोर्जसि सूर्य यदादित्य महोर्जसि ।

महास्ते महतो महिमा त्वमादित्य महोर्जसि

॥ २९ ॥

रोचसे विवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्सवन्तः ।

वृषा समुद्रौ रुष्या व्यापिथ वेधो देवासि महिपः स्वर्जित्

॥ ३० ॥ (९)

अर्वाह परस्तात् प्रयतो म्यन्व आशुर्विपश्चित् पतर्षन् पतङ्गः ।

विष्णुर्विचित्रः शर्वसाधिविष्टुन् प्र केतुना महते विश्वमेजत्

॥ ३१ ॥

चित्रबिक्रित्वा महिपः सुपर्ण आरोचयन् रोदमी अन्तरिक्षम् ।

अहोरात्रे परि सूर्य वसन्ति प्राप्स्य विद्या तिरतो वीर्याणि

॥ ३२ ॥

अर्थ— (वयम्— यास्मन् हरितो यदा आस्थात्) आकाश व ऊर्ध्ववाता वायुवायुकी इच्छा करता है उस वह अपने वयोर आकाश होकर (रोचमान द्वे रूपे कृणुते) प्रकाशित होकर दो रूप बनाता है । (केतुमान् उषम् विद्या रजोसि सहमाव) चित्रबोले हुए होकर वयस्को प्राप्त होनेवाला सब को-कोई जीतनेवाला व (प्रवतो विमासि) उष कायसे वसकता है ॥ २८ ॥

हे सूर्य ! हे आदित्य ! (वत् महान् असि) व सचसे बड़ा है (ते महतो महिमा महान्) तुम महान् देवका

महिमा बहुत बड़ा है ॥ २९ ॥ [अ. ११ ११२, वा. वत् ३३/११, अर्थ १ १५१३]

हे (देव पतंग) आकाश देव ! व (विवि कण्ठोके पृथिव्या अप्सु वणः रोचसे) सुकोक अन्तरिक्षकोक मूकोक

और कण्ठोके अन्तरिक्ष प्रकाशित होता है । (रुष्या उमी समुद्रौ व्यापिथ) व अपने वेधसे दोनों समुद्रतक व्यापता है ।

पंचा व (स्वा—जित् देवः महिपः असि) प्रकाशको प्राप्त करनेवाला देव महाप्राप्तमर्षयुक्त है ॥ ३० ॥ १५

[आशु विपश्चित् पतंगः म्यन्वे प्रवत्] क्षीप्रगामी श्रावी संघातक विधेयतः मार्गमें छुट (परस्तात् अर्वात्) करारसे

पहो तक [विष्टुः विचित्रः अरवा बाधिविष्टुन्] व्यापक और विविध विष्टुयसक्तिसे युक्त अपने वकसे अविच्छिन्न होता

हुवा (केतुना पतङ्ग विज् म सज्ते) प्रकाशसे वसिमात्र विष्टुय वारण करता है ॥ ३१ ॥

[चित्रः चित्रित्वा महीना सुपर्णः] विक्रम्य गामी समर्थ, और उचम गतिमान् [अन्तरिक्षं रोदमी आरोचयन्]

अन्तरिक्ष, पृथिवी और मूकोकमें प्रकाशित करनेवाला सूर्य है । पृथे [सूर्य अहोरात्रे परिव्रजते] सूर्यवर दिन और रात

पड़ते हुए [अप्स्य विद्या वीर्याणि म तिरता] इससे सब बीर्य फैलते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थ— वह एक प्रवरात्म होनेपर भी अनेक प्रवराधीने जाये बहता है । सब अनेक प्रवराधे इसी एक प्रवराध के आधारसे रहते हैं ॥ २८ ॥

वह आकाश व्यापक बड़ा अपने कर्तव्यमें उत्पन्न रहता है । वह प्रकाश और अंधेरा करतब करता है । यह चित्रक

पदसे प्रभावित करके सब स्वामें विष्टुयता है ॥ २९ ॥

सूर्य वयसे बड़ा है उषकी महिमा मा बहुत बड़ी है ॥ ३० ॥

वह सूर्य वृष्ठी वण अन्तरिक्ष तथा मूकोकमें प्रकाशता है पूर्वापर और अन्तरिक्ष के दोनों उच्छ्रवाभोंमें अपना प्रकाश

पर फैलाता है । वही वयमें अधिक सामर्थ्यशाली है ॥ ३१ ॥

वह क्षीप्रगामी देवनेत्रका संघातक छुट मार्गका दसक बहावे बहातक सब विष्टुय अपन पद-पदसे प्रकाशित

पड़ते हैं ॥ ३२ ॥

तिग्मो विभ्राजन् तन्वै १ सिद्धानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।

ज्योतिष्मान् पक्षी मन्त्रियो बयोधा विद्वन् आस्थात् प्रदिशुः कल्पमानः ॥ ३३ ॥

वित्र वेवानो क्तुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशुः सूर्य उच्यन् ।

विवाकुरोऽति धुम्नैस्तमोसि विद्यावारीव दुरितानि भुङ्कः । ॥ ३४ ॥

वित्र वेवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य परुषस्याग्नेः ।

आभ्राव् धावापृषिषी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा सर्गस्तस्त्पुपं ॥ ३५ ॥

उच्यन्ता परन्तमस्य सुपुणं मर्त्ये विवस्तरणि आर्चमानम् ।

पक्ष्याम स्वा सवितारं यमादुरजसुं ज्योतिर्यद्विन्नुदतिः ॥ ३६ ॥

अर्थ- (तिग्मः विभ्राजन् तन्वै विद्वान्) तीक्ष्ण प्रकाशवाला अथवा क्षीरको तीक्ष्ण करनेवाला [अरंगमस्य रराणः] पक्षी मन्त्रियो बयोधा विद्वन् आस्थात् प्रदिशुः कल्पमानः [ज्योतिष्मान् पक्षी मन्त्रियो बयोधाः] तेजस्वी आत्मजैर् उच्यन्त करनेवाला वक्रवाद् और वक्र वातन करनेवाला (विद्या प्रदिशः कल्पमानः आस्थात्) सब विद्याजैर्मि धामर्त्युच्यन्ते होय हुआ सित रहता है ॥ ३३ ॥

[देवानो केतुः वित्रं जनीकं] देवोंका ज्ञान विद्वान् सूक्ष्म वाचाकरण (ज्योतिष्मान् सूर्यः प्रदिशः उच्यन्) तेजस्वी सूर्य विद्याजैर्मि कथित होता हुआ [क्तुरनीकं विद्यावारीव तमोसि धुम्नैः वारीव] कृद् सूर्य ज्ञान पातक्य जन्मकारिणी अथवा वेदोंके पार करता है और [विवा कुरोति] विद्वान् प्रकाश करता है ॥ ३४ ॥ [अथर्व. २। १९ अ० ३३]

(देवानो वित्रं जनीकं मित्रस्य वक्रमस्य क्तुरनीकं) देवोंका अद्वैत पातक वक्र मित्र वक्रम और जनीकी जन्म (वाचापृषिषी अन्तरिक्षं आभ्राव्) धुम्नैक अन्तरिक्ष और पृषिषीके व्यापका है देवा [सूर्यः अत्मा तस्त्पुपं च आत्मा] सूर्य जन्म और स्वावरका आत्मा है ॥ ३५ ॥ [अ० १। ११५। १, वा वक्तु १। १२ ३२। ३५ अथर्व २। १९ अ० ३४]

(उच्यन्ता परन्तमस्य सुपुणं मर्त्ये आर्चमानं तैरति) उच्यन्त करनेवाले पक्षी जैके आत्मजके तमोसि तेजस्वी होकर तेजस्वीके [च वक्रम ज्योतिः आत्मा] के अन्तरिक्ष तथा पक्ष्याम] जिसे विद्वेय तेजस्वी करने करते हैं इस उच्य सूर्यके हम देखते हैं (अथ मन्त्रिः अन्तरिक्ष) जिसे जोका प्राप्त करता है ॥ ३६ ॥

भाष्य- यह विद्वान् धामर्त्यवादी इस जिनोन्मीकी प्रकाशित करता है । यह दिव और एतको निर्मल करने लगे पराक्रमकथिनी धमर्ति करता है ॥ ३३ ॥

यह तेजस्वी और तीक्षा सूर्य मर्त्य नतिधे कुछ और उवा सब स्वात्ममि विद्याजैवाका पक्षीके ज्ञान आत्मजैर् उच्यन् करता हुआ ज्ञान विद्याजैके तेज सूर्य हुआ उच्य है ॥ ३४ ॥

यह देवोंके आत्मजकी धुम्नका वेता है यह विद्वान् अद्वैत वक्रमे कुछ है यह ज्ञान उच्यके प्राप्त होता है, एव ज्ञान स्वावरक ज्ञेयता सूत्र करने धर्म प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥

यह सब देवोंका वक्र और वक्रमी आत्मा ही है । यह अपने प्रकाशके मित्रोंके पार होता है । यही सूर्य मानो ज्ञान स्वात्म ज्ञान ज्ञान का आत्मा है ॥ ३५ ॥

यह जोप्राणी पक्षीके धामर्त्य आत्मजजैर् तैरता है । इसका विद्वान् एव है जो हम देखते हैं । जो इस तेजस्वी स्वीकृत करता पावे उचको यह प्राप्त हो सकता है ॥ ३६ ॥

दिनस्युष्टे धार्यमानं सुपूर्णमर्वित्याः पुत्रं नायकाम् उर्षं यामि मीतः ।

स नः सूर्यं प्र तिंर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमती तं स्याम ॥ ३७ ॥

सहस्राक्ष्य विर्यतावस्य पृथो हरेर्हंसस्य परतः स्वर्गम् ।

स देवान्सर्वाभिरस्युपवर्षं सुपश्यन् पाति धूर्वनानि विश्वा ॥ ३८ ॥

रोहितः कालो अमवद् रोहितोऽग्नें प्रजापतिः ।

रोहितो यज्ञानां मुख रोहितः स्वर्शामरत् ॥ ३९ ॥

रोहितो ह्योको अमवद् रोहितोऽस्यसपद् दिवम् ।

रोहितो रुक्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥ (१०)

सर्वा दिवः समचरत् रोहितोऽर्षिपतिर्दिवः ।

दिवं समुद्रमाव् भूमिं सर्वं मृतं च रयति ॥ ४१ ॥

अर्थ- (दिवः पूरे वाद्यमान सुपर्वे अदित्याः पुत्र) द्युलोकोके पीठपर दीर्घदेवाके पक्षीके समान अदित्यीके पुत्र को [वायकाम' सीधा उपयामि] नाम की हृष्टा कन्येवाका मयनीय हुआ मैं धरम जाता हूँ । हे सूर्य ! (या या दीर्घ आयुः प्रतिर) वह हूँ हर्षे दीर्घ आयु व (ते सुमती स्याम या रिषाम) तेरी कन्यम बुद्धिमें हय रते और हमारा वाद्य य हो ॥ ३७ ॥

(हरेः हंसस्य सहस्राक्ष्यं स्वर्गं परतः अयम पक्षी विश्वती) हारकक्षीय ईसके समान मयिनीय हयार दिवत माता पर सित द्युलोके पर कन्येवाके हय सूर्यके शोभे और किय केहे है । (स सर्वाव् उरति उपवृष) वह सब देवोंको अपनी कालीपर चारम करता हुआ (यिका सुपश्यति ये पश्यन् पाति) सब सुपश्योंको देखता हुआ चकता है ॥ ३८ ॥ (अमवर्षं १ । ६।१८ १३।३।२०)

(रोहिता कालः अमवद्) वह सूर्य ही काल हुआ है (अग्ने रोहितः प्रजापतिः) आग्ने सूर्यही प्रजापाकक बना है (रोहितः यज्ञानां मुखं) वही सूर्य यज्ञोंका मुख होकर (स्वः शामरत्) प्रकाश प्रदान करता है ॥ ३९ ॥

(रोहितः ओको अमवद्, दिवं अतपद्) सूर्य ही सब लोक बना और द्युलोको को प्रकाशित करने लगा । (रोहितः रुक्मिभिः भूमिं समुद्रं अनु सं चरत्) सूर्यही अपने कियमें भूमि और समुद्रमें लेखर करता है ॥ ४० ॥ (१)

(दिवः अर्षिपति रोहितः सर्वा दिवः समचरत्) द्युलोको का स्वामी सूर्य सब दिवाओंमें मचार करता है । (दिव समुद्रं माव् भूमिं सर्वं मृतं च रयति) लोकोक समुद्र भूमि सब प्राणी आदि सबकी यह रखा करता है ॥ ४१ ॥

भावार्थ-आकाशके हृष्टमायपर दीर्घदेवाके पक्षीके समान यह सूर्य है । मैं हुआके पीठपर मयनीय हुआ रचकी मयना करता हूँ कि वह हर्षे दीर्घ आयु देने और हर्षे सुप्रभित रखे ॥ ३७ ॥

हय देवकी सूर्यके किय सब और हयार दिवतक प्रकाश करते हुए द्युलोक जाते हैं । वही सब देवोंका आधार है वह चकता मिठीपुत्र करता हुआ चकता है ॥ ३८ ॥

वह सूर्य यज्ञ प्रथापकक वह सय सब लोककी बनाता है, वही अपने प्रकाशसे सब जगत् को परिपूर्ण करता है ॥ ३९ ॥

वह द्युलोकेका स्वामी सूर्य सब लेखर करने सब जगत् की रखा करता है ॥ ४१ ॥

आरोहन्त्युक्तो वृद्धीरतन्त्रो मे रूपे कृणुते रोषमानः ।

चित्रमिदं कित्वा महिषो धारमाणा यावतो लोकानामि यद् विभक्तिं

॥ ४२ ॥

अर्प्य न्यदेति पर्य यदेत्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कर्ष्यमानः ।

सर्वं वयं रक्षति क्षियन्ते गामुषिदे हवामहे नार्षमानाः

॥ ४३ ॥

पृथिवीप्रो महिषो नार्षमानस्य गातरदंश्चक्षुः परि विश्वं प्रमूर्ध ।

विश्वं सपश्यन्त्युषिदत्रो यजत्र इव वृणोतु यदह प्रवीमि

॥ ४४ ॥

पर्यस्य महिमा पृथिवी संमुत्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि घामन्तरिक्षम् ।

सर्वं सपश्यन्त्युषिदत्रो यजत्र इव वृणोतु यदह प्रवीमि

॥ ४५ ॥

अथोप्यग्निः समिधा जनानां प्रति सेनुमिषा पृथीमुपासम् ।

यज्ञा इव प्र यजामुजिह्वानाः प्र मानवाः सिंसते नाकुमर्च्छ

॥ ४६ ॥ (११)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

वर्ष- (अन्तरः) द्वादश रोषमानः वृद्धीः आरोहणः) आकस्मिकरूपेण वक्रवात् तैजसी सूर्यं बली विचार्योतिं आत्म स्वेन (हे रूपे कृणुते) हो रूप बलात् है । वह (चित्रः चित्रित्वात् महिषः) विकल्प आनी और समर्थ (वातं वायुः) मनुष्ये प्र स होता है और (यद् वायव्यो लोकान् आभि विभक्तिं) विचने लोक है उन सबको वह प्रकाशित करता है ॥ ४२ ॥

(अहोरात्राभ्यां कर्ष्यमान महिषः) दिन और रात्रिके समर्थ होता हुआ वह सूर्य (अन्तरा जमि पृथि, अन्तर जमि अन्तरे) एक मागके सम्मुख होता है और दूसरा भाग वृद्धी और रोका जाता है । [वर्षं वायव्यमा गामुषिदे तस्मै क्षियन्ते सर्वं हवामहे] हम सब वस्तु हुए अथर्ववेद और अन्तरिक्षमें विवास करनेवाक सूर्यकी स्तुति करते हैं ॥ ४३ ॥

(महिषः पृथिवी प्रः) वक्रवात् पृथिवीको पूर्ण करनेवाका (वायव्यस्य मातुः अहव्यचक्षुः विश्वं परि पश्य) वृद्धी सम्मुखका मार्गदर्शक स्थितक आका व हवा है ऐसा सूर्य हुए विचार है । वह [विश्वं परावर सुषिदत्रो वयः] सब विक्रमे देखनेवाका आनी वायक [एवं गच्छात् वयं सर्वं लोमि] वह सूर्य जो मैं कहता हूं ॥ ४४ ॥

[अहं महिमा पृथिवीं समुत्रं परि] इस का महिमा पृथिवी और समुद्रके चारों ओर फैका है । [ज्योतिषा विभ्राजन् परि घामन्तरिक्षं परि] वज्रके प्रकाशका हुआ पृथ्वीको और अन्तरिक्ष में चारों ओर फैका है । (सर्वं सपश्यन्) सब को देखता हुआ वह आनी वायक वह सूर्य कि जो मैं कहता हूं ॥ ४५ ॥

[जनां समिधा जमि प्रति जनोवि] जनोकी क्षमिताकोसे जमि बात करता है । (सेनु इव उज्ज्वला वासति) वी जैसी उजा आनेके समय अगती है । (यजाम उजिह्वानाः यज्ञा इव) आकाशको ऊपर फैकनेकोसे रोनेके समान (आत्मका वाकं अथ्य प्र सिंसते) स्थित स्वर्गस्थानी और पृथ्वीत है ॥ ४६ ॥ [११]

पार्थव- आत्म स्वेनकर समर्थ और तैजसी वह सूर्य समर्थ करने स्वात्पर आत्म होता है । अन्तर और अथर्व इरीसे वायव्य होते हैं । अहोरात्र लोक है अहोरात्र इत्यक प्रकाश फैकता है ॥ ४२ ॥

वह सूर्य जैन और रात्र बगता है विश्व सम्य वह विश्व भूभागके सम्मुख होता है वही दिन होता है और रात्रे मृकलें रात्रि होता है । हुए अन्तरिक्ष काफमें विश्वमात्र तैजसी सूर्यकी हुए स्तुति करते हैं वह हमें मार्गदर्शक होने ॥ ४३ ॥

वह सूर्य समर्थवाकी है वृद्धी सम्मुखके बही वृणोतु मार्ग बगता है । सब विचार इत्यकी मनुता है । वह सर्वं प्र मुखे ॥ ४४ ॥

इत्यपी महिमा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और पृथ्वीकोसे फैकी है । ॥ ४५ ॥

(३)

य इमे धावापृथिवी ज्ञानं यो द्वापि कृत्वा भुवनानि वसन्ते ।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रविष्टाः पशुर्वायः पशुर्वायः अन् विचारकशीति ॥
तस्य देवस्य क्रुद्धस्तेतदागो य एव विद्वांसं ब्राह्मण जिनाति ।
उह वैपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मन्वस्य प्रति मुञ्च पाषाण् ॥ १ ॥
यस्माद् धावा ऋतुया पवन्ते यस्मात् समुद्रा आर्षि बिधरन्ति । तस्य देवस्य ० ॥ २ ॥
यो मारयति प्राणपति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विद्या । तस्य देवस्य ० ॥ ३ ॥
यः प्राप्तेन धावापृथिवी तृपयत्यपानेन समुद्रस्य जठर यः विपति । तस्य देवस्य ० ॥ ४ ॥
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरधिर्बैशानुरः सह पशुस्य धितः ।
यः परस्य प्राण परमस्य तेज आहवे ॥ तस्य देवस्य ० ॥ ५ ॥

वर्ष-(यः इस धावा पृथिवी ज्ञान) को इन दोनो दुष्टको और पृथिवी कोको उत्पन्न करता है (यः भुवनानि
द्विपि कृत्वा वसन्) को सब भुवनोंको छोड़कर उद्यम रहता है, (परिमन् बहू उर्वाः प्रविष्टाः क्षियन्ति) जिसमें सब
पशु विद्यमान विनाश करती हैं (यः पशुः अन् विचारकशीति) जिसको पशुमान् सर्व प्रकाशित करता है । (यः पृथ
विद्वांसं ब्राह्मणे जिनाति) को उस ज्ञानी ब्राह्मणको नाश करता है, या कष्ट देता है, (एवम् जगत्) वस्तु वस्तुस्य देवस्य
इसका पाप उस वस्तु देवके प्रति होता है । हे (रोहित) सर्व ! इस पानीको (उह वैपय) कम्पा दे, तथा
(प्रक्षिणीहि) इसका नाश कर (ब्रह्मन्वस्य पाषाण् प्रविमुञ्च) ब्रह्मावलीके ऊपर वासोंको गिरा दे, बर्बाद उसे बंधनमें
बाध दे ॥ १ ॥

(यस्मात् धावाः ऋतुया पवन्ते) जिससे वायु ऋतुबोले अनुसार बहते हैं, (यस्मात् समुद्राः अपि वि धरन्ति)
जिससे समुद्र-जलप्रवाह विविध प्रकारसे प्रवाहित होते हैं ॥ (यः मारयति प्राणपति) जो मारता है, जो
भीषित रखता है (यस्मात् प्राणानि भुवनानि प्राणन्ति) जिससे सब भुवन भीषित रहते हैं ॥ २-३ ॥

(यः प्राप्तेन धावापृथिवी तृपयति) जो ब्रह्मणे दुष्टको और दुष्टकोको छुट्ट करता है और (यः अपानेन समुद्रस्य
जठरं विपति) जो अपानके समुद्रका पत्र पर्व करता है ॥ (यः परस्य प्राण परमस्य तेज आहवे) जिसमें विशाद् परमेष्ठी प्रजापति अग्नि वैशान्वर
(सह पशुया जिहः) पशुके साथ आहव विन्दे ॥ ४-५ ॥

धावाय- धावामें जो समिधायें धामी कीं उनसे वह अग्नि प्रदीप्त हुम्ब है । जैसे यो मातःपुत्र जयता है वैसा वह अग्नि
जाय उठा है । जैसे पापे धर्मो छायाओंके ऊपर आच्छाद्यमें डेकते हैं वैसेही अग्निकी ज्वालाएँ भीषी ऊपर जला हैं और
प्रकाशमें फैलाती हैं ॥ ४-५ ॥

क्षिती अनुवाक समाप्त ॥ २ ॥

जिह परमप्राप्ते वह धर्म जय निर्माण किया है और या उससे अग्नि प्रकाशित रहता है जिसके अग्नि
के सर्वने प्रकाशित होनेवाली सब दिशा और उपदिष्टाएँ रहती हैं वह विद्यापिठ परमप्राप्ति उद्यम बना
वस्तु देता है जो ज्ञानी अनुभव कर देता है, प्रकाश प्रकाशमान करता है धीमन्वस्य देता है और अग्निमें वधमें बाध
देता है ॥ १ ॥

यस्मिन् पशुर्वाः पञ्च विष्टो आधि भितामवत्स आपो ब्रह्मस्म त्रयोऽधराः ।

यो वन्तरा रोदसी कुहमधुपैष्वत् ॥ तस्य देवस्य ०

॥ १ ॥

यो वन्त्रादो अर्धपविर्धुव मन्त्रमुत्पत्तिकृत यः ।

मूतो मधिस्यद् मुर्वनस्य यस्पतिः ॥ तस्य देवस्य ०

॥ ७ ॥

अहोरात्रैर्मित त्रिषदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमिति ॥ तस्य देवस्य ०

॥ ८ ॥

कृष्य निबानं हरयः सुपर्णा अपो वसन्ता दिवमुत् पतन्ति ।

त आर्वषुन्त्सर्दनाहवस्य ॥ तस्य देवस्य ०

॥ ९ ॥

यत् तै वन्त्र कर्षप रोचनावद् यत् संहित पुष्कलं चित्रमानु ।

यस्मिन्त्सर्पा आपिवाः सप्त साकम् ॥ तस्य देवस्य ०

॥ १० ॥ (११)

पुहर्देनमनु वस्ते पुरस्ताद् रघतरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ।

न्योतिर्वसान् सप्तमग्रमाह्व ॥ तस्य देवस्य ०

॥ ११ ॥

अर्थ- (यस्मिन् पशुर्वाः पञ्च विष्टो आधि भितामवत्स आपो ब्रह्मस्म त्रयोऽधराः) जिसमें छः तथा पाँच बड़ी विष्टायें अभिहित हुई हैं तथा जिसमें (यत्तथा आपः ब्रह्मस्म तथा वन्त्राः) चार प्रकारके कर्ष और पञ्चके तीन वन्त्र हैं (या वन्तरा वन्त्राः कुहमा मधुपैष्वत्) जो वन्त्रसे कर्ष होकर मीठे मधुकोक और मधुकोको देवता है ॥ १ ॥

(या वन्त्रादो अर्धपविः यत्तथा मन्त्रमुत्पत्तिकृत यः) जो अर्धमन्त्रक वन्त्रका स्वामी और मन्त्रक स्वामी तथा है तथा (या मूतो मधिस्यद् पतिः मूताः मधिस्यद्) जो मूतका स्वामी वा और रहोगा ॥ ७ [या अहोरात्रैर्मितं त्रिषदङ्गं] जो दिन और रात्रीके तीन दिनोंका तथा एक महिना ऐसे (त्रयोदशं मासं या निर्मिमिति) तेरह महिने जो निर्मित करता है ॥ ८ ॥

(यापः वसन्ताः सुपर्णाः हरयः) कर्षका गायक करीबाने वसन्त यस्मिन्त्सर्पा सर्पविष्टक (कृष्यं निबानं दिवं वन्त्राः) कृष्य वर्ण वा भीकवर्णवाने कर्षके स्वावकन मधुकोक के प्रति कहते हैं [ये कर्षक सवन्त वायव्यवत्] वे दिन कर्षके स्वावके पुनः पुनः कर्षते हैं ॥ ९ [यत्तथा कर्षप] देवतादेव देव । (यत्तथा वन्त्र रोचनावद् पुष्कलं संहितं चित्रमानु) जो तेरा मानवकासी प्रकारका वन्त्र बहुत इच्छा हुआ विष्टक देव है (यस्मिन्त्सर्पा सप्त सर्पाः सप्तं सर्पाः) इसमें सात सर्प सप्त रहते हैं ॥ १०-११ ॥

[यत्तथा वस्ते पुरस्ताद् रघतरं] यत्तथा गाय इसके सामने होता है और (रघतरं पश्चात् पतिगृह्णाति) रक्ता नाम पीछेसे इसका ग्रहण करता है ॥ (यत्तथा न्योतिर्वसान्) यत्तथा सप्त सर्प एक एक है और [रक्ता]

मासाय- जिसकी प्रेरणासे मनु और वन्त्रमाह वन्त्र रहे हैं। जो इनको मारता मार जोषित करता है, जिसकी वन्त्रकर्मसे सब प्राणिमान अभिहित रहते हैं ॥ जो मासके प्राणशुक्लीके तुल्य करके अपालने समुद्रको परिपूर्ण करता है जिसमें अग्नि कर्मसे देव पीछे वन्त्रकर रहते हैं जिसमें सब विष्टायें, सब वन्त्रमाह, वन्त्रके सब विष्टिमान अभिहित हुए हैं, जो कर्ष होकर मधु मीठे कर्षका विष्टिमान करता है ॥ १०-११ ॥

जो एक मात्र वन्त्रक मन्त्रक है तथापि जो वन्त्र और ज्ञान सबकी देता है जो सबका एक मात्र स्वामी वा है और तैव जो दिन रात महिना और वर्षकी कर्षकन निर्माण करता है जिसके दिन पुष्पीकरका मत लेकर जाकाकर्म करते हैं और यद्यपि देवमेवकर्म वारंवार प्रकाशित होते हैं जिसका प्रकाश एकत्रित होकर सबको मन्त्रकित करता है और जिसमें वे सब सर्व रहते हैं ॥ १०-११ ॥

बृहदुन्मत्तः पृथु आसीत् रथतरमन्मत्तः सर्वले सुग्रीची ।

अन् रोहितमर्जनयन्त देवाः ॥ तस्य देवस्य०

॥ १२ ॥

स वरुणः सायमग्निर्मवति स मित्रो भवति प्रातःपयन् ।

स संविता भूत्वान्तरिक्षेण भाति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ॥

तस्य देवस्य०

॥ १३ ॥

सहस्राक्ष्य विर्यतावस्य पृथ्वी हरौंसस्य पततः स्वर्गम् ।

स देवान्सर्वाङ्गानुरस्युपदर्श सपश्यन् भाति भुवनाति विश्वा ॥ तस्य देवस्य०

॥ १४ ॥

अय स देवो अर्ष्व१न्तः सहस्रमूढः पुरुष्वाक्रो अस्त्रिः ।

प इदं विश्वं भुवनं ज्ञानम् ॥ तस्य देवस्य०

॥ १५ ॥

सुक्रं वहन्ति हरयो रघुपदो देव दिवि वर्षेसा आर्जमानम् ।

यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्त्यर्वाक् सुवर्षेः पटुरैर्वि भाति ॥ तस्य देवस्य०

॥ १६ ॥

वेनाविस्थान् हरितः सुवहन्ति येन सुमेन वृहवो यन्ति प्रजानन्तः ।

पदेक ज्योतिर्षुधा विभाति ॥ तस्य देवस्य०

॥ १७ ॥

अन्वताः] रथतर गालका हृत्तरा पृथु है [सके सग्रीची] ये दोनों बकमान् तथा साय रहनेवाले पृथु हैं । [यद रोहितं देवाः अर्जनयन्त] वहाँ देवोंने रोहित स्वको निर्माण किया ॥ ० ११-१२ ॥

[सः वरुणः साय अग्निः भवति] वह वरुण है पयं वह सार्धकाक अग्नि होता है [सः प्रातः उद्यन् मित्रः भवति] वह सवेरे उद्य पयनेके समय मित्र कहलाता है । [सः संविता भूत्वा अन्तरिक्षेण भाति] वही संविता भवकर अन्तरिक्षमें पंचर कला है [सः इन्द्रः भूत्वा मध्यतः दिव तपति] वह इन्द्र होकर मध्यकोके मध्यमें तपता है ॥ ॥ १३ ॥

[सर्वं देवो अर्ष्व१ १ १८१२४, १३१२३८] ॥ ॥ १४ ॥

[सः हरौ विश्वं भुवनं ज्ञानम्] जिसने वह सब जगत् निर्माण किया [सर्वं सः देवः सहस्रमूढः पुरुष्वाक्रो भातिः अयं भूत्वा] वह देव वही है जिसके हथारों मूक और साक्षात् हैं और जो सबका अक्षक है वह जगमें है ॥ ॥ १५ ॥

(वर्षसा आर्जमानं सुक्रं देवं) तेजसे कमकनेवाले वक्रिण देवको (रघुपदः हरयः दिवि वहन्ति) यतिमान् किरण रघुकोकमें चलाते हैं । (यस्य अर्ध्वाः तन्वा दिवि तपन्ति) जिसके ऊपरके भाग सूर्यकोकमें तपते हैं और (अर्वाक् सुवर्षेः पटुरैः विभाति) इस ओर कलम (गवाके तेजोंसे वह चमकता है ॥ ॥ (येन हरितः आदिभ्याम् सं वहन्ति) मिश्रक रंगम किरण सूर्यको चलाते हैं (येन यमेन प्रजानन्तः वृहवो यन्ति) जिस वक्रके प्राय बहुत जायी करते हैं, (यद एकं ज्योतिः शुध्वा विभाति) जो एक तेज जगमें प्रकाशके प्रकाशता है ॥ ॥ १६-१७ ॥

आचार्य-बृहत् और रक्ततर नाम इसके आर्यपाके कहते हैं । ये दोनों बक्रके प्रकल पृथु है इसका पयन होता है तब सूर्य देव वरुणके प्राप्य होते हैं । वही वरुण अग्नि मित्र संविता और इन्द्र कमधः साय प्रातः द्वितीय अहर और मध्य दिवमें चरकता है । (मंत्र १४ का भाष्य १३१२३८ में देखी) विद्यते वह जगत् निर्माण किया वह पय वही है जिसकी बक्र और पाकारे हथारों हैं, वह जगमें प्रकाशमान है ॥ ११-१५ ॥

तेजसे स्वको रघुकोकमें किरण प्रकाशित करते हैं । इसके ऊपरके किरण रघुकोकमें प्रकाशित करते हैं और ह्रत् औरके किरण इस नीचे प्रकाश देते हैं । एककलाके सूर्यकोकमें काय किरण प्रकाशित करते हैं । एक ही वे काय भाग है । इसका पय

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं उपासते प्रथिप यस्य देवाः ।

येऽस्मेष्ट द्विपदो यधर्तुम्पदः ॥ तस्य देवस्य ॥

॥ २४ ॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि षक्रमे द्विपात् त्रिपादमुन्मेति पुत्र्यात् ।

चतुष्पाच्चक्रे दिपदामभिस्तरे सपश्यन् पृथ्विस्तमुपतिष्ठमानः तस्य देवस्य ॥

क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसि ब्राह्मण क्षिनार्ति ।

उद् वेपथ रोहति प्र क्षिपीहि ब्रह्मज्यस्य प्रसिं मुञ्च पाशान्

॥ २५ ॥

कुम्भायाः पुत्रो अर्धुनो राभ्या बृत्सोऽज्ञायत ।

स इ धामर्षि रोहति क्शो करोह रोहितः

॥ २६ ॥

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ— [य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं उपासते] को आध्यात्मिक बल देवेवाका और अर्थ देवेवाका है जिसकी आज्ञाका पावन सब देव करते हैं (यः अस्मि द्विपदः चतुष्पदः इत्ये) को इस द्विपाद् और चतुष्पादका स्वामी है ॥ २४ ॥

(एकपाद् द्विपदः भूयो विषक्रमे) एक पांववाका को पांववाकोसे अधिक ब्रीडता है (द्विपात् त्रिपादं पश्चाद् अन्मेति) दो पांववाका तीन पांववाकोसे पीछे चलाता है । (अर्थ १३ । १ । १०) (चतुष्पाद् द्विपदं बभिरपरे पंक्तिं संवदन् उपतिष्ठमानः पदे) चार पांववाका को पांववाकोकी पंक्तिपरसे रहनेवाकोकी पंक्तिसे देकरा हुआ और उसके सेवा करता है । (तस्य देवस्य) इस देवके प्रति वह पाव होगा है कि जो क्षत्री ब्राह्मणके नाश करनेसे होता है । उस ब्राह्मणके वह कराता क्षीम करता और वंशमें लाता है ॥ २५ ॥ (अ. १ । ११० । ४)

(कुम्भायाः राभ्याः पुत्रः बभूवः अर्धुनः अज्ञायत) कले बर्तवाली रायिका पुत्र बच्य प्रकाशमान सूर्य हुआ है । [सः रोहतिः क्शः करोह] वह काल रंगवाका सब बनावेवाकोके ऊपर चला है वही (स धा रोहितः) निशचले सुकोक पर चला है ॥ २६ ॥ (१५)

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

मार्थ— आध्यात्मिक और पारिष्टिक बल देवेवाका देव है इसकी आज्ञा सब मानते हैं सब द्विपाद् चतुष्पद उकीकी आज्ञासे रहते हैं ॥ २४ ॥

वह देव एकपादवाका होवेपर भी अनेक पांववाकोके अधिक बलता है । वह सबकी पूजा स्वीकारता हुआ सबकी रक्षितें रखकर बचाव करता है । इस बलवाक्य अवलम्ब वह करता है कि जो क्षत्री ब्राह्मणकी करता है । वह इस भारवाकीसे चलाता क्षीम करता और वंशमें लाता है ॥ २५ ॥

धनी मर्त्य होकर निवृत्त हुआ और सूर्य बच्य हा पुत्र है । वह बच्य होते ही सबसे ऊपर चढ़ने गया और अगमें ब्रह्म-कोटमें विराजमान होकर प्रकाशमें बना है ॥ २६ ॥

तृतीय अनुवाक समाप्त ॥ ३ ॥

(४)

[१] स एति सविता स्वर्गिर्विस्सुष्टेऽवुषाकंष्टत्	॥ १ ॥
रश्मिभिर्नम आमुत महेन्द्र एस्याहुतः	॥ २ ॥
स वाता स विवर्ता स वायुर्नम उच्छ्रितम् ।०	॥ ३ ॥
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।०	॥ ४ ॥
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।०	॥ ५ ॥
तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकं क्षीर्पाणोऽपुता दध्मं ।	॥ ६ ॥
पुमात् प्राञ्चु आ तन्वन्ति बहुदेति वि मांसति ।०	॥ ७ ॥
तस्यैव मार्क्षो गुणः स एति क्षिप्वाहुतः	॥ ८ ॥
रश्मिभिर्नम आमुत महेन्द्र एस्याहुतः	॥ ९ ॥
तस्येमे नव कोषा विहृम्भा नवषा हिताः	॥ १० ॥
स प्रजाम्यो वि गृहयति यच्च प्राप्नोति यच्च न	॥ ११ ॥
तमिद निर्गतिं सहः स पुन एकं एकबुदेकं एव	॥ १२ ॥
एवे अस्मिन् देवा एकबुतो मयन्ति	॥ १३ ॥

अर्थ- (१) (स्वा सविता दिवः पृथे अवुषाकंष्टत् सा एति) यह सूर्य एवुषाकके पृथमात्पर प्रकाशता है उसे अपने सैकड़ों प्राञ्च करता है ॥ १ ॥ उसने अपने (रश्मिभिः नमः आमुत) किरणोंसे आकाशको भरकर का दिया । वह (महेन्द्रा आमुत एति) वहा इन्द्र तेजसे आमुत होकर चकता है ॥ २ ॥ (सा वाता) वह वाता विचार्य जो भी (वस्तुः) वायु है उसने (नमः उच्छ्रितम्) आकाश केका कवाता है ॥ ३ ॥

वह अवमा बल्ल कम और महादेव है ॥ ४ ॥ वह अग्नि सूर्य और महायम भी वही है ॥ ५ ॥ [उ वत्सा] पाला वह वत्सा पुता कपतिष्ठन्ति) उसके साथ वह मयतकाके इस बलसे क्षुण्ण होकर रहत है ॥ ६ ॥ (प्रजाय प्राञ्च आ तन्वन्ति) पीछेसे पूर्व दिशासे तेज फैलाता है (स एति विमसति) जो उदय होता है प्रकाशता है ॥ ७ ॥

(तस्य म एव मार्क्षः नमः क्षिप्वाहुतः एति) उसके साथ वह वायु गत्य क्षिपरेसे चरेक समान चकता है ॥ ८ ॥ उसने किरणोंसे आकाश व्याप दिया है वह महा इन्द्र तेजसे आमुत होकर चकता है ॥ ९ ॥ [तस्य हमे नव कोषा] विहृम्भा नवषा हिताः) कलके से वा कोक विविध कपडे नौ प्रकार रहते हैं ॥ १० ॥

(सः प्रजाम्यः विगृहयति यच्च प्राप्नोति यच्च नव) वह प्रजाम्योके देखता है जो प्रत्ययान कहे है और जो नहीं करते ॥ ११ ॥ (तं हर्षं निर्गतिं सहः) यह वह हृष्टा हुआ सामर्थ्य है । (सा पुनः एकः एकबुद एक एव) यह वह एक है एकमात्र व्यापक देव केवक एक ही है ॥ १२ ॥

(एवे देवाः अस्मिन् एकबुता मयन्ति) ये सब देव हममें एककर होते हैं । ॥ १३ ॥ [१५]

(५)

(२) कीर्तिश्च यशस्यार्म्मभ्य नमस्य प्राज्ञानवर्षस्य चार्म्यं चाभार्यं च ॥ १४ ॥
य एत देवमेकवृत्तं वेदं ॥ १५ ॥
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।० ॥ १६ ॥
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।० ॥ १७ ॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।० ॥ १८ ॥
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न । ॥ १९ ॥
तमिदं निर्गतं सहः स एष एकं एकवृत्तं पुनः ।० ॥ २० ॥
सर्वे अस्मिन् देवा एकवृत्तो भवन्ति ।० ॥ २१ ॥ (१६)

(६)

(३) प्रक्षं च तर्पस्य कीर्तिश्च यशस्यार्म्मभ्य नमस्य प्राज्ञानवर्षस्य चार्म्यं चाभार्यं च ॥ २२ ॥
मूर्तं च मर्त्यं च भद्रा च रुचिश्च स्वर्मश्च स्वधा च ॥ २३ ॥
य एत देवमेकवृत्तं वेदं ॥ २४ ॥
स एव मृत्युः सोऽमृत्युः सोऽमृत्यं १ सरथः ॥ २५ ॥
स कुत्रो वेत्सुबानिर्वसुदये नमोवाके वपदकारोऽनु सवित्रः ॥ २६ ॥
तस्येमे सर्वे आतन उपं प्रक्षिपमासते ॥ २७ ॥
तस्यासू सर्वा नर्यत्रा वधे चन्द्रमसा सह ॥ २८ ॥ (१७)

वर्ष—[१] [या एतं देवं एकवृत्तं वेदं] जो इस देवको एकमात्र एक जानता है उसे कीर्ति वरा, [वर्मः] वर, [नमः] नमस्कार और (प्राज्ञानवर्षः) प्राज्ञतेज अक्ष और (अक्षः) साक्षात्पक्ष के सब भोग प्राप्त होते हैं । १४-१५ ॥ वह द्वितीय तृतीय चतुर्थ पंचम षष्ठ सप्तम अष्टम नवम दशम है (य अवि उच्यते) ऐसा नहीं कहा जाता है ॥ १५-१८ ॥
[स सर्वस्मै विपश्यति य ए प्राणति य ए न] वह सबको देखता है जो जीवित है और जो नहीं ॥ १९ ॥
[तं हरे] वह वह हृदया हुआ सामर्थ्य है वह एक है एकमात्र व्यापक देव केवल एकही है । वे सब देव इसमें एक रूप होते हैं ॥ २-२१ ॥

(३) (प्रक्ष) क्षात्र तप कीर्ति वरा (वंशः वंशः) अक्ष अक्षकाक्ष प्राज्ञतेज अक्ष और साक्षात्पक्ष के वराय भूत भविष्य भद्रा (रुचि) तेज, कण्ठि स्वर्ग और रक्षा उसे प्राप्त होती है जो (य एत एत एकवृत्तं वेदं) इस देवको एक मात्र व्यापक देव जानता है । २२-२४ ॥ (१६)

वही मृत्यु है वही अमृत्यु है वह (अमृत्यं) महाबुद्धि और वही (रथः) रथक व्यापक राक्षस है ॥ २५ ॥ वह कुत्र (वसुदेवे वसुधायिः) कसो वाके वसुधैव कुटुम्बकः) पञ्चदशके समस्त जगत् प्राप्त करनेवाला है और वही वमरश्चर पक्षी उत्तम शक्तिसे बोका गया वपदकार है ॥ २६ ॥ [तस्य वक्षिष इमे सर्वे पातयः उप आधाय] उसकी आज्ञासे वे सब राक्षस घेरि रहते हैं ॥ २७ ॥ (तस्य वधे चन्द्रमसा वधया चन्द्रमसा सह) उसके वधमें वे सब अक्षम चन्द्रमाके साथ रहते हैं ॥ २८ ॥ (१७)

(७)

(४) स वा अहोऽजायत तस्मादहरजायत	॥ २९ ॥
स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत	॥ ३० ॥
स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत	॥ ३१ ॥
स वै धापोरजायत तस्माद् धायोरजायत	॥ ३२ ॥
स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरप्यजायत	॥ ३३ ॥
स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिक्षोऽजायन्त	॥ ३४ ॥
स वै भूमिरजायत तस्माद् भूमिरजायत	॥ ३५ ॥
स वा अपेरजायत तस्मादधिरजायत	॥ ३६ ॥
स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त	॥ ३७ ॥
स वा अग्भ्योऽजायत तस्मादग्घोऽजायन्त	॥ ३८ ॥
स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत	॥ ३९ ॥
स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम्	॥ ४० ॥
स स्तेनमति स वि धौतते स तु अश्मानमस्यति	॥ ४१ ॥
पापार्य वा भद्रार्य वा पुष्कामासुराय वा	॥ ४२ ॥
यद्वा कृमोभ्योर्पक्षीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा अन्यमवींशुषः	॥ ४३ ॥
तावांस्ते मघवन् मग्निमोषो ते तुन्वः क्षुतम्	॥ ४४ ॥
उषो ते पश्ये यद्वाग्निं यदि वासि न्यार्जुदम्	॥ ४५ ॥ (१८)

अर्थ—(४) (स वै अहः रात्र्याः अन्तरिक्षात् वाको दिवा दिग्भ्यः भूमेः, अग्नेः, अद्भ्यः आग्नाः, यज्ञः अजायत) वह निश्चयसे दिन रात्रि अन्तरिक्ष वायु द्युदिवसा भूमि अग्नि अह अथा यज्ञसे हुआ वैशाही (तस्मै नमः) रात्रेः अन्तरिक्षं वायु द्यौः दिवाः भूमिः अग्निः अथा अह यज्ञः (अजायत) उग्रसे दिन रात्री अन्तरिक्षं वायु द्युदिवसा भूमि अग्नि यज्ञ अथा आह यज्ञ हुआ ॥ २९ ३२ ॥

(वा यज्ञः तस्य यज्ञः) वह यज्ञ है उगीय यज्ञ है । (या यज्ञस्य शिरस्कृतम्) वह यज्ञका शिर करनेवाला है ॥ ४० ॥ (स स्तेनमति स वि धौतते) वह चोरता है वह चमकता है (सः तु अश्मानमस्यति) वह पत्थर (कोई) टुकड़ा है ॥ ४१ ॥ (पापार्य वा भद्रार्य वा पुष्काम वा असुराय वा) पापीके विद्वत् वक्ता पुष्कसे विद्वत् वक्ता पुष्कसे विद्वत् ॥ ४२ ॥ (यद्वा कृमोभ्यः कृमोनि यद्वा वर्षसि) जो जोषधियों मिश्रित कराता है जो वर्ष कराता है (यद्वा वर्षसि यद्वा वर्षसि) वक्ता कर्मकाय पुत्रिके जो तू अग्नि हूय को कराता है ॥ ४३ ॥ (यद्वा कृमोभ्यः कृमोनि) (पापार्य वा भद्रार्य) वह ठेरा मरिजा है (यद्वा वर्षसि यद्वा वर्षसि) ये वक्ता को सेकरो घरीर है ॥ ४४ ॥ [यद्वा कृमोभ्यः कृमोनि] ये वक्ता को सेकरो करे पापार्य हैं, [यदि वासि न्यार्जुदम्] और तु आगोही संस्कार है ॥ ४५ ॥ [१८]

(८)

(५) भूयानिन्द्रो नमुराव् भूयानिन्द्रासि मृत्युर्म्यः ॥ ४६ ॥
भूयानरोत्याः शम्पाः पतिस्त्वमिन्द्रासि बिभूः प्रमूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ४७ ॥
नर्मस्ते अस्तु पश्यतु पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥
अन्नाद्येन यज्ञसा तेजसा ब्राह्मणवर्षसेन ॥ ४९ ॥
अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥ ५० ॥
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥ ५१ ० (१९)

(९)

(६) उरुः पृथुः सुमूर्ध्व इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥ ५२ ॥
प्रथो वरो व्यथो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ॥ ५३ ॥
मर्वदसुरिवदसुः सुयदसुरायदसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५४ ॥
नर्मस्ते अस्तु पश्यतु पश्य मा पश्यत ॥ ५५ ॥
अन्नाद्येन यज्ञसा तेजसा ब्राह्मणवर्षसेन ॥ ५६ ॥ (२०)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

॥ त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

अर्थ- [५] [नमुराव् भूयान् भूयान्] अमरसे भी इन्द्र वहा है [इन्द्र मृत्युर्म्यः भूयान् भवि] हे इन्द्र वृ
मृत्युर्म्योसे भी वहा है ॥ ४६ ॥ [इन्द्रं भवत्या भूयान्] हे प्रभो ! सारथीसे भी वृ वहा है [त्वं शम्पाः पतिः
बिभूः] तू छत्रिका स्वामी है । [बिभूः प्रमूः इति । वा । वयं उपास्महे] तू व्यापक और स्वामी है, ऐसी हम तेरी उपा-
सना करते हैं ॥ ४७ ॥

[पश्यतु वयस्ते अस्तु] हे इक्ष्मीय वरे किये बमरकार है । [पश्यत मा पश्यत] हे सोम ! तू मुख देख ॥ ४८ ॥
[अन्नाद्येन यज्ञसा तेजसा ब्राह्मणवर्षसेन] ज्ञानपात्र वज्र तेज और ब्राह्मणवर्षसेने छात्र मुखे प्रवेश कर ॥ ४९ ॥ [अम्भो
अमो महः सह] इति वयं त्वा उपास्महे] अक्ष वीर्य महता और वक्ष वरकन तेरी हम उपासना करते हैं ॥ ५० ॥
[अम्भो अरुणं रजतं रजः सह] इति त्वा वयं उपास्महे] अक्ष त्वयं वक्ष और वक्ष त्वामर्षकन तेरी हम उपासना
करते हैं ॥ ५१ ॥ [१९]

[६] [उरुः पृथुः सुमूर्ध्व इति त्वा वयं उपास्महे] महान् विरगुल उद्यम होयेवाला ज्ञानपुण्ड्र जमी तरी हम
उपासना करते हैं ॥ ५२ ॥

[प्रथो वरो व्यथो लोक] इति त्वा वयं उपास्महे] विरगुल कोष्ठ, स्वातक और स्वामिपुण्ड्र गृही तरी हम उपासना
करते हैं ॥ ५३ ॥ [मर्वदसुः सुयदसुः आयदसुः] इति त्वा वयं उपास्महे] पर्वदसु, दसु वयसे पुच्छ घब धनोको
हृष्टा करनेवाला वय धनोको वास करनेवाला ज्ञानकर तरी हम उपासना कर रहे हैं ॥ ५४ ॥ [पश्यतु वयः अस्तु]
हे इक्ष्मीय ! हेरे किये बमरकार हो [मा पश्यतु] मुख देख ॥ ५५ ॥ [अन्नाद्येन] ज्ञानपात्र वज्र तेज और ब्राह्मणवर्षसे
मुख पुच्छ कर ॥ ५६ ॥ [२०]

पावार्थ—वही सव पाता बिचारा अणि बाबु रर महादेव आदि हे । सव अण वेवदा इचके अरर हे । नह इच हे, सि सम्भेह केवल एक है । जो इसको एक जानता है वही पैरसी, बररसी और आबपन्नादि मोघहे मुछ होता है । उछेकेल जल हूए है और सव पराबोमें वही बिचमान है । नह भी उछासे मुछा और नहमें वही रहता है । नह घुरे और अछे कल्ले किए सव वनस्पतिवा बनता है । वही सव इचके हैं । महिमा है इसके सेकड़ों हजारों करोड़ों बरबों सरीर हैं । नह अररेमें जो सूर्यवे की महाम है । सव सकिना उछा में हैं, अतः सकिनीं उचदिगति उचमें है ऐसी उपासना उछे देवकी तबसे अण सचिव है ॥ १-५६ ॥

उरहनी अण्ड समाप्य ।

अथर्ववेदके तेरहवें काण्डका मनन ।

रोहित देवता ।

अथर्ववेदके तेरहवें काण्डका देवता रोहित है, इस रोहित का स्वरूप क्या है, इसका सबसे प्रथम प्रश्न करना आवश्यक है । इस देवताके विषयके अथर्ववेदकी सर्वोत्कृष्टतमी में ये निर्देश हैं—

उदेहि वासिष्ठि कलत्र मध्याभ्यासं रोहिताग्निजदेवस्य अष्टमम् ॥ अथर्व ह अ १११

इस तेरहवें काण्डका देवता मध्य अथास्य रोहित आदिग है । " वहां आदिग अण्ड है कि जो देवताका विषय अमें कहावक हो जाता है । आदिगका अर्थ सूर्य है । इस अण्वे काण्डका विचार करनेसे पता लगता है कि वहां सूर्य ही ऐसा प्रासुक्तके वर्णित हुई है । इस विषयके सूक्त संज्ञाभाष्य में हैं—

रोहित सूर्य ।

अनुमता रोहिणी रोहितस्य । १।१५

हर्षं ह्यदो रोहिणी रोहितस्य । १।१६

रोहिणी वज्र नह रोहितका घर है और नह रोहिणी रोहित का अनुकरणी है । " वहां आकाशत्व रोहितका वर्णन है अतः नह सूर्यपरक है । द्वितीय सूक्तके १५ मंत्र आकाश सूर्यपरक है और १५ वें मंत्रमें नह वज्रली रोहित अनुकोनर वज्र है ऐसा कहा है अतः वहां रोहित अण्ड सूर्यगुहा सूर्यके किने ही है ।

रोहितः काको अमयम् । १।१७

वहां रोहित अण्ड अर्थात् समग्र है ऐसा कहा है । सूर्यके अण्ड होता है नह प्रसङ्ग अनुमय है क्योंकि निरन्तर चलीने हाते हैं और अण्ड सूर्यका नाम काण्ड आता है । आने

रोहितो वज्राणां सूक्तम् । १।१८

रोहित वज्रोघ्न सूक्त है । ऐसा कहा है नह सूर्य ही है क्योंकि धूर्नेव्य हातेसे वज्रका प्रारंभ होता है । आने—

रोहितोऽन्यत्पदिषम् ॥ १।१९

"रोहित सूर्यकोनर तपता है । नह वर्णन सूर्यका स्पष्ट ही है । और इसमें तपनेका उल्लेख सूर्यका ही है क्योंकि सूर्य आदिगिक्त तपनेका दुसरा कोई पैरसी नहाने इस अण्ड में नहीं है । आने पृथीय सूक्तके अन्तिम मंत्रमें—

कृष्णायाः पुत्रो बर्हृणो रात्या वसोऽजावत ।

स इ आसि रोहि विदो ओह रोहित ॥ (१।१९)

'कृष्ण वर्णशो रश्मिः पुत्र शेष रगवाक्यं ब्रूया । नह रोहित वडता मुक्ता द्रुमुकोपर नडा ।' इस वर्णन में तो स्पष्टही रोहित नाम सूर्यके लिये आया है । रश्मीश पुत्र सूर्य निःस्पन्द है क्योंकि रश्मिके उद्गममें वह कम्पता है ऐसा आन्ध्रकार वर्णन अश्विन वेदमें भी है ।

इस तरह इस सूक्तमें रोहित सप्तरश्मि सूर्यका वर्णन सूक्तवचना है ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है । तथापि अतिशय भी निर्देष्टा यह रोहित सूक्तमें है-

राहित-अग्नि ।

रोहितो अक्षय्य अग्निता । (११११)

रोहित वक्ष्य उत्पत्त्यक है । अग्नि ही वक्ष्य उत्पत्त्यक है यह बात सिद्ध करनेके लिए अश्विन प्रमाण देनेकी आवश्यकता पड़ी है । यद्यपि सूर्योदयके पश्चात् वक्ष्य होते हैं इच्छिष्ट सूर्य भी वक्ष्य उत्पत्त्यक माना जा सकता है और वैद्य यह है की, परंतु काण्डाल्य अग्निमें आहुतिर्वा होनी जाती है इस कारण अग्नि ही वक्ष्य उत्पत्त्यक है । वही बात अश्विन सूक्तमें भी पड़ी है-

रोहितो यजं अक्षय्यत्वात् । (१११४)

रोहित वक्ष्यो बनता है । वह अग्नि है इसलिये वक्ष्यो बना सकता है । अस्तु । इस तरह रोहित नाम अग्निका भी है । अर्थात् रोहित सप्तरश्मि द्वारा वैद्य अग्निही वैद्य सूर्यकी भी कल्पना इस सूक्तमें स्पष्ट है । कोई इसका इन्कार कर नहीं सकता । इस सूक्तों के मंत्र देखनेसे कई मंत्र स्पष्ट सूर्योत्पत्त्यक हैं ऐसा सीधता है । कई अग्निोत्पत्त्यक हैं यह बात भी स्पष्ट है । कई ऐत्योंके वचनोत्पत्त्यक हो सकते हैं । यह क्या बात है । मूक पठते पठते बीच बीचमें आत्मिक क्षीर सूर्यके मंत्र मिलतुल्य आते हैं यह बात कहनेवालेके म्याममें जा सकती है । ऐसा क्यों है इसका विचार करना आवश्यक है ।

वेदमें अश्विन पशुपौत्र सूक्त पत्र सूत्र माना है । अग्नी पुष्पीर जो अग्नि है वह सूर्यका पोता है । विद्वत् सूक्त पुत्र ह और विद्वत्पुत्र पुत्र अग्नि है अतः आन्ध्रकार प्राकर्म सूर्यका पोता अग्नि हुआ । अग्नि देता उत्पन्न होता है यह मंत्र नहीं हो सकता है । इसके उत्तरमें निर्देष्टा है कि सूर्यकी उत्पत्त्याके मन्त्रमध्यमें विद्वत्पुत्र बनतो है वह विद्वत्पुत्र सूक्त पत्र अक्षिर पिरकर अश्वय उत्पन्न पिरकर अग्नि उत्पन्न होता है । अतः वह अग्नि कारणविक सूक्त ही अक्ष है । वस्तुतः विचार किया जाय तो यह बात स्पष्ट सिद्ध होती, कि इस पुष्पीर सूक्तका इस सूर्योत्पत्त्या में जो भी कुछ आत्मतत्त्व अश्वय उत्पन्न पशुपत्र देता उत्पत्त्या उत्पन्न करनेवाला पशुपत्र है, वह सूर्यके ही मंत्रके कारण ही उत्पत्त्या करनेसे समर्थ है । आत्म सूर्यके उत्पन्न हुआ वह बात इसके पूर्व दर्शाई ही है । अब पाठक लक्ष्मीका विचार करें । लक्ष्मी अश्विनके उत्पत्त्या उत्पन्न होती है, वह उत्पत्त्या कहाने आसनी । जो उत्पत्त्या इस सूक्तमें प्रकाश करके अश्विनमें अक्षरित करत है वही लक्ष्मी होती है और अश्विनके वही प्रकट होती है । वस्तुतः यह सूर्यके आनी उत्पत्त्या ही है । इसी तरह लक्ष्मीका अश्वय का भूमिके अक्षर विलम्बका अश्वय सिद्धि का ठेक अग्नि का जो पशुपत्र उत्पत्त्या उत्पन्न करनेवाला करके प्रकट है वही सूर्यके सप्त उत्पत्त्या सूर्यके अक्ष होता है । यह सूर्यके अश्वय अश्वय पशुपत्र ही है जो उत्पत्त्या व अक्ष । अतः सप्त आत्मव पशुपत्र सूर्यके ही विनिर्णय करत है ।

तान अग्नि ।

पुष्पीर अग्नि अश्विनके विद्वत्पुत्र, पुनीकमें सूर्य के तीव्र आत्म है । वरमें तीव्र अग्निवा वचन अश्विन पर आया है वे तीव्र अश्विन व है । परंतु वे तीव्र अग्नि भिन्न भिन्न नहीं है । वे एक एक ही अश्विन रूप हैं और वह एक अश्विन सूर्य ही है । वरोंके सूर्य ही काण्डाल्य ही वर आत्म वने है । अतः कहा है-

स एति अग्निता । सो अग्निः । अ इन्द्रः । [४११-५]

" यह सूर्य ही अग्नि और इन्द्र अश्वय विद्वत्पुत्र है । " क्योंकि सूर्य ही काण्डाल्य है वर अश्विन और विद्वत्पुत्र बना है । इस पशुपत्र ही वक्ष्य अश्विन अनुभवमें आत है वक्ष्य वे अश्विन नहीं है । वही सूर्य तीव्र अश्विन दिखाई देता है ।

जब पुस्तकमें आठ वषडा बालक प्रविष्ट होता है तब उसको उष्माके पश्चात् अग्निमें दहन करेता । अग्निमें होता है । उस समय वह समझता है कि अपना उपास्य देव अग्नि है । वह अग्निमयि से अग्निभी उपासना करता है और अग्निमें जोत्ता है कि क्या वह अग्निदेव स्वर्ग है ? विचार करते करते उसके मनमें दृष्टिक्रममें आराधनार्थकमें अग्निदेवकी विद्वत्ता आती है, किसी समय वह विद्वत्त्व किसी वृक्षपर विरती है । वह समय वह वृक्ष जानता है । इस पक्षमें उस उस क्षिप्त को समझता है कि अपना अग्नि विद्वत्त्व से इसी प्रकार इस पूर्णपर अग्नि-न हुआ । परापूर्व वह विद्वत्त्व को महादेव मानता है, परंतु नीचे अग्नि विचार करदेपर जो पता लगता है कि वह विद्वत्त्व भी सूर्यसे ही उत्पन्न हुई है । अतः वह उस समय सूर्यसे ही महादेव जानता है । उस समय वह कहता है—

स एषि सविता स्वर्णिवापुके ।
स ताता स विषतां स वायुः ।
स वसन्तः स क्रतुः स महादेवः ।
सो अग्निः स त सूर्यः स त महायमः । (४१—५)

वही सविता ताता विषता वायु वसन्त क्र महादेव अग्नि सूर्य और महायम है । इस तरह इस सूत्रमधिकृत कर्ता कर्ता अभिप्रायता नहीं सूर्य है, इसका एक मात्र आधार वह सूर्य है, वह ज्ञान उस क्षिप्तको होता है । इस समय वह अपनी पूर्वोक्त व्यवधानोंसे ही करता है—

कस्मिन्सूर्योन्मं समो देवस्य धीमहि ।
विष्णो नो नः प्रचोदयात् ॥

इस पुस्तकका कार्य इस समय वह ऐसा करता है कि हम उस सूर्यसे दृष्टिको उरवाह देवेनासे तेजस्य भव करते हैं । ऐसा भाव करता हुआ वह सूर्यको अपने मन्त्रनैवैद्यक मार्गसे मानता है । अग्नीषोरास्वाका वह कर्म मानता है । अपने मन्त्रनैवैद्यक प्रतिक्रम सूर्यमें वह देखता है । आदित्य मन्त्रकारः होकेभी अग्नि देव वारण करता है । वह विचार करता है कि यदि सभी सूर्यमधिकृत इस सूर्यसे ही बने है तो इस पूर्णपरके सभी जीवजन्तु और बर्तते से स्वयं भी सब निकल रही सूर्यसे जंत है । सूर्यसे निकल कोई पदार्थ नहीं अतः देव कहता है कि—

योऽष्टाशमित्ये द्रुक्वा सोऽस्मात्तदमु ॥ वा ४ ११५

जो सूर्यके अंदर द्रुक् है वह मैं हूँ । " सूर्यके अन्त में द्रुक् अग्नि संभव है । सूर्य में। विता है और मैं द्रुक् अमृतपुत्र हूँ । जो इस आदित्यमें उत्पन्न है वही सूर्यमें है । मेरी परम वरि आदित्य है और मेरा प्रारंभनी अदित्यसेही हुआ है । मैं इसी अदित्यसे जन्मा हूँ । इसी आदित्यकी कक्षिसे जीवित हूँ और अन्तमें मैं अदित्यमेंही निकल आऊंगा ।

वरो वा इमामि मृतानि आचन्ते देव आशानि जीवन्ति ।
यं प्रचक्ष्वादिषदिकानि उद्धिजिज्ञासत्क उद्धोति ॥ वे ४ ११६

निकले वे सब मृत जानका होते हैं । होकेपर निकले जीवित रहते हैं । फिर आकर अन्तमें जिसमें निकले हैं वह मरते हैं । वह मरका कक्षक वह क्षिप्त इस समय सूर्यमें कार्य हुआ अनुभव करता है क्योंकि इस मृतमात्र सूर्यसे उत्पन्न हुए, सूर्य को जाते हैं और अन्तमें सूर्यमेंही निकल जाते हैं । वह अनुभव स्पष्टरुपा बर्णित है कि सूर्यही हमारे लिए साक्षात् मर है । इस उर विचार करता हुआ वह अग्निदेव सूर्यसेही अपना उपास्य मानता है । इस समय उसके सम्मुख है वाचन जाते हैं—

एतद्वै मरु दीप्यते महादित्यो दग्धते । की ४ १ १२
आदित्यो मरुदग्धते ॥ की ४ १११३
आदित्य मरुदुपासते । की ४ १११४
स व पयमेवं विज्ञानादित्यं मरुदुपासते ॥ की ४ १११५

बधाय पुनः यथासाधारित्य स एकः प्रत्यु त १८११, ११ १२

यथायं हृदये यथासाधारित्य स एकः । मे उ ११३ ७१०

आदित्यो मया ॥ मे उ ११३

मया समतः परमपरममृगमिच्छादित्ये विमाति ॥ मे उ ११३

य एव आदित्ये पुनः स परमेष्ठी आत्मा ॥ महावि उ १११

आदित्य पुनः परमवाह मद्योपाधे । वृ. उ १११२ १११२

आदिआत्मा मया । मे उ ११३

आदित्यवत्समूर्तस्वन्तं मया । मे उ ११३

आ यह सूर्य दीप्तिता है वही मया प्रकाशता है। आदित्य मया है वह आदि है। आदित्य मया है एही उपासना करता है। जो मनुष्यमें है और जो आदित्यमें है वह एकही है। जो हृदयमें है और जो आदित्यमें है वह एकही है। यह आदि-एही मया है। अथकारके परे रहस्यवाक्य यह आदित्य है जयमें मया प्रकाशता है। इस आदित्यमें जो पुनः है वही परमेश्वर आत्मा है। इस आदित्यमें जो पुनः है वह मया है ऐही में उपासना करता है। आदित्यका आत्मा करता है। मया तत्रस्थी है और सूर्यक ईश्वर है।

इस प्रकार अनेक वाक्य हैं जो सूर्यको मया कहते हैं। वे वाक्य इस समय इस महाकाण्डके सम्मुख आते हैं और यह आदित्य को मया मानकर उसकी उपासना करता है। जो मयाकारी अग्नि की उपासना करता था वही उस आदिके अन्तर्गत विदुष को उपासना करने लगा था वही अब सूर्य को अपना आरक्ष उपास्य मानता है। सूर्यको कर्ता पति मानता है, वही सब ऐश्वर्यका केन्द्र है वही सबका पारक और आकर्षक है सबको आधीन रखनेवाला वही एक देव है। जो सब सूर्यमात्रके मही और उपमहीको मान करता है वह उस सूर्यमात्रके अन्तर्गत पराधीनत्वको मान करता है उसके देव होनेमें क्या संदेह है संशय है। अत एव अत्यभिप्रेति में कहा है कि—

स भामा च विभवा । अथर्व १३। ७१०

वही सविता धारण करेवाला और विभेय प्रियते आधार होवाला है। पुरोख उपनिषद्ग्रन्थों में 'इस आदित्यमें मया है' एव वचन आया है। इससे अविनाशक यह और जलमें विराजमान मया है वह कण्ठका अन्तर्गत है। माना वही सूर्य ही प्रथमान आधार मया है वह है और जलमें व्यापकत्व मया है। किन्तु मनुष्य में वह और आत्मा है वैवाही सूर्यमें वह और परमा मा है। अतः सूर्यमें जो पुनः है वह मैं हूँ। इस वचन का अन्वय सूर्य में जो मया और पोलक है सबका ईश्वर मया आत्मा मया है वह है एव ही मया है। जो कुछ इस पृथ्वीपर बना है वह सबके अन्तर्गत बना है वह एकपर मान लिया जाय तो सभी पराधीन पारिध और अपारिध वस्तु जो भी इस भूमिपर है वह सूर्यके मनी है वह विद्य होता है।

पुरोख प्रकार यह मयाकारी अपने मया इस वाक्यों की संगति लगाता है। यह विचार करता है कि—

स एव एक एकद्विदेव एव ।

मर्षे आदिमन्त्रका एकद्विती अथर्व १३। ७१०

यह एक है एकाग्र एक है सब देव इतने एकद्विदेव होते हैं। जो आदि विदुष आदि विभिन्न देव हैं वे सब इस सूर्यदेवमें एकद्विदेव की आते हैं। एव स्थानमें बताया है कि अग्नि विदुषदेव जिन्हा रहना है और वही मयाके विदुष की सूर्यमें एक होकर रहने हैं। अर्थात् सूर्यमें विदुष आदि आत्मा एकद्विदेव होकर रहने हैं इही तरह वह पृथ्वी भी एक समक मूकद्विती था। व व वह पृथ्वी सूर्यका एक भाग थी ता सब पृथ्वीपरक सभी वस्तु सूर्य में व इतने परह हो गयी सगता ।

इस आदिमन्त्र कथिते नका अन्वय मया कर करक यह मयाकारी अथर्व १३ और विचार करना है अनुभव मया है अन्त मयकी यह सगता है वस्तुता करता है और अन्त मया मया मया और विभिन्न करक मया करता है निरार व मया है कि—

मधूमिदि लोपास्यते वयम् ।

मह इति लोपास्यते वयम् ।

सुधुर्मुच इति लोपास्यते वयम् ।

कोक इति लोपास्यते वयम् ३ अ १३/४ ९ संज्ञ ३७-५३

‘ ९ प्रमु है, ए मशहं ह ए कतम सत आर क्तमते मुच हे और सुदी सबको स्थाव देता है एही हय सब निम्न ठेरी बपावना करते हैं । ’ (एवं वा उपास्यते) हम सब ठेरी उपासना करते हैं इस प्रयोगमें सब निम्नकर उपास्यते, एवं द्वारा होववाही वह उपासना है कसब व्यक्तिद्वारा होवेवासी वह उपासना यही है । वह सब ब्रह्मवादी मन्त्रोंक प्रमुखमन्त्रों हो अथवा प्राम वा पतनवाच्योका हो । इससे कोई विचारमें भिन्नता नहीं हो सकती । पूर्व ही सब पूर्वमाच्योका कर्त्तव्य मन्त्र मात्रक प्रमु और कर्त्तव्यता है वही एवसे सहज है वही सबको ज्ञान देनेवाला है और वही सबका कतम रीतिसे निम्न करे वाला है वह विरहित है । ये और मात्र ५३से ५९ तक के ११ मात्र हम यंत्रोंमें लोकोपास्यते मुच वयम् किने हैं वे उपास्यक क समन पूर्वमें केके कटोरे हैं इसीका विचार उपास्यक करते हैं । और अपने उपास्य की कति अपने में नारन करनेक करतें हैं । केका मेरा उपास्य देव है केका में देवकी और कर्त्तव्यता वन्द्य वही आकांक्षा उपास्यकोई करा राती है और कसत किए पालनेक चक्रक भी होती है ।

स स्वतन्त्रति स विद्योतते स क अस्माकमस्वति ।

पापाय वा भद्राय वा पुत्रायवाधुराय वा ३ १३/१३४ - ५२

वह हमारा उपास्य देव पुत्रायता मनुष्य और पापी राक्षसके किए समावतवा पकटा चमकता कर केके कर्त्तव्य कार बुद्धि करता है । वह किसीका पक्षपात नहीं करता कसका प्रकाश सबके किए समाव रीतिसे आता है वह पुत्रायते किने प्रकाशता है और पापीके किए नहीं, देवी वात नहीं । वह सबको ही अपने प्रकाशसे मार्ग देता है । एवं वह मंत्रायना देवकर उपास्यक भी कहक कसता है कि मैं भी सब मनुष्यमात्रकी और सबका मान्यमानकी और सबका अपने अपनी छवि रखना किसीका पक्षपात नहीं करूंगा । ब्रह्मक कृतिव वैद्यक हार विचार अत्यन्त चरितक अन्वि सबकी उत्पत्तिक समनसे कर्त्तवा । मेरा उपास्य सब देव है वह सबका प्रकाश सबको देता है वही मेरा कर्त्तव्य वसता है अतः मैं जो देवकी कर्त्तवा । समभाव रखनाही मेरा कर्त्तव्य है । सामाजिक आचरणमें भिन्नता नहीं रखनी चाहिए । वह उपास्यक कर्त्तव्य उपासना है सब कामें और समन्वित होकर उपासना करें । निम्नकर उस उपास्य पूर्वदेवक प्रकाश पद कसता है व सब लोकाभ्यामें समन्वित हो कसते हैं ।

सब कोमेंको तथा सब कसको कोमेंको इयाकर प्रकाशमें काकेके किए रात्रि और दिनके सुभमें इस सुदेवक कसत होता है । प्रत्येक सुभमें इस तरह इस देवका अवतार हो रहा है । और वह वही आकर हमें प्रकाशक मार्ग बतकर रख । बतार करता है । यदि वह देव इस तरह पुनपुनमें न आये तो सब कसक अंधिरमें रहेगा और जनमानसी किसीकी भी होगी । हम सबका जीवन उसीके प्रकाशके प्राप्त कर्त्तव्य है । अहा ! हमारे जीवनक आचार वह देव है । इसीके चरित्र स्थित कसका जीवन हो रहा है, इस तरह इस कसक अनुसृत सबके प्राप्त कर्त्तव्य है । इस समय उपास्यके कसने व संज्ञ आते हैं—

उपास्यदेवता	रात्रिआवत	कसतिप्रकाशक	.. वायु
रजावत	चौरआवत	सिंहोऽभावत	.. भूमिरआवत
अधिरआवत	.. आपोऽभावत	अथोऽभावत	वहोऽभावत ..

अ १३/१९ ११

इसी सर्व देवसे दिनक रात्रि कसतिप्रकाश वायु की विद्या मुक्ति जति कस मन्त्र और वह होवने हैं । ” कने ए व होता तो हममेंसे कुछ भी न बपना हमका कर्त्तव्यता वही हमारा उपास्य देव है ।

वाचांस्ते मयवन् मक्षिमोपो स तन्वा सतम् ।

वसि वासि मयवन् ॥ अ० १३।०।४४-४५

५ हे ऐश्वर्यवान् प्रभो ! यह अद्भुत तेरा महिमा है, ये सब देवताएँ (हजारों झलों की तरह) आसानी से तूने जो बनवा कर रखे हैं, ये सब तेरे ही हैं । " ताराव तूही इस विपद्ग्रस्त अपने आपसे बाधता है क्योंकि भूमिमी तेरे ही बनी और भूमिसे सब पदार्थ बने हैं । अतः तुझसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है । यह देव एकमात्र अकेला एक है

न द्वितीयो न तृतीयस्तुतर्वा माप्युच्यते ।

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।

आष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ अ० १३।५।१९-२८

यह एक है दूसरा तीसरा चौथा पाँचवाँ छठा सातवाँ आठवाँ नववाँ दसवाँ यह नहीं है । क्योंकि यह एकमात्र अकेला एक है । सर्वमात्मनै सर्वथा बही स्थान है वही महत्त्व है और वही वैभव तथा ऐश्वर्य है । तथा—

स एव मृत्युः सोऽमृत्यो सोऽमृत्यो स एव सः ।

स एव सः स एव सः स एव सः ॥

तस्मैमे सर्वं ध्यायन् यः प्रक्षिपमासते ।

तस्मान् सर्वं ब्रह्म ब्रह्मे ब्रह्ममता सह ॥ अ० १३।६।२५-२८

' वही मृत्यु है वही अमृत है वही ब्रह्म देव है और वही एक अथवा एतत्त्व है । वही सत्य है । सब के पतने-पके प्राक्कृतप्रतिष्ठा, तथा सब सत्त्व और अज्ञान भी वहीही आकाशमें रहते हैं । " क्योंकि सर्वेष्ट आकाशमें वे सब प्रह हैं जो सर्वमात्मनै विपद्यते हैं । सर्वेष्ट आकाशका प्रभाव हम सबपर ॥ रहा है । ऐसा यह महान् सर्वदेव सबको अमरपन देनेवाला है और सबको मृत्यु देनेवाला भी वही है । वही सत्य है वही एकत्व है और परमेश्वर भी है । अर्थात् वही सब कुछ है ।

सर्वेष्ट न होनेसे अपना सर्वेष्ट अविद्यापणे स्मृत होता है तथा सर्वेष्ट प्रपन्न जीवन देता है इत्यर्थे वही अमरत्व देने-वाला है । इसलिए इसी एक देवकी वे सब नाम कहते हैं । इस समस्तक इसके नाम अमृत एतत्त्व, सत्यः सत्यः सत्यः हैं इन नामोंके अतिरिक्त हम सबमें आने नाम सब देखिए—

स एव सविता महेश्वर स एव सः सविता ।

स एव सः सोऽमृत्यो स एव सः सः स एव सः ।

सोऽमृत्यो स एव सः स एव सः स एव सः । अ० १३।७।१-५

यह सविता महेश्वर वाता विभर्ता वायु सर्वेश्वर, ब्रह्म सत्य, महादेव अथवा सब महादेव है । ' इस सर्वेष्ट के नाम हैं तथा—

इन्द्रः स एव सः सविता—विभर्ता प्रभुः ॥ अ० १३।८।४६-४७

इन्द्र, सानीपति विभु प्रभु भी वही है । " ये सर्व नामें उन्हीं देवके वाचक हैं । अर्थात् वे सब नाम उन्हींके गुणवर्णन कर रहे हैं । यदि यह सत्य है तो इन देवताओंके जो भक्त हैं वे सब भक्त इसी सर्वदेवताका वचन करते हैं ऐसा मानना चाहिए । सभी तीनों देवके नाम साथ सम्भवक और योग्य हो सकते हैं । इसी सम्भवक कथाश्रुत के मर्ममें आते ही यह हम सब मंत्रोंके इसप्रकार देखता है और अपने उद्देश्य देवका माहात्म्य जानता है और उसको मर्ममें ग्राह्य करता है ।

स एव सविता सविता सविता सविता सविता ।

सविता सविता सविता सविता सविता ।

स एव सः स एव सः स एव सः स एव सः ।

अ० १३।९।१, २, ३

वह द्युलोक के पीठपर प्रकटता है उसके किरणोंसे आकाश भर गया है वह सब प्रजाओंके विषेन रीतिसे देखता है। वह सब वर्णन उपासक को मनन करा है। सूर्य आकाशमें प्रकटता है उसके किरणोंसे आकाश भर गया है वह सबके देखने पर वह सब सूर्यके विषय में प्रतिबिम्ब मनुष्यको प्रत्यक्ष हो रहा है। इस तरह अपने उपासक देवर्षि महिमा उपासक मानता है और उसके निबन्धमें अपने मनका आधार बनाता है।

इस कथनके पहिले टीका सुनना सूर्यके भाषकही हैं। इनमें प्रमुखाता को मंत्र सूर्यका वर्णन करते हैं और जो शिष्य ब्रह्मचारिकोंके समुदाय सूर्यका ज्ञान करते समन करते हैं, उनका ज्ञान मनन करते हैं।

उद्देशि नास्मिन् । १३११४

“ हे ब्रह्मान् सूर्यदेव ! उदयको प्राप्त हो । वह मार्गका सूर्य को उदय करके ही है । इसके साथ देखने योग्य बनने हैं—

सूर्यस्वाहा इत्यः केतुमन्वाः सदा ब्रह्मन्वसुता सुख रवम् ।

दृष्टवाभा रोहिणो आकाशमो दिवं देवः दृष्टवीमा विवेक

॥२५॥

अर्धसर्वं देव सूर्यं सप्तमावस ये अहि

॥२६॥

ये देवा रात्र्युतोऽमितो नास्मि सूर्य

॥२७॥

इता पश्चान्ति रोक्मं विवि सूर्यं विपश्चितम्

॥२८॥

सूर्यो वा सूर्यः प्रविही सूर्यं जालोऽति पश्यति ।

सूर्यो नृपस्यैकं बभूवा क्रोधं दिवं महीम्

॥२९॥

यो भयं देव सूर्यं रवां च मां जामराजति

॥३०॥

अ १३११

सूर्यके बोले सदा प्रकटमुक्त हैं इसके रवको सुकर्तृक बलते हैं। सर्वत्र प्रविष्टता करकेवाद्य सूर्यदेव विविध (बलमें) प्रजाके साथ द्युलोकमें प्रविष्ट होता है। हे सूर्यदेव तू ब्रह्मको प्राप्त होता हुआ मेरे कर्मजोंका नाश कर। प्रकटको केवल देव सूर्यको पाओ और प्रमत्त करते हैं ॥ द्युलोकमें प्रकटविष्ट होनेवाले सूर्यको सब देखते हैं ॥ सूर्य द्युलोक भूमिलोक अपने सबके देखता है। सूर्यही सब ब्रह्म का एकमात्र भाग है। वह ब्रह्मकेभर आकाश होकर विराजता है ॥ हे सूर्य ! जो पुरुष तेरे और भीक्षमें विरोध करता है वह पापी है। इत्यादि मंत्र सूर्यका वर्णन स्पष्ट करते करते हैं और उपासक देवका मन्त्रन उपासकने अन्तःकरणमें स्थिर करते हैं। इस प्रथम सूक्तके अन्त में ही इस सुक्त मंत्रोंके अनुष्ठानको विशारद कहिए। अब द्वितीय सूक्त मंत्रोंमें सूर्यका वर्णन देवा केभीर रीतिसे किया है जो देखिए—

उदस्य केतवो विमि सुखं ज्ञान्मन्तं हँरते ।

नास्मिन्स्य नृपकण्ठो मणिमयस्य मीनुरः

॥१०॥

स्वनाम सूर्यं सुखस्य गोपां यो रक्षिमिर्हिंस्रं जामाति सदाः

॥११॥

विवाभितं धरणिं धावमानं ब्रह्मणि च हरितः धस्य गङ्गाः

॥१२॥

दिश च सूर्यं प्रविही च देवीमहोरात्रं विमिमाको नक्षत्रि

॥१३॥

स्वास्ति ते सूर्यं अरये स्वाहा वैमोमाज्यतो परिवाधि सधः

च ते ब्रह्मणि हरितो वहिहः जाममृषा नदि वा स्रष्ट गङ्गाः

॥१४॥

सुखं सूर्यं रवमंभूमन्वं स्वोर्ध्वं सुखद्विमिहि तिष्ठ नाविकम्

॥१५॥

स्रष्ट सूर्यो हरितो नाविके दधे विरभ्यन्वसधो ब्रह्मवीरमुक्त

॥१६॥

उपनक्षिमन्तः उजुष विवा कपावि पुष्पावि

॥१७॥

विमि स्वाभिरभारत्सुर्वा माध्यामं कर्तये

॥१८॥

वसन्तमुद्रमनुभिर्यं तत् शिवास्तपि सूर्यः ॥ १४ ॥

अ १३।२

‘उपि करेद्योके निवर्तते चक्रेवाके मानवोद्य विरीक्षण करेद्योके सूर्यके तेजस्वी किरण उदयको प्राप्त होनेके पश्चात् बहुदशी चमकते हैं ॥ जो अपने तेजस्वी किरणोंद्वारा सब विश्वामें प्रकाशित करता है, उस सूर्यदेवकी प्रशंसा हम करते हैं वसन्तके गुण होते हैं ॥ वसे प्रकाशका घात किरण तेजस्वी श्रान्ती सूर्यदेवको उठाकर ले जाते हैं ॥ द्रुमोद्य भूकोद्य तथा अहो पावशे निर्माण करते, वे सूर्य । तू व्यापा है ॥ जिससे पौनो कीमाओं तक तू जाता है, उस चक्रेवाके रूपके सिरे स्थिति हो । वही घात किरणें बिना गतिमान् छो किरणें तुझको चमक रही हैं ॥ वे सूर्य । तू ऐसे सुखवासी यतिमान् उत्तम रमण चढ ॥ सूर्यके सूर्यके समान चमकनेवाके तेजस्वी किरण देवके सिरे अपने रूपको जोते हैं । उदय होकर तू किरणोंको फैलता है और सब ऊर्ध्वको प्रकाशित करता है ॥ यहिनेका विनाश करनेके सिरे तुझे द्रुमोद्यमें रखा है । जो वसन्तके आधरपते रहता है वह सूर्य प्राप्त करना चाहता है ॥’

वसन्तको सब मंत्र माना सूर्यपरक ही है । जो मंत्र वहाँ लपूरे सिरे हैं उनके रूप भाव वसन्त सूर्यत्वमें देखे और उनके वर्णका मन्त्र करें । इसके वसन्तको सब मंत्र सूर्यके गुणगान करनेवाके हैं ऐसा स्पष्ट हो जायगा । इसके (३६ से १३ तक) आगेके ९ मंत्र ज्ञानेदेमें मन्त्र ३।५ में व्याप्ये हैं और वहाँ भी इनकी सूर्यदेवताही है । अतः वे सूर्यका गुणवर्णन कर रहे हैं इसमें कोई शंका नहीं । इनमेंसे कुछ मंत्र बहुत ही और लभ्यदेवमें भी छुट्टे स्थान पर आये हैं और सर्वत्र सूर्यदेवताके ही मंत्र हैं । इस कारण इनके संवन्धका अधिक विचार करनेकी बड़ा कोई आवश्यकता नहीं है । इसके अन्तिम मंत्रोंमें सूर्यदेवका मंत्र देखिये—

मन्त्रो वास्यन्धरितो बहस्यार्ह है कये क्रमुते रोचमानः ।

केतुमातुघनस्तहनामो रत्नाणि विधा अविद्य प्रचरो विमासि ॥ २८ ॥

मन्महा अस्ति सूर्य बहस्यार्ह महा अस्ति ।

महास्ते महतो अहिमा त्वमासित्व महा अस्ति ॥ २९ ॥

रोचते दिवि रोचते अन्धरितो वर्यं द्रुविद्या रोचते रोचते अत्यन्तः ॥ ३ ॥

बहोरात्रे पति सूर्य बहस्यार्ह ॥ ३१ ॥

विमं देवाणां केतुरनीकं अवीक्षिमान् अविद्या सूर्य उदय ।

विधा करोति द्रुमोत्तममस्ति विधा वारीद् द्रुमिणानि क्रुम ॥ ३३ ॥

सूर्य आत्मा वगतस्त्वसुबन्ध ॥ ३५ ॥

वसन्तवसन्तमन्त्रं सुपुन्यं अन्धे विवद्वदस्ति आत्मामानम् ।

पञ्चम त्वा सविता वमादुरमर्षो ज्योतिर्वद्रुमिन्द्राणिः ॥ ३९ ॥

अ मः सूर्य प्रतिर दीपमानुः ॥ ३० ॥

रोहितः काको अमररोहिणोऽयं प्रजापतिः ॥ ३५ ॥

रोहितो रश्मिभिर्भूमिं सप्तद्वयं सं वरेत् ॥ ३७ ॥

सूर्य वर्ण रजसि शिष्यन्तं यन्तुर्विं हवामहे नाथमावाः ॥ ३३ ॥ अ. १३।२

कभी अत्यन्त व करमिवाका वह सूर्यदेव अपने किरणवत् ज्योतिर आकाश होकर जाता है और इस जगत्में जाया और प्रकाशकर ही रूप बनाता है । किरणोंके गुण होनेवाका वह किसी सूर्य उदय स्थानके चमकता है । सूर्य उदये बडा है सूर्यका पहिमा बहुत ही बडा है ॥ सूर्य द्रुमोद्यमें, अन्धरितोद्यमें द्रुमीमें समुद्रमें प्रकाशता है ॥ सूर्यके ऊपर विन और उर्ध्व अर ऊर्ध्व है ॥ देवीका शंका वेला अनीय प्रकाशमान वह सूर्य लभ्यदेवकी हयता है और सर्वत्र प्रकाश चमकता है ॥ वह सर्वही स्थान अंगय वरावीक जीवन्त है ॥ आकाशमें उदयके उदय स्थानके चमक करकेवाके पक्षोंके समान आकाशमें तेरहवाके द्रु

निष्कलाहि प्रयोगे वहाँ देवताओंका विरूपण किया है वहाँ जी सब देवदेव देवताओंके नाम सर्वपर बढावैय्य हैं। नम किया है । और देवचारस अनुसारके भाव योवोपर कल्पनेका बल किया है । यदि वह प्रकार पाठक सूक्ष्म विचार के साथ वहाँ अनुसंधान करके देखेंगे तो उनका वहाँ बात वहाँ हीका समझी है ।

इस सूत्रमें भी सर्वके नाम को गिनाये हैं, उनमें छह इन्द्र, चन्द्र महेन्द्र सविता आदिष्व आठ, विधाद्य विधता पतंग अर्धमा, वरुण वय महावय, देव महादेव एक एकवत्, रोहित ध्रुवर्ष, अरुण इत्यादि नाम गिनाये हैं । अर्थात् इस नामोंके अनेक देवताओंके सूत्रोंके एक ही सर्वदेवता वर्णन होय है वह बात इस रीतिसे स्पष्ट हो जाती है । सब अन्य देव एक ही सर्वय मिय जाते हैं इस तरहके वर्णनसे अनेक देवोंका सम्भाव सर्वमें लप्य होता है वह स्पष्ट है अर्थात् अनेक देवताओंके मंत्रोंके वरमें सर्वका ही वर्णन है और वह उपासना के लिये ही है ।

पुराणोंमें भी सर्वपर ही 'विष्णु' का रूपक करके अनेक अवतारोंका वर्णन और अनेक कथाओंके प्रसंग वर्णन किये हैं । श्री यत्रामचरमें भी जातःकालके सर्वका नाम ब्रह्मा सम्पादके सर्वका नाम विष्णु और एतिका समस्त के सर्वका नाम शिव कहकर त्रिमूर्तिके सर्वमें ही बताया है । इस तरह सर्वके रूपकरही ब्रह्मा विष्णु शिवकी अलग कथाएँ कल्पित हैं, वह बात वहाँ स्पष्ट हो गयी है । ब्रह्मा की पुत्री सान्नित्री विष्णुकी पत्नी कम्बी और शिवकी पत्नी कम्बी वह सब इस तरह सर्वपर ही रूपक है । इसका स्पष्ट विवेचन करनेसे पहलेकी पुष्टीका महामय बनेया, देहा वहाँ जगत्के का विचार नहीं है और वैसी वहाँ कालम्बरका भी नहीं है । वहाँ चित्ता विस्तरण किया है उक्तका इस केदिक विवरणके द्वाराके लिये प्रतीत है । देवके अन्तर्गत वर्णन जैसे सर्वपर करते हैं वेहे हि ब्रह्मण मयकी कथाएँ और इतिहास पुराणके कथाएँ भी सर्वपर रूपकरका से रचित हैं वही बात वहाँ ध्येयके अन्तर्गत है । इसका अर्थ कोई वह व समझे कि प्रत्येक पक्षी सर्वपरक हैं परंतु इतनाही समझे कि सुकन कथाप्रसंग सर्वपर अर्थात् माक-कर रना बका या । उपग्रहमें विविध कथाएँ हुए ही लीये । इस तरह सब प्रयोगोंके वर्णन सुकनका सर्वपरक है । इतना कहनेसे समझी कथाएँ देवता सर्व है वह बात सुचित होती है । इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किसी स्वतंत्र ग्रंथ में करेंगे इतनाही वहाँ बताकर इस काण्डका विवेचन वहाँ समाप्त करते हैं ॥

बोध वाक्य ।

इस काण्डमें कई वाक्य अन्तर्गत रीतिसे विधेय उपर्युक्त देव हैं सबका विचार अब सबेपने करेंगे—

प्रथम सूक्त ।

१ कदेहि वासिन् (१) = हे बज्जान् ! जन्मदुःखको प्राप्त हो । अपना जन्मदुःख करो 'कदापि' अवगत न हो ।

२ इदं राहू मयिद्यं सुगुणवत् = इस कदाचित् राहूमें आनेका कारण कर इस मिय राहूमें प्रविष्ट होकर कर्म कर ।

३ स त्वा राहूय सुप्रत विमर्तु = वह तुझे अपने (राहूकी) उच्छतिके हेतु उक्तम मरणोपपन्नके अवधोके पुष्ट करे । तु अपने उच्छमें उच्छ्रान् उच्छतिके लिये उक्तम मरणोपपन्नके क्षणोंके पुष्ट होकर विराममान है ।

४ उह्माय वायम् (२) = अपना बल उच्छतिके लिये प्रयत्न कर उच्छतिके ही कर्ममें अपना ध्यानपूर्ण बना दो ।

५ निच आतोह त्वद्योगको वाः = प्रजायनोंमें बका ही जिनमें तुम्हारी उपस्थिति है । तु अपनी कर्तितमें प्रवृत्त हो उक्त स्थान प्राप्त कर ।

६ अप कोपधीमास्तुभ्यो हिपह वादेधव = जन्मभावों औरपुत्रोंके कपानों मोनो, जन्मदुःखों और विपत्तियोंके वहाँ अपने देहमें उक्तम रीतिसे रहने दो । ये रहें और उच्छत हावें ।

७ सूत्रमुपाय प्रथिमातवाः (३) = तुम सबे उपायी मूर्खोंको माता मानवैयाके हो । धारणीर सब अपने मातृभूषिका प्रचार करें ।

८ प्रमुधीत धाकर = धारणीका वाप करो ।

९ एही कोह (४) = बहनेवाके वही । जो कदापि प्राप्त करना चाहते हैं वे व इके उनके मार्गमें उच्छत भेग हो ।

- १ बाण्डुं प्रवक्ष्यहि राष्ट्रमाहाः = उक्तिके मार्गके देवता शुभं तु यदा राष्ट्रको उच्यते ते मार्गपर (४) ।
- ११ ना वे राष्ट्रमिह रोहिणेऽऽह्वारिणः (५) = तेरे राष्ट्रको ह्वार (परिस्मृतिके) उची वारने कहा है, एतन्मन्त्रं करण्यं तुल्ये योग्य है ।
- १२ स्वाहन्मन्यो भवमन्त्रं ते बभूवुः = उक्तके धारक गुरु भवा दिने और तेरे लिए निर्भयता की है ।
- १३ एवं ते राष्ट्रमवकथं पयसा भूषणः (६) = तेरे राष्ट्रमें दूध और घी भरकर हो वे घैष्टिक पदार्थ विपुलतमें लब्ध हो ।
- १४ मन्त्राणां वयसा वाह्यभागे विधिं राष्ट्रं जग्मुहि (७) = स्वयं और दूध से पुष्ट होता शुभं तु अपने प्रशस्तीमें और राष्ट्रमें जायता रह कभी न छोड़ा । राष्ट्रमें जायत रहकर राष्ट्रको उच्यत करनेका मन्त्र कर ।
- १५ वासवे निवसत्पलाः सवमुद्रुः (८) = जो प्रजापत्यके कर्त्तृ संवदित होती हैं (उनही उच्यते होती हैं) ।
- १६ वास्तवा विष्णु ममसा विवेचनं = वे प्रजापत्य शुभ मनोभावनाके साथ तेर साथ उत्कर्षमें प्रविष्ट हो वर निवसत्पलां कर्यं करे ।
- १७ विद्या कपालि जवन्मुखा कविः (११) = उक्त कवि अनेक काम्य के रूपक बनाता है अनेक वक्त्र मिलान करता है ।
- १८ विमेवादिमन्त्रोविद्या विभाति = अग्नि दीप्य प्रकाशक साथ प्रकाशता है ।
- १९ गोपोरं च वे वीरपोरं च वेदि (१२) = मेरे वीरपोर और वीरपोर पीथन होता रहे ।
- २ वाचा ओत्रेण ममसा त्रुहोमि (१३) = वाची अन्न और मन्त्रके साथ हवन करता हूँ (वाचीके ओत्रेणारण करने मन्त्रभवन और मन्त्रे मन्त्र करता हुआ हवन करता हूँ) ।
- २१ स मा सोऽहं घामिष्ये रोह्यतु = वह मुझे उच्यतिके साथ घामिषिके लिए उच्यत बनाने ।
- २२ तस्मात्तेजोऽस्तुव मेमस्तवाः (१४) = तब (वक्त्र) से अनेक तेज मुझे प्राप्त हो गये हैं । वक्त्रके मिलन हवन प्राप्त होते हैं ।
- २३ मा त्वा करोह रैतदा सवः (१५) = वीर्यके साथ वह मुझे उच्यत करे पराक्रम के साथ वह (वक्त्र) होने बनावे ।
- २४ वाक्स्वते पुमिषी नः स्त्रोषा मोमिस्तस्या नः सुहेवा (१६) = वे वाचीक पति । पुष्पी हमारे लिए कर्मफल करने वाली होने पर हमारे लिए सुखदायक होने मिलने हवन लक्ष्यके लिए कल्याणकारी होने ।
- २५ हवेव प्राजा सन्नेव वो जस्तु = वह ही प्राजा हमारी मित्रतामें रहे हम वीर्यातु हों ।
- २६ तं त्वा वरमेभिन्नु पर्वतिप्राजा वर्यः स वृषा = वे परमात्मन् । अग्नि तुल्ये वातु और तेजके साथ युक्त करे ।
- २७ वाक्स्वते वीमवत्सं ममसा गोष्ठे वो गा जवन् मोमिषु ममाः (१७) = वे वाचीके अविच्छेदा । मेरा मन्त्र अविच्छेद युक्त हो योज्यअवे धैर्य हो और हमारे वरमें ऊँचा हो ।
- २८ तर्वां वरादीरणकामघोहि (१८) = सब धारवापार चकार करता हुआ आने वह अन्न अन्नयोज्य वाद्य कर और उच्यत हो ।
- २९ हवं राष्ट्रमकरा धनुषावपः = इस राष्ट्रको उच्यति उच्यत वार्यप्रसन्न वक्त्रको ।
- ३ अनुजवा रोहिणी धुरि सुवर्णां वृहती सुवर्णाः (२२) = विदुषी उच्यत नर्त्तनाली तेजस्विनी वरदेवताली अन्न की उच्यति कारण होती है ।
- ३१ तथा वाक्मन्त्रं विवक्ष्वाह जवेम = वैती विदुषी अनुकूल कीके साथ सब प्रकारके अन्न तथा मन्त्र प्राप्त करने ।
- ३२ तथा विद्याः प्रववा अमिन्वासा = उच्यते एवं उच्यते अनेकानि वरास्तु कर्त्तव्ये ।
- ३३ तां रक्षन्ति कनकोऽपमावः (२३) = कर्त्तव्यीय प्रजापत्य रहित होकर उच्यती रक्षा करते हैं ।
- ३४ ववा हवा कौतुमन्वा सदा वदन्मन्त्रता सुक्तं रत्नं (२४) = वेनकाके तेजस्वी बोले ववा उच्यत सुवर्णा रक्षते एव रोहिणे के चकते हैं ।

३५ वि मिनीत्य पयस्वती कृताची येनुमपस्त्रोपया (३०) = वृष और भी देवेबाही चौको विचित्र रीतिसे ठेकार कर, यह दोहनेके समन हकनक न करेबाही उत्तम यो है ।

३६ हेमो जल्य, विमूषो पुष्टय = सचका कमान हो न ह वृत्त हो जाय ।

३७ जमीपाद् विधापाद् उपलान् हनुय ये मय (३८) = जो मरे शरहैं सन सचका माछ विजयी वीर करे ।

३८ हम्मेबाह्मदृष्ट्यारिषो नः पुष्ट्यति (३९) = जो कस्त हमपर सेमाके साथ हमस करता है, सचको मारा जाये ।

३९ सर्व उपरवान् प्रहम्मासि = हम सच शरहोंको जकायेंगे ।

४० जवाहीनावय वहि जवा उपरवान्मावकान् (४१) = हमारे शरहोंको गोथे करके दवा वे ।

४१ उपलान्वावाम्माहवस्वामम् (४२) = हमारे शरहोंको गोथे गिरा दो ।

४२ जस्मन्वयवा सवायमुपिपयि = हमारे सवातीय शरहोंको म्वावे पुछ कर, पुछाही कर ।

४३ जवरे वसन्तामसमिहम्पुवमावा (४४) = हमारे शरह विप्लवकोपवाहो होकर गोथे गिर जाय ।

४४ उपलान्वाव मे वहि जवेवावश्मवा वहि से मन्वयमे वसा (४५) = मेरे शरहोंको बाह कर, शरहोंको पत्थरसे माछ कर, मेरे कस्त अथिरेमें जाये ।

४५ वत्सं वत्सं सत्सं वत्सवा वत्सं वत्स (४६) = वत्सको ज्ञानवान् दीते हुए भी ज्ञानके साथ वदते हैं ।

४६ पुषिरी न रोह राध् न रोह मयिषि न रोह मया न रोह अन्वय न रोह (४७) पुष्पी राध्, वय, मया और वमरपम की हकि कर ।

४७ ये राध्पुता, तेह राध् दवाय सुमवस्वमावा (४८) = जो राध्पुतेव कीर हैं उनके हाउमे राध्पुता उत्तम मनेके साथ बारन होयें ।

४८ मुमिमवरीन्, लवरीक सर्व जावतो वदन्तं वय माव्यम् (४९) = वत्सने मातृमुमिसे कहा कि जा हुआ और जो होमेवत्स है वह सब मेरे किये अर्पण हा जाय ।

४९ ज वत्सः मयमो मूतो मन्वो जवायत । वत्साह जव हर् सर्व वदिकेहं विरोधते । (५०) = वह पहिका ववा हुआ और वमनेवाका वत्स हुआ । वत्सने ववा वह सब जो कुछ वयकता है ।

द्वितीय छन्द ।

५० स्ववान् सुववस्व मावा (१) = सुवनके रक्षक की प्रशंसा करते हैं ।

५१ मा तथा वमन्परिवाहमासि (५) = सुखमें जयेवाहे तुमै शरह न वयमें ।

५२ स्वस्ति वृणां वति वाहि वीज = पुष्ट्यत्पुर्णक वीज कठिन स्वात्मके परे जा ।

५३ स्वमज्जुमत्त स्वोषि सुपन्निमयि तिष्ठ वागिषं (७) = तेवस्वी सुवदन्ती वज्रवत्, उत्तम वज्रमेवाके सुवर रमपर वद ।

५४ वावाहमिषी जववन्नेव वृका (२६) = एक ही ईश्वरने दुगुणके और भूणके ववाय है ।

५५ वत्तन्ती वास्वत् (२८) = जावस्व औचकपर ही प्रगति करता है ।

इस तरह अनेक उपदेशकर गायन हाथ करवमें हैं, जो सुख देवताका वयन करते हुए जगत्पम वाय पाठकोंको देते हैं ।
अन्त इस रीतिसे इस काण्डका अन्त्यकन करें ।

अथर्ववेद ।

अथर्ववेद काण्डकी विषयसूची ।

विषय	पृष्ठ
१ ताप्त्रोत्तरक ।	१
२ ऋषि वेवता और छन्द ।	३
३ यह ब्रिहस्पतिवैद्य एक है ।	५
४ अथर्ववेद काण्ड । अभ्यारम्भ—प्रकरण । प्रथम सूक्त ।	७
५ , , द्वितीय सूक्त ।	११
६ , , तृतीय सूक्त ।	२९
७ अथर्ववेद-तेरहवें काण्डका अन्त ।	१८
१ रोहित द्युता ।	१८
२ सूय ।	२०
३ अग्नि ।	१९
४ तीन अग्नि ।	३५
८ वाध याज्य ।	४७

अथर्ववेद काण्ड समाप्त ।

ॐ

अथर्ववेद

का

सुषोष माष्य ।

चतुर्दशं काण्डम् ।

लेखक

प० भीपाद दामोदर सातवळेकर,
साहित्यवाचस्पति, वेदाचार्य धीराजी
अध्यक्ष स्वाध्यायमंडळ भागल्लाभम पारडी (अि वृत्त)

तृतीय बार

वर्ष १ १, अंक १८५१ अग १९५१

दम्पती वियुक्त न हो ।

इहं स्तं मा वि बौधुं विप्रमायुर्क्यसुतम् ।
श्रीरन्तौ पुत्रैर्मममिर्भोदमानौ सख्यौ ॥

(अथर्ववेद १८ । १ । ११)

“ हे वर व यम् । हे विप्रविराज ओषुको ! (इह एव स्तं) तुम दोनों इस मृत्स्थानमें जो
(मा वि बौधुं) तुम कभी वियुक्त न हुआ करो । [पुत्रैः वपुषिः क्रीडन्तौ] पुत्रों और वपुषि-
मोंके साथ खेलते हुए जोर [मोदमानौ] कभी छान जानकर करते हुए [स सख्यौ] बचन
आदरके द्वारा होकर [विभो वासुः स्वस्त्युः] तुम्हें आशुतक स्वस्थ करते रहो । ”



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

ॐ

चतुर्विंश काण्ड ।

यह चतुर्विंश काण्ड अथर्ववेदके सुतीन शास्त्रिणामयों श्रितीन है । इस काण्डमें ' विराट्-मन्त्रकार' यही एक महत्त्वपूर्ण विषय है । अथवा जो पाठक इस काण्डका विशेष ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे उसको ' वैदिक विराट्-पद्धति' का व्यापारोन्मूलन ज्ञान हो सकता है ।

इसमें दो अनुवाक हैं । प्रथमानुवाकमें १३ मंत्रोंका एक सूक्त है और श्रितीयानुवाकमें ७५ मंत्रोंका एक सूक्त है । इन मंत्रोंमें ११५ मंत्र इस काण्डमें हैं । ये दोनों सूक्त दक्षप्रतिनिधिमयों विमलत रूप हैं । प्रथम सूक्तमें १ मंत्रोंकी ५ दक्षप्रतिनिधि और छठी दक्षप्रति १४ मंत्रोंकी है; इसी तरह श्रितीय सूक्तमें ७ दक्षप्रतिनिधि वस मंत्रोंकी है और आठवीं दक्षप्रति ५ मंत्रोंकी है । वरुण यह दक्षप्रतिनिधिमय केवल मंत्रोंकी संख्याके अनुसार है, इसका अर्थके साथ विशेषज्ञा संवेदन नहीं है । अब इस काण्डके व्याख्यान देवता और छन्द देखिये—

ऋषि, देवता और छन्द ।

एक ऋषि संवत्सरा ।

देवता

छन्द

प्रथमोऽनुवाकः ।

१ ऋषिर्वात्स्या

(४ आत्मवैश्वानरं (अथ)

१५ सोमः १ स-

विवाहः १३ सो-

मायै, १४ अग्निमाः

१५ विवाहविवाहः

१५ १० वसुधा

उत्तरार्धवैश्वानरं,

अनुवाक

१४ विवाह प्रत्यक्षः, १५ आत्मार पंचः

१५ १ १३ १४ ११-१३ १० ११, ४

४५, ४७ ४९ ५ ५३, ५६ ५७ (५८

५९ ६१) विष्णुः (१३, ११ ४५ वरुण-

मन्त्रं वि,) ११ ४६ ५४ ६५, अथवा

(५४ ६४ अग्निविष्णुः, ११ ५५ पुरस्ता-

द्विष्टः, १४ अत्मार पंचः, १८ पुरोडाश

विषय पुरोडाशः (४८ अथर्ववेदः) १ ११-

अनुवाक

द्वितीयोऽनुवाकः ।

२ सावित्रीसूक्तं ७५

आरम्यवेष्टा (कन)

१ वस्त्रनाम्नः;
११ वपस्त्रोः परिर्वन्धि-
नाम्नः; १६ वेष्टा

अनुवाकः ५, ६ १२, १३ १७ १९, ४ अन्तः
(१७ १९ मुरिक् मिहमी;) १ अन्तः ४
पदा विराज्यति; १३ १४ १७-१९ (१४
१६, १८) ४३, ४४ ४९, ६१, ७ ४४ ४५
मिहमी; १५ ५१ मुरिजी; १ प्रत्यक्षत्वे
१३ १४ १५, १६ १७ प्रत्यक्षत्वे; (१६
मिहमी विराज्यति वाचनी;) १३ विराज्यति
पश्चिः; १५ प्रत्यक्षत्वे मिहमी; ४३ विराज्यति
पश्चिः; ४४ प्रत्यक्षत्वे; (४७ वपस्त्रोः)
४८ वपः पश्चिः; (५ वपस्त्रोः)
मिहमी; ५२ विराज्यति; ५९, ६१ १९
पश्चिः; (६८ प्रत्यक्षत्वे;) ६९ अन्तः
४३ अन्तः; ४३ वपः ।

इस सूक्तमें ' अर्घ्यवेष्टा ' का अर्थ जो कवि है वही देखा है । अर्थात् सावित्रीसूक्तमें अपनेही विराहका वर्णन, केवल विराह हुआ है या किया है । इस विराहका स्पर्शकराव इस कल्पके अन्तमें देखा जायगा । इस अनुवाक कल्पके दोनो रूप विराज्यमान का वर्णन करनेवाले होनेके कारण इन दोनों सूक्तोंका अर्थ करनेके पश्चात् हम इस वैदिक विराहका स्पर्श करेगे । प्रथम पद्यक इन दोनों सूक्तोंका अर्थ है—

ॐ

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

चतुर्दशं काण्डम् ।

विवाह—प्रकरण ।

(१)

सुत्वेनोचमिता भूमिः पूर्वोणोचमिता द्यौः । ऋतेनादित्यास्त्रिष्टन्ति द्विषि सोमो अर्षि भितः ॥१॥
सोमेनादित्या वृद्धिनः सोमेन पृथिवी मही । अग्नौ नक्षत्राणामेपापुपस्ये सोम आदितः ॥२॥

अर्थ—(सुत्वेन भूमि उचमिता) सुत्वेन भूमिको उचमना है । और (पूर्वोण द्यौः उचमिता) पूर्वोण सुकोक उचमना है । (ऋतेन आदित्याः विष्टन्ति) ऋतेन आदित्य रहते हैं । और (सोम द्विषि अर्षि भितः) सोम पुकोकमें आभित हुआ है ॥ १ ॥

(सोमेन आदित्याः वृद्धिनः) सोमसे आदित्य बढवाह हुआ है । तथा (सोमेन पृथिवी मही) सोमसेही पृथ्वी मही हुई है । (अग्नौ नक्षत्राणामेपापुपस्ये) और अग्नौ नक्षत्रोंके पास (सोम आदितः) सोम रका है ॥ २ ॥

मार्गार्थ—इससे मातृभूमिका उच्चार किया जाता है पूर्वोण प्रयाससे आकाश सेचस्ती होता है, सरकवा के कारण आदित्य अपने स्थानमें स्थिर रहते हैं और सोम पुकोक के प्रयासमें आभित केकर रहा है । (इसी प्रकार ये नक्षत्र इस पूर्वोणसक सरकवा और सुकोक अर्थात् कार्य के आधारसे अपना जीवनकर्म प्राप्त करें) ॥ १ ॥

सोमसे आदित्यमें एक आवा और पृथ्वीका विस्तार हुआ है और नक्षत्रों में भी सोम ही तेज बहा रहा है । इसी तरह ये नक्षत्र सोम आदि वस्तुवति सङ्ग कर अपने एक महान और तेज की शक्ति करें ॥ २ ॥

द्वितीयोऽनुवाकः ।

२ सावित्रीतुर्वा ७५

आत्मरूपस्य (सत्य)

१. अस्मन्माहर्षिः

११ संपन्नोः परिपन्निः

काष्ठार्णः ३६ देवाः

अनुसू ५, १ १२, ११ १० १९ ४ मन्त्रः
(३०, १९ मुरिहू विष्णुमीः) १ मन्त्रः ॥
पवा विराज्यमिह ११ १४ १०-१९ (१४
१९, १८) ४१, ४२ ४९, ११ ४ ४४ ४५
विष्णुमीः, १५ ५१ मुरिहू, १ प्रत्यक्षमिह
११ १४ १५, १२ ११ प्रत्यक्षमिह (११
विष्णु विराज्यमन्त्रः ॥ ११ विराज्यमन्त्रः
विष्णुः, १५ प्रत्यक्षमिह विष्णुः, ११ विराज्यमन्त्रः
विष्णुः, ४४ मन्त्रः विष्णुः, (४४ मन्त्रः)
४८ कः विष्णुः, (५ उपविष्णुः)
विष्णुः, ५२ विष्णुप्रत्यक्षमिह, ५१ १, ११
विष्णुविष्णुः, (१८ प्रत्यक्षमिह) ११ मन्त्रः
मन्त्रः विष्णुमिह, ५१ मन्त्रः ।

इस सूचने के अन्तर्गत का अर्थ भी अस्पष्ट है वही देखा है। अर्थात् प्रावित्रीसूचने अन्तर्ही विवाह का अर्थ, केवल विवाह हुआ ऐसा किया है। इस विवाहका स्वीकार इस कानून के अन्तर्ही विवाह माना। इस कानून के अन्तर्ही विवाह माना का अर्थ वरनेवाले दोनो के मरण इस दोनो सूचनों का अर्थ वरनेके पश्चात् इस इस वैदिक विवाहका स्वीकार करने। मरण पाठक इस दोनो सूचनों का अर्थ देखें—



स्तोमा आसन्नप्रतिघर्षः कुरीरं छन्द ओपपन्नः । सूर्याया अश्विना वराधिरासीत्पुरोगवः ॥८॥

सोमो वधूपुरमवदधिनस्तामुमा वरा । सूर्या यत्पत्ये छसन्तीं मनसा सधितार्दवात् ॥९॥

मनो अस्या अन आसीद् घौरासीदुत्तच्छदिः । शुक्रार्वनद्वार्हावास्ता यदयोरसूर्या पतिम् ॥१०॥

शुक्रसामाम्यममिहितौ गावी ते साम्नान्वैताम् । भोत्रे ते चक्रे आस्तां विवि पन्थाभराचरा ॥११॥

छुशीं ते चक्रे यास्या म्यानो अस आहवः । अनो मनुसर्षं सूर्यारोहत्प्रयुती पतिम् ॥१२॥

अर्थ—[स्तोमः प्रतिघर्ष आसन्न] स्तुतिके मन्त्र ब्रह्म बना था, [कुरीरं छन्दः ओपपन्नः] कुरीर नामक छन्द उसके निकले भूषण बने । [अश्विनी सूर्यायाः वरा] दोनो अश्विदेव सूर्याके छापी ने और [वराधिरासीत् पुरोगवः] अश्विदेव अग्रेसर था ॥ ८ ॥

[सोमः वधूपुरः अमवधत्] सोम वधू की दृष्टा करनेवाला था, [अनौ अश्विनी वरी आस्तां] दोनो अश्विदेव छापी ने । [वत् घमिता मयसा संसन्तीं सूर्या पत्ये कवात्] जब सधिताने मन्त्रके स्तुति करनेवाली सूर्याको पतिके हाथमें धाम किया ॥ ९ ॥

[यस्या मयः कवाः आसीत्] इसका मन्त्र रच बना था [वत् योः छदिः आसीत्] और पुत्रको छत्त हुआ । [शुक्रौ व्रजद्वार्हा आस्तां] दो ककरात् वैक बोले थे । [यत् सूर्या पतिं कवात्] जब सूर्या पतिके पास गयी ॥ १० ॥

(अर्थ— घामान्वा अमिहितौ ते गावी) अश्वेव मनो और घामवेदके मन्त्रोद्भूता मेरित हुए वेरे दोनो वैक (घामयौ देतां) साम्निवते चक्रे हैं । (जोके ते चक्रे आस्तां) दोनो कव वेरे पत्ये दो चक्रे थे । (विवि पन्थाः वराऽचराः) पुत्रको वेरे घाम नी चर और अचर कर्म समस्त संसार है ॥ ११ ॥

(ते यास्याः चक्रे छुशीं) वेरे कामिके रचके दोनो चक्र हुए हैं । (कवे ववाः यद्वत्) उसके ब्रह्मके स्वात्मपर म्याम नामक मात्र रचा है । (पतिं मयती सूर्या) पतिके पास कामेवाली सूर्या इस (मयः—मयं वा रोहत्) मनोमय रच पर कबरी है ॥ १२ ॥

मासार्थ—पतिके बरके वह ही वधूके किये सोम और देवमन्त्री उसके भूषण होते हैं । जो वधू की संययी के किये जाती है, व मनो अश्विदेव होते हैं । और जो पतिके नाटकीयके किये जाता है वह अथवा प्रकलक अश्विदेव ही है ॥ ८ ॥

ये वर हैं वह मनो सोम है मययी करनेवाले अश्विनीदेव हैं और वधूरा पितृ पूर्व है जो अपनी पुत्रीकी बरके हाथमें धाम करता है । वधू भी पतिके विषयमें मन्त्रों प्रबंधाके मात्र रचती है । [वधूपरणी परिस्थिति ऐसी होनी चाहिये ।] ॥ ९ ॥

जब वधू अपने पतिके बर किये तब वह रचमें बैठकर जाने । उसको दो उत्तम वैक (वा बोले) बोले हुए हों । समस्त हुआ दो वे उत्तम बैठवर्ग के हों । (वस्तुता वधूका मन्त्री वह रच है) नाम रचकी कयेका वधूका मन्त्री देता चाहिये कि विषय में रच कामि नाम आहम्बर कल्पनावेही पूर्ण हों ।) ॥ १० ॥

इस वधूके रचिके वधूके वेदमन्त्रों द्वारा चक्रे कामि घामघात घामवेद मन्त्रोंका पावन होता रहे । वह वधू इसकिये मूढ स्वात्म स्तीभरने के किये पठिके चर जाती है ॥ इसका कार्यका मार्ग धूमन्त्र हो अर्थात् पतिवली दिक्कर देता आचारान कर कि विषयके कर्मको पहच स्वर्य प्राप्त हो जाय ॥ ११ ॥

वह वधू पतिके चर जाती समय जिस मनोमय रचपर बैठती है उसके चक्र हुए हों । (वहों पाकवमन्त्री छुटता और मनोमय की वसिष्ठ वधू पारण करे वह बात स्थिति भी है ।) ॥ १२ ॥

सूर्यायां बहत्तुः प्रागात्सञ्चिता यमवासुजन्त । मध्याह्ने हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु म्बुजते ॥११॥

मर्दभिनो पुच्छमानावर्षात् त्रिचक्रणं बहत्तु सूर्यायाः ।

स्वैकं चक्रं धामासीत्वन्रि देष्टव्यं तस्ययुः ॥१२॥

यदयार्तं ह्यमस्मदी वरेय सूर्यामुप ।

विश्वे देवा अनु तद्गामजान पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥१५॥

दे ते चक्रे सूर्यं ब्रह्माणं श्रुतुया विदुः । अथैकं चक्रं यद्गृह्य तद्व्याप्य इक्षिदुः ॥१६॥

अथमर्थं यजामहे सुप्रसू पतिवेदनम् । उर्ध्वारुक्रमिषु वर्धनारप्रेतो मुञ्चामि नाभूतं ॥१७॥

वर्ध- (ये सविता ब्रह्मापृच्छ) विदुषो सविताये भेदा या वह (सूर्यायाः बहत्तुः प्रागात्) सूर्याका वदेन जाने लगे । (मध्याह्ने मासा हन्यन्ते) मसा बहत्तुये गोर्धे भेदी जाती है । और (फल्गुनीषु म्बुजते) फल्गुनी मङ्गलार्ति विना लगे है । ११ ॥

ह (भविता) आचिरेको । (वह सूर्यायाः बहत्तु) जब सूर्याका वदेन छेकर (पुच्छमानो विच्छेदय भवत्) इन दोनों पृष्ठते हुए तीन चक्रोंवाले चक्रे चके, उस [दो चक्र चक्रे] तुम्हारा एक चक्र (क आसीत्) वहाँ था, और हम दोनों वैष्णव क उरमस्तु । इसलिये किने क्या खरे है । १२ ॥

हे [ह्यमस्मदी] सुम करवेवाके । तुम दोनों (यह वरेय सूर्या रूप बर्षात्) जब वरके द्वारा पृष्ठते होकर हृत्ति समीप गये [बाँ वर विश्वे देवाः अन्वजानम्] तुम्हारा यह कर्म सब देवोंने पर्यट किया था (पूषा पुत्रः विना भवत्) इसने पुत्र पिताको स्वीकार करनेके समान तुम्हारा स्वीकार किया ॥ १५ ॥

हे (सूर्ये) सूर्या । (ते दे चक्रे ब्रह्माणं श्रुतुया विदुः) वे दोनों चक्रों को धारि लोग जगुके बहुधा जानते हैं । (यथ वह एक चक्रे गृह्य) और जो एक चक्र गृह्य है (यद् गृह्य तद्व्याप्य इक्षिदुः) उसको विश्व जती के जानते हैं ॥ १६ ॥

(सुप्रसू पतिवेदनं) उचम बन्धुवांशोष्ठे पुत्र पतिवत् साध देवेवाके (वर्धनय यजामहे) छेद मन्त्रकेन क साधार करते हैं । (उर्ध्वारुक्रमेण ह्य) ऊपरवा जैसा देवके बन्धनके रूप होता है, उस प्रकार (ह्य) व ह्युत्ति) इस सिद्धिकृते तुम्हें मुखावा हूँ, (व भवत्) पाँच पतिवत्कृते नहीं बलम करता । अर्थात् पतिवत्कृते जोहम ॥ १७ ॥

भाषार्थ- बहूनां पिता वरध समर्थ करनेके लिये बीकरी वदेन पक्षि वरके रत्नान्तर पशुवाने । वह पक्षि यहाँ पुरे के पशु विहाह हो । जैसा मसा बहत्तुये ओले भेदा जाँव तो फल्गुनी मङ्गलार्ति विहाह होने व ११ ॥

बहुको भारते ओ वदेन वरके पाव भेदावा ही वह कई दो सज्जन (वहाँ दो अधिनी देव) अपने रवों देकर के लीं । एक एक कर ठीक कर रत्नान्तर पशुवा जाव । ये ही जगुके रपको वरके रत्नान्तर मार्ग दृष्टानेवाके होने, इस लिये वे निरी लगे रत्नान्तर ठहरें ॥ १५ ॥

वरी ओले मंजी करवेवाले (दोन अधिनीकुमार) दो पैर जगुके पिकके पाव कन्हाकी मंजी वरके के लिये लगे जाव जब कोम उबध समर्थ देवें । असा पुत्र पिताका आशरक साध रत्नान्तर करता है । देवा उम मंजी वरके के लिये लगे हुओंका रत्नान्तर बहूनां पिता करे ॥ १५ ॥

सूर्यं यामक बहिताई पुत्री तीन चक्रोंवाले रपपर बैठकर अब पतिवत् कर गई लीं । इसी तरह बहू रवों द्वारा पतिवत् कर गये । रवके अथ और गुप्त चक्रोंको धारि लोग जानें ॥ १६ ॥

यद् गमनय बन्धुवांशोष्ठे पुत्र कज्जनरी वरध पता देवें । वरध पता किसी हीन मनुष्यके कभी न किया गये । केवल जन जान बधने पुत्र हो । है उच प्रकार बहू भवन सिद्धिकृते अपना दृष्टय छेद देने पाँच पतिवत्कृते बहूनां रवें १७ ॥

प्रेतो मुञ्चामि नामतः सुवदाय सुवत्स्कारम् । पथेयानिम्न मीद्वः सुपुत्रा सुसगांसति ॥ १८ ॥

प्र स्ता मुञ्चामि वरुणस्य पात्राद् येन स्वाऽर्घमात् सविता सुधेयाः ।

श्रुतस्य योनौ सुकृतस्य लोकं स्योन तं अस्तु सुदत्तमभाये ॥ १९ ॥

मयस्सेतो नपतु हस्तपृष्ठाभिना स्वा प्र बहसा रथेन ।

गृहान् यच्छ गृहपत्नी यथाऽसौ वृद्धिनी त्व निवयमा वदासि ॥ २० ॥ (२)

इह मियं प्रुवाये ने समृप्यतामस्मिन् गुहे गार्हपत्याप जागृहि ।

एना पत्न्या दुर्वै सं स्पृशस्वाधु जिनिर्विद्वमा वदासि ॥ २१ ॥

दुहेव स्तं मा वि यौतु विप्रमामुर्ष्यं भुवम् । श्रीरन्वौ पुवैर्नष्टमिर्मोदमानौ स्वस्त्यौ ॥ २२ ॥

अर्थ- (इह) प्रमुप्यमि न कतुम् । वहा [पितृकुल] जे तुलं मुक्त करातुं परंतु वहां (पतिकुल) जे वहां । (अमुतः सुपुत्रां करे) वहासे को ये कतम प्रकार बंधी हुई करातुं । हे (मांदा इन्द्र) शता इन्द्र ! [वरा एवं] । ये रथे नप वत् (सुपुत्रा सुपय्य अभयि) कतम पुत्रवादी और कतम मायसे मुक्त होये ॥ १८ ॥

(स्ता वरुणस्य पात्राद् न मुञ्चामि) तुल को ये वरुणके पात्रसे मुक्त करातुं (येन स्वा सुधेयाः सविताः) वरुणात्, जिससे तुल सेवा करेकोय सविताये वंदात्ता । (अस्तु स्व को सुकृतस्य लोकं) वहामरीक वरमें और कतमें कतमें लोकमें (गृह-संमप्यते हे) पतिसे घरवर्तमान गुहे (स्पर्शं अस्तु) मुक्त होये ॥ १९ ॥

(मयस्सेतो इन्द्रपुत्र इन्द्र) मय पुत्रे हाथ पकड़कर बाधे न बाने, यात्र (बाधे तो स्वा रथेन न बरतां) बाधे हेन तुल रथमें चिन्ताकर पकड़करे । मयने पतिसे (गृहान् मयत्) बाने जा । (वया एव गृहपत्यो वृद्धिनी मया) वहां तु घरकी स्वामिनी और घरको मयमें रहनेवाली हो । वहां (रथे विद्वं जावत्ये) तुं कतम विदेकका भाषण कर ॥ २० ॥

(इह ये वज्राये निर्वं वपुष्पती) वहां वे वज्रावधे किसे बिक-को हाथे हो (वारिमन् गुहे गार्हपत्याप जागृहि) इस वरमें गृहस्थवर्तमें किसे जाग्यो रह । (एना पत्न्या दुर्वै संस्पृशस्व) इस पतिसे स्पर्श करने छत्रोका स्पर्श कर (अम जिनिः) मार तु हृद होयेवर (निर्वं जा वपुष्पति) कतम उपदेश कर ॥ २१ ॥

(इह इव स्तं) वहां इव रहो (मा वि यौतु) कभी विमुक्त न हो । [पुत्रे वपुर्ष्यः श्रीरन्वौ] पुत्रों और बाधे पतिसे केकसे हुए [मोदमानौ स्वस्त्यौ] बानीदिष्ट होकर मयने बरदारके मुक्त होये हुए [विप्रं वपुः स्वस्त्युं] एवं जाग्यता कोय करो ॥ २२ ॥

अन्वार्थ- वपुष्प संवय पितृकुलसे कृते, परंतु पतिसे कृतम न कृत । पतिकुलसे संवय सुदत्त होये । वरसेना इव वपुष्पे पति-कृतमें कतम पुत्रोके मुक्त और कतम मायसे मुक्त करे ॥ १८ ॥

मिदाह होति ही कतम वरुणके वरुणोके मुक्त होती है । सविता सेनेही कतमको वरुणके वरुणोके वंदा होता है । कतमका मिदाह होये ही वह पतिसे घर वहावादी और कतम करेनामोंके वरमें वपुष्पती है । पतिका घर वपुष्पे वरुणोका देवदाकावने ॥ १९ ॥

वपुष्प हाथ पकड़कर भागवत देव वरुणसे पतिसे बाने, बाधिनीदेव रथमें चिन्ताकर मिदाहके पदार्थ पतिसे घर वपुष्पसे इव वरव वपुष्प पतिसे घर मयुं । वहां पतिसे घरकी स्वामिनी और घरको कतमें रहनेवाली होकर । ऐसी कौ ही कोय प्रवर्तमें कतम कतिसे ले लयी है ॥ २० ॥

इव वरुणोके कंतम कतम कृतमें रहें । वह वरुणोके अपना गृहस्थाभम कतम रीतिसे बाने । वह वरुणोके अपने पतिसे कतम कृतमें रहे । अब इस तरह वरुणोके गृहस्थाभम बानेती हुई वह कही कत होनी तब वह वरुण केकसे देवे वरुण होनी ॥ २१ ॥

औ पुत्रा वरुणोके वरमें रहें कभी विमय न हों । मयने बानवर्णोंके कतम सेके मयने वरुण वरुणोके और वरुण वरुण वरुणोके कतम हुए कृतमें जाग्यता उपधीन है ॥ २२ ॥

पूर्वापरं चरतो मावयैतौ क्षिप्रुः क्रीडन्तौ परिं यातोऽर्णवम् ।

विमान्यो ध्रुवना विचरं क्रतुरन्यो विदधन्ज्वायसु नवः ॥ २३ ॥

नवीनयो भवसि आर्यमानोऽर्णो क्रतुरूपसामिष्यग्रम् ।

माग दुवेभ्यो वि दधास्यापन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४ ॥

परां देहि श्चाभूत्स्य मृच्छम्भो वि रैमा घसु । कृत्स्वेपा पृथ्वीं मूत्सा ज्ञाया विंशते पतिम् ॥ २५ ॥

नीललोहित भवति कृत्सासक्तिर्व्यन्यते । एषन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्विन्धेयुं वचते ॥ २६ ॥

अश्लोला मुन्यैवति रुधेरी पापबामुया । पतिर्यह वृज्योक्तु वाससुः स्वमल्लमम्बुवृते ॥ २७ ॥

नव [पृथी क्षिप्रुः क्रीडन्तौ] ये दोहों बाळक केकते हुए [मानवा धर्मापरं चरत] क्रीडते जगो कीडे क्रीडे हे दोहों [जल्पन करि पाठ] समुद्रवत् प्रमत्त करि हुए पशुवत्ते हैं । [कन्या विद्या सुचया विचरे] उचरते ये दूध कन्य कुल्लोके प्रकाशित करता है और [कन्याः कृतुं विचरन् वयाः कावते] दुसरा प्रतुओंको बचता हुआ वया वया कन्या है ॥ २३ ॥

[ज्ञानमानः वयाः कन्य नववि] प्रकट होता हुआ वया वया होता है । [कन्याः वेत्तुः उचरन्तं वयं वयं] जिनको बचानेवाला और उचरानेके ज्ञान मानवें होता है । [कान् वदेभ्यः पापं विदधासि] जाता हुआ दोषोंके लिये निज समपन करता है । तथा है कन्या । [शर्वं वायुः प्र विरहे, पृथ्वीं वायु देवा है ॥ २४ ॥

[श्चाभूत्स्य परा देहि] वह जलम बल दान कर । [मृच्छम्भः वसु विजय] मासकोंको धन है । कन्य [दान कर्त्तुं कृत्सा ज्ञाया मूत्सा] वह पापबलको कृत्सा ज्ञायां विनाशक वयावयाकीसी वयकर [पतिं विन्दते] पतिसे लज भावो है ॥ २५ ॥

[नीललोहितं भवति] नीला और लाल बनता है, नीलबुल्ल होता है तब [कृत्सासक्तिः व्यन्यते] निजको इच्छा बढती है [कृत्सा ज्ञातयः एषन्ते] इसके अधिक मनुष्य बढते हैं । और [पतिः वचते वचते] लो बचनेमें बाँधा जाता है ॥ २६ ॥

[पतिं वचते वाससः] वह छोटे बचते [पति एव मेन जयि कर्तुं] पति अपने शरीरको वाससविष जल है, तब [कृत्या पापबा] इस पापी रीतिसे [कर्त्तुं वयं] सुन्दर शरीर हुआ तो ली [कर्त्तुं वयं भवति] जो बलविष लो है ॥ २७ ॥

भाष्य—इन पुरुषवर्गोंके बाळक छोटी बड़ी आनुषाके अवरो कान्धिले केकते हुए वये होकर समुद्रवत् पुष्पवत् क्रीडन करें । एषन् वयं अमत्त को प्रकाशित किया तो वृद्ध क्रतुके अनुहार वशीन वशीन होकर उचरने प्रारंभ हो । अर्णव पृथिवीके पुत्र अपने पुत्रवर्गोंके जलत को प्रकाशित करें ॥ २३ ॥

पृथ्वी लोम वने वने जलछाये पुष्पार्थ करते हुए वयाओंको प्रकाशित करनेके लियेके समान वयंके मार्गदर्शक ली । वयंके दोहों मान वनको समर्थ करे और वयंके ज्ञानन व्यतीत करते हुए कर्त्तुं कृत्या उचरने प्रारंभ ॥ २४ ॥

निवाहक धनम जलम जलम वयं विदधन् मासकोंको दान दिये जाये और उनको धन ली बाँटा जाये । (दे मद्रम वयंका मद्रम वयं । यदि वयंको वयम विदधन् न विदधी) तो वह वयं पतिसे वयं प्रार्थन करके तब कृत्या विदधन् कर लगी । (वयंके अपर्मावयंके पुनः मास होता है) ॥ २५ ॥

[पति वयंके वयंके अपर्मावयं वयं वया तो] वयं करान होया है तब वयंकारी वयंकी विदधन् वयंका जल है तबके विदधन् लोमकी लोम वया हो जाते हैं और इस प्रकार विदधन् पति वयंके वयंके वयंके विदधन् वयंकी वयंकी ॥ २६ ॥

श्रीका वयं पुनः कभी न वयं । यदि किसीने वयंका तो वयंके पतिवयं वयंकी वयंकी लोमावयंका होजाया है ॥ २७ ॥

इमं गाव प्रयया सं विंशधायां देवानां न मिनाति आगम् ।
अस्मै वः पूषा सुवृत्तं सर्वं अस्मै वो पाता संविता सुवाति ॥ ३३ ॥
अनुधरा श्रवणः सन्तु पयानो येमिः सखायो यन्ति नो धरेयम् ।
स मर्गेन समयेम्या सं घाता सुंखतु वर्षसा ॥ ३४ ॥
वह वर्षो अखतु सुरायां च यदाहितम् । यज्ञोष्मधिना वर्षस्तेनेमां वर्षसाऽवतत् ॥ ३५ ॥
येन महानुष्या हचनमर्भिना येन वा सुरा । येनाद्या प्रम्बर्धिष्यन्त तेनेमां वर्षसाऽवतत् ॥ ३६ ॥
यो अतिष्मो दीदयत्सुत्सुन्तर्ब विप्रास ईदति अम्बरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीर्यो वा वासिरिन्द्रो वापुधे वीर्यावान् ॥ ३७ ॥

अर्थ है [पापः] वीरे ! [इय प्रयया सं विंशधायां] इयक धारमें अपनी सत्तायके द्वारा प्रवेश करो । [अस्मै देवतां वः न मिनाति] वह देवोंक आत्मका कोप नहीं करता है । [पूषा सर्वं सवतः] पूषा और सब सवत [यता कसिपः] निष्ठा और संविता [अस्मै अस्मै व वा सुवाति] इसी अनुधरा के विषे तुमको उत्पन्न करता है ॥ ३३ ॥

[यन्मात्राः अनुधराः श्रवणः सन्तु] इस मार्ग कल्पकाहित और शराक हों [येमिः व. सखाया वर्यं यन्ति] निष्ठा हमारे सब मित्र कर्मवाजे करने प्रति पक्षपते हैं । [पाता अयम अर्थस्य वर्षसा सं स सं यतु] निष्ठा, यम और अर्थसाक द्वारा तेजसे हृते संकुलत करे ॥ ३४ ॥

हे [वसिष्ठे] वरेते ! [यत् वर्षं यजेतु] जो तेज आर्कोमें होता है और [यत् सुनायां वीर्यं] जो सपत्नीमें रखा होता है [यत् न वर्षा योतु] जो तेज वीर्यमें है [तेन वर्षसा हमां अवतत्] उस तेजसे इसकी लक्ष्मी लक्ष्मी करे ॥ ३५ ॥

हे [अग्निने] अग्निदेवो ! [येन महानुष्याः अयमं] जिससे सभी वीर्य अयम अर्थात् विषका दुर्भावजनक ज्ञान [येन वा सुरा] जिससे सपत्ति [येन अद्याः प्रम्बर्धिष्यन्त] जिससे आर्कों परतुत रहती हैं [तेन वर्षसा हमां वीर्यं] उस तेजसे इस वपुरी रक्षा करो ॥ ३६ ॥

[वाः अपानु कम्पा कसिप्या वीर्यवत्] जो अर्कोमें हृष्ययोरके विषा यमकला है [न विप्राद्या अम्बरेषु] निष्ठा की आधी कोम यज्ञोमें स्तुति करते हैं । हे [अपां ययाम्] अनुमतीः अपाः वाः] अर्कोमें न शिरानेवाके देव । जेना ययु बल हमें हो । [वासिः वीर्यावान् इन्द्रा वापुधे] जिससे वीर्यवान् इन्द्रा वपुधे ॥ ३७ ॥

भाष्यार्थ—वीर्य अपने बलकोके द्वारा करने प्रवेश करे । पृथक् देववक्त्र प्रतिदिन करे कभी पक्षध कोप न हो । इस देव ल पृथ्वीके धारमें वीर्य की संख्या पछमें ॥ ३३ ॥

धरके तथा वपुके पर अपनेके मार्ग अचरहित और शराक हों । धरदेवर इय पृथ्वीको तेजस्वी करने वपुध करे और जो तेज अर्कोमें, ऐश्वर्य और वीर्यमें होता है उस तेजसे वह वपु युक्त हो । वह ही तेजस्वी ही ॥ ३५ ॥
जिसे तेजसे वीर्य दुर्भावजनक तेजस्वी हुआ है जो तेज ऐश्वर्य और अर्कोमें होता है उस तेजसे वह ही युक्त होने और वह ही यमोपरम्ये द्वाराहित रहे ॥ ३६ ॥

अर्कोमें हृष्ययोरके विषा यमकलाका तेज है, वीर्यमें विष्ठीका आत्मक तेज है, और अर्कोमें ययुराका है और वीर्य वीर्य । इय पय, वाम पाशुर्न और वीर्य ये ये पृथ्वी युक्त हों । इय हृष्यके आर्कोमें वपुधे वपुध हुआ है ॥ ३७ ॥

इदमहं कर्तुं श्रामं तनुद्विषमर्षोहामि । यो मुद्रो रश्चिनस्तद्विषमि ॥ ३८ ॥

आर्षेयं प्राश्रयाः स्तर्पनीर्हन्स्वर्षीरग्नीरुद्वन्त्वापः ।

अर्षम्यो अर्षिं पर्येतु पूषन् प्रवीक्षन्ते अश्वरो वेवरेभ ॥ ३९ ॥

अ वे विरेण्य अमुं सन्त्वापः अ येथिर्मेवतु अ युगस्य वर्षे ।

अ त आपः अतपवित्रा भवन्तु अमुं पत्यां तन्वं १ स स्पर्धस्य ॥ ४० ॥ (४)

खे रषस्व खे खेजन्तुः युगस्य अतकतो । अगताभिन्त्र विष्णुवाऽकुणोः अर्षस्वचम् ॥ ४१ ॥

आश्राना सौमनुष प्रजा सौमोग्य रयिम् । पत्सूरनुमता मुत्वा स नक्षत्रामृताय कम् ॥ ४२ ॥

वर्षे— [इह वर्षे तनुद्विषमर्षोहामि] यह मैं अतीरमें होय उत्पन्न करनेवाले विनाशक रोमको दूर करता हूँ । औस [या मुद्रा रोचनः स तनुद्विषमि] जो ककबलमय तेजस्वी है उसको पाव करता हूँ ॥ ३८ ॥

[प्राश्रयाः अर्षेय स्वर्पणीः अथा आश्रयन्तु] प्राश्रय श्रेय इसके किसे लायका एक के पार्श्वे । [अश्वीरः अथा अश्वन्तु] शीरका वाद्य न करनेवाला एक के कर्षे । [अर्षम्यः अर्षिं पर्येतु] यह वर्षवाले काशिकी प्रशिक्षणा करे । [पूषन्] पूषा ! [यक्ष्मः वेवरेः न प्रवीक्षन्ते] अश्व और वेवर प्रवीक्षा करें ॥ ३९ ॥

[ते विरेण्यं अं] तेरे किसे सुख करनेवाला होवे [त आयाः अ मन्तु] औस एक सुखकर होवे [येथिः अं मवतु] गी बाँधनेवा स्वय सुखदायी हो । तथा [युगस्य तप अं] युगका छिन्न सुखकर हो [ते अतपवित्राः अथा अं भवन्तु] तेरे किसे औ प्रकटते पावकला करनेवाला एक सुखदायी होव । [पत्यां तन्वं अं] पतिवृत्त] पतिक साथ अपने करिवा स्वय सुखकरक रीतिसे कर ॥ ४० ॥

हे [अतकतो इन्ध] तेहको कर्म करनेवाले इन्ध ! [रषस्व अं] रषके छिन्नमें [अमताः खे] पावके छिन्नमें और [युगस्य अं] युगके छिन्नमें [अगताः विः पूषा] अयोग्य रीतिसे पावकी हूँ पुषीको जीव बार पवित्र करके [स्पर्धस्य अं] स्पर्ध करनेवाले तेजस्वी अथवाकरी पुने किया ॥ ४१ ॥

[सौमन्त्र प्रजा सौमन्त्र रयि आश्रयन्तु] उत्तम यज, अतस्त आश्रयन् और जन की आश्रान करनेवाली दू [पत्यां अमुम्य भूया] पतिके अनुकूल आचार्य करनेवाली होकर [अनुमताय कम् अमरतव] अमरतव किसे सुखपूर्ण रीतिसे दिये हो ॥ ४२ ॥

भाषार्थ— अतीरमें होय उत्पन्न करनेवाले रोमवालेको दूर करता चाहिये और विपरीत अश्वीरकी औस अमन्त्रप्रक होता है, इनको पाव करता चाहिये ॥ ३८ ॥

प्राश्रय श्रेय वर्तमें कि यह एक स्वय्य करनेवाले है यह एक भीरुका वाद्य करके एक वरमिवाच्य है । अश्वीर श्रेय यज करने अर्षिके प्रवीक्षण करें । अश्व पुषानी वपुषी प्रवीक्षा पतिपुत्रों अश्व और वेवर करते रहते हैं ॥ ३९ ॥

सुख करने, पत्नी वधवस्तुन युगके मात अर्षि अथ मुद्राके आश्रय करनेवाले हो । एक औ सौ मन्त्राते पवित्रता करनेवाला है । युगस्य पार्श्व पर्येण्यी पतिके साथ श्रेय अथवा कर रहे ॥ ४० ॥

युगस्य तथा औ अर्षी औ प्रकाशकी अथवा प्रमुषी अथवा करके अर्षीके अथवा तेजस्वी वनकर पदा विराजे ॥ ४१ ॥

युगस्यके पार्श्व औ उत्तम यज अथवा सौमन्त्र व वध की दया करती हुई पतिके अनुकूल कर्म करती हुई अमरतव रीतिसे अश्वीरकी पार्श्वक अथवा करे ॥ ४२ ॥

स्वष्टा वासो व्यदिषाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिवा कवीनाम् ।

तेनेयां नारीं सविता मर्गस्य सूर्यामिव परि यत्तां प्रजयां

|| ५३ ||

इ-वापी द्यावापृथिवी मातृरिषो मित्रावरुणा ममा अग्निनेमा ।

पुहस्पतिर्मरुता अथ सोम इमां नारीं प्रजयां वर्धयन्तु

11 40 8

पृष्ठस्यसिः प्रथमः सूर्यायाः क्षीरे केशा अकल्पयत् ।

सेनेमार्मभिना नारीं पत्ये स क्षोभयामसि

11 24 11

इदं सद्रूपं यद्वर्षस्तु योषां ज्ञायां विज्ञासे मनसा धरेन्मीम् ।

तामन्वठिष्ये मस्तिमिर्नग्वैः क इमान् विद्वान् वि चर्चन् पाषाण्

|| ५६ ||

अहं वि श्यामि मयि रूपमस्या वेदुदित पश्यन् मनसः कुलार्थम् ।

न स्तेयमाप्तिं मनसादसृज्ये स्वयं भ्रष्टानो वरुणस्य पाशान्

॥ ५७ ॥

अर्थ-। लघु पादः । स्वभावो वध [हृदि कं । कथाम् नीरं दुःखं होयेके दिने [बुद्धयः कवीनां नीचः] ज्ञानं
नीचं कविबोधिं ज्ञानीर्गच्छे प्राप्य [स्वभावः] कथायाः है । [देव इमां गीतिं] कथयेत् २५ शीघ्रे । अस्ति ज्ञानः २५
इव । अस्ति ज्ञानं जगत्प्राप्तिं ज्ञानं परिचायकं है जगत्प्रकारः [प्रथमा परिचयः] ज्ञानं प्राप्य अनुसृतं करे ॥ ५॥

(इन्द्रादौ) इन्द्र ऋषिः, (सामादौ) सुमोह ऋषिः (मन्त्रिका वामु विष वक्ष्येयम्, (रुद्रौ) रुद्रादौ) रुद्रौ रुद्रादौ।
कुमार नृपतिः सप्त मन्त्रा लोभ के लक्ष (इन्द्रा वामौ) इन्द्रा वामौ। इस धीको लक्षार्थे धाम वामौ। ११।

(बृहस्पतिः प्रथमः) बृहस्पतिर्यै सवसे प्रथमः (सूर्योवाः) यद्यै येखन्तः नवकन्यवत् । सूर्योऽपि निराल देवोऽपि बहन्ताः । [तेन] वसः वरहः (वाचसो) वासिषीकुमारः (इमां वारी पत्ने के सोमधामनि) इव खाभ्यो पयिकं निरे हृषीकेशे ॥ ५५ ॥

अथ ॥ ५५ ॥
 [यत् सोऽथ ववाच तदा कथं ह्यहं] सोऽपि वक्ता धारयन् विद्यां वसुधां कथं वदति । [यथा वाग्मीनाम्] विद्वान्
 वसुधे भ्रमयन्नेवाहोऽपि सोऽपि मे आकाशम् । [वयसिः सन्निधेः वां वामसिधेः] यज्ञो गौरात् सन्निधौ मे वसुधं
 वसुधायाम् वदति । [यः विद्वान् वसुधं पाशात् मे वसुधं] सोऽपि वक्ता ह्यहं पाशात् मे वसुधं वदति । ॥ ५५ ॥

(अहं हि ज्ञामि) मैं जोऊता हूँ । (अद्या मयि कर्म) ओ इतना कर्म मुझमें है । (ममका कृपां वक्ष्ये ते वेदः) ममका बौधका देखकर ही ज्ञान होता है । (व स्तौर्वा आद्य) मैं जोरी करने का बड़ी क्षात्रा हूँ । मैं (मम भक्त्या पाशान् धम्यायः) सब अदमक पाशोंको विनिवृत्त करता हूँ । (अस्या उच्यते) ममके मुँह होता है । ॥ ५० ॥

मावाय—इस कहीरमें इसक मिमेलनाया यह बरह दे कानी माइमेलि इसकी ग्याजलवि दिना दे । यह कर्नयल लमे
 बुरे जोर इसकी क्वाले कलम उतामीय मुक्त छेमे ॥ ५३ ॥

कच्चाके छिरपर जलम बाक हो और बह गयी। पनि की प्राणिके जिम्मे सुलेखित हो ॥ ५५ ॥

झीर का जलम वल्लभाचार कावेरी को जल बरसाते वही बुरावेद्योम है । मन्मथ वासवधन देता है वही लंके सिन्धु देवता वादिम । वरि वल्लभमोम धर्ममनीको लभने वाच करा रते । निषकोते पाषाणो को भी विहाय पद लपटा है । ॥ ५१ ॥

मे इस सम्प्रयोग को काटा है। इससे ही सर्वभूमीय रूप लेवल बने लिये हैं। इसके अन्तर्गत बरीका करने ही मैंने करवा दिया है। मैं जो लोग करता हूँ वह सबकुछ समान रूप से लोग करता हूँ। पीछे के सबका लोग मैं नहीं करता। मैंने बरान्ते बाँटोरे सिखल करवा मुला मयके बरान्ते मुक्त होय हूँ। पृ. ५५३

प्र त्वां मुञ्चामि वरुणस्य पाश्चात् येन स्वाऽर्धमात् सविता सुषोषाः ।

उरुं लोकं सुगमम् पर्षां क्रुणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥५८॥

उरुं पृच्छन्मम रथो हनायेमां नारीं मुकुते दधात ।

पाता रिपुभिर् पतिमस्यै विवेदु भगो राजा पुर एतु प्रजान् ॥५९॥

ममस्तव चतुरः पाटान् भगस्तव च त्वार्युष्णलानि ।

स्वर्षा पिपेक्ष मभ्यतोऽनु वर्धन्तसा नो अस्तु सुमङ्गुली ॥६०॥

सुकिमुकं बहत् विवरूपं हिरण्यवर्षं सुहर्षं सुपुङ्गम् ।

आ रोह ध्वं अमृतस्य लोकं स्योने पतिभ्यो बहत् कृणु त्वम् ॥६१॥

अम्रातुष्नी वरुणार्पशुर्षी बृहस्पते । इन्द्रार्पतिष्नी पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितवह ॥६२॥

अर्थ- हे (वधु) की ! [त्वा वरुणस्य पाश्चात् प्रमुञ्चामि] तुमको वरुणके पाछेके मुक्त करता हूँ । [येन सुषोषा सविता एवा भवमात्] त्रिपक्ष के वा करणयोग्य सविताने तुझे बाँध दिया था । [तुभ्यं सहपत्न्यै] तुझ सहपत्न्यारोपीके लिये (वधु उरु लोकं सुगमं पर्षां क्रुणोमि) वहाँ विस्तृत स्वाय और उत्तम ममचरण्य मार्ग करता हूँ ॥ ५८ ॥

[उरु पृच्छन्मम] अपने लक्ष्मीको ऊपर उठानो । (रथः भगः दधात) राजाको मारो । (हनां नारीं मुकुते दधात) तुझ कीको पुष्प कर्ममें लको । (रिपुभिर् पाता अस्मै पति विवेदु) ज्ञानी विषाहाने हत्यके लिये पति प्रसन्न बनाया है । (भग राजा मजान् पुरः पतु) राजा भग जानता हुआ जाने बहे ॥ ५९ ॥

(भगः चतुरः पाटान् पृच्छ) अपने चार पाशोंको बनावे, उनपर (भगः चतुराः उष्णलानि उच्छ्रज) मगने चार कमलोंको बनावे । [स्वर्षा मभ्यतोऽनु वर्धन्त अमु पिपेक्ष] ज्वहान् मभ्यमें कमरपट्टोंको बनावे । (सा वा सुमङ्गुली अस्तु) वह हमारे लिये उत्तम मंगल करलैवाली होवे ॥ ६० ॥

हे (ध्वं) ध्वं ! (सुकिमुकं विवरूपं हिरण्यवर्षं सुहर्षं सुपुङ्गं आरोह) उत्तम पुष्पोंके पुष्प, अनेक कपवाका, सोनेके रंगके प्रसन्न कमलवाका उत्तम वैभवीके पुष्प उत्तम लक्ष्मीके पुष्प इस रूपपर बह । (अमृतस्य लोकं आरोह) अमृतके लोकपर बह । (आ बहत् पतिभ्यः रथोर्षं कृणु) तू इस विषाह देवे या रथको पतिवैके किन्तु सुप्ररावी कर ॥ ६१ ॥

हे (वरुण बृहस्पते इन्द्रः प्रसिताः) जैवो ! (अम्रातुष्नी) वह वधु आर्षोका वध न करनेवाकी (वरपुष्नी अपतिष्नी पुत्रिणी अस्मभ्यं बह) वरुणा वध न करनेवाकी पतिका वध न करनेवाकी वार पुत्र उत्पन्न करनेवाकी हमारे लिये प्रसन्न करो ॥ ६२ ॥

आचार्य- सविताने तुझ इस समयतक मिल जाकास वाच रहा था तब वरुणके पाशोंकी मैं छोड़ता हूँ । तुझ देखी सुगम चर्मपट्टके लिये वहाँ विस्तृत लोक प्रसन्न हुआ है और उत्तम मार्ग सुगम हुआ है ॥ ५८ ॥

इस चर्मपट्टोंको ऊपर देखेवाके राजाको वध करानेके लिये तुम लोग हथियार धरा मुद्रित रहो । वध इध कीको पुष्पकर्ममें कपाओ ज्ञानी विषाहकी संमतिसे इसकी बह पति प्रापत हुआ है राजा भी वह जानता हुआ विषाहमें अममयी हुआ था ॥ ५९ ॥

भगने पाशोंके चार जागृषण और चरीचर धारण करनेके चार पूज बनावे और कमरमें चारव करनेयोग्य कमरपट्ट बनाये है । इसको बाध करके वह की उत्तम मंगलवाली बने ॥ ६० ॥

वह वध उत्तम पुष्पोंके पुष्प, सुंदर सोनेके वस्त्रोंकी अमले मुद्रित उत्तम चर्मपट्टके रूपपर बहकर अमर पक्षके मर्मप्र आक्रमण करे । वह वरुणकी विषाहमंगल पतिवैके किन्तु सुप्ररावी होवे ॥ ६१ ॥

वह की पतिवैके कर्ममें प्रसिद्धि लाई पण आदेशोंका मुक्त बने । पतिवैके मुक्त देवे । पुत्रोंको उत्पन्न करे । अर वरुण आम्ह वरुणवाकी बने ॥ ६२ ॥

येनाधिरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।

तेन गृह्णामि ते हस्तं मा अयिष्यामि मया सह प्रजयां च धनेन च

॥४८॥

वेचस्ते सविता हस्तं गृह्णामु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोत ।

अग्निः सुभगां ज्ञातवेंद्राः पत्ये पत्नीं अरदंष्टिं कृणोत

॥४९॥

गृह्णामि ते सौमगत्वाय हस्तं मया पत्या अरदंष्टिर्पथासं ।

मगो अर्यमा सविता पुरंभिर्मघं स्वानुर्गार्हपत्याय देवाः

॥५०॥(५)

मगस्ते हस्तमग्रहीत सविता हस्तमग्रहीत । पत्नी त्वमसि धर्मणाऽहं गृहपतिस्त्वं

॥५१॥

धमेपमेस्तु पोष्या मघं त्वादाहृहस्पतिः । मया पत्या प्रजावति स जीव अरदः शुतम्

॥५२॥

अर्थ- [देव अग्निः] जिसके अग्निने [आत्माः सूर्याः दक्षिणं हस्तं जग्राह] इस धूमिका दायां हाथ ग्रहण किया [तेन ते हस्तं गृह्णामि] अग्नी अर्यमणे तेरा हाथ मैं पकड़ता हूँ, [मा अयिष्यामि] कुछ मय कर, [मया सह प्रजयां च धनेन च] मेरे साथ प्रजा और धनके साथ रह ॥ ४८ ॥

[सविता देवा ते हस्तं गृह्णामु] सविता देव तेरा पालियहण करे । [राजा सोमः सुप्रजसं कृणोतु] राजा सोम उचन उज्ज्वलमुख करे । [ज्ञातवेंद्राः अग्निः पत्या सुभगां पत्नीं अरदंष्टिं कृणोतु] ज्ञातवेंद्र अग्नि पतिके निने सौमार्ग्य मुख की वृद्धापत्याक जीवेगधी करे ॥ ४९ ॥

[ते हस्तं सौमगत्वाय गृह्णामि] तेरा हाथ मैं सौमगत्वाके निने पकड़ता हूँ । [मया मया पत्या अरदंष्टिः अमः] जिसके तू मुख पतिके साथ वृद्धापत्याक जीवेगधी होकर रह । मय अर्यमा, सविता पुरंभिः । और सब देवोंने [मया मघं पार्हपत्याय अहुः] मुखको मेरे हाथमें गृहस्वाधम पकड़नेके निने दिया है ॥ ५० ॥

[मया ते हस्तं धर्मणाऽहं] जगने तेरा हाथ पकड़ा है [सविता हस्तं अग्रहीत] सविताने हाथ पकड़ा है, [त्वं धमेपमेस्तु पोष्या] तू धमके मेरी पोषा है [अहं तव पार्हपतिः] मैं तेरा गृहपति हूँ ॥ ५१ ॥

[इह मम पोष्या अस्तु] वह भी मेरी पोषण करनेयोग्य हो । [गृहपतिः राजा मघः अहं] गृहस्थितने मुखे मुखको दिया है । [मया वति] प्रजावताकी की । [मया पत्या अरदः शुतं धेजीव] मुख पतिके साथ तू जो वर्ष तक जीवित रह ॥ ५२ ॥

मार्ग-नेला अग्नि और धूमिका संवत् है, वेने प्रवर्धके निने मैं इस वषूक पालियहण करता हूँ । वषूके कर न हो । वह वषूमेरे साथ प्रजा, धन और देवर्धके मुख हो ॥४८॥

सविता देवा तेजरी वरकर पति कीका पालियहण करे और सोम देवा उज्ज्वलमुख होकर धर्मपत्निये उदाय उत्पन्न करे । पतिपत्नी धिक्कर दोनों इस गृहस्वाधममें एक वरवातक आनन्दके रहें ॥ ४९ ॥

हे की ! मैं त्वि तेरा पालियहण सौमगगतिने निने करता हूँ । मुख पतिके साथ तू वृद्धापत्याक रह । सब देवोंने मुखको गृहस्वाधम पकड़नेके निने मेरे हाथमें कोप दिया है ॥ ५० ॥

मय अर्थात् धनधान होकर और सविता मया धर्मय और तजरी होकर तेरा पालियहण करे करता हूँ । अग्ने तू धमके अनुग्रह मेरी धर्मपत्नी हो और मैं तेरा गृहपति हूँ ॥ ५१ ॥

वह धर्मपत्नी बरे (पकड़े) हाथ पकड़ने योग्य है । परमेधाने वह मेरे हाथन रा है । वही वह धर्मपत्निये मुख हो और मुख पतिके साथ जो वर्ष रहे ॥ ५२ ॥

स्वहा वासो व्युद्दिषाच्छुमे कं पृहस्पतेः प्रक्षिपा कृमीनाम् ।

तेनेषां नारीं सविता भर्गव सूर्योर्मिन् परि यतां प्रजयां

॥ ५१ ॥

इन्द्राग्नी घावापृथिवी मातुरिषा मिश्रानरुमा भर्गो अश्विनोमा ।

पृहस्पतिर्मुखा ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजयां धर्षयन्तु

॥ ५२ ॥

पृहस्पतिः प्रयमः सूर्यायाः क्षीरं केक्षीं अकल्पयत् ।

तेनेमामश्विना नारीं पश्ये स क्षौमयामसि

॥ ५३ ॥

इदं तद्रूपं यद्वस्तु योषां आयां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।

तामन्वर्षिष्ये मक्षिमिर्नरैः क इमान् बिभ्रात् वि चर्षन् पाशान्

॥ ५४ ॥

अहं वि प्यामि मयि कृमस्ये वेदवित् पश्यन् मनसः कुलाध्वम् ।

न स्तेयमश्वि मनुषादमुष्ये स्व्यं भेषान्नो बर्कमस्य पाशान्

॥ ५५ ॥

अर्थ—[स्वहा वासो] स्वहामे क्या [शुभे कं] कल्याण और पुत्र होनेके लिये [व्युद्दिषाच्छुमे कमीनां नीका] कुमारी और कवियोंके काशीवादीके साथ [व्युद्दिषाच्छुमे] क्याता है । [तेन इमां नारीं] उससे इन स्त्रियों [सविता भर्गो] सविता और भर्ग सूर्यको केसा परिचाला है उस प्रकार (प्रजया परिचर्या) सज्जनके साथ संलग्न करे ॥ ५१ ॥ (इन्द्राग्नी) इन्द्र अग्नि (घावापृथिवी) पुनोक क्षुद्रि (मिश्रानरुमा वासु मिश्र बलम मय) (इन्द्रो अश्विनो) दोनों लक्ष्मी कुमर वृहस्पति मरुत ब्रह्म सोम के सब (इमां नारीं प्रजया धर्षयन्तु) इस स्त्रीको संयमके साथ बहाने ॥ ५२ ॥ (पृहस्पतिः प्रयमः) पृहस्पतिसे उसके प्रयम (सूर्यायाः क्षीरं केक्षीं अकल्पयत्) सूर्यके शिरस केक्षीके बहना [तेन] उस तरह (अश्विनो) वायुवीकुमार (इमां नारीं पश्ये स क्षौमयामसि) इस स्त्रीको पसिने लिये कुक्षीके लिये ॥ ५३ ॥

[यत् बोधा अवात् उद् कम् इत्] जो स्त्रीके वक्ष चतुर्ध किया उसका क्या वह है । (मयया वासो वासो निमित्त) उसके प्रयम करनेवाली स्त्रीको मैं जानता हूँ । (यवरीः सविताः तां अश्विनो) यज्ञों और अश्विनोके साथ प्रयम मैं बहुकरन काया हूँ । (क्य बिभ्रात् इमान् पाशान् वि चर्षन्) जोय झाड़ी वक्ष पाशोंको काट सकता है ? ॥ ५४ ॥ (अहं वि प्यामि) मैं खोजता हूँ (कस्याः मयि कम्) जो इसका क्या सुकर्म है । (मयया कुलाध्वं पश्यन् वृ वेदवित्) मयका पोंकका देखकर ही जान होता है । (न स्तेयं वासो) मैं चोरी करने का नहीं जानता हूँ । मैं (स्व्यं भेषान् पाशान् धर्षयन्) स्वयं बलके पाशोंको क्षिप्त करता हुआ (मयया उत अमुष्ये) मयके मुख होता है ॥ ५५ ॥

आशय—इस का(१)वर्क इच्छा लिये कल्याण वह वक्ष है झाड़ी वासोमे इसकी आशयान्ति दिना है । वह यद्वस्तु वक्षी वक्षे और ईश्वरकी इच्छा उसका अवाप्तोके पुत्र होने ॥ ५१ ॥

इन्द्राग्निक्षि यव देवी अश्विनो इस स्त्रीको अयम संयमों के साथ बहाने ॥ ५२ ॥

कृमयोके शिरपर अयम वाक ही और वह का(१) पति की मासिके लिये सुखीभर ही ॥ ५३ ॥

क्षीय अयम वक्षधारन करके जो कम् बगदा है वही देखनेयोग्य है । यवका वासवक्षम देता है, वासो लीके निमित्त देखना चाहिये । पति बहवर्कमे कर्मपत्नीकी अपने साथ बसा रखे । निवरोके पाशोंको दीन बिभ्रात् काट सकता है । ॥ ५४ ॥

मैं इस वक्षकोकी खोजता हूँ । इस मेरी कर्मपत्नीका कम् देखन मेरे लिये हैं । इसके मय की बर्कका करने की मेरे का जान किया है । मैं जो सोच करता हूँ वह कावक्षके कमाने मयका सोच करता हूँ । चोरीके पनका भोग मैं नहीं करता । मैं नरनके पाशोंको क्षिप्त करता हूँ वा मयके वक्षके मुख होता हूँ ॥ ५५ ॥

प्र त्वां मुञ्चामि वरुणस्य पाश्चात् येन त्वाऽर्षभात् सविता सुखेर्षाः ।

उरुं शोकं सुगमम् पन्थां कुणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥५८॥

उर्षच्छप्यमपु रक्षो हनाप्येमां नारीं सुकृते वंशात् ।

प्राता विपश्चित् पतिमस्यै विवेधु मगो राजा पुर पंतु प्रज्ञानम् ॥५९॥

मगस्ततश्च चतुरः पादान् मगस्ततश्च चत्वार्युष्पलानि ।

त्वष्टा पिपेक्ष मज्यतोऽनु वर्ध्नान्तसा नो अस्तु सुमङ्गली ॥६०॥

सुकिमुक्क बहत्तु विश्वरूपे हिरण्यवर्षे सुवर्ते सुचक्रम् ।

आ रौहः सूर्ये अमृतस्य शोकं स्योनं पतिम्यो बहत्तु कणु त्वम् ॥६१॥

अभ्रातृध्वीं वज्रपापशुशीं बृहस्पते । इन्द्रापतिध्वीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितबंध ॥६२॥

वर्ष- है (वधु) की । [त्वा वरुणस्य पाश्चात् प्रमुञ्चामि] तुमको वरुणके पाछेसे मुक्त करता है । [वन सुखेवम सविता वा अवप्रात्] विपक्षे सेवा करनेयोग्य भविष्यते तुझे बीच दिया वा । [तुभ्यं सहपत्न्यै] तुझ सहचरनारीकीके किये (वधु उरुं शोकं सुगं पन्थां कुणोमि) नहीं विस्तृत स्वाव और उचम गमनयोग्य मार्ग करता है ॥ ५८ ॥

[उरुं पच्छप्यम्] अपने सखीको करार उठाओ । (रक्षः अपा इवाप) रक्षकोंको मारो । (हनां नारीं सुकृते वंशात्) हथ कीछे पुन्य कर्मोंके रक्षो । (विपश्चित् प्राता अस्मि पति विवेधु) प्राची विपदावासे हमक किये पति प्राप्त बनाया है । (मग राजा मज्यतः पुरः पंतु) राजा भय क्षमता हुआ जाने वधे ॥ ५९ ॥

(मगो चतुरः पादान् पच्छक) अपने चार पादोंको बगाना, चतुर (भगवत्पत्न्यै वधुवत्) मगने चार कमलोंको बगाना । [त्वष्टा मज्यतः वर्ध्नां वधु पिपेक्ष] त्वष्टा मज्यमें कमरपट्टोंको बगाना । (सा वा सुमङ्गली वस्तु) वह हमारे किये उचम मंगल करनेवाली होवे ॥ ६० ॥

है (सूर्ये) सूर्ये ! (सुकिमुक्क विश्वरूपे हिरण्यवर्षे सुवर्ते सुचक्रं बहत्तु आरोह) उचम पुष्पोंसे पुष्प, जनेक कपडाका डोबेके समके समान चमकनेवाला उचम हैहनोंसे पुष्प उचम चक्रोंसे पुष्प हम रथपर चढ़ । (वधुवत्पुष्पं शोकं आरोह) वधुवत्पुष्प शोकपर चढ़ । (आ रौहः पतिम्य स्योनं कणु) आ रौह विपदा वदेव वा रथको पतिपोंके किये सुखकारी करो ॥ ६१ ॥

है (वरुण बृहस्पते इन्द्र पतिवत्) हैरो ! (अभ्रातृध्वीं) यह वधु माईपोंका वध न करनेवाली, (पुत्रिणीं) वधवित्री, पुत्रिणीं वत्सम्यं बह) पच्छक वध न करनेवाली पतिवत् माक न करनेवाली चार पुष्प उरपक्ष करनेवाली हमारे किये प्राप्त करो ॥ ६२ ॥

आकर्ष- सवितये तुष्ट इत समवत्क मिल पाकस वाच रक्षा वा उच वरुणके पाछोंकी ये सोःकता है । तुष्ट ईश्वी सुभोग्य धर्मपत्न्यै के किये वधु विस्तृत शोक प्राप्त हुआ है और उचपतिवत् मार्ग सुगम हुआ है ॥ ५८ ॥

हथ नर्मकलीको कष्ट देनेवाले रक्षकोंका नाश करनेके किये हथ शोक इतिवार वधु सुपश्चित् रक्षो । वधः हथ कीछे पुन्यकर्मोंके बगाना प्राची विपदावासी धमपिथे हथकी वह पति प्राप्त हुआ है राजा भी वह क्षमता हुआ विपदायें अनश्वरी हुआ वा ॥ ५९ ॥

अपने पोंके चार क्षामुवत् और शरीरपर चारव करनेके चार पूल बकने और कमरमें चारव करनेयोग्य कमरपट्ट बगाना है । हथकी चारन करके वह की उचम मंगलकारी वधे ॥ ६० ॥

वह वधु उचम कृष्णसे पुष्प शीघ्र लीबेके नक्षत्री क्षमसे सुप्रीमित उचम नक्षत्रोंके रथपर चढ़कर अमर पदोंके धर्मधर चक्रमय करे । वह धर्मसखीकी विवाहयोग्य पतिवत् वरवाक्योंके शिव सुखकारक होवे ॥ ६१ ॥

वह की पतिके पाने पतिके माई पट्ट आनेपोंके पुष्प वध । पतिसे मुक्त देवे । पुत्रीसे क्षम करे । और वरवत् क्षम्य वधनेवाली वधे ॥ ६२ ॥

मा हिंसिष्ट कुमार्योऽस्यैवेव कृते पृथि । शालाया देव्या द्वारं स्योनं कुम्भो वधूपयम् ॥११॥
मन्त्रापरं पुण्यतुं मन्त्रं पूरे मन्त्रान्तरा मन्त्रतो मन्त्रं सर्वतः ।

अनाम्याणां देवपुरां प्रपद्यं शिवा स्योना पतिलोके वि राज

॥१४॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[२]

तुभ्यमग्ने पर्यैव हन्सूयां वदतुना सह । स नः पतिभ्यो ज्ञायां दा ज्ञये प्रजया सह ॥१॥

पुनः पत्नीमग्निरेव दायाया सह सर्वता । दार्घ्यापूरस्या यं पतिर्जीवाति धुरदः धुतश्च ॥२॥

सोमस्य ज्ञाया प्रथम गच्छेत्तदपरः पतिः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥३॥

अर्थ— हे (सूर्य) दोनों स्तम्भो ! (देवकुल पति) दोनों कन्या मर्मपर (कुम्भार्थ मा हिं ।) हम कुम्भी सूर्य
हिंसा न कर । (देव्याः शालायाः द्वारं वधूपय स्योनं कुम्भः) परमेश्वर द्वारों वधू बानेके मर्मो हम कुम्भ
नरते हैं ॥ १३ ॥

(अग्ने पूर्व अन्तरा मन्त्रः सर्वता मन्त्रा तुभ्यता) आगे पीछे अन्तर्में बाह्यमें अर्थात् अन्तः मन्त्र
प्रथमार्थनाके मन्त्रोक्त प्रयोग किया करो । हे वधू ! तू (अनाम्यानी देवपुरी वरदा) क्याचि हित एवं भरीको प्राप्त होकर
(पतिभ्यो ज्ञाया स्योना वि राज) अपने पतिके स्वायम्भुवत्कालपर्यन्त और पुत्र देवताकी होकर प्रकटित हो ॥ १४ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

अर्थ— हे आगे ! (अग्ने तुभ्य) आगेयों के अग्ने ! वहतुना सह पूर्वां सर्वैव हन् । देवजक ज्ञान सूर्यको के ज्ञान
प । (सः) वह तू (यः पतिभ्यः) हम सब पतिभ्योके (प्रजया सह ज्ञायां दा) अन्तर्गतहित वा पीछे प्रदाय कर ॥ १॥

(दायाया सर्वता सह) दार्घ्यापूर्यन्त और सर्वतः ज्ञान (अग्निः पत्नी पुत्रः वरदा) अग्निने पत्नीको पुत्रा अन्त
किया । (अस्माः या पतिः) इसका को प्राप्त हो वह (दार्घ्याः वरदाः ज्ञान जीवाति) दार्घ्याः वरदा को सर्व जीवित
रहता है ॥ २ ॥

(प्रथम सोमस्य ज्ञाया) सबसे प्रथम सोमकी पत्नी है (सः अपरा पतिः मन्त्रः) वेदा दूसरा पति मन्त्र है । (हे
पुत्रोऽपि पतिः अग्नि) वेदा तीसरा पति अग्नि है और [हे तृतीयः मनुष्यजाः] वेदा चतुर्थ पति मानव है ॥ ३ ॥

माशये— वह वधू वसोके माशये जा रही है अतः इसको किसी तरह कट न हो । इसके पठिते परम ज्ञान और इसके
पातके परम द्वार हमक ज्ञान मुक्तताकी होये ॥ १३ ॥

इस वधूके माशो और कम आर ईश्वरार्थनाका वायुमन्त्र ही । जहाँ अग्नि नहीं है वहाँ पतिके न कर देववतीको न
पशू पात हो । पातके अग्ने तुभ्यन्त और अस्मात्पुत्र वरदा वह वरदा ॥ १४ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

देवज पतके पर अन्तर्में पूर्व कन्या अग्निही उपासना प्रथम करती है जिसके एक कन्याको पतिके पर पुत्र और ज्ञान
ज्ञान प्राप्त होता है ॥ १ ॥

अथ उपासना अर्थात् अन्त अथवा हवन करनेके पीछे दायाया अन्त पारितोषिक वा अन्य प्राप्त होती है । अन्तरा पति के
एव हवनके दार्घ्याया अन्त पति पुत्र वरदा है ॥ २ ॥

स म पत्नी अग्नि व वधू अग्ने वरदाके तीव्र पति है । और पशू उक्त कन्याका विशाह मनुष्य पतिके ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

सोमो वदद् गन्धर्वीयं गन्धर्वो वदद्बुधैः । रविं च पुत्रायांदाबुधिमस्रमथो हुमाम् ॥४॥

आ वामगन्धमुपतिर्वीचिनीयसू न्युधिना हुम्सु कामा अरसत ।

अभूतं गोपा विष्णुना ह्यमस्पती प्रिया अर्थस्यो दुर्गा अग्नीमहि ॥५॥

सा मन्दसाना मनसा शिवनं रविं वैद्वि सर्वेश्वर मधुस्यम् ।

सुगं तीर्थं सुप्रपाथ ह्यमस्पती स्याथु पथिष्ठामपं दुर्मति इवम् ॥६॥

या ओषधपोषा नद्योऽङ्गु बानिक्षेत्राणि या वना । सास्वा वधु प्रजावर्ती पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥७॥

यमं पन्थामरुधाम सुपं स्वस्तिवाहनम् । यस्मिन् शिरो न रिष्यस्यन्तेपा विन्दते वसु ॥८॥

जर्मे- शिवको (सोमः गन्धर्वीयं वदद्) सोमके गन्धर्वको ही(गन्धर्वीः कर्मके वदद्)गन्धर्वके अगिका ही (अथो हुमां) और हुमी कन्माके तथा [रविं च पुत्रायां च अग्निः मधो मधुम्] वम और पुत्रोको अग्निमे मधु मदान कि १ २ ३

[वां सुमतिः वागम्] आपकी उचम मति प्राप्त हुई है । हे [गतिनीयसू अधिनी] वम बार धनमुक्त अधिनी हेमो ! [वामगं हुम्सु नि अरसत] हमारी धुम ह्मकारे वरकोमें दिवर हो गई है । हे [ह्यमस्पती] सुमके पाकको । [विष्णुना स्योपा अधुम्] तुम दोनो इन्द्रिकोके पाकक क्यो । [अर्थस्यः प्रियाः दुर्गायां अधीमहि] आर्य मनवाके भंड देवके शिव होकर हम उचम करोको प्राप्त हों ॥ ५ ॥

[सा मन्दापा] वह आभिरुच रहनेवाकी हू की [शिवेव मनसा] सुम आपनापुक्त मनसे [सचदीरं वदस्व रविं वैद्वि] सर्व वीरके मुक्त प्रसन्नगीय चबकी यमका कम् । हे [सुमस्पती] सुमके पाकको । हमारे किंव (धीर्गे सुग) केनेका स्थान सुमम हो (सुप्रपाथ) उचम कक पीनेका स्थान है । तथा पवित्रां स्वन्तु) मर्ममें प्रतिबन्ध करके- वाक स्तंभ जेती (दुर्मति) कुछ बुद्धिवाके सपुको (यमं) मार कर मार करा ॥ ६ ॥

हे वसु ! या ओषधपोषा (ओषधपोषा) का (वा गय) को गवियी, (वाणि क्षत्रिय) का क्षेत्र जद (वा वना) को वन है । (तां) वे धन वदार्थ (वधु प्रजावर्ती तां) पथिक किंव संशयपुक्त वसुको (रक्षसा रक्षस्यु) राक्षसोके सुरक्षित रहें ॥ ७ ॥

(हुयं वन्मा आरुधाम) हुय मर्मके जर्मे, वह [सुपं स्वस्तिवाहनं] सुगम और गरीके किंव धी सुचकर ह, (यस्मिन् शिरो न रिष्यसि) शिवमें वीरका वाक नहीं होमा और (पन्थामां वसु विन्दते) हमरोको अपक्षा वहा धन अधिक निकलते ॥ ८ ॥

कथाय- सोम गन्धर्वको देता है कन्धर्व आगेके हाथमे समर्पण करता है और अग्नि पुत्रेवपारमपथिक वाप मनुष्यके आशय हुय कथाको करता है ॥ ४ ॥

कक देवीके अधिपत्यमें कन्माध उचम मुक्ति प्राप्त होती है । पथाम उचके वरकोमें कायको स्थान मिलता है । उच धयम अधिनी देव हम वधुरको रक्षक होते हैं । हुय धयम अपना धन अह विचारोंय मुक्त वरक अपने करोमें वमके वाक वरना कथिा है ॥ ५ ॥

जर्मे पतिके पारमें आरुधाम (ह्येवानी जर्मेवानी जर्मे मर्ममें ह्यमस्पत्य भाग करे भी की भावपुक्त भाग और प्रक्षेप देयम वमके कर्मिकी जे । हुय ईपतीके मर्म सुमम हो हुयकी पर्वीय आनयम प्राप्त हो मार हुयक उचपित मय कि इत्यक हो और हुय मुक्ति रविक वरु हो ॥ ६ ॥

ओषधपोषा कहिको कक स्थान धन यदि धन रथायमें सतानावाकी और पतिके वर ज देवानी इध की की रथा हो जर्मां पोर्गे पावय इको वरुका म पदुप्यो ॥ ७ ॥

ये मर्म सुम और शिवेव हो उचम मय वरो और उच मायके काको कि शिवमें उचम विवाहके कायम सिद्धे होत

इह सु मे नराः क्षुण्णत ययाऽऽशिषा दम्पती वाममभ्रुतः ।

ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽपि तस्युः ।

स्योनास्ते अस्यै वृक्षै मयन्तु मा हिंसिषुर्वहृतुमुद्यमानम् ॥१५॥

ये वृषभश्चन्द्रवहृतुं यक्षमा यन्ति जना अन्तु । पुनस्तान् अक्षिषा देवा नयन्तु यत् आगताः ॥१०॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति वपती । सुगेन दुर्गमतीवामप द्रान्त्वरातयः ॥११॥

सं क्राधयामि वहृतुं मन्त्राणा गूदेरघोरेषु चक्षुषा मिथियेन ।

पुष्यामन्दं विशकर्ष यदस्ति स्योन पतिभ्यः स्रविषा तत् कृणोतु ॥१२॥

क्षिवा नरीयमस्तुमार्गक्षिम प्राता लोकमस्यै दिदेश ।

तमर्यमा ममो अशिनोमा प्रजापतिः प्रजया वर्षयन्तु ॥१३॥

अर्थ— हे (नरा) मनुष्यो ! (ये इह क्षुण्णत) मेरा यह भावण सुनो । (यया आशिषा) मिल जातीरहने (दम्पती वाने कह्युतः) ये नर और वृक्ष सुखको प्राप्त होते हैं । (ये गन्धर्वाः अप्सरसश्च देवीरेषु) इस वर्गमें (ये गन्धर्वाः अप्सरसश्च देवीरेषु) जो गन्धर्व और अप्सराएँ इतरी हैं (ये अस्ते वृक्षै स्योना अयन्तु) ये इस वृक्ष के अग्नि सुकृताती और (उद्यमानं वहृतुं मा हिंसिषुः) इहेन के जानेवाले इस वृक्ष का नाश न करें ॥ १५ ॥

(ये वृक्षमाः जवात् वृष्ट) को रोग मनुष्योंके सन्मुखसे (वृष्यः चन्द्र वहृतुं यन्ति) वृक्षों सेवली दोन रत्ने पास पहुँचते हैं, (प्रातः आगताः अक्षिषा देवाः) अब रोगोंको वही जाने वृक्षों सेव (पुष्या मन्दं विशकर्ष यदस्ति स्योन पतिभ्यः) फिरसे जहाँके नाश के वहाँ के जाने ॥ १० ॥

(ये परिपन्थिनः वामोदन्ति) जो छूटते समीप प्राप्त होते हैं (दम्पती मा विदन्) इस पतिपत्नीको न जाने । ये वृषभ (वृषभश्चन्द्र वपतीव) सुगमतासे कठिन प्रसंगसे पास हो जाय । और वृषभ (वरातवा नयन्तु) वृष्ट हो ॥ ११ ॥

(वहृतुं वृक्षै दहेनयुक्त) वृक्षों (गूदेः मन्त्राणा गूदेरघोरेषु मिथियेन चक्षुषा) चारों ओरके घरवाले कोन इन्द्रार्ण क्षीर घौर निद्रताकी जाँचसे देखें, देखा मैं (सं क्राधयामि) इनको वक्राक्षित करता हूँ । (वृष विशकर्ष पुष्यामन्दं वृष्ये) जो निद्रित कृपयत्ना वक्रा हुआ है उसको (अक्षिषा पतिभ्यः स्योन कृणोतु) ईश्वर पतिके अग्नि सुकृताती वाने ॥१२॥

(वृषं क्षिवा मारी अस्तं मार्गम्) यह कल्याणायिनी श्री पतिके घर आगती है । (प्राता अस्ते इमं कोनं दिदेश) ईश्वरने इस पतिकोकला मार्ग दर्शाया है । (तमर्यमा ममो अशिनोमा प्रजापतिः) ये सब देव (जो मन्त्रा वर्यन्तु) उद्यमान प्रकृति प्राप्त वरानें ॥ १३ ॥

माथार्थ— इस कोन इस वाक्याको सुनें कि यह विशिष्ट लीपुद्वय इस सप्तरात्रे सुखपूर्वक रहे । वक्ताही तथा श्रवणही कोईनी इनको हुआ न देने । ये मन्त्राण्तरमें वक्रमे कर्में तो भी किसी प्रकार इनको हुआ न हो ॥ १५ ॥

अन्यसुत्रार्थमें जानेके जो रोग अथ कि कारण होते हैं और वृक्षों मार्गमें भी को रोग होता संभव है वे सब रोग अपने हट होने ॥ १० ॥

मार्गपर जो छूटते होंगे वरने इस दम्पतीकी कष्ट न हो वे पतिपत्नी सुखमत्ता पठित प्रसंगसे पार हो जयि । और वरने सब क्षुण्ण हट ॥ ११ ॥

अब दहेनयुक्त रथ ना पत्नीका पतिके घर जानेका रथ मार्गके वक्रा जाने तथा चारों ओरके घरवाले सब कल्याण अपनी मित्रपक्षिसे देखें । जो भी कुछ निद्रित रथकृपयसे पक्षी हों वे सब ईश्वरकी कृपासे हूँ पतिपत्नीके अग्नि सुकृताती वानें ॥ १२ ॥

यह सुखमावृत्ती की पतिके घर जाती है वनों कि निगावने वही स्थान इसके अग्नि निर्दिष्ट किया था । अब देव इसके उत्तम रथानें ॥ १३ ॥

आत्मन्वत्सुर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत्तु भीजमस्याम् ।

सा वः प्रजां जनयत् वृक्षणाभ्यो विभ्रती दुग्धसूपमस्य रेतः

॥१४॥

प्रति सिष्ठ विराजसि विष्णुरिदं सरस्वति । सिनीवालि प्र जायतां मगस्य सुमतावसत् ॥१५॥

उव् वं ऊर्मिः धर्मा हन्त्वापो योषत्राणि मुञ्चत । मार्तुष्कृतौ व्येनिसावृष्णानश्नुमार्ताम् ॥१६॥

अधोरषधुरपतिष्ठी स्योना धग्मा सुधेवा सुयमा गृह्म्यः ।

वीरखदेवकामा सं त्वयैषिपीमहि सुमनस्यमाना

॥१७॥

अर्थ— (आत्मन्वती कन्या रूपे नारी आगत्) आत्मिक कक्षे पुत्र उत्पन्न करनेवाली वह नारी पतिके
 र अर्पण है । (वर तस्यां वर्त्तां वीजं वपत्तु) हे मनुष्यो ! त्व कीमें वीज बोधो वीर्यकर वाच्य करे । (मा वः) वह
 प्रकारे किये (आत्मन्वत् दुग्ध रेतः विभ्रती) बीजवात् दुग्धका वर्ण वारण करती हुई (वृक्षणाभ्यः प्रजा जनयत्) अपने
 भाँसवसे प्रजा उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

हे को ! तू (प्रति सिष्ठ) बड़ी प्रतिष्ठित हो तू (विराजसि) विजय केवली है । तुम्हारा पति (विष्णुः इव इव)
 देव्युके समान बड़ा है । हे (सरस्वति, सिनीवालि) विद्या देवा और वक्रावती देवा ! इसी (मगस्य) सतान हो भार
 वह (मगस्य सुमतां वसत्) धनवत् देवकी सुमतिमें रह ॥ १५ ॥

(वः ऊर्मिः धर्माः इव हन्तुः) आपकी छतर छात्रिका स्थिरताका भंग करे । हे (माया) बड़ों
 (योषत्राण्य मुञ्चत) पुणोंको छोड़ दो । (मार्तुष्कृतौ व्येनिसावृष्णानी) दुष्ट कर्म न करनेवाक पादासे छोड़ हुए दोनों देव
 [वृक्षं मा आतां] वृक्षको न मार हो ॥ १६ ॥

[गृह्म्यः] अपने घरके किये [अधोर षधुर अपतिष्ठी स्योना] ऊँ रहि न करनेवाली, पतिहत्या न करनेवाली
 सुखकारिणी [वरमा सुधेवा सुयमा] कल्याणकारिणी सेवा करने योग्य सुविषयोंके करनेवाली [वीरख देवकामा]
 वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली देवकी रूपः पूज करनेवाली और [सुमनस्यमाना] उत्तम मान्य करनेवाली पुत्र [त्वया
 पतिपीमहि] तुमसे हम धन्य हो ॥ १७ ॥

अर्थ— वह की आत्मिक कक्षे पुत्र है और पुत्र उत्पन्न होनेकी काफ़ी पुत्र है अर्थात् वह संया यही है । पति इव कीमें
 अपने वीर्यका आधान करता है और वक्राव वह की वक्र वर्णका वारण करती हुई अपने वभाँसवसे संतानप्रतिष्ठा करती
 है ॥ १४ ॥

जी अपने पतिगृहमें प्रतिष्ठित हो की नारी ब्रह्मणी है उच्छा पति वप है और वह वतको देती है । इव प्रतिष्ठी-
 की उत्तम संतान प्राप्त की और वे दोनों उत्तम पुत्र धारण करें ॥ १५ ॥

प्रजापते वर छात्रिका भंग होने अर्थात् मनको चङ्ग नहीं हो कछ धन्य वाहनके देव छवि जाँव और वनको उत्तम
 स्थानमें सुखित रखा जाय ॥ १६ ॥

वह की वतके वरमें व्याकर आत्मन्वते रहे आँसे योग्यपुत्र न कर पतिकी हितवधारी को धर्मविधमोच पात्रन करे
 वनको पुत्र रहे अपनी संतानोंकी वीरताकी शिक्षा देने देवर अर्पितक शंभु एक अमृतान्नमे पुत्र भाव रहे । ऐसी कीसे
 वर पुर्वर होय है ॥ १७ ॥

अवेदुष्यपतिमीहेषि शिवा पशुम्यः सुयर्मा सुवर्णीः ।

प्रजावती वीरसुहृत्कामा स्थानममधि गार्हपत्यं सपर्य

॥१८॥

उत्तिष्ठतः किमिच्छन्तीदमाणा अह रेत्यमिभूः स्वाव गृहात् ।

दूनेयी निरुक्ते याजग चाचिष्ठागते प्र पत मेह रसाः

॥१९॥

मुदागार्हपत्यमसपर्येत पूर्वमधि वृष्टिरेषम । अद्या सरस्वत्यै नारी पितृम्यश्च नमस्कृत ॥२०॥ (८)

सर्भ वर्येतदा हरास्यै नार्पा उपस्तरं । सिनीवालि प्र जायता मर्गस्थ सुप्रतामसत् ॥२१॥

य वत्सव न्यस्यथ चर्म चोपरवृषीयनं । तदारोहतु सुप्रजा वा कुन्मा विन्दते पतिम् ॥२२॥

[अवेदुषी अपतिमी] देवका नाथ न करनेवाली, पतिव्रता या न करनेवाली [पशुम्यः शिवा] पशुचोषक करनेवाली [सुयर्मा सुवर्णी] उत्तम भियमोके करनेवाली और उत्तम तेजसे युक्त [प्रजावती वीरसु] अत्यशुच, वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली [दृक्कामा स्थोका] पतिव्रत करने वाली ऐसी कामया करनेवाली सुप्रतामिनी वृ [हन वर्येत्येवमधि सपर्य] इस गार्हपत्य अधिष्ठी पूजा कर ॥ १८ ॥

हे [मित्रेय] वीरसुहृत् । [अह रिद्ध] उह, कहो कि [किं इच्छति] तु क्या चाहती हुई [इह वास्य] वहाँ आगई है । [अह नामिभूः] मैं तेरा पराभव करनेवाला । [स्वाम् पृष्टम् त्वा ह्वं] अपने घरके लिये हरा देना है [अह्यम एषि] जो घरके लिये करना चाहती हुई तू [याजगम्या] वहाँ आगई है हे [अ-गते] अनुप्राप्य इति । [वाचत] वहाँ उठ और [प्र पत] दूर भाग जा । [इह मा रसाः] वहाँ मद्य समयाह हो ॥ १९ ॥

(वरा इव वपु) उह यह स्त्री (पार्श्वार्थ अग्नि एवं जलपर्येत, पार्श्ववर्तमानि पारिके पूजा करे, (वरा उपवस्य ह (नारी) को) वृ । सरस्वत्यै विमुग्धा वा नमस्कृत सरस्वतीको और सिनीवालीको नमस्कार ॥ २० ॥

(अह्यम एषि) इस स्त्रीक शिव (उपस्तरं पृष्टं सर्भं वर्यं) निजके लिये वह कुछ और साधन (वारा) के वा । हे (सिनी-वालि) वह देनेवाली स्त्री ! (प्र जायता) यह स्त्री उत्तम रीतिसे संवति उत्पन्न करे और (सुप्रतामसत्) भयवादी उत्तम भविष्ये रहे ॥ २१ ॥

(वं वरवज स्वस्वव) जो चलाई जाये विद्यासे है (वा चर्म उपवसूनीयव) और चर्म उपा विद्यासे है । (वा वत्सव पतिं विन्दते) जो कन्या पतिको प्राप्त करती है, वह (सुप्रजा वत्सव मताहवृत्) उत्तम सदाव उत्पन्न करनेवाली उह व वत्सव ॥ २२ ॥

भाष्य— श्री श्री गृहमें आकर दार और पतिव्रता दित करे पशुओं का उत्तम पालन करे, भर्तृविरहित कन्या को तेजविरती बन अपनी सन्तानों कीरताकी शिक्षा देने और आसकी वनजला उपपन्ना करे ॥ १८ ॥

पृष्टवाके चर्म दहिता न ह । गृहस्थ भवन प्रवासन शरीर दूर करे । जो घर पुरश्चर्यव दान होता है उहने वर्येत रहता है । अतः प्रवासन शरीरनाथा दूर करन योग्य है ॥ १९ ॥

अं वित्तचर्ये प्रतिदिन वत्सव पतिने गार्हपत्यामिभू हवन्नाथ उपपन्ना करे वत्सव विद्यावतीको और वत्सव रिद्धिद्वेष करे ॥ २० ॥

पति अपनी स्त्रीके लिये हर एक प्रयासे युक्त रहें और उपासी उत्तम रह्या करे । वह जो उपाय भव वत्सवार्थ उत्तम वं वि उत्पन्न करे आर ऐसा भाष्य करे कि इसका वा वाच्यार्थ इह वास्य हो ॥ २१ ॥

इहम वाच्यो चलाई विद्यासे लभे, उत्तर कुन्मादि विद्यावा नाव । वा स्त्री पतिव्रता पति करती है वह गृहस्थ भवन करनेवाली स्त्री इह विद्यावत्त रह्ये ॥ २२ ॥

उपे स्तुणीहि पश्येज्मधि चर्मणि रोहिते । तत्रोपविश्य सुप्रज्ञा इममग्निं संपर्यतु ॥२२॥

आरौहि चर्मोप सीदुग्धिमेव देवो हान्ति रक्षोसि सर्वा ।

इह प्रजा अनय पश्ये अथै सुज्यैष्ठ्यो मंगत् पुत्रस्त एवः ॥२४॥

वि विष्टन्ता मातुरस्या उपस्याभानाकृपा पृथनो आर्यमानाः ।

सुमङ्गलस्युप सीदुममग्निं संपत्नी प्रति भूपह वेवान् ॥२५॥

सुमङ्गली प्रनरणी गृहाणी सुधेवा पश्ये शश्वराय श्रमूः ।

स्योना श्वश्रै प्र गृहान् विश्रमान् ॥२६॥

स्योना मंत्र शश्वरस्यः स्योना पर्ये गृहस्य । स्योनास्यै सर्वस्यै विश्वे स्योना गृहायैवा मत्रः ॥२७॥

सुमङ्गलीरिय वृष्टिमां सुमेत् पश्येह । सौमित्रमस्यै दुश्वा क्षौभीर्येतिपरंतन ॥२८॥

अर्थ— (वक्त्र उपस्तुणीहि) वहिष्ठ चराह फला हो पक्षात् (अग्नि चर्मणि रोहिते) य् चर्मक ऊपर (तत्र सुप्रज्ञा उपविश्य) वहां सुप्रज्ञा उपविष्ठ कर देवाकी वह स्त्री (इव अग्नि सारौहि) इस अग्निही उपासना करे ॥ २३ ॥

(चर्म आरौहि) इस चर्मपर वह (अग्नि उप भावीह) अग्निह मयीव वेद । (एवः देवाः सर्वाः रक्षोसि हन्ति) वह देव सब राक्षसोंका नाश क ता है । (इह अत्यै पश्ये मंगत् जनय) वहां इस पतिक क्रिये संतान उत्पन्न कर । (ते एवः पुत्रा सुमङ्गला मवत्) तेरा वह पुत्र उत्पन्न भव बने ॥ २४ ॥

(अस्या मातुः उपस्यात्) इस माताक पति (आभमानाः भावा कृपाः पृथक् वि विष्टन्ता) उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके वपु उडरें । (सुमङ्गली संवारी इम अग्नि उपसाह) उत्पन्न मंगल कामवादीकी और वक्त्र पतिके साथ वह स्त्री इस अग्निही उपासना करे और (इह इवान् मविद्युत्) वहां देवोंकी सेवा को छोटा बनावे ॥ २५ ॥

(सुमङ्गली) उत्पन्न मंगल कामरूप कारण क देवाकी (सुप्रज्ञा संवारी) चरोंको बुझावे व् करानेवाकी (पश्ये सुधेवा) पतिकी उत्पन्न सेवा करनेवाकी (शश्वराय श्रमूः) शश्वरको मुक्त देनेवाकी (इयम स्योना) माताको कार्य देनेवाकी ह् । (इमान् गृहान् विश्रम्य) इस स्त्री में विश्रम हो ॥ २६ ॥

(शश्वरस्यः स्योना मत्र) शश्वरके क्रिये सुख देनेवाकी हो (पर्ये गृहस्य स्योना) पति और उसके क्रिये दित-कायिकी हो (अत्यै सर्वस्यै विश्वे स्योना) इस सब प्रजासमूहको सुखदायिनी (स्योना एषा पुत्राव भव) सुखदायक होकर इस सबकी पुष्टि क्रिये हो ॥ २७ ॥

(एवं सुमङ्गला वपुः) वह मङ्गलवपु वपु है । (मयेत् इमां पश्यत) इन्हें देखो और इसको देखो । [अत्यै सौमित्रमस्यै] इसको सौमित्रका भावीवर्ष वक्त्र [रोहिताय वि रोहिताय] दुश्वा नामको वृ करके वृष्ट वपुष्ट काको ॥ २८ ॥

भावार्थ—पत्निके चराह देवाकी उत्पन्न अथै किये हो वहां अथम संतान उत्पन्न करनेवाली स्त्री बैठकर अथम ही उपासना करे २३ इव चर्मपर वह अग्निही पूजा कर । वह मातृवैव सब वृष्ट राक्षसोंका नाश करता है । इस संवाराये अपने पतिक क्रिये संतान उत्पन्न कर । वह तेरा वहिष्ठा पुत्र उत्पन्न भव बने ॥ २४ ॥

अब वह स्त्री माता होने, तब उसके साथ वि वक्त्र रत्नरूप के जो अग्नि पशु रहेंगे । वह स्त्री उत्पन्न मंगल कारण की कामना करके अग्निही उपासना करे और देवोंका सुमुखित करे ॥ २५ ॥

उत्पन्न मंगल कामकायकी पहचानीको बुझाव सुधेवाकी पतिकी सेवा करनेवाकी शश्वरको मुक्त देनेवाकी यावत्त दित करनेवाकी स्त्री अपने बने प्रसिद्ध हो ॥ २६ ॥

वह स्त्री शश्वरोंका दित करे पतिकी मुक्त वे सब घरवालोंका दित करे और सबको पुत्र रावे ॥ २७ ॥

एव सारौहिष्ठ इत्येत् देवः वहां अग्नि और दृष्ट वपुष्ट दर्शन करे । वह वपु वृष्टत अथवा करनेवाकी ह् । अतः ये दृष्ट वपुष्टी पुनायनीर देव, दृष्टि को वृष्ट भाव है, सबकी दृष्ट करके वापस अपने घर आवे ॥ २८ ॥

अप्सरसः सप्रमादं मदन्ति हविषानमन्त्रा सुर्वे च ।
 तास्तं अनिब्रममि ताः परं हि नमस्ते गार्ध्वर्तुनां कुणोमि ॥३४॥

नमो गार्ध्वस्य नमस्ते नमो मामाय चक्षुषे च कुम्भः ।
 मिश्रावसो म्रद्धणा ते नमोऽमि आया अप्सरसः परं हि ॥३५॥

राया सुयं सुमनसः स्यामोदितो गार्ध्वभावीभूताम् ।
 अगन्तस्तेवः परमं सुप्रस्थमर्गम् यत्र प्रविशन्त आर्षुः ॥३६॥

सं वितरावृत्तिये सुजेयां माता पिता च रेतसो मवायः ।
 मयं हव योषामविरोहयैनां प्रजां कुन्वायामिह पुण्यत राषिषु ॥३७॥

वर्ध- [इतिथं अमरा सुर्वे च] इतिथं और सुर्वेके मध्यमें [अप्सरसः सप्रमादं मदन्ति] अप्सराएं छाय साथ मिश्रकर आनन्दित होयेवाले कर्ममें आनन्दित होती हैं । [तां ते अनिब्रं] वह तेरा सम्मान है । [माः अमि परं हि] वचने पाठ था । [गन्तव्यं कर्तुवा ते वमः कुणोमि] गन्तव्यके कर्तुवोंके साथ तुझे मैं वचन करवा हू ॥ ३४ ॥

[गार्ध्वस्य वमः नमः] गार्ध्वके वमस्कारको हम वमस्कार करते हैं । उसकी [मामाय चक्षुषे च वमः कुम्भः] तबस्वी आँखके छिमे हम वमन करते हैं । हे (विश्वावधो) इस वचने पुनः (ते म्रद्धणा वमः) तुझे हम म्रद्धाके साथ वमन करते हैं । [अप्सरसः आयाः अमि परं हि] अप्सरा वैसी स्त्रियोंके छाय परे जा ॥ ३५ ॥

[यत्र राया सुमनसः स्वाम] हम वचने साथ वचन मवाचने हैं । (इतः गार्ध्वं उह वावीभूतां) वहाँसे गार्ध्वके वीरे स्वीकार करें, प्राप्त करें । (अः देवा परमं सुप्रस्थं मगम्) वह देव परम भेद स्थानको प्राप्त हुआ है । (यत्र आर्षुः प्रविशन्तः आगन्तः) वहाँ आर्षुको शीर्ष वचाते हुए हम पहुँचते हैं ॥ ३६ ॥

हे [विवरी] मातापिताओ ! [अस्थिमे संसृजेयां] आत्मास्थिमें संसृज्य होवो । [रेतसा माता च पिता च मवाया] वीरके योगसेही तुम माता और पिता बनोगे । [मयं हव यनां योषां अविरोहच] मर्दके समान हव जाँके छाय विरोधपर नह । [हव मयां कुन्वायां] वहाँ छायन उत्पन्न करो और [रविं पुण्यत] वचने पुनः करो अर्थात् वचावो ॥ ३७ ॥

मार्थ-— हव वद्वत्त्वमधुमि और सुर्वे इसके बीच अमरिषामें अप्सराएं [सुर्वे मयाएं] एक वचने आनन्दते रहकर बहुत आनन्द प्राप्त करती हैं । हव प्रथम मुहूर्त अन्धे वचने आनन्दते रहे । रिशनां ही छपकी वस्तुविषय स्थान है अतः उनके चर्चें सुन रहे । और मृत्युके कर्तुवा आवरपूर्वक कर्तुवागी होवे ॥ ३४ ॥

वृद्धके वमस्कार करेपर उसको वचन करवा जयित है वचन तेमस्वी आँखके साथ अपनी आँख मिश्रकर वमन करवा वयित है । हव तब परस्परको आनन्द वमस्कार किया जावे । और पुनरी जीके साथ पुनः वर प्यकर पदमप को ॥ ३५ ॥

वचुषको वैवा जीवा वन मिले वैवा वैवा वह वचने सुम संस्थायि पुनः वने । और ये ईश्वरको मानववाके हैं । वह ईश्वर परम वच स्वामवर विराजमान है वहाँ हम आर्षुको शीर्ष वचाते हुए बहुत वचते हैं ॥ ३६ ॥

हे रवी पुनरो तुम अपनी रबीवीरके वचनेही मत्तापिथ वन वचते हो अर्थात् छत्तान उत्पन्न कर वचते हो । अतः आर्षु वचनमें संसृज्य होवो । मर्दके समान रवीही पुनः होवो वत्तान उत्पन्न करो और वन भी प्रपन्न करो और वचाव ॥ ३७ ॥

स्योनाघोनेरपि पुष्यमानो हसामुदो महसा मोदमानौ ।

सुगु सुपुत्री सुगुहो सरायो जीवावुपसो विमातीः

॥४३॥

नव पतानः सुरभिः सुबासा उदागा जीव उपसो विमाती ।

आण्हात् पतत्रीवांशुषि विषस्मादेनसस्परि

॥४४॥

श्रुमन्नी चापापृषित्री अन्तिमुस महिमे । आपः सत सुसुपुत्रीस्ता नो मुसन्त्वहसः ॥४५॥

सूर्यि देवस्यो मित्राय चक्षुषाय च । ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इहमंकु नमः

॥४६॥

य कृते विदमिभिपः पूरा जप्सुस्य आह्वः ।

सचाता संधि मषवा पुरुषमुनिष्कर्ता विहृतपुनः

॥४७॥

अर्थ—[हसामुदो महसा मोदमानौ] हासविशेष करनेवाले महत्त्वके विचारसे आनंदित होनेवाले [स्योमात् गोमे] अग्नि पुष्यमानौ] सुखदायक सचनमंदिरसे जाकर उड़नेवाले, [सुगु सुपुत्री सुगुहो] उत्तम इंद्रियों और गीतोंसे युक्त उत्तम वाद्य बजनेवाले उत्तम वरावाक [जीवो] जो जीव जगत् की और पुष्य [विमातीः] उपसः उदागाः] प्रकाशमय उपः/उपस वाकें दीर्घ बापुष्यके दिवोंको सुखके साथ ठेर जाने ॥४३॥

मैं [नव पतानः सुरभिः सुबासाः जीवः] नवीन वस्त्र पहनता हुआ सुगंध धारण करके उत्तम वस्त्र पहननेवाला जीवदात्री मनुष्य [विमातीः] उपसः उदागाः] ऐक्यी उपः/उपसोंमें उड़ता हूँ । [अण्हात् पतत्री वृष] अण्डसे निकलने-वाले वहीके समान मैं निकलता पतनः परि जप्सुषि] सब पापसे मुक्त होऊँ ॥ ४४ ॥

[चापापृषित्री अन्तिमुस महिमे श्रुमन्नी] श्री जीव पृषित्री के दोहों कोक समीपसे सुख देनेवाले बड़े निराम पावन करनेवाले और कोमावाके हैं । [वहीः] छत्र वाता सुसुपुः] दिव्य सारों जगत्वाह चक्र पडे हैं [ताः] महसा नः शुभम्बु] ये श्रेष्ठवाह पापसे हम सबका बचाव करें ॥ ४५ ॥ [अह्वः] ॥११११॥

[सूर्यस्यै देवस्यः मित्राय चक्षुषाय च] उवा अग्नि आह देव सूर्य वस्त्र उवा [ये भूतस्य प्रचेतसः] जो भूतोंके आनन्ददा देव हैं [वेभ्यः इहं मया अहं] उनके किये वह कमस्कार मैं करता हूँ ॥ ४६ ॥ [अहं ११५११५]

[यः कृते अग्निभिपः] जो विपक्षके दिवा उवा [पिप जप्सुस्य अह्वः] जगत्की इन्द्रियोंसे सुराज करनेके दिवा ॥ [विधि देवाता] कोकको कोकनेवाला और [विहृतः पुनः विष्कर्ता] छोटे हुएका पुन बीक करनेवाला ऐसा [उदहसु मषवा] उत्तम वराक जग देनेवाला बलवान् ईश्वर है ॥ ४७ ॥ [अहं ११११११]

आचार्य-स्त्रीपुत्र हासविशेष करते हुए, आनंद मवाते हुए सुखदायक सचनमंदिरमें जाकर वास्य समयमें जागत हुए उत्तम योनोंसे युक्त उत्तम मुनेसे युक्त उत्तम वरावाके बीकर दीर्घ बापुसे सब दिव आनंदपूर्वक मननात करें ॥ ४३ ॥ मैं उत्तम वस्त्र पहनकर सूर्य धारण करता हुआ शरीरको सुलेपित करके, ऐसा उदागावासे रहूंगा कि मित्रसे उप प्रकाशके पाप हट हो जावें ॥ ४४ ॥

मुनेक और पुत्री कोक से सबको सुख देनेवाला हूँ । अपने मित्रसे कहते हैं । इनके मध्यमें सत प्रवाह वह रहे हैं । ये हम सबको पापसे बचावें ॥ ४५ ॥

सूर्य अहं देव मित्र वस्त्र आदि सबकी मैं कमस्कार करता हूँ ॥ ४६ ॥
जो ईश्वर मानवी शरीरमें रहे हाउनीके किम विपक्षमें और दिवा मुनाक किये कोकता रहे वही सबकी जीवनेवाला है । वह उप हूँ पुन मरम्मत करता है ॥ ४७ ॥

अपास्तु त्वं उच्छ्रुतु नीलं पिच्छंमुत्त लोहिष्ठं यत् ।

निर्वहनी या पृषातृक्ष्यः१ सिन् तां स्थाणानध्या संजामि

॥४८॥

यावतीः कृत्याः उपवासेने यावतो रात्रौ वरेणस्य पाशोः ।

भृद्वियो या अर्सेमृद्वयो वा अस्मिन् ता स्थाणानर्धि सादयामि

॥४९॥

या मे म्रियतमा तनुः सा मे विभाय वासतः ।

तस्याग्रे त्व वनस्पते नीलिं कुरुष्व मा वय रिषाम

॥५०॥(११)

ये अन्ता यावतीः सिन्धो य ओतवो ये च सन्तवः ।

वासो यत् पत्नीमिच्छ त्वमः स्थोनमुप स्पृष्टात्

॥५१॥

उन्नतीः कृन्त्यता इमाः पितृलोकात् पतिं वतीः । अवं वीक्षामसुधत् स्वाहा

॥५२॥

वर्त-[यत् वीक पिच्छं उत लोहिष्ठं तमः] जो वीका वीका अथवा कम्प रीका रीकापत्र है, वह [अस्तु वय उच्छ्रुतु] इस प्रकार दूर होवे । [या निर्वहनी पृषातृक्ष्यः अस्मिन्] जो बकानेवाकी दोषस्थिति इसमें है (तां स्थाणां व्या संजामि) उच्छ्रुतु इस स्वप्नमें क्या होता है ॥ ४८ ॥

[वासती कृत्याः उपवासेने] जो विसाकृत्य उपवासमें है [वासन्ता रात्रौ वरेणस्य पाशोः] जिसने रात्रि वस्त्रों पाश है [या भृद्वयो वा अर्सेमृद्वयो] जो वृद्धिवापुं और वृद्धिस्थायं है [ता अस्मिन् स्वागो वा वि सादयामि] इन सबको मैं इस स्वप्नमें स्थापन करा हूँ ॥ ४९ ॥

[या मे म्रियतमा तनुः] जो मेरा अर्द्धत म्रिय करीर है [सा मे विभायः विभाव] वह मेरे वस्त्रों वस्त्र है । इसविध है [वनस्पते] वृक्ष ! [अमे त्वं वस्त्र नीलिं कुरुष्व] पहिले तू उच्छ्रुतु रीक वना जिसमें [वयं वा रिषाम] हम तुम्हीं व हों ॥ ५० ॥ [११]

[ये अन्ता यावतीः सिन्धोः] जो क्षात्रों हैं और किमारियां हैं [ये ओतवः ये च सन्तवः] जो वाने हैं वीर तो वाने हैं, [वत् वासः पत्नीमिच्छ] जो वस्त्र जिसमें होता है [तत् वा स्थोन उपस्पृष्टात्] वह हमने वीरोंको छु-टाई करनेवाला वस्त्र ॥ ५१ ॥

[उन्नतीः इमाः कृन्त्यताः] पतिव्रीह्यता करनेवाकी ये कृत्याएँ [पितृलोकात् पतिं वतीः] पिताके स्वाम्यके लीये वर जाती हुई [वीक्षामसुधत् स्वाहा] वीक्षामको कारण करे वह उत्तम उपदेश है ॥ ५२ ॥

आचार्य-जो वय प्रकटका हमारा अज्ञान है वह हम सबके पृष्ठोंसे दूर हो जावे । जो हृदयको उन्नतवैतनी रीतिवैतनी है, वह हम सबके दूर हो ॥ ४८ ॥

जा कुछ दिवा और वातपातक कृत्य हैं जो वृद्धिवापुं और वृद्धि स्थितियों हैं ये सबको सब हमने दूर हो ॥ ४९ ॥
मेरा करीर मुझसे और हृदय दे । वस्त्रपात्रोंसे उच्छ्रुतु छाया घटती है । तपस्वि और वर हम वर वर करने हैं जिसके हमें कोई फल नहीं ॥ ५० ॥

आ हमारे इन्हीं वर्तमें उत्तम वरन पुना है जिसको सुंदर किमरियां और क्षात्रों वाने हैं वह वरन हमें कुछ देता है ॥ ५१ ॥

ये व-वाने उपहर होनेके कारण व तभी कायना करती हैं और पतिक पाश पड़वती हैं । अर्थात् वस्त्रवर्तों रीकें कोधारती हैं ॥ ५२ ॥

मृदस्फुटितानां सुखां विभं देवा अपारयन् । वर्षो गोपु प्रविष्टं यत् खेनेमां स सुत्रामसि ॥५३॥

नृहस्पतिनामसृष्टीं विभ्यं देवा अधारयन् । तेजो गोपु प्रविष्टं यत् तेनेमां स संजामसि ॥५४॥

नृहस्पतिनाबसष्टां विभं वेषा अपारयन् । भगो मायु प्रविष्टो यस्तेनुमां स तृजामसि ॥५५॥

चुहस्पतिनानामृष्टां विभे देवा अधारयन् । यज्ञो गोपु प्राविष्टं यत् सनेमां स सज्जामसि ॥५६॥

पृष्ठस्थितिनावसृष्टा विश्वे द्रुवा अधारयन् । पया गापु प्रविष्ट यत् तेनेमां स सृजामास ॥५७॥

नृदस्पातिनावसुष्टो विश्वं बुधा अपारयन् । रत्ना गापु प्राविष्टा यस्त्वनमा स सृजामास ॥५८॥

यशमि क्राशना जना गृहं त समुनातपू रादन कृष्णताडुधम् ।
मरिचः मरिचोः मरिचः मरिचः मरिचः मरिचः मरिचः मरिचः मरिचः मरिचः

आपदनां वस्मादिनसां साविता च प्र मुखेताम् ॥५९॥
 गन्धर्व इन्द्रियं त्वं विजयार्थं यत् सख्येन ज्ञापयामि ॥

अपिपवा तस्मादनेमः सविता स प सभाताम

अथामयोऽथपसयो गौर्वे समनेतिप रोवेन कण्वतीरपम ।

इहेमार्विन्द्र स जुद चक्रवाकेन दम्पती । प्रजयेनी स्वस्तकी विधमायुर्धुमुताम् ॥ ६४ ॥
 यदास पापपाने यद् वीपवासेने कृतम् । विवाहे कृत्वा मां चक्रुरास्नाने तां नि दम्पसि ॥ ६५ ॥
 यद् दुष्कृत यच्छर्मल विवाह वदतौ च यत् । तत् संमलस्य कम्बले मुन्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥
 संमले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् । अर्धम युष्मिन्मां शुद्धाः प्रपु आयुषि तारिस्व ॥ ६७ ॥
 कुत्रिमं कण्टकः श्रुतवन् य एषः । अपास्याः केश्यं मलमपं क्षीर्ण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥
 अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्म नि दम्पसि ।
 तन्मा प्रापत् पृथिवीं मात वेवान् दिवं मा प्रापदुर्ध्वं नृन्तरिषम् ।
 अपो मा प्राप्नुमलमेतदधे यम मा प्रापत् पितृषु सर्वांन् ॥ ६९ ॥

अर्थ- हे इन्द्र ! [चक्रवाक पक्षी के जोड़े के समान (इमौ दम्पती इह सं युग्) के पतिव्रती इह कल्याण
 प्रेरित कर । [एवौ सु-अलसकी प्रवृत्ति] के दोनों उत्तम घरवाले होकर सदात्मक साथ [विष मातुः प्यवृत्तौ] वयम्
 का उपयोग के ॥ ६४ ॥

[यद् वासो] जो वेदकपर कुशीपर [यद् उपवसने] जो विस्वोपर सिरहमेपर (यद् वा उपवसने इति)
 जो उपवसपर किया था तथा [विवाहे मां कृत्वा चक्रुः] विवाहमें जिस विधवा प्रयोगको किया था, [तां नि दम्पसि]
 इसको हम स्वामिने जो डालते हैं ॥ ६५ ॥

[यद् विवाहे यद् च वदतौ] जो विवाहमें और जो वदतके रवमें [दुष्कृत यद् संमलं] जो दुष्ट कृत मल
 करने किया [यद् दुरित संमलस्य कम्बले श्रुतमहे] वह पाप हम संमलके कम्बलमें जो डालते हैं ॥ ६६ ॥

[संमले मलं सादयित्वा] समकर्म मल बाहकन और [दुरितं वयम्] पापको कम्बलमें रखकर [वयं वयम्
 शुद्धाः अर्धम] हम वक्ष करेयोग्य युक्त हों । वह [मा आयुषि य तारिष्व] हमारी आयुषिको दीर्घ बनावे ॥ ६७ ॥

[यः एषः श्रुतवन् कुत्रिमं कंटकः] जो यह लेकको दांतवाक कुत्रिम कंगवा है वह [यस्या क्षीर्ण्यं मलं
 अप नप क्छिनात्] इसके मलकके मलको दूर करे ॥ ६८ ॥

[अर्थ अस्या अगात् अगात् वयम्] हम इसके प्रत्येक अगले रोगका [अप निदम्पसि] दूर करते हैं [यद्
 पृथिवीं मा मात] वह रोग पृथिवीको न मात हो [यद् वेवान् मा] और द्रव्योंको न मात हो [दिवं अप अन्तरिक्षं मा
 मान्] पुष्पों और अन्तरिक्ष कोकरो भी न मात हो । हे अग्ने ! [एतद् मल अप मा प्रापत्] वह मल वक्त्रको दूर
 न हो [यम सर्वांन् पितृषु च मा प्रापत्] यमको और सब पितरोंको न मात हो ॥ ६९ ॥

आवाच- हे प्रभो ! पतिव्रती भिक्षुकर तथा एक विचारके रहे । चक्रवाकपक्षी जोड़े के समान आनंदके रहे । उगत सज्ज
 कर और उत्तम संतान निर्माण करने के पूर्ण आनु आनंदस व्यतीत करें ॥ ६४ ॥

वेदक निरुद्धम विवाहा वयम् तथा विवाहके विषयमें जो कुछ पाप या वातक दोष होते हैं वे सबके वय आशुद्ध हो
 दूर किये जायें ॥ ६५ ॥

विवाहमें और वदतमें जो कुछ पाप या दोष होता हो वह भी विवाहके साथ दूर किया जाये ॥ ६६ ॥
 अपने मल और दोष दूरकर हम सब पुत्रव पतिव्रत और शोचराहित तथा दीर्घायु वने ॥ ६७ ॥
 रोगका कहर रक्ष के मलकका मल दूर किया जाये और वक्त्रको साफता भी जाये ॥ ६८ ॥
 इसी प्रकार रक्ष के शरीरका प्रत्येक भाग स्वच्छ किया जाये परंतु वह मल पृथ्वी अन्तरिक्ष, वायुका प्रक वदतके
 अग्नि के वात न जाये वही एव स्वामीपर मल पाद किया जाय । कश्चित् विनीत कद न दे लें ॥ ६९ ॥

सं त्वां नक्षामि पर्यसा पृथिव्याः सं त्वां नक्षामि पयसौर्षधीनाम् ।

स त्वां नक्षामि प्रजया धनेन सा सर्नद्धा सनुहि वाज्रमेमम्

॥७०॥ (१३)

अमोऽहमेस्मि सा त्व सामाहमस्म्युक्त्व पौरह पृथिवी त्वम् ।

तामिह सं मवाव प्रजामा जैनयावह

॥७१॥

अनियन्ति नावग्रव पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टाश्च सपेवहि बृहते वाज्रसातये

॥७२॥

ये पितरो बधूदृशा इम बहूतुमार्गमन् । ते अस्मे पुष्पै सर्पन्त्ये प्रजावृच्छर्मे यच्छन्तु

॥७३॥

येह पूर्वागन् रक्षनायमाना प्रजामस्यै द्रविण चेह दुक्त्वा ।

तां बहन्त्वर्गत्स्यान् पन्थां विराडिय सुप्रजा अत्यजैपीत्

॥७४॥

अर्थ- [त्वा पृथिव्याः पञ्चमा संनक्षामि] तुल्य पृथ्वीके योग्य पदार्थसे मैं पुष्ट करता हूँ । [त्वा पयसौर्षधीनां पञ्चमा संनक्षामि] तुल्य नौपदिकोंके पौष्टिक धरातले पुष्ट करता हूँ । [त्वा प्रजया धनेन संनक्षामि] तुल्य प्रजा और धनसे पुष्ट करता हूँ । [सा संनद्धा इम वार्त्ता सनुहि] वह तू जो उक्त गुणोंसे पुष्ट होकर इस वक्त्रसे प्राप्त कर ॥ ७० ॥ [१३]

[अहं अनायासे] मैं प्रजा हूँ और [सा त्व] उक्ति तू है । [साम अहं अहं त्वं] ज्ञान मैं हूँ और अहं तू है । [वीः अहं पृथिवी त्वं] सुकोक मैं हूँ और पृथ्वी तू है । [जो इह संनयाव] मैं इस दोनों इच्छे से और [प्रजां वा वक्त्रयावह] संज्ञान उत्पन्न करे ॥ ७१ ॥

[अस्मन् वी जीवन्ति] जन्मिषष्ठि केम इस कैदेही विवाहकी इच्छा करते हैं । [सुदावहः पुत्रियन्ति] दाता कता पुत्रकी कर्मणा करते हैं । [अरिष्टाश्च बृहते वाज्रसातये संनक्षामि] प्राण रहनेतक हम दोनों बड़े कर्माधिके किये साथ साथ मिश्रकर रहें ॥ ७२ ॥ [अ. ७११११७]

[ये बधूदृशाः पितरः] जो बधूको देखनेकी इच्छा करनेवाले बड़े कोय [इमं बहूतु अनामन्] इस बरातकी देखने वाक्यसे (ये अस्मे वृष्पै सर्पन्त्ये) वे इस बधू कर्षात् उत्पन्न पत्नीके किये (प्रजावत् त्वमं वच्छन्तु) प्रजापुत्र पुष्ट मदान करें ॥ ७३ ॥

[या रक्षनायमाना पूर्वा इमं वा वक्त्र] जो रक्षणाके समाव सुसंयत पुष्ट पहिनी की इस स्वास्पर प्राप्त हुई वह [अस्मे प्रजां द्रविणं च इह दत्त्वा] इच्छे किये अनाम और धन बढ़ा देख (तां अत्यस्तं पन्थां बहूतु बहन्तु) उध को मन्त्रिणकाके मार्गसे सुरक्षित के जाने । (एवं विराट् सुप्रजा वति अजैपीत्) वह वत् ऐजस्विनी और उत्तम प्रजावा- की होकर विजयी होवे ॥ ७४ ॥

भावार्थ- स्त्रीके वृष्पै और नौपदिकोंके पौष्टिक रक्षे पुष्ट किया जाने । उधकी वनविना जाने और उत्तम संज्ञान उत्पन्न हो । स्त्री वक्त्रयावहि होकर धरमे विराट् ॥ ७० ॥

पुष्ट प्रजा है और की रणी है पुष्ट धामना है और स्त्री मंग है । पुष्ट पूर्वा है और स्त्री वृष्पै है । वे दोनों मिश्रकर इस संज्ञासे रहें और उत्तम संज्ञान उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

अभिप्राहित स्त्री पुष्ट अपने बहूकर्मापरकके किये योग्य पुष्ट और योग्य स्त्री की अपेक्षा करते हैं । जो बधुर वक्त्रा होते हैं वक्त्रसे ही उत्तम संज्ञान होते हैं । वे मनुष्य वनकर उत्तम वक्त्रकी प्रतिष्ठा करने ॥ ७२ ॥

वम बधूको देखनेके किये बरातके समय अवैक स्त्री पुष्ट कया होती है । वे धन वक्त्रपूको सुसंज्ञान होनेका छान आजी- गीद देते ॥ ७३ ॥

कैसे जोरमें अनेक काले मिश्रकर रहते हैं कैदेही गृहस्थाधम मिश्रकर रहनेका आधम है । गृहस्थाधममें इच्छे हुए पञ्च योग्य स्त्रीके धन और सुसंज्ञान प्राप्त होनेका गुण्यजीवार्थ देखर वक्त्रके गुण यार्थसे बहाने; इस तरह वह स्त्री तेज- किनी, वक्त्रकिनी तथा सुसंज्ञान युक्त होकर विजयी होवे ॥ ७४ ॥

अथर्वपदका सुबोध भाष्य ।

(१२)

प्र बुधस्य सुनुषा बुध्यमाना दीर्घायुस्वार्थं सुतकारणं
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथाऽसौ दीर्घं वृ आहुः ॥ ७५ ॥

॥ ७५ ॥ (१७)

॥ इति त्रिबीनेऽष्टमः ॥

॥ अथर्वपदका सुबोध भाष्यम् ॥

अर्थ—(सुनुषा बुध्यामाना) बुध्यामाना बुध्यामाना (अथर्वपदका सुबोध भाष्यम्) दीर्घायुस्वार्थं दीर्घायुस्वार्थं
किमेवावसी १६ ॥ (गृहान् गच्छ) गृहान् गच्छ (यथाऽसौ दीर्घं वृ आहुः) यथा गृहपत्नी असा (यथा गृहपत्नी असा) गृहस्वामिनी किमी असा ॥
(अविना के आहुः दीर्घं वृ आहुः) अविना के आहुः दीर्घं वृ आहुः ॥ ७५ ॥
अथर्व— एते एते एते एते एते एते एते, एते एते दीर्घं वृ आहुः किमेवावसी पूर्वक प्रवत्न करे । एते एते
वृ आहुः ॥ एते एते एते एते एते एते एते । एते एते दीर्घं वृ आहुः ॥ ७५ ॥

द्वितीय अष्टकाक समाप्त ।

अथर्वपदका समाप्त ।

ॐ नमः शिवाय

वैदिक विवाहका स्वरूप ।

प्रथम-सूक्त ।

अथर्ववेदके इस चतुर्थेऽध्यायमें वैदिक विवाहका स्वरूप और वैदिक विवाह-प्रवृत्ति वर्णनी है। जो पाठक अपनी विवाह प्रवृत्ति विचार करना चाहते हैं वे इस सो सूक्तोंका विवेक मग्न करें । प्रथम सूक्तके आरम्भमें पाँच मंत्र केवल सामान्य उपदेश देनेवाले हैं। इनमें सर्व्व कम्य नक्षत्र पूर्णी और सोम आदिवाक्य कर्म है परंतु इन मंत्रोंमें इन वेदवाक्योंका कर्म करत हुए विवाहका तथा पवित्रताका आदर्श बताया है, ऐच्छित्ये द्यौं और भूमि ।

प्रथममंत्रमें भूमि पृथ्वीके स्वात्पर और सर्व्व भयका सुखोक्त पण्डिते स्वात्पर वर्णन किये गये हैं । मालो ज्यकी माता भूमी है और सबका पिता सर्व्व है। वह सब संसार माता पृथ्वी और सर्व्व इस मनुष्यजातीका संतानकर्म है। एकही परिवारके हम सब हैं। जितने भी संसारके मनुज वा पशुपक्षी है, वे सब एकही परिवारके हैं। सर्व्व मनुष्योंमें तो आईआईका भावा है। पण्डित आदर्श सर्व्व है वा सुखोक्त है। सुखोक्त वह है जो क्षेम्य है, धरा प्रकाशित है। वह सबको प्रकाश होता है। इसी प्रकार पण्डित अपने परिवारको उत्तम प्रकारका प्रकाश देने और सब संतानोंको प्रकाश करे। इसी तरह भूमि सबको आहार देती है फल और सब देकर सबको सुख करती है। इसी तरह माता सब संतानोंको अपने प्रेमका आहार देने और सब को प्रकाशन द्वारा प्रेम प्रीतिसे पुष्ट रखे। इस तरह विचार करनेपर तथा वाचार्थमिक आदर्शका मनन करनेसे सभी पुरुषोंके अपना पवित्रताके आदर्श उपदेश इस मंत्रमें स्पष्ट रीतिसे प्राप्त हो सकते हैं ।

गृहस्वर्णका आधार सब है यह बात इस सूक्तका प्रारम्भ ही सब कहकर द्वारा करके बतायी है। सभीपुरुषका घर ही सबकी मर्त्यताके ही होने सबमें सबका कर्म, सब आदि कर्म वा कार्य । इसीसे आदर्श गृहस्वर्ण ही उत्पत्ता है। दृष्टा नम आत् है। सबका सर्व्व उत्पत्ता है। सब और सब ये ही ही उत्पत्तिसे निरगत हैं। सब सर्व्वकेमौल्य ही धरा है। सब और सबको ओषधकर कोई सर्व्व स्वात्पर रह नहीं सकता ।

सोम

द्वितीय मंत्रमें सोम का माहुरम्य वर्णन किया है। वह सोम कार्यमें है पूर्णीपर है और नक्षत्रोंमें भी है। पाठक जान सकते हैं कि नक्षत्रोंमें जो सोम है वह नम्र ही है। वह सब नक्षत्रोंकी सोमा बनता है रात्रीके समय इसकी अन्तर्गामी सोमा है। वह सान्निध्य आर्ष है। मनुज इस सान्निध्य आर्षको सदा मर्ममें धारण करें और सम्य रहें। जन्म वा कति वा हि दुर्गुणोंको दूर रहें। वह आर्ष सोम द्वारा पण्डिते किये इस मंत्रमें दिया है ।

पृथ्वीपर भी 'सोम' है वहां सोमका कर्म वनस्पति तथा सब है। आकाशके सोमका वह पृथ्वीपर रहनेवाला प्रक्षिपति है। वह पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्यों और पशुपक्षियों की सुवि करता है। पाठक वहां पृथ्वीके सोमको और आकाश के सोमको बनावट जानें। दोनोंका नाम सोम है परंतु वे दोनों एक नहीं हैं। सोमके अनेक अर्थ हैं और सोम सम्म द्वारा अनेक पदार्थोंका बोध देरमें होता है। अतः सर्व्व सोम कहते एकही पदार्थका बोध मानना अनोच्य है ।

अप्य सुवि मंत्रके पूर्वार्थमें सोमसम्पन्न नाम करनेका वर्णन है। वह सोमपान करने होता है इसको सब जानतेही हैं। परंतु इसी मंत्रमें आपे उत्तरार्थमें विशेष कर्मके सोमपानका उल्लेख है। वहां कहा है कि जो सोमपान ब्रह्मज्ञानी पीते हैं, वह सोमपान कोई अन्य मनुज कर नहीं सकता । " वहां का सोमपान ब्रह्मज्ञानका पान है। जो ब्रह्मज्ञानीही कर सकता है। वह भी सोम है। वही परमात्माका सर्व्वक अन्तर्गम्य रह है। परमेश्वरको एकरूप रहतेही हैं। वही अन्तिम और अन्तिम सोमपान है। पर्य मनुष्यको इसी सोमपानके विना सोम न बताता है। साधारण मनुज इस सोमपानको कर नहीं सकता क्योंकि विवेक उस अनरुपा प्राप्त होनेपर ही वह सोमपान होना संभव है ।

पाठक वहां देखें कि परमात्माके सर्व्वोपादरसम्पन्न सोमक विचारके साथ साथ वनस्पतिके सोमपानके अनेक सोमपानका

रहे परन्तु स्वतन्त्र न रहे। (अन्धत्वं) नाम को होता है वह स्वतन्त्र नहीं हुआ करता को स्वतन्त्र नहीं होता कलिका बाल होता संभव है। पुण्यत्र बाल कभी नहीं होता क्योंकि वह स्वतन्त्र है। अन्धत्वादी राज्य नहीं किया है।

सूची अन्तिम पन्ने पर। [अर्थात् १०।११९]

ममं ब्राह्मण्योर्हपस्याय रेखाः । (अ० १ । ४५ । ३५)

अथर्व १४।३।५)

इन दोनों स्थापित अवस्था जगत्परम और अव्ययितम
(अपार, अमर) अन्तर्गत ही स्थित है। अतः जो सामान्य
मनस्ते हैं कि वैदिक कालमें विश्व आरम्भ ही वह अवस्था
मूल है।

न स्त्री स्वावश्यमर्हति ।

यह स्मृतिबोध कथन केवल समस्त ही है ऐसा नहीं प्रतीत होता है। जो कोय इस स्मृतिबोधका कथाका करते हैं वे इस वेदबोधका अधिक मान्य करें। जिनो स्वयम् न रहें याज्ञ-पयों याज्ञापरिषद्को शिक्षा में रहें निरादिष्ट होकर पठिते शिक्षा प्राप्त करें। वे कथाको समझी बगुने विताके पास करे और विद्या (मन्त्रा ज्ञान) अपने अपने संगति में। तब विवाह हो। कथा स्वयं विद्याकी अन्तर्गतिके विद्याअपना स्वयंवर न करे, स्वयंवर करना भी हो, वो उसका स्त्रिये भी विद्याकी संगति हो। देखने स्वयंवरके यैत्र किसी स्थानपर आगतक देखनेमें नहीं अपने हैं। इससे प्रतीत होता है कि स्वयंवर की प्रथा पीछेके यक पड़ी है। अस्तु।

इस तरह कन्यादानपूर्वक विधवा छोटे के पचास वषू अपने पति के घर बसी जाती है। उस समय सुंदर एक भिक्षु भिक्षा अपने। उसने महिला और पति के हों यह सुंदर समाज जाने। उसका एक बच्चा जेति काय कोई जोड़े जेति बच्चे विधवा प्रतिबंध नहीं है। एक एक भी (छापी) सुंदर स्वच्छ और सम्यक्से पुत्र हों। इस तरह सब प्रजा के सुंदर और सम्यक् करने को। सभी मुक्तानी स्वयं आकाश होकर वषू अपने पति के घर बसी अपने।

दृष्टेय ।

विवाह होनेके पूर्व बधूका पिता अपने बामाहके लिये अथ-
वे सामर्थ्यके अनुसार (बहू) बहिन भेज सके । कम १२ वें

[पात्र] यौनें रहनेके समय में अश्वमेध उल्लेख है। यौनें की वधा धन है। अश्व धन इनके कम नीचवर्णाश्व है। यौनेके रूपमें बरके सब मागधकहोई पुष्टि होती है। ॥ अश्वे वरुणा पिता अपनी कर्मार्थ पतिवै उगम उत्पन्न यौनें वर और ये यौनें विवाहके पूर्व पतिके घर पहुँचे। पक्ष त्रिविध है। और उत्पन्नात् मनु अपने पतिके घर जाती जाये। अश्वमा मवा वधप्रये होके समस्त हाथ देज दिया, सो अश्वमा अश्वमनी वधप्रये जाके अश्व विवाह हो। प्रायः वह समयके कम पंद्रह दिनका समय है। अश्विकके अश्विक पक्षके जातमें जितना आ उत्पन्न है उतना प्राय उत्पन्न है। अश्वमा वध यौनें पहुँचनेके पक्षान्त उक्त यौनेंको वधाई प्रेम करनेके पक्ष त्रिविध हो, वह उत्पन्न है। जब वह वध पक्ष पक्षे पतिके घर जाती जावती तब उत्पन्न अपनीही फारीसत यौनें विनेयी और पक्षे की भी अश्वे परिचयकी स्वाभिनी विवनेके परस्पर प्रेम परस्पर होनेके स्थिति पुनीया प्राय। इस तरह वह अश्वमावधे पूर्व यौनेंका प्राय वैदिक विवाहमें एक समय बात है।

[illegible]

ती है । इस तरह वह पतिके घर पहुचनेके पश्चात् बर्ताव है । तत्पश्चात् वह विपुलधनमें बचनेके पाशोंसे बन्धी है । स्वतंत्र नहीं होती । इसके ऊपर या तो पिता और पतामी करते हैं, देवताओंकी निगरानी रहती है पतेही निगरानी होती है । कुछ भी हुआ तो भी तबला बही रही है । वैसी कि आजकल युवाव शिक्षणनया रूपमें इस समय मिलनेकी स्वतंत्रता । निम्नवत् पारंप्रिकतामें मिलनी स्वतंत्रता ॥ नी तो अवश्य है । विद्या क्या संस्कृति के बिना प्रत्यक्षा आवश्यक है । तभी तो स्वतंत्रता तु आचरण की कुमार्तिहारे कुमार्तिहारे प्रायः मित्रमूल कर कसेभीमें सीखता है वैसी शिक्षाप्राप्ति भी वैदिक समयमें नहीं थी । उस समय प्रत्येक कुमारी अपने मातृपितासे आज तक शिक्षा पाती थी और पश्चात् पतिसे । स्वतंत्र रीतिसे प्रत्येकीमें रहना और कुमारीमें मित्रता सिद्धा पना यह कुछ वैदिक समयमें प्रायः अस्मभव्य प्रतीत होता है ।

गृहस्थाधमका आदर्श ।

आगे मंत्र २१-२३ तक गृहस्थाधमका सुवर वर्णन है । प्रत्येक पुरुषी इस मुक्तका अभिप्रायी है । जो वर्मापुत्रक रहे और पुरुषीका वर्म पालन करे । वह इस सुक्तकी प्राप्त कर सकता है ।

(१) भरिम् गृहे गार्हपत्याय कामुहि । (मं २१)

इस पतिके घरमें अपने गृहस्थ वर्मका बचते हुए पालन कर अपने पुरुष वर्ममें लक्ष्मि न कर, बल्लभाते अपने पतिके घरमें रह और अपना धर्म्य कर ।

(२) इह ते यजाने सिर्वं समुद्रवाम् । (मं २२)

इस गृहस्थाधममें रहते हुए अपने सत्तनध विषय धर्म और भक्षण करना उदा सुप्रवर्तनमें । सुप्रवर्तन में विषय करना गृहस्थाधम है । पुरुषवर्माका वह पुत्र और जन है वह सुप्रवर्तन करनेके सिद्धि जो बल्ल विद्या जाय वह पाया है । मायाविना तब घरदार अचकपते संगममें आते हैं अतः यत्पितृपुत्र वह विष्णुकी है कि वे अपनेपर चार्ड अष्टम घरदार न होने है । घरदार रोग पुत्र आदर और अन्य पुत्रधार संगममें अचकपते उतरते हैं अतः मायाविद्याओंके चर्चि है कि वे रक्त परितुष्ट रहे और धर्म संगम निमित्त

करेका सत्य करे । इस तरह प्रत्येक करते करते सत्ताका सिद्धि सुप्रवर्तनकी मिलने जायने और कल्याण संगम सुप्रवर्ती और सुप्रवर्तनपत्र होती जायने ।

[३] पूजा परया तप्यं सं स्तुघस्व । (मं २३)

इस पतिके साथ आनन्दवत्त होकर रह । तब प्रकार के धर्म मुक्त उपमाय प्राप्त कर । सत्ता प्रवर्तताते दिव्यवर्मा प्रतीत कर । पुत्री कभी रहनेमें वैसा विष्णुविद्यालय संगममें आ जायगा इच्छने प्राप्त पुरुषके उपमायमें निरतकी प्रवर्तता रक्त और इसी तरह अन्त्यमय संगममें अन्तःकरण महा सुप्रवर्तितकी रक्तता संगम है । इस संगममें रहनेका नहीं मुक्त नि यम है ।

[४] नय सिर्वं विदये जा वराधि । (मं २३)

इस वपते पुरुषधममें रहते हुए नय सत्तनध नय जाय और इह अवस्था प्राप्त हो अर्थात् बहुत अनुमय का जाय तब तु अपने अनुमयके सिद्धात्त उपदेश । सुप्रवर्ती कह । " इहते पूर्व नहीं । इसके पूर्वका समय ज्ञानमय करके का है उपदेश देनेका नहीं । उपदेश देना अनुमयी इहोच्छाही कर्म होया । इस वपारमें पश्चात् अनुमय सत्तनध ही अनुमय उपदेश करे । इहते पूर्व जो उपदेश करते हैं उससे कामकी अपेक्षा हाथी की अधिक संगमका ही । संगम है । अनुमय वैसा विदये अधिक होता है वहा सत्तनध अधिकार उपदेश करनेमें अधिक होता है ।

[५] इहेव स्वं मा निर्वोर्ध, विष्णुमापुर्वानुत्तम् (मं २२)

पतिपत्नी इस गृहस्थाधममें रहें उनमें विद्याय न हो पूर्ण अनुमयी संगमसिद्धि के हीनों एक विचारके रहें । वह है विचारित कुतुहल आदर्श । नहीं तो विचार हातेही वैवाहिक संगमका परिणाम करेछ पुत्राजी अन्यर्मे देयोंमें नहीं है वह तो वैदिक विद्यामें खर्चा नहीं है । वैदिक विद्या है कि जो विद्या एक समय हुआ वह जीवनक अन्ततक स्थिर रहे पर में किसी तरह विरोध न कहा हो सत्य होकर सत्तनध वैवाहिक संगम न टूटे ।

[६] स्वस्त्यो मोक्षमात्रो पुने वपुःसि कीदृशो । (मं २२)

पतिपत्नी उद्यम पराक हो आनन्दवत्त हो और पुत्रोंके साथ सत्ता वपुःसि के साथ पञ्चते हुए पुत्रों पुरुष धमका वर्तन करते रहें । गृहस्थाधममें रहनेका इच्छा

विद्यार्थि न हीं सब आज्ञाप्रसन्न रखकर सुखके भोग
कपड़े कटौप्य महसूची खोज करते रहें।

(●) सूर्यचन्द्रके समान पैदाश्वी पुनर्ही ।

(सं० ५३)

वेधे पूर्व और बाद सब अवस्थों में प्रकाश देतेवाले हैं, वेधेही मुहूर्तवाले वरसे ब्रह्म तेजस्वी संतान हैं। वे विविध लोकों में (कामरूपी) प्रणीत हैं। (मायका वरतः) भौकमनके काम अवस्थों में प्रयत्न करें अर्थात् कृष्णकालके कार्य करें, कलाबाध ही और विघ्नः प्रयत्न करें। अपनी कलाका सब विघ्नः करें। उक्त उपमानों परमा कलावृत्त होता है उसको कला विधि कहते हैं वैसा ही यह कलाभोजन विधि कहे। और कलावृत्तवाले अपनी तथा अपने शत्रुकी इच्छा सिद्ध करें। अपनी संतानोंको कला-भारवरीकी सिद्धा ऐसी चाहिये वह बात बड़ा स्पष्ट हो जाती है।

ब्राह्मणोंको धन और वस्त्रदान ।

मंत्र २५ में (ब्राह्मणेष्ठी बह्म नियम कस्मिन् न वेदि । मं २५) ब्राह्मणेष्ठी यम दाम यो और वरुण दाम करो । यह ब्राह्मणेष्ठी दाम करनेकी आज्ञा नहीं थी है । निषादके समय क्षत्रीय विद्वान् ब्राह्मणेष्ठी यम और वरुण देना चाहिये । यो भूमि चाहिये भी दाम देना चाहिये । यह दाम वसूके समय देना चाहिये और इसका कारिका परित्याग वसूके समय देने । यह दाम देना चाहिये यह बात इस प्रकार कि वसूके समय प्रतिनिवित हो । यदि दाम देवेका पुन वसूमें न रहा और केवल मोममें ही वह वसूका यम कलाधिक करने काय तो वह एक कृत्यका यम करियेवाली एकही विधि होती । ऐसी जायें रही-

पुनः शरीरं कृत्वा जायते ॥ (मं २५)

‘बहु एक हो पांवनामी मिनामक राजकी जागीरकपति बसिनि
घर प्रवेश करती है।’ जिस स्त्रीके सम्पन्न दास देवेन्द्र नाम
प्रतिविधित नही हुआ वह योनी की ऐसीही शक्ति राजकी नामनी
बाहिने। गुहस्थीका मुख्य कारण वही है। कारणता की सिद्धा
उस वपुनो अपने पिछले करवें मिश्रणी बाहिने और नति
करवें भी मिश्रणी बाहिने। इसलिये दास देवेन्द्र महारण उस
स्त्रीके सम्पन्न स्त्रि करता बाहिने। पृथक्स्थान वह एक निवेन
महारण भाव है।

जिसमें दानमात्र स्थिर नहीं हुआ बल्कि धर्म (कर्म-विद्या) विद्या या पाठपाठ करनेकी कुछ प्रवृत्ति होती है। जिसमें ऐसी और कुछ न हो। इसमें दानकी कुछ प्रवृत्ति नहीं पावित्ते। यदि ऐसा न हुआ तो ही औपचार्य करनेकी ही तो अन्तमें वसिष्ठकर्मकी वाक्य होता है—

एवमेव कस्या जातया, पतिवन्धुषु वन्द्यते । (वे ११)

‘इसकी प्रतिमूर्तिमें कलह प्रवाह होता है, और जगत्में निरपराधि कलहके रंधनमें बांधा जा रहा है।’ इसप्रतिमूर्तिमें कलहके रंधनमें बांधा जा रहा है। इसप्रतिमूर्तिमें कलहके रंधनमें बांधा जा रहा है।

पुस्तक सीका बल न पहने ।

मंत्र २७ में कहा है कि पुष्प जन्मी जन्मि कल व कल ।
पुष्पका करीर किलवा नीं सुंदर हो वंदु रज्जुका वल कलने
वह अक्षरीक कलवा है, सेस्तरहित होवा है ।

वह विधेय स्वीकृत पड़ना स्वयं मुख्य के मुद्दा रहनेके लिये है, या वास्तविक में जो मुख्य स्वीकृत भारत करते हैं उस कार्य वह विधायक है वह एक विचारणीय प्रश्न है। बहुत कम स्थिति में विचार करें परिवार में यदि कभी स्वीकृत स्वयं न करते हैं न न नहीं मिले। इसके बाद इस प्रकार विधेय मुख्य स्वयं स्वीकृत प्रत्येकके विचारमें नहीं है वह बात विधेय स्वयं करने योग्य है। इसके स्पष्ट है कि द्वितीयक पहले स्वयं अस्वीकृत स्थिति में पहलेके अवसर होते हैं। नहीं सीमा तक दूसरी को प्रत्येक वा न पहले इस विचारमें भी विधेय नहीं है। और स्वयं मुख्य न पहले वह बात नहीं स्पष्ट और अस्वीकृत है। पाठक इस बातका अधिक विचार करें और विचार करें।

विशेष नक्षत्र पद्धतिसे शीघ्र ही विदेश प्रवासपत्र मिले है। यह बात मैं २० में बड़ी है। (आपने) राष्ट्रीय (विचार) विचार बोर्ड के अध्यक्ष बोर्ड, और (अध्यक्ष) यह समिति पर बोर्ड के नक्षत्र है। विशेष नक्षत्र के बीच नक्षत्र है। इनके विशेष नक्षत्रों के अर्थ विशेष नक्षत्रों के अर्थ है।

कम्पाका गुरु ।

कम्पा की शिक्षा कैसी होती चाहिये वह एक बड़ा विषय प्रश्न है। आजकल तो कम्पा और पुत्र एकही पाठशालाओं में पढ़ते हैं और इनकी पाठशाला समान होती है। वस्तुतः ऐसा था तो पुत्रों और शिष्यों के बीच एक अन्तर नहीं सिद्ध होता है। अतः एकही पाठशाला दोनों के बिना कामकाजी नहीं हो सकती। आजकल शिष्योंका पुत्रीकरण हो रहा है और पुत्रोंका भी-करण किया जाता है। मित्रवत्तावधि और सहविद्याका वह शेष है। इसके अन्तर्गतानुसार ही पुत्रोंकी पाठशाला शिक्षा होती चाहिये। शिष्योंके विद्येयता सुगुण अर्थात् व्यवसाय पाक कर केही शिक्षा उत्तम प्राप्त होता चाहिये। [एतत् सूत्रं] वह पदार्थ सुधा कल्प करेयवत् अर्थात् विद्येयक है, [एतत् कर्तृत्वं] वह कर्तृ है [एतत् कर्माहवत् विद्येयत्वं] वह पदार्थ कर्माहवक विद्येय करेयवत् है, ये पदार्थ विद्येयकमान्य सुधा करेयवत् हैं [एतत् अर्थे यः] ये पदार्थ कामेयवत् नहीं हैं, इहाँ तरह विविध पदार्थोंका ज्ञान कम्पाओंकी पाठशाला में देना चाहिये। तथा कामेय शैक्षणिक और आर्थिक पदार्थोंका भी योग्य ज्ञान शिष्योंके यथ्याग्य के। शिष्योंक ऊपर आचार्योंके कर्तव्य पालनका भार रहता है। इससे कमसे कम भोजन शैक्षणिक वेद आदि कायपालाओंका उत्तम ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार की पाठशाला शिष्योंके बिना होती चाहिये और इनपर भी कर्मका भार आनेवाला है, वह पूर्ण करेयकी योग्यता समझ करण करनी चाहिये।

जो गुरु इस तरह की शिक्षा कम्पाओंको देता है उसको वह कम्पाके विद्याके उत्तम ज्ञान वक्तृ ज्ञान करण भोजन है। इसी तरह मंत्र ३ में कहा है कि जो गुरु (गुरुत्वार्थि) कामेय विद्येयक करेयवत् करेयवत् देता है, विद्येय गुरु मार्गके कामेय तो तत्की अर्थपूर्णकर कामेय विद्येय विद्येयक सुगुणकी कृपाके समर्थ करण होता है वह शिक्षक का सम्मान करण चाहिये। वह कम्पाके विद्याके उत्तम (सुवर्णार्थ स्वरूप पद) उत्तम मंत्रक और ज्ञान वक्तृ वह गुरुत्वार्थ अर्थक विद्येयक, जिसके वह कम्पाके पूर्णता ज्ञान दिया है बनाया है, उत्तम शिक्षा दी है। कर्मके इसी ज्ञानके (येन ज्ञाना न विधि) वह कीकी विद्येयक नहीं होती। वह विद्येयक

की अपने अर्थपूर्णमें रहती हुई इनकी भावना देती है। यह शिक्षाका प्रमाण है ऐसी शिक्षा लीको नहीं चाहिये।

कीको योग्य शिक्षा न दी तो वह लीके विद्येयकका कारण करती है, इसका वर्णन ४० १५—१६ में पूर्ण स्थानपर किया है। इसके अन्तर्गत है कि शिष्योंके सुशिक्षा देना अर्थक आवश्यक है। शिक्षा न होनेके बने अभावक परिणाम होता है।

सर्वकर्मपथहारसे धन कमाओ ।

गुरुत्वार्थमें इनकी व्यवस्थाका प्रारंभ रहती है। केवल कर्म करने देना हो नहीं सकता। अतः गुरुत्वार्थके धन कमाने की व्यवस्था व्यवस्थाका है। यह धन केवल कमाया जाने वह एक बड़ी मापी समस्या गुरुत्वार्थके सम्मुख बढ़ा रहती है। इसका उत्तर ३ में मन्त्र दिया है।

(कर्तुः—उद्युक्तं कर्तुं नदत्तौ) सरल व्यवहारोंमें सरल व्यवस्था करो। उत्तम उत्तम न हो। उत्तम प्रथम देते व्यवस्थाके न न को। जो व्यवहार करना हो वह सरल व्यवहार हो और उसके करनेके समय भी सरल व्यवस्था करो। और इस प्रकारके धनार्थक सरल व्यवहार करो—

(उद्युक्तं सर्वे धनार्थं) बहुत धन प्राप्त करो। अपने विद्येयक केवल कामेयकता है उत्तम धन कमाओ। धनार्थक व्यवहार करके विद्येयक न न प्राप्त होगा और उद्युक्त भी होगी।

विद्येयकी अपने करने केवल कामेय रहें। पति (धनार्थं) धन कार्यवत्तु) अपनी अर्थपूर्णताके उत्तम मीठा भाव न केवल व्यवस्था करो उत्तम व्यवस्था करो तथा [उत्तम पति उत्तम इस लीके पतिके विद्येयके वक्तृ सुवि हो बड़ा धन हो। इस तरह दोनों केवल कामेय रहें व्यवहार करो और उत्तम करते रहें।

गौरक्षा ।

मंत्र ३२ और ३३में गुरुत्वार्थके योग्य गौरक्षा करें इस विद्येयक न न उत्तमकी उत्तम है। यीश्वर की योग्यता है, शिष्योंकी उत्तम उत्तम होती है। धन व्यवस्था उत्तम योग्यता होता है इससे गौरक्षा गुरुत्वार्थक धन है।

सरल मार्ग ।

उत्तम केवलके धन उत्तम और विद्येयक हों इस विद्येयके १५ में मंत्रका आदेश ज्ञानमें धन योग्य है—

कम्पाका व्यवस्था व्यवस्था कर्तुं ३ (न १५)

“ मार्ग चंद्रकादश और चरक ही । ” परको पुरुषवेदे मार्ग परके पाठ के मार्ग रूपमें जाने आने के सब मार्ग वि-
चंद्रक और छिपे हैं । उनमें बहोतक हो बहोतक देखापन म
हो । मनुष्यके सब व्यवहारके मार्ग भी छिपे ही हैं । वहां
जाके और जाके मार्ग छिपे हैं, यह बात कहनेका हेतु
नहीं है क्योंकि ये माय तो जैसी भूमि होयी वैसे हो सकिये ।
परंतु मनुष्योंके व्यवहारके मार्ग छिपे हैं यह बात विवे-
चनता मर्त कही है । बीचमें छिपे न दिखाये जायें । आजक
कके रूपके और समासके व्यवहार रचनेसे ऐसा प्रतीत होता
है कि मनुष्य स्वर्गही अपनी मतिमिथ से अपने मार्गपर कहे
सिक्ते हैं और सीधा व्यवहार जानेकी समझना है। तबपर भी
उपवचन व्यवहार करते हैं और इस कारण मुक्तमति के प्रकृत
से सदा कुछ ही प्राप्त करते हैं । इस तरह ये गृहस्थी अपनी
उत्पत्तिके मार्गमें कहे न जाके यह उपदेश वेद वहां गु व्याख्य
के प्रारम्भमें है रहा है । एवं गृहस्थी इसका व्यवहार समझ
रहें । इस प्रकारके छिपे मार्गसे कल्पेपर [ब्रह्म भवेन सर्वथा
संस्तुत] परमेश्वर सब और तेज देवे । वह परमात्म तो चरक
व्यवहार करनेके लोकी वह चरक व्यवस्था ही है । इसमें किसी
को संदेह करनेकी सत्ता नहीं है । प यज्ञकी सहायता
प्राप्त करनेका मार्ग भी सीधा और मिलनक है । वही
वर्तमान है । इससे कल्पकर सब मनुष्य सुखसय की
पहुंच सकते हैं । इस प्रकार इस धर्मका उपदेश वहां
मनन करने योग्य है और प्रत्येक गृहस्थीको सदा ध्यान
रखनेवाला है क्योंकि उनकी उत्पत्ति चरक और निरंतरक
मापिकी होती संभव है । उचितिका पुत्रा कोई मार्ग
नहीं है ।

तेजस्वी धनो

गृहस्थी तेजस्वी बनें वाताही बनें कदापि निरुप्राही न
हों । गृहस्थाका धर्म उत्साहना है वह तेजस्वी मनुष्योंका
धर्म है इसीसे वेद उपदेश देता है कि गृहस्थी तेजस्वी बने ।
वहां ब्रह्म उत्पन्न होता है कि गृहस्थी तेजस्वी बने ।
उत्तरमें वेद कहता है कि—

यद बर्षा बहेषु पुराणाम् ॥ (अ ३५)

जो तेज भाषोंमें भवना प्रत्येक पाषाणों होता है और
जो मयमें होता है वह तेज इस गृहस्थियोंमें आने । वह

पत्रकर पाठक कहेंगे कि वह क्या अर्थ है । वेद एक मने
क्यों देता है । क्या वेद इस उपदेशसे गृहस्थियोंको सुखी
और मधुरी बनाया चाहता है । कदापि नहीं । वेद का
धर्मवर्णन गृहस्थियोंको बचाना चाहता है परंतु वहां तेजसे
उत्साहना करने है । किम कोशमें तेजस्वी कल्प
होता है । उत्तरमें वाताही और मयमें होना है तेज
कहा पत्रका । वेदोंमें सुभा खेकनेके धर्ममें वाताही और
है वाताही को वातपुरुष पत्रक है और वाताही को
“ वाताक्योंमें इनके उक्त दिया जाता है वाताही इस सुखी
के विरोधी होते हैं । इस विषय तथा परिहार के ल
चाहते हैं कि वह वाता न खेके इस तरह सब लोग इस
विरोध करते रहते हैं तबपि ज्ञेयवाक्य मनुष्य एतके ल
अर्थमें चरक करते हुए, किरते और किरते हुए सुखी
धर्ममें पहुंचता है व उक्तों किमीका मन होता है और
भूय प्राप्त होती है एकाग्र निश्चय पर अद्वैत होता है कि
में वाता केसुता । सब व्यवस्था विन्य होवेपर भी वह लगे
निश्चय पर अद्वैत रीतिसे स्थिर रहता है, वह इसका विन्य
प्रकृत वाताही और एकाग्र मन रहने मत है । तब
तेजस्वी सुख जो इसके पाषाणों के कर्ममें जने वेही तब
के कर्ममें कय जाने तो उक्तका वक्त पार होवेमें क्या संदेह
जाता वह कदा है कि जो तेज और उत्साह तथा निश्चय
वाता लगे अपने केकमें बताते हैं वही तेज और उत्साह
स्वी मनुष्य अपने गृहस्थधर्मप्रकृतमें बताते वक्त
उत्पत्ति निश्चय वक्त उत्साह वक्त प्रवक्त गृहस्थी बने
धर्मपाकमें वक्तों वह उपदेश वहां है ।

मधुरी भी इसी तरह मयप्राप्तक समझ जाना तो मय
के स्थानपर जाता है और मय पीता है । तबम उक्त
अपने काम इस मिनीको भी विजयता है वह वहाता
मधुरीमें होती है । इस मधुरीमें समग्र वह धर्म जाने
आसुरता होती है और अपने वक्तियोंके विजयकी को वक्त
ता होती है वह आसुरता और वक्तारा गृहस्थियों
इस रहे । गृहस्थी अपने कर्तव्य धर्म वही आसुरता
वक्तारोंके वक्त रहें । वह उपदेश गृहस्थी के वक्त
वही सुरा और पाषाणका वक्त धर्म ३६ में पुनः वक्त
के जानना है । उक्तका भी मान नहीं है । इसमें जो वक्त

मा है वही केमा चाहिये वही महात्मा जोय कुलोसे और नीति-
निधि की उपदेश देते रहते हैं । ज्ञात मित्र और स्वाभिम-
न्य उपदेश कुलोसे और प्रत्यक्षजीविका उपदेश चरित्रकोसे
केमा बाता है । इसके अन्तर्गत दुर्गुणोंकी और महात्मा जोय के
बारे वही हैं केवळ उनके-गुणोंकी आशयसे हैं । इसी तरह मध-
य और सुभारी की गुरुद्विषोंके प्रसंगिक उपदेश हैं । वे
उपदेश इसके गुरुस्त्री प्राप्त करें और अपने गुरुस्वर्गमय पालन
अपन पीतसे करते कृतकृत्य बनें ।

पाठक श्रुति कि वे उपदेश वही क्यों दिये हैं । क्या
ज्ञान उदाहरण जगत् में वही मिलेंगे । उत्तर में निवेदन है कि
मनुष्य की तत्त्वज्ञान की वस्तुओंमें होती है वेही सदाचारमें वही
होती । प्रायः वही निम्न स्वभाव है । उत्तरमें रहते हुए मनुष्य
परमार्थज्ञान पैदा करे । इसके उत्तरमें आत्मिचारिणी की
काम्य करे ऐसा उत्तर ज्ञानघर बंते हैं । वेही आत्मिचारिणी
की अपने विचारित पठिके वन करने करती हुई अपने मर्ममें
परपुत्रका ज्ञान बढ़ा करती है और कर्म निकले ही उसके
पात्र उपरिष्ठ होती है वही प्रकार सेवारी कीय सत्कारके
कर्म करते हुए अपना घर ज्ञान परमार्थमय रक्षे और जो
कर्म मर्म ज्ञान के घर समस्त परपुत्र परमार्थकी उपासना
करे वही परपुत्र किना पत्र पुत्र और उपास करने के निधि
है । वह अपना बचपि हीन है तथापि पूर्ण है । ऐसी ही श्रुति
और मधारी की उपदेश की पूर्ण है । मनुष्योंकी चाहिये कि वे
अपनी सर्वज्ञान अपनेमें लक्ष्य और उसके सुयोग्य करने
करके कृतकृत्य बनें ।

यंत्र ३५ और ३६ में श्रीलोक केन्द्रमें तेजस्विता गुणकृत
के रहती है इस तेजस्वितासे सब गुरुस्त्री गुण हो ऐका कहा
है । [योयु वर्य । महात्मना वर्चन] " एक कर्मोद्धार
पीछ गुणकृत वही है । कर्मगुण कीय गुण असीत तेज-
स्वी है । यंत्र का गुण सुस्ती कामेकक है जोय गुण सुस्ती
हयनेकक है । अतः सब गुरुस्त्री और उनके बरके कामकले
कीय ही गुण कीय तेजस्वी वर्चस्वी ओमस्वी आमुष्यय
और गुरुस्त्री बनें ।

यंत्र ३७ में कहा है कि ज्ञानमें एक प्रकारका तेज है जिस-
से तेजस्विता मनुष्य कीय और कामार्थ बढ़ता है । गुरुस्त्री
को इस कर्मके के गुण प्राप्त हो । वेदों अन्तर्गत ज्ञानों कीयवर्ग
एक काम कामक वही है, लोकज्ञानक वही है, ज्ञानोपवर्गक

माया है वही सब ज्ञान इस मंत्रमें आराधक्यक कहा है ।
गुरुस्त्री इस मंत्रका ज्ञान समन करे ।

यंत्र ३८ तो सब कोणीकी समन करनेयोग्य मंत्र है ।
इसमें सभी वस्तुमें रक्षे ।

[१] कर्मार्थ मनुष्य प्राप्त अनोद्धारिण

[२] मन्त्रा रोचनः तं उद्धारयति त [सं १८]

[२] जो शरीरका कीय कामकाम शरीरमें विप
उपदेश करनेका और शरीरमें अकार स्थिर रहनका तोय
कीय वा रोच हाका कर्मकी में उदात्ता हु और (२) जो
शरीरका तेज कर्मकेका और अपना कर्मका ज्ञान करनेका
है कर्मके में अपने पास करता है । वह निम्न तो सब
मनुष्य की सदा सर्वदा ज्ञानके उपदेश करना चाहिये और इसी
प्रकार आचार काय चरित्र । हाएक रक्षणमें कोणीके दूर
करना और गुणीके अपनेवद वद का रोचन है । ज्ञानिका वही
एकजान उपाय है । मनुष्य तो अपने बरमें वही निम्न पालन
करे ।

यंत्र ३९ में कहा है कि (यज्ञा रोचनः न प्रसीदन्ते)
पठिके बरमें यज्ञार लेन देन वर्य कामकी मर्मप्रतीक्षा करते
हैं । वर्य कामक करनेके निधि सब कोय कर्मक हो पव है ।
वह ज्ञान वर्य अपने पठिके कर प्रसीद हो वही पञ्चदे ही
आमिधे प्रकृतिना करे, अनिके समन करे और पचाए यज्ञार
आमिधे दक्षिण करे वही मन्त्रा मंत्रात कर्मके इस मनुष्य
आमिधे करे । वह ज्ञान वर्यके अवर को नीला (लकीः शीत
जातः) होवी कर्मके हु करना । वह ज्ञान महात्मा की बात
है । आर्यमें कीयक रहती वही चाहिये । आर्य तो वही निवर
और वैदिके मर्म होने चाहिये । इसलिये वर्य गुरुस्त्रीमर्ममें निधि
होकर पठिके काय प्रथम स्थान करती है वह ज्ञान म मर्मों
हाथ वेदमर्मके पठिके आर निशेष हु कर्मके करे । निध मर्म
पठिके कर्मके ज्ञानमें हु कर्मके मर्मका आर तब रोच हु हैं
और वह पात्र मर्मक और वैदिकानी बने । ऐसी सुयोग्य
गुरुस्त्रीमि वने कि जो अपनी सेवाकीके सुयोग्य उपदेश हाता
समन आर्य बनाने ।

पठिके बरके सुवर्ग तब अति आभूषण इस वर्यपुत्रे काम-
कानी हो, विचारकनी न हो । वही तो वन मनुष्य के ज्ञानाता
है । कर्मके ज्ञान हुआ ज्ञान मनुष्यकी अनोन्नि करता है ।
इसलिये ज्ञानवानताकी एका देनेके निधि वही कहा है कि

कम विनोदमय किशो हूभा चर्म मोक्ष मार्गमें सुख हेमवाका
होना है। मृदस्वचर्मके सभी चर्म सुख देते हुए मोक्षमार्गके साधन
होनेवाले हैं।

गृहस्थीका साम्राज्य ।

गृहस्थोंका घर एक बड़ा भारी छायावन है। छायावन राख्य
बही है बड़ा सायावन है। बसबाब गृहस्थी करने समझ है।
कभी बचको बच की है। वह गृहस्थीकी सद्वर्तमानिकी कसकी
संज्ञा देनेबाबी है इसमें भी परीवार है वे सब प्रजाजन हैं।
इस प्रजाजनमें बरके पारिवारिक जण हैं इसका ही बही परा
नी, बंके अदि जो घरके बचकोनी पशु पक्षी हैं वे सब इस छाया-
वन की प्रजा है और इस प्रजाका योग पावन करना गृहस्थी-
का आत्मनक कर्मण्य है। (छायावन सुखे हुआ। सं ७५)
जो बसबाब हीना बही इस छायावनका पावन और अनर्थक कर
सकता है। लक्षकथ करने वहां बही है। (इका) जो बस-
बाब हीना बही इन गृहस्थानमें बसकी होया। बसबाबोंका ही
छायावन हो सकता है। लक्षकोंका छायावन वह होय। वह
विषय इस स्थानमें पाठक देख सकते हैं।

[illegible]

हुई भी विवेक बंधप्रतिष्ठ होती है। यही बात गुरु रिचयी श्री है।
कर्मनिबन्धने यही कर्तव्यपरायी परलज होती हुई भी पूर्ण रीतिसे
छात्र हो है। नार्थिक उद्योगि कर्म के बिने स्वतन्त्र है पंडित इस
सहज विचार करनेपर जान सकते हैं कि वैदिक कर्मों परतंत्रता
की कल्पना स्वाभाविक स्वतंत्रता की अपेक्षा अधिक प्रगल्भीय है।
यमुष्मन्तो अपनान् मुक्तिप्राप्त्यर्थं मार्गं न कल्पयन् कुर्यात्, यही
उद्योग श्लोक है। इस श्लोक की छेदिके बिने जितनी स्वतंत्रता
प्राप्ति के लक्ष्य यहाँ है। इसको अधिक स्पष्टात्मक है वह
परिवेष्टा है।

शिष्योऽसौ घृष्ट क्रावना ।

[illegible]

बड़ा हो जिसे सुपममार्ग में बना देना हूँ। इस मार्गसे तु जावगी
छा तरा अराधन देना । यह पदरवाधम एक बड़ाभाग
अतिवस्तुतः धर्मेश्वर ने प्रदत्त की मनुष्य बड़ा सुपमार्ग करके
अपना भाग बड़ा लच्छा है । वहाँ पुण्यार्थ करके अपना म प
बड़ा लच्छा है । वहाँ अनेक मार्ग हैं परंतु वहाँ बरल मार्ग ही
मनुष्यको अक्षय्य वरल योग्य है । मस्तु । पतिव्रती उचित है
कि वह अपनी स्त्रीको सुखिष्ठा देव उनको सीधे मार्गसे बचावे
और उससे बंधन होकरके जिसे जो जो पुण्यार्थ करके लच्छा
करें वे सब सीधे कराने । पच्छ वहाँ विचार करें कि पुण्यपर
वह किसकी मारी विमर्शनी रही है । पुण्यको अपनी सुखे
छिन्न करनी चाहिये और अपनी स्त्रीको भी सुखिक पण्यपर रख
ना चाहिये । स्त्रीके योग्य अथवा अयोग्य आचार्य का उत्तर
इत्यादि पुण्यपर है । अतिशय सब भाग पुण्यपर है यदि भी
विद्याहीन है तो उच्छा सीधे पुण्यपर है । पच्छ विचार करें
अपना अपना इस विषयका कर्तव्य जान करके उच्छे पूर्ण करें ।
वही अथ ५९ अंतर्ग में कहा है—

(इत्यं मारी सुष्ठे दधान । मं ५९) इस स्त्रीको पुण्यमार्गमें रको, इस
के पुण्यमार्गमें होम दे । अथवा वर पति स्त्री सुखमयकारणी
है जो पुण्यमें बचको सुखिष्ठा मारी ही है वह वात छिन्न होनी ।
पुण्यका यह कर्तव्य है कि वह स्त्रीको अपने कर्तव्यका अन्तर्ग क
कृत्य करा देवे । और स्त्रीको बर्धनका बना देवे । (वाता अग्नि
पति विदेह) परमार्थाने इस स्त्रीके जिन् पति प्राप्त करा दिया
है इनके पत्नीय इस स्त्री की स्त्रियां उत्तराह पुण्य कीतर है ।
वह पति (रक्ष अर हनाथ) राजनी मन्त्रोद्य नाथ करे । इस
स्त्रीमें जो अमुनि प्रतिपत्ति हैं उनका वाक्य कराना पतिव्रती कर्तव्य
है । पति स्त्रीको दृष्टि मुक्तिष्ठा देव कि जिससे स्त्रीके अन्तर की
सब अमुनि प्रतिपत्ति दूर हो और सबमें वैद्य प्रतिपत्ति सिद्ध हो-
क्यों और वह स्वयंमुक्त देखें वन । इन स्त्रीको (उच्छ वच्छ-
र्थ) उच्छ करने के जिन् अपने अन्तर्ग उत्तराह रको देना
रको अपने उत्तराह उत्तराह रको वच्छ उत्तराह उत्तराह रको
वच्छो उत्तराह बर्धनियम में रका । जिन् उत्तराह रकीको अन्तर्ग
वच्छि । वच्छि ह वे वच्छ प्रवक्ष्य क । स्त्रीको उत्तराह रको
कीर्तव्यमें निगुण्यपर और विद्या ह वे के पत्नीय पतिव्रतीपर है ।
इच्छो वच्छि करने के जिन् है । (यथा पति विदेह) ईच्छो
इच्छो पति वधान दिया है, अन्तर्ग पतिव्रती कर्तव्य है कि वह
अपनी बर्धनार्थीय उत्तराह वच्छि के जिन् वन ।

(सा सुममारी मस्तु । मं ६०) वह स्त्री उत्तराह बर्धन
कार्यवासी अने बर्धन की मूर्ति अने उत्तराह उत्तराह रको अन्तर्ग
पुण्यार्थ मपव हो । इस स्त्री को मपवमूर्ति उत्तराह सब भाग
अन्तर्गत हो । इसकी उत्तराह जिन् सब उत्तराह (मन् मन्त, उत्तराह अन्तर्ग) उत्तराह रको है ।

वरातका रथ ।

वरातके रथका वरल पुण्य मं ६१ में है । वह रथ उत्तराह
(सुविष्ठा) पुण्यमें सुवर्धनका दिया जाने, तथा उत्तराह सुवर्धन
का उत्तराह उत्तराह जाने । (मन्त-वर्धन)

अनेक प्रकार की उत्तराह उत्तराह की जाने (विष्ठा-
वर्धन) सुवर्धनके रथका वह रथ हो उत्तराह वरलवर्धन उत्तराह
हो (सुवर्धन सुवर्धन) उत्तराह उत्तराह स्त्री हो और उत्तराह वरल
उत्तराह है । उत्तराह का वरलवर्धन रथ (वरल) वरातके
कर्ममें लाना जाने । वह वरात पतिके घर पहुँचि और वरलके
स्त्रावको (वरलवर्धन कोट हस्त) अन्तर्ग कोट, सुवर्धन रथान
बनावे । वरलवर्धनी अपने पतिके घर वरलवर्धन वरलका सुवर्धन
बनावे । पतिके घर वरलवर्धनी (अन्तर्ग-वर्धनी) भाईवर्धन
पावक वरलवर्धनी भाईवर्धन वरल म करवर्धनी (अन्तर्ग-
वर्धनी) पच्छ वरल वरलवर्धनी पावक वरल अग्नि पच्छवर्धनी
वरल प्रतिपत्ति वरलवर्धनी (अन्तर्ग-वर्धनी), पतिव्रती पावकवर्धन
वरलवर्धनी पतिव्रती वरल वरलवर्धनी पतिव्रती सुवर्धन वरलवर्धनी
पतिव्रती वरलवर्धन वरलवर्धनी (पतिव्रती) पुण्यमें पुण्य,
उत्तराह पुण्य, पत्नी स्त्री पतिके घर उत्तराह वरल म मन्त ह ।
वह स्त्री (देवहने पति) देखेंके वरलके अन्तर्ग वरल
वरल है अन्तर्ग उत्तराह वरल हवा है । इस वरल वरल
(पुण्यमार्ग मा विविध) इस अन्तर्ग वरल रकी हुई वह
वरलवर्धनी इसके वरल पतिवर्धनी विच्छ प्रवक्ष्य वरल म हो ।
(वरलवर्धनी रथान वरल) इस वरलवर्धनी इस वरलवर्धन
करते हैं । इस वरलवर्धनी जो देवमप है वह इस वरलवर्धनी जिन्
वृक्षवर्धनी है । ऐच्छ वरल वरल वरल है । (वातावर्धनी उत्तराह
वरलवर्धनी) इस वरलवर्धनी जिन् वरलवर्धनी वरल पतिव्रती वरल
वरल वरल वरलवर्धनी वरलवर्धनी है । इस स्त्रीको पतिवर्धनी वरल
वरल वरल है और वह अपनी वरल वरलवर्धनी पतिव्रती
प्रवक्ष्य वरल विविधवर्धनी वरलवर्धनी वरलवर्धनी पति हो ।

इच्छवर्धनी (वरलवर्धनी वरलवर्धनी वरलवर्धनी । मं ६३)
जाने, वरल वरलवर्धनी और वरल वरलवर्धनी वरलवर्धनी वरलवर्धनी

ओंकि तर्क्य होयेना, अन्तर्पञ्चाचार्य अन्तर्पञ्च होयेना हे ।
 यदि धर्म मनुष्य राजाके सम्यक् विचार्य अन्तर्पञ्च होयेना तो यह
 इन समय अन्तर्पञ्च होयेना इसी तरह अब यह सम्यक्
 इन वनोंके अन्तर्पञ्च होयेना तो इनकी पालेयता अधिक होयेना
 कहेगी ही नही है । देवनागरी पत्रके हीमें है । अन्तर्पञ्च होयेना
 सम्यक् विचार्य अन्तर्पञ्च है इन सब सम्यक् विचार्य यह है
 कि ये लोग देवनागरी पत्र के अन्तर्पञ्च होयेना के अन्तर्पञ्च है ।
 अन्तर्पञ्च होयेना पत्र है । अन्तर्पञ्च होयेना पत्र है । अन्तर्पञ्च
 होयेना पत्र है । अन्तर्पञ्च होयेना पत्र है । अन्तर्पञ्च होयेना पत्र है ।

विवाहका समय।

कल्ले हो धोने विवाह के समय वह और वा की जायु
 दिखनी होनी चाहिये अर्थात् दिखनी जायुये विवाह हो, इसका
 नियम हो गया है । (सुमतिः अमृतः । मं ५) उत्तम
 मर्त्य जाय है । इसका विवाह के समय बुद्धिवा होने की बात
 दिख होनी है । उत्तम विद्या प्राप्त होवेपर विवाहका विचार
 करना चाहिये । बुद्धि सुतस्तुत होवेपर विवाह हो । (हानु
 क्यः अरस्तः । मं ५) हारवेने कामने जायना स्वाम
 कामका है । इसकी मीठ अवस्था प्राप्त हुई है तब विवाह
 करना चाहिये । हारवेने काम का बीज उत्पन्न होका चाहिये ।
 (यस्मिन् बह्) अन्न और धान्य वृक्ष होका चाहिये । उत्प-
 न्नात् विवाह हो । विद्या प्राप्त होनेके पचाह् वन प्राप्त कर
 मीठ जायुये विवाह का विचार करना चाहिये । (सिन्धुस
 सुमत्यदी योका अमृतं) नाथ वाच इन्द्र की इच्छा करनेकाले,
 उत्तम पाकक होकर जब होने तब विवाहका विचार करें ।
 (अर्ध-भ्याः क वय-यना) अर्ध अर्थात् अन्न मन्त्रात् वृक्षार
 हो, तब विवाहका समय होका । पाकक इन वस्तुओं का अच्छी
 प्रकार मन्त्र हो और विवाहका समय जाने ।

विद्यार्थे समग्रं श्री श्री गणेशाय नमः । १) आरम्भः
प्रथम आचार्यदेव विद्यार्थी (विद्यार्थी गणराजः) द्वारा प्रणम्य
पञ्चाङ्गपूर्व विद्यार्थे पुनः हो । (गणराजः वन्दनार्थं) एवं
प्रथमदेव वीर्य के साथ विद्यार्थे है उक्त वक्तव्य विद्यार्थे है
इस वक्तव्य विद्यार्थे वन्दनार्थं हो । (पुनः विद्यार्थे) पुनः पुनः
आचार्यदेव । इस वक्तव्य श्री गणेशदेव विद्यार्थे विद्यार्थे
विद्यार्थे है ।

७ (अ. प्र. भा. पं. १४)

सुविचार आदि गुणोंसे युक्त होन चाहिये । कुटुम्बका सब मार विचार छेड़की कानून तबमें पगहय । इस निर्दोषका विचार कर्मपर पता चलता है कि बपुवर पांड आहुमें हो । तबह बरें अवर्तु कालतबमें विवाह न हो । वैशाखे मन्त्रोद्य नर्भ आर मन्त्रोद्य प्रतिष्ठाका भाव समझने योग्य बुद्धिमाने नपूर हो । वैदिक संज्ञांमें मातापिताका आचारा कुमार—कुमारिष्य पर पूर्व है तथा कन्यादान मापेमें कदा है । इनमें कुमार—कुमारिष्य कावर वे।के अनोड बर्ण है वह बल सिद्ध होती है । अर्धरात्र उल्लख वेदने किसी रत्नाकर दाहृतता नहीं है और कन्यादान—पुत्रिणि कावरको द्याम मित्रता अर्धमय है । यहाँ कर्षर हो यहाँ कन्याका बल कैसे हो लक्ष्मी है । कन्यादान की प्रथम वैदिक द्वायेके कारण मातापिताका कावेकर कुमार कुमा गेर है । १२ इस कारण मातापिताकी अनुमतिसे ही वैदिक विवाह हो लक्ष्मी है । अतः जो लक्ष्मी है । क वेदों गुणीयताके समान कर्षर की तीनि है और वा कर्षरको वैदिक विवाह कदने है और जो ' प्रथम वर्धने ही प्रथम द्वायेकी लक्ष्मीका वैदिक।वर्धने जाते हैं वे वन वैदिक पर्वक क केरक हैं । अस्तु । इस तरह वैदिक विवर्धने कुमार कुमा- रिष्यकावा लोड और कुमवर्क होमा सिद्ध है । तब ते माता- पिताकी ममतिभी नववी ही प्रक है वह बल विवेकतता भाव में धारण करवी चाहिये ।

આને ધૈર્ય ન હોય તો ૧૬ વર્ષ સુધી સજા થઈ શકે છે. આજના કુલ દુરાચારિયોએ વધુ ઠી રાજ્ય હોયેથી ઈર્ષ્યા આપને ધૈર્ય છે. તમારું વધુ દેશિય સુ ઈંગ હોયેથી આજીવન અગ્રમ ધૈર્ય છે. બી. મરમ ધૈર્ય વધુ થશે એ સંઘર્ષ અપનાવું દેવી અગ્રિ સુકાવત્ત હો બી. હવે વધુ થશે એક દિવસ ન કરે પણ રાખ્યું છે.

यमस्य यद्वचनाः ।

हृदय मंदये वक्तुं स्वयमेव वाद्यं होयेत् वाद्यं वशी
 यन्मन्त्रां श्रुत्वा देहिना दे । उतहा विष र भिषत् मित्रव ।।
 पारदे वाद्यं वाद्यं उच्यते ॥

ये वृत्तवर्ग्य बहवः बहूना यस्मिन् यस्मिन् ।

^१ जो [वृष-य] वृषय रोम [जवाम् मनु वस्त्रम्] पशुभ्यो
के नरः शिव चलोते है, वे (वृष्या यद्दे वरेण) वषट् देवदत्ती

वरातके : कहे साध आगये हो हो (ताम्) जब दक्षम रोमोंकी [वडिया: देव: मनुष्य] ब्रह्मके हाथ पर ले जाले अर्थात् मनुष्य वाक साध आन म रहे ।" ब्रह्मके देव यमि वनस्पति आदि हैं, जिसस पक्ष होता है और वरमै जिसका मामासर्वेक हुआ करता है। वे सब देव मनुष्योंके साध आये दक्षम रोमोंको पर करें। इस पक्षक मतबधे वह बात सिद्ध होती है कि कहा मनुष्य योंकी भीष्ट हाता है वहा सभी मनुष्योंक साध उन्पादि आगये बीज आना समभव है। वरातम ब्रह्म लेवकी आगयी इष्ट होती है वहां। कमवा बलका रोप है इसका काम होना भी समभव है। अतः ऐसे भीष्टके प्रक्रम में स्वर्गोन्मत्त रोमकी कथा होमकी समाप्ता होती है इष्टांशके देवे प्रक्रममें वरुत्त इवम काके ऐसे वक्षोका समन करवा लोग है। कहा कहा वरात कहे बहुत मनुष्याक समाज कामा होठ है वहां वहां वहीमिय पक्ष म रचना बोध है।

अथ दूर हों।

वराहमें मंत्रमें कद्रुका दूर करमका उपदेश है। पूर्न मंत्रमें व्याधिकार कद्रुको दूर करमका उपदेश कहा और इस मन्त्रमें मानका कद्रुको दूर करनेकी सूचना दी है। (की वयिना मा विदन्) दूर मागने कोयले से दुष्का हो हा बर्लगा व प्राप्त हो। दुष्काकी अनन्य प्रलोभन वगाकर मनुष्यको काल देते हैं ठगत हैं केनाग हैं खरने हैं और अगम मलमलकाते हैं। अतः देव दुष्टोंके सर्वकले मयिविवाहित वपुर्न व रहे इनका ही मही प मु अन्त मोयनी वरु रहे। वह सब लमात्र उपरध है। (आतथा आर मनु) कद्रु दूर मय आये अनुहार मनुष्य को इन मयविविधित भीष्टाओं को केमकले द्रष्टुं हो व दूर हो। इसके पदंति सुक्तिर रहे। तथा वे योपुव (मृगेय पुर्न कलाठी । ११) दुष्काईक सब कलम प्रलोभन मुक्त हो जाव।

हार्दमे मयम भाषया है "म अथवा वार्ताकतां ध्वित्या देव ह्य तव वधे वपको इव वयिभनी के जिने सुखदायक बनव। अथ ए इ कव विष ह्य ईरतेको मुक्त देवे हवके उप म होरे। वी कटक का प रखे कि जन्म के सबवर्ष मुक्तदायक भी हो नकल है वी दुष्काव वक भी हो लपट है। जवन वषवातार मुक्त का दुष्काकी क्रमि मयविविधित है। अतः वपुर्न ऐसे पदिक क्रमेवर्नके व्यवहार करें कि जिसके सबको

सरा मुक्त होता रहे और दुष्का वरपि न हो।

विवाहमें ईश्वर का हाथ।

हार्दमे मंत्रमें (धाता इमं कोकं अरेव दिवेव । ११) विवाहमें वह वयिभ वरात इव वपुर्न जिने विरिह विष है एवा कहा है। इसका काम आत्मन वड है कि उन को व पुष्प उपरध होता है तब उसको जिने विरहकी कोमल मि-धाताद्वारा मिथित हाती है। विवाहके संरहको केम के बलमें हैं उनके जिने वयामोम व पत्नी मिलती है। को लं कपवा इह आगये कले है वे कद्रु मोंकी हैं। वो वरमर्भक कद्रम पावते हैं उसका वड देतु भी ईश्वर वरुने ही मिहलेन है। वो विवाहपक्षक होता है उसका वयिभ इति वे जल आचरण वयिभुक्तन रका उचय वृत्तिमोना कद्रम में अरे कद्रमका मतोहा करें। विवाहके विव्यामुरन कुंकर वपुर्न साध मयवर्न व होम। व ठक वहां उपरध व यों वयिभुक्त कद्रमपूर्वक मी मनुष्यका सब वीमधम ईश्वरीय मिश्रमुक्त वकला है। जिसका परम मीता एकमात्र कद्रमक लका हुन उनको केनी कद्रकी मयवता मही होती।

[इव विषावारी अन्त व मन्त्र] वह हुन व्याकरावली की पथिक वर आगयी है। वह हुन व्याकरावली की देवे है वयिभमा पुत्रको मल होति है और उनका मृत्पक्षम हुन पूर्वक कद्रममें मयवता होती है। यममनी हुन व्याकरावली मिलका एक मात्रका कद्रम है और वह वयिभुक्त को जिने होता है।

(देवाः प्रवरा वयिभु । १२) वय देव इव वपुर्न को उतम कद्रमक काव वड व सुमरति देवे, मय व वर रका भावम देवे और व एक वयिभमा हुन इव ईश्वरको। वह सब ईश्वर मयिने ही प्राप्त होता है। विवाहमें कद्रम के वड होता है।

वर्माधान।

विवाहके वयिभु वर्माधान कद्रम आना स्वमयिक और कद्रमक है। वय वर्माधान विरिह १४ में मयवे ६। [अन्त मयती वरिहा वरी] मयवक वयिभुकी हुन व वयिभु वयिभु क मयवी हुनेके कद्रिम प्रक्रममें विवका वर वड ही होता देवी की हाथ। वयवा एव वयिभुक मयि वर है। जिने मयि वयिभु कद्रमक होती है,

सूक्ष्मवस्तुसिद्धिं रन्मुक्तं जलजं होती है वैसी ही भी भी जलज
हृद हृद सूक्ष्मवस्तुसिद्धिं जलज जलज जलज हो। होती वीरति
जलज व हो। यह सब भी के जल मुक्त जलज जलज जलज
जलज है। जलज जलज जलज जलज जलज जलज जलज जलज
जलज जलज जलज जलज जलज जलज जलज जलज जलज

[illegible][illegible]

पतिपत्नी की व्यवहारिकी यकी हो कि इनमें आपसमें वकी
अपना दिनचर्या हो करिषा येव हारे; वीनी वते येवके
आप मित्रहृदय रहे (अनुपहृती) वकी पति वी वी
हृदय वीवव, दुःख वकी व वी वी वी वी वी वी वी
वृत्तिव (विश्व) के वकी वी वी वी वी वी वी वी
वृत्तिव वी वी वी वी वी वी वी (वृत्ति वी वी वी वी
वृत्ति वी वी वी वी वी वी वी (वृत्ति वी वी वी वी
वृत्ति वी वी वी वी वी वी वी (वृत्ति वी वी वी वी

वास्तविकी बर्षे काळीस पाहण्या देते हुए आपने उदात्तते
 मान्यता अकमल करे ।

पसिके घरमें पत्नीका व्यवहार ।

जब पश्चिम नामें लोहा विनाश होकर हुआ। मर्मभारम होकर कपूना एक पश्चिम में जम गया है। तबतक वह लोहे सिगाई व प हारक करता है। जब मर्मभारम होता है तब प लोहे परका जम बहता है। ऐसी अवस्था में वह मारी प लोहे नामें डिल लाह व्यवहार करे इन विषय में उत्तम उपद्रव मज १० के नाम होता है। हाएक लोहे के मर्म वधमें चरन करप पारिजे।

[illegible]

ओमा वनप्र पतिवै पारमै रवे (पशुपत्यः शिवः) पशु आदि
बोधा भा दित इक्ष्वी को पशुओ को वध दवाधामो मित्र
दे पा गरी उन्मत्त अत्यन्त चला है इत्यादि विचार कर
इस कथनम जा आचार्यक कथन हो यह कर । (पार्वर्य
सप्तम) पार्वर्यमिने अतिदिन हवन करे ईश्वर उपा-
सना करे ।

आम मं २६ आर २७ में भी वही विषय पुनः कथनवा
है । उक्तमें इहा तरह एवमन्त्रक यन्त्रक अन्त्रोक्ता इति
तरह कहे हैं, यी (समंयमी) उद्यम मयक वरुनेवकी
ह्रममयक यममयमयी (प्र-तरा) दुःखक पार क नवकी
(पुत्रा) उद्यम कथ करेवाओ उद्यम केववा [पत्ने
दुष्टुपय धमा] पति आर कष्टका दित करेवाओ
[धर्मे स्थावा] अथवा सुक यन्त्रको, (यन्त्रोपय,
पुत्रोपय पार, कर्त्तुं सप्तम जने स्त्रीका) कष्टक य वाओ
पति और वय परिचारिक कोओ किने सुक देनेकथ पदेवी
हो ।

इस उद्देश्यको धाममें धारक करके ओजी अपने पतिवै पार
में यन्त्रका काली त्रह कथके आहर्द्वेयमिने कथेह होला इसमें
कोह है । पतिवाता उद्यम आहर्द्वेय इति उक्तं वहा विष है ।
आका आचार्य पठक पार देहा हाव इति पत्ने इति कष्टक
पय सुपत्न २६ व २७ उक्तके अन्त आर कथका पक्षीकाल
पठक पहा अथय देखे । आर औठ उपरर कथान्त्रोका इति
धर्मोहा मय अवसर समझा देवे ।

दक्षिणाका दूर करो ।

पतिवै पार पयवाम का प्रवक्ष्य होनेके पक्षय वपु और
वरवा मिलकर प्रवक्ष्य इतिव हावा पतिवै कि अपने पारका
वा दित २६ हा जाव अन्त पयमै मरह । इस कथनका उद्देश्य
२६ दुष्ट २७ में कथन कहा है कि—

हे मित्र ! कष्ट इति मा २६वा । अतिधूः रवात्
पुत्रात् । वा २६ । [म २७]

वपु का वा २६ कि हे दास्यत । हमने दूर माय का
वहा है । पत्ने मरह मै पुत्राहा पयवाम कथय । और
अन्त पय म २७ । वक्ष्य दक्ष यह कथ कथ कहना है ।
इति उक्तं मयमै के वक्ष्य दक्ष । ये मरह आवा इति
प्रम २६ है कि पतिवै पार पतिवै अन्त पयवा दक्षिणा दूर

करनेका विषय करे और लवपुत्रा प्रवक्ष्य को ।

वहों को नम कार । ।

वीक्षमें मैत्रमें कहा है कि, जब वपु अतिवै दक्ष को
और अपनी ईश्वरका कथन करे, तब वह (मित्र
मयस्युक्त मं २) अपने पारके वक्ष्य की पुत्रको अन्त
करे और पयवाम अपने कथने कथे । वहा दक्ष कथनी
ईश्वर अर्चक दक्षका है । आ प्रत्यागत उक्ते कष्टोपदे
स्वागति कर्म को, ईश्वर उपासना इति कथने मित्र
होकर अपने पारके वक्ष्य कोय अर्चय पति पतिवै कथन
उक्तके वक्ष्य आर्त्ता कथनम मुक्तम को जी पत्ने को
उन्मत्त कथान्त्रोम पतिवै वयवाम को उन्मत्त कथान्त्रोम
किने और पयवाम अपने कथने कथे । वह मित्र व वक्ष्य
मय वपुक्त मित्र ही जयम है पयवाम वह पारके वक्ष्य कथन
पुत्रपारिवाहके किने भी अन्त उद्यम है । इति अन्त कथन
है कि प्रत्येक कथने वक्ष्य वह प्रवक्ष्य दक्ष को और मय
पुत्रको अन्तपार वक्ष्य दक्ष प्रतिक्रिया अन्तपार को
कथन जाव ।

इस तरह पुत्रकाको पारके अन्तपार करवा दक्ष
(वक्ष्य वक्ष्य पयवाम । मं २७) पुत्रपारक कथन कथन
कथन है । वह पतिवै अन्त अन्तपार पुत्रको और पुत्र
विधवाको रक्षा करती है । अन्त इति पतिवै प्रवक्ष्य कथने
पहिले होला पुत्रवै ।

[वक्ष्य—मं २७ में वक्ष्य पयवाम वक्ष्य दक्ष
में पुत्रा आगवा है ।]

वयवाम ईश्वर उपासना और अन्तमें दक्ष कथने कथन
कथनपार—प्रवक्ष्य इतिव पयवाम पयवाम और अन्त उपासना
कथने करे । (देखो मं २२ २)

पतिवै पारका उपासना पुत्रका पतिवै पयवाम । (मं २१)

॥ कथनपार देवका उद्यम प्रवक्ष्य मित्र पयवाम
की आवा की उपासना करे अन्तमें उपासना कथने
आवा वयवामने इति उक्तं विष है—

वक्ष्य देवा म । रक्षति इति । (मं २२)
॥ वह अन्त वक्ष्य वक्ष्य पयवाम पयवाम पयवाम पयवाम
देव और पुत्रविधवा कोय कथन है । वह अन्त उपासना
कथन है । अन्त इति प्रत्येक पुत्र में ईश्वर वक्ष्य ।
उक्त को की पतिवै है उपासना पुत्रात् पुत्रात् । (मं २३)

प्रसन्न वृत्तों की इच्छा हो कि (य श्रद्धया मुच्यते । यं
५५) दयः स्व पापत्र मुक्त हो। गृहस्थयोगी। इस आत्म
अध्यात्मवृत्तों की विचार करना चाहिये कदाचित् गृहस्थाधर्म
इसा समझ आयेद्वारा हमें वे बार उद्यम करण सुख्य भूरे
स्वभावों के जन ज्ञानियों संभारना साध्य है। अतः फलसे
कर्मका विचार गृहस्थाधर्मवृत्तों के दमने तथा गृहा उचित
है। यदि वह विचार उसके दमने रहा तो व्यक्ति प्रलयमें
उत्पाते रह पर फलसे अपना बचाव कर सकते हैं।

एसावुपरां मे दो आक देस विषयसे अजग एव पर रहे हैं वह सब गुरुद्वी रहें। पूर्व जगु गुरुद्वी तारागण आदि सब जगदी ब्रह्ममें ब्रह्मण कर रहे हैं यही एव के ब्राह्मणमें बर्ती जाते बर्ती अस्तव भूति करते और बर्ती अथ । एव जोकते भी बर्ती । एव जगु और एव जगु एव एव रीतिन ही रहे हैं अर्थात् कि जगु भूति बर्ती । एव ब्रह्मणक एव पर गुरुद्वी होय जगदी ब्रह्ममें ब्रह्मण करे कि एव ॥ एव ॥ आ एव एवसे आर इस ब्रह्ममें रहते ब्रह्म एवसे । [एवसे] एवन् विषयोंक एवण वरन्ते ही एवण ब्रह्मण वरन्ते । एवन् एवसे विषय उक्त एवण । एवसे कि उचित है कि एव एवसे एवसे विषयोंक । एवण एव एवसे विषय के एव एवसे एवसे विषय एवण एवसे ।

[୧] ଅବସଥା: ୦୩ ମସିହା ୧ ମ ୧୫] କାମିତ୍ବ କୁ ଧରି
 ବସନ୍ତ ମନେ ଧରିବା ପାରିବେ । କୌଣସି ମନସ୍କୃଷ୍ଟ ଉପକ୍ରମ
 କଲେବେ ଉପକ୍ରମକ୍ରମେ ୧୧ କାଳ ଉପକ୍ରମକ୍ରମେ ଉପକ୍ରମ
 ହେ । ହେଲେବେ ଉପକ୍ରମକ୍ରମେ ୧୧ କାଳ ଉପକ୍ରମକ୍ରମେ
 ଉପକ୍ରମକ୍ରମେ ଉପକ୍ରମକ୍ରମେ ୧୧ କାଳ ଉପକ୍ରମକ୍ରମେ

[illegible]

सं. ३६ में क्या है कि (१५) आसुर का उल्लेख ।

५८) अधिकांश हम सचने दू रहे हैं अन्धकार का तिरक रातक और तमस हमसे अन्ध प्रकाश है आसिक, अग्नि मय-
सिक और इतिहासकक अन्धकार परस भिन्न है। वह सब अंध-
कार हम सचने दू हो हृदयमें विधीके पाठ वह अन्धकार वा
हम बचका अज्ञान न रह । हमें के सब इकाक ही के आस-
स प्रकाशके अधीनतिवा अज्ञानक काम होती है । और
अज्ञान दूर हम सब उमके बने के वचना अर्थमय है । अन्ध-
प्रकारक अज्ञानवा दूर वचका प्रत्यक्ष वचना प्रमेयका वर्तमान है ।
ही ताह जो (वास्तव्यः कृष्णः) का वातपात्र के निचर है । वा
वत पात्राः) का अर्थ प्रकाशके वचन है (वातद्वयः वा
असमूहः) का वास्तव्य और अस्मृतिवा है हम सबको दूर
करना चाहिये । सुदृष्टिकर्तके वक्तव्य हम सब में इस प्रकार बने
हैं । वक्तव्यके विचार और वास्तव्यके अन्धकार समके सब दूर
करना चाहिये और अधिनाक मान अर्थमयके विचार और अन्ध-
कारका अन्धकार अन्धमान के अन्ध वचना कहिये । अनुपपन्नका
का विचार होती है वैश वाचार वह कल्प है और वैश वक्तव्य
है । इत्येव इस उक्तिमें वह अर्थ वचना बोधव्य है ।

सिपौदा बनाया इस ।

एक बुद्धिमान पुरुष को यह ज्ञान है कि अन्य लोग कोई भी परीक्षा
में ५ और ५१ में किसी भी प्रकार के अक्षय के लिए परीक्षाएं कर
ने में सक्षम हैं।

यद्वाच्यं निः कर्तुं वाच्यः यद्वाच्यः स्वोक्त उपलब्धम् ।

(म ५१)

[illegible]

चतुर्दश काण्डकी विषयसूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
दम्पती विपुक्त न हो	१	खोटीका मघ न कामो	४६
चतुर्दश काण्ड, ऋषिदेयता और छन्द	१	बरातका रथ	४७
विवाह प्रकरण प्रथम सूक्त	५	द्वितीय सूक्तका विचार	४८
” द्वितीय सूक्त	१८	विवाहका समय	४९
वैदिक विवाहका स्वरूप	११	पक्षसे पद्मरोगवाश	५०
घोष और भूमि	”	शरत् वृत्त हा	५०
छोम	”	विवाहमें ईश्वरका हाथ	५१
बरातका रथ	१४	गर्माधान	”
न स्त्री स्वातन्त्र्य महति	१५	पठिके घरमें पत्नीका व्यवहार	”
बहेज	”	बहिष्कारको वृत्त करो	५१
पुतना और नया संबंध	१६	बहोंको नमस्कार	”
गृहस्थाश्रमका आदर्श	१७	बेघोंकी सजाय	५१
ब्राह्मणोंको धन और वस्त्रदान	१८	गुप्त बात	”
पुरुष स्त्रीका वस्त्र न पहने	”	बपूका वस्त्र	”
कन्याका गुह	१९	गृहस्थियोंके घर	५४
सङ्कल्पसंहारसे धन कमाओ	”	स्त्रियोंका बसाया बसा	५५
गौरक्षा सख्त मार्ग	”	गौयोंका यश	५६
सज्जधी बनो	४०	बाखोंकी पवित्रता	५७
स्त्रीकी इच्छा	४१	पुष्टिका साधन	”
स्त्री कैसे हो !	”	पुरुष और स्त्री	”
गृहस्थीका साम्राज्य	४१	मायिबिर्दि	५८
स्त्रियोंका भूत अठना	”	चतुर्दश काण्डकी विषयसूची	५९
पाणिग्रहण	४४		
केशोंकी मुहरता	४५		

चतुर्दश काण्ड समाप्त P १४ II

[illegible]

1 1 1
1 1
1 1

1

21 1 3 1 1

2 4 1

4 75 17

Tr

7. 1

1 2

1

22

4

1

2

3

11 1 17 1 17
H L H A
3 7 7
T 3 3
1

11

1

116-71

- 1

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040 104

25 26 27

7.4

١٢٠

11

12

2 7 1

148

1 7 1

27

ॐ

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य ।

पञ्चदशं काण्डम् ।

लेखक

प० श्रीपाद दामोदर सातबहेकर,
साहित्यशास्त्रज्ञ निदेशाचार्य पीठकृष्ण
मध्यम-स्वाध्याय मण्डल मानन्दाश्रम किष्कापारधी (जि. सुरत)

तृतीय वार

सं. १००३ भा. १८७१ स. १९५०





अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

पञ्चदश काण्ड ।

इस पञ्चदश काण्डका विषय 'श्राद्ध' है। इस काण्डमें बल्लुतः श्राद्ध विषयक एक ही सूक्त है परंतु इसके १८ पर्वाय हैं। अथर्ववेदका सूचीय विभाग काण्ड १३ से काण्ड १८ तक है और इस विभागका यह तांबरा सूक्त है। इस विभागके कर्मियोंका कहना यह है कि प्रत्येक काण्डमें एक ही विषयके सूक्त हुना करते हैं। वैसे अग्न कर्मियोंके सूक्तोंमें विविध देवताओंके अनेक विधान होते हैं, वैसे इस विभागके काण्डोंमें वही है। इस विभागक एक एक काण्डमें एक ही विषयके सब सूक्त रहते हैं।

इस काण्डका प्रारंभ 'श्राद्ध' शब्दसे हुआ है। इस काण्डमें अन्त्येष्ट्यविषय है; अतः इसकी देवता भी अन्त्येष्ट्य ही है और वहाँ का 'श्राद्ध' शब्द 'अन्त्येष्ट्य परमात्मा, श्राद्ध परमात्मा' का वाक्य है इसलिये वही संयतसूक्तक श्राद्ध शब्द इस काण्डके प्रारंभमें व्यवसा है, यानी वही इस काण्डका मन्त्रवाक्य है। अतः हम इस सूक्तके पर्वतोंके देवता और कर्मोंका विचार करते हैं।

पर्वाय	मंत्रार्थकता	कविता	देवता	काण्ड
१	८	अथर्वी	अन्त्येष्ट्य माता	१ साम्नीपथि २ द्विप साम्नी बृहती; ३ एकप वज्र मृगश्रुतपुत्र; ४ द्विप विराट् पानत्री; ५ साम्नी अनुपुत्र; ६ त्रिप प्राजापत्या बृहती; ७ आसुरीपथि: ८ त्रिप अनुपुत्र प्र १-४; ४ प, १ प साम्नी अनुपुत्र; द्वि १ ३ ८ छात्री त्रिपुत्र तु १ द्विपार्थी पंथि; ४ १ ३, २ द्वि मा पानत्री; ५ १ ४ द्विप आर्षी जयती; ६ २ साम्नीपथि: ४ ६ आसुरी पानत्री; ७ १—४ पदपथि म. १-८ त्रिप प्रजा. बृहती; द्वि २ एकप उन्मिष्ट तु २ आर्षी मुरिष्ट त्रिपुत्र; ४ २ आर्षी पयुपुत्र तु ३ विराट्पथी ६ पथि तु ४ विपुत्रपथी पंथि।
२	१८ (४)	अथर्वी	अन्त्येष्ट्य माता	१ विपथिकमन्त्रा पानत्री; २ साम्नी उन्मिष्ट; ३ वासुकी जयती; ४ द्विप आर्षी उन्मिष्ट ५ आर्षी बृहती; ६ अनुपुत्र अनुपुत्र; ७ साम्नी पानत्री; ८ आसुरी पंथि: ९ आसुरी जयती; १ प्राजापत्या त्रिपुत्र; ११ विराट् पानत्री।
३	११			प्र १ ५ ६ देवी जयती; प्र. १ २ ४ प्राजापत्या पानत्री; द्वि १ द्वि ३ आर्षी अनुपुत्र; तु. १ ४ द्विप प्राजापत्या जयती; द्वि २ प्राजापत्या पंथि; तु २ आर्षी पानत्री; तु ३ आर्षी त्रिपुत्र; द्वि ४ साम्नी त्रिपुत्र; द्वि ५ प्राजापत्या बृहती; तु ५ ६ द्विप आर्षी पथि; द्वि ६ आर्षी उन्मिष्ट।
४	१८ (१)			



प्रजाका रञ्जन करनेवाला राजा ।

सेरिचपत्तु ततो राजन्पोऽज्ञायत्	॥ १ ॥
स विद्वः सर्वेष्वनर्कप्रसाद्यमभ्युवतिष्ठत्	॥ २ ॥
विद्यां च नै स सर्वेषूना चार्कस्य चाचार्यस्य	
च प्रिय चार्क मवति य एव वेदं	॥ ३ ॥
स विद्वोऽनु क्यचलत्	॥ १ ॥
तं समा च समितिश्च सेनां च सुराचारुम्यचिलत्	॥ २ ॥
समायांश्च नै स समितिश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रिय चार्क	
मवति य एव वेदं	॥ ३ ॥

अर्थ अं १५ सू० ८-९

यह प्रजाका रंजन करने लगा । अतः वह राजन्व (अविद्य—एवम्) हुआ । वह प्रजा, अनुपाय और अचरि मोक्षोके प्राप्त हुआ । जो इसका उल्लेख करता है वह प्रजा अनुपाय अचरि मोक्ष आदिभ्यः प्राप्त होता है । यह प्रजाओंको अनुसरने लगा । अतः समा समिति, सेवा और चरित्रको अनुसरण हुए । जो इसका उल्लेख करता है वह समा, समिति सेवा और चरित्र का प्रिय स्थान करता है ॥ ”

मुद्रक तथा प्रकाशक—वसंत धीपाय सातयछेकर B, A
सारथीमुद्रकालय स्वाध्याय-मण्डल किछा पाटली (वि. पूर)



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

पञ्चदश काण्ड ।

इस पञ्चदश काण्डका विषय 'श्राद्ध' है । इस काण्डमें वस्तुतः श्राद्ध विषयक एक ही सूत्र है परन्तु इसके १८ पर्वान्ति हैं । अथर्ववेदका तृतीय विमान काण्ड १३ से काण्ड १८ तक है और इस विमानका यह चौथरा सूत्र है । इस विमानके कर्मोक्तका अन्वय यह है कि प्रत्येक काण्डमें एक ही विषयके सूत्र हुआ करते हैं । जैसा अन्य काण्डोंके सूत्रोंमें विविध देवताओंके अनेक विधान होते हैं वैसा इस विमानके काण्डोंमें नहीं है । इस विमानके एक एक काण्डमें एक ही विषयके सब सूत्र रहते हैं ।

इस काण्डका प्रारम्भ 'श्राद्ध' शब्दसे हुआ है । इस काण्डके अन्वयार्थका विषय है, अतः इसकी देवता भी अन्वयार्थ ही है और वहाँ का श्राद्ध शब्द 'आयुषा परमहन्ता, श्राद्ध परमहन्ता' का वाचक है इसलिये वहाँ सर्वसत्त्वक श्राद्ध शब्द इस काण्डके प्रारम्भमें आया है, मानो वही इस काण्डका सर्वव्यापक है । अब हम इस सूत्रके पर्वान्तिके देवता और छंदोंका विचार करते हैं ।

पर्वान्त	संज्ञार्थका	कविः	देवता	छन्दः
१	८	अथर्वी	अथर्वार्थ श्राद्धः	१ सामीप्यंतिः, २ द्विप साम्नी बृहती, ३ एउप वज्र न सपुत्रुपुः एकव विराट् नावती, ५ साम्नी अनुपुः, ६ उद्विप श्राद्धपत्न्या बृहती, ७ आनुरीपतिः ८ विप अनुपुः प्र १-४, ४ प, १ व साम्नी अनुपुः, द्वि १ २, ८ द्वि मा छन्दो विपुः, तृ १ द्विप यो पंक्तिः, च १ २, ८ द्वि मा नावती, र्व १ ४ द्विप आर्षी जयती, प, २ साम्नीपत्न्या व ६ आनुरी नावती, व १—४ परपंक्तिः अ १-४ विप श्राद्धा बृहती, द्वि २ एकव अथर्व तृ २ आर्षी भुवि विपुः, च २ आर्षी परानुपुः तृ ३ विराट् पंक्तिः तृ ८ विपुः पंक्तिः ।
२	१८ (४)	अथर्वी	अथर्वार्थ श्राद्धः	१ विपिण्डमन्वा यावती, २ साम्नी उन्मिः, ३ वातुपी जयती, ४ द्विप आर्षी उन्मिः ५ आर्षी बृहती, ६ आनुरी अनुपुः, ७ साम्नी नावती, ८ आनुरी पंक्तिः ९ आनुरी जयती, १ श्राद्धपत्न्या विपुः, ११ विराट् नावती ।
३	११	"	"	प्र १ ५ ६ देवी जयती, प्र. २ ३ ४ श्राद्धपत्न्या यावती, द्वि १ द्वि ३ आर्षी अनुपुः तृ १ ४ द्विप श्राद्धपत्न्या जयती, द्वि २ श्राद्धपत्न्या पंक्तिः, तृ २ आर्षी यावती, तृ ३ आर्षी विपुः, द्वि ३ साम्नी विपुः, द्वि ५ श्राद्धपत्न्या बृहती, तृ ५ ६ द्विप आर्षी यावती, द्वि ६ आर्षी उन्मिः ।
४	१४ (६)			

५	१६ (७)	अथर्व	अथर्व
			अ १ त्रिष स्याद्विषया यावन्ती, द्वि १ त्रिष कुरीत्यर्था त्रिषुपुः पु १-७ द्विष, यावापस्यात्रुपुः, अ १ त्रिष सरात् यावापस्या पाणिः, द्वि २-४, ६ त्रिष, अ ७ यावन्ती अ ३ ४ ६ त्रिषया अत्रुपुः, अ ५, ७ त्रिष विषया यावन्ती, द्वि ५ त्रिषयाप्यौ यावन्ती, द्वि ६ विषात् ।
६	२६ (९)	अथर्वार्थ यावन्ती	अ १ २ आमुपौ वृद्धिः, अ ३-६ ९ अमुपौ वृद्धिः, १६ परोष्मिन्, द्वि १, ६ अथर्वी वृद्धिः, अ ७ अथर्वी वृद्धिः, द्वि २ ८ आम्नी त्रिषुपुः, द्वि ३ आम्नी वृद्धिः, द्वि ५, ८ आथर्वी त्रिषुपुः, द्वि ७ आम्नी अत्रुपुः, द्वि ९ अथर्वी अत्रुपुः, पु १ आथर्वी वृद्धिः, पु २ ४ त्रिषु वृद्धिः, पु ३ यावापस्या त्रिषुपुः, पु ५ ६ त्रिषु वृद्धिः पु ७ आथर्वी वृद्धिः, पु ९ त्रिषु वृद्धिः ।
७	५		१ त्रिष त्रिषु वृद्धिः, २ एवम त्रिषु वृद्धिः, ३ त्रिषु वृद्धिः, ४ एवम यावन्ती, ५ वृद्धिः ।
८	३	अथर्वार्थ यावन्ती	१ आम्नी वृद्धिः, २ यावापस्या त्रिषुपुः, ३ अथर्वी वृद्धिः ।
९	३		१ आम्नी वृद्धिः, २ आथर्वी यावन्ती, ३ आथर्वी वृद्धिः ।
१०	११		१ त्रिष आम्नी वृद्धिः, २ त्रिष आथर्वी वृद्धिः, ३ त्रिष यावापस्या वृद्धिः, ४ त्रिष, वृद्धिः यावन्ती ५ त्रिष यावन्ती वृद्धिः, ६ ८ १ त्रिष आम्नी वृद्धिः, ७ ९ आम्नी वृद्धिः, ११ आम्नी वृद्धिः ।
११	११		१ वृद्धिः पाणिः, २ त्रिष वृद्धिः त्रिषुपुः, ३-६ ८ १ त्रिष आथर्वी वृद्धिः (१ त्रिषुपुः) ५ १ त्रिष यावापस्या वृद्धिः, ११ त्रिष आथर्वी अत्रुपुः ।
१२	११		१ त्रिष यावन्ती, २ यावा वृद्धिः, ३ अत्रुपुः या अत्रुपुः (७ आम्नी), ५ ६ ९ १ अत्रुपुः यावन्ती, ८ त्रिषु यावन्ती, ७ ११ त्रिष अत्रुपुः त्रिषुपुः ।
१३	१४ (९)		अ १ आम्नी वृद्धिः, द्वि १ ३ यावा अत्रुपुः अ २-४ आम्नी यावन्ती, द्वि २ ८ आम्नी वृद्धिः अ ५ त्रिषया अत्रुपुः यावन्ती, द्वि ५ त्रिष त्रिषु यावन्ती, ६ यावा वृद्धिः, ७ आम्नी वृद्धिः, ८ अत्रुपुः वृद्धिः ९ अत्रुपुः वृद्धिः ।

१२	१२ (१२) अथर्वा	अथर्वार्वा मन्त्रः	प्र १ त्रिप अनुष्टुप्; द्वि. १-११ द्विप आधुरी पा- यत्री (द्वि १-१ मुरिकपाया अनुष्टुप्); प्र २ ५ पुरलम्बिक; प्र ३ अनुष्टुप्; प्र ४ प्रस्तारपंक्ति; प्र ६ स्वराङ्क वायत्री; प्र ७ ८ आर्वा पंक्ति; ९ १० मु- रिङ्कवागी वायत्री; प्र ११ प्राजा त्रिष्टुप्,
१५	१	"	१ देवी पंक्ति; २ आधुरीवृहती; ३ ४ ७ ८ प्राजा आधुरी (४ ७ ८ मुरिक); ५ ६ द्विप आम्बी वृहती; ९ विराङ्क वायत्री ।
१६	७	,	१ ३ आम्बी उम्बिक; २ ४, ५ प्राजा उम्बिक ६ वाङ्गपी त्रिष्टुप्; ७ आधुरी वायत्री ।
१७	१	,	१-५ प्राजा उम्बिक; २ ७ आधुरी अनुष्टुप्; ३ वाङ्गपी पंक्ति; ४ आम्बी उम्बिक; ६ वाङ्गपी त्रि- ष्टुप्; ८ त्रिप प्रविष्ठापी पंक्ति ९ द्विप आम्बी त्रिष्टुप्; १ छन्द अनुष्टुप् ।
१८	५		१ देवी पंक्ति; २, ३ आर्वा वृहती ४ आर्वा अनुष्टुप्; ५ आम्बी उम्बिक ।

इस आम्बी के कुछ मन्त्र संख्या १२ है । इस कारणका शक्ति अथर्वार्वा है क्योंकि यहाँ विशेष रीतिसे उल्लेख नहीं
होता, यहाँ अथर्ववेदके सूक्तोंका अथर्वार्वा अथि हुआ करता है ।

यद्यपि इस सब कारणकी देवता प्राजा (अथर्वार्वा) है तथापि स्वायत्तस्वयम्बर यहाँ मन्त्रोंमें अम्बाम्ब देवताका
नाम आते हैं यहाँ वेही मन्त्रोक्त देवता समझा जायित है । परन्तु सब देवताओंका आकार अन्तमें आसमें देखा अम्बाम्बमें
अर्वात् आम्ब देवता में ही लभ्य होता है यह बात भूलना नहीं चाहिये ।

यह सब कारण एक ही देवताका होनेसे यद्यपि इस एक सूक्तमें १८ पर्वान हैं तथापि सबका विचार एक ही सूक्त
हानसे सब मन्त्रोंका अर्थ देखके पताही हो जायत सबका विचार एक ही करण करे । क्योंकि सबका सर्वत्र आर्वा
वर्णित है । आम्ब दे कि यह विचार पाठकोंके दिने बोधप्रद सिद्ध होना ।





अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

पञ्चदश काण्डम्

अध्यात्म प्रकरण ।

(१)

म्रात्यं आसीदीर्यमान एव स प्रज्ञापतिं समैरयत्	॥ १ ॥
स प्रज्ञापतिः सुवर्णीमात्मसंपदमुत्तमार्जनयत्	॥ २ ॥
तदेकममवुत्तच्छािमममवुत्तन्मुहर्देमवुत्तज्ज्येष्ठममवुत्तद्वक्षामवुत्तचपौऽमवुत्तस्तुत्थर्ममवुत्तेन	
म्रात्रायत्	॥ ३ ॥
सोऽिवर्धत् स महानमवुत्त मंहाबुधोऽिमवत्	॥ ४ ॥

१ [१] (म्रात्राः ईर्यमानः आसीत्) म्रात्र कर्वाए समुद्रोका हित करनेवाला समुद्रपति धनका तैरक वा (छः प्रजा पति सं तैरवत्) उक्तने प्रजापालकको उक्तम तैरका की ॥ १ ॥ (सः प्रजापतिः) उक्त प्रजापतिने (अहमव सुवर्ण अपरवत्) म्रात्रा की वतव तैरकसी वरैवुक्त हैका । और (तत् प्र अवववत्) वसने ववको वतव दिना १ ॥
 (तत् एक अवववत्) वह एक होवथ (तत् ककाम अवववत्) वह निमयव हुआ (तत् महत् अवववत्) वह वरा हुआ, (तत् ववेर्ध अवववत्) वह वेर्ध हुआ (तत् मद्र अवववत्) वह मद्र हुआ (तत् तवः अवववत्) वह तवनेवाला हुआ (तत् छर्ध अवववत्) वह छर्ध हुआ (तैव प्र अवववत्) उक्तने द्वारा प्रकट हुआ ॥ ३ ॥
 (सः अवववत्) वह वक्त मवा (सः महान् अवववत्) वह वरा हुआ (स महारवः अवववत्) वह वरदेव अर्थात् वरा देव हुआ ॥ ४ ॥ (सः ईयां देवानी परि वत्) वह वव छोटे देवीका अधिष्ठाता हुआ (स ईयावः अवववत्) वरी

स देवानामीशानां पर्येतस ईशानोऽभवत् ॥ ५ ॥ स एकमात्रोऽभवत्स धनुरादत्त वसुदेनेननु ।
॥ ६ ॥ नीलमस्योदरं लोहितं पुष्टम् ॥ ७ ॥ नीलैर्नवाग्रियं आरुम्भ्य प्रोक्षति कोटिभि
द्विषन्तं विष्यतीति प्रह्लादादिनां वदन्ति ॥ ८ ॥

[२]

स उदविष्टस्तु प्राचीं दिक्षुमनु व्यचिचलत् ॥ १ ॥
त पुहृष्यं रथन्तरं चादित्याय विधेयं च देवा अन्वव्यचिचलन् ॥ २ ॥
पुहृष्यं च वै स रथन्तरायं चादित्येभ्यश्च विधेयं च देवेभ्य आ वृंथते य एवं विहातु
आस्पन्मुपवर्तति ॥ ३ ॥ पुहृष्यं वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विधेयं च देवानां द्विष
धामं भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥ ४ ॥ भद्रा पुंशली मिश्रो मांगुघो विज्ञान वासोऽर्जुना
रात्री केष्टा हरिवौ प्रवृत्तौ कल्पलिर्मणिः ॥ ५ ॥
मृतं च भविष्यन् परिष्कुन्दौ मनो विपश्य ॥ ६ ॥
मातरिभा च पर्वमानभ विपश्यद्वाहो वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥
कीर्तिश्च यक्षश्च पुरःसुराबर्नं कीर्तिर्मिच्छत्या यक्षो गच्छति य एवं वेद ॥ ८ ॥ (१)
स उदविष्टस्तु स दक्षिणां दिक्षुमनु व्यचिचलत् ॥ ९ ॥

ईश्वर हुआ ॥ ५ ॥ (सः एकमात्रः अभवत्) वह एकमात्र सब समुत्पन्न स्वामी हुआ (सः यदुः कायः) उसके स्वयम्भ
महत्त्व किन्ना (ततः एक इन्द्रपुत्रः) रही इन्द्रपुत्र ही ॥ ६ ॥ (भवत् वरुण बीक) इन्द्रा येन नीलः है और (प्रोक्षति)
पीट काट है ॥ ८ ॥

(श्रीकेन पुनः) नीके मायके वह (आदिषं आनुम्य म कर्मोति) अभिय सनुको पैरता है और (कोटिभ्य निपत्तं
विषयति) काय मायके द्वेष करकेवालेके वेचता है, (इति अष्टाचारिणः वदन्ति) ऐसा मन्त्रमारी करते हैं ॥ ८ ॥

[२] (सः उदः अविष्टः) वह ऊपर बढ़ा । (सः प्राचीं तिस्रः अनुम्यचकत्) वह पूर्व दिशा की ओर अनुम्य (त्रि
ये पक्षः ॥ १ ॥ (सः पुहृष्यं च रथन्तरं च आदित्याः च विधेयं देवाः च अनुम्यचकत्) उसके गृह्य, रथन्तर आदिन भि
देव अनुम्यक हुए ॥ २ ॥ (यः एवं विहातुं मात्य उपवर्तति) जो ऐसे विहातु मत्वातीके गुरे पक्ष्य बोझा है वह गृह्य
रथन्तर आदितो और विधेयदेवीक (आ वृंथते) अपराधी होता है ॥ ३ ॥ (यः एवं वेद) जो वह वाक्य है वह कल्प
रथन्तर आदित्य और विधेयदेवीक मित्रधाम बनता है ॥ (तस्य आरुणां दिशि) उसकी प्राची दिशामें (भद्रा पुंशली) पक्ष
की (मिश्रः) मायकाः मित्र पूर्ण स्तुति करकेवाका (विज्ञानं वातः) विज्ञान वक्ता (वाहः उष्णीषः) शिव पत्नी (रात्री केष्टा) पक्ष
वाक (हरिवौ मयवौ) शिव कुम्भ (कल्पलिः मणिः) तारे मणिके समान होते हैं ॥ ४-५ ॥ (मृतं च भविष्यत्) मृत
पक्षी) मृत पक्ष और भविष्यत्क ने दोनों वरुणे एकत्र होते हैं और (मन्त्रः विपश्यं) मन्त्र इन्द्रा कुम्भार होता है ॥ ६ ॥
(मातरिभा च पर्वमानः च विपश्यद्वाहो) वात और वायुवात उसके रथके जोके हैं (वातः सारथी) प्राण वक्ता वात
और (रेष्मा प्रतोदः) वात प्रसफा वातुक है ॥ ७ ॥ (कीर्तिः च यक्षः च) कीर्ति और यक्ष वरुणे (पुरातनौ) वायु
हैं । (एवं वेदः) वायुवक्ता) इसके वायु कीर्ति आ जाती है । इसके वायु (वातः वायुवक्ता) वह वात है ॥ ८ ॥ [१]

[सः] वह उठता है और दक्षिण दिशामें अनुम्यक होकर वक्ता करता है ॥ ९ ॥

त यज्ञायज्ञिर्यं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च पशुर्वसानुम्यचिलन् ॥ १० ॥

यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्यार्यं च यज्ञार्यं च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृक्षते य एष विद्वांस आत्यंशुपुनर्वसि ॥ ११ ॥ यज्ञायज्ञिर्यस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च

यजमानस्य च पशूनां च प्रिय धाम भवति तस्य दर्शिणायां द्विषि ॥ १२ ॥

तृषाः पुंश्ली मन्त्रो मागधो विद्वान् वासोऽहंरुष्णीप रात्री केन्ना हरितौ प्रवर्तौ कर्मलिर्मणिः ॥ १३ ॥

अमावस्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपद्यम् ॥ १४ ॥ (२)

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु म्यचिलत् ॥ १५ ॥

स वैरूपं च वैराज्यं चार्यं च वरुणश्च राजानुम्यचिलन् ॥ १६ ॥

वैरूपाय च वै स वैराज्यार्यं चार्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ वृक्षते य एष विद्वांस आत्यंशुपुनर्वसि ॥ १७ ॥

वैरूपस्य च वै स वैराज्यस्य चार्या च वरुणस्य च राज्ञः प्रिय धाम भवति तस्य प्रतीचीं दिशि ॥ १८ ॥ दुरा पुंश्ली हसो मागधो विद्वान् वासोऽहंरुष्णीप रात्री केन्ना हरितौ प्रवर्तौ कर्मलिर्मणिः ॥ १९ ॥

अहंश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपद्यम् ॥ २० ॥ (३)

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु म्यचिलत् ॥ २१ ॥

त इत्यैवं च नौभसं च समर्पयश्च सोमश्च राजानुम्यचिलन् ॥ २२ ॥

[सं] उक्तं यज्ञायज्ञि चामदेव्यं, यज्ञं यजमान और [पशुवा च अनुम्यचकत्] पशु भी अनुम्य च होते हैं ॥ १० ॥ [वा एवं विद्वांस प्रत्यं कपवर्तति] को ऐसे विद्वांस प्रत्यक्षी का कपवर्तन करता है वह यज्ञायज्ञि चामदेव्यं यज्ञं यजमान और पशुओं के विश्वसे [आत्यंशुते] अपराधी होता है ॥ ११ ॥ [वा एवं वैरु] को इस वायव्य जानता है वह यज्ञायज्ञि चामदेव्यं यज्ञं यजमान और पशुओं का विश्वज्ञान करता है । उक्तो दक्षिण दिशि [उवाः पुंश्ली] उवा भी [मन्त्रो मागधः] मन्त्र प्रथेय्य करनेवाला विद्वांस यज्ञ दिग् पश्यी रात्री कश्च किरम कुण्डल तारे यन्त्रि के समान होते हैं ॥ १२—१३ ॥ [अमावस्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ] आमावस्या और पौर्णिमा उक्तो संरक्षक होते हैं, और यन्त्र उक्तो मुरारि है । वाच और उपमाव उक्त रचने को वे प्राण धारणी और वायु उक्त वायु के [आये पूर्ववत्] ॥ १४ ॥ [२]

(१) वह दक्ष और (२) प्रतीची दिशि अनुम्यचकत् वह पश्चिम दिशि की ओर अनुम्यचकत् प्राण धारण करने कथ्य ॥ १५ ॥ तब उक्तो वरुण वैराज्य, अन् और राजा यज्ञ अनुम्यचकत् ॥ १६ ॥ यन्त्र एवं विद्वांस प्रत्यक्षी अपमान करते हैं, वह वैरुण वैराज्य अन् और राजा यज्ञ के प्रति अपराधी होते हैं ॥ १७ ॥ जो वह वायु जानता है वह वैरुण वैराज्य अन्-यज्ञ, और राजा यज्ञ का विश्व ज्ञान करता है । उक्तो जिसे चामदेव्य दिशि [दुरा पुंश्ली] भूमि भी (उवाः मागधः) वायु प्रत्यक्ष विद्वांस यज्ञ ॥ १८ ॥ (अहंश्च रात्री च परिष्कन्दौ) दिन और रात्री उक्त रक्षक होते हैं [आये पूर्ववत्] वायु प्रत्यक्ष विद्वांस यज्ञ ॥ १९ ॥ (अहंश्च रात्री च परिष्कन्दौ) दिन और रात्री उक्त रक्षक होते हैं [आये पूर्ववत्]

(३) वह दक्ष और वह (उदीचीं दिशि) उत्तर दिशि अनुम्यचकत् प्राण धारण करने के (२) एवं च उक्तो च राजा होता है अनुम्यचकत् उक्तो अनुम्यचकत् प्रत्यक्ष और राजा यज्ञ यज्ञ करने ॥ २२ ॥

इयेताय च वै स नौघस्ताय च समुषिर्भ्यश्च सोमाय च राह आ बृकते च पुंरं विहास
 प्रात्समुपवदति ॥ २३ ॥ इयेतस्य च वै स नौघसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च राहो
 प्रिय घामं भवति तस्योदीर्घ्यां दिक्षि ॥ २४ ॥ विद्युत् पुंश्वली स्तनपित्तुमीमनो विहासं
 वासोऽहंरुष्याप रात्री केला हरिती प्रवर्तो कन्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥ भ्रुव च विभ्रुव च रि-
 ष्कन्दौ मनी विपथम् ॥ २६ ॥

मातरिषा च पर्वमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेग्मा प्रतोद* ॥ २७ ॥
 कीरिष्य यक्षश्च पुरासुराश्चैन कीरिर्गिच्छकृत्या यक्षो गच्छति य एष वेद ॥ २८ ॥ (४)

(३)

स संबत्सरमूर्ध्नो विष्टुत् त वेवा अंभुवन् मास्य किं तु तिष्ठुसीति ॥ १ ॥
 सोऽब्रवीदासन्दी मे सं भरन्तिवति ॥ २ ॥ तस्मै मात्वापासन्दी समभरन् ॥ ३ ॥
 तस्या ग्रीष्मम् वसन्तश्च द्वौ पाशुवास्तां सुरम् वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥
 बृहच्च रयतरं चानूच्ये इ आस्तां यज्ञायज्ञिर्च य वामवेष्ट्य च तिरुभ्ये ॥ ५ ॥
 अथः प्राप्चस्तन्तवो यज्ञेति तिर्यग् ॥ ६ ॥ वेद आस्तरं यज्ञोपवीतम् ॥ ७ ॥
 सामासाद उद्गीथेऽपभ्रवः ॥ ८ ॥ तामासन्दी मास्य आरोहत् ॥ ९ ॥ तस्य देवना
 परिष्कन्दा आसन्तसंख्याः प्रहाय्या इ विद्यानि मतान्युपसर्दः ॥ १० ॥

यो इस प्रकारके विज्ञान मास्यका उपहास करता है वह स्वेत नीधन समर्षि और उष्य सोमका अपराधी होता है ॥ २३ ॥ जो
 यह बात जान होता है वह कण नीधन समर्षि और रात्रा होमका प्रिय नाम ब्रवता है ॥ २४ ॥ उसने जिसे कण रिष्य
 विद्युत् पुंश्वली) विष्कली की (स्तनपित्तुः मास्यः) गर्भवेवाला मेघ प्रवर्तमानों विज्ञान वक्ष, दिन पक्षी उगी के
 विरल कुक्कल तारे मणि है ॥ २५ ॥ (भ्रुव विभ्रुव च परिष्कन्दौ) इत्येति विज्ञान के कणक रक्षक और मन कणक पुराण है
 ॥ २६ ॥ स्ताव और वक्ष्यताव कणके वक्त्रे कोले (इत्यादि पूर्ववत्) ॥ २७ ॥ २८ ॥ (४)

[१] [सः संबत्सरं कर्षी अतिष्ठत्] वह वर्ष भरतक कण रहा [सं वेवा अंभुवन्] कसे देखते पड़ा, [मास्य
 किं तु तिष्ठुसीति] हे गती, तू क्यों कण है ॥ १ ॥ [सः वामवेष्ट्य] कसे पड़ा, [मे वासन्दी मे भरन्तु मणि]
 मेरे जिसे देवनादी सुशी कर्षी ॥ २ ॥ तव [कसे मात्वा पासन्दी समभरन्] कस गतीके जिसे देववेष्टी कोले के
 भागे ॥ ३ ॥ [तस्याः ग्रीष्मः च वसन्तः च] कस चौकी के ग्रीष्म और वसन्त मे [द्वौ पाशुवास्तां] दो बर के और
 [वरत्त च वर्षाः च द्वौ] कस और वर्षा के दो पाश के ॥ ४ ॥ [बृहच्च रयतरं च] बृहत् और रयतर के दो
 [अनूच्ये वास्तां] वास्तुके फलक के और [यज्ञायज्ञिर्च य वामवेष्ट्य च तिरुभ्ये] यज्ञायज्ञिर्च और वामवेष्ट्य मे दो तिष्ठे
 उष्य के ॥ ५ ॥ [अथः प्राप्चस्तन्तवो] कसेके सम कर्षाके उष्य के और [यज्ञेति तिर्यग्] यज्ञवेष्टके मंत्र तिष्ठे
 उष्य के ॥ ६ ॥ [वेद आस्तरं] वेद कणक विज्ञान या और [यज्ञोपवीतम्] यज्ञ—कण कणक कोलेका वक्ष च
 ॥ ७ ॥ [सामासादः] साम गयेका या और [उद्गीथे अपभ्रवः] उद्गीथ उगिना या ॥ ८ ॥ [तामासन्दी] तामा आसन्दी
 *स प्रकारकी ज्ञानमयी नीधन गती पड़ा ॥ ९ ॥ [देवनावाः तस्य परिष्कन्दा आसन्] देवना कणके रक्षक हुए [संख्या
 प्रहाय्या] कसे के कणक कसे दूत और [विद्यानि अत्यन्त उपहास अत्यन्त दूष] दूष भूत कसे दूष देवनाके के ॥ १० ॥

विभान्येवास्य मृतान्युपसदो भवन्ति य एव वेद

॥ ११ ॥

(४)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥ सासन्ती मासौ गोसारावकुर्वन् बृहच्च रथं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥
वासन्तर्बेन मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथं चानु तिष्ठतो य एव वेद ॥ ३ ॥ (१)
तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥ त्रैप्सौ मासौ गोसारावकुर्वन् यज्ञायज्ञिर्यं च वामदेव्य
चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥

त्रैप्सविन मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञिर्यं च वामदेव्य चानु तिष्ठतो य एव
वेद ॥ ६ (२) ॥

तस्मै प्रवीच्या दिशः ॥ ७ ॥ पार्थिवी मासौ गोसारावकुर्वन् वैरूप च वैराज चानुष्ठातारौ
॥ ८ ॥ पार्थिवावेन मासौ प्रवीच्या दिशो गोपायतो वैरूप च वैराज चानु तिष्ठतो य
एव वेद ॥ ९ (३) ॥

तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥ धारदौ मासौ गोसारावकुर्वन् छयेत च नौषस चानुष्ठातारौ ११
धारदौर्बेन मासाबुदीच्या दिशो गोपायतो छयेत च नौषस चानु तिष्ठतो य एव
वेद ॥ १२ (४) ॥

तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥ हेमनौ मासौ गोसारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ
॥ १४ ॥ हेमनौर्बेन मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिं चाग्निं चानु तिष्ठतो य एव वेद ॥ १५ (५)

[यः एव वेद] जो यह एक भागदा है [विधानि मूलानि करण उपसदः भवन्ति एव] सब मूल इसके साथ बैठे रहने
वाणी—मित्र—होते हैं इसमें बरेह मही ६ ॥ ११ ॥

[४] (तस्मै प्राच्या दिशः) सबसे किये पूर्व की दिश ॥ १ ॥ [वासन्ती मासौ गोसारावकुर्वन्] वसन्त ऋतु
के साथ रक्षक बनाने [बृहच्च रथं चानुष्ठातारौ] बृहच्च और रथं के साथ बनाने ॥ २ ॥ (यः एव वेद) जो
यह भागदा है सबसे प्राची दिश वसन्त ऋतु के दो महीने रक्षक होते हैं और बृहच्च तथा रथं के साथ होते हैं ॥ ३ ॥ [१]

सबसे किये दक्षिण की दिश ॥ ४ ॥ मीथ्य ऋतु के दो साथ रक्षक बनाने और यज्ञायज्ञिर्यं और वामदेव्य चानुष्ठातारौ
हैं ॥ ५ ॥ जो यह भागदा है सबसे दक्षिण दिश, मीथ्य ऋतु के दो महीने रक्षक होते हैं और यज्ञायज्ञिर्यं तथा वामदेव्य
चानुष्ठातारौ होते हैं ॥ ६ ॥ [२]

सबसे किये पश्चिम की दिश ॥ ७ ॥ वर्षा ऋतु के दो साथ रक्षक बनाने और वैरूप तथा वैराज चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥
जो यह भागदा है, सबसे किये पश्चिम दिश वर्षा के दो महीने रक्षक होते हैं और वैरूप तथा वैराज चानुष्ठातारौ होते हैं ॥ ९ ॥ [३]

सबसे किये उत्तर की दिश ॥ १० ॥ शरदृतु के दो साथ रक्षक बनाने, और छयेत तथा नौषस चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥
जो यह भागदा है सबसे उत्तर दिश शरदृतु के दो महीने रक्षक होते हैं और छयेत तथा नौषस चानुष्ठातारौ होते हैं ॥ १२ ॥ [४]

सबसे किये उत्तर दिश ॥ १३ ॥ शरदृतु के दो साथ रक्षक बनाने और भूमिं तथा चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥
जो यह भागदा है सबसे उत्तर दिश शरदृतु के दो महीने रक्षक होते हैं और भूमिं तथा चाग्निं चानुष्ठातारौ होते हैं ॥ १५ ॥ [५]

जो यह भागदा है सबसे उत्तर दिश शरदृतु के दो महीने रक्षक होते हैं और भूमिं तथा चाग्निं चानुष्ठातारौ होते हैं ॥ १५ ॥ [५]

तस्मा ऊर्ध्वाया विद्युः

॥ १६ ॥

क्षेत्रिरो मासी गोमारावर्धुर्वन् दिवं चादित्य चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥ क्षेत्रिरेन मासमूर्ध्वाया
विद्यो गोपायतो धोमादित्यवानु तिष्ठतो य एव वेद ॥ १८ ॥ (६)

[५]

तस्मै प्राच्या विद्यो अन्तर्वेद्यात् पञ्चपार्थिवेष्वसमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥

भूवर्धनमिष्वासः प्राच्या विद्यो अन्तर्वेद्यादनुष्ठातारानु तिष्ठति नैनं क्षुर्यो न भूवो नेष्टानः ॥ २ ॥

नास्य पञ्च न समानान् हिंनस्ति य एव वेद ॥ ३ ॥ (१)

तस्मै दक्षिणाया विद्यो अन्तर्वेद्याच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥

क्षर्वर्धनमिष्वासो दक्षिणाया विद्यो अन्तर्वेद्यादनुष्ठातारानु तिष्ठति नैनं क्षुर्यो न भूवो
नेष्टानः । ० ॥ ५ ॥ (२)

तस्मै प्रतीच्या विद्यो अन्तर्वेद्यात् पञ्चपार्थिवेष्वसमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥

पञ्चपार्थिवमिष्वासः प्रतीच्या विद्यो अन्तर्वेद्यादनुष्ठातारमकुर्वन् ० ॥ ७ ॥ (३)

तस्मा उदीच्या विद्यो अन्तर्वेद्यादुग्र देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ८ ॥

उग्रर्धन देव इष्वास उदीच्या विद्यो अन्तर्वेद्यादनुष्ठातारमकुर्वन् ० ॥ ९ ॥ (४)

उपरोक्ते क्रमे क्रम्यं विद्या ॥ १६ ॥ किमिदं शब्दोक्तं यो मास रक्षक इत्यर्थे और पुनः तदा आदित्य मनुष्यरूपे ॥ १७ ॥
यो वह वात वायव्य है उसके क्रमे क्रम्यं विद्या किमिदं शब्दोक्तं यो मासि रक्षक होते हैं और पुनः तदा आदित्य मनुष्यरूपे
है ॥ १८ ॥ [६]

[५] (तस्मै प्राच्या विद्याः अन्तर्वेद्यात्) उपरोक्ते क्रमे पूर्व विद्याके अन्तर्वेद्यके (इष्वास्यं यवं मनुष्यमूर्ध्वं मनुष्यं)
मनुष्योरी मयके मनुष्यता मयावा ॥ १ ॥ (यः पूर्व वेद) जो इस बातका वायव्य है (एव इष्वासः मयः) इत्यं मनुष्यो
मय (प्राच्या विद्याः अन्तर्वेद्यात्) प्राची विद्या के अन्तर्वेद्यके (मनुष्यता मनुष्यमूर्ध्वं) मनुष्यता होकर रहता है और (यः
क्षर्वं न मयः ईक्षानः यः) न क्षर्वं मय मयवा ईक्षान इत्यं वात करता है ॥ २ ॥ (यः वातः पञ्च समानान् हिंनस्ति)
न इसके पञ्चों और इसके समान मनुष्योकी हिंसा करता है ॥ ३ ॥ [१]

उपरोक्ते क्रमे दक्षिण विद्याके अन्तर्वेद्यके मनुष्योरी मयके मनुष्यता मयावा ॥ ४ ॥ जो वह वात वायव्य है उसके
मनुष्योरी मय दक्षिण विद्याके अन्तर्वेद्यके मनुष्यता होकर रहता है और न क्षर्वं मय मयवा ईक्षान इत्यं वातपत करता है
और न पञ्चों और मनुष्योकी हिंसा करता है ॥ ५ ॥ (२)

उपरोक्ते क्रमे (प्रतीच्या विद्याः) पश्चिम विद्याके अन्तर्वेद्यके (पञ्चपार्थिव इष्वास्यं) पञ्चपार्थिवो मनुष्य
मयावा ॥ ६ ॥ जो वह वायव्य है उसका मनुष्योरी पञ्चपार्थिव पश्चिम विद्याके मनुष्यता होकर रहता है और इत्यं न क्षर्वं
यं मयवा ईक्षान वातपत करता है और न इसके पञ्चों और मनुष्योकी हिंसा करता है ॥ ७ ॥ [३]

उपरोक्ते क्रमे (उदीच्या विद्याः) उत्तर विद्याके अन्तर्वेद्यके (उग्र देव इष्वास्यं) उग्र देवो मनुष्यो मनुष्य
मयावा ॥ ८ ॥ जो इस बातको वायव्य है उसके मनुष्योरी उग्रदेव उत्तर विद्या के अन्तर्वेद्यके मनुष्यता होकर रहता है
और इत्यं न क्षर्वं मय और ईक्षान वातपत करता है और न इसके पञ्चों और मनुष्योकी हिंसा करता है ॥ ९ ॥ (४)

तस्मै ध्रुवाया विश्वो अन्तर्द्वेषात् रुद्रमिष्यासमेनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १० ॥
 रुद्र एनमिष्यासो ध्रुवाया विश्वो अन्तर्द्वेषादेनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ११ ॥ (५)
 तस्मा ऊर्ध्वाया विश्वो अन्तर्द्वेषान्महादेवमिष्यासमेनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १२ ॥
 महादेव एनमिष्यास ऊर्ध्वाया विश्वो अन्तर्द्वेषादेनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १३ ॥ [६]
 तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्द्वेषेभ्य इक्षानमिष्यासमेनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १४ ॥
 इक्षान एनमिष्यासः सर्वेभ्यो अन्तर्द्वेषेभ्योऽनुष्ठातारं तिष्ठति नैनं श्रुवो न भ्रुवो नेक्षानः ॥ १५ ॥
 नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥ (७)

[६]

स ध्रुवा विश्वमनु व्यचिहत् ॥ १ ॥
 स भूमिश्च प्रियौपयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च भीरुपशान्वाण्यऽचलन् ॥ २ ॥
 भूमिश्च वै सो ऋषेभ्योपधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वरुणां च प्रिय चामं
 मवति य एवं वेद ॥ ३ (१)
 स ऊर्ध्वा विश्वमनु व्यचिहत् ॥ ४ ॥
 समुत्तं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचिहत् ॥ ५ ॥

उपलब्ध क्रिमे (ध्रुवाया विश्वः) ध्रुव विश्वके अन्तर्द्वेषे (एन इष्यासः) एनके अनुपाती अनुष्ठान्य वनाया
 ॥ १ ॥ जो इस बातके ज्ञाता है उसका अनुपाती एनके ध्रुव विश्वके अन्तर्द्वेषे अनुष्ठान्य होकर रहता है और न
 इसका सर्व मय और ईशान बात करता है और न इसके पशुओं और वायव्यी की हिंसा करता है ॥ ११ ॥ (५)
 उपलब्ध क्रिमे (ऊर्ध्वाया विश्वः) ऊर्ध्वविश्वके अन्तर्द्वेषे (महादेव इष्यासः) महादेवके अनुपाती अनुष्ठान्य
 वनाया ॥ १२ ॥ जो इस बात को ज्ञाता है उसका अनुपाती एनके ऊर्ध्वविश्वके अन्तर्द्वेषे अनुष्ठान्य होकर रहता है और
 न इसका सर्व मय और ईशान बात करता है और न इसके पशुओं और वायव्यों की हिंसा करता है ॥ १३ ॥ (६)
 उपलब्ध क्रिमे (सर्वेभ्यः अन्तर्द्वेषेभ्यः) एव अन्तर्द्वेषे (इक्षान इष्यासः) इक्षान को अनुपाती अनुष्ठान्य वन या
 ॥ १४ ॥ जो इस बातके ज्ञाता है उसका अनुपाती ईशान सव विश्वको अन्तर्द्वेषे अनुष्ठान्य होकर
 रहता है । न इसका सर्व मय अथवा ईशान बात करते हैं और न इसके पशुओं और वायुवायव्यों की हिंसा करते
 हैं ॥ १५—१६ ॥ (७)

[६] [सा ध्रुवा विश्वमनु व्यचिहत्] यह ध्रुव विश्वकी ओर अनुष्ठान्यतासे चला ॥ १ ॥ इह क्रिमे [स भूमि च
 प्रियः च ओदयश्च वनस्पतयश्च] उल्लेखे अनुष्ठान्य भूमि जमि ओषधि वनस्पति [वायव्यायाश्च भीरुपशान्वाण्यऽचलन्]
 अनुष्ठान्यतासे [सो ऋषेभ्योपधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वरुणां च प्रिय चामं]
 ओदे और वने वृक्षों [प्रियं धाम मवति] प्रिय स्थान होता है ॥ ३ ॥ [१]
 [सा ऊर्ध्वा विश्वः] यह ऊर्ध्व विश्वकी ओर अनुष्ठान्य होकर चला ॥ ४ ॥ इह क्रिमे [स सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रः
 च नक्षत्राश्च] उल्लेखे अनुष्ठान्य सत्य सत्य सूर्य चन्द्र और नक्षत्र ॥ ५ ॥ जो यह ज्ञाता है वह ज्ञात

अवस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च त्रिव धाम भवति य एव वेद ॥ ६ (२)

स उग्रमां दिक्षमनु व्यचिहत् ॥ ७ ॥ तमूर्ध्वं सामानि च यजुषि च अक्षं चानुचिहत् ॥ ८ ॥ अथां च वै स साक्षां च यक्षुषां च अक्षं च त्रिव धाम भवति य एव वेद ॥ ९ (३)

स पृथ्वीं दिक्षमनु व्यचिहत् ॥ १० ॥ समितिहासं पुराणं च गाथां नाराक्षसीनां च चिह्नं चानुचिहत् ॥ ११ ॥ इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथाणां च नाराक्षसीनां च त्रिव धाम भवति य एव वेद ॥ १२ (४)

स परमां दिक्षमनु व्यचिहत् ॥ १३ ॥ तमाहवनीयं गार्हपत्यं दक्षिणाग्नेयं यजमानस्य पञ्चवसानुष्यचिहत् ॥ १४ ॥

आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेयं यजस्य च यजमानस्य च यजमानं च त्रिव धाम भवति य एव वेद ॥ १५ (५)

सोर्नादिष्टां दिक्षमनु व्यचिहत् ॥ १६ ॥ तमूर्ध्वं चार्धवां लोकां लौक्यां मासां चानुचिहत् ॥ १७ ॥

अतूनां च वै स चर्त्विषाणां च लोकाणां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्र्याणां त्रिव धाम भवति य एव वेद ॥ १८ ॥ (६)

सप्त सूर्य चन्द्र और नक्षत्रों का त्रिव धाम भवता है ॥ ६ ॥ [२]

(सः उग्रमां दिक्षं) वह उग्रमां दिक्षाम् और अनुचिहत् होकर यका ॥ ७ ॥ इत्यग्ने (उ अथा च अक्षं चानुचिहत् च अक्षं च) उसके अनुचिहत् यथा साम यजु और अथा यक्षुषां अक्षं चानुचिहत् हुए ॥ ८ ॥ यो वह यजमान है वह उग्रमां चानुचिहत् और अक्षमोक्षं त्रिव धाम होता है ॥ ९ ॥ [३]

(सः पृथ्वीं दिक्षं) वह पृथ्वीं दिक्षाम् और अनुचिहत् होकर यका ॥ १० ॥ इत्यग्ने (उ इतिहासं च पुराणं च गाथां च नाराक्षसीनां च) इतिहास, पुराण गाथा और नाराक्षसी हुए ॥ ११ ॥ यो वह यजमान है वह इतिहास, पुराण गाथा और नाराक्षसी त्रिव धाम होता है ॥ १२ ॥ [४]

(सः परमां दिक्षं) वह परमां दिक्षाम् और अनुचिहत् होकर यका ॥ १३ ॥ इत्यग्ने (उ आहवनीयं च यजमानस्य च यजमानं च यजमानं च) अनुचिहत् आहवनीयं गार्हपत्यं दक्षिणाग्नेयं यजमानस्य और यजमान और यजमान त्रिव धाम भवता है वह आहवनीयं गार्हपत्यं दक्षिणाग्नेयं यजमान और यजमान त्रिव धाम भवता है ॥ १५ ॥ [५]

(सः सोर्नादिष्टां दिक्षं) वह सोर्नादिष्टां दिक्षाम् और अनुचिहत् होकर यका ॥ १६ ॥ इत्यग्ने (उ चार्धवां च लोकां च लौक्यां च मासां च चर्त्विषाणां च) उसके अनुचिहत् चार्धवां लोकां लौक्यां मासां चर्त्विषाणां और अहोरात्र्याणां त्रिव धाम भवता है वह चार्धवां लोकां लौक्यां मासां चर्त्विषाणां और अहोरात्र्याणां त्रिव धाम भवता है ॥ १८ ॥ [६]

सोऽनावृत्ता दिष्टमनु व्यचिह्नत् ततो नावस्त्वयमन्यत ॥१९॥
 त विदिभारिदिभेदा वेन्द्राणी चानुव्यचिह्नत् ॥२०॥
 दितेभ्य वै सोऽदिभेदायावेन्द्राण्याम श्रिय चाम भवति य एव वेदं ॥२१॥ (७)
 स दिष्टोऽनु व्यचिह्नत् ॥२२॥ तं विराडनु व्यचिह्नत् सर्वे च देवाः सर्वीष देवताः ॥२३॥
 विराट्त्वं वै स सर्वेषां च देवानां सर्वाणां च देवतानां श्रियं चाम भवति य एव वेदं ॥२४॥
 स सर्वानन्तर्वैश्वाननु व्यचिह्नत् ॥२५॥
 त प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचिह्नत् ॥२५॥
 प्रजपतेभ्य वै स परमेष्ठिनेभ्य पितृभ्य पितामहस्य च श्रिय चाम भवति य च वेदं ॥२६॥ (९)

[७]

स महिमा सद्गुरुस्वान्तं पृथिव्या अमच्छत् स संमुखोभवत् ॥ १ ॥
 तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चाप्यमृता च सर्वे मूत्वानुव्यचिह्नत् ॥ २ ॥
 येनमापौ गच्छत्वेन भूदा गच्छत्वेन सर्वे गच्छति य एवं वेदं ॥ ३ ॥
 तं भूदा च युद्धं लोकभारं आभारं च मूत्वाभिपूर्यार्तवत् ॥ ४ ॥

(वः अनावृत्ता दिष्ट) वह अनावृत्त दिष्टोऽनु व्यचिह्नत् होकर यका और (ततो नावस्त्वयमन्यत) यहाँसे
 नावत् य होके नाव विचार करने किया ॥ १९ ॥ अतः (तं विदिः च अदिदिः इवा च इन्द्राणी च) उसके अनुव्यचिह्न
 अदिदि इवा और इन्द्राणी हो गये ॥ २० ॥ जो वह व्याख्या है वह विदि, अदिदि, इवा और इन्द्राणी का श्रिय चाम
 वला है ॥ २१ ॥ [७]

(छा विष्टाः अनुव्यचिह्नत्) वह छव विष्टाओंमें अनुव्यचिह्न होकर यका इष्टादि (तं विराट् सर्वेः देवाः च सर्वाणि देवताः
 च) इष्टादि विराट् और छव देव और देवता अनुव्यचिह्न होयने ॥ २२ ॥ जो वह व्याख्या है वह विराट् छव देव और
 देवताओं का श्रिय चाम वला है ॥ २३ ॥ [८]

(छा सर्वान् अन्तर्वैश्वान् अनु) वह छव अन्तर्वैश्वान्में अनुव्यचिह्न होकर यका ॥ २४ ॥ अतः (तं प्रजापतिः च
 परमेष्ठी च पिता च पितामहश्च अनु) उसके प्रजापति परमेष्ठी पिता और पितामह अनुव्यचिह्न होकर यका ॥ २५ ॥
 जो वह व्याख्या है वह प्रजापति परमेष्ठी पिता और पितामहका श्रिय चाम वला है ॥ २६ ॥ (९)

[७] (छा महिमा सद्गुरुः मूत्वा) वह महा धर्मों परियुक्त होकर (पृथिव्या अमच्छत्) पृथ्वीके अन्तर्गत
 यका और (छा समुद्रा अमच्छत्) वह समुद्र हुआ ॥ १ ॥ (तं प्रजापतिः च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्च
 अमृता च सर्वे च मूत्वा अनुव्यचिह्नत्) उसके छव प्रजापति परमेष्ठी पिता पितामह अमृता और इष्टा होकर रहने
 गये ॥ २ ॥ (यः एवं वेदं) जो वह व्याख्या है (एव आपः आमच्छति) इसकी चाम प्राप्त होती है (एवं अमृता आमच्छति)
 इसकी अमृता प्राप्त होती है (एवं सर्वे आमच्छति) इसकी सर्वा प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ (तं भूदा च युद्धं च लोकः च
 भारं च आभारं च मूत्वा अभिपूर्यार्तवत्) उसके चारों ओर अमृता यका लोक अमृता और आभारान् रहने लगे ॥ ४ ॥

ऐनं भद्रा गच्छत्यैर्न यज्ञो गच्छत्यैर्न सोको गच्छत्यैर्नमर्षं गच्छत्यैर्नमर्षाच्च गच्छति य
एव वेद ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

यो वह वाचता है (एवं अन्ना आगच्छति) इसको भद्रा प्राप्त होती है (एवं यज्ञः आगच्छति) इसको यज्ञ प्राप्त होता है (एवं सोका आगच्छति) इसको सोका प्राप्त होता है, (एवं मर्ष आगच्छति) इसको मर्ष प्राप्त होता है, और (एवं मर्षाच्च आगच्छति) इसको मर्षाच्च प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

[८]

सेरिम्पत् ततो राजन्वोऽजायत ॥ १ ॥ स विश्वे सर्वभूतानामर्षामर्षमभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥ पिता
च वै स सर्वभूतां चार्षस्य चार्षस्य च प्रियं चार्षं भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

[९]

स विश्वोऽनु व्यचलत् ॥ १ ॥ तं सुमा च समितिश्च सेनां च सुरां चानुष्मन्वितम् ॥ २ ॥
सुमार्षाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं चार्षं भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

[१०]

तद् यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मो राजोऽतिरिगृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
भवासमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राश्च ना वृधते तथा राष्ट्राश्च ना वृधते ॥ २ ॥
अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते ब्रह्मतां क प्र विद्यावेति ॥ ३ ॥

[१] [८] (यः अजायत) वह अन्ना राजन करने लगा अतः वह (राजन्वा अजायत) एव—अनि—
पद्य ॥ १ ॥ (सः अन्नाय विद्वान् सर्वं अर्षाच्च अभ्युदतिष्ठत्) वह अनुष्मन्वो अमेत एव प्रत्यक्षे और वर एव स
कामपात्रको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ यो वह वाच वाचता है वह अनुष्मन्वोको अमेत एव प्रत्यक्षको एव वर और वर एव स
कामपात्रका विधान होता है ॥ ३ ॥

[९] (सः विश्वः अनुष्मन्वितः) वह प्रजाओंके अनुष्मन्वो होकर बना ॥ १ ॥ अतः (सः सुमा च समितिश्च) एव
समा और समिति (सेना च सुरा च अनुष्मन्वितः) देव और नमस्को अनुष्मन्वो ॥ १ ॥ यो वह वाच वाचता है वह
समा समिति देव और नमस्कोका विधान करता है ॥ ३ ॥

[१०] (तद् यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मो राजोऽतिरिगृहानागच्छेत्) विद्वान्वाक्ये पर देव विद्वान्वाक्यारी अतिरि (अने
प्रेर) जाने ॥ १ ॥ (तं सुमा च समितिश्च) एव—अनि—अने ॥ १ ॥ (तथा क्षत्राश्च ना वृधते) तथा क्षत्राश्च ना वृधते (तथा
राष्ट्राश्च ना वृधते) क्षत्राश्च ना वृधते (तथा क्षत्राश्च ना वृधते) तथा क्षत्राश्च ना वृधते (तथा क्षत्राश्च ना वृधते)
क्षत्री भी नहीं होता ॥ २ ॥ (अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां) अतो वै ब्रह्म और क्षत्र दोनों उत्पन्न होता है, (ते ब्रह्मतां)
ब्रह्म कहते हैं कि (क प्र विद्यावेति) हम कहें ॥ ३ ॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विब्रुत्वन्त्रं स्रजं तथा वा इति ॥ ४ ॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविब्रुद्विन्त्रं स्रजम् ॥ ५ ॥ इयं वा उं पृथिवी बृहस्पतिपरिवेन्त्रं ॥ ६ ॥ अयं वा उं अभिर्ब्रह्मासावाविस्वः स्रजम् ॥ ७ ॥

येन ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी संवति ॥ ८ ॥ यः पृथिवीं बृहस्पतिमसि ब्रह्म वेदं ॥ ९ ॥

येनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १० ॥ य आदित्यं स्रजं विब्रुमिन्द्रं वेदं ॥ ११ ॥

[११]

तद् यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मोऽतिथिर्गुह्यानामगच्छेत् ॥ १ ॥

स्वयमेवमस्मदेतत् श्रूयान् ब्राह्मं ब्राह्मिष्वास्तीर्वात्योब्रुक् ब्राह्मं तर्पयन्तु ब्राह्मं यथा ते प्रियं
तथास्तु ब्राह्मं यथा ते वसुस्तथास्तु ब्राह्मं यथा ते निष्कामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥ यदेनमाह

ब्राह्मं ब्राह्मिष्वास्तीरिति पुन एव तेन देवयानानुषं कन्दे ॥ ३ ॥ यदेनमाह ब्राह्मोब्रुकमित्यप
एव तेनार्थं कन्दे ॥ ४ ॥

यदेनमाह ब्राह्मं तर्पयन्त्विति ब्राह्ममेव तेन तर्पणीयां कुरुते ॥ ५ ॥

यदेनमाह ब्राह्मं यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनार्थं कन्दे ॥ ६ ॥

(अतो वै बृहस्पति एव ब्रह्म प्रविब्रुत्) इसके विरुद्धे बृहस्पति के अन्तर ही ब्रह्मज्ञान प्रविष्ट होने और (तथा वै
हन्त्रं ब्रह्म इति) ऐसा ही हन्त्रों का उचित होने ॥ ४ ॥ (अतो वै बृहस्पति एव ब्रह्म प्रविब्रुत् हन्त्रं ब्रह्म) इसीप्रकार
बृहस्पति के ज्ञान और हन्त्रों का उचित हुआ ॥ ५ ॥ (इयं वा उं पृथिवी बृहस्पतिः) विषयके वह पृथ्वी बृहस्पति है और
(योः एव हन्त्राः) पुत्रों के हन्त्र हैं ॥ ६ ॥ (अयं वा उं अभिर्ब्रह्मासावाविस्वः) वह अग्नि विरुद्धे ब्रह्म है और (अती आदित्या
कर्म) वह आदित्य का है ॥ ७ ॥ (वा पृथिवी बृहस्पति) जो पृथ्वीके बृहस्पति और (अग्नि ब्रह्म वेदं) अग्नि के ब्रह्म
अस्मा है (एवं ब्रह्म आप्यस्ति) इसके पास ब्रह्मज्ञान आयाता है और वह (ब्रह्मवर्चसी भवति) ब्रह्मज्ञान के तेजस्वी होता
है ॥ ८—९ ॥ (यः आदित्यं ब्रह्म) जो आदित्यके ब्रह्म और (प्रियं हन्त्रं वेदं) पुत्रोंके हन्त्र आयाता है (एवं हन्त्रिनं
आप्यस्ति) इसके पास इसी प्रकार आयाता है और वह (इन्द्रियवान् भवति) हन्त्रों परकले पुत्र होता है ॥ १—११ ॥

[११] (एव एवं विद्वान् ब्राह्मं अतिथिः) इस प्रकारका विद्वान् अत्यन्तक अतिथि (एवं गृह्यान् आप्यस्ते)
विद्वाने पर आने ॥ १ ॥ (एवं एवं अस्मदेव श्रूयान्) इसके इससे परीत वाचर बोले कि (ब्राह्मं तर्पयन्तु)
है मनुष्यों की । अब कहा रहते हैं ? (ब्राह्मं ब्रह्म) है मनुष्यों की । वह ब्रह्म आपके किये है । (एवं तर्पयन्तु) है
मनुष्यों । वे मेरे बीच आपकी पृथ्वी करें । (ब्राह्मं यथा ते प्रियं तथा अस्तु) है मनुष्यों की । जो आपके प्रिय है वही होने ।
(ब्राह्मं यथा ते वसुस्तथा अस्तु) है मनुष्यों की । जो आपकी वसुता हो वही हो । (ये ब्राह्मं यथा ते निष्कामः तथा
अस्तु इति) है मनुष्यों की । जो आपकी निष्कामता हो वही हो । है ॥ २ ॥

(एवं एवं ब्राह्मं तर्पयन्तु इति) जो इसके कहा जाता है कि वे मनुष्यों आप कहा रहते हैं । तो (एवं एवं ब्राह्मं
यथा वै ब्रह्म इति) उस प्रसंगे वह देवयान मनुष्यों अपने आपकी करता है ॥ ३ ॥ (एवं एवं ब्राह्मं) जो इसके कहा है
कि (ब्राह्मं ब्रह्म इति) है मनुष्यों । वह ब्रह्म आपके किये है (एवं एवं आप्यस्ते) इस प्रसंगे परीत जब
इसके प्रसंग होता है ॥ ४ ॥ (एवं एवं ब्राह्मं तर्पयन्तु इति) जो इसके कहा है कि है मनुष्यों । मेरे बीच आपकी पृथ्वी
करें तो (एवं एवं अस्मदेव श्रूयते) इस प्रसंगे वह अपने आपकी अतिथि करेता है ॥ ५ ॥ (एवं एवं ब्राह्मं तर्पयन्तु
यथा ते प्रियं तथा अस्तु इति) जो इसके कहा है कि है मनुष्यों । जो मेरे किये प्रिय हो वही होने (एवं एवं आप्य
स्ते) इसके वह प्रिय मनुष्यों के अपने प्रसंगे करता है ॥ ६ ॥

ऐनं प्रिय गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥
 यदेतमाह्वासात् यथा ते वञ्चस्तथास्त्विति वञ्चमेव तेनारं रुन्दे ॥ ८ ॥
 ऐनं वञ्चो गच्छति वञ्ची वञ्चिर्ना मनति य एवं वेद ॥ ९ ॥
 यदेतमाह्वासात् यथा ते निक्कामस्तथास्त्विति निक्काममेव तेनारं रुन्दे ॥ १० ॥
 ऐनं निक्कामो गच्छति निक्कामे निक्कामस्य भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

[१२]

तव् यस्मैवं विद्वान् व्रात्य उच्यतेष्वपिस्वधिभिरेऽपिहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
 स्वयमेतमभ्युदेत्यं भूयात् व्रात्याति सुव होष्यामीति ॥ २ ॥ स चातिमुजेऽह्वासात् वति
 सुजेन्न ह्वासात् ॥ ३ ॥ स य एवं विदुषा व्रात्येनार्विसुहो ब्रूहोति ॥ ४ ॥ प्र विदुषां पत्न्या
 जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥ न देवेभ्यो वृषते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥
 पर्यस्यास्मिन्नोक्त आचरणं क्षिप्यते य एवं विदुषा व्रात्येनार्विसुहो ब्रूहोति ॥ ७ ॥
 अथ य एवं विदुषा व्रात्येनार्विसुहो ब्रूहोति ॥ ८ ॥
 न विदुषाण पत्न्या जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥

(या एवं वेद) को वह जानता है (एवं विवं आप्यच्छति) इसको विव प्राप्त होता है और (विस्व विवा वञ्ची) वह निक्कामा विव होता है ॥ ७ ॥ (वय एवं आह व्रात्य यथा ते वञ्चः तथा अस्तु इति) को इसको कहता है कि हे मने ।
 त्रे। तेरी इच्छा हो वैसा ही होने (तेव वञ्चं एव अवबुध्यते) वञ्चते वह सबको अपने वचनमें करता है ॥ ८ ॥ को व
 जानता है (वञ्चः एव आप्यच्छति) उच्यते एव वच होते हैं, और वह (वञ्चीनां वञ्ची भवति) वञ्ची वञ्चीने वच करनेका
 होता है ॥ ९ ॥ (वय एवं आह व्रात्य यथा ते निक्कामः तथा अस्तु इति) को इसको कहता है कि हे मने को जान
 कामिका है वह होने तो वचते (तेन निक्कामं एव अवबुध्यते) वह अपनी कामिकाया प्राप्त करता है ॥ १० ॥ (वय
 निक्कामः आप्यच्छति) इसकी कामिकाया पूर्ण होती है वह को जानता है उच्यते (निक्कामस्य निक्कामे भवति) निक्काम
 पूर्णता होती है ॥ ११ ॥

[१२] (वय वस्य ह्ये) जिसके घरमें (एव विद्वान् व्रात्याः वतिभिः) ऐसा विद्वान् व्रातचारी वतिभिः (जुने
 मित्यु अतिहोत्रे वतिभिरेऽपि आप्यच्छेत्) वति प्रसीत होकर वतिहोत्र होनेके समान जाते ॥ १ ॥ (एवं एव अभ्युदेत्यं भूयात्)
 मयं इसको उच्यते कहकर को कि (वास वतिभ्युज होष्यामि इति) हे मने ! मुझे आका हो मैं हवन करने ॥ २ ॥ (स
 अतिहोत्रे, ह्वासात्) वह आका है तो हवन करें (य य वतिभ्युज न ह्वासात्) वति न आका देने तो य हवन को हति
 (सः यः एवं विदुषा व्रात्येनार्विसुहो ब्रूहोति) को इस प्रकारके विद्वान् व्रातचारीकी आज्ञासे हवन करता है, (विदुषां
 पत्न्या न देवयानं पत्नी जानाति) वह विदुषाण और देवयान मार्गमें जानता है ॥ ४-५ ॥

(या एवं विदुषा व्रात्येनार्विसुहो ब्रूहोति) को इस प्रकारके विद्वान् व्रातचारीकी आज्ञासे हवन करता है (वय
 हुत भवति) वचन वतिहोत्र वचन होता है और (देवेभ्य न वृषते) देवोंमें इसका कोई हवन नहीं होता । (वतिभिः वञ्ची)
 इस वचनमें (वचन आवरणं परिधिभ्यते) इसका आवरण सुरक्षित रहता है ॥ ६-७ ॥

(अथ या एवं विदुषा व्रात्येनार्विसुहो ब्रूहोति) और को इस प्रकार के विद्वान् व्रातचारीकी आज्ञासे विव हवन
 करता है ॥ ८ ॥ वह (य विदुषां न देवयानं पत्नी जानाति) न विदुषाण मार्गमें और न देवयान मार्गमें जानता है ॥ ९ ॥

आ देधेपुं वृक्षते अद्भुतमस्य भवति ॥ १० ॥
 नास्यास्मिन्नोक्त आयतनं क्षिप्पते य एवं विदुषा मात्येनानसिसृष्टो ब्रूहोति ॥ ११ ॥

(१३)

तद् यस्यैव विद्वान् मात्यु एकां रात्रिमर्तिभिर्गृहे वर्सति ॥ १ ॥
 ये पृथिव्यां पुण्यां लोकास्तानेष तेनार्थं कन्दे ॥ २ ॥
 तद् यस्यैव विद्वान् मात्यो द्वितीयां रात्रिमर्तिभिर्गृहे वर्सति ॥ ३ ॥
 येऽन्तरिक्षे पुण्यां लोकास्तानेष तेनार्थं कन्दे ॥ ४ ॥
 तद् यस्यैव विद्वान् मात्यस्त्रुवीयां रात्रिमर्तिभिर्गृहे वर्सति ॥ ५ ॥
 ये त्रिवि पुण्यां लोकास्तानेष तेनार्थं कन्दे ॥ ६ ॥
 तद् यस्यैव विद्वान् मात्यंभुवर्ची रात्रिमर्तिभिर्गृहे वर्सति ॥ ७ ॥
 ये पुण्यानां पुण्यां लोकास्तानेष तेनार्थं कन्दे ॥ ८ ॥
 तद् यस्यैव विद्वान् मात्योऽपरिमिता रात्रीरर्तिभिर्गृहे वर्सति ॥ ९ ॥
 य मुवापरिमिताः पुण्यां लोकास्तानेष तेनार्थं कन्दे ॥ १० ॥
 अपु यस्यामात्यो मात्यंभुवो नामभिर्भुवर्तिभिर्गृहानामगच्छन् ॥ ११ ॥

(यत्न अद्भुतं भवति) इत्यत्र इत्यत्र मित्रक होता है ॥ १ ॥ (हेतुवु आद्भुतते) हेतुवु अपठनी होता है (मस्तिन् कोके
 अत्य अत्यर्थं क्षिप्पते) इत्यत्र कोके इत्यत्र आचार नहीं रहता (यः) जो ऐसे विद्वानकी आकाश के बिना इत्यत्र करता है ॥ ११ ॥

[११] (तद् यस्य गृहे एवं विद्वान् मात्या अतिथिः पूर्ण रात्रि भवति) जिसके घरमें इस प्रकारका विद्वान् भ्रमणारी
 कीटों एक रात्री भर रहता है ॥ १ ॥ (ये पुण्यां पुण्यां लोकाः) जो पुण्यापर पुष्प लोक हैं (तान् तेन एवं भवत्यर्थे)
 एव सबको इत्यर्थे प्राप्त करता है ॥ २ ॥ (तद् यस्य गृहे एवं विद्वान् मात्या अतिथिः द्वितीयां रात्रि भवति) जिसके घरमें
 इस प्रकारका भ्रमणारी विद्वान् अतिथि ब्रह्मणारी भर रहता है ॥ ३ ॥ (तेष) इत्यर्थे (ये अन्तरिक्षे पुण्यां लोकाः) जो
 अन्तरिक्षमें पुष्प लोक हैं (तान् एवं भवत्यर्थे) उनको प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ (तद् यस्य गृहे एवं विद्वान् मात्या अतिथिः
 त्रुवीयां रात्रि भवति) जिसके घरमें इस प्रकार विद्वान् भ्रमणारी अतिथि तीसरी रात्रीभर रहता है ॥ ५ ॥ (ये त्रिवि पुण्याः
 लोकाः) जो त्रुवीयमें पुष्प लोक हैं (तान् तेन एवं भवत्यर्थे) उनको इत्यर्थे प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ (तद् यस्य गृहे एवं विद्वान्
 मात्या अतिथिः अपरिमिताः रात्रीः भवति) जिसके घरमें ऐसा विद्वान् भ्रमणारी अतिथि चतुर्थ रात्रीभर रहता है ॥ ७ ॥ (ये पुण्याः पुष्प
 लोकाः) जो पुष्पलोकमें पुष्प लोक हैं (तान् तेन एवं भवत्यर्थे) उनको इत्यर्थे प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ (तद् यस्य गृहे एवं विद्वान्
 मात्या अतिथिः अपरिमिताः पुण्याः लोकाः) जो अपरिमित पुष्प लोक हैं (तान् एवं तेन भवत्यर्थे) उनको इत्यर्थे प्राप्त
 करता है ॥ ९ ॥

(यत्न यस्य गृहान् अमात्यः मात्यंभुवः नामभिर्भुवी अतिथिः आगच्छन्) जिसके घर भ्रमणारण य करनेवाला केवलनाम
 वाली अतिथि अतिथि को है ॥ ११ ॥ (एवं कर्त्तव्यं ?) क्या गृहस्थ कथक तिरस्कर करे ? (एवं यत्न कर्त्तव्यं) इत्यत्र

कर्पेदेनं न चैनं कर्पेत्

॥ ११ ॥

अस्यै देवताया उदुर्कं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां परि

वेधेप्सीत्येनं परि वेधिष्यात्

॥ १२ ॥

तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद

॥ १४ ॥

[१४]

स यत् प्राचीं दिक्षुमनु व्यचलन्माहृतुं क्षीं मुत्वानुभ्यचलन्मनोऽन्नाह कृत्वा

॥ १ ॥

मनसाह्नादेनार्चमसि य एवं वेद ॥ २ ॥ स यद् दक्षिणां दिक्षुमनु व्यचलन्दित्रो मुत्वा

चलद् बलमन्नाह कृत्वा ॥ ३ ॥ बलेनाह्नादेनार्चमसि य एवं वेद ॥ ४ ॥ स यद् दक्षिणी

दिक्षुमनु व्यचलद् वर्धणे रात्रौ मुत्वानुभ्यचलद्दुपोऽन्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥ अत्रिरात्रिदि-

रन्मसि य एवं वेद

॥ ६ ॥

स यदुदीचीं दिक्षुमनु व्यचलत् सोमो रात्रौ मुत्वानुभ्यचलत् समर्पिमिर्हुतआहुतिमक्षीं कृत्वा

॥ ७ ॥ आहुत्सान्नाहार्चमसि य एवं वेद ॥ ८ ॥ स यद् ध्रुवां दिक्षुमनु व्यचलद् विन्दुं कृत्वा

नुभ्यचलद् विराचमन्नादीं कृत्वा

॥ ९ ॥

तिरस्कर न करे ॥ १२ ॥ एहस्य ये हि (जस्यै देवताये उदुर्कं वाचामि) इह पशताये किमे उदुर्कयो जस्यै करतः (इह देवता वाचये) इह देवताया वाये विभाव करता हुं, (इमा इमा देवता परिवेधिष्यात्) इह देवतायो पशताये ॥ ११ ॥ (तस्यां एव देवतायां अवन तद् हुतं भवति) यद्यो देवताये उह एहस्यीक नह इवन होता है (वा एवं वेद) को न लन जानता है ॥ १५ ॥ [अर्चार्थ नामवारी अतिविधौ यस्मै आनेपर नह अपनी कपास्य देवता है देखा माकरन सब भोज करने से स्वको समर्पण करवैकी हुतिसे उल्लेखी देवे : इह मकर करनेसे सब दान वही देवताको पहुँचता है ।]

[१५] (सः यद् प्राचीं दिक्षुं मुत्वाचलत्) नह जब पूर्व दिशाकी ओर चलता है तब (मार्ग्यं वर्धः कृत्वा) नह नह हाकर और (मय अन्नाह कृत्वा) मनको अब खानेवाला करके (अनुभ्यचलत्) चले ॥ १ ॥ (वा एवं वेद) को न जानता है नह (अन्नादेन मयवा वर्धं भवति) अथ मयवा करनेकी यथोपायको नह जानता है ॥ २ ॥ (वा दक्षिणी) नह जब दक्षिण दिशाकी ओर चलता है तब नह (इन्द्रः मूत्वा) इन्द्र अर्थात् मनु होकर और (वके अन्नाह कृत्वा) नह अन्नमहाक वनाकर (अनुभ्यचलत्) चला ॥ ३ ॥ यो नह जानता है नह (अन्नाह कृत्वा) अन्नमहाक को नह जानता है ॥ ४ ॥

(वा यदीचीं दिक्षुं) अब नह पश्चिम दिशाकी ओर चलता है तब नह (वक्ष्या राजा मूत्वा) वक्ष्य राजा अन्नाह (वषः अन्नादीः कृत्वा) अथ को अन्नमहाक वनाकर चलता है ॥ ५ ॥ या नह जानता है नह (अन्नादीनिः अन्नाह कृत्वा) अन्नमहाक वनाके अथ अन्नमाय करता है ॥ ६ ॥ (वा उदीचीं दिक्षुं) नह जब उत्तर दिशाकी ओर चलता है तब नह (लोक राजा मूत्वा) लोक राजा अन्नाह (अन्नादीं वाहुतिं कृत्वा) अन्नमहाक वाहुति करके (अन्नमहाक कृत्वा) अथ अन्नमहाक हाकर हाह-हुत होकर [अनुभ्यचलत्] चला ॥ ७ ॥ यो नह जानता है नह [वाहुति अन्नादीं भवति] वाहुति अन्नको नह भोज करता है ॥ ८ ॥

(वा ध्रुवां) नह जब ध्रुव दिशाकी ओर चलता है तब (विन्दुः कृत्वा) विन्दुवन वनाकर (विराच वर्धनी कृत्वा) विराच पूषीको अन्नमहाक वनाकर (अनुभ्यचलत्) चलता है ॥ ९ ॥ यो नह जानता है नह (विराचा अन्नाह वर्धं भवति)

भिराजान्नाद्यान्नमाप्ति य एव वेदं ॥ १० ॥ स यत् पशुननु व्यचलत् उत्रो	
भूत्वानुभ्यषिलदोषीरन्नादीः कृत्वा	॥ ११ ॥
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमाप्ति य एव वेदं	॥ १२ ॥
स यत् पितृननु व्यचलत् यमो राजा भूत्वानुभ्यषिलत् स्वधाकारमन्नाद कृत्वा	॥ १३ ॥
स्वधाकारेणान्नादेनान्नमाप्ति य एव वेदं	॥ १४ ॥
स यन्मनुष्याश्च ननु व्यचलत् भिर्मूत्वानुभ्यषिलत् स्वाहाकारमन्नाद कृत्वा	॥ १५ ॥
स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमाप्ति य एव वेदं ॥ १६ ॥ स यद्भूर्दिशुमनु व्यचलत्	
बृहस्पतिं भूत्वानुभ्यषिलत् षषट्कारमन्नादं कृत्वा	॥ १७ ॥
षषट्कारेणान्नादेनान्नमाप्ति य एव वेदं	॥ १८ ॥
स यद् वेदाननु व्यचलद्दीप्तानो भूत्वानुभ्यषिलत्पुन्यमन्नाद कृत्वा	॥ १९ ॥
पुन्यनान्नादेनान्नमाप्ति य एव वेदं	॥ २० ॥
स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुभ्यषिलत् प्राणमन्नाद कृत्वा	॥ २१ ॥
प्राणनान्नादेनान्नमाप्ति य एव वेदं	॥ २२ ॥
स यत् सर्वान्तर्द्धाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानुभ्यषिलत् ब्रह्मान्नादं कृत्वा	॥ २३ ॥
ब्रह्मान्नादेनान्नमाप्ति य एव वेदं	॥ २४ ॥

मिच्छन्ती अन्नपच्यो यो वे अन्न मक्षण करण है ३ १ ॥ (सः यत् पशुन् अनुभवचकत्) वह जब पशुमक्षि अनुकृत होकर पकता है, तब वह (पशुः भूत्वा) वह यमकर और (अजादीः ओषधीः कृत्वा) अन्न मक्षण करने वाला भ पचिवां बवाकर (अनुभवचकत्) पकता है ॥ ११ ॥ जो वह उजाला है वह (आकाशीभिः ओषधीभिः अन्नं जति) अन्न मक्षण करने योग्य औषधियोंने छाया अन्न जाता है ॥ १२ ॥ (सः यत् पितृन् अनु) वह जब पितरोंके साथ पकता है तब वह (यमो राजा भूत्वा) यम राजा बवाकर (स्वधाकारं अन्नाद कृत्वा) स्वधाकारकी अन्नमक्षण बवाकर पकता है ॥ १३ ॥

जो वह जानता है वह (स्वाहाकारेण अन्नमाप्ति अन्नं जति) अन्नमक्षण स्वधाकारके साथ करता है ॥ १४ ॥ (सः यन्मनुष्याश्च अनुभवचकत्) वह जब मनुष्योंके प्रति पकता है तब वह (भिर्मूत्वानुभ्यषिलत्) भूमि होकर स्वाहाकारं अन्नान् कृत्वा) स्वाहाकारकी अन्नमक्षण करने पकता है ॥ १५ ॥ वह भव जाता है वह (स्वाहाकारेण) स्वाहाकारके साथ अन्नमक्षण करता है ॥ १६ ॥ (सः यत् भूर्दिशुमनु) वह जब भूर्दिशापी और पकता है, तब वह (बृहस्पतिः भूत्वा) बृहस्पति होकर (षषट्कारं अन्नादं कृत्वा) षषट्कारकी अन्नमक्षण बवाकर पकता है ॥ १७ ॥ जो वह जानता है वह (षषट्कारेण अन्नमाप्ति) षषट्कारके साथ अन्नमक्षण करता है ॥ १८ ॥ (सः यत् वेदाननु व्यचलत्) जब वह वेदोंके साथ पकता है तब वह (पुन्यमन्नाद कृत्वा) पुन्यमन्नाद (पुन्यं अन्नमाप्ति) अन्नमक्षण बवाकर पकता है ॥ १९ ॥ जो वह जानता है वह (पुन्यमन्नाद) पुन्यमन्नादके साथ अन्नमक्षण करता है ॥ २० ॥

(सः यत् प्रजा अनु) वह जब प्रजाओंके प्रति जाता है तब वह (प्राणमाप्तिः भूत्वा) प्राणमाप्ति बवाकर (प्राणं अन्नमाप्ति) प्राणकी अन्नमक्षण बवाकर पकता है ॥ २१ ॥ जो वह जानता है वह (प्राणमाप्ति) प्राणकी अन्नमक्षण करता है ॥ २२ ॥ (सः यत् सर्वान्तर्द्धाननु व्यचलत्) जब वह सब अन्तर्द्धानोंके प्रति जाता है तब वह (परमेष्ठी भूत्वा) परमेष्ठी होकर [ब्रह्म अन्नादं कृत्वा] ब्रह्मान्नकी अन्नमक्षण बवाकर पकता है ॥ २३ ॥ जो वह जानता है वह [ब्रह्मान्नमाप्ति अन्नं जति] वह ब्रह्मान्नके साथ अन्नमक्षण करता है ॥ २४ ॥

(१५)

तस्य ब्राह्मस्य	॥ १ ॥
सप्त प्राजाः सप्तापानाः सप्त ज्ञानाः	॥ २ ॥
तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः	॥ ३ ॥
तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रोक्तो नामासौ स आदित्यः	॥ ४ ॥
तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणो ह्यभ्युक्तो नामासौ स चन्द्रमाः	॥ ५ ॥
तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विधूर्नामा स पर्वमानः	॥ ६ ॥
तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम सा इमा आर्याः	॥ ७ ॥
तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः त्रियो नाम त इमे पुष्टवः	॥ ८ ॥
तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम सा इमाः प्रजाः	॥ ९ ॥

(१६)

तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी	॥ १ ॥
तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः सार्धका ॥ २ ॥ तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः	
सामावास्मा ॥ ३ ॥ तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा अक्षरा ॥ ४ ॥ तस्य ब्राह्मस्य ।	
योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा व्रीक्षा ॥ ५ ॥ तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स युद्धा ॥ ६ ॥	
तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा शर्षिणाः	॥ ७ ॥

[१५] [तस्य ब्राह्मस्य] ब्रह्म ब्रह्मणः [सप्त प्राजाः सप्त ज्ञानाः सप्त ज्ञानाः] साप्त प्राजा साप्त ज्ञानाः और सब जानते हैं ॥ १-७ ॥

[तस्य ब्राह्मस्य] ब्रह्म ब्राह्मणः [यः ब्रह्म ब्रह्मणः प्राणः] जो वह ऊर्ध्व नामक अग्नि देव ॥ ३ ॥ ब्रह्म ब्रह्मणः द्वितीय प्राण देव [आदित्य है ॥ ४ ॥ ब्रह्म ब्रह्मणः तृतीय प्राण देव [अभ्युक्तः] अग्नि देव ॥ ५ ॥ ब्रह्म ब्रह्मणः चतुर्थ प्राण देव [विधूर्नामा] विधूर्नामा देव ॥ ६ ॥ ब्रह्म ब्रह्मणः पञ्चम प्राण देव [योनिर्नामा] योनिर्नामा देव ॥ ७ ॥ ब्रह्म ब्रह्मणः षष्ठ प्राण देव [त्रियो नाम] त्रियो नाम देव ॥ ८ ॥ ब्रह्म ब्रह्मणः सप्तम प्राण देव [अपरिमितो नाम] अपरिमितो नाम देव ॥ ९ ॥

[१६] [तस्य ब्राह्मस्य] पौर्णमासी ॥ १ ॥ अथ ब्रह्मणः जो है ॥ २ ॥ अथ ब्रह्मणः जो चतुर्थ ब्रह्मणः का षष्ठ अपान देव वह वह है

(१७)

तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेव मूर्तिः ॥ १ ॥
 तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तुत्तारिषिः ॥ २ ॥ तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य तृतीयो
 व्यानः सा यौः ॥ ३ ॥ तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्थानि नक्षत्राणि ॥ ४ ॥ तस्य
 ब्राह्मस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त श्रुतार्थः ॥ ५ ॥ तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त
 आर्तवाः ॥ ६ ॥ तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स श्वत्सरः ॥ ७ ॥ तस्य ब्राह्मस्य ।
 सप्तममर्थे परि यन्ति देवाः श्वत्सर वा एतदुत्तरोऽनुपरिपन्ति ब्राह्मं च ॥ ८ ॥ तस्य ब्राह्मस्य ।
 यद्वाहित्वममिसिग्निस्पर्शमावास्या चैव तस्यैर्धमासी च ॥ ९ ॥ तस्य ब्राह्मस्य । एक
 तदैवाममृतत्वमित्याहुः शिवेव ॥ १० ॥

(१८)

तस्य ब्राह्मस्य ॥ १ ॥ यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सुष्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥ २ ॥
 योऽस्य दक्षिणः कर्जोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सुष्यः कर्जोऽयं स पर्वमानः ॥ ३ ॥ अहोरात्रे नार्तिके
 दिविवादिविम धीर्यकपाले श्वत्सरः शिरः ॥ ४ ॥ अहो प्रत्यहं ब्राह्मो रात्र्या प्राह नमो
 ब्राह्म्याय ॥ ५ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः । इति पंचदश काण्डं समाप्तम्

[१०] [तस्य ब्राह्मस्य] इस ब्राह्मका [वा ब्रह्म] को इसका [प्रथमो व्यानः] पहिला व्यान है यह [वा
 द्य भूमिः] यह धृमि है ॥ १ ॥ इस ब्राह्मका को द्वितीयो व्यान है यह अग्निरिषि है ॥ २ ॥ इस ब्राह्मका को तृतीय व्यान
 है यह यौः है ॥ ३ ॥ इस ब्राह्मका को चतुर्थ व्यान है [नाभि नक्षत्राणि] यह नक्षत्र है ॥ ४ ॥ इस ब्राह्मका को पंचमो
 व्यान है [ये अक्षयः] ये अक्षर हैं ॥ ५ ॥ इस ब्राह्मका को षष्ठ व्यान है ये [ये भार्गवा] ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले
 पर्व हैं ॥ ६ ॥ इस ब्राह्मका को सातमो व्यान है यह श्वत्सर है ॥ ७ ॥ इस ब्राह्मके [सप्तम अर्थे] सप्तम अर्थमें
 [देवाः परिपन्ति] इन देव भरते हैं अनुकूल होते हैं [श्वत्सरः शिरः] श्वत्सरको शिरवले में
 ऋतु अनुकूलतासे व्यापते हैं [प्रत्यहं च] ब्रह्मको भी भरते हैं ॥ ८ ॥ इस ब्राह्मके को मातृ [यत् आदित्यं अमिद्विद्यमिदं
 मयिदं ह्येति] अमावास्या का एवं वत् पीर्यमासी च] अमावास्या और पीर्यमासीमें भी ये होते हैं ॥ ९ ॥
 [एकं तदैवाममृतं] इस ब्राह्मका [एतदुत्तरोऽनुपरिपन्ति] यह इन सबका एक अग्रपन्न है [इति एव ब्राह्म]
 ऐसा कहते हैं ॥ १० ॥

[१८] [तस्य ब्राह्मस्य] इस ब्राह्मका [यत् तस्य दक्षिणं अग्निं असी सा आदित्यः] को दक्षिण भेज है यह धर्म है
 [यत् तस्य सुष्यं अग्निं असी सा चन्द्रमाः] को इसका सुष्य भेज है यह चन्द्र है ॥ १—२ ॥ यो इसका [दक्षिणः कर्जोः]
 दक्षिण भज है [सा अर्थ अग्निः] यह अग्नि है [वा ब्रह्म सप्तमः कर्जः] यो इसका सातम भज है [वा अर्थ पर्वमानः]
 यह वह पर्वमान है ॥ ३ ॥ [अहोरात्रं नार्तिके] इसके अहोरात्र में नार्तिक है (दिविः अग्निः च) दिवि और अग्नि
 (धीर्यं कपाले) शिरः दोनों कपाल हैं । और (श्वत्सरः शिरः) पर्व इसका शिर है ॥ ४ ॥ [प्रत्यहं ब्राह्म] यह
 भजन दिनमें [प्रत्यहं] पूर्व दिशाकी ओर मुख करते और (रात्र्या प्राह) रात्रीके समय प्राचीनदिशाके अनुकूल मुख करते
 रहते हैं । ऐसे [प्रत्यहं भज] भजनेके लिये भेरा भगवत्कार ही ॥ ५ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः । इति पंचदश काण्डं समाप्तम्

[illegible]

य देवानां इषो वयंत् सः ईशावः अमवत् । (१५)
 यह कौट अनेक देवोंका अधिपति थिय हुआ अतः उसका
 ईशत्व करने लगे । वहाँ देव—महादेव, ईश—ईशान, ईश
 ईश्वर आदि इतनेके अर्थोंका मान लग चुका । देव और ईश
 ने छोटे अधिपति हैं और महादेव तथा ईशान और ईश्वर
 ने उच्च सर्वोत्तरी अधिपति बनानेवाले सर्वोच्च परमेश्वरके
 भावक हैं । इसी प्रकार मनु, ब्रह्मा आदि मनु एकरूप परमेश्वरके
 भावक हैं । इनमें श्री मनु-पराशर आत्म्या-परमात्मा ने अथ
 श्री पूर्णोक्त रीतिसे छोटे बड़ेके भावक विस्तरे हैं परंतु मनु
 और ब्रह्मा ने उच्च समवयसपर दोनों अर्थोंके प्रयुक्त होते हैं ।
 इनके छोरोंमें यह बात देखिये वहाँ काव आँक, नाक
 आदि अवयवोंमें प्रत्येकमें इच्छा कीयातु अवयवों ईश हैं ।
 बाकी प्रकृतिका स्वामी है परंतु उन अनेक कीयातुओंपर
 नाँक नाँक कम आदिमें रहनेवाला एक इश्वरका अधिपता
 देव है, वह उन सृज्य कीयातुओंकी अनेका वहाँ ईश्वर है ।
 इनके वहाँ प्रत्येक इन्द्रियमें एक एक देवताका अव है और
 उन अवयवोंमें रहनेवाले देवताओंपर जीवन्मात्रा अग्रज है ।
 इसलिये वहाँ इन्द्रियोंके अधिपति देव हैं और जीवन्मात्रा महादेव
 है । इसी तरह छोटा और बड़ा होनेके कारण एक देव होता
 है और बृहत् महादेव होता है परंतु जो छोटीकी अनेका
 महादेव होता है वही उन्हे ऊपरके देवकी अनेका छोटा देव
 होता है । इस तरह ऊपर जाते जाते अन्तिम स्थिति परमात्मा
 बनका महादेव है । इस प्रकार देव और महादेवोंका विचार
 तुल्यप्रमाण रहिये ज्ञानका योग है । इस बातको अधिक स्पष्ट
 करते हैं—

देव	महादेव
ईश	ईशान
अमरा	परमात्मा
मनु	परमेश
इन्द्र	महेश्वर
ईश	ईश्वर
कीयातु [देव]	इन्द्रियअधिपति (महादेव)
इन्द्रियअधिपति	जीवन्मात्रा
जीवन्मात्रा	राजा
राजा	साम्राट्
अमरपति	अमरपति
अमरपति	राजपति

राजपति	अमरपति	॥
अमरपति	मह	॥
साम्राज्य	सिद्ध	॥

इस रीतिसे पूर्णपर अनेकाक समवयस एक देव और बृहत्
 महादेव बनता है । अन्तमें सब अमरपति परमात्मा ही महा
 देव नियन्त्रक है और वही इस प्रथम वर्णन सूक्तमें ब्रह्मा श्रेष्ठ
 करके प्रथम मंत्रमें वर्णित हुआ है । वह एक है अतः इसमें
 'एक आत्मा' अथवा एकमात्र परमेश्वर किंवा सबका एक निवन्ता
 कहा है । वह सबका शासक है और इसका अनुज्य अस्तिवृत्त
 है वही (इन्द्रियमात्र) प्रमुख अनुज्य ऐसा है कि (जीवन्त
 निवन्त) इस अनुज्यके विदेशी ओपोंका पूर्ण भाव होता है ।
 परमेश्वरका सर्वोत्तरी शासन है और इस शासनके द्वितीयक
 भाव होता है और समकोपी रखा हावी है ; इसलिये इस
 एक देवकी उपासना सबको करनी चाहिये । वह सर्वेश्वर
 प्रथम वर्णन सूक्तमें कहा है ।

इसके लिये मन्त्राचार्यका वर्णन है, उक्त विचार अब
 हम करते हैं—

आत्मपविभाग ।

प्रारंभ मन्त्राचारी ।

' मन्त्राचारी ' वह है कि जो " मन्त्रके उच्चारण
 करता है अथवा मन्त्र करनेके लिये उक्त आचरण करता
 है । मन्त्रका आचरण कैसा होता है इस विषयमें प्रारंभके
 वर्णन सूक्तमें अच्छा वर्णन आया है । मन्त्राचारी देवा
 बनना चाहता है । और जो मन्त्राचारी देवा अनुमोदयवर्णन
 होता है, उन्हीं लोगका विशेष ही उक्त छोटी है ।

अब ऐसा सुयोग्य मन्त्राचारी पूर्व पापोंका इक्षिण और
 उपर दिशाओंके देवदेवाश्वरोंमें प्रथम करता है, जन्मात्मा
 धर्म और ब्रह्माचारका उन्हे सुनाता है ओपोंका भय
 करनेके लिये आत्मसमर्पण करता है, उन अवयवके वर्णन देव
 सर्व भय, विदेशीय नष्ट उद्योग आदि सब बुरी उपासना
 करते हैं वैश्वेक रत्नमात्रा सब प्रमत्तधर्मा मंत्र उन्हे अन्तर
 उनके ज्ञानविज्ञानके साथ उपदिष्ट होते हैं । भद्रा उन्हीं
 धर्मपाली भिन्न बुरीकी अज्ञानके उपदेशक होती है, उन्हीं
 समय उक्त धर्मपाली मन्त्रके साथ उपासनाके कार्य वह करता
 है इस अन्याय वाली उन्हीं भद्रा की अनुमोदनी होती है
 लोको विमली मंत्रमें बोध देती है इसी प्रकार उन्हीं

उत्पु आग्नेय कर्तुर्वेव, धामनेव और अवनेवेरके मंत्र होते हैं ।
अर्थात् वेदके धामकी परीपर वह अदृश्य होता है । इस
आत्मन विद्याधरपर वह निरात्मक होता है, इस समय सब
वेव उसके रक्षण करते हैं और वे अपनी विविध क्षणिकता
इसके चारों ओर आकर बसे होते हैं ।

ये ज्ञानके अन्त आभारपर बसा होता है, उसकी ऐसी
ही विशेष योग्यता होती है । वह अपनेस सृष्टीय फलसुख्य
दिता है ।

रक्षक शक्त और देव ।

आगे अर्धवर्ग सूत्रमें कहा है कि ज्योत्स्ना और उमके
चारों महिने उसने (मोहारी) रक्षक होते हैं । अर्थात् इस
समय महिनोंमें उसकी रक्षा होती है ।

इसके अनंतर पञ्चम पर्वण सूत्रमें कहा है कि सब विद्या
और अन्त्याईशास्त्रोंमें सब, सब पञ्चपति समयदेव सब, महादेव
और ईश्वर के साथ देव अपने अनुमानका धाममें बसने करके
इसके छावी होते हैं और इसकी रक्षा करते हैं । पाठक यहां यह
न समझे कि वे क्या देव भिन्न हैं । वे 'ईश्वर' के ही नाम
हैं । ईश्वर ही एक देव है जिसके गुणधर्म योग्य के साथ नाम
हैं । वह एक देव सबका ईश अन्त्या स्वामी है । इसलिये
उसकी 'ईश्वर' कहते हैं, इसके आधीन अर्थात् देव हैं उन
सब देवोंपर वह मुख्य अधिपत्य होनेके इसको महादेव
कहते हैं । वही ईश्वर सब कुछ और पापधर्मियोंके योग्य इस
देवक समता है, इसलिये इसको 'स' कहते हैं । पवित्रोंकी वही
मन्त्र सब 'वीर्य' महीन होता है । इसके पाठ अत्युक्त
पाठकी शक्ति रहती है । अथवा वह सब योग्य सब है
इसलिये इसको पञ्चपति कहते हैं । वह अर्थात् नतिमान प्रत्यक्ष
देवधर होनेके इसको कर्म (कर्मि पञ्चपति) कहते हैं
और उन सबको मूर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करता है । इसलिये
उसको भग्न कहते हैं । इस तरह वे चारों सब एक ही
देवके रूपक है । वह एक देव के साथ कर्म करता है
इसलिये वे सब नाम इसको प्राप्त होते हैं । वह सबका
देवधरेव इस प्रजापरीक्षा छावी, यिन्न रक्षण और अनुयायी
होता है ।

देवोंकी सहायता ।

आगे सब पर्वण सूत्रमें इस प्रजापरीक्षा सब देवताओंकी
उपस्थिति होती है, ऐसा कर्म है । भूमिके अन्तर उसकी

भूमि, जमि औषधियों वनस्पतियों इस आदि सहायक हाव
हैं । उर्ध्वभागसे धूम्र चन्द्र चक्र मेघोदक और वायुकी
सहायता होती है । उर्ध्व भागधाममें ज्ञाना वरु धाम और
महा अर्थात् अर्धवेदके मन्त्र सहायक होते हैं । इतिहासकी
वही शिक्षामें इतिहास पुराण गाथा नाटकीय उद्योग अनुकूल
होता हैं । पञ्चपतिमें आहवनीय, गर्हपत्य आदि सब उसकी
सहायता करते हैं । काण्डधाममें अत्यु मन्त्रिने सब अहोरात्र
के उसके सहायक होते हैं । आप्यादिक क्षेत्रमें वह भाग
बढ़ता है यहां (वासिष्ठि) मूक श्रुति (भित्ति) प्रकृतिकी
विकृति (इन्द्राणी) इत्य अर्थात् आत्माकी शक्ति (इन्द्रा)
उर्ध्व व्याधिक सहायता होती है । और इस क्षेत्रमें उसकी
देवा आत्मन प्रज्ञ होता है कि उसमें दृष्ट होता हुआ यह
(न अक्षरसर्व शक्ति अद्वयत्व) यहाके वापस न होकर
देवा मानव है । इसी उन्मीलता उसमें इसको प्राप्त होती
है । आगे इसको सभी देव सहायता करते हैं और वह उन सब
सब भिन्न नाम करता है ।

अन्त्य पर्वण सूत्रमें कहा है कि ऐसी पूर्ण अवस्था प्राप्त होने
पर उसको उत्तम अन्त्या स्वातन्त्र्यमेव प्राप्त होती है । इसके पश्चात्
वह इस अत्युक्तकी कमी भूझता नहीं । यहां पूव प्रजापत्या
इसकी प्राप्त हुई होती है । वही सत्ता प्रजापति है ।

सत्रियविभाग ।

पैदिक सत्रान्त्य ।

अग्नि और प्रजापति पावन करता है और उत्तम अग्नि-होता
है । इसके उत्तम अग्निने करते हैं कि (यः अग्निवत्) वह
कोशिकी रत्न करता है । अर्थात् प्रजापति रक्षक है । वह अन्त्या
सुरक्षित रक्षक है । सब प्रजापति की रक्षा करनेके उसकी सब
प्रकार आत्मन आदि योग्य प्राप्त होते हैं और सब कोन उसके
अनुयायी होते हैं । इसी विधान अन्त्य पर्वण सूत्रमें कहा है और
प्रथम पर्वण सूत्रमें आगे राजप्रकारका ही उपदेश करते हैं—

(यः विक्रान्त अनुकूलकम्) वह अग्नि राजा अन्त्य
पावन के पञ्चपति उत्तमपर आत्मन होकर प्रजापति मत्तनुसार
उत्तमपावन पञ्चमे कर्म । राजा प्रजापतिनुसार होनेके उक्त
राजाकी (सत्ता) प्रजापति (कर्मि) राष्ट्रीय महापरिधर
(देव) अनुराग डेम् और (सत्ता) अर्ध पञ्चमेव उद्योग
अत्युक्त करते हैं । अर्थात् जो राजा प्रजापतिनुकारी नहीं होता
उसकी इसकी अत्युक्तता नहीं होती । इसकी सीधा भाग प

और इतिहास ने सातों तर्कके अपासोंमें रहते हैं । मनुष्योंका प्रथम हुआ पुर करनेवाली पृथिवी नाम (धर्म हुआ अथवा नष्टि इति अपासः) अपास है । ने सातों भद्रा बीषा आदि प्रकृतके दुःखोंको दूर करती है इसलिये इनका नाम वहां अपास रखा है ।

आये पदरहने पर्वोत्सवमें अतिथिका आगम मूर्ति अन्तरिक्ष औ तल्लभ, अतु मनुष्यपदार्थ सत्त्वस्वरूप हैं ऐसा वर्णन है और अन्तरहने पर्वोत्सवमें अतिथिकी आँखें पूर्व और पश्चिम अथ अग्नि और वायु बाह्य अहोरात्र,

सर्वोत्सव विधि और अतिथि और सत्त्वस्वरूप चतुष्पाद विर है ।

इस प्रकारका पूजन आगम सबको समझकर करनेयोग्य है ।

इस प्रकारमें जो अतिथिका स्वरूप वर्णन किया है वह ठीक प्रकार आगममें नहीं जाता । तथापि इससे दृष्टम् ही प्रतीत होता है कि अतिथि सर्व वैवर्तक्य होनेके समान परम पूज्य है ।

इस पदरहने अन्तरहमें अतिथि सत्त्वस्वरूप विवर्त है । और अत्यन्त गृहस्थीका वह वर्ण होनेसे इस अन्तरहका विचार अत्यन्त गृहस्थीको करना अत्यन्त आवश्यक है ।

पदरहने अन्त सत्त्वस्वरूप



ॐ

अथर्ववेद

का

सुषोष माध्य ।

षोडशं काण्डम् ।

लेखक

प० भीपाद धामोदर सातबलकर,
साहित्यवाचस्पति वेदाचार गीतानुशात
अध्यक्ष-स्वाध्याय मण्डल मानन्दाभम शिक्षा पाठश्री (जि. सुरत)

द्वितीय वार

संवत् १००७ शक १८७१ सन १९५०



हमारा विजय !

त्रि॒त॒म॒स्मा॒क॒मु॒नि॒स॒म॒स्मा॒क॒मू॒व॒म॒स्मा॒क॒ ते॒जा॒ऽस्मा॒क॒ ब्र॒ह्मा॒स्मा॒क॒ स्वे॒रि॒स्मा॒क॒
य॒यो॒ऽस्मा॒क॒ प॒श॒वो॒ऽस्मा॒क॒ म॒जा॒ अ॒स्मा॒क॒ धी॒रा॒ अ॒स्मा॒क॒ ॥ १ ॥
(अक्टोबर १९४१)

हमारे लिये विजय अब कम देय है। हम प्रत्यक्ष यह पशु, पशुपति और धीर प्राप्त
हैं । ” हमारा सर्वत्र विजय है । ”

प्रकाशक— परमेश्वर धीपाद सावलेकर B. A.
स्वाध्यायमठ, भारतपुर, लखनऊ, कलकत्ता पारसी मि० स्कूल

अथर्ववेदका सुवोध भाष्य

षोडश काण्ड ।

इस सोमहोमे काण्डमें भी विभिन्न विषयोंके संग्रह कहीं हैं प्रायः सब काण्डका मुख्य विषय वाग्मोचनपूर्वक विनयवाचि है । सब मन्त्रोंका साम्य नहीं पाक है और इसलिये अथर्ववेदके मृतीय महाविधायमें इस मन्त्रोंका परिगणन किया है ।

इस काण्डके मन्त्रमें अविष्टः अन्तः है । इसका मन्त्र है "सुवत्तु हुवा" । काण्डके मन्त्रमें सुवत्तु होनेका उल्लेख मन्त्रभाष्यक है क्योंकि इस मन्त्रके इस काण्डका संयोजनपात्र हुआ है ।

इस काण्डमें १ पदोच्युत है, बहिष्ते वा । पदोच्युतोंका एक अनुवाक है और छप पाँच मन्त्रोंका दूसरा अनुवाक है । इस काण्डमें कुल मन्त्र १३ हैं वस्तु एतरी मन्त्रकी विनयीके १० हैं । अब इसका कवि देवता उद्द विनय-

मूक	संयोजकता	कवि	देवता	छंद
मन्त्रोऽनुवाकः ।				
१	१३	अथर्वी	प्रजापतिः	१, ३ द्विप साम्यो बृहत्, २, १ वस्तुतो विष्टुप ४ आहूरी पावनी, ५८ साम्यो यंकि (५ द्विप १, ६ साम्यो अनुष्टुप्, ७ निष्कृति विराट् पावनी, ९५ मृती १५ ११ साम्यो यंकि, १२ ३३ आर्षो अनुष्टुप् ।
२	१		वाक्	१ आहूरी अनुष्टुप्, २ आहूरी यंकि, ३ साम्यो यंकि ४ निष्कृति यंकि बृहत्, ५ आर्षो अनुष्टुप्, ६ निष्कृति १ यंकि ।
३	६	मन्त्रः	आग्निव	१ आहूरी पावनी, २ ३ आर्षो अनुष्टुप्, ४ साम्यो विष्टुप ५ यंकि यंकि, ६ द्विप साम्यो विष्टुप । १ ३ यंकि अनुष्टुप्, २ यंकि यंकि, ४ निष्कृति अनुष्टुप्, ५ आहूरी पावनी, ६ आर्षो यंकि, निष्कृति विराट् मन्त्रोऽनुवाक

द्वितीयोऽनुवाकः

५	१	मन्त्रः	सुवत्तुवाचक	१ १-६ विष्टुप, २५ (५ प्र मृती, ६ प्र यंकि) १ द्वि ६ द्वि साम्यो पावनी, १५, ६५ द्वि यंकि बृहत् ।
---	---	---------	-------------	---

११	, उपा	१-४ प्राजा सुहृत्; ५ साम्नी संधि; ६ विष्णुः स्वर्ग वृद्धी; ७ द्विष साम्नी वृद्धी ८ आसुरी जन्तो; ९ आसुरी वृद्धी; १ आर्षा उन्मिद; ११ त्रिष स्व नावत्री; आर्षा अनुसुप
१२	,	१ संधि; २ साम्नी अनुसुप; ३ अश्वि उन्मिद; ४ प्राजा प.वर्षी; ५ आर्षा उन्मिद; ६ ९ ११ साम्नी वृद्धी; ७ वासुकी स्वर्ग; ८ शत्रु वृद्धी १ साम्नी नावत्री; १२ सुरिद प्राजा अनुसुप १३ आसुरी त्रिषुप ।
१० (११)		अ १-२७ एकव बहुवर्गि अनुसुप; द्वि. १-१० त्रिष. विष्णुस्वर्ग; तृ १ प्राजा नावत्री; च १ २० त्रिष. स्वर्ग त्रिषुप; तृ २-४, ९ १० १५, २४ आसुरी जन्तो; तृ ५, ७ ८ १ ११ १३ १८ आसुरी विष्णु; तृ ६ १२ १४-१६ २०-२३ २४ आ- सुरी संधि; तृ २५, २६ आसुरी वृद्धी ।
४ १० (१ ३)	१ प्रजापति २ संशोक्तः ३ च पूर्वः	१ साम्नी अनुसुप; २ आर्षा उन्मिद; ३ साम्नी संधि; ४ वरोन्मिद ।

इस शब्दमें एक शब्दके ही ९ पर्यायसूचन होनेके कारण शब्दके अन्तमें ही सब संशोक्त शब्दों का विचार करें ।



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

पोरुश काण्डम्

दुःखमोचन और विजयप्राप्ति ।

(१)

अतिमुष्टो अयां वृषमोऽतिमुष्टा अग्रयो दिव्याः	॥ १ ॥
कुब्जं परिहृजन् मुजन् प्रमुजन्	॥ २ ॥
मोको मनोहा खनो निर्दाह आरम्भर्पिस्तनूर्ध्वः	॥ ३ ॥
इह तमर्ति सृजामि त माम्यर्धनिधि	॥ ४ ॥
तेन तमर्भर्तिसृजामो मोक्षस्मान् द्वेष्टि य वृष स्पिद्धः	॥ ५ ॥

१ [१] [अयां वृषमः अतिमुष्टः] उद्योती ययां करनेवाला मुफ्त हुआ [दिव्याः अग्रयो अतिमुष्टाः] दिव्य भागि मुक्त किये गये ॥ १ ॥ [कुब्जं परिहृजन्] तोड़ता हुआ घन रीतिव फोड़ता हुआ [मुजन् प्रमुजन्] घातता हुआ और बाह करता हुआ ॥ २ ॥ [मोको मनोहा] घातक और जोरनेवाले [निर्दाह] बाह करनेवाले [मनो-हा] मनघ्न बाह करनेवाले [अरम्भर्पिः] अग्र-भागे वृष्य देनेवाले और [तनू-वर्धन] कटीरको वृद्धि करनेवाले ॥ ३ ॥ [इह तं अतिमुजामि] इह और वृष कर्तु को मैं शुरू करता हूँ [तं मा अयर्धनिधि] उद्योती मैं कर्तृनि धनः प्राप्त न होऊँ ॥ ४ ॥ [तेन तमर्भर्तिसृजामो] जो इसारा देन करता है और [मोक्षस्मान् द्वेष्टि] तसेन भागि अति मुक्त ॥ उद्योती उद्योती देन शुरू करते हैं ॥ ५ ॥ [अयां ययां अति] वृष्योद्यो अग्रभागे हो [यः वृष्ये अतिवर्धमुजामि]

अपामग्रमसि समुद्रं चोऽस्पृश्वमृजामि	॥ ६ ॥
योऽस्पृश्वमृजामि स संजामि आकृ खनिं संनूदयिषु	॥ ७ ॥
यो वं आपोऽपिराशिवश्च स एष मनुष्यो धीरः सवेत्तु	॥ ८ ॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियमाभि पिबेत् ॥ ९ ॥ अग्निं प्रा आपो अपं रिग्रमस्मत्	॥ १० ॥
प्रास्मदन्तो वहन्तु प्र दुष्वप्ये वहन्तु	॥ ११ ॥
क्षिणेन मा चक्षुषा पश्यतापः क्षिपया त्वनोप स्पृशतु स्वर्चं मे	॥ १२ ॥
ध्रिवा नमीनं सुपदो हवामहे मयि ध्रुवः च आ चंच देवीः	॥ १३ ॥

(२)

निर्गुमण्य ऊत्रा मधुमती वाक् ॥ १ ॥ मधुमती स्य मधुमती वाचमुदेवम्	॥ २ ॥
उपहृता म गोपा उपहृतो गोपीयः	॥ ३ ॥
सुभ्रुतो कर्णा मधुभ्रुतो कर्णा मद्र श्लोकं भूयासम्	॥ ४ ॥
सुभ्रुतिश्च मोषध्रुतिश्च मा हसिष्टा सौपर्णं चक्षुरर्बुजं ज्यारिः	॥ ५ ॥
क्षणीणां प्रस्तराऽसि नमाऽस्तु देवाय प्रस्तराय	॥ ६ ॥

मुदेः समुद्रके प्रति म पाठ इति ॥ १ ॥ [वाः अप्यु भवति] मो जलोर्मे अत्र दे [वं अति मृजामि] उदधे म मुन्य
 इति ॥ [आकृ खनिं संनूदयिषु] यत्क न्यादक नीर सरीरके द्रुषित करिष्यन्ते दूर करता ॥ ७ ॥ [व क्षिपिः क्षिपः
 क्षिपिष्य] मा अत्र आप जलोर्मे प्रत प्रावत दुष्ठा है [साः पृथाः] वह दह दे [वत् वा धीरे तत् दृष्ट] ये अने
 मद्र मन्त्र दे वह दह दे ॥ ८ ॥ [इन्द्रस्य इन्द्रियेण वा अभिपिबेत्] इन्द्र इन्द्रिय क्षयका कामनेक दिवा नाम ॥ ९ ॥
 [अग्निः अग्नः] विरौत अत्र दे वह [अरमत् रिग्रं अय] हयत्र मद्र दूर करे ॥ १० ॥ [अपमत् दम प्रवहन्तु] हयत्र मद्र
 दूर करे तथा [दुष्वप्ये व वहन्तु] दुष स्वप्रकं दृष्टो भी दूर करे ॥ ११ ॥ दे [क्षिपः] जमा [मा क्षिणेन चक्षुषा पश्यतु]
 सुो क वल्लारी रहिमे देवी [मे मयि] क्षिपया त्वनोप स्पृशतु मतो स्वपाद्य अपवी द्रुम स्तुते स्पर्श वत् ॥ १२ ॥
 [म सुपदं चित्तम अमीनं हवामहे] जलोर्मे रहनको सुमकारी अतिवोहो हय पुष्पाते है [देवीः] इ दिव्य जनी [मयि
 क्षय वयाः क्षयत] सुभ्रुते धात्र वत् अर तत्र भावत इति ॥ १३ ॥

[२] [वाः अप्यु भवति] मुपति दूर हा [ऊत्रा मधुमती वाक्] वमभायी मोड़ी वली हा ॥ १ ॥ एते
 [मधुमती वत्] मोड़ी हो [मधुमती वाच उदेव] मद्रा भाषण बोझ ॥ २ ॥ [मे गोपा उपहृता] मेए भाषण
 -इदमपातर-मुदाया मद्रा [गोपीय उपहृतः] वलीका दक्षक गोरक्षक अपवा इतिरक्षक मुदाया दे ॥ ३ ॥ [मु
 वत्] म वा धन उतम कन मुनेरवत् ही [मधुभ्रुतो कर्णा] कम्पाय वयन मुनेरवत् मरे कव हो [मद्र श्लोकं
 भूयासम्] व वाचमरी प्रतीका है मुना वदया ॥ ४ ॥ [मद्र श्लोकं] य उपभुतिः च [उतम भवमक्षक नीर दृष्टे इत्येव
 पाठ] मा मा हा मद्र [मुन्य वदयि म पाठ] [क्षिपिं ज्यारिं चक्षुः] वददक कामय तत्रवी एहि मरे वत् [मद्रा]
 मद्रा इति ॥ [क्षिपिं मद्रा अति] मृजामि वत् मद्रा दे [देवाय मद्रा मद्रा मद्रा] दव वत् मद्रा
 मद्रा वत् हो ॥ ६ ॥

(३)

मूर्धा रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्	॥ १ ॥
रुन्ध्रं मा चेन्ध्रं मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधमा च मा हासिष्टाम्	॥ २ ॥
तर्ध्रं मा चमसध्रं मा हासिष्टां मूर्धा च मा चरुणध्रं मा हासिष्टाम्	॥ ३ ॥
विमोक्षं मार्षेपविध्रं मा हासिष्टामार्षेदोन्ध्रं मा मातरिषां च मा हामिष्टाम्	॥ ४ ॥
पृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम ह्येः	॥ ५ ॥
असताप म हृदयमूर्धा गम्पूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा	॥ ६ ॥

(४)

नाभिरु रयीणां नाभिः समानानां भूयासम्	॥ १ ॥
स्वासवसि सुषा अमृतो मर्त्येष्व	॥ २ ॥
मा मां प्राप्नो हासीन्मो अपानोऽब्रह्माय परी गात्र	॥ ३ ॥
सूर्यो माहः पास्त्रपिः पृथिव्या पापुर्न्तरिक्षाव् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती वार्धिवेभ्य	॥ ४ ॥
प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा अने प्र मेधि	॥ ५ ॥

[१] [रयीणां अर्धं मूर्धा भूयास] यमोक्षे मे मस्तकक समाव कृता स्थायी बन् । तथा [समानानां मूर्धा भूयास] यमोक्षे मे मे मुखिका बन् ॥ १ ॥ [रुन्ध्रं च चेन्ध्रं च मा मा हासिष्टां] तत्र आर कश्चि सुखे न खेदे [मूर्धा च विधमा च मा मा हासिष्टां] विर और विधेय सर्व सुखे न खेदे ॥ २ ॥ [तर्ध्रं च चमसध्रं च मा मा हासिष्टां] पकनेक वाय और कमर सुखे न खेदे । [चरुणध्रं च मा मा हासिष्टां] भयक और आगर दन्तका मुने न खेदे ॥ ३ ॥ [विमोक्षं च मार्षेपविध्रं च मा मा हासिष्टां] सुख करनेवाला और यम सब सुख न छोड । [हासिष्टाम् च मातरिषां च मा मा हासिष्टां] जल देनवाला और वायु मुक्त न छोडे ॥ ४ ॥ [पृहस्पतिः म आत्मा] मय अत्मा जन्माना और मयपाय काम ह्यः । मनुष्यो मे मय करनेवाला हृदये रक्षेवाला है ॥ ५ ॥ [म हृदय म मनुष्य] मेम हृदय सेनापतिन है । [गम्पूतिः यमो] देर कोकरी मुती बधा हो । [विधर्मणा समुद्रो अस्मि] विधम यमोक्ष मे समुद्रक हवान है ॥ ६ ॥

[४] [अर्धं रयीणां नाभिः] मे यमोक्ष केन्द्र और [समानानां नाभिः भूयास] समानाका भी केन्द्र बन् ॥ १ ॥ [मर्त्येषु अमृतः] मर्त्यो मे अमर [सु-आसः] उपाय रोगिने नेत्रमेलन और [सु-हवा] उपाय तजवाना म आत्मा [मधि] हो ॥ २ ॥ [प्राणा मां मा हासीष्ट] मुक्त न छोडे । [अपानः अब्रह्माय मा परा यात्र] अपान भा छोडकर दूर न गया जय ॥ ३ ॥ [सूर्यो अहः मा पात्र] सूर्य विद्यो मेम रक्षा कर [अग्नि पृथिव्या] अग्नि पृथिवी [वायुः पृथिवीप्राय] वायु अमर्त्योक्षे [यमो मनुष्येभ्यः] यम मनुष्योक्ष और [सरस्वती वार्धिवेभ्यः] सरस्वती वृष्टीक द जल पशुपति मरी रक्षा करे ॥ ४ ॥ [प्राणापानौ मा मा हासिष्टां] जल और अपान मुक्त छोडे [जल मा मयमे] मनुष्यो मे पापक न हो ॥ ५ ॥ [आने] जलो । [अने मधि] आद मयमा द । [अने मधि] अने मयमा च । रमो आर

स्वस्त्यं॑ चोपसो॑ दोपसं॑ सर्थे आपः॑ सर्वगणो॑ अक्षीय

॥ ६ ॥

अक्षरी॑ स्थ प॒ञ्चवो॑ मोप॑ स्थेपु॒र्मि॒त्रावरु॑णौ मे प्राणा॒पाना॒न्नाभि॑र्मे द॒र्शं द॒धातु॑

॥ ७ ॥

(५)

वि॒ष तं स्वप्न॑ ज॒नित्र॑ प्रा॒णाः पु॒त्रोऽसि॑ सि॒ यमस्य॑ कर॑ण

॥ १ ॥

अ॒न्तर्कोऽसि॑ मु॒स्युर॑सि

॥ २ ॥

त त्वा स्वप्न॑ त॒था स वि॒ष स नः॑ स्वम॑ दु॒ष्प॒ज्ज्यात् पा॒हि

॥ ३ ॥

वि॒ष ते स्वप्न॑ ज॒नित्र॑ नि॒र्मै॒त्याः पु॒त्रोऽसि॑ सि॒ यमस्य॑ कर॑ण ॥ १० ॥

॥ ४ ॥

वि॒ष ते स्वप्न॑ ज॒नित्र॑म॒र्भ॒त्याः पु॒त्रोऽसि॑ सि॒ यमस्य॑ कर॑णः । ० । ०

॥ ५ ॥

वि॒ष ते स्वप्न॑ ज॒नित्र॑ नि॒र्मै॒त्याः पु॒त्रोऽसि॑ सि॒ यमस्य॑ कर॑णः

॥ ६ ॥

वि॒ष ते स्वप्न॑ ज॒नित्र॑ प॒राम्भ॒त्याः पु॒त्रोऽसि॑ सि॒ यमस्य॑ कर॑णः । ० । ०

॥ ७ ॥

वि॒ष ते स्वप्न॑ ज॒नित्र॑ द॒न॒जामी॑नी पु॒त्रोऽसि॑ सि॒ यमस्य॑ कर॑ण ॥ ८ ॥ अ॒न्तर्कोऽसि॑

मु॒स्युर॑सि ॥ ९ ॥ त त्वा स्वप्न॑ त॒था स वि॒ष स नः॑ स्वम॑ दु॒ष्प॒ज्ज्यात् पा॒हि

॥ १० ॥

(६)

अ॒ज॒न्मा॒वा॒सना॒मा॒पामु॒माना॑गसो॒ यय॑म् ॥ ११ ॥ उ॒पा॒ यस्मा॑द् दु॒ष्प॒ज्ज्या॒दम॑न्मा॒प॒ तदु॒च्छत॑ ॥ २ ॥

रात्रि॒न॒ध [स॒र्वेः स॒वग॑ण] त॒न॒ और॒ क॒व॒ प॒चो॒त॒ पु॒त्र॒त॒ हा॒कर [अक्षी॒य] सु॒ख॒ प्रा॒प्त॒ क॒र्त्त॒ ॥ १ ॥ [प॒ञ्च॒वोऽसि॑] अ॒प॒
वा॒म॒भ॒वा॒न॒ हा [प॒ञ्च॒व॒ मा॒ अ॒व॒स्ते॒पुः] प॒ञ्च॒ भे॒रे॒ पा॒व॒ र॒हे॒ (मि॒त्रा॒वरु॑णौ मे प्रा॒णा॒पानौ) वि॒ष॒ और॒ प॒राम॑ मु॒क्ते॒ प्र॒प॒ और॒
अ॒ज्ञा॒न॒ त॒था [अ॒भिः॒ मे॒ द॒र्शं॒ द॒धातु॑] अ॒भि॒ सु॒ख॒ व॒त॒ भा॒र॒ण॒ करे॒ ॥ २ ॥

[५] (१११॥) के॒ क॒नि॒त्रं वि॒ष॒) हे॒ स्वप्न॑ । ते॒रि॒ उ॒त्प॒ति॒क॒ हे॒तु॒ ह॒मे॒ व॒ता॒ हे॒ । १॥ (प्रा॒णाः॒ पु॒त्रा॒ अ॒सि॒) द॒म्या॒र्भ॒
॒या॒ पु॒त्र॒ हे॒ अ॒र॒ (व॒म॒र॒ण॒ कर॑ण) व॒म॒र॒ण॒ आ॒ध॒न॒ हे॒ ॥ १० ॥ १॥ (अ॒न्त॒र्को॒ अ॒सि॒) अ॒न्त॒र॒क॒रे॒ण॒का॒ हे॒ आ॒र॒ १॥ (मु॒स्यु॒र॒ अ॒सि॒)
॒मु॒स्यु॒ हे॒ ॥ ९ ॥ १॥ (तं॒ त्वा॒ त॒था॒ स॒ वि॒ष॒) उ॒प॒ त॒नु॒षो॒ दे॒ता॒ ह॒म॒ जा॒न॒ते॒ हे॒ । हे॒ स्वप्न॑ । (वा॒ मा॒ दु॒ष्प॒ज्ज्या॒त् पा॒हि॒)
॒व॒द॒ १॥ ह॒मे॒ पु॒त्र॒ स्वप्न॑ त॒था॒ ॥ ३ ॥ (प॒राम्भ॒ त॒ अ॒भिः॒ वि॒ष॒) हे॒ स्वप्न॑ ते॒रि॒ उ॒त्प॒ति॒क॒ हे॒तु॒ ह॒मे॒ व॒ता॒ हे॒ १॥ (मि॒त्रा॒वरु॑णौ
अ॒भि॒) दु॒र्म॒ति॒ता॒ पु॒त्र॒ हे॒ और॒ (व॒म॒र॒ण॒) व॒म॒र॒ण॒ आ॒ध॒न॒ हे॒ ॥ ४ ॥

१११॥ १॥ ह॒म॒ जा॒न॒ते॒ ॥ १॥ (अ॒भा॒वा॒ता॒ पु॒त्र॒) अ॒भू॒ति॒क॒ पु॒त्र॒ हे॒ ॥ ५ ॥ १॥ (मि॒त्रा॒वरु॑णौ॒ पु॒त्रा॒) मि॒त्रं
॒वा॒धा॒ पु॒त्र॒ हे॒ ॥ ६ ॥ १॥ (प॒राम्भ॒वा॒ता॒ पु॒त्रा॒) प॒राम्भ॒वा॒ता॒ पु॒त्र॒ हे॒ ॥ ७ ॥ १॥ (दे॒न॒जामी॑नी॒ पु॒त्रा॒) द॒न॒जामी॑नी॒ उ॒त्प॒
॒ति॒ ॥ ८ ॥ १॥ (अ॒न्त॒र्को॒ अ॒सि॒ मु॒स्यु॒र॒ अ॒सि॒) १॥ अ॒न्त॒र्को॒ आ॒र॒ मु॒स्यु॒ हे॒ ॥ ९ ॥ (१११॥ तं॒ त्वा॒ त॒था॒ स॒ वि॒ष॒) १॥ १०॥ १॥
॒तु॒न॒ ॥ ११॥ १॥ १॥ (वा॒ मा॒ दु॒ष्प॒ज्ज्या॒त् पा॒हि॒) १॥ ११॥ १॥ ह॒मे॒ पु॒त्र॒ स्वप्न॑ त॒था॒ ॥ १॥ १॥

[६] (अ॒थ॒ अ॒क्षी॒य॒) आ॒ज॒ ह॒म॒न॒ वि॒ष॒ प्र॒ज॒ दि॒वा॒ हे॒ (अ॒थ॒ अ॒क्षी॒य॒) सु॒ख॒ प्रा॒प्त॒ अ॒थ॒ अ॒क्षी॒य॒ अ॒थ॒ दि॒वा॒ ॥ (व॒र्त्त॒ अ॒थ॒
अ॒थ॒ अ॒क्षी॒य॒) ह॒म॒ न॒ि॒त्रा॒वरु॑णौ॒ हे॒ ॥ १॥ १॥ ८॥ (उ॒पा॒) उ॒पा॒ य॒स्मा॒ १॥ ह॒म॒ (प॒राम्भ॒वा॒ता॒ अ॒क्षी॒य॒) मि॒त्रं॒ पु॒त्रा॒वरु॑णौ॒ हे॒

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमुत्तमस्माक तेजोऽस्माकं प्रज्ञास्माकं स्वर्तिस्माकं वज्राऽऽस्माकं
 पञ्चवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं धीरा अस्माकम् ॥३०॥
 तस्माद्वमु निर्मन्त्रामोऽमुमामुष्यायन्मममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥३१॥
 स मृत्योः पद्वीं धात्वा पाश्चात्मा मौषि ॥३२॥
 तस्मैद वचस्तेजः प्राणमायुर्नि र्बेष्टयामीदमेनमध्वराञ्च पादयामि ॥३३॥

(९)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमुत्तमस्माकं विद्याः पुतना अरोहीः ॥ १ ॥
 तद्वधिराह तद् सोमं आह पूषा मां धात्वा मुकुतस्य लोके ॥ २ ॥
 अगन्म स्वः स्वर्तिगन्म स धर्मस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥
 वन्मोभूषाय वसुमान् वक्षो वसु वक्षिणीय वसुमान् भूषात् वसु मयि वेदि ॥ ४ ॥
 इति द्वितीयोऽनुवाकः ।

इति पौन्य काण्ड समाप्तम् ॥

अथर्वना आथर्वणमा अथर्वणीना आथर्वणानां अथर्व आथर्वणां --- माथर्वना अथर्वणानां ---
 अहोरात्रयोः अह संवत्सः साप्ताहिक्यः इन्द्राग्नीः वित्रावक्यो --- अथर्वण रात्रिः सूर्योः पद्वीरात्र्य
 मोषि) । १ — ३९ ॥ यह वृहस्पती प्रजापति, अवि अविषोके उत्पन्न अगिरसु अगिरासे उत्पन्न, अथर्व, अथर्वी
 स पञ्च वधिरात्रि वनस्पतिर्वेदे उत्पन्न आहु आहुनाति उत्पन्न यहीने अथर्वनाथ अहोरात्र दिन, पु, इक्षिणी इन्द्र, अग्नि
 मित्र वरुण राजा वरुण और वसुके पाशाके व वने ॥ १ — ३३ ॥ [उत्पन्न इन्द्र वरुणः] उत्पन्न यह देव, अग्नि, अथर्व
 आहु आहुवे मे परता हूं और उत्पन्न भीति निराह हूं ॥ ३३ ॥

[९] (अस्माकं जितं) हमारा विजय हो (अस्माकं उत्तमं) हमारा उत्तम हो (विद्या पुतना आलो) हम
 पुतना का विनाश किया है ॥ १ ॥ (अग्निः तद् आह) अग्निने वह कहा है (सोमः यं धात्वा) सोमने वह कहा है ।
 (पूषा मुकुतस्य लोके मां धात्वा) पूषा मुक्त पुष्प आश्रमे पालन करे ॥ २ ॥ हम (स्वा अगन्म) अग्न्यादी ज्योतिषी आ
 होत है (स्वा अगन्म) हम अपने देवको प्राप्त होते हैं । (वन्मोभूषाय वसुमान्) वरुणको ज्योतिषी वसु भद्र
 होते है ॥ ३ ॥ (वसु भूषात्) वसुके वक्षिणीने (वसुमान् भूषात्) वसुनाथ होके (वसुमान् वक्षः) देवर्ष वक्ष
 णी दे (वसु वक्षिणीय) वक्ष्यन्त्य वक्षः । (मयि वसु वेदि) मुझमें वसु की वास्तव्य कर ॥ ४ ॥

पौन्य काण्ड समाप्त ।

विजय की प्राप्ति ।

प्रत्येक मनुष्यको अपने विजयके लिये यत्न करना चाहिये। छोटे-बड़े जोय बाधक भी अपना पराभव वह नहीं सकता वह सबकी बाधका होयगी तो बाधक भी होता है पीछता है और पराभवसे दूर मनुष्यकी चेष्टा करता है। इसी तरह मनुष्यके अन्दर भी पराभवका एक बल रहने का इच्छा नहीं होती। सदा अपना विजय हो, अपना बल बढ़े अपनी कीर्ति विप्लवमें फैले नहीं इच्छा मनुष्य करता रहता है। अतः मनुष्यको यह विचार किये जायत हो। इसका विचार करना चाहिये। इस विचार सूक्तके १ पदविप्लवमें विजयप्रसिद्धि के लिये आत्मिक पराभव विचार किया है। अतः अपना विजय चाहियेवाले सूक्त इसका समर्थन करे और ज्ञान उठाने।

विजयके प्रकार

विजयके बहुत प्रकार हैं। एक आध्यात्मिक क्षेत्रमें विजय है, दूसरा आध्यात्मिक क्षेत्रका विजय है और तीसरा अधिभौतिक क्षेत्रके संभवका विजय है। ये मुख्यतः तीन प्रकारके विजय हैं। तत्परि इस प्रत्येक क्षेत्रके विजयकाके लो लोके प्रकार हैं उन हस्त विचार नहीं नहीं किया जासकता तत्परि प्रतीत्यके लिये उनका बोधका एक बताना जाय है।

आध्यात्मिक विजय ।

आध्यात्मिक क्षेत्रमें घटीर इतिहास मनु प्राण बुद्धि आहकार विषय काम अज्ञान प्रकृति और सब प्रकारकी प्रकृति आदि का संभव है। इनको विरोध करना इनको अपनी भाव कल्पिते प्रविष्ट करना और इन सबको अज्ञानोत्पत्तिमें विनिर्जित या कल्पिते आध्यात्मिक क्षेत्रका विजय होता है। यही प्रत्येक इतिहास प्रकृति कल्पिते प्रकृति उत्पत्तिमें विनिर्जित भाव और प्रेम उनके पुन आदि प्रकृति विचार जाय है। यही सभी वैपश्य आध्यात्मिक मानकधारण आदि प्रकृति आध्यात्मिक विजयकी प्रकृति करनेके लिये है। मनुष्योंके पास आये हैं। इसकी सूचना देनेके लिये प्रथम पदार्थ सूक्तमें कहा है कि

विहाहः तनुदुहिः मना-हा आत्म-दुहिः एवं च अधिपमानि ।

घटीरभी जन्म घटीरके सब दोष, मनुके बाधक भाव और आत्माका पात करवाये सब विचार इन सबके में दूर करता है। ' इन चारोंमें प्रायः आत्माका पराभव होनेके कारण आत्मिक है; विविध रोगोंके कारण अपने घटीरमें बाध रोग, कष्ट अवस्था दुःख होते हैं, घटीरमें जन्म दोषका संभव होता है उन ही कष्ट उत्पन्न होता है सभी विनिर्जित होते हैं। मनुके पुत्रे मानीके मनुकी विनिर्जित होती है और इस सबके अन्तर्गत अन्तःपत्तन होता है। पाठक इन चार सूक्तों का विचार करे और लगे कि इन पाठोंके आध्यात्मिक क्षेत्र के लिये होते हैं। यदि ठीक प्रकार मनुका विचार जाय और इन चारोंके अन्तर्गत आध्यात्मिक विचार किया जाय तो यह पाठ पठनेके समर्थ ठीक प्रकार मनु जाननी कि मनुष्यके सब वैपश्यिक क्षेत्रोंके वे चार ही अर्थ हैं। यदि इनके विषयमें योग्य प्रतिपन्न किया जाय तो आध्यात्मिक क्षेत्रमें विजय प्राप्त विजय प्राप्त होना। पूर्वोक्त चार सूक्तोंके प्रति अन्तःपत्तन के लिये विजयके साधन जात हो सकते हैं—

प्रथमः तनुदुहिः मनुदुहिः आत्मदुहिः ।

वे चार सूक्त हैं जिनसे पूर्वोक्त चार दोष दूर हो सकते हैं। इतिहासक इतिहासक आदि घटीरका बाध दूर होता है और चारोंमें सर्वत्र प्रकृति होती है। तनुदुहिः घटीरके सब दोष दूर होते हैं मनुकी पवित्रताके मनुका बल बढ़ जाता है और अन्तःपत्तन आत्मिकता होती है। इस तरह विचार करवा ज्ञान होता कि आध्यात्मिक क्षेत्रके वे चार बाधक हैं और इसी लिये पूर्वोक्त चार सूक्तोंकी दूर करनेकी सूचना प्रथम पदार्थ सूक्तमें दी है। जीवमनुष्यकीतामें इसी उद्देश्यके बहा है—

प्राप्तो विपश्यतुः क्षेत्रोपपत्तयः ।

योग्यप्रकृति काम कामप्रकृतिप्रकृतिप्रकृति ॥ ११ ॥

योग्यप्रकृति क्षेत्रोपपत्तयः क्षेत्रोपपत्तयः

रक्षितप्रकृति बुद्धिप्रकृति बुद्धिप्रकृतिप्रकृति ॥ १२ ॥

राष्ट्रप्रकृतिप्रकृति विपश्यतुः विपश्यतुः

मनुदुहिः विपश्यतुः मनुदुहिः विपश्यतुः ॥ १३ ॥

मनुदुहिः सर्वप्रकृति विपश्यतुः विपश्यतुः

मनुदुहिः सर्वप्रकृति विपश्यतुः विपश्यतुः ॥ १४ ॥

होती है। पवित्रताके बिना किसीकी उन्नति होना धर्मका अ-
ग्रमन है। अतः हिंदीय पर्वानुष्ठानमें अपनी पवित्रताका विपन्न
रूपमें देखा है। सबसे पहिले सब मनुष्योंके एक अर्थात्
समान उपदेश दिया है वह पाठक देखें और स्मरण रहें—

हुन-आमरेका निः। (मं २।१)

“हुन ऐतिथी पति अर्थात् हुन नामक एक दुष्ट व्यवहार
हुन ही हमसे मिलेपत्ता हुन व्यवहार हुन हा।” हमारे
अन्तर दुष्ट पति करनेवाले मान न रहें और हमारे समाजमें
हुनवादी मनुष्य न रहें। इस प्रकार एक व्यक्तिगत सुधार हा
और इसी निमित्तसे समाजका भी सुधार हो। व्यक्तिगत सुधार
का और समाजके सुधारका नियम एक ही है। व्यक्तिगत सुधारके
बिना हुन गुणोंके हुन करना होता है। और समाजके सुधारके
बिना हुन गुणोंके हुन मनुष्यों को हुन करना होता है।
हुन मनुष्योंके हुन करनेका अर्थ ही समाजके हुन
गुणोंके आनन्दस्वात्त दूर हो, एवं सर्वत्र सन्निधित्त निमित्त
हुनका हुनका ही है। इस तरह सर्वशायरान सन्निधित्त
उपदेश करते पचाप निमित्त स्वर्गीकरण करनेके लोचनेसे हुन
ईश्वरोंका कामनिर्देश करते आनन्दस्वात्त माने वहाँका है—

कहाँ मनुष्यो का। मनुष्यो कां इहेनम् (मं २।२-३)

“कहाँ मीठी हो और वक्तवाकित्त हो मनुष्य मीठी
और वक्तुक्त कर्तव्ये अपराधने वातनीय करे।” मनुष्योंके
अन्तर को हवने बिनाद होते हैं उक्तका कारण कतु धर्मो
का प्रयोग है। मनुष्यक मनमें निव मरा रहता है वह कतु
कर्मों द्वारा गहराता है और सब स्वात्ममें निवेक। वागुमक
कल्प करता है। इसलिये मनुष्य अपनी कान्तःमुक्ति केला
ती कतव्य करपि कतु कर्मोंके प्रयोग नहीं किये जायें।

मनुष्य ऐसे कर्मोंका प्रयोग करे कि व मति ही कतुमोंके
मित्रता हो और कल्प हर्ष मित्रता सुदृढ हो जाय। केवल
कर्मोंकी मयुरता ही पर्यन्त नहीं है प्रभुत शरीरमें (कर्मः)
कर्म पवित्रे। कर्मकाही कृति करनेवाले कर्म कर्मकारके
पवित्रे। नहीं तो कर्म मनुष्य अपने ही दुष्टका सुकाय
करके पुष्टाते हैं दुष्टोंसे लु मरेका करके करते हैं ए
कम हास्य है ऐसा करते हैं। ऐसे कर्मोंके अपनी शक्ति का
वर्धन होती ही है परन्तु वे कर्म को भी मुक्त हैं उनके मनमें
भी निर्वकता का वागुमक कल्प होता है। इसलिये मनुष्य
को कथित है कि वह कर्मकाही कर्मकाही प्रमाणार्थ कर्मोंका
प्रयोग करे। अपने दुष्टको लु हास्य ह एका कहे ल

अमर होया ऐसा बोले लु सज्जनका है लु स्वयं
आनन्दमय है। ऐसा कहे। ऐसा बोलेसे सब सुमनसामोंके
मनमें कर्मकाही वागुमक कल्प होता है। मनुष्योंके
मान भी कर्मकाय कर्मके स्वात्ममें निमित्तता एव
रहें। किन्तु प्रत्यक्ष समन वह कर्म कर्मकारके लुमिन्कार
कल्प ही। प्रत्यक्ष पाठक किन्तुपूर्वक ऐसा मान करे कि
अपनी शक्तिसे कर्मकाय कर्मकाय विचार न प्रकट हो और सदा
कर्मकाय विचार ही प्रकट हो। इसलिये मनुष्यका कर्म
करना चाहिये। इस प्रत्यक्ष उत्तर वहाँ उक्त हो ही कर्मों
द्वारा दिया है। जो पा और जो-वीनः वे दो कर्म
कर्मकाय महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्योंका कर्म कात्ममें इन कर्मोंमें
आनुक है। जोप का अर्थ है ईश्वरोंकी रक्षा और
जोपीन का अर्थ है ईश्वरोंकी शक्ति। एकम कर्मकाय
करनेका उपदेश किन्तु है और दूसरे ईश्वरोंके समनता
जोप किन्तु है। जैसे पोरका करनेका जोप उत्तम मान
आदि जानेके बिना देते हैं और पुन करत ई और उमने
इवत्तः। पूर्वमे वही देते हैं, इसी तरह मनुष्य अपनी ईश्वरों
की कति बनावें और उनमें कर्म मी रखे। मनुष्यकी उन्नतिके
बिना इस प्रकार ईश्वरसमन और मनुष्यप्रहरी अर्थात् कर्मकाय
कर्म है। पाठक वह जोप इन दो कर्मोंमें है। जो एव
कर्म करनेका है होय वे ही (कर्मकाय) पाठ मुक्तने शक्ति
है। और जो कर्म अपने ईश्वरोंके स्वरक्षाकरी करत हैं वे
कर्मामें आदरके कर्मके मान नहीं हैं। पाठक इसका विचार
करे और इस वेदोपदेशके अन्ता वैवाकिक और सामाजिक
आचारम सुधारें। भाव्य कर्मों के विपक्षमे बड़ा उत्तम उपदेश
दिया है—

अत्रभूतो कर्म। सुसुतो कर्म। मरु कोक भूवात्तम्।

सुसुतिः उपसुतिः च मा मा हासिदात्ता (मं २।४-५)

“जैसे कर्म कर्मके उपदेश गुणों का कर्म उपदेशोंसे जैसे कर्म
सुन हुए हैं। कर्मकाय करनेवाले कर्मों में सुका करीगा। उत्तम
उपदेश गुणोंके और कर्मके कर्मके सुननेकी कति मर। कर्म
शक्ति व हो। वहाँ कर्मों की कर्मकाय का प्रायन दर्शाया
है। ईश्वर मनुष्यको कर्म ईश्वरिक्त विन है कि कर्मके मनुष्य
सदा उत्तम उपदेश गुणों कर्म कर्म कर्म व सुन। कर्मके मे
भी कहा है—

मरु कर्मभिः भूयुषाम देवा भर्तुः पदवमाधिमर्षकाः।

(मं २।५।६)

इमं वाचसि कन्यामकारक उपदेशं सुनें भौर आर्षोधि कन्यामकारक वस्तु वेत्ते । ये सप्त उपदेश इत्यादिने हैं कि इससे मनुष्य का सुधार हो मनुष्य पवित्र बने और उन्नत हो । इस प्रकार कन्या के विषयमें वहीसे पश्चात् केत्रक विषयमें भी कहा है—

सोपर्वं वस्तु धन्यवत् (मं २१५)

यह एक समान मेरी उक्ति है और वह उक्त कन्या का वस्तु है । इस प्रकार इदिविषयिके विषयमें इस पर्यायवृत्तम कहा है । यही—

अर्षीणां प्रस्तरः क्षितिः । वैश्वानर प्रस्तराश्च यमः ।

(यं २१६)

एष्विष्येका प्रस्तर है । इस विषय प्रस्तरक क्षिति धन्यकार है । अर्षीणां वस्तु का नाम है । यही विषय वस्तु है । इसके विषयमें प्रत्येक रूप में जन्तुः करणसे पूज्य धन्य प्राप्त करना चाहिये । इसी आत्मा की उपासनासे सप्त का वित्त होने वाला है । कहा तक उपदेश इस द्वितीय पर्यायवृत्तमें कहा है ।

अधिभौतिक विज्ञान ।

पूर्वोक्त प्रकार मनुष्य की आध्यात्मिक और वैश्वानर उपासी होनेके पश्चात् उसके अपना अधिभौतिक विज्ञान उपासन कर सेवा बल करना चाहिये । इसका विचार इस १६ वें अध्यायके तृतीय पर्यायवृत्तमें किया है वह बोधप्रद उपदेश पाठक को देंगे ।

अहं रथीणां मूर्धा मूर्धा । समानाणां मूर्धा मूर्धा ।
(मं २१७)

अहं रथीणां नाभिः मूर्धा । समानाणां नाभिः मूर्धा ।
(मं २१८)

मैं अपने स्वामी और केन्द्र हूँ । मैं समान होनेके लोभोंसे सुखिता और उबका मध्य केन्द्र हूँ । अपनी योग्यता सेवा करना योग्य होनी चाहिये । प्रत्येक मनुष्य सेवा यही होयकता उपाधि यदि बहुपुत्रपुत्रम कन्येका बल प्रत्येक मनुष्य करनेवाला उबका अवश्य सुधार होय । इस इच्छे इस प्रकार की इच्छा मनुष्य अपने मर्ममें धारण करे और धर्मपुत्रक उत्पत्ति बल करे । ऐसा सेवा करनेके क्षिति को गुण मनुष्यको अपने अन्तर बसाने चाहिये उभरी सुखा इष्टी सुखमें अपने धर्मोंमें ही है शोधने—

इयं येन मूर्धा विचर्मा उबक यमसा पर्वत यमसा ।
विमोक्तः अर्षीणां, अर्षीणां मातृनिष्ठा यं या या

हासिहाम् ॥ (मं २१२-४)

तेजस्विता महत्वाकांक्षा, महत्त्व की इच्छा, निम्न गुण धर्म वक्ष्यधन, वारककांक्षा वक्ष्यधनकी इच्छा, निम्न कन्या काय करेकी इच्छा और प्राप्त ये सेवा स्वयं व र्णों में गुण मनुष्यमें रहेंगे और वरेंगे तो ही वह मनुष्य केन्द्र और सुखिता बन सकता है । ये गुण निम्न महत्त्व हैं ; तथा इच्छा विचार अधिक करना चाहिये । (इच्छा) तेजस्विता इसमें स्त्रीर इच्छा मम बुद्धि और अन्तर्मात्रे तेजस्विता के अन्तर्मात्र होता है मनुष्य सब प्रकारसे तेजस्वी बने । (क्षिति) इच्छा अर्थात् अपने वैयक्तिक सामाजिक और राष्ट्रीय महत्त्वों इच्छा । इसी इच्छासे मनुष्य पुत्रप्राप्ति होता है और निम्न प्रेक्ष कर्त्त करता हुआ अपना और समाज का उन्नत करता है । (मूर्धा) विर अर्थात् महत्त्व । मनुष्य की योग्यता सब का इच्छा इससे महत्त्वकी उत्पत्ति विचार है । अर्थात् को उचित है कि वह अपनी महत्त्व की इच्छा रखे । (विचर्मा) निम्न धर्मोंसे युक्त बचना । अर्थात् उपर्युक्त और धर्मोंसे युक्त होनेसे मनुष्य आचार्य ही हो सकता है, सब उच्छी विचार योग्यता होती है यदि वह अन्तर्मात्र और निम्न केन्द्र कर्मसे इच्छा हो तो उसके वित्त है कि वह अपने अन्तर विचार धर्मोंकी इच्छा करे । अर्थात् मनुष्य को सर्वोत्तम होणे ऐसे सब धर्म उत्पन्न होने अपने अन्तर बसाने चाहिये । (उबक यमसा) ये वक्ष्यधन हैं ये वक्ष्यधन सब धर्मोंसे उत्पन्न हैं । सब प्रकारसे वह करने और वक्ष्यधन बल केन्द्र होनेसे ही मनुष्यकी योग्यता वह करती है । मनुष्य केन्द्र होना चाहिये । अर्थात् यमसा मनुष्य धर्म है । (यमसा) महत्त्व करनेका यमसाकी वारका राष्ट्रीय वारका सर्वोत्तम वारका करना मनुष्यका कर्त्तव्य है । इससे अर्षीणां केन्द्र का अर्थ आचार्य सेवा यमसा होना है । (यमसा) इच्छा की वारका ही अर्थ है । इसमें सब अधिक है । सर्व स्त्रीर राष्ट्रपुत्रको हुआ वस्तुसे पार करनेके क्षिति अपना धारण करने करना मनुष्यको योग्य है । मनुष्यको अपने अन्तर इच्छा इच्छा प्राप्त करना चाहिये ।

(विमोक्तः) विमोक्त करनेवाला मनुष्यको हुए करने वाका, मनुष्यको वक्ष्यधन वार करनेका मनुष्यको सर्वोत्तम सेवा योग्यता को सेवा होना यही सबसे प्रेक्ष कर्त्तव्य योग्य है । यही योग्यता परिष्कार यमसा की रक्षा इच्छासे विमोक्त और धर्म की स्थापना करनेका अर्थ है । (अर्षीणां)

[illegible]

ये बाह्य जन्म मनुष्यके विषय कर्तव्य बता रहे हैं। मनुष्य के कर्तव्य करें। ये कर्तव्य मनुष्यके क्वालिटी का ही हैं। इन कर्तव्योंके विषयमें मनुष्य कदापि विमुक्त न हो। हम यद्यपि भीरु हवेंगे तो भी हम हीन कर्तव्योंके जो प्रत्यक्ष अनुभव होते हैं वेही भय और उत्तर होते हैं। वहाँ कई विवेक मनुष्य कहेंगे कि हम विवेक हैं हम हम प्रत्यक्ष हीनता का अनुभव नहीं कर सकते हवेंगे किन्तु अन्तर्गत स्वभाव के कारण वे वह बात इसी प्रकार मर्म स्पर्श करते हैं—

नाम्ना दृष्टवतिः शुभकः ह्यः । (मं ३।५)

विश्वमन्त्रः सन्तुष्टः अभिम् । (म ३।३)

मर्त्येणु जन्मः सुखः । (म. ३.१)

“ मा मा ज्ञानमुत्तम है मनुष्याके हृदये विद्या कहलाये
मनुष्योंके अन्तर मन कहलाया है अपने विवेक समर्थ वह
हृदय है जो ज्ञान हुआ समीर है । मरण समर्थ है जो अपने वह
अनार है और समस्त विश्वे पुन है । ” व अपने ज्ञानार्थके गुण-
वर्ण है वह ज्ञानकर विचार है और मरणसे इस गुणार्थ काणा-
रुध करे । इस ज्ञानार्थ मनुष्यकी निर्भरता हृद होयी और वह
एकैक गुणार्थ अपने अन्तर मरणसे समर्थ होया । इस तरह
ज्ञानार्थ वह प्राप्त होये-

बलवत्तारं हृदय । कवी पद्मपुत्रिः । (मं० ३।६)

[illegible]

इसको गिहर करता है और महात्मा स्वर्गमं चरित करता है ।
ऐसी अवस्थामें सब देव उनके राजा होते हैं—

एवं वायु धूमिः शयः सरस्वती पात्र ।

(म ४४)

६ पूर्व, वायु अग्नि नम और सरस्वती वरधो रक्षा करत है ।
पूर्व मे प्रस्थानमें वायु प्राणके स्थानमें अग्नि वाणीके स्थानमें
नम हिरण्यवाणमें सरस्वती बुद्धिस्थानमें रहकर उषध हरण
प्रकारको सहायता दैत है और वरधो अन्तर्नि निष्पन्न सन्तितो
पवित्र करतै है । आत्मसन्तितो सुख सुप्रपको इस तरह सब इन
सहायक होते है । यह विषय इसके पूर्व भी आशुष्य है और
वेदमें यह बारबार कहा गया है । इसलिये जो मनुष्य आत्म
ज्ञान प्राप्त करता है और अपना जीवन बहुरूप बनाना है उसको
सब देवताओंकी सहायता होती है वह विधास पाठ ६ मनमें
धारण करें । ऐसा मनुष्य निम्न होकर स्वयम्भार करता है
और इसलिये वह मनुष्य सबका सेवा करने योग्य होता है ।
यह कहल्य है कि—

प्राणः सां सा हाशीत् । अपत्यः अपहाय सा परमात्

(५ वाँ)

येरा प्राण और अन्न मुझे छोड़कर बहुर जाये। वह
देखा इच्छिमे करता है कि अपने अपना सब जीवन ईश्वर की
भक्ति और सेवाके लिये समर्पित किया जाता है वह अपने
जीवनसे आनन्द की सेवा करता चाहता है। अपना प्राण वह
ईश्वरके लिये ही समर्पित करता चाहता है। य व कार्य।
स्मरण भी नहीं है। वह जानता है कि—

मित्रावरुणौ मे प्राण्यपारौ । शङ्खरीः भापाः स्वस्ति ।

(ਸੰ ੪/੩)

‘अपने प्राण और अत्मान से अब प्रसन्न मित्र और वरद
देवता हैं और कभी अन्धराता सब प्राणार्थ में। कल्याण
करता है।’ इस तरह वह देवता है और अनुभव करता है
कि अन्धरा रात है और कल्प देवतामय हुआ है। इस सब
वह कुछ कल्पनाओं पर्यन्त बुर होता है यह सबका देवताका स्वरूप
बताता है वह लक्ष्मी मूर्ति प्रकट करने करता है अब तो मैं
बनने करने के लिये और प्रकाश नहीं होते क्योंकि वह विघटन
नहीं होता है। इस सब वह अनुभव करता है कि—

अभिः म र्थे । (मं ३५)

‘अग्नि अपने में सब धारण करता है ।’ अथर्व वेद जन्मान्तर प्राप्ति के कारण करते हैं । इसका अर्थमा प्रत्यक्ष ईश्वरीय गुणों के प्रभावशाली हुआ होता है । ऐसे महारमाधी प्रथम है, वही प्रभावशाली भेदा होकरका है और वही अनेककाल कर जेमें धर्म होता है और वही मनुष्य कालको अपना धर्म बना, करता है । मनुष्यमें ऐसे उत्पन्न होते हैं और जनतामें प्रकाश धर्म करते हैं और धर्ममें पढ़कर सबकेबाकीको ब्रह्मविभूति का मार्ग बताते हैं ।

स्वप्न ।

अग्नि पंचम और वह इस को पञ्चवस्तुओंमें स्वप्न का विभव कहा है । इस सूक्तमें कुछ स्वप्न के भी कारण दिये हैं वे ये हैं—
प्राज्ञा विवर्धताः जगन्मताः मिर्भूताः वराभूताः
देवतामीनां पुत्राः स्वप्नः । (सं ५११८)

रोम धुरवत्ता वारिषा दुर्गति परामर्श और ईश्वरीय इनके अर्थ कुछ स्वप्न होते हैं । वे कुछ स्वप्न माना मनुष्य के होते हैं । इसविषे कुछ स्वप्न होते ही मनुष्यको ब्रह्म है कि अपने अन्तर को रोमवीज पुत्र हो उनकी वृद्ध करने का धन करें । कुछ स्वप्न के का कारण कहा दिये हैं वचन भी जोकाया अपि क विचार नहीं करना चाहिये । (प्रादी) भवान्क राग का छरीमें जानेपर सबका छरीको छोड़ते नहीं और कुछ देते देते अन्तमें प्राण हार कर मरते हैं । ऐसे रोग छरीमें जानेपर बारबार कुछ स्वप्न होते हैं अतः यदि इन रोगों पर कुछ स्वप्न होते ही तो उनकी वृद्ध करने के निमित्त स्वाहा रा रोगियोंको दूर करना चाहिये । छरी मित्रों और शरीर का भाव चाहिये । इस धर्म के विषे इसी कारणमें स्वप्नस्वप्नमें जगन्निमित्त का उपाय बताया है । (निष्कृति) जगत्तः सर्वं दे उच्यते अन्तर्य धर्मवत् और धर्मवत् । इसके विषय धर्म निर्मल है । अथर्वतः भवान्का, धीमा और निर्वि-
मलाय भी कुछ स्वप्न करते हैं । इनकी दूर करने के विषे जो आवश्यक उपाय हो उनकी धर्मवत् बना चाहिये । (अमृति) ऐश्वर्य हीन होय और (निर्भूति) महाबलमें पढ़ना तथा (वराभूति) परामर्श दाता, परामर्श वराभूति परवत् होता इन कारणों से कुछ स्वप्न करते हैं । इन कारणों से दूर करने के उपाय बहुत उपाय हैं प्रत्यक्ष विषे निमित्त उपाय होते हैं । अतः उच्यते अथर्ववत् योग्य रीतसे करना चाहिये । मनुष्य उपाय रवानेन वसे स्थायीता प्राप्त करता है । (देवतामी)

अग्नि छरीमें वेद नाम ईश्वरीय है उनकी अनेकता विविध है । इनकी मनुष्यविभूति भी कुछ स्वप्न करते हैं । इस कारण अन्तर्मात्रिका अपने ईश्वरीय मित्रों मित्रों का स्वप्न स्वप्न अन्तर्मात्रिका है । अर्थात् इस तरह अपने अन्तर में अपने राष्ट्रों को जो कुछ स्वप्न के कारण उपाय हो, उनकी दूर करना मनुष्यीय करीब है ।

मनुष्य की परीक्षा स्वप्न में होती है मनुष्य को जैसे स्वप्न में है, इसपर वह स्वप्न है या रोमी है अर्थात् है या उपाय है छद्म विचारका है या बहुत विचारका है इसका विभव होता है । मनुष्य को ऐसे स्वप्न का कारण है — कि मैं ईश्वर बनकर कर रहा हूँ, अथर्वतः मैं अग्नि के वारिषा पुत्र रहा हूँ, उत्पन्नों का स्वप्न होता है । ऐसे स्वप्न स्वप्न अपने को अन्तर्मात्रिका स्वप्न हो मनुष्य को वचन चाहिये कि वचन छरी कर है । अन्तर्मात्रिका स्वप्न अपने को तो स्वात्ममें कुछ व कुछ विभव है, इस धर्म कर वचन सुधारका कल करना चाहिये । अतः स्वप्न है वस्तुतः स्वप्नस्वप्न अथर्वतः स्वप्न अथर्वतः ।

(सं ५११)

“अथ स्वप्नस्वप्न है अथ होता है वह स्वप्नस्वप्न अथ स्वप्न दूर होते । वह स्वप्न किसी दूरी स्वप्नस्वप्न अपने स्वप्न पात्र व रहे । इस प्रकार अपने स्वप्न मित्रों का स्वप्न करने पर वह मित्रों मनुष्य का स्वप्न करते हैं कि—

अथ अथर्वतः, अथ अथर्वतः, वरं भवान्का मनुष्य

(सं ५११)

अथ स्वप्नस्वप्न प्रत्यक्ष विषय अथर्वतः स्वप्नस्वप्न अथ वह प्राप्त किया है क्योंकि इस विषय हो चुके हैं । विषय होनेसे ही वचन प्राप्त प्राप्त हो करता और विषय होता है । विषय प्राप्त करनेसे वह वचन है । अपने को उच्यते प्राप्त होनेका भाव होता है वह देवता स्वप्नस्वप्न है । स्वप्न पढ़ी अथर्वतः वचन रहते हैं, अतः पढ़कों वह स्वप्न स्वप्न चाहिये कि वचन अथर्वतः मनुष्य विषय धर्मवत् को उच्यते प्राप्त होती है वही स्वप्न का भी चाहिये और भी विषयवत् हीनी ।

अग्नि स्वप्नस्वप्न है वचन दूर करना अथर्वतः स्वप्नस्वप्न विषय कहा है । वह स्वप्न स्वप्न अपने कारण उच्यते अपि वचन करनी वही आवश्यकता नहीं है । वह वचन व वचनस्वप्नस्वप्न



ॐ

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य ।

सप्तदशं काण्डम् ।

संस्कृत

पं० भीषाद दामोदर सातवळकर,

साहिबदासरानि, बराबाई गोकुळदास

मध्यम वाराणसीमण्डल भाग्यदाभम विद्यापाठशाला (मि. ए. ए. ए.)

सूचीय पार

संस्कृत १००० शब्द १८३१ मम १९ ०



लोकप्रिय !

विपासहिं सईमानं सासङ्गानं सर्हिपांसम् ।
 सईमानं सङ्गोजितं स्वर्जितं गोविर्तं सचनान्वितम् ॥
 ईदृश्यं नाम हृद्वर्त्तं प्रियः प्रेमानां भूवासम् ॥

(अथर्ववेद १०।११)

५ कपुड्य दमन करियेक कपुडे किये लच्छा, कपुड्य बारवार बाध करियेक, दुईया पछाड्य करियेकले वम बडियेकले टेभरी, ईदियेकली धर्मीकी कीठियेकले, प्रहसनीय प्रमुदी में प्रहस्य कराई हूँ । कछे ये प्रभाववाकिये विव होई ।

प्रमुक तथा प्रकाशक— प्रसन्न भीपाइ सातपळेकर, B. A.
 स्वाध्यायकाल मारतमुद्रणालय किता पाटली जि० खुरत



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

सप्तदश काण्ड ।

इन सतरहवें काण्डकी आदिवा देवता है और इस एक ही देवताक सब मंत्र इसमें हैं । इस काण्डमें कुल १ मंत्र है । अर्थात् १ मंत्रोंके एक सूक्तका ही यह काण्ड है । इस काण्डके तीन विभाग हैं । १ + १ + १० मिलकर तीन विभागोंमें १० मंत्र बाँट गये हैं । पाँचवें विभाग दक्षविभाग है व कोहू अथर्वसिने अथवा किन्ही अन्य आरपते नहीं गये हैं । जो दक्षवि विभाग होते हैं वे इस मंत्रोंके होते हैं और उनके साथ अथवा कोई सबध नहीं होता है ।

इसके अतिरिक्त इस काण्डके ५ विभाग भी किए जाते हैं । १—५; १—१५; १ — १३; १४—१९; २०—३० इस प्रकार मंत्र इन ५, ५ विभागोंमें बाँट जाते हैं । आठवें दो विभाग करवा विभक्तता अनुष्टुप् और विष्टुप् छन्द प्रयोग है । अन्य विभाग विषयकी और मंत्रोंकी समावगताके अनुसार माने गये हैं वह वाच पाठक मंत्रोंमें दक्षका समाव गये हैं । इसमें है इस विषयमें अधिक विचिन्नेकी कोई आवश्यकता नहीं है । अब इस काण्डके अतिरिक्तता और छन्द गये हैं—

सूक्त	मन्त्रसंख्या	मन्त्र	देवता	छन्द
१	३	मरुता	आदिवा	१ मन्त्रों; १४ अथर्वना; १५ अथर्वना ३ ३५ अथर्वना; ४ ११ १४ अथर्वना; १५ अथर्वना मन्त्रों; १ — १३ १४ १४—१५ १४ अथर्वना १ अथर्वना पाठ; १३ अथर्वना १३ अथर्वना १४ १५ अथर्वना मन्त्रों; १ अथर्वना १४ अथर्वना १४ प्रतिमन्त्रों; १४ अथर्वना मन्त्रों; १—५ अथर्वना; १५—१३ १५ १४ १५, १ अथर्वना; १ ३१ ११ अथर्वना अथर्वना अथर्वना; १५ अथर्वना १३ अथर्वना १५ अथर्वना; १ ३ अथर्वना; १४—१५ अथर्वना

१४ अथर्वना देवता कीज मन्त्रोंके एक ही सूक्तका होते हैं और इसमें वाचा एक ही विषय होनेके कारण कि १४ मन्त्रोंमें अथर्वना मन्त्रोंके—





अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

सप्तदश काण्डम्

अपने अभ्युदयके लिये प्रार्थना ।

(१)

विषासहि सईमान सासङ्गान सहीपांसम् । सईमान सङ्गोजितं स्वर्जितं गोर्जितं सधनाजितम् ।

ईदं नाम ह इन्द्रमारुप्मान् भूपासम् ॥१॥

विषासहि सईमान सासङ्गानं सहीपांसम् । सईमान सङ्गोजितं स्वर्जितं गोर्जितं सधनाजितम् ।

ईदं नाम ह इन्द्रं प्रियो वृषानां भूपासम् ॥२॥

विषासहि सईमान सासङ्गान सहीपांसम् । सईमान सङ्गोजितं स्वर्जितं गोर्जितं सधनाजितम् ।

ईदं नाम ह इन्द्रं प्रियं प्रजानां भूपासम् ॥३॥

अर्थ—(विषासहि) अर्जित ययर्थ (सईमान) अर्जित ययमान (सासङ्गान) जिस जिसरी (सहीपांसं) अनुषा
इशानेके (सईमानं) महाकवि (सङ्गोजित) बलके शिथिल करनेवाला (स्वर्जित) अपने काम में जोतनेवाला
(गोर्जित) भूमि इतनी और यौथोका औतनवाले (सधनाजित) पनके जीतकर प्राप्त करवाला । इदं
नाम इन्द्रं प्रसन्नकीय बलवाले प्रयुक्त हैं (ह) बलवा करता हूँ, जिसके हैं (इन्द्रमारुप्मान् भूपास) शीर्षा
॥ १ ॥ (वृषानां प्रियो भूपास) मैं देवीका प्रिय वर्तु ॥ २ ॥ (प्रजानां प्रिय) प्रजापति प्रिय
रोम् ॥ ३ ॥

स्वामिन्नासि विश्वजित् सर्वविधं पुण्ड्रतस्त्वमिन्द्र । त्वमिन्द्रेभ सुहृन् स्तोममेरयस्व स नो मृद
सुमत्तौ तं स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्व नः पूणीहि पृष्ठमिर्विश्वरूपैः सुधायी
मा धेहि परमे व्योमन् ॥११॥

अदंभा द्विवि पृथिव्यामुतासि न तं आपुर्महिमानमन्तरिक्षे । अदंभेन ब्रह्मणा वायूपान स
त्व न इन्द्र द्विवि पृष्ठमं यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्व नः पूणीहि पृष्ठमिर्वि
श्वरूपैः सुधायी मा धेहि परमे व्योमन् ॥१२॥

या तं इन्द्र पुनरप्सु या पृथिव्यां यान्तरक्षौ या तं इन्द्र पर्वमाने स्वावर्दि । यवेन्द्र तवा
न्तरिक्ष व्यापिष तया न इन्द्र तन्वाभुक्षमं यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्व नः
पूणीहि पृष्ठमिर्विश्वरूपैः सुधायी मा धेहि परमे व्योमन् ॥१३॥

स्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्र नि पेंदुर्गर्भयो नार्चमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्या
णि । त्व नः पूणीहि-पृष्ठमिर्विश्वरूपैः सुधायी मा धेहि परमे व्योमन् ॥१४॥

त्वं तुतं स्व पर्येषुस्त्वं सहस्रभार विद्वयं स्वर्बिद् तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्व नः
पूणीहि पृष्ठमिर्विश्वरूपैः सुधायी मा धेहि परमे व्योमन् ॥१५॥

त्वं रक्षसे अदिद्युमर्तस्त्वह्नोषिया नमसी वि मासि । त्वमिमा विश्वा मुषनानुं विष्टस
ऋतस्य पन्थामन्त्रेपि विद्वास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्व नः पूणीहि पृष्ठमिर्विश्वरूपैः
सुधायी मा धेहि परमे व्योमन् ॥१६॥

[१] हे इन्द्र ! तू (विश्वजित्, सर्वविद्) अम्बु केतु और सर्वज्ञ ह और हे इन्द्र ! तू (पुण्ड्रतः) बहुत प्रसन्नित है ।
हे इन्द्र ! (त्वं ह्यमं सुहृन् स्तोम ऐरयस्व) तू इस वचन प्रार्थनावाले स्तोत्रकी प्रेरित कर । (स वा तव इत्) । ॥ ११ ॥ हे
इन्द्र ! तू (द्विवि इव पृथिव्या अदंभाः क्वचि) युक्तीकर्म और इस दुर्धर न नवा हुआ ह । (बल्लरिक्षे ते मजिमार्च ब आगु)
मन्तरिक्षमें तेरी मजिमार्च कोई बड़ी प्राप्त हो सके । (अदंभेन ब्रह्मणा वायूपान क्षन्) व दंभेवाके ज्ञानसे बहता हुआ
(द्विवि वा त्वं कर्म यच्छ) युक्तीकर्म तू हमें छत्र प्रदान कर । (तव इत्) । ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! (या वे अप्सु वन्)
जो वेप अंश लक्ष्मि है (वा पृथिव्या वा जग्री बल्लर) जो पृथ्वीपर और जो अग्निसे अग्नर है (हे इन्द्र ! वा ते यव-
मासे स्वाः-मिदि) और जो तेरा अंश पमिष करनेवाके प्रकाशपूर्ण युक्तीकर्म है हे इन्द्र ! (यथा तन्वा बल्लरिक्ष व्यापिष)
मिष तन्वे बल्लरिक्ष व्यापते हो (तवा तन्वा वा कर्म यच्छ) वच तन्वे इस वचको छत्र प्रदान कर । (तव इत् ।)
॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! (त्वां ब्रह्मणा वर्धयन्तः) तेरी संशोधि स्तुति करत हुए (माषम्याः ब्रह्मणा क्षयं निदधुः) प्रार्थना कर
वेवाक क्षयिष्य वच वामक मायमे बैठते हैं (तव इत् ।) ॥ १४ ॥ हे व्यापक एव ! (रव सुर्तं च जितं) तू तीनों स्वा
मोंमें प्रसन्न (सहस्रभार विद्वयं स्वर्बिद् उर्ध्वं) सहस्रभारामेंथि पुन ज्ञानमय प्रकाशपूर्ण सौतर्षा (पर्येषि) व्यापता है । (तव
इत् ।) ॥ १५ ॥

हे देव ! [तव वचसः अन्तेषा रक्षसे] तू वारी दिशाओं की रक्षा करता है । अपने [जोषिया नमसां विश्वासि]
तेमके आकाशको प्रकटीत करता है । [त्वं ह्यमा मुषना बल्लरिक्षे] तू इस वच मुषनोंके बल्लरिक्ष होकर उड़ता है और
[विद्वां भवत्स ब्रह्मा अन्वयि] जानता हुआ ऊर्ध्व मार्गका अनुसरण करता है । [तव इत् ।] ॥ १६ ॥

पुत्राभिः पराङ् सपत्येकपावार्थस्तिमेपि सुदिने मापमानस्तथेव विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पूणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुचार्या मा धेहि परमं ज्यो मन् ॥१७॥

त्वमिन्द्रस्त्र महेन्द्रस्त्व लोकस्त्व प्रजापतिः । तुभ्यं यज्ञो वि सायते तुभ्यं जुहति जुहस्त्व
यद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पूणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुचार्या मा धेहि स्व
ज्यो मन् ॥१८॥

असति सत् प्रतिष्ठितं सति मृत प्रतिष्ठितम् । मृतं ह मम्य आहितं मरुतं मृते प्रतिष्ठितं
तथैव विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पूणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुचार्या मा धेहि स्व
ज्यो मन् ॥१९॥

शुक्रोऽसि ब्राह्मोऽसि । स यथा त्वं भ्राजता ब्राह्मोऽस्येवाह भ्राजता भ्राज्यासम् ॥ २० ॥

(२)

कार्षासि रोचाऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाह पशुभिश्च ब्राह्मणवर्षसेनं च
रुचिपीय ॥२१॥

उद्यते नम उदायत नम उदिताय नमः । विराज नमः स्वराजे नमः सुभ्राजे नमः ॥२२॥

अस्तंयत नमोऽस्तमेभ्यते नमोऽस्तमिताय नमः । विराज नमः स्वराजे नमः सुभ्राज नमः ॥२३॥

(पञ्चमि पराङ सपति) नृ अपयी करो कर्त्तारः प तपता हे और (एकपा अवार्थ) एकते उरे तपता हे । और
(सुदिने असति वचनान् पति) उद्यत दिनमे अग्रस्तताः स ह्यद्यता हुआ जगता हे । (तव इत् ।) ॥ १७ ॥
हे देव (त्वं इन्द्र) तू इन्द्र हे (त्वं महेन्द्रः) तू महा इन्द्र हे (तव लोकः) तू लोक—मम्यपत्यं हे (त्वं प्रजापति)
तू प्रजापति नमः हे (यज्ञः तुभ्यं विद्यायते) यज्ञ तेरे किये के भग्न जाता हे बार (जुहति तुभ्यं जुहति) हवन करनेवाले तेरे
किये आहुतिगो वने हे । (तव इत् ।) ॥ १८ ॥ (जयति सत् प्रतिष्ठितं) जयतू मे अवार्थ प्रास्तिक विषये सत् अवार्थ
अत्रा रहा ह (सति मृतं प्रतिष्ठितं) सत् मे अवार्थ आत्मानं उत्पन्न हुआ जयतू रहा हे, (मृतं ह मम्य आहितं) मृत
हानिवालेन अग्रत हे (मरुतं मृत प्रतिष्ठितं) रोचोवत्ता मृतम प्रतिष्ठित हुआ हे (तव इत् ।) ॥ १९ ॥ (शुक्रो अस्मि)
तू तजारी हे (ब्राह्मः अस्मि) तू काष्ठमय हे (तव रथं) वर तू (यथा भ्राजता ब्राह्मो अस्ति) जेवा तेजवरी हे (एव नम
भ्राजता भ्राज्यासम्) वन ही में तजते प्रकाशत होऊ ॥२०॥

(रुचि अस्मि) तू प्रकाशमान हे (रोचाः अस्ति) तू रक्षितमान हे (सः त्वं यथा रुच्या रोचा अस्ति) वर तू उद्य
तेजव तजरा ह (वर नम पशुभिश्च ब्राह्मणवर्षसेनं च रुचिपीय) तेनेही मैं पशुओं और कर्मके तजते प्रकाशित होऊँ ॥ २१ ॥
(उद्यते नमः) उदित हानेकका नमस्कार [उद्यते नमः] ऊपर अनेकानेक किये नमस्कार [उदिताय नमः] उदरके
प्रता दुरता नमस्कार [विराज नमः] विराज प्रकाशमानके नमस्कार [स्वराज नमः] अपने तजते जयकरने के नमस्कार,
[सुभ्राज नमः] उद्यत प्रकाशमानके नमस्कार ॥ २२ ॥ [अस्तंयते नमः] अस्त हानेकके नमस्कार [अस्तं पश्यते नमः]
अस्तका जनमानस नमस्कार [अस्तमिताय नमः] अस्त हुएकी नमस्कार [विराजि सद्यो वराज नमः] विराज
तजारी उद्यत नमः प्रकाश और अस्त तजते प्रकाशमानके नमस्कार हो ॥ २३ ॥

उदेगाव्यमाहितो विद्येन संपसा सह । सपस्तान् मर्षं रचयन् मा चाह द्विपुत्रे रघुं तवेद् विष्णोः
बहुधा वीर्याणि । स्व नः पूर्णाहि पञ्चभिर्विष्वक्पैः सुधायां मा घेहि परमेष्ठ्यो मन् ॥ २४ ॥

आदित्य नावमारुह्यः श्रुतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्स्यपीपरो रात्रिं स्रुतार्तिं पारय ॥ २५ ॥

सर्व नावमारुह्यः श्रुतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्स्यपीपरोऽहः स्रुतार्तिं पारय ॥ २६ ॥

प्रवापेतेराष्टतो मर्षणा वर्षमाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्षेसा च । अरवतिः कृतवीर्यो विहाया
सहस्रायुः सुकृतधरेयम् ॥ २७ ॥

परिपूतो मर्षणा वर्षमाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्षेसा च । मा मा प्रापभिर्बधो दैव्या या मा
मातुपीरनष्टा वचाय ॥ २८ ॥

कृतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्मतेन गुप्तो मर्षेन चाहम् । मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्त
दैवेऽहं सल्लिखेन वाचः ॥ २९ ॥

अग्निमी गोप्ता परि पातु विश्वं उधन्तस्त्वयीं नुदां मृत्युपाधान् । व्युच्छन्तीरुपसः पर्वता ध्रुवाः
सहस्रं प्राणा मय्या येनन्ताम् ॥ ३० ॥

इति सप्तवक्त्र काण्ड समाप्तम्

(अथ आदिताः विद्येन तपसाह्वय उदयम्) वह सुव संपूर्ण तेजके साध उदित है । (मर्षं सपस्तान् रचयन्) मेरे क्रिये देरे सनुबोको रच करता है (अहं च द्विपुत्रे मा रच) परंतु मैं कभी बचने न सकूँ । (तव इदं विष्णो बहुधा वीर्याणि) हे व्यापक देव ! तेरे ही ने सब पटकम हैं । (१४ वः विष्वक्पैः पञ्चभिः पूर्णाहि) एह हम सबको अनन्त कृतोबधि पञ्चभिः परिपूर्ण कर । और (परमेष्ठ्यो मन् सुधायां मा घेहि) परम आकाशमें विद्यमान अमृत में कुछ घाव कर ॥ २४ ॥ हे आदिता ! (स्वस्तये श्रुतारित्रां माहं आरुह्यः) हमारे कल्याण के क्रिये तेकडों अरोंवाली नौछपर आरुह हो । (मा अहः कति कपीरः) मुझे दिवके समय बार कर और (रात्रिं स्रुतां कतिपारय) रात्रिके समय भी साथ रहकर पार पढ़वा ॥ २५ ॥ हे सर्व ! एहमारे (स्वस्तये) कल्याणके क्रिये नौछपर वह और हमे दिन आर रात्रिके समय पार कर ॥ २६ ॥ (अहं मर्षणयेः मर्षणा वचना आबुता) मैं प्रजापतिके आकण्य कण्यके आहूत होकर (कश्यपस्य ज्योतिषा वर्षेसा च) और सर्ववर्षके देवके तेज आर ककडे कुछ होकर (अरवतिः कृतवीर्यः) ब्रह्मावस्था तक वीर्यवान् हुआ (विहायाः सहस्रायुः) विविध कर्मके कुछ सहस्रकु- पूर्णायु- होकर (कश्यपस्य ज्योतिषा वर्षेसा च) सर्ववर्षके देवके तेजके और बलके कुछ होकर (वाः दैवीः मृत्युपीः इव वा वचाय अवधुताः) ओ दिव्य आर मानवी वाच वचनेकने भेजे गये हो वे (मा मा मापत्) मुझे न प्राप्त हो उबके मेरा वच न होवे ॥ २८ ॥ (कृतेन गुप्तः) ककडे द्वारा रक्षित (सर्वैः ऋतुभिः च) सब ऋतुओं द्वारा रक्षित (भूतेन च मय्यय गुह्यं अहं) मूल और मणिपत्राद्वारा सुरक्षित हुआ मैं बड़ा विचक । (पाप्मा मा वत मृत्युः मा मा मापत्) वच अवस्था मृत्यु मुझे न प्राप्त हो । (अहं वाचः सल्लिखेन व्युच्छन्त्ये) मैं अपनी वाचोंके— अपने कर्मके पवित्र जीवनके अंदर धारण करता हूँ । वाणीकी पवित्रता पवित्र जीवनके कारण हूँ ॥ २९ ॥ [गोप्ता अग्निः विद्यताः मा परिपातु] रक्षक अग्नि सब ओरके मेरी रक्षा करे । [उधन्तः स्वः मृत्युपाधान् नुदां] उधर हानेवाला मृत पापुपाकोडों नुद करे । [व्युच्छन्तीः कपलाः] प्रकाशकुच कपार और [ध्रुवाः पर्वताः] शिखरपर्वता [सहस्रं प्राणाः] सब आ वतकों] वक्षों वक्षोंके प्राण मेरे अंदर तेकडे रहें ॥ ३० ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ इति सप्तवक्त्र काण्ड समाप्तम् ॥

सप्तदश काण्डका मनन ।

अपने अ-मुदबका विचार करनेवाके पाठक इस काण्डका मन्त्रन अधिक करें। विशेषतः पहिले प्रथम सर्गोक्त जो एक मंत्रगान है उसका ध्यान मनन करें। ये पाँच मन्त्र बतते हैं कि विश्वेश्वर पुरुषके अपने अन्दर कौनसे गुण प्राप्त करने चाहिये और बढाये चाहिये। उक्तवि चाहनेवाके मनुष्य अपनी इच्छा इस प्रकार रखें—

छोकप्रिय धनना ।

[यह] देवता प्रजापति समस्तामां पशूनां मित्राः भूवर्षा, आमुष्मान् मूषसम् ॥ [मं १-५]

मैं देवीका प्रजापतिका समान बोधताकाछे छोकोंका और पशुओंका मित्र होऊँ, और बीर्वातु बढूँ। सबसे मुख्य बात बीर्वातु बढनेकी है क्योंकि आमु आरोग्य और बल रहा ठोड़ी सब कुछ बर्ग कर्म होना संभव है। अतः उक्तविष्टीक मनुष्योंके उचित है कि, ये बर्गद्वारा आचरण करके अपनी आमु शीघ्र कर बीरिय रहनेका मन्त्र करें और अपने अन्दर बल स्थिर रखें।

इतना होनेके पश्चात् देव प्रजा समस्तलोक्य और पशु इनको मित्र होनेकी महत्ताकाछा धारण करना चाहिये और इसी सिद्धिके लिये मनुष्योंको प्रवृत्त करना चाहिये।

देव का अर्थ देवता देवता है वैष्णवी मूर्त्ये कत्रदेव पत्रदेव और कर्मदेव ये चार प्रकारके आर्तुर्गणके पद पुरुष भी वह कह्यते हैं। इनके मन्त्रमें इस मनुष्यके मित्रवत् प्रेम रहे ये पद जोन इस पुरुषके विषयमें कहें कि वह प्रमाना मनुष्य वृत्त है उसका मित्र होना चाहिये। प्रजापति इस मनुष्यपर प्रेम करें प्रजापतिजो वह प्रेमपात्र बने सब समता इसके ऊपर प्रीति करे अर्थात् वह लोकप्रिय बने आमान्य बने। समस्त लोकमें वह मित्र हो आर्तुर्गण का प्रिय प्रेम निष्ठेय ज्ञानीपर होता है बीरोंका प्रेम धर्मपर बीर पर होता है समानोंका प्रेममात्रन होयके लिये उत्तम विवेक उत्कृष्ट गुण हान चाहिये। इस गुणोंका संपादन वह मनुष्य करे और समानोंका प्रेमभाजन बने। पशुओंका भी प्रेम

संपादन करे। जब वह मनुष्य पशुओंकी पालना करे और समपर प्रेम करेगा तब पशु स्वर्ग इष्टपर प्रेम करने लगे। वहाँ इसकी मृत्युधर्ममें विवेकता होना चाहिये। इस प्रियेन से पाठक जान सकते हैं कि, देव प्रजा समस्तलोक्य और पशुओंका मित्र बननेका आशय क्या है इस विषयमें निम्न यह है कि मनुष्य जिनका प्रेम संपादन करना चाहता है उसपर स्वर्ग प्रेम करे। इसका प्रेम ऊपर छेने क्या, छेने बिःकन्देह ये भी इसपर प्रेम करने छन चाहिये।

वीरके गुण

इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें यह कर्तव्यद्वारा दीर्घिके पुन लिये है। उक्तविष्टीक मनुष्योंके ये गुण अपने अन्दर बढने चाहिये और बढाये चाहिये। यदि पाठक इस पद कर्तव्य मनन करेंगे तो उनके बीरियाके बढ घुम पुन्यका फल बन सकता है—

(१) ये—विद = वी' कर्मका अर्थ इति और मूर्ति है। ये अर्थ लेकर वहाँ विचार करना चाहिये पहिलका अर्थ है (गो—विद) इतिवैकी बीर्यलक्षण है अपनी इष्टिर्गोका संभ्रम करनेका, मनोविमल करनेका, अपना आत्मसंभ्रम करनेका। इन उक्तविष्टि मार्ग का लक्षण—विजय के होता है। आत्मविजय सब अन्य विजयोंके ऊपर है तथापि जो मनुष्य आत्मविजयका अन्तर करता है और शिष्ट बनता है वह मन्त्र विजय कह्य ही के प्राप्त कर सकता है। मूर्तिका विजय इस सम्प्रदाय द्वारा कर्त है। बीरताके अपनी मातृमूर्तिकी विजयी करना वह इच्छा यत्न है। मुख्यतया वहाँ आत्मविजय मुख्य है क्योंकि इसी विजय आत्मविजय के प्रारंभ होते हैं।

(२) सा—विद = (स्व-१—विद) कर्मका प्रत्यक्षी प्राप्त करना अपने देवका विजय करना, कर्म-समापन विजय करना अपने आध्यात्मिक कर्मका विजय होयें योग्य कर्त करना। वहाँ एक बड़ी माती बीरता है।

(१) धन्यता—**विद्** = उद्यम करनेवाले की तरह प्राप्त करना यह भी एक बड़ी भारी वीरता है। जिसके साथ होनेसे मनुष्य अपने आपको धन्य कह सकता है उसको धन कहा जाता है। अतः धन सचमुचे केवल अपने आगे पड़े उपलब्ध सुख भोग है। योंही भी धन है, राजन किंवा स्वराज्य भी धन है वक्त भी धन है मित्र भी धन है प्रतिष्ठा धन है पराजय धन है। इस परिधि के अनेक धन हैं। इनकी प्रति करना मनुष्य का आभ्युदय करने है।

(४) परमन = अधिकतम तक तेज और जीवनसे युक्त और

(५) प्रहसन = जोरदार वक्त और हास्य युक्त होना।

ये दोनों शब्द एक ही मन्त्रमें प्रयुक्त हैं इसलिए वे मिश्रार्थक शब्द हैं। परस् परस्मैक कर्त्तृ वक्त है और इसके कर्त्तृ शक्ति निम्न तेज और जीवन ' हैं। इसमें से एक कर्त्तृ एकके और अन्य दूसरेके मान्यता वहां योग्य है। इस प्रकार कर्त्तृ करते हैं। शब्द युक्तिके लोके रहित और शब्दार्थक प्रतीत होते हैं। शब्दों के लोको वक्त मनुष्यको प्राप्त करना चाहिये। इस वक्तमें शब्दका वक्त भी अभ्युदय होता है।

[१] वहा—**विद्** = अपने बचने मनुष्य की वीरताका। मनुष्य अपने अन्दर तथा बाह्य अपने अन्दर देखा वक्त प्राप्त करे कि जिससे मनुष्य निम्न सहजही हो सके।

[७] वहीन—**मनुष्य** हमका किये भी वेनके आवासे वक्तव्य करता हुआ, उक्त वहा करिवाला। मनुष्य का मन हुआ था भी अपने स्वभावसे नीच व हठा हुआ निम्नके वक्त अपने स्वभावसे शिर रहनेवाला। मनुष्य के आभ्युदयके अधिकार करते मनुष्य पराजय करवाला।

[८] वाचदाय = मनुष्य के आभ्युदय एकके लोके वक्त अपने वारंवार शक्ति भी जो अपना स्वभाव को वक्त वही और निम्न के वक्त अपने स्वभावसे शिर रहता है और अपने स्वभावसे ही मनुष्य पराजय करता है और उक्तके वक्त को वा देता है।

[९] विवर्धन = जिसका आभ्युदय मनुष्य हुआ तो मनुष्य पराजय होकर मान्यता पराजय के निम्न आभ्युदय मनुष्य के अन्तर्गत होता है।

[१] ईश्वर मन्त्र इत्यादि = सर्ववर्ती वक्तव्य (ईश्वर) मनुष्यका पूर्व वक्त करनेवाला वीर।

उपास्यक गुण उपासकमें।

ये दस शब्द वहां इन्द्र देवताके वक्तव्य हैं। यह देवता मनुष्यकी उपासक है। उपासक देवताके गुण उपासकमें अपने अन्दर धारण करने चाहिये यह उपासकाका नियम है। इस नियमके अनुसार उपासना करनेवाले पाठक अपने अन्दर वे देवताके गुण वक्तव्य और अपनी उपासके योग्य आभ्युदय करें और धन प्रकारका अभ्युदय प्राप्त करें। पूर्वोक्त गुण अपने अन्दर बचने लगे तो मनुष्यकी अथवा राष्ट्रकी उन्नति निःसंदेह होती उपासकाके मन्त्र केवल करनेवाला है। मनुष्यकी उन्नति नहीं होती परंतु उनमें वर्तित उपासके गुणोंकी वारंवार ही मनुष्यकी उन्नति होने संभव है। जो मनुष्य अपनी मनुष्यकी वक्त इस प्रकारकी वैयक्तिक और सामूहिक उपासना करने हैं वेही अपना धन प्रकारका अभ्युदय सिद्ध करते हैं। इनकी विषयमें कहा है कि—

अभ्युदय।

उक्ति, उक्ति, वक्तव्य अभ्युदयि। (सं २)

उक्तव्य प्राप्त ही अभ्युदय प्राप्त करे तेनके साथ धन प्रकार अभ्युदय प्राप्त करे। ये मन्त्र वक्तव्य उपासक देव लोके वक्तव्यमें बने हैं उपासके उपासके गुण उपासकमें धारण करने होते हैं इस नियमके अनुसार मनुष्य पराजय पराजयका आदेश देनेवाले होते हैं। इसी तरह ये मन्त्र भी उपासकका अभ्युदयके लोके दे रहे हैं यह धन वक्तव्य पाठक म भूने। अभ्युदय किस लोके करने चाहिये इसके वाच्यसे वा सुच है—

विश्व मन्त्र इन्द्र। यह विश्व मा शम्। (सं १)

“विश्व मनुष्य मर वक्तव्य आवासे और भी वही मनुष्य वक्तव्य में मन्त्र। मनुष्य केवल प्रकारके हैं, और उक्तव्यको निम्न है। उन धन वक्तव्यमें वही एक नियम है कि धन मनुष्य पराजय करना और मनुष्य वही पराजय व होता। निम्न उक्त और अभ्युदय वक्तव्य वही वही वही वक्तव्यको प्राप्त होता।

पराक्रम।

वक्तव्य वीर्यवि। (सं १)

तेरे बहुत पराक्रम होने चाहिये। धन निम्नकी वक्तव्य है। विष्णु देव-व्यापक ईश्वर-का सर्वत्र निम्न वक्तव्य दे कि

विष्णुकाव्यप्रतिष्ठ होनेके साथ है। ये दोनों परस्पर अलग क्षमिसे
कहा जाता है कि एक दूसरेमें उलटा है। यही विषय दूसरे
सन्दर्भमें ऐसा कहा जा सकता है— 'क्षीरमें आत्मा और
अक्षयमें सरीर रहता है।' ईशोपनिषद् में भी इसी भावसे
निम्नलिखित मंत्र पाया है—

नस्तु सर्वानि भूतान्यात्मनेषानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं
ततो न विदुष्यस्ये ॥ वा. ब० ३०।६

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मैवैवानुभवति । सर्वभूतेषु
चात्माव सतो न विचिन्तिमति ॥ ईश० उ १।

काण्ड ४ ॥

तथा मन्त्रवत् ये—

आयुष्मन् सर्वमृतेषु भगवन्त्वमवाप्सितम् ।

अपत्यं चैव भूतानि भगवन्मति शान्तमि ॥

श्री माग १३/१०/४३

सबभूतः यः कश्चिद्भगवन्नाममात्रम् ।

भूतानि मयवत्तज्जम्बेव भाववतोत्तमः ।

શ્રી માગ રૂ.૧૫૭૫

इस सब स्थानोंमें वही शब्द है कि "आत्मन्—(वह) मम मूलमें [अद्यत्वे] है और सब मूल [अद्यत्वे] आत्मन्में है। वह जो आत्मन्ना है और स्वप्न को अनुभव करता है वह वही मम कहता है। वह भव पुत्र होता है, वही लोकमें रहते रहे हीकर परममिष्टिको प्राप्त होता है। इसमें पहिली पणिका सर्वम परमेश्वरकी कथितवस्तुका अनुभव आत्मन् है ऐसा अनुभव आ मम को समझना चाहिये कि उद्यति होवनी है और यदि केवल स्वप्नेष्ट ही परमेश्वर सर्वव्यापक होनेका धार्मिक कथन हुआ है तो समझना चाहिये कि अभी भवम यमम मिथ्या। यम अनुभव होम चाहिये ।

कमरे के मकान में दूसरी गलीवा बह जाती है कि (मूल मकान
मकान में मूल मकान में) मूल मकान में और मकान में मूल मकान में
इसका अनुमान देखने के लिये मनुष्य अपने मकान में प्रवेश करे।
मनुष्य का वर्तमान और मकान में उसके मूल मकान के मकान में होता
है और उसके मूल मकान के मकान का वह मकान मकान मकान मकान
मकान मकान होता है। मकान के लिये देखिये—यदि एक मनुष्य
प्रधान मकान में प्रवेश करता है तो वह मकान मकान मकान मकान
मकान मकान करता है, जो मकान मकान के लिये मकान मकान
और मकान मकान के लिये मकान मकान के लिये मकान मकान

महिम्नमें संक्षेपित है। इसी प्रकार राष्ट्रमें भी वही बात देखिये—
जिस राष्ट्रके मूल कालके क्षीयोंने उत्तम पुरुषार्थ किया हो उस
राष्ट्रका वर्तमान और भविष्यका भी भाग्यमें वृद्धि होगी
और जिस राष्ट्रके क्षीयोंने मूलकालमें पराजय प्राप्त किया हो,
उसका भविष्य काल क्षीयों कावशा, क्योंकि (मूल मध्ये
मरण मृते स्थिति) मूल भविष्यमें फलदा है और भविष्यका
उपम मूलमें होता है। देखिये वह वेदका उपदेश ऐसा स्वर्णिम
वैद्या ही राष्ट्रमें प्रकाश दिला सकता है। इस समय अनुमन
करता हुआ तथा अपने मूल भविष्य वतवाचक विचार
करता हुआ मनुज अपने भविष्य कालमें दुःख प्राप्त होनेके
भीत्र क्षयके कालमें अपने ही प्रधानसे न बो दये।
परंतु उसकी उक्ति है कि वह इस समय ऐसे क्षम
कर्म करें कि विपक्ष गुप्त फल उसकी भविष्य कालमें प्राप्त हो।
कावश ही हमारा स्थिति एवं अपने हैं। मूलकालके क्षीयों प्रायः
हृदय है और इस समय हम हैं। अपना भविष्यकाल बना रहे हैं।
इसी कारणसे वेदमें कहा है—

भूत भविष्य वतमान ।

पुस्तक पूर्णार्थं ग्रन्थं बहूतं पश्य भव्यम् ।

उत्तराखण्डस्येध्यायः । अ १ । ९ । ११

वा. पृष्ठ. ३ । ३ ।

पुण्यं परोक्षं सर्वं ब्रह्म तत्र भाष्यम् ।

इति मृत्युसंज्ञाः ॥ अथर्व १५।४।७

वर्तमान काकम में जो पुस्तक है वही उसके मूल और मूल्य का रूप है और वह अनुष्ठान का रचना है अर्थात् किसी पुस्तक का वर्तमान काकम उसके अभिप्राय की वीज और मूल का परिचय देता है। मनुष्य की लाक्षणिक अवस्था के पास हम एकदम है कि हमने अपना वाक्य देना व्यर्थ कि या और उभारे पण प्रकृत है कि प्रकृत मूल्य देना होय। अनुष्ठान के विषय में वही अवस्था है राष्ट्र के वर्तमान काकम की परिस्थिति में उसके मूलकाव्य पुस्तक या पुस्तकालय के परिचय की वीज है और वही वर्तमान काकम है वह जो करता है वह अपने पुस्तक की वह अपने अभिप्राय की अभिप्राय की वीज को देता है। क्योंकि प्रकृत पुस्तक मूलकाव्य परिचय और अभिप्राय काकम की वीज प्रकृत है। इस विचार के मी मनुष्य अपनी वीज को देता है। साथ है कि प्रकृत इस विधि के अपनी वीज को देता है और अपना वीज देता है वा अपने वीज के वीज

निश्चय करें और यदि अवनतिक्रम मार्ग होया, तो उससे तत्काल छोड़ देते और उचितके मार्गपर ही चला रहें । तथा मर्ममें वह महत्ताकांक्षा पारण करें कि—

आत्मवेत्त ।

आई भ्रातृया भ्रातृयासम् । (म १)

मैं अपने तेजसे तेजस्वी नूँया ।" दूसरेके तेजसे तेजस्वी बननेमें पराधीनता है । प्रत्येकको अपने तेजसे तेजस्वी बनना चाहिये । प्रत्येकको अपने सामर्थ्यसे रक्षा होनी चाहिये अपने ज्ञानसे प्रत्येकको विवेक करना चाहिये प्रत्येकको अपने धनका योग केन्द्र योग्य है, इसी प्रकार अस्मान्म विषयोंके धनधर्म ज्ञानना चाहिये । जिसकी रक्षा दूसरेके बलसे होती हो, जो स्वयं अपने ज्ञानसे विचार नहीं कर सकता, जिसके पास अपने योग्य करनेके आवश्यक पदार्थ नहीं हैं; उसकी पोषणीय अवस्था होती है, इसके विषयमें पाठक स्वयं विचार करके जान सकते हैं । अतः अपने प्रकाशसे प्रकाशमें उपदेश वहाँ इस संन्यास द्वारा दिया है पाठक इसका विचार करें और अपने सामर्थ्यसे समर्थ बनकर वहाँ बलस्वी कीर्तिमान और स्वयंसे अर्थात् सुखसुख और सुख समेतका जान करें । इस प्रकार और भी कहा है—

अह मन्त्रयधेनव दत्ता गोचा (भूया)कविनीवा (म २१)

"मैं अपने ज्ञानक प्रभावसे प्रभावित और अपने तेजसे तेजस्वी होकर प्रकाशित होऊँगा" । इस संन्यास भी वही भाव दुहराया है और ज्ञानकी आवश्यकता उचितके विषे अलंकार के वह बात वहाँ पुनः स्पष्ट की है ।

आगे उदयका प्रकाश होनेवाले प्रकाशित हामिशक्योंको समझाकर करनेको कहा है और या इस प्रकार प्रकाशित होकर अपना जीवनकर्म समाप्त करके अरुणको जलते हैं उनको भी समझाकर करनेको कहा है । वहाँ सर्वथा समुच्चर धनका कहा है । समुच्चर का आदर्श सूर्य है सूर्यके समान समुच्चर अपना अनुरूप प्राप्त कर सूर्यके समान इस जगत्तम प्रकाशित होने और प्रदीप्त रहता हुआ तथा धनको प्रकाशका मन वतनतम हुआ अन्तर्में इतकसा होकर अरुणको प्राप्त होने । इस प्रकार अरुण होता भी आरुणिक होता है । इस तरह धन समुच्चर सूर्यको अपना आरुण धन । और उससे वह लाभ प्राप्त करे । यह इस बातसे विचार कर आ सूर्यका अपना आदर्श जानकर वह ने अन्तर्गत उपदेश

मननके बाध मर्ममें स्थिर करें । इसके पक्ष एक महत्त्वपूर्ण मंत्रमात्र है वह प्रत्येक मनुष्यको जित स्मरणमें पारण करनीय है, वह अथ देखिये—

अपना वध ।

आई मन्त्रया वर्मणा ज्योतिषा वर्मणा न वातुया

कृत्यार्थः विहायाः करदृष्टिः वदमानुः कुक्कुटा चलेत् ।

(मं २०)

वह मन्त्रया वर्मणा ज्योतिषा वर्मणा न करिहा

करेन गुह भूतेन मन्त्रेन च गुहा (चलेन) ।

(मं २०-२१)

पाप्मा मा मा वापय, मन्त्रा मा मा वापय ।

आई वाचः अक्षिकेन अन्तर्ये । (मं २१)

मैं ज्ञान आत्मरक्षाका सामर्थ्य तेज और मनसे पुन होकर पराक्रम करता हुआ निमित्त पुनर्वाचक प्राप्त करता हुआ दीर्घ आत्मा प्राप्त करके, वशाकारके अन्तर्गत करेगा । मैं ज्ञान आत्मरक्षाका सामर्थ्य तेज और मनसे पुन होकर अन्तर्गत वरा सुप्रदीप्त होता हुआ, भूतवर्त्म वतमान काज में होवेवाले कर्मोंसे सुप्रदीप्त होता हुआ, वशाकारके अन्तर्गत करेगा । पाप से पाप न अपने पक्ष में धर्मिक न जाने मृत्युका भय मुझे न प्राप्त हो मैं अपने वाणीसे पुन जीवितसे पुन करता हूँ । "

इसमेंसे प्रत्येक वाक्य इतना स्पष्ट इतना तेजस्वी, इस बीचप्रद और इतना मार्मिक है कि उसका अधिक लक्ष्य करने करनेकी वहाँ आवश्यकता प्रतीय ही नहीं होती । यह इसीका पाठ वारंवार करें वाक्कार मन्त्र करें और अपने ज्ञानसे अन्तर वैदे के जोड़नी विचार स्थिर करें । इसी विचारोंको स्थिरवाले मनुष्य निजकी हान्य भी अनुरूप प्राप्त करेगा और अन्तर्में भय भी होगा । जो पाठक इस तरह इस काव्यका मन्त्र करिये वे अपनी उचितता वल्लभ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । इस मन्त्रके प्रत्येक मर्ममें पुन ज्ञान भरपूर भरा है । केवल वाक्य अर्थके प्राप्त करनेसे ही प्रत्येकको वह वही समझना चाहिये कि हमने मन्त्र काव्य अन्तर्गत विचार है मन्त्र काव्य तो अपने वचने धर्मिक धर्मिक काव्य विचारों के धाम वीरति देखकर मनन करनेसे ही अपने काव्यका है । आत्मा है कि इस महत्त्वपूर्ण उपदेशके बावजूद यह अधिकसे अधिक बीच प्राप्त करके इतकसा और मन करने ।



ॐ

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य ।

अष्टादशं काण्डम् ।

संस्कृत

पं० श्रीपाद धामोदर सातबळेकर,
साहित्यशास्त्रज्ञ वेदान्त गीताज्ञान
अध्यक्ष-स्वाध्याय मण्डळ नामग्याधम शिक्षा पारवी (जि. सुरत)

तृतीय वार

संवत् १००७, शक १८०१ सम १९५०

तपस्वियोंका लोक ।

तपसा ये अनापुष्पास्तपसा ये स्वर्गयुः ॥

तपो ये चक्रिरे महस्तामिदेवार्पि गच्छताम् ॥ १६ ॥

ये युष्यन्ते प्रचनेषु क्षरासो ये तनुस्पृजः ।

ये वा सहस्रं वक्षिणास्तामिदेवार्पि गच्छताम् ॥ १७ ॥

(अथर्ववेद १८।१।)

“ जो लोग तप करनेके कारण किसी प्रकारके कष्टोंमें बड़ी पहुँचान् या सहने लगे हैं । उनकी पाप नहीं छटा कहते व जो लोग तपके कारण कर्मोंके दान हुए हैं तथा मित्रोंके साथ तप किया है वन तथास्त्रिगोत्र भी भू पाकर प्राप्त हो, अर्थात् इनमें ठेठ स्थिति होवे ॥ जो सब वीरगन वेश्याओंमें कुछ करते हैं, और जो वन वंशवाँने बड़ी पीडा प्राप्त करते हैं, अर्थात् अपने अन्न ई देते हैं अवश जो लोग हजारों प्रकारके पर्वोत्सव करते हैं वनके भी भू प्राप्त हैं ।

सुदृढ तथा प्रकाशक— परंतु भीपाद् सातपथ्येकर II, A
रक्षापावनादक आरुतसुदृढादक किष्ठा पारवी त्रि० सुदृढ



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

अष्टादश काण्डम्

इस अष्टादश काण्डके प्रथम सूक्तमें मारुतमें (अर्थात् सन्ध्या कर्मका) " मित्राग्ने मित्राग्ने वायुः प्रोक्तः करिष्ये विपुः । यह ह्यम् और मित्राग्ने कर्मका विपुः होनेसे यही इसका संन्यासपरम है ।

अथर्ववेदके द्वितीय महाविभागका यह अन्तिम काण्ड है । क्योंकि काण्ड ११ से काण्ड १८ तक यह महाविभाग है । इस काण्डमें अम्बुकीका विपुः है । अर्थात् "यम् मित्राग्ने, युतयो मरुतोऽपि स्थितिः सिद्धयेकः यही इस काण्डका मारुतके अन्त्यतक विपुः है । इस काण्डके मंत्रोंकी संयुक्ति काये कर्ता व्यापकी और यही मरुतोऽपि स्थितिः सब विपुः स्थित किया जावगा । इस काण्डके बहुतसे मन्त्र अम्बुके हैं और ऐश्वर्यमयी (अ. ५) में २० हैं । इस मंत्रोंमें स्थानस्थानपर बहुतसे छन्दोबोध भी हैं । अथर्ववेदकी विष्णुकाद ऐश्वर्यमयी के अन्तः कर्तृत्वमयी यही हैं अर्थात् यही हैं और बहुतसे यही हैं ।

अथ इस काण्डके मंत्रोंके 'अग्नि-देवता-छन्दः' इति-

अग्नि, देवता और छन्दः ।

एक	संन्यासका	अग्निः	देवता	छन्दः
	मन्त्रोऽनुवाकः ।			
१	११	अथर्व	यमः मन्त्रोऽनुवाकः ४१ ३१ छान्दोग्य, ३ यज्ञः ३ ३१ ५१, ५२ सितरा ।	विष्णुः ८ १५ अर्थात्सिद्धिः १४ ४९ ५ सुरिः १८-२ २१-२३ अथर्वः २० २८ परित्यक्तः ५६ ५० ६१ अनुवाकः ५१ पुष्टिः ६० ।
	द्वितीयोऽनुवाकः ।			
१	१	यमः मन्त्रोऽनुवाकः । ३ ३५ अग्निः ५ अथर्ववेदः २१ सितरा ।	विष्णुः १-२ ३ १४-१८ २ २२, २३ २५, ३ ३६ ४६ ४८, ५ ५२ ५६ अनुवाकः ४ ५ ९ ११ अथर्वः ५, १६ ४९ ५० सुरिः १९ मित्रा यमः २४ मित्रा अथर्ववेदमयी अथर्वः २० सितरा अथर्वः २८-४४ अर्थात्सिद्धिः ५ (४ ४२-४४ सुरिः) ४५ अनुवाकः अनुवाकः ।	

मृगीयोऽपुणः॥६॥ ।

1

41

अथर्व ॥ वसः, संज्ञोऽयः ५,
६ अग्निः ५ मृमिः
५३ इन्द्रः ५३ आपः

सिन्धुद्व. ७, ८ ११ २३ कठः पंचमः, १ विष्ठा सिन्धु
 शावमी; ६ ५६, ६८ ७ ७२ अनुसुवा; १८ २१
 २९, ४४, ४६ वामनः; (१८ मुक्ति २१ सिद्ध)
 १० पञ्चपदा अष्टिपदोः ११ सिद्ध वामनोः १२-१९
 ४० ४९ ५२ मुक्तिः १६ द्वापदवा आहूरी अनुसु
 १७ एकादश्या आहूरी वामनी; १९ परमिपुत्र लोः
 ७ अस्त्रमर्षिः ५४ सुदेनुसुदुः ५८ किरतः ६
 पञ्चपदा अनुसुवा अष्टिपदः १४ मुक्ति वामा अनुसुवा
 ६० पञ्चा वृहती. ६१ ७१ उद्विष्ट वृहती ।

अनुर्बोद्धवः ।

•

43

अमः, मन्त्रोक्तः, ८१
विशः, ८८ अमिः
८९ अमः

विष्णुः १ ४ ७ १४ २६ १ सुरेंद्रा, १, ५, ११
 २९ ५ ५१ ५८ वयसः, १ पञ्चवक्त्रा मुनिज्योतिषी,
 ६ ९ ११ पञ्चवक्त्रा लक्ष्मी (९ सुरेंद्रा ११ पञ्चवक्त्रा)
 ८ पञ्चवक्त्रा बुद्धिः (११ विष्णु) २० वाङ्मयी वय
 श्री (१५) २१ २२, २८ ४१, ४२ ५९-६०
 ५९ ६१ लघुगुरु (५९ कर्मवर्ती) ६१ ६१ ६१
 आस्तारोहिणी; (२९ सुरेंद्रा ११ सुरेंद्रा ६१ ल
 गुरु) ६० विष्णुर्वा लघुगुरु; ६८, ७१ आहारी लघुगुरु
 ७१-७४ ७९ आहारीरोहिणी ७५ आहारी वयवर्धः ७६
 आहारी रजिष् ७७ वैद्यो ज्योतिषी, ७८ आहारी विष्णु
 ८ आहारी वयवर्धः, ८१ आहारीलघुगुरु ८१ वयवर्ध
 लघुगुरु; ८३ ८४ कर्मवर्ती विष्णुर्वा; ८५ आहारी बुद्धि
 ९०-९६ ७१ एकादशवक्त्रा) ८९ ८० लघुगुरु
 विष्णु (८९ कर्मवर्ती ८० कर्मवर्ती) ८९ पञ्चवक्त्रा
 पञ्चवक्त्रा; ८९ पञ्चवक्त्रा पञ्चवक्त्रा ।

और विमुक्तियों एवं बातों का पता लगा आया।



अथर्ववेदका सुवाध भाष्य

अष्टादश काण्डम् ।

यम, पितर और अन्त्येष्टि ।

[१]

(ऋषिः— अथर्व । देवता यमः, भग्नोक्ताः)

ओ ष्वेत् सखाय सुस्या ववृत्वां तिरः पुरु चिद्वर्णव जगुन्वान् ।

पितुर्नपातुमा दधीत वेधा अवि धर्मि प्रतुरं दीर्घ्यान्ः

॥ १ ॥

न ते सखा सुस्यं वष्टयेत्तत् सर्लक्ष्मा यद् विपुरुषा भवाति ।

महस्पुत्रासो अष्टुरस्य धीरा विवो धर्तार उर्विया परिं स्यन्

॥ २ ॥

अर्थ— [पुरु अर्थात् तिरः जगुन्वान्] विस्तृत सञ्चारकरी समुद्रके पार ज्ञाना चाहता हुआ जो यम है उस
पुरु पतिवर्णके [सखाय] मित्रको मैं बली [सखा] पत्नीकपके प्राप्त मित्रता द्वारा [ववृत्वा] बाल कर्क भर्त्ताय तुझ
यमको मैं बली बनना पति बनाऊँ । और इस प्रकार पति बनकर यम [अविधर्मि] पृथिवीपर [प्रतुर दीर्घ्यान्ः]
विशेष कपके प्रकाशमान होता हुआ बलवा सुख बलीमें यमधारन करनेके उपायका विशेष चिन्तन करता हुआ [वेधा]
संयमका उत्पाद्यक यम [तिरः नपातुमा] पित्तके कुलको व गिनावेवालीकृत्वात् कुलप्रवर्तक संयमको [विवो धर्तार] पालन
करे । [म १ । १ । १] ॥ १ ॥

[वे] सुख बलीका [सखा] मित्र वह यम [वष्टयत् स्यम्] इस प्रकारकी पतिपत्नी भावनाकी यैवी [न वधि]
यही चाहता । [त्यत्] क्योंकि इस प्रकार करनेके [जगुन्वान्] एक ही उद्देश्य उत्पन्न होनेके कारण समान कष्टमोक्षकी
[विपुरुषा] मित्र रक्षकपत्नी अर्थात् बलिवर्णके पत्नीके स्वकपमें परिणत [यवाति] हो जाती है । जबवा इस सखा
का अर्थ पूं करना चाहिये [वत्] क्योंकि [सखाय] व बली सहवा होनेके समान कष्टमोक्षकी इ अर्थः [वे
सखा] ठेरे मित्र यम [वष्टयत् स्यम्] इस पत्नी कपके मित्रताके [न वधि] यही चाहता । पत्नी तो वह बन सकती है ।
को कि [विपुरुषा] मित्र रक्षकपत्नीका मित्र कष्टमोक्षकी [यवाति] होती है । इसके अतिरिक्त [महः जगुन्वान्]
महा प्रलयदाता परमात्माके [दिवः वर्तारः] व्यवहारको पालन करनेवाले अर्थात् परमेश्वरिक व्यवहार कुशल [धीराः]
पुत्राधः [वराकरी समुद्र पुत्र भी [उर्विया] पृथिवीपर वृष्टे संयमका [परिं स्यन्] परिवार विराजमान निवेष्ट करते
हैं । [म १ । १ । १] ॥ २ ॥

भाष्य— बली यम से कहती है कि सञ्चारकरी ज्ञानके कारणके जिनके इस दोषों पतिवर्णके कपमें मित्रता करे ताकि यम
देवमें अपने विपुरुषकी प्रवृत्त समान उत्पन्न करें जिसके कि यमका वह मह व होने पावे ॥ १ ॥

यम बलीको कष्ट देता हुआ कहता है कि, हे बली! तुनेमित्र प्रकारकी यैवीकी यमना सुख की हे वर प्रकारको सुख
पत्नीका यही है क्योंकि तू तो समान कष्टमोक्षकी है और पत्नी तो मित्र सखापत्नीकी होती चाहिये । इसके विपक्ष कि मैं ही
एक बातका प्रतिपाद नहीं कर रहा अतः यम व्यवहारकुशल को भी पृथिवीपर इस प्रकारक व्यवहार विराध करते हैं ॥ २ ॥

उच्यन्ति वा ते अमृतांस एतदेकस्य चित् स्मृतस्य मर्त्यस्य ।

नि त मनो मनसि घाय्यस्मे जन्तुः पतिस्तुन्व १ मा विविध्याः

[३]

न यत् पुरा चक्रुमा कर्ह नूनमृतं वर्दन्तो अनृत रयेम ।

गुधर्वो अप्सवप्सा च योषा सा नौ नार्मि परम जामि तर्भो

[४]

गर्भे तु नौ जनिता रम्पती कर्बुषस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।

नर्किरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेदं नाधस्य पृथिवी उत द्यौः

[५]

कार्य—[ते अमृतांस] वे अमृत स्वरूप अमरहारा कुष्ठक मनुष्य भी [एकस्य मर्त्यस्य] एक अर्थात् बहिरीय मनुष्यो [एकस्य] अन्तान् [उच्यन्ति] चाहते हैं [एतत् वा] वह बात प्रसिद्ध ही है इतकिय उताओलपिके किन् [ते मनो] तेरा मन [मनो मनसि] हमारे मनमें स्थित होच और इस प्रकार [जन्तुः पतिः] अत्यात्मका अत्यन्त करनेवाला पति हुआ हुआ [गुधर्वो अप्सवप्सा] कुष्ठ कमीके सरीसर्प प्रवेश कर [अ० १ । १ । ३] [३]

[न] जो कार्य [पुरा] पहिले [चक्रुमा] हमने नहीं किया है वह कार्य [नूनमृतं] निम्नवर्तक बन गये हैं [वर्दन्तो] लम्प्य होकरे हुए [अनृत रयेम] अत्यन्त कर्मों को [अनृत रयेम] कर्मों को [यत् पुरा] कर्मों को [चक्रुमा] पहिले हमने ऐसा काम नहीं किया है इस प्रकारसे [न] निम्नवर्तक [वर्दन्तो] लम्प्य होकरे हुए [कर्ह] किस किन् [अमृत रयेम] लूट को [कि] हमने ऐसा काम पहिले किया है। अथर्वार्थसे यह अपने तथा कमी को ना पत्न व दोनोके पारस्परिक सम्बन्धको दर्शाता हुआ कहता है कि [अमृत रयेम] अत्यन्तकर्मों निम्नमान बहिरीय [च] और [योषा सा अप्सा] आरित्यकी स्त्री वह अप्सा [नी] हम दोनों के [नार्मि] उत्पत्तिकार है। [उत्] इस अत्यन्त [नी] हम दोनों का [अभि] जो सम्बन्ध है बहो [परम] तथा अत्यन्त व पतिव है [अ० १ । १ । ४] [४]

[सविता] मेरक [विश्वरूपः] विश्वकर्मा [वष्टा] बनावेवाले [द्यौः] अकाशमान [सविता] अत्यन्त लम्बवर्तक [तु] निम्नवर्तक [नी] हम दोनों को [गर्भे] माताके गर्भमें [रम्पती] पति पत्नी [का] बनावता है। [अ] सब अत्यात्मक परमात्माके [प्रतानि] बनाव हुए निम्नवर्तको [य कि] य अत्यन्त [कोई] भी नहीं होकरे। [नौ] हम दोनों को रम्पती बनावेका [अन्व] इस लम्बाका जो कर्म है उसे [पृथिवी उत द्यौः] पृथ्वी व तु दोनों ही [अ] चाहते हैं। [अ० १ । १ । ५] [५]

अथर्व—कमी वमने कहती है कि नमोकि एतदर्थे र ते हुए पुनश्चो एक न एक अन्तान् अमरमनेम उत्पन्न करनी चाहिये अन्तः तु और मैं एक मनवाले होने व तु मेरेमें अन्तान् उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

यम कमीके कहता है कि कौ काल हमने पहिले नहीं किया वह अब हम लूट होकर कर्मों को और इसके निम्न हम दोनों के एक ही माताव हमनेसे हमारा पारस्परिक सम्बन्ध बड़ा उत्पन्न है अन्तः ऐसा सम्बन्ध हम दोनोंमें यही हो करेगा।

कमी वमने कहती है कि हे यम ! परमात्माने स्वर्ग ही हम दोनों को गर्भमें से ही उत्पत्तिकी बनाव है। यही उक्त है हम दोनोंको एक साथ ही गर्भमें रखा था। गर्भसे ही हम दोनोंको बोली बवाई है। इस परमात्माके निम्नवर्तक को ही अधिकतम नहीं कर सकता था फिर हम कैसे करें अन्तः तु मेरे साथ वह सम्बन्ध जोड़। वह तु और पृथिवी भी जानते हैं कि पृथ्वी हमारा ही बनावेका सम्बन्ध बनावता है। तु वह व लम्प्य कि मैं अपनी और से बनाव कर रही हूँ ॥ ५ ॥

को अथ पुंस्के भूरि गा मृतस्य शिर्मागतो मामिनो दुर्हणायून् ।

आसमिपून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां मृत्यामृणघत् स जीवात् ॥ ६ ॥

को अथ वेद प्रथमस्याह्नः क ई ददर्श क इह प्र वोचत् ।

बुहन्मित्रस्य यरुणस्य धाम कर्तुं मम आह्नो वीच्या नून् ॥ ७ ॥

यमस्य मा यम्यं काम आगन्तुमाने योना सहस्रेभ्यः ।

जायेत् पत्यं तन्व रिचिन्वा वि विह्वं बुहेव रथैव चक्रा ॥ ८ ॥

मर्थ— हे यमी ! [जय] आज्ञाकरक लगाने में [यत्तरय गाः] सत्य की स्तुति करनेवाक, [मिमीवताः] अह कर्मोंक करनेवाके [मामिना] देखती [दुर्हणायून्] हुओं पर श्रेष्ठ करनेवाके [मायन् हृत्] सुखपर बाल मारनेवाके [हृत्स्वसः] हरनेमें बच [मारनेवाके तथा] मयोभून्] सुख पहुचानेवाकों को मका [कः] कौन [भूरि पुंके] काय पुरा में ओवका है ? कोई भी नहीं । [वाः] जो [एषां भूरां] इनके मरय पोषण से [कवयन्] बहाता है [सः] वह [जीवात्] वस्तुता जीता है । ॥ ६ ॥

हे यमी ! [यस्त प्रथमस्य भद्रः] इस प्रथम दिव क संवसने [कः वेद] कौन जानता है ? [क ई ददर्श] और किसने इसको देखा है ? [क इह प्रवोचत्] और उसके विषयमें भका कान कह सकता है ? [मित्रस्य यरुणस्य धाम] मित्रमूय भिन्न परमात्माका धाम [कर्तुं] महत् है । अतः [आह्वः] हे वरुण ऐनेवाकी ! [वीच्या] कक फल द्वारा [कः च] कैसे [नून् मयः] हम मनुष्योंके लाभ कोकती है ? ॥ ७ ॥

(समाने योमी) एक तरफें [सह सख्याय] एक साथवापर साथ सोयेके किए [यमस्य कामः] यम की कामना (मा यम्यं) मुझ रमी को [मा जन्म] आत्म प्राप्ति हुई है। मैं यमी [पाय जाया हूच] बसिके किए मिल यकर की उस मकत यमके किए [तन्व] लयवा करीर [रिचिन्वा] फैलाऊ और [रथ्या यम इव] रथके हो बहियों क समान हम दोनों यम यमी [वि बुहेव] परस्पर मित्र-व्यवहार करें ॥ ८ ॥

भाषाय—यम यमी से कहता है कि हे यमी! आज्ञाकरक लगानेमें सबकाश कीर यमोंका कौन पृच्छा है। जबक यमिन्द्र कौन अनुवाक करता है। कोई भी नहीं। वस्तुतः आई बहिनका विवाहसंकेत नहीं होगा चाहिये ता भी पू पूजक मुक्तवा बकर कि मर्थसे ही हम सोयोंका परमप्रमान रूपता बनावा है अथवा लोक रही है ॥ ६ ॥

यम यमी से कहता है कि तू जो वह बुकिव रही है कि यमैक ही परमात्माका हयका र्वत जमी बनावा है इन्द्र की ठीक नहीं है। यमोंक [यम दिव यम धारण मुष्ठा यः उक्त दिव] तथा का बका विचार या इस बातका कौन जानता है ? किन्ने देखा । और किसने आकर कहा । मैं कोई जान ही सकता है । मैं देख ही सकता है और मरी कह ही सकता है । यथाकि परमात्मा काय जगत् है । उक्तका कोई जान नहीं सकता । ऐसी हालतमें तू हल मनुष्योंके ऐसी ऐसी बात क्या बनाती है कि परमप्रथम हैं। हमें यम से इंचती बनाया है तथा आई बहिनका विवाह हम्मा चाहिये । (य १ ११ १२) ॥ ७ ॥

यम यमक कहती है कि मेरी यमन मुझ आई यमके विषयमें कामकाय करत हुई है । तभी यमी यमकर एकत्र विहार करनेका हयता है । अतः हे आई ! अभी हम दोनों मिलकर गति यमिन्द्री तरह रहें क रथक यमों बहियों की तरह मिलकर रथका हो जाया करें (य १ ११ १०) ॥ ८ ॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते धेवानां स्पष्टं ब्रुह य चरन्ति ।

अन्येन मदीहानो याहि स्य तेन वि बृह रभ्यस चक्रा

॥ ९ ॥

रात्रीमिरस्मा अहमिर्वक्षस्येत् सरीस्य चर्षुर्बृह रुन्मिमीयात् ।

दिवा पृथिव्या मिथुना सवेधू यमीर्यमस्य विबृहादन्नामि

॥ १० ॥

आ घा वा गच्छालुधरा युगानि यत्र अमसः कृण्वन्ननामि ।

उप वर्धहि वृषमासं ब्राह्मण्यमिच्छस्व सुमगे पतिं मत्

॥ ११ ॥

अर्थ [एत इत्यानां स्पष्ट] न इत्येति ब्रुह अर्थात् परमात्माके विद्यामक [ये] जो कि [ब्रुह] ब्रह्म जगत्को संचार करते हैं वे [न तिष्ठन्ति] न तो एक स्थानपर रहते हैं और [न] नहीं [मिषन्ति] बाँध कर करते हैं जगत् सोते हैं । इत्यदि ए [मत् अन्येन] मेरेसे जिस वृक्षके पास [एवं] क्षीय [याहि] जा और हे [ब्राह्मण] वह धनेवाही । [रभ्या चक्रा ब्रुह] रभ्ये के चक्रोंके समान चक्रके साथ [विबृह] अतिबृहत् कर १९ ॥

[रात्रीमि अहमिः] रात्र और दिन [अस्मै] इस वक्ताको सुमति [ब्रह्मत्वेत्] देवे । और [सूर्यस्य चक्रा] सूर्य के चक्र [बृह] बारबार [उक् मिमीयात्] इसके किए करे । [दिवा पृथिव्या] तुमके साथ पृथिवी व पृथिवीके जगत् तु इस प्रकार [सवेधू] माई वहिन के कर्मे रिपव होव हुए भी तु न पृथिवी [मिथुना] कर्त्तव्य मिथकर रहते हैं अतः [यमीः] यमी थी (यमस्य अहमि विहाय) वक्ता कर्मकृत्परहित उत्पन्न करके [विबृहात्] जगत्कर करे ११ ॥

व यमी ! [वा उचरा युगानि] वे जन्मिन्में घुसे युग [वा] विधायके [वा नम्यन्] जाँके [व] दिन युगोंमें कि [आसका] वहिने [अजामि] कर्मकृत्परहित कर्म [कृण्वन्] करेंगी अर्थात् वहिने माँगेको वमी करेंगी । परन्तु तू तो [वृषमास] मिथी वीर्यवात् पुत्रव क किन् [वाहु] अपना हाथ [वप वर्धहि] फैला, जाके बढ़ा । अर्थात् उत्पन्न साथ पालिमहन कर । इस प्रकार [सुमगे] हे मातृवत्तामिनी । [मत् अन्ये पति] मेरेके मित्र पति थी [ब्रह्मरव] ब्रह्मा कर ११ ॥

भावार्थ— यमी की कर्मकृतताकी इच्छा सुनकर वम उठे कहता है कि परमात्माके ब्रह्म प्रतिक्षण इनारे जगत्करोंके देख रहे हैं । अत एव तुम जोकर जगत् किधीके साथ जाकर विवर्धित हुई हुई अपनी अधिकांश पूज कर । (अ १ ११ १८) ॥ ९ ॥

यमी वमसे कहती है कि एक दिन न रात्री तु और पृथिवी के परस्पर माई वहिन होते हुए भी परस्पर मिथकर जगत् हुए हुए हैं । अत भाव जोकर देख । फिर ऐसी अवस्थामें हम दोनों माई वहिन होते हुए भी क्या न मैं वहिना अन्ये जोकर ठेरे साथ पत्नीका रक्षार करे । (अ १ ११ १९) ॥ १ ॥

वम यमी की मुक्तिवृत्त वक्ता मीनोक्त एकि जोकर विवर्धत हुआ हुआ कहता है कि हे यमी ! इस प्रकारका जगत् जगत् आनेवा जब कि माई वहिने भी पतिवत्ताके अनुसार कर्त्तव्य करेंगी परन्तु मैं ऐसा नहीं करना चाहता । वाहे ठेरी मुक्ति प्रवृत्त मेरे पास न भी है । अतः तू मेरेसे जिस अन्य मिथी वीर्यवात् पुत्रवका पालिमहन करके उठे अन्य पति बढ़ । (अ १ ११ १९) ॥ ११ ॥

किं आतासु यदेनाथं भवति किमु स्वसा यमिर्नृतिर्निगच्छात् ।

काममृता बहुतेषु रूपामि तन्वा मे तन्वैः स विपुषि ॥ १२ ॥

न ते नाथ यम्यभ्राह्मसि न ते तन् तन्वा इ स पपृच्याम् ।

अन्वेन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते आता सुमगे नष्टेयत् ॥ १३ ॥

न वा रं ते तन् तन्वा इ स पपृच्या पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।

असंयदेतन्मनसो हृदो मे आता स्वसुः शयने यच्छमीय ॥ १४ ॥

पुतो संतासि यम नैन ते मनो हृदय चाविदाम ।

अन्या किन्त्वा स्वां कृत्स्नं च पुक्तं परिं प्वञ्जाते त्रिषुषेव पुध्प ॥ १५ ॥

वर्ग- [किं आता अथ] वह क्या माई है [वत्] क्योंकि जिसके रहते हुए भी वहिब [अनाथ भवति] अनाथ बनी रहती है । [व] और [किं स्वसा] वह क्या वहिब है कि जिसके रहते हुए भी [वत्] वहि माह [मिर्नृतिः] निगच्छात्] कल्पते मल होता है । अतः हे माई ! [काममृता] कामसे कुछ हुई हुई मैं [एतत् बहु रूपामि] वह बहुत कुछ बदली हूँ । इसलिये तू [तन्वा] अपने शरीरके [मे] मेरे [तन्वा] शरीरको [स विपुषि] संतुष्ट कर ॥ १२ ॥

हे बनी ! [अत्त] बहावर [अत्त] मैं [ते नाथं] तैरा स्वामी [न भवि] नहीं हूँ । और इसलिये [ते तन्] मेरे शरीरको [तन्वा] अपने शरीरके साथ [न स पपृच्याम्] संतुष्ट नहीं कइया । अतः हे बनी ! [मत् अन्वेन प्रमुदः कल्पयस्व] मेरेके मित्र बूझके साथ आनन्द कर । [सुमगे] हे लोभान्धवदी । [एतत्] इस प्रकारका संकल्प [ते आता] तैरा माई यम [न भवि] नहीं चाहता ॥ १३ ॥

हे बनी ! [ते तन्] मेरे शरीर को [तन्वा] अपने शरीरके साथ [न स] कइयि [न स पपृच्याम्] जो वहिब के साथ संयोग करता है उसे [पाप व्याकुः] पापी कहत है । [एतत्] वह बात [मे मलः हृदः] मेरे मन व हृदय के [अलंघ्यत्] विरुद्ध है-अलंघ्य है कि [आता] माह मैं [स्वसुः शयने] वहिन की छत्पावर [शमीय] सोऊ १४३

हे यम ! [वत्] बने तुझकी बात है कि तू [वत्ता भवि] वत्ता बिरुद्ध है । [ते] मेरे [मम हृदयं च] मन व हृदयको [न अविदाम] हम नहीं जान पड़े । कर [किञ्च] जिसलिये [अन्वा] बूझी की [त्वां] तुझ [परिप्वञ्जाते] आक्रियन देवी [कन्वा तुच्छं हव] जिस प्रकारसे कि बोरेकी कमर पेटी गाड़ीको बांध हुए बोरेकी-किरायती है और जिस प्रकारसे कि [किमुता कुच्छं हव] वेक वृक्षको कियटती है ॥ १५ ॥

धार्तर्य- एही वलसे कहती है कि हे यम ! तैका जो माईके रहते हुए भी वहि वहिब अनाथ बनी रहे तो वह माई किस कामका और हवीमका अधिपके रहते हुए वहि माईको कइ उठाना पड़े तो वह वहिब किस कामकी ? इसलिये ह माह तु मेरे काम अपने शरीरका संयोग कर ? (अ. १ ११ १११) ॥ १२ ॥

यम बनीके कहता है कि हे वहिब ! मैं तैरा स्वामी नहीं हूँ । अतः अपने शरीरके मेरे शरीरके संतुष्ट नहीं कइया । तू अन्य किछकि साथ आनन्दन उपयोग कर । तैरा माई इस प्रकारका कार्य मेरे साथ करना नहीं चाहता । (धर्तर्य अ. १ ११ १११) ॥ १३ ॥

बनी बनीके अपने पूर्वक कनकरी हव करता हुआ कहता है कि मैं अपने शरीरके साथ तैरा शरीर कइयि लड़क नदी बंधन कहती कि माईके साथ संयोग करेबोकेकी पापी कहा गया है इसके सिवाय माई वहिबकी छत्पावर केरे वह बाग मेरे मन व हृदयके भी प्रतिकूल है अतः मैं तैरी बात नहीं मान लक्या । (धर्तर्य अ. १ ११ ११२) ॥ १४ ॥

बनी बनीके कहती है कि हे यम ! तू वत्ता की बिरुद्ध है । अतः मैं मेरे मन व हृदयके अन्य महा माई हूँ । अतः अन्य की तो अनाथन तुझे अक्रियन देवी जैसे कि कमरकी पेटी बोरेकी पेटी है व वत्त हइको । (अ. १ ११ ११३) ॥ १५ ॥

अन्यम् पु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिङ्गुष्वेव वृषम् ।

तस्य वा त्व मर्न इच्छा स वा सषाधा कृष्ण्य सविद सुमंद्राम् ॥ १६ ॥

त्राप्ति च्छन्दांसि कुत्रयो वि येतिरे पुरुष्यं दर्शय विश्वचक्षणम् ।

आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् मुषेन आपिष्ठानि ॥ १७ ॥

वृषा वृष्ये वृषुहे दोहसा विषः पर्यासि यद्धो अर्द्धतरताम्यः ।

विदध स वेद वरुणो यथा पिबा स यक्षियो यजति यक्षिर्वा ऋतून् ॥ १८ ॥

वर्ण—[वसि] हे वसी । वृ [अन्व क सु] अन्व पुरुषको ही आश्रिय क नीर [अन्वः] वृषा पुरुष ही (त्वां) पुंस् [परिष्वजातै] आश्रित्य गये । [विषुवा इव वृषम्] विष प्रकारके विभिन्न वृषको आश्रिय करती है । [तस्य] तस पुरुषके [मन् त्व इच्छा] मन्की वृ इच्छा कर [स वा त्व] नीर वह तेरे मन्की जाननेकी इच्छा करे । [वस] नीर त्व उक्तके मन् वृ [सुमंद्रां संविद कृष्ण्य] कम्पाकधारिणी संमति कर ॥ १६ ॥

[कवचः] अन्वहसी ज्ञानी जनोंके [त्रीणि च्छन्दांसि] तीन छन्द वर्णाएँ—ओ संसारका आश्रय कों अपने से ओ संसारको आश्र करे पानि ओ संसारमें सर्वत्र उपलब्ध हो जहाँ ऐसे—तीन सर्वत्र उपलब्ध होमैल्ले वरुणों को संसारके निर्वाहक किए [वि येतिरे] विविध प्रकारके क्लेशों कया रखा है । वर तीनों क्लेशोंके अनेक [पुरुषं] बहुत रूपोंका है [दर्शयम्] बहुत है तथा [विश्वचक्षणम्] सब के देखने योग्य है । ये तीनों छन्द कौनल्ले हैं ? [आपः वाताः ओषधयः] सब वायु तथा औषधियाँ हैं । [पिबे] ये तीनों कर [एकस्मिन् मुषेन] इस एक ही संसारमें अर्धित हैं आपित हैं ॥ १७ ॥

[अर्द्धाभ्यः] किन्ही से भी त वृष्ये जाका [वदधः] मद्राएँ [वृषा] कामचारों की वरों करवेला अग्नि (वृष्ये) पराक्रमी वरके किए [अर्द्धितः पिबः] मज्जवनीय पु कोकले [दोहसा] दोहने के साधन वृद्धिद्वारा [वसि] क्लेशों—रुधों—को [वृषुहे] दोहसा है । [सः] वह पराक्रमी अग्नि [यथा वचना] वरुण की तरह [पिबा] अपनी कुक्षि द्वाता [विदध वेद] सब कुछ जान केता है । अथवा इस वृषीय पादका वर्ण पूं भी पिबा का करता है [स वचना] वह अष्ट कम [यथा पिबा] अपनी कुक्षिके अनुसार [विदध वेद] सब कुछ जान केता है और फिर त्वपुंस्तर [स वक्षिषः] वह पूजनीय वरकर [वक्षिषाम् ऋतून्] पूजनीय कर्तव्योंकी [वसति] पूजा करता है ॥ १८ ॥

भावार्थ— वर वर्णित कहता है कि हे वसी ! वृ भी वृषरे पुरुषको प्राप्त हो । वह तुझे आश्रिय गये । उक्तके मन्के पुंस् अन्व चक्षनेकी वृ इच्छा कर तथा वह भी तेरी इच्छामनुसार कले नीर इस प्रकारके पुंस् दोहोष मीक्य अन्वय करवेला होवे (मन् १ । १ । १४) ॥ १६ ॥

ज्ञानी कोकलें जब वायु तथा औषधियोंके संसार निर्वाहके लिये अपना क्लेश कया रखा है । ये इस संसार में सर्वत्र उपलब्ध हो सकते हैं । वर्तमान समयके ज्ञानी कोकलें जब वायु तथा औषधियोंके वाया क्लेशों कया रखा है तथा उक्तके संसारका विष प्रकारके निर्वाह ही रखा है वह प्रत्यक्ष ही है । ये तीनों परार्थ संसारमें सर्वत्र पाये जाते हैं अतएव वे हैं छन्दके नामसे पुकारा गया है (अर्द्धाभ्य च्छन्दांसि) इन्होंने संसारको वर रखा है । जब, वायु तथा औषधियोंके संसार आश्रित है । अतएव वे छन्द हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— अशिरुप परमात्मा पुष्पकोले क्लेशोंकी वृद्धि करता है । और बहुत अथवा वृद्धिके अनुसार उर चक्षुःश्राव्य सुश्रुति उपनोद केता है । ऋतुवाच करता है । और इस प्रकार अन्वोका पूजनीय वरता है ॥ १८ ॥

रप्यं गन्धर्वीर्या च योपणा नृदस्य नादे परि पातु नो मनः ।

इष्टस्य मध्ये अविर्तिनि घातु नो आता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वीषसि

॥ १९ ॥

सो धिष्णु मद्रा धूमती उष्टस्मत्पुषा उवास मनवे स्वर्षती ।

यदीमुष्टन्तमुष्टतामनु ऋतुमसि होतार विदर्याय जीवन्तन्

॥ २० ॥

अप स्य द्रुप्तं विम्वं विषष्टण विरामरदिपिरः ज्येनो अन्तरे ।

बद्री विष्टो पुण्यते वस्ममायी अरि होतारमभ धीरजायत

॥ २१ ॥

सदासि रभ्यो यषसेष्ट पुण्यते होत्रामिरग्ने मनुषः स्वप्नरः ।

विप्रस्य वा यष्टेष्टमान उष्ट्यो वा नै ससुषो उपयासि भूरिमिः

॥ २२ ॥

अर्थ— (गन्धर्वी) स्तुति करनेवालों का बारण करनेवाली (गन्धा) सप्तर्षीमें रहनेवाली, (योपणा) मज्जीय देववाली (रप्यं) अग्नि के पुष्पमात्र करती है । वह अग्नि (वाः सनाः) हमारे मन्त्री (यदस्य नादे) स्तुति करनेवालों की अर्चना करने में (परिपातु) पातों और से रक्षा करे । (इष्टस्य मध्ये) इष्ट अर्थात् अग्निकृतित पदार्थों के बीचमें वह (अविर्तिनि) अक्षयनीय अग्नि होने (विपातु) स्थापित करे । वह अग्नि (वाः ज्येष्ठः भ्राता) हमारा बड़ा भाई होकर (प्रथमः) प्रसिद्ध हुआ (वाः विषोषसि) हमें उपदेश देता है ॥ १९ ॥

(सो) बरी (धिष्णु) निश्चयसे (मद्रा) अथ (धूमती) कस्याय करनेवाली (धुमती) अक्षवाली (उष्टस्मदी) कीर्तिवाली (स्वर्षती) आदिवाली अर्थात् जिसमें आदित्य विद्यमान है ऐसी (उवास) उषा (मनवे) मनुष्यके लिए (उवास) प्रकाशित हुई है । कब उषाक हुई है ? (वर) अब कि (ईष्ट्) इस (उवास) कामका करते हुए (होतार) दायी (अग्नि) अग्निसे (विदर्याय) वहके लिए (उवासां ऋतुं अनु) कामका करते हुए कि वरके साथ साथ (जीवन्तन्) उत्पन्न किया ॥ २० ॥

(अप) वह (स्य) वह (द्रुप्तं) हर्षमय (विम्वं) मदन (विषष्टण) विशेषतया देवदेवताओं सोमको (अन्तरे) अग्निमें (ज्येनः विः) ज्येन नामक पत्नी (नामरत्) अथा । (बहि) अब (आपाः विष्टाः) अष्ट वन (वरम्) हर्षणीय (होतार) दायी (अग्नि) अग्निसे (पुण्यते) बारण करते हैं (अप) वह (भीः भ्रातृपत) बड़ादि कर्म होता है ॥ २१ ॥

(मनुषः होत्रामिः) मनुष्यके वरोंसे (स्वप्नरः) सोमन यज्ञवक्ता (वाः) हे अग्नि । (पुण्यते) पोषण करने वरके लिये (वषसा हव) जिस प्रकार पशुओंके लिए बाछ होती है उसी प्रकार तू (सदा रभ्यः अग्नि) सर्वदा रमणीय नामक रहने । (वत्) क्योंकि (मित्रस्य वाक् सवयान्) मेवाली अग्नि के अक्षय सेवन कराया हुआ (उरभ्यः) प्रशस्तनीय व (सधमायः) पुत्रसीका तू (भूरिमि) बहुतही कामनाओंके साथ (उपयासि) आता है । अर्थात् बहुतही कामनाओं को पूर्ण करता है ॥ २२ ॥

आचार्य— वैदिकों उस आदित्य परमात्माली स्तुति करती है । वह परमात्मा भक्त अग्नि के कारणों हमारे रक्षा करता है । इन्द्रिय पदार्थका प्रदान करता है वह बड़े भारीके समान होकर हमें समय समय पर उपदेश देता है ॥ १९ ॥

अब कि वहकी कामना करते हुए अग्निसे वहमें अग्निसे प्रयत्नकित किया तब कामनाय वह उरभ्य हुई ॥ २ ॥

अब उरभ्यका अग्नि प्रदीप्त कर वह वरते हैं—तब योगरथ विप्रभक्त रहनेवाले अक्षय सेवन करते हैं ॥ २१ ॥

अग्नि वहकी कर्म करनेवालोंके लिये देखा जाकर रहने है ऐसा कि वह पशुओंके लिए । क्योंकि अग्नि प्रयत्नकित करने कामनाओंकी पूर्ण करता है ॥ २२ ॥

उदीरय पितरां जार आ भगमिर्यस्यति ह्यतो हुच ईष्यति ।

विवंस्ति वहिः स्वपस्यते मस्रस्तेष्विष्यते असुरो वेपते मयी

॥ २३ ॥

यस्ते अम सुमतिं मतो अस्पृत् संहसः सनो अति स प्र धूष्ये ।

॥ २४ ॥

इप दधानो परमानो अश्वैरा स धूमो अमवान् भूषति धून्

धुधी नो अम सदेने सधस्ये युक्ष्वा रथममृतस्म प्रविस्तुम् ।

॥ २५ ॥

आ नो वह रोदसी देवपुत्रे मार्किर्देवानामर्प भूरिह स्याः

अर्थ—हे आमा । (पितरौ) माता पिताके अति (मर्ग) अथवा तेज— देवर्षे (वाराः आ) स्वर्गकी अथ वारां
जिस प्रकार सूर्य अथवा तेज सर्वत्र प्रसारित करता है उस प्रकार (उदीरय) प्रसिद्ध कर—उसके पास पहुंचा । (ह्यतो)
कमनीय वस्तुकीय आमा (ज्ञातः) हृदयके (हृदयस्य) बहस्य करना चाहता है इच्छाके (ईष्यति) जाता है । (मतो)
हवि अग्निदेवा बहस करनेवाला अति (विवस्ति) कहता है और (यथाः स्वपस्यते) कर्मवीर्य अति सुन्दर कर्म करना
चाहता है । (विवस्ति) महान् होनेकी इच्छा करनेवाले के लिये (असुरः) मायावाला अग्नि (मयी वरते) कर्मदा
जाता है ॥ २३ ॥

(अम्ये) हे अग्नि । (याः मर्ता) जो मनुष्य (ये सुमतिं) ऐसी सुमतिके विषयमें (अमवन्) स्वयं स्वयम्
कहता करता है अर्थात् ऐसी प्रशंसा करता रहता है (सनो) सुखे (धूमो) धूमके पुत्र । (धा) वह मनुष्य (धमि
प्रसूये) बहुत अधिकतासे सुना जाता है अर्थात् वह सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाता है । सर्वत्र उल्लास नाम धुनार्थ देव है ।
इसके अनिरिक्त (ध) वह मनुष्य (इप दधानः) अथवा वारण करता हुआ अर्थात् अग्रे परिपूर्ण हुआ हुआ,
(अश्वैः बहमानः) घोड़ोंसे बहस किया जाता हुआ अर्थात् अन्धादि बाहयसे संघर्ष हुआ हुआ (धूमो) देवकी
होवा हुआ (अमवान्) बकवास हुआ हुआ (धून्) दिनोंके (भूषति) शोभित करता है । अथवा ऐसे मनुष्यके लिये
बरगुदा दिनोंकी शोभा बरती है ॥ २४ ॥

(अम्ये) हे अग्नि । (सधस्ये सधस्ये) जहावर धन बहुविध होकर फैलते हैं ऐसे वरमें (या धुमि)
इसकी प्रशंसा की सुन । वह प्रशंसा क्या है वह अग्रेके तीन वर्तोंसे बचकते हैं— (अमृतस्म इतिर्त्तं पुत्र)
अमृतक बहानेवाला रथकी जोड़ और फिर उस रथद्वारा (यक्षुषे रोधसी) देव हैं कुछ दिनोंके ऐसे आमा इच्छाके
(याः आवह) इसकी उत्पत्ति के आ । और हे अग्नि (देवानां मार्किः अमभूः) देवोंके बीचमेंसे कभी भी दूर नष्ट हो ।
होने के आ रहा । (इह स्या) वहीं पर हमारे बीचमें भी स्थित हो ॥ २५ ॥

भाषार्थ— जिस प्रकार सूर्य सबको प्रकाशित करता है उस प्रकार आमा सब पितर आदिदेवोंके वरदायक है । और
उपलब्धिलेन सबमें उत्तम कर्म करने ॥ २३ ॥

आ मनुष्य अग्निकी सुमतिदा अथवा वरदान करता है वह सर्वत्र प्रसिद्ध होकर धनधान्य वस्तु आदिदेवोंके धन पुत्र
हुआ वर व वारकमें सुख होकर बहुत समकाल जीवित रहता है ॥ २४ ॥

हे अग्नि ! हम सब द्वारा विनम्र हो सर्व प्रार्थनाको सुन । वह प्रशंसा वह है कि तू अमृतक वाहनवाला रथके द्वारा
पुत्र की वृद्धि कर हमारे पास न आ । अर्थात् वर्षादिक देव द्वारा उ हैं हमारे अनुदत्त कर । तू हमारे बीचमें तब देवों
के बीच रहा ॥ २५ ॥

यदेवम् एषा समितिर्भिर्वाति देवी देवेषु यज्ञता यज्ञत्र ।

रत्ना च यद् विमज्जासि स्वधावो माग नो अत्र वसुमन्त्र वीतात्

॥ २६ ॥

अन्वधिरुपसामग्रमस्त्युदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।

अनु सूर्ये उपसो अनु रुमीननु धावापृथिवी आ विवेश

॥ २७ ॥

प्रत्यधिरुपसामग्रमस्त्युत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।

प्रति सूर्येस्य पुरुषा च रुमीन् प्रति धावापृथिवी आ तवान

॥ २८ ॥

धावा इ धामा प्रथमे अतेर्नाभिधावे मन्तवः सत्प्रवाधा ।

देवो बन्मर्तान् यज्ञयाय कुम्भन्त्सीदुद्धोता प्रत्यह स्वमसु यन् ।

॥ २९ ॥

अर्थ—(पञ्च) हे वज्र धरने योग्य (धारने) अग्नि । (वत्) जब (पूजा समितिः) वह जन समान (देवेषु) देवजनोंमें (देवी) दिव्य पुत्रोंवाला व (वक्ता) वक्तावीर्य(प्रवाति) होवे (च) और (पत्) जब हे (स्वधावा) जब देनेवाले जाने। सू (रत्नाभि विमज्जासि) रत्नोको बाँधे तब (जम्) बहानर (ना) हमारे किए (वसुमन्त्र भाग) प्रभूतवस्तुका भाग (वीतात्) ॥ २६ ॥

(अमः) मुक्त-प्रसिद्ध (जातवेदाः) उत्तम पदार्थोंके ज्ञान करनेवाले (अग्निः) अग्नि (उपसो अयं) उपासी उत्पति व (अहाति) विनोको (अनु, अकवत्) प्रसिद्ध किया है। वह अग्नि (सूर्यः) सूर्यका हुआ (उपसः अनु रुमीन् अनु धावापृथिवी अनु) उपासीमें रक्षितनों तथा जातापृथिवीमें अनुकूल रूपसे (आविष्य) प्रविष्ट हुआ है। अर्थात् उपासी भी सूर्य रहता है फिरनों भी रहता है और जातापृथिवीमें भी रहता है ॥ २७ ॥

[मंत्रका पूर्वावर्त्त पूर्व मंत्रके पूर्वाधिक समाप्त है। अतः उत्तरका अर्थ वही समझना चाहिये। पूर्व मंत्रके अनु पदके स्वाम्पर वहां पर 'प्रति' वह पद आया है। अतः वहाँपर (प्रति अकवत्) का अर्थ करना चाहिये प्रसिद्ध रूपसे प्रसिद्ध किया है। शेष अर्थ समान है। उत्तरावर्त्तका अर्थ इस प्रकार है। उस अग्निसे (सूवस्व रुमीन्) सूर्यकी रिरनोंसे (पुरुषा) बहुत रूपोंसे (धावापृथिवी प्रति प्रति जातवान्) कुलोक व पृथिवी लोकके प्रति अर्थात् पु व पृथिवीमें प्रत्यक्षतया ईजा रखा है ॥ २८ ॥

(अमः) मुक्त या प्रसिद्ध, (उत्प्रवाधा) उत्प्रवासी वाके (धावा धामा) पु और पृथिवी (अतव) उत्तम। अतवा वक्तावीर्य(व) विमज्जासि (अभिभावे मन्तवः) सुवने जावक अर्थात् प्रतिदिनारे (मन्तवः) मन्तव हैं (पत्) जब कि (होता) रानी (देवः) प्रकाशमान अग्नि (मर्तान्) मनुष्योंको (पञ्चवा) वज्रके शिखे (कुम्भन्) प्रवृत्त करता हुआ (स्व अयं) अपनी प्रजा (अनु) को (अन्) माछ होता हुआ (अमह) सामने (सीदत्) बैठता है ॥ २९ ॥

जातार्थ है अग्नि। जब हमारा जनसमुदाय दिव्य पुत्रोंवाला व पूजनीय बने तब सबके तुलना रत्नोपमा बाँध और जब हमने अपने प्रभूत वस्तुधनसे पुत्र कर । (च १ । १ । पूज्य धामा) ॥ २६ ॥

अग्नि पहिले उपा व उत्पत्तर विमर्श प्रकट करता है। वही सूर्य रूपसे उपा फिरन तथा पुत्रोक व पृथिवी लोकमें प्रविष्ट हुआ हुआ है। अग्नि ही इन सबमें मित्र मित्र रूपसे प्रविष्ट हुआ हुआ है। वस्तुतः सूर्यादि अग्निके ही स्वरूप हैं। वे अग्निसे मित्र नहीं ॥ २७ ॥

अग्निसे उपा व दिव वक्ता सूर्यकी रिरनोंके पु व पृथिवी लोकमें प्रकाश कर रखा है। उत्तरव प्रकाश कर रखा है ॥ २८ ॥

जब अग्नि मनुष्योंको बहने शिखे सेवार करके स्वरूप जनके सम्मुख बैठता है तब वह हारा पु व पृथिवी प्रविष्ट रहते हैं। (च १ । २९) ॥ २९ ॥

दुर्मन्स्वप्नामृतस्य ताम् सलक्ष्मा मद् विपुरुषा मवाति ।

यमस्य यो मनर्वते सुमन्स्वप्ने सर्मन् पाश्र्वयुञ्छन् ॥ ३५ ॥

॥ ३४ ॥

सस्मिन् देवा विदये मादयन्ते विषस्वतः सर्वे चारयन्ते ।

स्ये ज्योतिरदधुर्मास्ये १ क्तुन् परि योतुर्नि चरतो अजसा

॥ ३५ ॥

यस्मिन् देवा मन्मनि सचरन्त्यपीन्ये १ न यमस्य विष ।

मित्रो नो अग्रादिहिरनागान्सविता देवो वरुणाय घोषत्

॥ ३६ ॥

सखाय आ क्षिपामहे ज्ञेन्द्राय वज्रिणे । स्तुप ऊ पु नृत्तमाय धूम्रवे

॥ ३७ ॥

अर्थ—इस संज्ञके पूर्वके पञ्चमें जो बाह्य-किं पद है कि कोई सुखी है वह कोई सुखी है तो संभव है कि मुख सुख की व्यवस्थामें किसी प्रकारका होय हो उससे किसीके साथ म्यास होता हो व किसीके साथ जन्माव । इस मंत्रमें हम यजुर्वेदके रहितमें रखते हुए उनका परिहास किया गया है कि—(यत्) यदि (सलक्ष्मा) यमके लिए जो व्यवस्था एकत्री है वह (विपुरुषा) जिस जिस कृपाकी (मवाति) हो जाये । यावि किसी पर वह ज्यों और किसीपर न कमे तो (अज) इस संसार में (अमृतस्य) इस अमृत अग्नि (ताम) नाम (दुर्मन्) अमृतकी हो जाये । (यमस्य) दे देवीवीच (मने) अग्नि (यः) जो कोई (यमस्य) न्यायकारी देवा नाम (सुमन्) मन्मनि (वर्तते) वहा पूजनीय मानता है (य) उसका (अधुर्मास्ये) प्रमादरहित होकर (परि) रखन कर ॥ ३७ ॥

(यस्मिन्) जिस अग्निमें स्थित हुए हुए [देवाः] देवता [विदेव मादयन्ते] यजुमें आवाहित होते हैं । और [विषस्वतः सर्वे चारयन्ते] प्रकृतमान् अग्निके यममें अपने आपको चारन करते हैं उस देवमें [स्ये ज्योतिः अमृतः] स्ये में ज्योति [प्रकाश] स्थापित किया है जो [मासि] चन्द्रमामें अमृत अचकत् निवारक रश्मियोंको स्थापित किया है अपना चन्द्रमामें राशियों स्थापित की हैं अर्थात् चन्द्र राशिके लिए निर्माण किया है जो कि दोबो स्ये व चन्द्र [अजसा] विरन्तर [योतुम्] प्रकाशमान अग्नि [परिचरतः] परिचर्या करते रहते हैं ॥ ३५ ॥

[यस्मिन्] अग्निमें मन्मनि [विष] जिसे हुए आगमें [विषा संचरन्ति] इस संचरण कर रहे हैं [यस्य] इस अग्निमें उस अमृतित ज्ञानको (यम् व विष) हम नहीं जानते । अतः [अज] वहा पर [हिता] जिस [अग्निः] अक्षय अविनाश, [सविता] देव [देवा] प्रकाशमान अग्नि [यः] अनामस्य हम गिरराशियोंके तथा [अजसा] पाप विनाशक [योचत] करे ॥ ३६ ॥

[सखाय] परस्पर प्रेम भावके मित्र बने हुए हम [नृत्तमाय] यम देवा [धूम्रवे] सन्तुष्टोंके अर्थ—वातक [यस्मिन्] यमचक्र [इन्द्राय] इन्द्रके जिस अर्थात् इन्द्रकी [स्तुते] स्तुति करनेके लिए [महा आ क्षिपामहे] महाज्ञानकी इच्छा करे ॥ ३७ ॥

याजुमें यदि अग्निमें व्यवस्था एक ही व हो तो संभारके उसका नाम ही मिल जाये । जो वह अग्निमें वातको पूजनीय प्रकटा है वही अग्नि विषा प्रमाद किए हुए रखा करता है । अग्निमें व्यवस्थापर किसीको कष्ट व कष्टी चाहिये ॥ ३४ ॥ अग्निमें स्थित देवपत्नी स्ये चन्द्रका निर्माण किया है । अतः स्ये चन्द्र गिरतर राशियों अग्निमें परिचर्या करते हैं ॥ ३५ ॥

अग्निमें विषा दुष्टा ज्ञान हम नहीं जानते अतः उस ज्ञान का बोध अग्नि स्वयमेव हमें कराये । यमके विषा कहे हमारा वातक दुष्ट है । (अ १ । ३२) ॥ ३६ ॥

हम परस्पर मित्र बने हुए मानसुख सिद्धि इन्द्रकी स्तुति व किए महाज्ञानकी ज्ञात करनी इच्छा करे । अतः इस प्रकारके इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिये इस विषयक ज्ञान उपलब्ध करे (अ ८ । १४ । १) ॥ ३७ ॥

परिषदः पितर ऊर्ध्वं १ वीगिमा षो हुक्या चकुमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा सतमेनाभा नः स योररपो दधात ॥ ५१ ॥
आच्या जातु दक्षिणतो निषेद नो हविरमि गृणन्तु विधे ।
मा हिंसिष्ट पितरुः केन विभो यम् आगः पुरुषता कराम ॥ ५२ ॥
त्वष्टा बुद्धिरे बहत्तं कृणोति तेनेद विधं मुषन समैति ।
यमस्य माता पर्युषमाना महो जाया विवरवतो ननाष्ट ॥ ५३ ॥
प्रेहि प्रेहि पयिमिः पूर्णोषेयोना ते पूर्व पितरुः परेता ।
उमा राखानौ स्वचया मदेन्तो यम पदयासि वरुण च देवम् ॥ ५४ ॥
अपेतु की तु वि च सर्पतासोऽस्मा एत पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरुत्त्रिभन्तुमिर्भ्य क यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ५५ ॥

बर्च-वर्द्धिपदः पितरः) है बर्द्धिपद पितरों (बर्चोद्) हमारे प्रति (कृति) एकमात्र भावों (वः) तुम्हारे किय (हक्या) हथ्योंको [चकुम] करते हैं उनका [उत्तरध्वम्] शीतिपूर्वक खेवन करो । [ते] व तुम (सतमेन अवसा) कदाबानकारी रखनेके साथ [नमाय] भावों । [मय] और उन [का] हथें [अरपः] पापराहित्य आचरण, (स) कदाबान और [नोः] दुःखविषयों [दधात] दो । ॥ ५१ ॥
[विधे] तुम सब पितरों । [जातु] आच्य] बांयां तुम्हारा टेककर [दक्षिणतः] विषय] दाईं ओर बैठकर [हने] धर्म रूप पक्षक [जाति शुचीय] स्वीकार करो । [पितरः] है पितरों । [पराय आच्य] को तुम्हारा अपराध प्रकरण का काम प्रकरणवत् करान बर्चोद् अनुपपत्त्यके कारण इस करते हैं देखे (केन पितर) किसी भी अपराधके कारण (मा हिंसिष्ट) हमारी हिंस मत करो ॥ ५२ ॥

(ज्या बुद्धिरे बहत्तं कृणोति) त्वष्टा अपनी पुत्रीका विवाह रचवा है [इति] इस कारण (इष्ट विधं मुषन) यह छार छुपन [यमेति] हकूम होता है । (परे दधमाना) प्यारी जाती हुई बचस्क माता) यमकी अपनी व (महः) विवरवता) जाया) महारा विरस्यन् की पत्नी (ननाष्ट) नष्ट हो जाती है ॥ ५३ ॥

हे मृत पुत्र ! (वत्तमिष्ट लोकमें) (वः पूर्व पितरः) हमारे पूज्य पितर (प्रेतु) गद्गद् हैं वत्त लोकमें (पूर्वोमिः पयिमिः पयिमेके) मातों द्वारा (प्रेहि प्रेहि) अवश्य आ । वत्त लोकमें जाकर (स्वचया मदेन्तो) स्वचाके आत्मविश्रु होत हुए अपनी मृत्यु होत हुए [उमा राखानौ] दोनों राजा [यम वरुण एवं च] यम तथा वरुण देखको (पदयासि) देख ॥ ५४ ॥

हे मित्रकारी जनो ! [यम इष्ट] बड़ाते चके भावो । [पितर] भाग जानो । [मि अर्पणत] समेया यह त्याग छेककर ह जानो । [मरन] इष्ट प्रेतके किय (पितर) पितरोंमें [पुतं] लोकें लकन] यह त्याग किया है । [यस्मै] हम मृतक किने [यमा] यमों [अयोमिः] रिशेके व (मक्ति) पैव लकोके तथा [अपतुमि] शान्तिवोके [पक्षक अवसानं] वत्त समाप्ति [दधन्तु] की है ॥ ५५ ॥

१. मयार्च-वर्द्धिपद पितर हमारा । कृण कर और अर्चके वरक में हम उनका हकमहि प्रकरण द्वारा करार करें । वे हमारे दो तथा बर्चोक्ष दूर करते हुए हमारा धरक्षण करें ॥ ५१ ॥

हे पितर दाईं ओर बांयां पुत्रका टेककर ह्वन बहथें बैठो । यदि हम अनुपपत्ति से किसी प्रकारका अपराध अवमान र चान तो बचके कारण हमारा विवाह मत करो । (व १५३९) ॥ ५२ ॥

यमकी माताका नाम पर्युष है व पितर का नाम विवरवता अपावि गृह है अर्चान यम विवरवान् [हने] का पुत्र दे मरत को वैरप्रभों वरवत्त के काम से पुकारा गया है ॥ ५३ ॥

अहो हमारे पूर्व पितर गव हैं वहां वह छुन अनुपप जाये व वहां रचवाके आर्चय प्राप्त करे ॥ ५४ ॥

अवेसा दासिं ध्रुतो वृहत्येन वृत्रहा । मधर्मेषो नो अति गुर दाशसि ॥ ३८ ॥
 स्नेहो न धामत्येपि पृथिवी मही नो पातो इह वान्तु भूमौ । ॥ ३९ ॥
 मित्रा नो अथ वरुणो पुन्यमानो अग्निर्वने न न्यसेष्ट ओकम् ॥ ४० ॥
 स्तुहि ध्रुव गतिं सदा जानानां राजानं भीममुपहस्तुमुग्रम् । ॥ ४१ ॥
 मुडा अग्निरे रूद्र स्वर्षानो अन्यमस्मात् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥ ४२ ॥
 गरस्वती देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे त्रायमानि । ॥ ४३ ॥
 सरस्वती सुकृता हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्य दातु ॥ ४४ ॥

अथ—इ इन्द्र । त्रिष मकार ए (वृत्रहातेव) वृत्रहो मारयेते इवहा (उग्रहवक) नामते (ध्रुव) विष्णवे हे उग्रो मकर
 (दि) विधायते (अथवा) वरुण भी प्रसिद्ध है । अथवा ए आचम्य वरुणान् होने से भी प्रसिद्ध है । हे अग्निरे । इ (वेद
 मन्त्रो) धर्मो धनवा ए इह इव जगते भी (अग्नि) वरुण (दाशसि) स्तुति करनेवालोंको देता है । अथवा अस्मात् जग
 भी दानमें उदा मुकारका मही का अकला ॥ ३८ ॥

(रवग धाम् ५) त्रिष मकार स्वेय मकार अमयविष अम्यसमग्र क्या पुष्प गुणिवोर भजन करवा है उग्रो मकर
 ए (मही पृथिवी) हम वही भागी पृथिवी पर (अग्नि पृथिवी) बहुधापससे विचारन करता है । अति ॥ वही पर जाने
 क अर्थमें मानना चाहिये । (५) हमारे त्रिष (इह भूमौ) इस पृथिवी पर (दाश) वान्तु मुकदाई हवायें बहें । ओर (मन्त्रो)
 पु यनिवारक (मित्रा) मित्र भूत (पुन्यमाणा) हमारे कष्ट विचारन करनेसे क्या हुआ (वा लोको) हमारा लोक को (न्यसेष्ट)
 दूर करो (वने अग्नि न) त्रिष मकार से कि वनमें शाखायाम अग्नि पाश दूध जगदी को जलाकर दूर करती है ॥ ३९ ॥

[इवहा वृत्र है] इन्द्रुति करनेवाला (मु) विष्णवा (मकसह) एव पर सवार होनेवाले (जानां राजानं) जगते लक्ष
 (भीम) मकर (उपहानुम्) समीप जा आकर मारयेगा (कमम्) छोटे इवमावका कृकी (स्तुहि) स्तुति कर । ओर (मन्त्रो)
 इ वृत्र । ए (स्वर्षानो) रूद्रि विषा मका (अग्नि) उग्रि स्तुति करनेवाला इन्द्र (मुक) मुक्त देनेवाला हो । (कि सेन्ये) ओर सेन्ये
 (न्यसेष्ट) हम स्तुति करने वालोंसे मित्र दूधको (मित्रयन्तु) काट काटें, मार काटें ॥ ४० ॥

(इवयन्तः) इव करनेकी कामना करत हुए लोक (सरस्वती इवन्त) सरस्वतीको पुकारते हैं । ओर (अन्यसेष्ट) जगते
 विष्णु इवहादिप काममें जगते (मरस्वती) मरस्वतीको पुकारते हैं ओर (मुकदा) जगते देनेवाला मकर (मरस्वती
 इवन्ते) मरस्वतीको पुकारते हैं । (मरस्वती शाशुव) मरस्वती दानी मनुष्यक विष् (वार्य) वरणीय अधिकतम स्तुतिके (दातु)
 दती है ॥ ४१ ॥

अथ व—इ इन्द्रो मारयेत त्रिष मकार पुन्यमाणा नामक आश्रय है उग्रो मकर मारवा होनेसे भी प्रसिद्ध है । जग
 मकर अह भी दानकर वही है । वह लोको का लक्ष दान करता है । (वा ५ १० १२) ॥ ३८ ॥

त्रिष मकार ए वरुणो अग्निरेव पुन्यमाणा पुन्य गुणिवोर भजन करता है उग्रो मकर वह मित्रभूत धाम कही पुन्यमा
 अमन का एक जगत् का दवाका जगत् का है । अथवा पुन्यमाणा सा पुन्य व राजा विष दाश प्रसादे का जो इव जगते
 दूर करे कि मित्र करके अम करनेसे लक्षमा पाव पुन्य जगती लक्ष को दूर करती है ॥ ३९ ॥

इ वना । वह मकर मकर अनुवाक अथ गुणविष्णु दाशो रूद्रि करो । वह एव नि विषा मुकदा अने
 पुन्यमाणा दाश । वही जो अने धन को दान करता है । (मन्त्रो) दान करता है । (वा ५ १० १२) ॥ ४० ॥

विष्णु इव करनेवाला वह जो वही जो अने दान करता चाहिये । मुहुर मर सरस्वती का आश्रय करने है । मरस्वती
 वा ५ १० १२ इव अने अथ इव वही इव । इव है । (वा ५ १० १२) ॥ ४१ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यजुर्माभिनर्षमाणाः ।

आसद्यास्मिन् बर्हिर्वि मादयन्मनमीवा इय आ चैसास्मे

॥ ४२ ॥

सरस्वति वा सरर्ष यथाथोक्त्यैः स्वभार्मिर्देवि पितृभिर्मदती ।

सहस्रार्पमिदो अत्र साग रायस्योप यजमानाय भेहि

॥ ४३ ॥

उदीरतामधर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।

असु य ईयुर्युक्ता अंतङ्गास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु

॥ ४४ ॥

आई पितृन्सुभिदत्रौ अविस्ति नपात च विक्रमण च विष्णोः ।

बर्हिपदो ये स्वधया सुतस्य भवेन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः

॥ ४५ ॥

इद पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वीतो ये अपरास ईयुः ।

ये पाधिने रत्नस्था निपचा ये वा नून सुषुजनासु दिक्षु

॥ ४६ ॥

अर्ध-[दक्षिण] दक्षिण दिशासे आकर [यजु भद्रिबलमाना पितरः] यजुको सब ओरसे प्राप्त करते हुए पितर [वा सरस्वतीं हवन्ते] जिस सरस्वतीको बुझते हैं देखी है सरस्वती। वृ तथा पितर [अस्मिन्] इस [बर्हिर्वि] यजुमें [आसद्य] बैठकर [यजुवर्ष] प्रसन्न होयो । [अस] हवें [अमयीका इयः] रोगरहित जनोंको अर्थात् जिसके कानेसे किसी भी प्रकारका शब्द न सोये देखे जनोंको [आयेति] हे ॥ ४२ ॥

[यस्वति देवि] हे सरस्वती देवी [वा] जो वृ [पितृभिः स्वभार्मि- पदवती] पितरोंके साथ निककर स्वभार्मोंसे आनन्दित होती हुई [यस्य] भित्तोंके साथ समान स्वर काशीयन करती हुए [यवाय] आई है हे सरस्वती। वृ [यजु] यजु यजुमें [यजमानाय] यजमानके किए [सहस्रार्प इका] मार्ग [इमारोति] पूजकीय अन्तरे आगके और [रायस्योप] अपनी पुष्टिको [भेहि] हे ॥ ४३ ॥

हे [सोम्यासः] सोम संप्राप्त करनेवाले [अवरे] निकट [उत् परासः] और उत्कृष्ट [उत्] तथा [अम्यमा] अम्यम [पितरः] पितरों ? [उदीरतां] उदासिधे प्राप्त होयो । [ये अयुक्ता] दिन हिला न करनेवाके पितरों [असु ईयुः] अम्यको प्राप्त किया है अर्थात् जो अम्यकारी पितर हैं (ये) [ये अयुक्ता] सरय न यजुको मानने वाले [पितरः] पितर [हवेषु] हुकाए कामेपर [न] हमारी [रत्नानु] रक्षा करें ॥ ४४ ॥

[सुभिदत्रौ पितृ] उत्तम जनसंघ पितरोंके [आ आवातां] अपनी प्रकार प्राप्त करता है । [विष्णो] अपात चिक म्यं च और सर्वस्वात्म परमेश्वरके न मिश्रितके अर्थात् उदासि करनेवाके शीर्षके प्राप्त करता है । [बर्हिपदः पितर] पुत्राद्यवर वैदेयके पितर जो कि (स्वधया) स्वधारे साथ (सुतस्य पितः) उत्पादित अर्थात् वेवा किं हुए अन्तः (यजुवर्ष) प्रेषन करते हैं वाणि करते हैं [ये] ये पितर [इह] इस यजुमें [अम्यमिष्ठा] आये ॥ ४५ ॥

[यजु] आज [पितृभ्यः] पितरोंके भित्त (हई नमा असु) यह नमस्कार हो । किं पितरोंके किए ? [ये] जो कि [पूर्वताः] पूर्वकीय पितर [ईयुः] स्वर्गके गए हुए हैं और [ये] जो कि [अपरासः] अर्थात् पूजकके पितर स्वर्गके गए हुए हैं । और [ये] जो कि पितर [पार्थिव इजसि] पार्थिव रत्न पर अर्थात् पृथिवीपर [वा विपचा] स्थित हैं [वा] अथवा [ये] जो कि [पूर्व] निजधरे [सुषुजनासु दिक्षु] उत्तम यजु वा यजु युक्त यजुओंमें स्थित हैं ॥ ४६ ॥

वाक्य- पितर सरस्वतीको यजुमें बुझते हैं । (अ १ । १५। ८) ॥ ४२ ॥

सरस्वतीका पितरोंके साथ समान स्वर काशीयन करना स्वभावात् न यजुमें माना होता है । अ १ । १५। ९ ॥ ४३ ॥

यजु अन्तरे उत्तम अम्यम तथा निकट पितर अपनी कक्षति करें । हमारे सहायताके पुत्राद्यवर आकर हमारा रक्षण करें ।

अ १ । १५ । १; यजु १५।४९ ॥ ४४ ॥ अन्तःप्राप्त यजु पितरोंको न अथवा परमात्मके शीर्षके ये प्राप्त करवा दें । स्वधाक

यजु परम अन्तः करनेवाले पितरों इस यजुमें आये । अ १ । १५।१३; यजु १५। ५६ ॥ ४५ ॥

३ (अ सु. भा. कां १८)

मार्तली कृष्यैर्यमो अक्षिरोभिर्बुधस्पतिर्शक्रवर्भिर्वायुधानः ।

यामं देवा वायुधुर्यं च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवैषु ॥ ४७ ॥

स्वादुष्किलायं मधुमौ तृतायं तीव्रं किलायं रसवां तृतायम् ।

ततो न्य १ स्य पापिवासमिद्व न कश्चन संहत आधुवेष्टु ॥ ४८ ॥

प्रेयिवांसं प्रवतो मुहीरिति बुधस्पतः पचामनुपस्पष्टानम् ।

वैवस्वतं सुगमनं खनानां यमं राक्षानं हविषा सपर्यत ॥ ४९ ॥

यमो नो गातु प्रयमो विवेद नैषा गम्भूतिरपमर्तवा उ ।

यत्रा न पूर्व पितरः परैता एता संज्ञानाः पृथ्या इ अनु स्वाः ॥ ५० ॥ (५)

अर्थ—[मार्तली] इह [कष्यैः] कष्योके, [यमा अक्षिरोभिः] यम अक्षिरसोके नीर [बुधस्पतिः कश्चन] बुधस्पति कश्चन सोके अर्थात् अथ। सवन्ती द्वाय रक्षयेवास्त्रोके (वायुधानः) इत्येको मात्र होता है । [याम देवाः वायुधुर्यं] यिन्को देखो वाया है तथा [वि देवान्] को देखोको कहते हैं, [ते] ने अर्थात् संशोध कष्य अक्षिरम्वादि को फिर है के हवती अक्षय अनेपर रक्षा करे ॥ ४७ ॥

[मधु] वह सोम रस [किञ्च] निम्नवले [स्वानुः] स्वादिष्ट है । वह सोम रस [मधुमार] आधुवेष्टुको पुष्ट है । [य] तीर (अथ) वह सोम (किञ्च) निम्नवले (तीव्र) पीनेसे स्वास्त्रमें कायेवाका है । (उत) नीर (अथ) वह सोम [रक्षानम्] रक्ष मवाका है । (उत) आरः पु [वि] निम्नवले (अथ पविर्वासां) हमको पान करनेकी इच्छा रखनेवाके (हम) हमको (वास्त्रे) अस्त्रों में (क च व) कोई भी (म संहत) नहीं संहत। अथवा उतके अन्तरे अन्तरेमें कोई भी रिक नहीं सकृत् ॥ ४८ ॥

(प्रवतः) प्रकृष्ट कर्म करनेवालोंको उत्तम कर्म करनेवालोंको तथा विद्वत् कर्म करनेवालोंको (महीर इति) नृमि महीरोंको प्रेषिवांसं) दान करात हुए तथा (बहुग्वः) पन्थी अनुपस्पष्टानम्) बहुतों के किये मार्गको दिखकाते हुए नीर (अथवा अक्षय) हममें अनुप्य जाते हैं येन वैवस्वतं) विवस्वान्को पुष्ट (यम राक्षानं) यम राक्षानी [हविषा सपर्यत] हविषा पुष्ट पुष्ट है ॥ ४९ ॥

(यमा म गातु मयः) विवेद यमने हमारा मार्ग समझे पहिना जाना । (यषा गम्भूतिः) यषा यममें) यह जान बरत (के लिये नहीं है अथ ल इम मार्गको कुटका। वाया नहीं का सकृत्)। वह मार्ग कायमा है वह मात्र उवाचोके एकले —(यत्र न पूर्व पितः) य उ) अक्षर हमारे पूर्व पितर मय हुए हैं । (यत्र एता) इत मार्गोके (यज्ञानां) यज्ञ अने (य एता यज्ञानां अनु) अपने अपने पन्थोंके अनुसार जात हैं ॥ ५० ॥

भाषार्थ— पुरातन कालके अश्वीनीय काम का तितर है और का इम अथवा शुक्ली लक्ष्मण विषयान है अथवा रक्ष नपाय्य क्षेत्र प्रजाओंमें विषयान है उन सब पितरों का नय नमस्कार है । अ. १ १५५३, वृत् १५५४ । ४९ ॥

यम अपनी अपनी छत्रिरेधि करते हैं उभी प्रकृष्ट तब काम अपनी छत्रिरेधि करते हैं । ४८ ॥

मैत्रय नामा म पुर्न अथ पुत्रोशने सोमको पीनशालेय काई भी परामय नहीं कर सकृत् ॥ ४८ ॥

अन्तमें जाना वीरेव्य नीरोंको यमन यमनोंको के जाना है अतः वह वीरेव्यर आया हुआ है और उदध वह अर्न १ ५४१ है । इवमथ उभयो इव पूजा करें ॥ ४९ ॥

[यमनायमे पर शक्तिरोंके आनेके लिए या मार्ग है उदध नहीं भिरेव है ।] यम हमारा यमनोंको जनेअ अर्न हम कहिये जायत है श्वोश वह उत मार्गका आधिष्ठाय है । इम मार्गके तुल्यकारा कला कठिन है यमाके को हाव इम ५४ अथवा मोया ही ४५ ॥

वर्हिषदः पितर ऊर्त्य १ वर्णिमा नो हृष्या चक्रमा जुषध्वम् ।

त आ गतावसा क्षतमेनावा नः श्व पोररपो दधात

॥ ५१ ॥

आन्या आनु दक्षिणतो निषेष्ट नो हविरभि गुणन्तु विधे ।

मा हिंसिष्ट पितरुः केने चित्रो यद् आगः पुरुषता कराम

॥ ५२ ॥

त्वष्टा दुहित्रे बहसु कृणोति धेनेद् विधं मुनेन समेति ।

यमस्य माता पर्युष्टमाना मूरो जाया विवरसतो ननाश

॥ ५३ ॥

प्रेहि प्रेहि पृथिभिः पर्यायेर्येना ते पूर्वे पितरुः परंता ।

उमा राजानौ स्वचपा भवेन्तौ यम पर्यासि वरुण च वेवम्

॥ ५४ ॥

अपेवु वी त वि च सर्पतातोऽस्मा एवं पितरौ लोकमक्रन् ।

अहोमिरङ्गिरक्तुमिर्क्य क यमो ददात्मवसानमस्मै

॥ ५५ ॥

वर्ह-वर्हिषदः पितरः) वे वर्हिषदः पितरौ ? (अवाक्य) हमारे मति (प्रति) रहनाथ जानो। (वा) तुम्हारे छिप(हृष्या) हृष्योके [चक्रमा] करते हैं उनका [जुषध्वम्] गतिपुद्गल लेवन करो। [ते] व तुम (क्षतमेन अवसा) क्षतमानकारी रहनके साथ [अमात जानो]। [अव] भीर तब [नः] हमें [अरपः] पारहित आचरण (अं) करवाय भीर[योः] हुआविरोध [दधात] दो। ॥ ५१ ॥
[विधे] तुम प्रथम पितरौ ! [आनु आन्य] दोनों पुरुषा देवकर [दक्षिणतः निषेष्ट] दाईं ओर बैठकर [हमं] वध, इस वधका [आदि पृथिवी] स्वीकार करो। [पितरः] वे पितरौ। [यवना आया] जो तुम्हारा अपराध(पुरुषता कराम) उपकारन कराय अपना मनुष्यत्वके कारण हम करते हैं देखे (केव पित्) छेडी जी अपराधके कारण (मा हिंसिष्ट) हमारी हिंस नय करो ॥ ५२ ॥

(अहा दुहित्रे बहसु कृणोति) त्वष्टा अपनी पुत्रीका विवाह रक्ता है [इति] इस कारण (हृद विधं मुनेन) वह छार सुवन [धमेति] हृन्म देता है। (परि उष्टमाना) भ्वाही गायी हुई नयस्व माता) नमकी नमनी व(महः विवस्वताजायां) महान विवस्वताजायां) महान विवस्वत की पत्नी (ममाद्य) वह हो गायी है ॥ ५३ ॥

वे मृत पुत्र। (वर्णमिह लोकमे) (वा पूर्वे पितरः हमारे पूर्वज पितर (परेषु) परपुत्र हैं वध भोक्तृ(पूर्वभिः पृथिभिः पृथिकेके यामो ह्रा)। (विहि वधि) नयन वा। वध भोक्तृ काक[स्वचपा मरुतो] स्वचास आकम्बित होते हुए अपना पुत्र होत हुए [उमा राजानौ] दोनों राजा [यम वरुण] वम तथा वरुण देवको[पर्यासि]रेष ॥ ५४ ॥

वे दिव्यकारी जानो ! [अव ह्य] वहाई चके जानो। [वीर] माय जानो। [वि पर्यास] सर्वय। वह स्थान छोड़कर व जानो। [वसा] इस बैठके निवृत्ति[पितरौ] पितरौ[वत्] लोक के भक्षण) वह करान किया है। [अरपे] इस मृतक किये [यमा] यमा [अहोमिः] विरोधे व[मिः] मिय जकोसे तथा[अपतुगि] रात्रिबोधे[वधक] अपराध] त्वष्ट समसि [ददातु] दी है ॥ ५५ ॥

१. आधर्म-वर्हिषद पितर हमारा भक्षण करें भीर उनके वरुण में हम उनका हृष्यादे वशा ह्रात छारकर करें। वे हमारे रो पण मनोके दूर करते हुए हमारा भक्षण करें ॥ ५१ ॥

वे पितरौ दाईं ओर दोनों पुरुषा देवकर इस वधमें बैठे। यदि हम मनुष्यों से किसी प्रकारका अपराध अनजाने र थाय तो वधके कारण हमारा विपद्य मत करो। (व १५१२) ॥ ५२ ॥

यमकी माताका नाम कर्ण्य है व पिता का नाम विवस्वत अपना पूर्व है अनौत यम विवस्वत [पूर्व] का पुत्र वे अतए वधे वेदमोत्रों देववध के बाद वे पुत्रार यमा है ॥ ५३ ॥

वहा हमारे पूर्व पितर नय हैं वहा वह मृत मनुष्य जाने व वहा स्वचासे जामेद माझ करे ॥ ५४ ॥

उधन्तस्त्वेधीमधुमन्तः समिधीमहि ।

उधन्मुधत आ धह पितृन् हविषे अर्चये

॥ ५६ ॥

धुमन्तस्त्वेधीमहि धुमन्तः समिधीमहि ।

धुमान् धुमन्त आ धह पितृन् हविषे अर्चये

॥ ५७ ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अर्धर्वाणो मृगवः सोम्यासः ।

तवां वयं सुमवौ यक्षिर्मानामपि अत्र सीमन्से स्पाम

॥ ५८ ॥

अङ्गिरोमिर्यक्षिर्वा गङ्गीह यम वैकुपेरिह मादवस्व ।

विषस्वन्त हुवे यः पिता वेऽस्मिन् बहिष्या निषर्च

॥ ५९ ॥

अर्धं दे नाम । [वसन्त] तेरी कामना करते हुए हम [स्वा] वेत्ति [धीमहि] स्थापन करते हैं । और [वसन्त] तेरी कामना करते हुए हम [समिधीमहि] तुझे प्रसीध करते हैं । [वसन्त] हमारी कामना करती हुई दे अग्नि । तू [हविषे अर्चये] हमें कामना के लिए [वसन्त पितृन्] कामना करते हुए पितरों को [धावह] पास करा-के वा ॥ ५६ ॥

दे अग्नि ! [धुमन्त] दीप्तिमान् होते हुए हम [स्वा धीमहि] तुझे प्रकथित करें । [धुमन्त] और दीप्तिमान् हम [समिधीमहि] तुझे भली प्रकार प्रसीध करें । धुमान् दीप्त हुआ हुआ तू [धुमन्तः पितृन्] प्रकथनान्न विनोदों [हविषे अर्चये] हमें प्रकथार्थ [धावह] के वा ॥ ५७ ॥

[यः अर्चयः] अथर्वः पुराणः सोम्यासः काङ्गिरस पितरः । हमारे वसन्त अर्धर्वा मृग, सोमर्पाव कामना अङ्गिरस् पितर हैं । [तवां वक्षिर्वा] अब वक्षार्थ अङ्गिरस् पितरोंकी [सुमवौ] उन्नत प्रकथार्थों वयं [मदे सोमवसे] धूम संकथार्थों [स्पाम] होने ॥ ५८ ॥

दे यम ! [वैकुपे] विविध स्वरूपवाले [यक्षिर्वा] यक्षों कोय प्रसीध [अङ्गिरोय] अङ्गिरस् पितरोंके कामना [मादवस्व] इस हमारे यक्षों वा । यक्षों जाकर ही गई इनीको जाकर [मादवस्व] आधरित हो । [विषस्वन्त] तू [विषस्वा] यक्षों को मैं प्रकथित हूँ [यः] जो कि विषस्वा [वे पिता] वेरा पिता है । वह विषस्वा [यक्षिर्वा] यक्षों बहिषि वा विषय] इस यक्षों जाकर कामना कर गङ्गीह ही हुई इनीको जाकर कामना कर लेने । [अ १ । १३५] ॥ ५९ ॥

आदर्श रूप की अर्धवेत्ति नामा के लिए स्वाय वा पितर विनोदित करते हैं । वही अर्धवेत्ति प्रायः य विषय कामना के वावक रूप है दिन रात आदि की कामना हो चुकी है अर्थात् वह घर वश है । अब पूर्वार्थानुसार घरोंपर पितर इच्छा किए स्वयं वक्षों हैं इसको ही अभिप्राय हो सकते हैं (१) वा वा जो पितर स्वयं वक्षत हैं तू स्वयं मृगिका हो सकता है अथवा (२) वह यम मोचना हो सकता है ॥ ५५ ॥

दे अग्नि ! हम वक्षार्थों तेरी कामना करते हुए तू स्थापना करें व सुख प्रकथित करें । तू हमारे वक्षों विनोदों व कामना के लिए पितरों की कामना कर । [यक्ष १३५] ॥ ५६ ॥

अब वेचनके लिए पितरों की कामना बहिष्य ॥ ५७ ॥

हमारे विषयों पितरोंकी बुद्धि वक्षत हो पूरा आचरण करना हमें अनित है ॥ ५८ ॥

यक्षों वयं व अङ्गिरस् पितरोंकी बुद्धि कर वक्षों इति ही जातो है वक्षत पितर विषस्वा (पूर्व) के वक्षों वक्षों वक्षों वक्षता वक्ष है व इति कामना के लिए ही जाती है । अर्थात् पितर माया वक्षों के अर्थात् वक्षों स्वयं विषय है ॥ ५९ ॥

इम यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोमिः पितृभिः सविद्वानः ।

आ त्वा मन्त्राः कविधस्ता धेहन्स्तेना राज्ञि हविषो मादयस्य

॥ ६० ॥

इत एत उदारैहन् विषस्पृष्टान्पारैहन् ।

प्र मूर्धभो यथा पथा घामङ्गिरसो ययुः

॥ ६१ ॥ (६)

[२]

युमाय सोमः पवते युमाय क्रियते हविः ।

यम इ यज्ञो गच्छत्यधिर्वतो अरंकृतः

॥ १ ॥

युमाय मधुमन्त्रं जुहोता प्र च सिष्ठत ।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वमेभ्यः पूर्वैभ्यः पथिकृद्भ्यः

॥ २ ॥

युमार्य घृतवत् पयो राज्ञे शिषेष्टोत्तन ।

स नो जीवेत्ता यमेर्धमायुः प्र जीवसे

॥ ३ ॥

अर्थ— [आङ्गिरोमिः पितृभिः सविद्वान्] अगिरम् पितरोंके साथ एकमत्र हुआ हुआ है यम । १ [इमं प्रस्तर] इस विस्तृत केके हुए आसमपर [आसीत्] बैठ । [त्वा] तुझे [कविधस्ताः मन्त्राः] अमृत्येधियों द्वारा स्तुति किए गए मंत्र [या वहन्तु] सुकर्मों । [पथा] इस [हविषा] हविहारा [मधुमन्त्रं] मन्त्र हो । (अ. १ । १४३) ॥ ६० ॥

[एते] य पितर [इत] बहाते [इत या उदारैहन्] ऊपरको बहाते हैं । [पथा] यज्ञमधि आहन् । और युक्त पृष्ठोपर मध्य स्थानोंपर—बहाते हैं । [यथा पथा] जिस प्रकारके मार्गके कि [ययुः] यमि धीतयेवाक [अगिरसः] अगिरस पितर [या] सुकोकर्म [मधुः] गय हुए हैं ॥ ६१ ॥ [२]

(यमाय सोमः पवते) यमके किए यज्ञमें सोमको दक्षिण किया जाता है । (यमाय हविः क्रियते) यमके किए हवि प्रदाय की जाती है (अरंकृतः) यमा प्रकारके यज्ञोंके उत्पत्तिसे जो अरंकृत किया हुआ (अगिरसः) अगिरसके यज्ञका हृत बना करने (इ) निम्नयष्टि (यज्ञः) यज्ञ (यम गच्छति) यमको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

(यमाय) यमके किए (मधुमन्त्रं) अमृत्येध मधुमन्त्रा (जुहोत) प्रदत्त करो । और हवि दत्त (प्र-सिष्ठत) प्रतिष्ठाको प्राप्त करो यथा शीघ्र जीवन्तः काम करो । (पथिकृद्भ्यः) रत्ता यमनेवाके मार्गप्रदर्शक (पूर्व-मेभ्यः) सोमवर्षे एव उत्पन्न हुए हैं [पूर्वैभ्यः] हमसे पूर्वके हैं एते, आदिभ्यः) शान्तिवैकि किए (इदं यमा) यह यमस्कार है ॥ २ ॥

(यमाय राज्ञे) यम राजाके लिए (घृतवत् पयो) पीने योग्य घृत तथा (हविः) हविषा (जुहोतव) दत्तान करो । (या) यह यम (अगिरसे) अगिरस तथा सोमके लिए (जीवेत्ता) जीवोंमें अमर्त्य प्रसारमें (य) हमें (शीघ्र जातु) शीघ्र जीवन्त (या वयेत्) एवं ॥ ३ ॥

आचार्य—यम अगिरस पितरोंके साथ यज्ञमें विस्तृत आसमपर बैठता है । उक्तमन्त्रों द्वारा स्तुति करके उसे यज्ञमें हवि दी जाती है ॥ १ ॥

अगिरस पितर बहाते धार आकर सुकोकर्म स्थित होते हैं । उनके जानेवा माय रही है या कि धार यमोंका पुनः यमें प्रवेश है ॥ १ ॥

यमके लिए सोम हवि आदि यज्ञमें देन आदि । यह यमका निम्नवर्ष प्राप्त होता है ॥ १ ॥

यम राजाके लिए मधुमन्त्र हवि दी और प्राणीय अगिरसोंके लिए यमस्कार करो ॥ २ ॥

यम राजाको हवि आदि देवेते वह हमें अमर्त्य शीघ्र जीवन्त प्रदान करता है ॥ ३ ॥

मैनममे वि दहो माभि धृष्टचो मास्य स्वर्चं पिषिपो मा धरीरम् ।

धृतं यदा करसि जातवेदोऽध्वमेन प्र हिणुवात् पितृकम् ॥ ४ ॥

यदा धृत कृण्वो जातवेदोऽध्वमेन परि दधात् पितृम्यः ।

यदो गच्छात्स्वर्गनीतिमेतामर्ष देवानां वक्षन्मीमाति ॥ ५ ॥

त्रिकृत्केमिः पवते पतुर्विरकमिद् बृहत् ।

त्रिष्टुम्भायत्री छन्दोसि सर्वा ता यम आर्यिता ॥ ६ ॥

सर्वं पशुपा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मनिः ।

अपो वा गच्छ सवि तत्र ते हितमोर्षधीनु प्रति तिष्ठा धरीरः ॥ ७ ॥

वर्च- [अग्ने]दे अग्नि। [एवं मा विदहः] इय मेवको हस प्रकरके मत कका कि विदहो इत्ये विनेक कय जतीय हो। [माभि धृष्टचः] इत्ये जोषलुक मत कर । [अस्व स्वर्चं मा पिषिपा] इसकी ल्पवा अर्वात् यमहीको मत हैक । इत्ये धरीरं विद्यमान ल्पवा मांस आदिको इस प्रकरके कका है कि कोर्मी माप अवशिष्ट व रहने पाने । [वातवेदः] हे वातवेदः अग्नि [यदा धृत करसि] अब वृ इस मेवको प्रतिपन्न बना है अर्वात् पूर्वतया कका है [यदा] तब [एवं] इस मेवकी आत्मात्मे [पितृकम्] यम प्रहितुवात् [पितरो] के पास भेज दे अर्वात् पितृकोकर्म इस मेवकी आत्मा चली जाने । अ. १ । १५ । १४ । ४४

(वातवेदः) हे वातवेदः अग्नि । (यदा धृत कृण्वः) अब वृ इस मेवको पूर्वतया ल्पवा अर्वात् यम अ है । (यदा) तब [एवं पितृम्यः परि दधात्] इसको पितरोंके किये छोंप दे । (यदा) अब वह जेत (एतां वक्षन्मीमाति) इस प्रायश्चित्त लब्ध को प्राप्त होता है अर्वात् अब इत्ये प्राय विक्रम जाते हैं । (यदा) तब प्रायश्चित्त विक्रम जातेपर जेत [मुत् करीर] [देवानां वक्षन्मीमाति] देखेंकि यदा हो जाता है । [अ. १ । १५ । १४] ४५

[एवं इत् बृहत्] अर्कका ही वह अर्धविपत्ता यदाय यम [त्रिकृत्केमिः] तीन कृत्कों से [वृ उर्मी] उर्मीको को [पवते] प्राप्त होता है अर्वात् व्याप्त करके स्थित है । [त्रिष्टुम् पायत्री] त्रिष्टुम् पायत्री आदि [ता सर्वा अर्यिता] वे सब कर्म [यमे] उच्च विपत्ता परमात्मा में [आदिताः] स्थित हैं । [अ. १ । १५ । १४] ४६

हे मेव ! वृ [पशुपा सर्वं पच्छ] बाण के सर्व को जा । (वातमा वाते) वातमासे [प्रायश्चित्त] वातको जा । और हे मेव ! (धर्मनिः) धर्मसे अर्वात् कर्मचक्रकर्म धर्म के लब्धवा पार्थिवानि तत्त्वों के कर्मसे अर्वात् जो पार्थिव तत्त्व है वे पृथिवीमें जा मिलें को लब्ध हो हैं वे लब्ध में जा मिलें इत्यादि प्रकार से [एवं च पृथिवीं च] मुत् पृथिवी कोक को जा अर्वात् पार्थिव तत्त्व पृथिवीमें जा मिलें और को सुकोकका अर्थ हो वह सुकोकमें जा मिले । वहां वहां से को को लब्ध ठेरे धरीर में जाता हो वहां वहां वह वह लब्ध बना जाने । [मा] लब्धवा [अयो यच्छ] लब्धोंमें लब्धिव यदा लब्ध (सवि तत्र ते हितं) यदि वहां का कोर्मी अर्थ ठेरे में विद्यमान हो और इती प्रकार औपचरिकोंमें धरीरोंको स्थित हो अर्वात् औचरिका लब्ध औचरि में बना जाने । [अ. १ । १५ । १४] ४७

मावर्च- अब तक देह ५ पूर्वतया लब्ध नहीं जाती तबतक आत्मा उस देहको जोषकर स्वात्मत्पारमें नहीं जाती । उस देहसे जापयत ही मन्वकाशो रहती है । उस देहका बीह छवि लोभि रखा है । सुतात्मा करीसे इत्यन्त होकर पितृकोकर्म जाती है । अग्नि आत्माको पितृकोकर्म देखती है ॥ ४८ ॥

अग्नि धरीरको पूर्वतया दग्ध करके आत्माको पितृकोकर्म भेज देता है । अग्निधारा इत्यन्त इत्यन्त इत्यन्त इत्यन्त बरोंसे तब अग्नि लब्धसे दग्धमें जाते जाते हैं । अब प्राय विक्रम जाते हैं तब वह मुत् देह देखेंकि यदा ही जाती है ॥ ४९ ॥

छेरी उर्मीको वह यम आता है इतना अवश्य पता चलता है । त्रिष्टुम् पायत्री आदि सर्व उच्च यम (विपत्ता परमात्मा) में स्थित है ॥ ५० ॥

अजो मागस्तपस्तप्तु सपस्तु त तं शोचिस्तपस्तु त तं अर्चिः ।

॥ ८ ॥

यास्तं शिवास्तन्यो जातवेदस्वामिर्भवेन सुकृतांश्च लोक्म्
यास्तं शोचयो रईयो जातवेदो यामिरापुणासि दिवमुन्तरिक्षम् ।

॥ ९ ॥

अज यन्तमनु वाः समृष्वतामपेतराभिः शिवरमाभिः सुत कृषि
अथ सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आर्हुतमरति स्वधावान् ।

॥ १० ॥ (७)

आयुर्वसान् तप यातु शेषः स गच्छतां तन्या सुवर्चाः
अति ब्रध भानी सारमेयो चतुरथी श्रवली साधुना पथा ।

॥ ११ ॥

अथा पितृन्तुष्टिदृष्टो अपीहि यमेन ये सधमाक् मरन्ति

अर्थ- हे अग्नि ! इस वेदका जो [अजः भागः] अज अर्थात् य अन्न केनेवाका भाग [अजमा] है [तं] उसको तू [यज्जा तपस्त] अपने तप से दया । [तं] इस अज भाग को [ते शोचि] तेरी क्षीणभाव वशता (तपस्त) तपसे । [तं] इस अज भागको [ये अर्चिः] आद्यभाग तेरी उपाका [तपस्त] दयासे । बार फिर [जातवेदः] हे जातवेदस् अग्नि [यम] से दिया। तपः] जो तेरे कल्याणकारी उपाकाएँ करी तू अर्थात् क्षीर है [यामिः] इस क्षीरों द्वारा इस अज भाग को [सुकृतां लोक्] सुकृति करनेवालोंके लोक में [वह] प्राप्त करो । [अ १ १३ ११] ॥ ८ ॥

[जातवेदः] हे जातवेदस् अग्नि ! [वा] ते] जो तेरे [शोचयः] पक्षि करनेवाक [रइयः] वेगवाले उपाकाकारी क्षीर है, [यामिः] जिससे कि तू [यिच] युकोकको य [अजलि] अन्तरिक्ष लोकको [जाप्यासि] परिपूर्ण करता है [वाः] हे तेरे उपाकाकारी तू अर्थात् क्षीर [यन्तं] युकोक को जाते हुए [अज भद्र] क्षीरसे अज भाग [अजमा] के पीछे [समृष्वताम्] जाने । [अथ] और [इतराभिः शिवरमाभिः] दूसरे कल्याणकारी क्षीरोंसे इस पीछे रह गय सृज देह को [युष्टि कृषि] परिपक्व कर अर्थात् पूर्णतया बका दे ॥ ९ ॥

[अग्ने] हे अग्नि ! [वा] जो [त आहुत] तेरे में अश्वेधिके अथवा आहुत किया हुआ [स्वधावान्] पट्टि] स्वधामोंसे युक्त विचरण करता है उसको [पुनः] फिर [पितृभ्यः] पितरोंके सिधे काकर [अप्यस्य] छोड़ अर्थात् वह पुनर्जन्म के । अथवा 'पितृभ्यः' को पक्षी मानकर भी जैसे कर सकते हैं, और वह इस प्रकार कि कि पितृलोकमें विद्यमान पितरोंके काकर इस संसारमें छोड़ । दोनो प्रकारके अर्थोंका भाव एक ही है । दोनों प्रकारके अर्थोंसे विरोध नहीं है । इस प्रकार यह पुनर्जन्म किया हुआ । [शेषः] अल्पक सदान [तपसात्] कुर्बानियों को प्राप्त करे तथा [सुवर्चाः] वेजरी होकर दे अग्नि । [तन्या सपञ्चला] वह अल्पक क्षीरसे मकीमांसि संभव होते अथवा अल्प क्षीरसंपत्तिसे संपन्न बने [अ १ १३ ११] ॥ ९ ॥

हे पितृ लोकमें जाते हुए जीव ! [सारमेयो चतुरथी] आरमेय चार जोरोंवाले [श्रवली] पितरसे [यानी] दो कुत्तोंके [अति] बचकरके [साधुना पथा] कल्याणकारी कथम मार्गसे [यव] जा । [अथ] तथा [द्विद्वजम्] पितृ] उत्तम अथ वा क्षामसे युक्त पितरोंको [अति हवि] भी प्राप्त हो । [ये] जो कि पितर [यमेन सधमाद मरन्ति] यमके भाव कायमिद्व होके हुए तप्त होते हैं । [अ १ १३ ११] ॥ १० ॥

भावार्थ- सारमेय क्षीरमें विद्यमान तप्त अपने अपने स्वामय पराधि अज हुए होते हैं वही यमे जाते हैं । पूर्वदि ईशोंके अथ वय हममें वापिस यमे जाते हैं इरेक देव अपना अज क्षीरसे जीव करता है ॥ ८ ॥

दे अग्नि ! तू इस क्षीरसे अज भाग अजमाको अपनी आज्ञा गुण विहित उपाकाओंसे सुद करके पुनर्जन्ममें ले जा ८ ॥ क्षीरसे अज भाग अजमाका यमुदरण करती हुई अग्निमें युक्त उपाकाएँ उके सपित स्वामय से जाती हैं व पीछे रहे हुए देहसे अज उपाकाएँ सधम कर कावती हैं ॥ ९ ॥

दे अग्नि ! जो सृज पुनः तेरी अश्वेधिके अथवा आहुत किया हुआ स्वधामोंवाला होकर विचरण कर रहा है । उस पितरोंके सिधे से अर्थात् उसे पितृलोकमें विद्यमान पितरोंके प्राप्त केकाकर जीव ॥ १० ॥

यो ते शानो यम रक्षितारो चतुरश्रो पथिपदी नृचक्षसा ।

ताम्यां राजन् परि घेहेन स्वस्स्य स्मा अनमीष च वेहि ॥ १२ ॥

उरुणसार्वसुतृपाबुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनों अनु ।

तावस्मभ्यं हृषये स्यीय पुनर्दातामसुमधेह भद्रम् ॥ १३ ॥

सोम एकैभ्यः पथते घृतमेक उपोसते। येभ्यो मधु प्रधावति तामिदुवापि मन्त्रवात् ॥ १४ ॥

ये विश्वं श्रुतसाता श्रुतज्ञाता श्रुतावृषः॥ श्रुतीन्तर्पस्वतो यम उपोज्ञं अपि गन्धवात्॥१५॥

उपसा ये अनाघृष्पास्तपसा ये स्वर्ग्येषुः॥ तपो ये चक्रिरे महुस्त्वाभिदुवापि मन्त्रवात्॥१६॥

अथ इयम । [वे] वि [वी] को (रक्षितारी) रक्षा करनेवाले (चतुरश्री) चार ओरोंवाले (पथिपदी) पथके ओर जानेके साग में बैठने वाले तथा [नृचक्षुः] मनुष्योंके देखनेवाले [जनी] दो कुल हैं हे राजन् । (ताम्यां) उन दोनों कुलों द्वारा (एन) इस ऋषको (स्वस्ति) कल्याण (वेहि) प्रदान कर । (च) और (मस्य) इस बीजे के [मनमीषं] तोंगरहितता लबीय आरोग्य (चहि) चारण कर । इसे विरोगी बना । (अ० १ । १४ । ११) ॥ १२ ॥

[उरु—जनी] उरुवी माकषाके [अनुगुपी] मार्गके जानेके तुल्य होनेवाले (उरुगुपी) विलुप्त लक्षणके अपात लक्षण बलवान् (यमस्य दूतौ) यमके दूत उपरोक्त दोनो कुले (लवी अनुचरतः) मनुष्योंके पीछे पीछे विचरण करत हैं । (वी) इन प्रकारके वे यमदूत कुले (यमस्य) हमारे लिये (स्यीय हस्तये) सर्वत्र सर्वत्र जहाँ इस जाकमें जीवन चारण करनेके लिये (यय) जाय [हृष] इस संसारमें [मधु मधु] अन्नवाले होकर मानके [पुनः] फिर [दाता] देवे । [अ० १ । १४ । १२] ॥ १३ ॥

[एकैभ्यः] कईको से—लिये (सोमः पथते) सोमरस बहता है । और [एते] कई (इत उपोसते) जात्र न उपोस करत हैं । इनको य [वेद्यम मधु प्रधावति] विद्यकेलिये मधु चारा करने बहता है [ताम् चित् अपि] दे दे । उनको भी तू [मन्त्रवात्] जात हो ॥ १४ ॥

(वे चित्) और को (एते) पूर्व पुष्ट (अनाघृष्ठा) अन्नका पाक्य करनेवाले अपवा बहने लिये निमग्न करनेवाले (अनाघृष्ठा) अन्न वा पकड़े लुप्त और हरीलिये (अनाघृष्ठा) अन्न वा पकड़े सर्वत्र वे तथा (तपसा) तपसे युक्त (विदुः) पूष विदोंको (तान् चित् अपि) इन सबको जो है (यम) विषमबन्ध वेतारना तू जान हो ॥ १५ ॥

(वे) जो लोक (तपसा) कृष्णार्द्रावभावि मानविक तप करने कारणसे (अनाघृष्ठा) शिष्टी जो अन्नको नहीं को नहीं पकड़ पा सकत जिसको पाय नहीं सता सकत व (वे) जो लोक (तपसा) तपसे कारणसे (तपः) शरीरको तप हुए हैं और (वे) किन्हींमें (मधु तपा चक्रिरे) मग्न तप किया है हे मेव ! इन (तान् चित् अपि मन्त्रवात्) उन उपरोक्तोंको भी तू जाकर प्राप्त हो लवीय हममें तेरी कृति होने ॥ १६ ॥

भाषार्थ—यमके कुलोंका वनम यहाँ किया गया है । उनकी चार ओरों हैं तथा वे चित् करने लगे हैं ॥ ११ ॥ अधिक पुष्टके लिये यमके कुलोंके अन्नवाय व आरोग्य माँगा गया है ॥ १२ ॥ यमके कुल लवी माकषाके मार्गोंका चार गत होनेवाले, अन्नत बलवाली हैं । वे सर्वत्र मनुष्योंके पीछे लगे रहत हैं ॥ १३ ॥

यमके लिये सोमरस बहता रहता है व जो जात्र का उपोस करत रहते हैं तथा जिनके लिये मधु की कृपासे रहते हैं ऐसे बहर्द्धाभिध है ये तू प्राप्त हो ॥ १४ ॥

जा तिर करनेके लक्ष्य हैं यज्ञिक का अनुष्ठान शिवविषयके करनेवाले हैं तथा तपस्वी हैं ऐसे तपों का वे मन्त्रवात् तू परमात्मा व जाकर प्राप्त हो ॥ १५ ॥

ये पुष्पन्ते प्रघर्नेषु श्रांसो ये रतुस्यवः ।

ये वा सहस्रदधिणास्तांभिषेधार्पि गच्छतात् ॥ १७ ॥

सहस्रणीयाः क्वयो ये गोपायन्ति सधेम् । ऋषीन्तर्पस्ततो यम उपोवाँ अपि गच्छतात् १८

स्योनासै मय पृथिव्यनृधुरा निवेशनी । यच्छासै धर्म सप्रधाः ॥ १९ ॥

असंधाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।

स्वधा याम्बकृपे जीवन् तास्तै सन्तु मधुश्चुतः ॥ २० ॥

ह्यामि ते मनसा मन इहेमान् गृहो उपं क्षुप्राण एहि ।

स गच्छस्व पितृभिः स यमेन स्योनास्त्वा वाता उपं वान्तु क्षमाः ॥ २१ ॥

अध— हे प्रेत । [के स्रासः] जो स्रावीर यम [प्रघर्नेषु] समामों में [पुष्पन्ते] पुष्प करत हैं और [ये] जो यम समामों में [वृत्तनाः] घरीरोंका स्वाग करते हैं अर्थात् अपने प्राण व देहे हैं [वा] अथवा [ये] जो लोग [सहस्रदधिनाः] हजारों प्राण करते हैं [तात्पितृ अपि] उनको भी तू [गच्छतात्] प्राप्त हो ॥ १७ ॥

[ये] जो [क्वयो] अंतर्राष्ट्रीय ज्ञानी लोग [सहस्रणीयाः] हजारों प्रकारोंकी नीतिव्योवाह हैं और जो [गोपायन्ति] इस पूर्वका रक्षण करते हैं ऐसे [तर्पस्ततोः ऋषीन्] तपसे पुनः ऋषियोंसे जो कि [उपोवाँ] तपसे ही उत्पन्न हुए हुए हैं—देखोको भी हे मित्रमैं स्थित प्रेतरमा ! तू यहाँसे जाकर प्राप्त हो ॥ १८ ॥

हे पृथिवी ! [अस्मै] इसके लिए [स्याता] सुखकारीनी [अनृधुरा] अंदोंसे रहित अर्थात् व पीडा देवेवाली, [निषेधनी] प्रवेश करने योग्य [मय] हो । [सप्रधाः] विस्तृत हुए हुए [अस्मै] इसके लिए [धर्म] मुझको [वत्त] दे । ॥ १९ ॥

[याम्बकृपे] कृपा नीचा जो नहीं है धर्मान् जो एक करीना हे ऐसे [पृथिव्याः उरौ लोके] पृथिवीके विस्तृत स्थानमें [निषीकृत्य] स्थित हो । [जीवन्] जीते हुए अर्थात् जीवित अवस्था में तुने [वाः स्वधाः] जो स्वधानें [चक्रव] की भी [वा] व स्वधानें [ते] तेरे लिए मय [मधुश्चुतः] मधुक बरसने वाली [सन्तु] होवें ॥ २० ॥

[ते मयः] तेरे मनको [मयसा] मय द्वारा मुक्तता हू । [इह] यहाँ [इमान् गृहान्] इन घरोंसे [वृत्ताना उप एहि] प्रीति करता हुआ समीप वा । तू [पितृभिः] पिताओं के [समन्तरः] साथ बिचाल कर । [यमेन स] यमके साथ बिचाल कर । (स्वोवाः) सुखदायक (क्षमाः) शक्तिशाली (वाताः) वायुवें तथा वपान्तु) तेरे लिए वहे ॥ २१ ॥

भावार्थ— हे प्रेत जो तप के कारण किसी भी प्रकार पराभूत नहीं हो सकते व जो तप ही के कारण रतन को प्राप्त हुए हुए हैं तथा जिन्होंने महान तप किया है उनको तू यहाँसे जाकर प्राप्त हो ॥ १७ ॥

वा गृधोर वन मुंडोंमें अपने प्राण लेकर वीर यति को प्राप्त हुए हुए हैं वा जो कन यज्ञातः क रावों को एक अपने को धनार्थे नष्ट कर गए हैं ऐसे माध्विक हे मृतध्या तू प्राप्त हो तेरी कृति होने ॥ १८ ॥

जो कम्तराई अक्षयन भावा प्रकारके विह्वलित परितुष्ट हैं व जो तपशी तथा तप करत करत हुए हुए हैं ऐसे जो हे प्रेतरमा तू इस ध्यक के जाकर प्राप्त हो । इतने जाकर तू स्थित हो । निरुद्ध कोधसे मत या य १८ ॥

पृथिवी इसके लिए मुझकी व रक्षारहित हारे ! इसका किसी प्रकारका बह न हो ! पृथिवी इसका वना मुझ परान करती रहे ॥ १९ ॥

वहने जो जीते हुए स्वधामोक्ष समस्त किया था व वक्तु लिए मधुर हो ॥ २० ॥

४ (अ. नु. भा. अं. १८)

उत् त्वां वहन्तु मरुत उदयाहा उत्प्रुतः । अवेन कुण्वन्तः क्षीत वनेषोऽन्तु वातिरि २२
 उदङ्गमापुरायुषं क्रुत्ये दद्याय जीमसे । स्वान् गच्छतु ते मनो अपा पित्रुर्कृप इव ॥ २३ ॥
 मा ते मनो मासोर्माज्ञानां मा रसस्य ते । मा ते हास्त तन्व्यः किं चनेह ॥ २४ ॥
 मा त्वां वृद्धः स पाषिष्ट मा देवी पृथिवी मही । लोकं पितृपुं विश्वैर्यस्य वमरावसु २५ ॥
 यत्ते अङ्गमविहित पराचैरपानाः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
 तत्ते सगस्य पितरुः सनीहा घ्रासाह घ्रास पुनरा वैक्षयन्तु ॥ २६ ॥

अर्थ- [उदयाहाः] मरुता वहन करनेवाली [उदयतः] मरुतों सेवार करनेवाली (मरुता) यन्त्रों [अन्तु] तुम्हें (वत् वहन्तु) ऊपर पहुँचाने और वे वायुओं [अवेन क्षीत कुण्वन्तः] मरुतों कीउड़कला देती हुई [वनेषोऽन्तु] [उदङ्ग] द्वारा सीधे । (मास् इति) यह वेरा बीबा है । कर्पाह् इतीसे वृ जीवित रह सकता है ॥ २३ ॥

[मातुषे] शीतानु धारण करने के लिए [क्रुत्ये] कर्म करने के लिए [वद्याय] वरुके लिए तथा (जीमसे) उच्चत जीवन धारण करने के लिए है । सुवास्या] मैं तुम्हें [वृद्धः] बुढ़ाला हूँ । [ते मनो] तेरा मन [सगस्य] मेरे भवितव्यों में [पश्यन्तु] जाने [अपा] और वृ [पितृपुं उपग्रह] पिताओंके प्राप्त हो ॥ २३ ॥

[इह] इस संसारमें रहते हुए [ते] वेरा [मनः] मन [मा हास्त] तुम्हें छोड़कर मत चला जाये ।
 असोः] प्रत्येका [किंचित्] कुछनी भाव [मा] मत चला जाये क्योंकि तेरे प्राण ठीक ठीक नहीं हैं । [तिलस्य वा]
 ते शरीरस्य ऊपर आदि रसका कुछ भी भंड मत चला जाये । और [ते सगस्य किंचित् मा हास्त] तेरे शरीर का पड़नी मत मत चला जाये । २४ ॥

(त्वा वृद्धा मा संवाषिष्ट) तुम्हें वृद्ध वाया मत पहुँचाना । वृद्ध नहीं बनसकता वरुकाह है । (देवी की-
 पृथिवी) विश्व सुबोधाकी विस्तृत पृथिवी भी तुम्हें (मा) मत वाया पहुँचाना । (वमरावसु पितृपुं लोकं निर्या) मत
 चला जाये । ह तुम्हें पिताओंके प्राप्त करने (उपग्रह) बुद्धियोंके प्राप्त कर ॥ २५ ॥

(ते वत् वरुं पश्यैः कविशिवम्) वेरा जो अङ्ग उड़का होकर इह गया है और (वा ते प्राणः अपना देहा) जो
 १। प्राण वा अपान दूर चला गया है शरीरके निकल गया है (वत् ते) वत् वपरोक्त तेरे अङ्ग वा प्राण वा अपानके
 सुधीकाः पितरः) चाप रहनेवाले पितर (समस्त) निकलकर (वास्तव्य वास इव) वहाँ सुखोपम जीवित होती है किं
 ॥ २६ ॥ वास वासी जाती है उसी प्रकार (पुनः आयेक्यन्तु) फिर मिलित कराने कर्पाह चित्ते प्राण अपान आने तुम्हें
 गति पुनरुपजीवित करें ॥ २६ ॥

भावना- पितरोंके साथ विचारण कर और समझे विचारण कर । तेरे जिने वायु पुनरावासी हो ॥ २३ ॥

वायु और मन तेरे जिन सुखदायी हो ॥ २४ ॥

हे वृद्धता ! वृ शीतानु मत जीवन आदि धारण करने के लिए पुनः इस संसारमें या तथा अपने भवितव्यों में ही
 गहर जन्म के ॥ २३ ॥

हे पुनः ! वृ सुधारमें लगीहुएँ क्या रह । तेरे शरीर आदि का कोई भी भंड मत च होये ॥ २४ ॥

सुखमें जाते हुए तुम्हें जो बुद्धि बनसकती तथा अन्य कार्यों पराई वाया व पहुँचाने । वृ वमरावसुके पितृपुं
 ॥ २५ ॥ इति ॥ २५ ॥

प्राणी के निकल जानेपर शरीर संवर्धित हो जाता है । वह वत् हाकटने का वा मृत वेह चलाता है । ॥
 अर्थ निकल हुए प्राणीका पुनः प्रत्यागमन करना है । इच्छे मृतके पुनरुपजीवित करनेका विवेक इह भवमें निकल
 । इसका विनाश कोई शरीरका नष्टन करवा हो गया हो वा दूर गया हो तो कहे भी पितर ठीक ठीक पधारवाये ॥
 ऐसा प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्त निर्वहन् परि ग्रामावितः ।

मृत्युर्यमस्यासीद् ब्रूतः प्रवेत्ता अघ्नं पितृभ्यो गमयां चकार

॥ २७ ॥

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अङ्गतावधरन्ति ।

परापुरो निपुरो ये मरन्त्यग्निदानस्मात् प्र घमाति यज्ञात्

॥ २८ ॥

सं विद्यन्तिव पितरं स्वा नः स्योन कुण्वन्तः प्रधिरन्तु आयुः ।

तेभ्यः व्यकेम इविषा नर्षमाणा ज्योग् जीवन्तः क्षरदः पुरुषीः

॥ २९ ॥

मां तं वेत्तुं निपूजामि यमुं ते क्षीर औषुनम् ।

तेना जनैस्पासा मर्ता योऽप्राप्तदर्जीविनः

॥ ३० ॥

वर्ण—(धीमाः)ग्रामधारी लोगोंने(इम) इस मेघके(गृहेभ्यः) घरोंसे(अप बचन)बाहिर कर दिया है[तं]इसको तुः
मेघ (इवा ग्रामात्) इस ग्रामसे (परि विवेद्यत्) बाहिरकी ओर स्मरणाभूमिमें के जाने। क्योंकि (यमस्य मृत्युः ब्रूत
वासीत्) बसका जो खुद ब्रूत है उस (मवेत्ताः) मरुत जानी मृत्युके इसके(वधून्) माथोंको (पितृभ्यः गमयां चकार
पितरोंके छिपे जहाँसे पितरोंके पास पितृकेमें (यमयां चकार) घन किए हैं। अतः क्योंकि वह विपद्यमान हो चुका है
इसके लिये इसके लिये ग्रामसे बाहिर इवनादि कियाके छिपे के जाने ॥ २७ ॥

(ज्ञातिमुखा) ज्ञातिवोंके सरस मुखवाले जहाँसे जो सज्जतीय हैं और जो कि (अङ्गतावः) बहुत अपाए व दिने
ब्रूत को जानेवाले हैं वणि अरुधन्वी को छीनकर का जानेवाले हैं वेसे (ये दस्यवः) जो उपलब्ध करनेवाले पितृषु प्रविष्टा
पितरोंमें प्रविष्ट हुए हुए (परापुरः) निचरन करते हैं और (ये) जो (पुरापुरः) पुत्रों को तथा (निपुरः)जीवा को (मरन्ति
हस्य करते हैं (यान्) उन दस्युओं को (अग्नि) अग्नि (अस्मात् यज्ञात्) इस यज्ञसे (प्र घमाति) दूर भगा देता है यज्ञ
जाने नहीं देता ॥ २८ ॥

(इव) इस यज्ञमें (का) हमारे (स्वा विज्ञाः) ज्ञातिके पितृभ्यः (स्योन कुण्वन्तः) कुछ उत्पन्न करते हुए (सं विद्यन्तु
प्रविष्ट होयें। और (वात्सा प्रतिपत्त) वात्सल्यकी मुक्ति करें। और इसके लियेमें (यज्ञमाणाः) पतिनीम जहाँसे लब्ध काय
उत्तर हम (क्योन् पुरुषीः क्षरदः) विरन्तर बहुतसे वर्षोंके (जीवन्तः) जीवन्त चारण करते हुए (वेत्तुः) उन ही
वात्स देवोंके पितरोंकी हविषा इविष्टा (अपेमं) पतिचर्चा करनेमें समर्थ बने रहें ॥ २९ ॥

(तं) वेसे (तं वेत्तुं) किस गाथके (निपूजामि) देता हूँ और (क्षीरं) दूधमें (ये औषुनं) जिस माघ
देता हूँ जहाँसे दूध मिलित को माघ देता हूँ (यमुं) उस द्वारा ए (अपुनं अर्घ्यं यमः) मनुष्यका पोषक हो। (यः)
जो कि मनुष्य (अथ) इस सज्जतीयों (य—जीवन्तः) निर्विष—मृत (अथ) है ॥ ३० ॥

आचार्य— इस संज्ञमें वह दर्शना है कि शरीरके प्राण छूटने पर उसे चले बाहर कर देना चाहिये व तदमस्त
ग्रामसे वीहार केनमा चाहिये। स्मरणाभूमि ग्रामके बाहिर हीनी चाहिये ॥ २७ ॥

ये हमारा व हमारी ऐतिहासिक गुणके गुणके माघ करते रहते हैं और जो हमारे व जानते हुए हविषोंकी जो कि
पितरोंके लोचने की गई हैं काते रहते हैं। वर जब यज्ञमें व आकर ऐसा करते हैं ता अग्नि कण्डे यज्ञसे दूर भगा देता है
कण्डे पितरोंमें बैठकर हविषा नहीं देती ॥ २८ ॥

पितर का कार्य और हीन कायक जोते हुए उनको हविषा हस्त देना भी कार्य ॥ २९ ॥

एव मिलित माघ जीवन्तान मनुष्यके मरण क किए दिया जाने ॥ ३० ॥

अश्वावतीं प्र तैर या सुषेवाधार्कं वा प्रतर नवीयः ।

यस्तुवा अघान् वप्यः सो अस्तु मा सो अन्यत् विदत् मागधेयम् ॥ ३१ ॥

यमः परोऽवरो विषस्वान् वतः पर नाति पश्यामि किं चन ।

यमे अश्वरो अवि मे निर्विटो सुवो विषस्वानन्वार्तवान् ॥ ३२ ॥

अपांगूहामृतां मर्त्यैः कृत्वा सर्वर्षामदधुर्विषस्यते ।

उताश्विनोवमरश्च सत् तदासीदज्जहादु शा मिथुना संरप्यः ॥ ३३ ॥

ये निष्ठाता ये परोष्ठा य दुरघा ये वोहिताः ।

सर्वान्मनघ्न आ बह पितृन् इविषे अये ॥ ३४ ॥

अर्थ- (अश्वावती) जिसमें बोहे है ऐ-वी सेनाको (प्रतर) मही मांति बहा बर्पाइ कुछ प्रचार देना क्या, (वा) जो कि (सुषेवा) जगम सुम देवेवली है और फिर इस देना द्वारा (प्रतर नवीय) बहें कुछ अस्तु रीक जाति बहसी जगमवरीनाके जगमको पार कर । (यः तथा अघान्) जो तुमसे मारे (घः) वह (यथा वप्य) मारहाकने जगम होवे अर्थात् उसे मारहाका जाने । (घः) वह तथा हिंसक (अन्यत् मागधेयं मा विदत्) उसे अन्य माग मत मिले कभीय उसे मार ही जाता जावे । अन्त्य मोरम वरगुप्त उसे व मिले ३३२४

(वमः परोः) वम परे है कभीय दूर है और (विषस्वान्) पूर्व उससे (अवरो) समीप है । (वतः परं) वत वसे पर में [निचम न अति पश्यामि] कुछ भी दूर फिर हुआ हुआ दही देखता हूँ । जगम नहीं समझता हूँ । (वमे ये अश्वः अविनिविहः) वमके अन्तर मेरा अश्वर अर्थात् हिंसाहित यज्ञ रित्त है (विषस्वान् मुवाः अस्तु वातवान्) पूर्वसे सुषोमको जगमे प्रकाशसे पैदा रका है ॥ ३२ ॥

(मार्जोऽवः) मरजमर्मासुषोसे (अमृतां अपांगूहम्) जगमताको छिपाया । और (विषस्वान्) विषस्वान्के सिधे (सवमी) प्रवर्ण (कृत्वा) बहा करके (जहादुः) जगम किया—विधा । (वत) और (यत् यत्) उस तदव को वह स्वरूप वा इससे (अविनी अवरात्) अविनी को जगम किया । और (अरप्यः) अरप्यने (शी मिथुनी) तो जोही वम व वमी (अज्जहादुः) जगम किया ॥ ३३ ॥

[अये] वे अति ! [ये निष्ठाताः] जो पितर जमीनीं गाहे गए हैं और [ये परोष्ठाः] जो पितर दूर बहा दिए गए हैं तथा (ये दुरघाः) जो कका दिए गए हैं (य) और (ये वोहिताः) जो पितर जमीनके ऊपर दगमैं रहे गए हैं (ताद प्रर्षात्) जग प्रव पितरों को दू (इविषे अये) इवि अजगमार्थ (आ बह) के जा ॥ ३४ ॥

आचार्य- सुषेवाका देना बहाकर हिंसक मांतिवरीनाके देनाको दूर करना चाहिये । और ऐसे कर्म करव देना जो कोई बह करे ता उसे मार हाकना चाहिये ॥ ३१ ॥

यमका जगम पूर्वसे परे है और उससे परे कोई नहीं है ॥ ३२ ॥

अरप्य वम व वमीकी अरपि हुई है [अरप्यवाका द्वारा ही कई जागसे वह भी पता चलता है कि] जगममें जब मोक्षार्थ रूप जगम किया तब जगमे जो संतान हुई जगका जग अतिवना बहा ॥ ३३ ॥

बहोवर बार प्रकाशके इसजगमम बर्पाइ गए हैं । [१] गावया [२] बहमा [३] जगमा और [४] इयै जगम पर पुष्प जगमा ॥ ३४ ॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।

तव तान् वेत्स्य यदि ते आचवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम्

॥ ३५ ॥

अ तं मातिं तपो अपे मा तुन्वी१ तपः ।

वनेषु छप्पो अस्तु ते पृथिव्यामेस्तु यद्वरः

॥ ३६ ॥

ददाम्यस्मा अदसानमेतद्य यप आगन् मम वेदधूविह ।

यमभिक्षित्वान् प्रत्येतदा३ ममेप राय तपं विष्ठताविह

॥ ३७ ॥

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति । छत छरत्सु नो पुरा

॥ ३८ ॥

प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति । छते छरत्सु नो पुरा

॥ ३९ ॥

अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति । छते छरत्सु नो पुरा

॥ ४० ॥ (१०)

अर्थ—(ये) जो (अग्निदग्धा) अग्निद्वारा जलाए गए और जो (अनग्निदग्धा) अग्नि द्वारा न जलाए गए पितर (दिया मध्य) यु कोक के बीचमें (स्वधया) स्वधया द्वारा (मादयन्ते) मृद हो रहे हैं (ताम्) उन्हें (आचवेदः) वे आचवेदस्त्व अग्नि (यं यदि वेत्स्य) तू निश्चयसे जानती है । ये (स्वधया) स्वधया द्वारा (स्वधितिं यज्ञं) स्वधयाके यज्ञका (जुषन्ताम्) खेचन करें ॥ ३५ ॥

हे अग्नि ! (तपं) इस सूर्य कीरके (अ तप) मुझसे तथा अर्वात् इसे कइ हो इस प्रकारसे मत तथा । (मा मति तथा) तूरी तरहसे इसे मत तथा । ऐसा जो तपनेका—जकानेका—(युष्मः) वह है वह (वनेषु अस्तु) वनोंमें होवे । आर (यत्) जो (ते हरः) ऐसा हरण करनेवाला तेज है वह (इषिष्यां अस्तु) इषिषी पर होवे ॥ ३६ ॥

(अद्वे) इस मृद पृथ्वीके किने (यत्प अवसाय) इस स्वाधयाके (ददामि) मैं देता हूँ । क्योंकि (यवा यः) वह जो है वह (आयम्) यम कोकमें जाया है और (इह) यहाँपर जाकर (मम वैत्) मेरा ही (अभूत्) हो गया है अर्वात् क्योंकि वह यहाँ जाकर मेरी ही प्रजा बन गया है अतः मैं इसे स्वाध देता हूँ । अपने राजकी वही नि-
जकता । इस उपरोक्त प्रकारसे (विधिराज यमः) राजाया यम (यमत्) वह उपरोक्त द्वाभ्यस्मै इत्यादि वाक्य (ममि व्याह) यमकोकमें जाए हुएके पति कहता है । और यह भी कहता है कि (यवा) यह आम्पुष्टक (मम राजे) मेरे राजके किने (इह) यहाँ यमराज्यमें (यपविष्ठताम्) यपविष्ठ होके अर्वात् इसे भी इस मेरे राजका नाम निने अथवा यह भी अन्य प्रजा जनकी तरह मेरे किने दिया जानेवाला कथित कर प्रदान करे ॥ ३७ ॥

(इमां मात्रां) इस सर्वोद्गा-पामित्र-की इस प्रकारसे (मिमीमहे) हम जाणते हैं । (यथा) जिस प्रकारसे कि (अपरं) अन्य कोई (पुरा) आत्मायी (छत छरत्सु) जो वनोंमें भी (न मासाते) नहीं माप सकता ॥ ३८ ॥

(अप्रेमां मात्रां) अपनी प्रकृतसे जाणते हैं । खेच पूर्ववत् ॥ ३९ ॥

(अप) जिसमें से दोष निश्चय गए हैं इस प्रकारसे अर्वात् पूर्ण मृद रूपसे (मिमीमहे) जाणते हैं । अथ पूर्ववत् ॥ ४० ॥

पार्श्वार्थ—पितरोंके किए ब्रह्मभय प्राप्त हो ॥ ३५ ॥

अतः वहनके समय मृतस्त्वयायी कइ न हो ॥ ३६ ॥

यमराज्यमें पितर जाने तो यम जनकी योग्य व्यवस्था करता है ॥ ३७ ॥

यम वहकी धर्ममवाधको जाणता है ॥ ३८ ॥

यमराज्यके कर्मकी मात्रा अर्वात् प्रमाण यम जाणता है और तदनुसार सबकी चम देता है ॥ ३९-४० ॥

वीक्षमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासति । श्रुते श्रुतसु नो पुरा ॥ ४१ ॥
 निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासति । श्रुते श्रुतसु नो पुरा ॥ ४२ ॥
 उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासति । श्रुते श्रुतसु नो पुरा ॥ ४३ ॥
 सभिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासति । श्रुते श्रुतसु नो पुरा ॥ ४४ ॥
 अर्मासि मात्रा स्वर्गामायुष्मान् भूयासम् ।
 यथापरं न मासति श्रुते श्रुतसु नो पुरा ॥ ४५ ॥
 प्राणो अपानो व्यान आयुश्चसुदृष्ये धर्माय ।
 अपरिपरेष पृथा यमराजः पितृन् गच्छ ॥ ४६ ॥
 ये अग्र्यं श्रद्धमानाः परेषुर्वित्वा हेवांस्त्वनपत्यवन्तः ।
 ते धामदित्याविदन्त लोकं नार्कस्य पुष्टे अग्निं दीर्घ्यानाः ॥ ४७ ॥
 उद्वन्वती यौरवमा पीलुमसीति मष्पुमा । तृतीया इ प्रयौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

- (मि मिमीमहे) विवेचन हेतुसे जाणते हैं । शेष पूर्ववत् ॥ ४१ ॥
 (निः मिमीमहे) निश्चित कथसे वा नि सच कथसे जाणते हैं । शेष पूर्ववत् ॥ ४२ ॥
 (उद् मिमीमहे) उद्यम कथसे जाणते हैं । शेष पूर्ववत् ॥ ४३ ॥
 (स मिमीमहे) सज्जी उद्गृह्यते—सज्जी माति जाणते हैं । शेष पूर्ववत् ॥ ४४ ॥
 (मात्रां अर्मासि) मै मात्राको माप् ओर इससे (स्व अगाम्) सुकोको प्राप्त होकर । (अत्युष्मान्) दीर्घायु-
 वाका (भूयासम्) होकर । शेष पूर्ववत् ॥ ४५ ॥
 (प्राणः) प्राण (अपानः) अपान (व्यानः) व्यान [आयुः] आयु ओर (सुदृष्ये) अग्नि (सुर्वान् एवमे-
 वान्) सुर्वान् एवमे किन्ने अर्थात् इस संसारमें जीवन धारण करनेके लिए होयें । और आयुके पूर्ण होनेपर ईश्वर त्याग करने-
 पर है मनुष्य । ए (अपरिपरेष पृथा) अत्युद्यममान द्वारा (यमराजः पितृन्) यम जिसका राजा है ऐसे पितृको [अर्मा-
 या—प्राप्त हो । (अपरिपरेष—परि परिषः सर्वेषः पर पराधमः कुटिलभावाः अथवा अतुः व शिष्टो बलित्वा एव अपरिपरेष
 अथवा विषमं सर्वेषां कुटिलता वा अतुः बर्ही है वह अपरिपरेष है) ॥ ४६ ॥
 (ये) ओ (अग्र्यः) अग्रगामी (प्रदीप्यमानाः) प्रदीप्यमान किन्ने हुए अथवा उद्यमशील (अत्युद्यमः)
 अत्युद्यम सेताप रहित अथवा ऐक्यवत् सुकर (हेवांसि हित्वा) हेव त्यागकर त्याग करके (परेषु) मरे हैं (ये) उद्वन्व-
 वेति (यां अग्निम्) सुकोकोको प्राप्त करके (अग्निं दीर्घ्यानाम्) अत्यन्त दीर्घायुमान होकर (नार्कस्य पुष्टे अग्निम्)
 स्वर्गमें स्थान पाया है ॥ ४७ ॥
 [अथमा योः उद्वन्वती] सबसे नीचे को यो ' सुकोक ' यह है जिसमें कि एक रहता है । जिस सुकोकमें अरुण
 रहते हैं वह सबसे नीचेका सुकोक है । [पीलुमती इति मध्वमा] और जिसमें ग्रह वक्षस्पति स्थित हैं वह दीपक
 सुकोक है । (इ) निश्चय से (तृतीया) तीसरा [तृतीया इति] प्रथु नामक सुकोक है [यस्यां] जिसमें कि [पितरः] आत्मा
 स्थित रहित होत हैं ॥ ४८ ॥

भाषाये—इ मनुष्य ठरे प्राण अपानवि आजीवन कृतय बने रहें तथा मरने पर तु उद्यम मार्गसे अत्युद्यम स्थितिमें
 प्राप्त हो । यम स्थितिमें एता है वह इससे पता चलता है ॥ ४६ ॥

जो कोन अग्रगामी अधिक तथा देवोंका आगम करते हैं वे मरने पर सुकोकस्थ स्वर्गमें जाते हैं ॥ ४७ ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविबिद्युर्ध्वं न्तरिक्षम् ।

॥ ४९ ॥

य आस्रियन्ति पृथिवीमुत धां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम

इदमिदं वा त नापरं विवि पश्यसि सूर्यम् ।

॥ ५० ॥

माता पुत्र यथा सिषाम्ये न भूम ऊर्ध्वि

इदमिदं वा त नापरं अरस्यन्यदितोऽपरम् ।

॥ ५१ ॥

जाया पतिमिष वाससाभ्ये न भूम ऊर्ध्वि

अमि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्बल्यं भुव्या ।

वीक्षेत् पुत्र तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि

॥ ५२ ॥

अर्थ— (ये) जो (वा : पितुः पितरः) हमारे पितरों के निगर हैं, (ये) और जो (पितामहाः) उनके की पितामह हैं, (ये) जो कि (उक्त अंतरिक्ष आविबिद्युः) विद्यमान अंतरिक्ष में प्रसिद्ध हुए हैं, और (ये) जो (पृथिवी उत धां) पृथिवी तथा बुद्धिकर्म (आस्रियन्ति) विधात कर रहे हैं (तेभ्यः पितृभ्यः) उक्त पितरों के किए (यमसा विधेम) यमस्कारपूर्वक पूजा करते हैं ॥ ४९ ॥

हे यत्त इस (इदं इदं वा त) वही है (न नापरं) दूसरा नहीं है । (विवि सूर्य पश्यसि) जो दुर्लोकमें वह सूर्य देखता है । (तथा पुत्रं माता सिषा) जिस प्रकार पुत्रको माता अपने आँकड़ों से देखती है उस प्रकार है (भूम) पृथिवी व (एवं) इस यत्त बुद्धिकर्म (अमि ऊर्ध्वि) चारों ओरसे देख ॥ ५० ॥

(अमि) कदाचित्काल कायमें (इदं इदं वा त नापरं) वही दूसरा समझावोचित कार्य है (अन्त्यष्टि यत्तः अपरं न) इसका इच्छे सिद्ध कोई कार्य नहीं । अतः है (भूम) भूमि । (जाया पतिं वाससा इव) जिस प्रकार पत्नी पतिको बचसे देखती है उस प्रकार व (एवं) इस प्रेतको (अमि ऊर्ध्वि) ऊपरसे देख ॥ ५१ ॥

हे मेरा ! (एवं) तुझे (माता पृथिव्याः) माता पृथिवीके (मातुर्बल्यं) कदाचित्काली बचसे (अमि ऊर्ध्वोऽमि) कदाचित्काल करवा हूँ अर्थात् अमीनमें तुझे माहता हूँ । (वीक्षेत् पुत्रं यत्त मयि) औरितोमें जो कदाचित् है वह मेरेमें हो कदाचित् तुझे माह हो और (पितृषु स्वधा) जो पितरोंमें स्वधा है (सा त्वयि) वह मेरेमें हो कदाचित् तुझे माह हो । वहाँ पर स्वध साधनेमें प्रेतके गाढसेका विवेक है ॥ ५२ ॥

आचार्य—भुवोक्त तीन प्रकारका है । एक ती वह जो कि तीनों प्रकारके बुद्धिकर्मों से बचसे जाता है और बहमें प्रेतमन्त्रक विवत है । दूसरा इच्छे कर है और बहमें वीमु अर्थात् मन्त्रमन्त्रादि विवत हैं । वह बीचका बुद्धिकर्म है । तीसरा इच्छे कर है जो कि प्रेतोंके बायसे प्रकटात है और वहाँ बुद्धिकर्म है जिसमें कि पितर विधात करते हैं ॥ ४९ ॥

वा हमारे पितरोंके पूर्वक अंतरिक्ष बुद्ध तथा पृथिवीमें रहते हैं उनकी हय भवाः द्वारा पूजा करते हैं ॥ ४९ ॥
हे प्रेत ! वही उक्त बुद्ध है जो कि बुद्धिकर्मों सूर्य दिख रहा है । हे भूमि ! व इव प्रेतको इस प्रकारके बच के विवत प्रकारके कि माता पुत्रको अपने आँकड़ों से देखती है । (इव मन्त्रक पूर्वार्थका मन्त्र बुद्ध विवत रूपसे स्पष्ट नहीं होगा । और अन्त्यष्टि बचार्थसे उक्तकी संज्ञा किमायी अतः विचारव्यव है । अतः स्पष्ट ही है) ॥ ५० ॥

इदमस्माके अनन्तर देहके किए किं स्वप्नार्थकर्म ही मायी रह जाया है दूसरा कोई नहीं । अतः हे भूमि ! बच अर्थार्थक वय पर इव उक्तके देखे बचके श्रेष्ठ कि कला अपने बचसे पतिवत वीर लेती है ॥ ५१ ॥
हे मेरा ! तुझ पृथिवी माताके कदाचित्काली बचसे बचता हूँ । कदाचित् जो कदाचित् है बचका मैं मायी वन्तु और आ पितरोंमें स्वधा है वह तुझ माह हो अर्थात् पितृबुद्धिकर्म बाहर तुझे स्वधा भिजे । इस प्रकार हम दोनों बुद्धी हो । तू परममन्त्रमें बुद्धी हो । व बचकोमें मुक्ति होऊ ॥ ५२ ॥

वी३मां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति । श्रुते श्रुत्सु नो पुरा
 निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति । श्रुते श्रुत्सु नो
 उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति । श्रुते श्रुत्सु नो
 सभिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति । श्रुते श्रुत्सु नो
 अमासि मात्रा स्वर्गरामाप्सुमान् मूयासम् ।
 यथापरं न मासाति श्रुते श्रुत्सु नो पुरा
 प्राचो अपानो प्यान आयुश्चक्षुर्दृश्ये श्रु
 अपरिपरेण पृथा यमराज्ञः पितृन् गण
 ये अग्रव श्रुमानाः परियुहिंत्वा मे
 व धामुदिरयाविदन्त लोक न
 उदुन्वती घौरवमा पीलुण

) ईशेति सिद्ध (स्योर्ध्वं) पुनश्च (स्य)
 किं स्थान (उप मेघान्तरादुत्तरं) ततो
 द्वावर्धे (अत्रोपाने) । अत्रा नक्षत्रेणान्त
) विचरणं कर्तव्यं ॥ १३ ॥

भारत सरकार द्वारा प्रमाणित किया गया, (निर्माण)

द्वारा धीरे धीरे आत्मा को इस प्रोबरी को छोड़ते बहुत मार्ग की ओर ले

, १०८ [एतेभ्यः पितृभ्यः] इव विस्तरं किंपु यः । [सु निश्चिरेभ्यः स्वेभ्यः]

(मात्रो ज्ञान) [कवि वदत] देवे । [अ २ । १०३८] ॥ ५३ ॥

(भूवाक) मोर शिवायु (वा परिवानु) करी रक्षा करें। और (पूरा) पोषक आदित्य [वा] ला

(५५५) (५५५) सामवेद (पातु) रक्षा कर (वत्र) पशुपति—अतः सामवेद (५५५)

अभिधा। प्रकथयामाव आदित्य [दधातु] स्थापित करे ॥ ५५ ॥

[मही] बरम करनेवाले हम सो बेलोंको [ते सोरहे] तरे बरम करनेके भिद [सुनी]

...के लिए। इस लिए कि [कामुनीयन] जिसमेंसे प्राप्त भिन्नक लिए गए हैं उस कामुनीयन के लिए...

॥ वाचः ॥ उम देवोत्तं [समस्त पदार्थ] इति । न च यथा वा हे इमं प्रकारं [स लक्षणम्] मयि

2 भाग ३५६

२. हमने रणजने में मृत लोगों का शव मायाजी कागज पर लपेट कर सड़क के किनारे फेंक दिया।

५३ ॥

[illegible][illegible]

ପରିସଂଖ୍ୟା ଗୁଣ ସାଧାରଣ ଶିକ୍ଷା ଓ ସ୍ୱାସ୍ଥ୍ୟ ସେବା ଉପରେ ଗୁରୁତ୍ୱ ଦେଇ ଏହାକୁ ଗୁଣବତ୍ତାପୂର୍ଣ୍ଣ କରିବା ପାଇଁ ଶାସନାବଳୀ ଗଠନ କରାଯାଇଛି ।

2000 年 12 月 1 日 2001 年 12 月 31 日

एतत् त्वा वासः प्रथम न्यागमपैतृहं यतिहारिभः पुरा ।

इष्टापूर्वमनुसक्तम विद्वान् यत्र से द्रुच बंधुषा विषन्धुषु

॥ ५७ ॥

अपेर्वर्मे परि गोमिर्धयस्व स प्रोयुष्य मेवसा पीवसा च ।

नेस्वा धृष्णुर्हसा अर्हपाणो वृष्टग् विवृक्षन् पशिक्षयाति

॥ ५८ ॥

इष्ट इस्तावावदानो गतासौः सह भोत्रेण वर्षसा धर्लेन ।

अत्रैव स्वामिह वय सुवीरा विद्या सुधौ अमिमातीर्जयेम

॥ ५९ ॥

चनुर्हस्तावावदानो मृतस्य सह धृत्रेया वर्षसा धर्लेन ।

सुमागूमाय वसु भूरि पुष्टमूर्धाह त्वमेष्टुप औषलोक्षम्

॥ ६० ॥ (१२)

अर्थ— हे मृत पुरुष ! (एतत् प्रथमं वासः) यह स्मृत्यनुचित मुख्य वस्त्र (श्वा तु वा अयम्) तुझे प्राप्त हुआ है । (यत् इह पुरा आसिम्) जिस वस्त्रको पहिले यहाँपर लू पहिना करता था [एत्] उस वस्त्रको [अप ऊह] छोड़ दे । [वक्ष] यहाँ [ते बंधुषा विषन्धुषु वत्] तेरा माया [विषन्धुषोमिं सो दाम्] हे वस्त्रको [विद्वान्] ज्ञानवा हुआ [इष्टापूर्व] इष्टापूर्वको अर्थात् उक्तव्य वस्त्रको [अनुबंधयाम्] प्राप्त हो । विषन्धु = जिसका वस्त्र नहीं रहा है अर्थात् अवाय गरीब आदि ॥ ५७ ॥

हे मृत ! [गोमि] तुझे उपयुक्त हुई हुई [जले वर्म] जमिनी उपका कनी करचले [परि ध्यवस्व] अपनेको पानी ओसले वस्त्र के अर्थात् जमिनी उपकाओं के नीचेमें लू हो जा जिससे कि तू पृथक् स्वयसे रहने हो सके । [सः] यह लू [पीवसा मेवसा] अपने जन्म विद्युत का धूम धर्मेति [प्रोयुष्य] अपने आपको आच्छादित कर । इस प्रकार करनेसे [इमा इष्टा] अपने तेजसे अर्जुन कावेवसा (इष्ट) प्रयत्न [अर्हपाणः] करवला प्रयत्न हुआ हुआ अत एव (विषन्धु) तुझ मृत ० विविधरूपय आता हुआ [अर्हपाणः] तुझे [ग] नी [परिष्कृतान्] इष्टा उपर वस्त्रोंमा अर्थात् पृथक्पृथक् प्रयत्न प्रयत्नसेव आनेवा ॥ ५८ ॥

[यमा] : ३: प्रथम वस्त्र ० हे मृत ! मृत मृत हे देखे [इष्टापूर्व] अपने [वक्ष इष्टापूर्व] इष्टापूर्व का होता हुआ [आसिम्] अवल आसिम् [वर्षसा] तेजस वस्त्र [वक्ष मृत] वक्ष माय २५] लू [वक्ष] इनी अर्जुनसे स्थित हो । [इह] इस जगत्में [वक्ष] इस [सुवीरा] वक्षम ० वक्ष हुआ [विद्या सुधौ] मृत्यु समामों को वक्ष (अमिमाती) अमिमाती अनुमोको (अत्रेय) आते ॥ ५९ ॥

(मुष्टाय) मृत राजाके (इष्टापूर्व) हाथसे प्रयागपर्व (वसु आदराय) वसुप केता हुआ (अत्रेय वक्षसा वक्षेन सह) हाथ तेज व वक्षसे हाथ (पुष्ट) पुष्टिकारक (भूरि वसु) बहुत वक्ष (मे वा गुभाय) प्रयत्न कर । आर किर [त्वं] लू [औषलोक्षं वक्ष] औषलोक्ष अर्थात् इस प्रयागपर्वको अक्ष वक्ष [अवाह एष्टि] हमारे आनेवा ॥ ६० ॥

आवाय— मरनेपर पुराने वस्त्रोंको त्यागकर हाथको वस्त्र स्पर्शनिमित्त वक्ष पहिनाया जायिरे ॥ ५७ ॥

सुरेयो वक्षसे हुए भी वक्ष मायामें जन्मा जायिरे यदि अग्नि स्व कोरे प्रयत्न होकर वक्ष वक्ष काये । वक्षसे कोरे भी माय वक्ष विद्या रहने व पाये ॥ ५८ ॥

मृतके हाथसे इष्टापूर्व वक्ष इष्टापूर्व विद्यामूर्धौ व आदराय तेज वक्ष आदिष्ट मुक्त हो । इस मुष्टी होकर वसु और विद्य वक्ष करे ॥ ५९ ॥

मृत राजाके हाथसे एष्टापूर्व अक्ष वक्ष अक्ष अत्रेय व वक्ष हाहा बहुत वक्ष अत्रेय व वक्ष अत्रेय प्रयाग पुष्ट वक्ष । प्रयत्ने वक्ष वक्ष । प्रयत्ने विष्ट वक्ष अत्रेय वक्ष कर ॥ ६० ॥

[३]

इय नारीं पतिश्लोकं वृणाना नि पंचस उप त्वा मस्य प्रेतम् ।

॥ १ ॥

धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां प्रविण चेह धेहि

॥ २ ॥

उदीर्ष्य नार्यमि जीवश्लोकं गतासुमेतमुप शेषं पदि ।

॥ ३ ॥

हस्तग्रामस्य दक्षिणोत्तरेष्वे पस्युर्जनित्वममि स वसूध

अपह्य युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानासु ।

अचेन यत् धर्मसा प्राप्नुवासीत् प्राक्तो अपाधीमनय तदेनाम्

॥ ४ ॥

प्रधानस्य न्ये जीवश्लोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।

अथ ते गोपतिस्तु पुंस्त्व स्वर्गं श्लोकमधि रोहयेनम्

नार्य- [इय नारी] यह स्त्री [पतिश्लोकं वृणाना] पति श्लोककी कामना करती हुई [मस्य] हे मनुष्य । [प्रेतम्] तू पतिश्लोक (अथर्वकर) [पुराणं धर्मं अनुपालयन्ती] पुराण धर्मका अनुपालन करती हुई नार्या धर्ममें स्थित हुई हुई (अथ उप निपद्यते) ठेरे पास आई है । तस्मै वच धर्ममें स्थित नारीके लिए (इह) इस संसारमें (प्रजां) संवत्सरी (प्रविणं) पौर जनको [धेहि] दे ॥ १ ॥

(नारि) हे स्त्री ! (मनुष्ये पूर्व उपशेषे) जो तू गणपत्य नार्यात् इस मृत पतिके पास जो रही है वह तू (वा इह) उस मृत पतिके पाससे चली जा और [जीवश्लोकं ममि] इस जीवश्लोक नार्यात् संसारके ममि (यत् ईर्ष्यं) उद्वेगजनक नार्यात् संसारमें चली जा । संसारमें जाकर (हस्तग्रामस्य) विशाखा में ठेरा पतिग्रहण करनेवाले (दक्षिणे) व ठेरा पति पाकवादि रूपसे वारन करनेवाले (तव पस्युः) ठेरे पतिश्लोक (दक्षिणं) सप्तम्यो (संवत्सरे) प्राप्त हो ॥ २ ॥

(जीवां) जीवित (नीयमानां) स्वकामकी ओर के आई गई व (मृतेभ्यः) मरे हुए मनुष्योंके (परिणीयमानासु) नापिस घरके ऊंचाई गई (युवति) नवान् स्त्रीको (अपह्यं) धर्म देखा है । (यत्) क्योंकि वह जो (धर्मसा) श्लोकजन्य गहरे लंबकार के (प्राप्नुवासीत्) इकी हुई थी नार्यात् वारन्य श्लोकपूर्व थी । (अत्) इसलिये / पूर्वा) इस (अपाधी) पीछे की तरफ नार्यात् घरकी ओर जानेवाली को (प्राक्तः) वहां सामने (जनयत्) जाई ॥ ३ ॥

(अचेन) हे नार्यके अनोख स्त्री । (जीवश्लोकं प्रधानं) संसारको चली जाति नार्यात् हुई और (देवानां पन्थं) मनुष्यचरन्ती) देवोंके मार्गका अनुसरण करती हुई नार्यात् देवोंके मार्गपर चलती हुई (नार्यं) यह जो (ते) ठेरा / गोपतिः) गोपति है (ते पुंस्त्व) वचसे प्रीति कर । और इस प्रकार (पुंस्) इस गोपतिको (स्वर्गं श्लोकं ममि रोहयेनम्) स्वर्गश्लोकमें पहुँचा ॥ ४ ॥

आचार्य- पतिके घर जानेपर सप्तम्यकी कामना करनीवाली स्त्री नार्यात्पुनः पुनरे पुनश्च पति नार्यात् वच व सप्तम्य में प्रीति करे । यह पुनः ही उचै पत्नी नार्यात् सप्तम्य व नार्ये वचन्य नामक विधान करे ॥ १ ॥

हे नारि ! तू इस मृत पतिके किसे श्लोक करना श्लोक है और संसारमें जाकर नार्यात् १४ । ठेरे पतिग्रहण करनेवाले पतिके सप्तम्यमें प्राप्त कर ॥ २ ॥

मृत पुरुषके पीछे पीछे स्वकाम मूमिमें जाती हुई स्त्रीको नापिस छोड़ा जाना है । यह स्त्रीको नार्यात् ही (तव) इहे नारी पर (वर पर) के जाना है ॥ ३ ॥

हे स्त्री ! तू संसारके सभी प्रकारके कामकी हुई तथा देववर्गके मार्गोंका अनुसरण करती हुई इस ठेरे पतिके प्रीति कर । उसकी सप्तम्य सामर्थ्य कर्मोंमें सहायक होकर वचसे स्वर्गश्लोक प्राप्त करा ॥ ४ ॥

उप धामुप वेतसमर्षचरो नदीनाम् । अर्धे पिचमपामसि

॥ ५ ॥

य त्वममे समर्द्धस्तमु निर्वापया पुनः ।

क्याम्भूरर्ध रोहतु क्षाण्डदूर्धा व्यस्किष्टा

॥ ६ ॥

इद स एकं पर ऊ स एकं तृतीयैर्न ज्योतिषा स विंशस्व ।

सुधेयने तन्वा ३ चारुंरधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे

॥ ७ ॥

उषिष्ठं प्रेष्टि प्र द्वौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।

तत्र त्व पितृभिः सविदानं स आमैनं मर्दस्व स स्वधार्भिः

॥ ८ ॥

अर्थ—(वहीनां) खम्ब करते हुए—वर्कना करते हुए (अर्धे) अर्धोकी सवम्भिनी (या उप) युक्त समीप यहाँ से खम्ब अथवा का बाकी है । एकके ऊपर वही हुई समीपके चारों से सहित (चारों) का नाम अथवा है । तथा (वेतर्-उप) वहाँ के समीप (नदीके किनारे लगनेवाले बर्धेका नाम वेतस है) समीप अथवा उप खम्ब सप्तम्बव प्रतिपादन है । अथकामे तथा वेतस में [अथकसः] अथस्त एक समभूतां है । वतस व अथका का अर्धोप सार होता वसिरीय में क्या क्या है । अर्धों का एकत पुर्ण पर वेतसः । अर्धोक्तोऽथका । वेतससाधवा पावकामिष्ट विर्येति । इति (ते ३ भाषायाः) (अर्धे) है अग्नि । ए नी (अर्धे सितम्) एक सवम्भीरित धातु है ॥ ५ ॥

[अर्धे] है अग्नि । [३] जिस श्रेष्ठ को दूने [समर्द्धः] अकाया है । [उ उ] उर्ध्वे [युगः] फिर सम्पूर्णतया वरुण हो चुकने पर [विर्वापक] हुआ जाऊ । [अथ] इस धूर्ध्व के एकके एक स्थान पर [क्याम्भूः] कितना यह विडम्बना यह कि जिससे [व्यस्किष्टा] विविध धातुओंवाली [क्षाण्डदूर्धा] क्षाण्डनायक दुर्ध्व धान [रोहतु] अर्थ ॥ ६ ॥

[७] ठेरे किए [इद एकं] यह एक ज्योति है (उ) और [परः] आगे [ते एक] ठेरे किए एक ज्योति है ए [तृतीयैर्न ज्योतिषा] तीसरी ज्योति उ [स विंशस्व] अग्नी प्रकार प्रविष्ट हो । अथान् उय नीमरी गवातिर्न प्रविष्ट हो । और उय हीसरी ज्योतिर्न [सुधेयने] अग्नी प्रकार प्रविष्ट होयेपर [परमे सधस्थे] उय उतम सधके रहनेके स्थान में [देवानां प्रियो] देवोंका प्रिय हुआ हुआ [तन्वा चारु] सारीके उतम हुआ हुआ [एषि] वह ॥ ७ ॥

[उषिष्ठं] उषि, [प्रेष्टि] या (प्रष्टव) हीन (सधस्थे) जहाँ सध हक्के रहते हैं देवे (समिष्टे) अन्तर्ग्रह (बोका) या [कृणुष्व] क्या । (तत्र) यहाँ अन्तर्ग्रहमें [त्वं] तू [पितृभिः] आत्मायाः] अथ पितरोंके साथ भिक्षा हुआ देवमायका मध्य हुआ हुआ [सोमने] सोमके (संमर्द्धव) अग्नी वह आनर्द्ध हो और [स्वधार्भिः] स्वाधामोष [उ] अर्ध परम एक हुआ हुआ आनर्द्ध हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—है अग्नि । यन्त्रके तू यन्त्रोक्त सवम्भी है अथ तुझे जलने केवन्त्र रक्षनवाली अथवा वरुण भा आनर्द्धोषे उषि करण ॥ ५ ॥

करके सम्पूर्णतया वरुण हो चुकने पर आनर्द्धोषे युग वज्रना यहिए व वहीर इतना व नी विडम्बना यहिए कि । [७] ठेरे के वहीर पूर्ण जाऊ भिक्षा अर्थ ॥ ६ ॥

मनुष्य अर्धे अर्धे ठेकसिता यन्त्रे और अन्तर्ग्रहाति को यन्त्रे अर्धेय वाचन कर ॥ ७ ॥

पितर अन्तर्ग्रहों की रहते हैं अर्धोष अन्तर्ग्रह भा विर्योके आत्माके से एक और है यहाँ ॥ ८ ॥

प्र च्यवस्व तर्न् १ स मरस्व मा से गात्रा वि हापि मो क्षरीरम् ।

मनो निर्दिष्टमनुमविशस्व यत्र भूमेर्ज्वले तत्र गच्छ ॥ १४

वर्षेसा मा पितरः मास्यासो अर्धन्तु देवा मधुना धूतेन ।

चक्षुष मा प्रतः ताग्यन्ता ज्वरमे मा अरदष्टि वर्षन्तु ॥ १० (१३)

वर्षेसा मा ममनक्तु मेघा मे विष्णु र्धनक्तु न ।

राये म विश्वे नि यच्छन्तु दवाः स्यान्ता मातुः पतैः पुन तु ॥ ११ ।

मित्रावरुणा परि मामघातामाक्षिप्या मा स्वरजो वर्षवत्तु ।

वर्षो म इन्द्रो न्यनिस्तु इस्तयोमरदष्टि मा सविता कृष्णातु ॥ १२ ॥

अर्थ— (प्रच्यवस्व) अग्न चक्षुषि कर । (तन्म क्षरीरका) धं मरस्व, अतमवका पाकम कोकम कर । (गात्रा) जो हाथ पै
जात्र गात्र (मा विहाप्य) मम हृदये शुक्र कोकम मम चक्षुषे चक्षुषे । [मो क्षरीरं] क्षीर तेरा क्षरीर भी मम हृदये । [मम विविध]
अग्नि तेरा मम विविध हो अर्धोय अग्नि तेरा मम चक्षुषे अग्नि तेरा मम चक्षुषे (अनु सं विहाप्य) मम की हृदयस्थान प्रवक्त कर का । (मम
(वक्त्र) अग्नि (पुनः पुनः) मम के मीति करता है अर्धोय जिस देवसे तेरा मम चक्षुषे करता है (उत्त) अतमवका (मम)
मा ॥ १॥

(मोस्यासः पितरः मा वर्षेसा मजन्तु) सोम संपाद्य करनेवाले पितर मुझे देवसे स्वयं करें । (देवा मजन्तु
हृदये) देव मुझे मातृपुत्रिय चक्षुषे स्वयं करें । (चक्षुषे मा प्रतः ताग्यन्ताः) देवसे के हृदये मुझे चक्षुषे कर जात्र
हृदय अर्धोय समर्थ बनाते हृदय (अरदष्टि मा) जिसका आनयान विविध हो गया है ऐसे शुक्रसे (अरदष्टि) अतमवका मम
(वर्षन्तु) अर्धोय अर्धोय जिस हृदयेसे जाने पीने की क्षति क्षीर हो जाती है उस हृदयेसे मुझे पशुपाद । मम संनय
दीर्घाभुवाका मुझे चक्षुषे, अतमवका हृदये से क्षीर न होके ॥ १० ॥

(अग्निः) अग्नि (मा) मुझे (वर्षेसा) देवसे (समनक्तु) चक्षुषे प्रकार से पुन करे । (विष्णुः) विष्णु परमात्म
(मे जात्रम्) मेरे हृदये (मेघा नि मजन्तु) मुझे अतमवका स्थापित करे । (विश्वे देवाः) सब देव (मे रथं)
मेरे हृदये धन (विष्णुः) अर्धोय करे । (स्तोवाः मातुः) मुनिकारी वक्त्र (मा) मुझे (पचये) पचिय चक्षुषे
साध (पुनस्तु) पचिय करें ॥ ११ ॥

[मित्रावरुणा] रात्र व विश्व (मा) मुझे (वरि अघाताम्) चारों ओरसे चारण करें अर्धोय मेरी कन कोक
रक्षा करें । (स्वरजः) अतमवका अतमवका पशुपादेवाके अतमवका अतमवका करते हृदय (वाक्षिप्या) अग्निसे के हृदय देव—
मम (मा वर्षन्तु) मुझे अर्धोय । (इन्द्रः) देवसे अर्धोय (मे इस्तयोः) मेरे दोनों हाथों [वर्षाः मजन्तु] देव परमात्म
करे । क्षीर [अघिषा] चक्षुषे मेरे वक्त्र अतमवका अतमवका देव (अरदष्टि कृतेषु) मुझे दीर्घाभुवा बनाते ॥ १२ ॥

मातार्थ— दे मजन्तु तू चक्षुषि कर । अपने क्षरीरका ठीक ठीक प्रकम कर जिससे तेरी आन्तरिक धनु व कर्तृ मज
व हा । संनय के हृदय ममिमानसे तेरा मम चक्षुषे करे अर्धोय तू अतमवका वा । जो देव मुझे अतमवका मजन्तु है अर्धोय मा ॥ १॥
दीर्घाभु देवा व मजन्तु के अतमवका पूर्णवस्थातक पशुपादा पितरों वा अर्धोय है ॥ १॥

अग्नि के मुझे देव जात्र हो । विष्णु परमात्मा मुझे अतमवका मुक्षिमाय बनाते । देवमम मुझे अतमवका अतमवका करे तथा
जगामेधित परंतु मुझे अतमवका चक्षुषे करता रहे जिससे कि मैं मुनिकारी जीवम विताऊं ॥ ११ ॥

रात्र व विश्व मेरी वक्त्र ओरसे रक्षा करें । अतमवका अतमवका चक्षुषे देवमम मेरी हृदये करें । इन्द्र मेरे हाथों मम
देव व अघिषा देव मुझे दीर्घाभु प्रदान करे । इन्द्र प्रकार अर्धोय देव मेरे परमात्म करे जिससे कि मैं मुनिकारी जीवम अतमवका
कर चक्षुषे ॥ १२ ॥

यो ममारे प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयायै प्रथमो लोकमेतम् ।

वैवस्वत सगमनं जनानां मम राजानं हविषा सपर्यत ।

॥ १३ ॥

परां वात पितर आ च यासाथ वो यज्ञो मधुना समक्तः ।

दुष्टो अस्मभ्य द्रविणह मरुं रयिं च नः सर्ववीर दधात

॥ १४ ॥

कण्वः कृषीषान् पुरुमीदो अगस्त्यः इयावाश्वः सोमर्यचनानां ।

विश्वामित्रोऽय जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः

॥ १५ ॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ मरुद्वाज गोवम वामदेव ।

श्रद्धिर्नो अत्रिरप्रभीक्ष्मोभिः सुसंशासः पितरो मुदता नः

॥ १६ ॥

मर्त्य- (वः) जो (मर्त्यानां प्रथमः प्रथम) मनुष्योंमें सबसे प्रथम मरा और (वः) जो (एवं लोकं प्रथमम्) लोक) इस लोक वमकोक को सबसे पहिले मरा उस [जनानां सगमनं] जनो के संगमन [वैवस्वतं वरं राजानं] विश्वस्वत के पुत्र वर राजाजी [हविषा सपर्यत] हविषा द्वारा पूजा करो ॥ १३ ॥

(पितरः) हे विरतो । [परासाथ] यज्ञ समर्थ पर आपका ऊँट आधो । (च) वीर फिर [यासाथ] जाओ क्योंकि [वयं यज्ञः वः] यह यज्ञ तुम्हारे किन [मधुना समक्तः] मधुर आगवसे तैयार किया हुआ है । [इह] इस यज्ञमें [द्रविणम्] धनो को [दुष्टो] दो । [मरुं सर्ववीरं रयिं च] और कन्यावकारी तथा सर्व वीरवासे कुछ रयि अर्थात् सम्पत्ति- समृद्धि के [वः] हमें [दधात] पुष्ट करो । [मनु क्व अथ है मधुरसंपूर्ण जाग्य । दक्षो दे म्, १। - पञ्च दे मनु देव्यं वद् जाग्यम्] ॥ १४ ॥

[कण्वः] कुशिमन्, [कृषीषान्] क्षासन करनेवाला (पुरुमीदो) बहुवचनवाला (अगस्त्यः) आपका वाघ कर देनेवाला (इयावाश्वः) काक घोडोंवाला वा जामी (लोमी) श्वेत्तर्वाला (वषट्पायः) पूजनीय स्वयंका वा वचन वीरवचनका (विश्वामित्रः) सबका मित्र तथा (जमदग्निः) यह यज्ञ है जिसकी सदा अग्नि प्रज्वलित रहती देख, (कश्यपः) सुहृत्सदी तथा (वामदेवः) जलम उद्वहारेवाला व मव [वः] हमारी [वचन्तु] श्ला करें ॥ १५ ॥

हे [विश्वामित्र] सबके मित्र (जमदग्ने) हे काष्ठिक प्रकाशक (वसिष्ठ) हे अविग्रह भद्र [मरुद्वाज] हे अक्षरक-कारक [योवम] हे जलम रहोता [वामदेव] हे प्रसंसनीय स्वहारेवाला [सुसंशासः] जयम तथा शत्रुवि करने योग्य (पितरः) विरतो । तुम [वः] मुदत । हमें सुखी करो क्योंकि [श्रद्धिः] अग्निः] अन्नविशिष्ट अग्निसे [ममोभिः] अन्नोके हमें [वचन्तु] ग्रहण किया है अर्थात् यह हमें अन्न दता है ॥ १६ ॥

मार्गार्थ मनुष्योंके के सबसे प्रथम मनुष्य विवस्वन् का पुत्र सुवच पाहके इस यज्ञमें आकर मरा और फिर सबसे १३के वयमोदमें तथा अन्तः उस मोकक नाम उवच नामके वचनक ऐसा पडा ॥ १३ ॥

फिरते का वचने मधुर आगव देना चाहिए विरतो क व आगवदाताओ का धनवाच्य देवे व जलम वीर कदाव के पुष्ट करे ॥ १४ ॥

वैवाक नामा पुत्र दिवेह विरत इमरी वरदा रक्षा करें ॥ १५ ॥

हे वरकोक विवेचन दिवेह विरतो हमें सुखी करी ॥ १६ ॥

कृत्से मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतुर नवीयः ।

आप्यायमानाः प्रजया घनेनार्धं स्याम सुरमयो गृहेषु

॥ १७ ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते कर्तुं रिहन्ति मधुनाम्भ्यञ्जते ।

सिन्धौरुच्छवासे पतयन्त्यमुष्मणं हिरण्यपावाः पक्ष्मासु गृह्यते

॥ १८ ॥

यद् वीं मुद्रं विंतरः सोम्य च तेनो सचञ्च स्वयंभसो हि भूत ।

ते अर्वाणः कवय आ मृणोष सुविदुश्चा विदये ह्यमानाः

॥ १९ ॥

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवंवा कृष्टावेन्तो रातिपाचो दधानाः ।

दधिणावन्तः सुकृवो य उ स्यासद्यास्मिन् घृतिर्पि भादयन्वम्

॥ २० ॥ (१४)

अर्थ—[कृत्से] काममें [मृजानाः] परिश्रम होते हुए [प्रतुर] दीप्त [नवीयः] नवीन [आसु] अत्युच्च (सकल) धारण करत हुए (रिं) पापका (अतिवर्धित) अतिवर्धन करते हैं पापसे बचते हैं । और इस प्रकार पापसे स्वयं (प्रजया) प्रजा द्वारा व (घनेन) घनद्वारा (आप्यायमानाः) बहते हुए (गृहेषु) घरोंमें (सुरमयो) सुन्दर पापवासे अर्वाणः प्रसंसनीय गुणोंवाले (स्याम) होयें ॥ १७ ॥

(कर्तुं) बन्धको (मधुना) मधुर भावसे [अञ्जते] समुच्च किया जाता है । [वि अञ्जते] निम्नर निम्न जाता है [सं अञ्जते] मिश्रकर प्राप्त किया जाता है [अति अञ्जते] चारों ओर विस्तार किया जाता है तथा सब मिश्रकर उसकी [रिहन्ति] अर्पणा करते हैं । कवय पक्षियों [रिहन्ति = विहन्ति] बने हैं । [हिरण्यपावाः] सुवर्णदि फलक शङ्ख वा हिरण्यसे परिश्रम करनेवाले [सिन्धोः अम्भ्यञ्जते] समुद्रसे पृथिवी समुद्र (पतयन्त्य) जात हुए [उष्मणं] बुरा करनेवाले वा सिंचन करनेवाले [पक्ष्मासु] घरको देखनेवाले को [आसु] इनमें [गृह्यते] कैल है ॥ १८ ॥

[विंतरः] वे विंती । [वीं मुद्रं सोम्य व] तुम्हारा जो इषयद् य सोम्य कार्य है [तेनो] वच इता (वच वच) इसे केवित करे अर्वाणः प्राप्त करो । (दि) विभवसे तुम (स्वयंभसः) अपने पक्षसे ही बचारी [भूत] गये हों । [अर्वाणः] मर्षिकाके अर्वाणः विशाली [कवयः] अङ्गिरसी तथा [सुविदुश्चा] उत्तम धनवासे (ह्यमानाः) मुक्तिय गए [व] वे तुम (विदये) बहमें हमारे उत्तरोत्तर प्राप्तवासे [आसु] आकर मुझे ॥ १९ ॥

[व] जो तुम [अमय] महा प्राज्ञिके योग [अङ्गिरसा] प्राची [अमयः] अमय [ह्यमानाः] दक्षीणार्ध अग्नि करनेवाले [राति पाचः] रात करनेवाले [कृष्टावेन्तो] पाकन पोषण करनेवाले [रातिपाचः] रात पुत्र, [मुद्रा] उत्तम कम करनेवाले [व] जो वे तुम (अतिमन् परिधि) इस अङ्गमें [आसु] बैठकर [भादयन्वम्] आरतिव होयें । इति आकर मृत होयो । अत्र—यत्र आसुय सत्रभाग करनेवाले ॥ २० ॥

भाष्य—इमं ज्ञानं प्राप्त्य अनेकांशं कुरुते हुए पपय वने व दीर्घ जीवन प्राप्त करें । इस प्रजा संतति अति वे प्राप्त हुए सुन्दर मुने प पूर्ण होयें ॥ १७ ॥

किंवा हुआ अर्ध मीठा कम इनका भाव ॥ १८ ॥

विंतीसे अम्भ्यञ्जित करनेके लिए वह आपन भूत है ॥ १९ ॥

विदये अतो एव यह हो पुत्र है ऐसे ज्ञानी अमयम करनेवाले इष्टार्थ करनेवाले आगे पपय अ करनेवाले ॥ १९ ॥ इव वचने आगे व इति आकर मृत हवे—आमय यनाये ॥ २० ॥

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या विद्यः पातु बाहुच्युता पृथिवी धामिन्नोपरि ।

लोक्कृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतमाणा इह स्थ ॥ २५ ॥

प्राता मा निर्ऋत्या दधिष्ठाया विद्यः पातु बाहुच्युता पृथिवी धामिन्नोपरि ।

लोक्कृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतमाणा इह स्थ ॥ २६ ॥

अदिविर्मादित्यैः प्रतीच्या विद्यः पातु बाहुच्युता पृथिवी धामिन्नोपरि ।

लोक्कृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतमाणा इह स्थ ॥ २७ ॥

सोमो मा विश्वेदेवैरुदीच्या विद्यः पातु बाहुच्युता पृथिवी धामिन्नोपरि ।

लोक्कृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतमाणा इह स्थ ॥ २८ ॥

पृथो इ त्वा प्ररुमो बारपाता ऊर्ध्व मानु संविता धामिन्नोपरि ।

लोक्कृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतमाणा इह स्थ ॥ २९ ॥

प्राच्या त्वा विक्षि पुरा सवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी धामिन्नोपरि ।

लोक्कृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतमाणा इह स्थ ॥ ३० ॥ (१५)

अर्थ— [मरुत्वा इन्द्रो] मरुतोवाका इन्द्र [मा] मेरी प्राच्या दिशा; पूर्व दिशासे अर्वाह पूर्व दिशासे अग्नेवासी आपत्तिर्नोपे (पातु) रक्षा करे । (बाहुच्युता पृथिवी) बाहुनोपे ही गई अथवा बाहुओंमें गम हुई अर्वाह अग्नेर्नोपे ही गई या अग्नेर्नोपे की गई पृथिवी (इह) जिस प्रकार है कि (उपरि) ऊपर (या) पुष्पी रक्षा करती है । (लोक्कृतः) लोकलोक बनावेवालों तथा (पथिकृतः) मार्गोको बनावेवालों की हम (यजामहे) पूजा करते हैं (ये) जो कि पुन [इह] अर्वाह [देवानां] देवों के बीचमें (हुतमाणा) जिसके किए कि भाग दिया गया है ऐसे (स्थ) हो ॥ २५ ॥

(प्राता) अथवा प्रातः अग्नेवासी (दधिष्ठाया दिक्षा) दधिवि दिक्षाही (निर्ऋत्या) निर्ऋति के अर्वाह कइ आपत्तिर्नोपे (मा पातु) मेरी रक्षा करे । अथ पूर्वपद ॥ २६ ॥

(अदिविः) अथवा अग्नेवासी अदिवि अदिवि (अदिविः) अदिविओं द्वारा (प्रतीच्या दिक्षा) प्रतीच्या दिक्षा अग्नेवासी आपत्तिर्नोपे (मा पातु) मेरी रक्षा करे । अथ पूर्वपद ॥ २७ ॥

(सोमः) सोम (विश्वे देवैः) सब देवोंके अथ (उदीच्या दिक्षा) उदीच्या दिक्षा अग्नेवासी आपत्तिर्नोपे (मा पातु) मेरी रक्षा करे । अथ पूर्वपद ॥ २८ ॥

अथर्व— सकारे भर अर्कें हमें बाबा प्रकार के उपदेश देते हैं । वेदमन्त्र हमारे किए क्या करते हैं अथवा वहां न सिद्ध करने पाया है ॥ २९ ॥

देवोंके उत्पन्न होयेका कर्म रहस्य जानकर अनेक अनुसार छान कर्म करना चाहिये ॥ २९ ॥

अग्नि के किए कर्म करने से ही हम अनेक कर्मोंके हो सकते हैं न वही हमारे किए क्या अग्नि प्रकाशमान करने अथवा अग्नि से स्थित होकर प्रकाशित होते रहते हैं । देवोंके पक्षित पक्षी भी अग्नि हाकड़में हमारे किए अग्नेवासी होते हैं । हमें चाहिये कि हम अग्निप्रति स्तुति अथवा अग्नि प्रभूत मात्रामें करते रहें ॥ २९ ॥

मरुतो के पुन इन्द्र मेरी पूर्व दिशासे अग्नेवासी आपत्तिर्नोपे निवारण करने रक्षा करें जिस प्रकार कि पृथिवी पु की हमारे अग्नि अग्नि न मरुतोंके अग्नेवासी देवोंकी भी हम पूजा करते हैं न अग्निमान करते हैं जो कि वेदमन्त्र सब अग्नेवासी विद्वान् हैं ॥ २९ ॥

अथ अग्नेवासी अग्नि रक्षा होये और हमें अनेक मार्ग प्राप्त होये ॥ २९-३० ॥

दक्षिणायां स्वा दिशि पुरा सवृतः स्वधायामा दधामि बाहुभ्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे य देवानां हुतमागा इह स्थ ॥ ३१ ॥
 प्रतीच्यां स्वा दिशि पुरा सवृतः स्वधायामा दधामि बाहुभ्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतमागा इह स्थ ॥ ३२ ॥
 उदीच्यां स्वा दिशि पुरा सवृतः स्वधायामा दधामि बाहुभ्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतमागा इह स्थ ॥ ३३ ॥
 ध्रुवायां स्वा दिशि पुरा सवृतः स्वधायामा दधामि बाहुभ्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे य देवानां हुतमागा इह स्थ ॥ ३४ ॥
 ऊर्ध्वायां स्वा दिशि पुरा सवृतः स्वधायामा दधामि बाहुभ्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतमागा इह स्थ ॥ ३५ ॥
 धर्तासि धरुणोऽसि धर्मगोऽसि ॥ ३६ ॥
 उदपूर्सि मनुपूर्सि वातपूर्सि ॥ ३७ ॥

अर्थ- (३१) निम्नरथे (पथिकृतः) यजामहे (यजामहे) धारण किया जानेवाला धारक (स्वा) तुल्य (ऊर्ध्वं धारणार्थे) ऊंचा धारण करो । [उदीच्यां] पूर्व (धातु) यो इव अपरि) प्रकाशमान पुत्रो जिस प्रकारसे कि ऊपर धारण किया हुए है । सेव पूर्ववत् ॥ ३१ ॥

[प्रतीच्यां] धरीरथे वक्रा हुना अथवा सप्तप्रकारकी पूर्वोक्ते परिपूर्ण में [ध्रुवायां दिशि] पूर्व दिशा में [स्वधायामा] स्वधामि [स्वा] तुल्य (आधायामि) रक्षण हूँ—रक्षायित करता हूँ । जिस प्रकारसे । जिस प्रकार से कि बाहुभ्युता पृथिवी ऊपर पुत्रोको स्थापित करती है । सेव पूर्ववत् ॥ ३२ ॥

[दक्षिणायां दिशि] दक्षिण दिशामें -- इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३३ ॥

[प्रतीच्यां दिशि] पश्चिम दिशामें इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

[उदीच्यां दिशि] उत्तर दिशामें इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३५ ॥

[ध्रुवायां दिशि] सिध्दायीकी दिशामें इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

[ऊर्ध्वायां दिशि] ऊपर की दिशामें इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३७ ॥

ये वरममम । ॥ [धर्ता भसि] सबका धारण करनेवाला है । ॥ [धरुणः] सबसे धारण किया जानेवाला है ।

॥ [धर्मगोऽसि] धर्मरक्षणीय वृद्धाचार्योका प्राप्त करनेवाला है ॥ ३६ ॥

॥ [उदपूर्सि भसि] सब सप्तप्रकारो जल पशुपक्षीका है । ॥ [मनुपूर्सि] मातृवपुर्गौरव रसोका पशुपक्षी वाका है व ॥ [वातपूर्सि] सबको प्राणवायु पशुपक्षी वाका है ॥ ३७ ॥

भावार्थ-परमेश्वर सबका आहार है ॥ ३६ ॥

हे परमात्मन् तू ही सबको जल मधुर रस तथा प्राणवायु मिश्रक किया संसार को स्थिति करि दे रहा है ॥ ३७ ॥

इत्थं माधुतभावतां यमे इव यतमाने यद्वैतम् ।

म वां मरुन् मातृपा त्वेयन्तो आ सीदतां स्वमुं लोकं विदन्ति

॥ ३८ ॥

स्वास्तस्ये मधुतमिन्दधे नो युवे वां अर्धं पूर्णं नमोमि ।

वि श्लोकं एति पथ्येभि सूरिः ध्रुवन्तु विभे अमूर्तास एतत्

॥ ३९ ॥

त्रीणि पदानि रूपो अन्वीरोहृष्टतृष्पदीमन्वैतद् अतर्न ।

अध्वरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नामावामि सं पुनाति

॥ ४० ॥ (११)

अर्थ— [वत्] यथोक्ति हे इतिवचि ! तुम दोनों [यमे इव] पुनःकोत्पन्न उत्पन्न की तरह [वतमाने] संकटा-
पोषण करनेके लिए साथ साथ प्रयास । वरहेवाले होकर [देवम्] निष्कारण करते हो, इत्यदि (वं) मेरी [इत्य अमुका]
इस लोकके व परलोकके अर्धार्थ इव दोनों लोकोंमें जायेवाकी विपत्तिवर्षे [वमतां] रक्षा करो । [मातृपा] मनुष्य
(ध्रुवन्तः) देव करने की कामना करते हुए (वा) तुम दोनोंका अधरत, अध्वरी प्रकारसे भरण पोषण करो । तुम
दोनों [स्व लोक विदन्ते] अपने स्वाम को जानते हुए [पापीदतां] वध स्वस्वपर देखो ॥ ३८ ॥

हे इतिवचि ! (गः इत्यर्थे) हमारी देवत्ववृत्ति के लिए तुम दोनों (स्वास्तस्ये) सुखात्मक—उपमात्मक वर देने—
वाला [मधुतम्] होओ । मैं [नमोमि] नमस्कारके साथ (वा) तुम दोनोंके [पूर्णं अर्धं युवे] इरात्मक लोकमें
करता हूँ । अर्धार्थ नमस्कारपूर्वक मैं वैद्वर्गमेंसे तुम्हारी स्तुति करता हूँ । [श्लोकः] वह किना हुआ अस्मिन्तु (वि
पति) तुम दोनोंको विपन्न कष्टमें मग्न होता है । इसको ध्यात्वहमारा समझते हैं कि [पथ्या एति इव] जिस प्रकारसे
कि उत्तम नमस्कारके विहाय इच्छित पदार्थको प्राप्त होता है वही अक्षरसे वह इवके की गई स्तुति तुमको लाभ होती है ।
[एतत्] इस हमारे द्वारा किए गए कपरोक स्तोत्रको (विभे अमृतासः) सर्व अमृत लोक (ध्रुवन्तु)
धुमें ॥ ३९ ॥

[वत्] वत् [त्रीणि पदानि अमृतासः] तीन स्वामोंपर चढ़ता है यथोक्ति [मतेन] अपने स्वामी
कर्मद्वारा [कतुवर्ही अमु देवम्] कतुवर्हीका अनुसरण करता है । और [अध्वरेण] अपने अध्वर कर्मद्वारा (अर्धार्थ
मिमीते) सर्वेसे बरत प्रकाशभाव अपने को बनाता है । अथवा अपने अध्वरकर्मद्वारा पूजनीय बनाता है । इसकी
कीर्ति प्रत्यक्ष तक बनी रहती है । वह अपने वातको [मृतस्य मातृ] वधके मन्त्रमें अथवा उत्पन्न विपत्तियों के दोषों [प्रति
धनुमति] चारों ओरसे अध्वरीप्रकार छुड़ करता है ॥ ४० ॥

अर्थार्थ—मेरी दोनों लोकोंमें जायेवाकी विपत्ति रक्षा हो । यथोक्ति योर्ध्व इति ११वीं चर्चके लिए इतर इतर विचार करते रहते
हैं । तुम्हारा भरणपोषण इव करते रहें व तुम दोनों अपने कर्तव्यके पालनमें रहते हुए अर्थ करते रहो ॥ ४० (११११) ॥ ४०
हे इतिवचि ! तुम दोनों हमे देखने दिखानेवाले होओ । मैं वधके नमस्कारमें तुम्हारी वैद्वर्गमेंसे स्तुति बंध । मेरी कृपे
तुमको पते पथके जैसे कि विहाय समर्थसे अपने अधिष्ठाता स्वामी प्राप्त होता है । अर्धार्थ विपन्न प्रकाश विहाय अमृतास
अक्षर ही संक्षिप्त एक काम करता है वही प्रकाश वह स्तुति की तुम्हें अपरकर्ममें प्राप्त होती है । मेरी ह्म स्तुतिके र्ध अमृत
गण धुमें अर्धार्थ के मेरी स्तुति के लिए साक्षीभूत होवें ॥ ३९ ॥

वध करके या वध विवर्गोंके अनुष्ठान आचरण करके वह मनुष्य अपने वातको छुड़ करता है । ॥ १११११ ॥ ४० ॥

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्यु प्रसाद्ये किममृत नानृणीत ।

बृहस्पतिर्यज्ञमृतनुत ऋषिः शिषा यमस्तन्मा मा रिरिच ॥ ४१ ॥

त्वमंगन ईदितो आतवेदोऽवाहृत्य्यानि सुरभीभि कृत्वा ।

प्रादां पितृभ्यः स्वधया ते अंशुनादि त्वं देव प्रपत्ता इषीषि ॥ ४२ ॥

आसीनासो अह्यनीनामुपस्थे र्षिं चं च वाशुपे मर्त्याय ।

पुत्रेभ्यः पितरस्त्वस्य वस्यः प्रयच्छत त इहोर्वि द्वात ॥ ४३ ॥

अपिष्वात्ता पितर एह गच्छत सदैःसदैः सदैव सुप्रणीतयः ।

असौ इषीषि प्रयत्तानि णिषि र्षि च नः सर्वेवीर द्वात ॥ ४४ ॥

अर्थ- (देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्यु प्रसाद्ये किममृत नानृणीत) देवोंने भी मरना क्या । अर्थात् देव भी मृत्यु मरते थे । तब (बृहस्पति ऋषिः यम मृतनुत) ब्रह्मर्षि बृहस्पति ऋषिने अमरताकी प्राप्तिके लिए यज्ञ किया और देवोंके लिए [अमृत नानृणीत] अमरता को प्राप्त किया पर [प्रसाद्ये] प्रसादके लिए [किं अपि अमृतं] कोई भी अमरता या प्रसाद की अर्पण [यमः] यमोंके अग्रहार करनेवाला यम प्रसादके [शिषा त्वम्] वरकी प्यारी है [आरिरिच] जीव केवा है अर्थात् यम की मृत्यु होवी है ॥ ४१ ॥

दे (आतवेदः अग्ने) अन्नमवृत्त मग्निः । (ईदितः लं) स्तुति किया गया है [द्य्यानि] इन्द्रोंको (सुरभीभि कृत्वा) सुगन्धित बनाकर (अवाहृत्य्यानि) वहन कर [पितृभ्यः] उन इन्द्रोंको पितरोंके किये (प्रादाः) द । (ते) ये पितर [स्वधया अवाहृत्य्यानि] उन इन्द्रोंको स्वधाके साथ आये । (देव) हे प्रसादमान मग्नि ! [त्वं] तू भी [मरता इषीषि] भी गई इषियोंको [अदि] का ४२ ॥

[अह्यनीनाः उपस्थे आसीनासः] यज्ञमें प्रदीप्त की गई आग्नि की काष्ठ प्याकरनेके अनीपमें बैठ हुए अर्थात् यज्ञमें उपस्थित हुए हुए पितरों ! (वाशुपे मर्त्याय) दानी मनुष्यके लिए (र्षि चत) यमको दो । [त्वम्] उस दानीक [पुत्रेभ्यः वस्य इवच्छत] पुत्रोंके लिए यमका दान करो । (ते) ये तुम (एह) यहाँवर उस दानी या दानीके पुत्रोंके लिए (कर्तं) लक्ष्य (द्वात) पुत्र को ॥ ४३ ॥

दे [सुप्रणीतयः] अन्न प्रकमले के आग्निशक्ते (अपिष्वात्ताः पितरः) अपिष्वात्ता पितरों । [इह] यज्ञमें [आपच्छत] आये [सदैः सदैः सदैव] बारबार मिले होओ । [नः] और [सर्वेऽपि प्रयत्तानि इषीषि चत] यज्ञमें भी गई इषियोंको आओ । और हमें (सर्वेऽपि र्षि द्वात) सर्व अन्न की वीरताके परिपूर्ण पुत्ररूपी यम दकर पुत्र को ॥ ४४ ॥

साधार्थ- देव अमर हैं और मनुष्य मरते हैं ॥ ४१ ॥

आग्नि की स्तुति करनेपर वह पितरोंके किये इषियोंके सुगन्धित बनाकर के जाती है । और पितरोंको य आदर रही है त्याग के चले ॥ ४२ ॥

हे पितरों ! यज्ञमें बैठकर जो दान करनेवाला है उसके लिए तथा उसके पुत्रोंके लिए यम या अन्नका दान करके उन्हें पुत्र का । यज्ञमें (११। ४३) ॥ ४३ ॥

हे अपिष्वात्ता पितरों ! बार बार मिले आओ । यज्ञमें तुम्हारे अग्रहार की गई इषियोंको आओ तथा उसके वरचसे में पार किये या प्रदान करो ॥ ४४ ॥

उपहृता न पितरः सोम्यासौ बहिष्येष्टि निधिपुं प्रियेपुं ।

त आ गमन्तु स इह भुषन्तवर्षि भुषन्तु सेऽषन्तस्मान्

॥ ४५ ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अमृजिह्वे सौमपीष बसिष्ठाः ।

उर्मिर्यम सैरराणो हवींष्युष्ट्रघ्नस्रिः प्रतिक्राममनु

॥ ४६ ॥

ये तानुपुर्देष्ट्रा अहमाना होत्रानिवः स्तोमं तष्टासो अर्कः ।

आर्षं याहि सुहस्रं देववन्दैः सत्यैः कृमिभिर्गर्भिर्मर्मस्रिः

॥ ४७ ॥

ये सत्यासौ हविरदौ हविष्या इन्त्रेण देवैः सुर्यं तुरेण ।

आर्षं याहि सुविदत्रेभिरुर्वाक् परैः पूर्वैर्गर्भिर्मर्मस्रिः

॥ ४८ ॥

अथ [ते] वे [सोम्यास] सोम संपादन करनेवाले [पितरः] पितर (मिले हुए बहिष्येष्टि) शीतिकर वज्रकल्पी निधिपौ में [उपहृता] हुआए गए हैं । [त] न पितर [इह] इस पक्षमें [भुषन्तु] भाव । (वे भविष्यन्तु) वे पितर हमारी प्रार्थनासे स्वान देकर तुम [भुषन्तु] हमें उपदेश करें तथा (अस्मान् वे भवन्तु) हमारी वे तथा करें ॥ ४५ ॥

(वे) किम [नः] हमारे [पूर्व सोम्यासः] कसिष्ठाः पितरः] पुरातन सोमसंपादन करनेवाले बसिष्ठ वर्षाए वज्र धनवाज पितरोने (सोमपीष) सोमपाषको बहमें [अनु बहिरे] मास किया था [लेभिः] उन [स्रिः] कर्मके तान सोमपाष करने वा हवि लानेकी कामना करते हुए बसिष्ठ पितरोंके साथ [उष्ट्रघ्न] पितरोंके साथ सोमपाष करने वा हवि लानेकी कामना करता हुआ [संवराथ] पितरोंके साथ समय करता हुआ वर्षाए भावमदित होता हुआ [वना] वन (हवींषि) हविषोंको [प्रतिक्रामे] इष्टावुष्टार [अनु] लाने ॥ ४६ ॥

[देवता अहमानाः] देवोंको मास होते हुए वर्षाए देव बसते हुए [होत्रानिवः] बहोंके स्तोमनेवाले [स्तोमहस्ताः] स्तोमोंके बनावेवाले [वे] जो पितर [अर्कः] वर्षावी स्तोमोष्ण (वायुः) इस संप्राप्तनरके वर्षाए गए हैं पक्ष [सुहस्रं देववन्दैः] हमारी वार देवोंसे गुणित किए गए [सत्यैः कृमिभिः कृमिभिः] साथवर्षी अमृजिह्वी तथा आर्ष [मर्मस्रिः] बहमें कर्मनेवाले पितरोंके साथ [लाने] वे अग्नि । ए [वापाहि] बहमें आ ॥ ४७ ॥

[न] जो पितर [सत्यासः] जायवर्षी [हविरदः] हविक पानेवाले [हविष्याः] हविषी रक्षा करनेवाले वन [तुराण इन्त्रेण देवैः सारसं वनामः] वनवाज इन्त्र व देवोंके साथ समान रूपपर जाकर होते हैं देवे [सुविदत्रेण] वराम वनवाले अथवा वनवाजधारी पितावाले [पूर्वैः परैः] पुरातन व वर्षावी [अग्निभिः] आग्नी [मर्मस्रिः] वन में वेदनेवाले पितरोंके साथ [वर्षाक्] हमारे अग्नि [वन] अग्नि । ए [वापाहि] आ ॥ ४८ ॥

भाषार्थ- वाहिक कर्मोंमें पितर हमारे गुणए भावेपर लाने । वाहर हमें उपदेश दें हमारी प्रार्थनासे तुम तथा स्वामी तथा करें ॥ ४५ ॥

हमारे किम पुरातन पितरोंके बहमें उष्ट्र सोमपाष किया था उन पितरोंके साथ निककर वन हमारे हाथों पर हमें के साथ हमें वन व पितरोंके लिए बहमें वर्षात आश्रमों ह व देवों याहिए ॥ ४६ ॥

देववज्र प्रभु हुए हुए पितरोंके अग्निके साथ बहमें गुन्यवा जाया दे व अग्नि वन पितरोंके साथ बहमें आठो दे वर्षाए पितर अमिद वाह हमारे बहमें आठ हैं ॥ ४७ ॥

वर्षोंके साथ वनवाज रक्षाकर वर्षाए देवोंके साथ एव ॥ ४८ ॥ रूपपर विषय करनेवाले पितरोंके बहमें दे अग्नि । ए न आ । अथ विनोष बहमें न आठो दे ऐया इस मयज जान रहता है ॥ ४८ ॥

उप सर्व मातर भूमिमेतामुक्तम्यर्षस पृथिवीं सुश्रेष्ठां ।

ऊर्मिप्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वां पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥ ४९ ॥

उच्छ्वस्वस्व पृथिवि मा नि पोषथाः सप्तयुनास्मै मय सप्तर्ष्या ।

माता पुत्र यथा सिषाम्येन भूम ऊर्णहि ॥ ५० ॥ (१७)

उच्छ्वस्वमाना पृथिवी सु तिष्ठत सवस्रं मित उप हि भयन्ताम् ।

ते गृहासौ घृष्टचुतं स्योना विश्राह्नास्मै श्रणाः सन्तव्र ॥ ५१ ॥

अर्थ है मनुष्य ! [एता] इस [उच्छ्वस्वस्व] बड़े विस्तारवाली अवस्था [पृथिवी] किसी बृहद्- (सुखी) अति सुख देने वाली (मातरं भूमि) मातामूल भूमिसे [उप सर्व] समीप जा । (समीप जा का अर्थ यहाँ पर यह है कि भूमिका गारिबीसे बचकोन का क्योंकि भूमिपर रहनेवाला मनुष्य भूमिके लो समीप है ही फिर भी समीप जा कहने का बहो अनिवार हो सकता है । भूमिके लो सुखेवा आदि विशेषण हैं वे भी इसी अनिवारको पुष्ट करते हैं । भूमिका गारिबी से भयको- कष करके बसके काम इकाने से बचा हुआ होता है ।) [दक्षिणावत] दक्षिण दिशाके लिए [ऊर्मिप्रदाः] ऊर्ध्वक ममान वर-कोमक [एषा पृथिवी] यह पृथिवी (त्वा) तवी [पातु] इस सप्तासामरक विस्तृत मार्गमें [पुरस्तात्] आगसे रखा करे । [अ. १ १५११] ॥ ४९ ॥

[पृथिवी] है पृथ्वी । त् [उच्छ्वस्वस्व] पुनक्ति हो । इस तरह समीप जाए हुए मनुष्यको [मा निषावथाः] किसी भी प्रकार की बीबा का कष्ट मत पहुँचा । (अस्मै) हमको किए [सप्तयुना] अच्छी तरह प्राप्त करने योग्य अर्थात् निषा किमी भव वा कष्ट समीप जाने योग्य तथा [सप्तर्ष्याः] सुखार्थक निषाव करने योग्य (भव) हो । [एवं] हाँ पुनको [मूमे] हे भूमि [अमि ऊर्णहि] कारोंतरकसे इस प्रकारके हाँप के [यथा] जिस प्रकारके कि [माता] माया [तिषा पुत्र] अपने लोचकसे पुनको हाँप लेती है । [अ. २ १५११] ॥ ५० ॥

(उच्छ्वस्वमाना पृथिवी) पुनक्ति होती हुई पृथिवी [सु तिष्ठत] अच्छी प्रकार स्थित होवे । और (सवस्रं) इसी [मित] मित उक्त पृथिवी को प्राप्त होकर (सप्तयुनाम्) आश्रित होवे । (ते घृष्टचुतः) वे बीबे परिपूर्ण कष्ट (स्योना) सुखकारी [गृहासौ] पर यथा [विश्राहा] सब दिन (अस्मै) इस मनुष्यके लिए (सन्तव्र) यहाँ पर (पातु) प्रार्थन करनेवाले आश्रय देनेवाले होवे । [अ. १०१५११] ॥ ५१ ॥

आश्रय ॥ उच्छ्वस्व विस्तृत भूमिसे गारिबीसे अवलोकन करी क्योंकि जा बधा सुख देनेवाली है । जो पृथिवी पर रहकर मन्त्राविष दान करता रहता है उसके लिए यह पृथ्वी अपने सरस कोमक हाथी हुई सुख देती है व प्रलेक करनेमें हमको रखा करती रहती है ॥ ४९ ॥

हे पृथ्वी ! तू सदा प्रत्यक्ष रही रह । तेरे पर बाध करनेवालेको किसी प्रकारका भी कष्ट न पहुँचे । यह आश्रय उपयुक्त निषाव कर वह । तू मनुष्यका मानविष पदाकोले हाँके रह है । तू माया अपने आश्रयक पुनका दान करती है । अच्छे से से माया अपने बसके बड़े स्नेहके साथ पुनको हाँप कर ठगती बसती अन्ति बसके बसातो है बसती प्रचार है पृथिवी तू भी इतने ही ओहके भव तरे पर निषाव करनेवाले मनुष्यकी मन्त्राविष दान करने हाँपकर सुखदृष्टिसे बसा ॥ ५० ॥

पृथ्वी निषाव बने रहे । भूकाल आहोके निषाव न हाव । मन्त्राविष पर स इतक आश्रय उपयुक्त निषाव होवे । उक्त पृथ्वी पर सदा सुख मनुष्यके लिए दानादने पूर्व पुनका पर तथा कष दिन अन्तिवसाव होवे । किसी भी दिन निषाव भी पने इस कष्ट न हाव ॥ ५१ ॥

उत्ते स्तस्नामि पार्थिवा स्वत् परीम लोमं निदधन्मो अहं रिषम् ।

पृथां स्थूषां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कुभोतु

॥ ५२ ॥

कुमस्ये चमस मा वि बिह्वरः प्रियो देवानामुव सोम्यानाम् ।

अयं यद्वर्षमसो देवपानस्तास्मिन् देवा अभूता मादयन्ताम्

॥ ५३ ॥

अथर्वा पूर्णं चमस यमिन्द्रायाविमर्षाविनीषते ।

तस्मिन् कुषोति सुकृतस्य मस तस्मिन्निदुः पवते निश्वदानीम्

॥ ५४ ॥

यत्ते कुम्भः प्रकुन आतुतोदं पिप्लः सूर्य उव वा आपदः ।

अधिष्टाहिस्वादगवं कुभोतु सोमश्च यो ब्राह्मणो आशिवेध

॥ ५५ ॥

अथ- [उ] तेरे किष्ट [पृथिवी] पृथ्वीको [यत् स्तस्नामि] नाम्ना हूँ । [स्वत् परि] तैं परों ओर [हम लोम] हम निवासस्थानको [निदधन्] रक्ता हुआ अर्थात् तेरे किष्ट निवासस्थान कमाता हुआ [मो] मैं [मो रिषम्] मत वह होके [म] वह अर्थात् इस निवास स्थान में [ते] तेरे किसे [पृथां स्थूषां] इस बीच को [पितरः] पितृगण [मादयन्ताम्] कारण कैं लोम तेरे जाना-पहचानकी नींव पितर रक्ते ओर [तत्र] इस बीचपर [ते] तेरे किसे [यमः] यम [सादना] परोको [कुम्भे] कुम्भे [५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥]

(अमे) हे अग्नि ! (हमें यमसं) इस क्षीरकमी यमसको (मा वि बिह्वरः) मत निचलित कर । लोम वह यमस (देवाणां यम सोम्यानां) देवां ओर ओम संयत्न करनेवालोंका (पिबः) प्याता है । (दवा) वह (वा) जो (यमसा) यमस है वह (देवपानः) देवपान है अर्थात् इसमें देवपान करने सोम द्रव्यको पीते हैं । (तस्मिन्) इस यमसमें (अमृताः देवाः) अमरत्वकी देव (मादयन्ताः) पाव करने प्रसन्न होयें ॥ ५२ ॥

(अथर्वा) निदधन् मतिवाले (च पूर्णं यमस) जिस धरे हुए पूर्ण यमसको (वाविनीषते) अथर्वकमीके पूर्ण (इन्द्राय) वैश्वदेवाकीके किष्ट (यमिमा) पावन किया वा (तस्मिन्) इस यमसमें (सुकृतस्य यमं) लोके कर्मों का नींव (कुम्भेति) करता है । और (तस्मिन्) इस यमसमें (निश्वदानीं) सर्वदा (इन्द्रः) देवर्ष (पृथिवी) वहका रहता है ॥ ५४ ॥

हे देव ! (ते) तेरे (यत्) जिस अंगको (कुम्भः अकुनः) लोके अविह्वरणी पड़ीने (अतुतोदं) पीठा पहुँचते है, (उव वा) अथवा (पिप्लः सर्पः स्वापः) कीड़ी की बालिके अमृतामि वा सर्पों वा अंगकी प्रिकुल लोके पुनः पीठा पहुँचते है तो [अग्निः] अग्नि (पिबः) इस क्षीरको चखते (तत्) वह तेरे अथर्व (अयं कुम्भे) तो रक्षित करें । (सोमः च) ओम ओम भी तेरे इस अंगको पीनेय करें । (वा) जो कि ओम (ब्राह्मणः वासिनेधः) ब्राह्मणोंमें प्रविष्ट हुआ हुआ है ॥ ५५ ॥

मार्त्तव्य- यम अथर्वी निदधन्नाम देते ॥ ५२ ॥

इह क्षीर देवोंके पाव करनेका यमस है । वह देवोंका जिव है । इसमें देव पाव करते हैं अतः हे अग्नि ! इस क्षीर को दुर्गा मत कर ॥ ५३ ॥

विश्व परमात्मा वह कथामें पूर्ण क्षीरवर्षी यमसको मन्त्राव जातमाके किष्ट प्रदान करता है । वह अन्मा अपने पुत्र अर्त्तव्य फल इस क्षीररूपी यमसमें खाती है । कर्म फल क्षीरके विषा लकी ओने का चखते । इसी यमस कमी क्षीरमें अन्मा पचने रहता रहता है ॥ ५४ ॥

आके अविह्वरणी पड़ी वा कीड़ी मकोके आदि अमृता कर्मणि विश्वसुख प्राप्तिचों व लोको जावर्षीके पतुष्व पर चखे ओम व ओम दूर करें ॥ ५५ ॥

अ ते नीहारो मभवतु अ ते पुष्पाय शीयताम् । शीतिरिक्ते शीतिरिक्तावति ह्यदिक्ते ह्यदिक्तावति ।

मन्त्रकर्मपुत्रस्तु अ मुनं इमं स्वर्गं मिं श्रमय ॥ ६० ॥ (१८)

विषस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुश्रामां जीरदानुः सुदानुः ।

इहेमं बीरा बहवो मभवन्तु गोमदश्नयन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ६१ ॥

विषस्वान् नो अमृतस्ते दधातु परेतु मृत्पूरमृतं न ऐतु ।

इमान् रक्षतु पुष्ट्यानां जिरिम्णा मो ज्येष्ठामिमांस्तो यमं गुंः ॥ ६२ ॥

यो वृद्धे भृतरिषि न मृष्टा पितृणां कृषिः प्रमर्षिर्मतीनाम् ।

तमर्षत विषामिमां इविमिः स नो युमः प्रतुरं जीषते धातु ॥ ६३ ॥

अर्थ—(४) वो किम् [नीहारः] कुदरा [अं मभवतु] सुखकारी होवे । [ते] ठेरे किम् [पुष्पा] इति [४०] सुखरूप इहं इहं [अमृतीयताम्] नीचे गिरे । [शीतिरिक्ते] हे शैत्यरुचि । [शीतिरिक्तावति] हे शैत्यरुचि । [ह्यदिक्ते] हे ह्यदिक् कानेवाकी तथा । [ह्यदिक्तावति] आचक्षिप कानेवाके गुणोवाकी औषधि । अस्तु कर्म कोषो । [मन्त्रकर्म] मन्त्रकी काय होवी हे अर्थात् वेदे अक्ष मन्त्रकीको ध्याति पशुधानेवाका होता है वही प्रकर (स मुनं) सुखकारी हो और (इमं स्वर्गं) इस आचक्षे (अर्थात् अक्षवेदे को करिसे दाद (अक्ष) देना होवे हे वसन्ते (सुसमय) करणी प्रकरसे ध्यात कर दे । (अ. १ । १९।१५) ॥ ६० ॥

(विषस्वान्) पूर्व (यः) अथ कृणोतु । इमं अथ यवावे । (यः) जो कि विषस्वान् (सुश्रामा) यवावे अथ सवे रक्षा कानेवाका (जीरदानु) जीरदानुता न [सुदानुः] वसत दाता है । (इह) इस सज्जनमें (इहे) हे (बीरा) पुष्पौषादि [बहवः मभवन्तु] बहुत हो जावे । अर्थात् हमारे पुष्पौषादि खूब होवें । और (गोमद) गोमदका तथा (अमृतम्) कोशीका (पुष्टं) पोषक (मयि भवतु) मेरेमें होवे । अर्थात् मैं पीबोहोवे संपन्न होके ॥ ६१ ॥

(विषस्वान्) पूर्व (यः) इमं (अमृतम्) अमरतामें (दधातु) उपस्थित करे अर्थात् पूर्व इमं अमृत यवावे । (मृत्पुत्रा परा पृष्ट) मृत्पुत्र परे प्राप्त जावे । (यः अमृत पृष्ट) और इमं अमरता प्राप्त होवे । यह विषस्वान् (इमान् पुष्ट्यानां) इस पुष्ट्यौषधी (या जिरिम्णा) बुद्धावरणारवन्त (रक्षतु) रक्षा करे । (यो यमः) इस पुष्ट्यौषधी प्राय (मा यमः) यमको मत जावे अर्थात् ये मत मरे ॥ ६२ ॥

(यः) जो (प्रमर्षि) प्रकृष्ट शुद्धिवाका (कृषिः) कृष्यवृद्धि (मतीनां पितृभ्यः) वसत मतिमान् पिताको (मृष्टा न) भागो अथवा महिमाये ही (भृतरिषि) भृतरिषिमें (वृद्धे) वृद्धात् करण है (विषमित्रम्) हे अक्ष विष मनुष्यो ! (स) उस वसन्ती (इविमिः) अर्थात् इविमिमें पूजा करे । (सः यमः) यह यम (यः) इमं जीराने पीयानुकि किम् (प्रतुरं धातु) अक्षी परहवे आरण करे ॥ ६३ ॥

भाषार्थ— ठेरे जिसे सब अमृत के पदार्थ सुखकारी हैं ॥ ६० ॥

सब प्रकरसे रक्षा अर्थवाका न जीरदानुता पूर्व इमं अथ यवावे । हमारी संतति एवं वदे न हम को यही करिसे प्रीत्युप हाने ॥ ६१ ॥

पूर्व इमं अमर यवावे । मृत्पुत्र दूर भाग न है न हमें अमरता प्राप्त होवे ; हमारे सब पुष्ट्यौषधी पूर्व बुद्धावरणारवन्त रक्षा करवें ; हमारे मेरे के कोईभी बुद्धावरणसे पूर्व न मरे ॥ ६२ ॥

यह अमृतपदार्थ यम विषाखोजन भित्तौका अपनी महिमाये अंतर्निहित आरण किए हुए हैं । हे मनुष्यो ! तुम सबके विष हुए हुए वसन्ती इविमिमें पूजा करे । अक्षके कि यह मुंहहारे किम् पीयानु प्रदान करे ॥ ६३ ॥

आ रोहत् दिवंमुत्तमामृषयो मा विभीतन ।

सोमपाः सोमपायिन इद वः क्रियते इषिरगंम् ज्योतिरुत्तमम्

॥ ६४ ॥

प्र केतुनां वृहता मास्यग्निरा रोहसी वृषभो रोहसीति ।

दिवधिव चादुपमामुदानुपामपस्थे महिषो ववर्ध

॥ ६५ ॥

नाके सुपर्णस्य यस्पर्वन्तं हृदा येनन्तो अम्यचक्षत त्वा ।

हिरण्यपक्षु वरुणस्य दूत यमस्य योनों शुक्ल भूरण्युम्

॥ ६६ ॥

इन्द्रं कर्तुं न आ मर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

विष्वा गो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरिदमीहि

॥ ६७ ॥

अर्थ (अपवा) हे सभ्राह्मण जनों । (उत्तम) दिव कातोहत्) उत्तम सु अर्थात् स्वर्गका जगो । अर्थात् स्वर्गमें जाओ । [मा विभीतन] मत करो । हे [सोमपाः] सोमपाय करनेवाले तथा [सोमपायिनः] जग्मों को सामपाय करानेवाले जगो । [वः] तुम्हारे किए (इदं वसिः क्रियते) यह हमि हम करते हैं । [ज्योतिरुत्तमः] जिससे कि हम उत्तम ज्योतिषको [अम्यम्] प्राप्त होयें ॥ ६४ ॥

(अग्निः) अग्नि [वृहता केतुना] अपने बड़े भारी केतुसे अर्थात् पञ्चाङ्गाङ्गी होयेंगे (प्रमाति) भग्जो तरह भगवता है । और बड़ी अग्नि [रोहसी] सावा दृविधीमें [वृषभः] वषादि द्वारा कामवालोंकी प्रति करता हुआ (रोहसीति) मेम पित्रकी आदिसे कर्णमें मन्त्रता है । वह (दिवः अम्यम्) तुम्हें अम्यसे [माम् उर] मेरे लक्ष अर्थात् पु तथा दृविधीमें वरुण (उर आनम्) जग्जी तरहसे प्वात हुआ हुआ है । [महिषा] महान् अग्नि (अपां वरुणे) जगोंकी पोदने [ववर्ध] बढ़ता है । अर्थात् बादके कर्णमें विद्यमान जगोंमें विरज्यो कर्णमें यह अग्नि बढ़ता रहता है ॥ ६५ ॥

(यमः उर पक्ष्यं सुपर्ण इव) आकाशमें उड़ते हुए उत्तम पंखवाले पक्षीको जैसे मन्दन देखते हैं उसी प्रकार हे स्वर्ग ! आकाशमें पति करते हुए [त्वा] तुम्हें [हिरण्यपक्षं] सोमे वैद्य जगकी पंखवालेको [स्वका प्रकाश सुवर्ण्य पीका होता है] और (यमस्य दूत) यम जग की देवता है उसको प्राप्त करनेवाले अपार वृद्धि देववाले तुम्हको (स्वर्गका वृद्धि देना केर्णमें करे स्थानोपर आवा है) और (यमस्य योनों) यमक परमें अम्यम् अतिरिधमें (यमका, अतिरिधमें स्थान है यह पक्षि आ चुका है) (शुक्लं) सफ़िलाकी होकर विद्यमान प (भूरण्युम्) तथा मन्त्र आदिसे देवेभ्यः सबक पाकक तुम्हको विशान् गम (हृदा वैभवाः) हृदयसे ध्याव करत हुए (अम्यपक्ष्यं) जगों प्रकार उड़ते हैं ॥ ६६ ॥

(इन्द्र) हे देवर्षीकाङ्गी ! (मा क्रुन्वा मर) तुम्हें कर्म व भगवान् हम प्रकार मे दे [यथा] जिस प्रकार ते कि (पिता पुत्रेभ्यः) पिता अपनी मठायों को दता है । [पुरुहूत] हे बहुत प्रकारसे सुपाय गय इन्द्र ! (अतिमन् यामनि) इस अमरसागर बार क नेक नागोंमें (मा विष्वा) हमें विष्वा व । अथार ससारनागर तरनेका उपाय दिया । जिससे कि [जीवाः] हम जीवकोय [उवातिः अर्थात्] मानप्रकाश का प्राप्त करें ॥ ६७ ॥

भाषार्थ— अ. ६ गम विभं होकर सर्वका उचित है । अम्यम् करनेवालों व पक्षियों जगमें उड़ते किए द व वन छ उत्तम पक्षियोंका नाम होता है ॥ ६४ ॥

यह अग्नि व पंखर उत्तमकीसे भगवता रहता है । पावावृषिमें वरा करवद्यज हुआ हुआ गृह विपु आ रहे वामे वरुण रहता है । पु तथा दृविधी दोनोंमें यह व व है । अतिरिधमें विद्यमान जगमें विपु जगन यह व व रहता है । वरुण व अम्येय यह है कि यह अग्नि विष विष खरुने पाकहुवरी को प्वात किए हुए हैं ॥ ६६ ॥

अपुपापिहितान् कुम्भान् पास्ते वेवा अपारयन् ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतक्षुतः ।

॥ १८ ॥

पास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिभाः स्वधावन्तीः ।

तास्ते सन्तु विम्बीः प्रम्बीस्तास्ते यमो राजान् मन्यताम् ।

॥ १९ ॥

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि । यथा यमस्य सार्वे आसां विद्या वदन् ॥ २० ॥

आ रमस्य जातवेदस्तेजस्व्यद्वरौ अस्तु ते ।

धरारिमस्य स ब्रह्मर्षिर्न पेहि सुकृतां मु लोके ।

॥ २१ ॥

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये । तेभ्यो वृतस्व कृत्यैः पु वृतधारा धनुवती ॥ २२ ॥

अर्थ- [यान्] जिस [अपुपापिहितान्] माकएबोंके बड़े हुए [कुम्भान्] धरौको [वेवा] देवोंके [ते] तेरे किए [अपारयम्] पारय दिया है अर्थात् ऐसे दिया है [ते] ते बड़े [ते] तेरे किये [स्वधावन्ता] स्वधामन्ते, मधुमन्ताः] मधुरतायुक्त तथा [घृतक्षुतः] चीसे परिपूर्ण (घन्तु) होवे ॥ १८ ॥

[ते] तेरे किए [पाः तिलमिभाः स्वधावन्तीः पावाः] जिस तिलोंके मिश्रित अर्थात् तिल मिश्रित हुए स्वधावन्ते पावोंको (अनुकिरामि) अनुसूचना से चेंकटा ॥ [ताः] वे पाव [ते] तेरे किए [विम्बीः] वातावरणवाले व प्रम्बीः] मधुक्त मात्रासे पाणि बहुक्त मात्रासे [सन्तु] होवे । [याः] उन्हे [ये] ऐसे देवोंके किए [यम राजा] यम राजा [अनुमन्ताः] अनुमति देवे । [वनस्पते] दिया वमशी अनुमतिसे किसीको कुछ नहीं दिया या वनस्पत जल वसती अनुमति मांगी है ॥ १९ ॥

(वनस्पते) हे वनस्पति ! [वाः एषः] जो यह [त्वयि निहितः] तेरेमें रखा है बड़े [पुवाः] निर जलौ [देहि] दे [यथा] जिससे [यमस्य सार्वे] वमके सार्वे यह [विद्या वदन्] विज्ञावोंको बोकवा हुआ [धरारि] स्थित होवे ॥ २० ॥

अर्थ- [जातवेदः] हे जातवेदम् अग्नि ! [वारमस्य] जकावा प्रारम कर । [ते] तेरा [१८] हरवेका जलने [घृतक्षुत घन्तु] घृतकाका होवे अर्थात् जिसको जकावा कुछ को बड़े चीज जकाकर भस्मीभूत करवे-उका देता जलने होवे जलनेमें दूर न करे । [वनस्पते] इस मतका [धरारि वदन्] धरारि अच्छी तरह बका बात । (वयः) जलनेके बात [वन] इसकी आत्माको [सुकृतां लोके] मित्ररोंके लोकमें (पेहि) बालन कर अर्थात् बहोर वृक्षा ॥ २१ ॥

[ते] व [ये पूर्वे परागता] जो पूर्वकाधीन विचार परे चले गए हैं अर्थात् वरकोकवासी हुए हैं और [ये अपरे परागता] जो अवाधीन विचार वरकोकवासी हुए हैं (यथा) वय प्राणीन व अवाधीन विचारोंके किए [धनुवती] वंकों फासों वाकी वमवती हुई [वृतस्व वृक्षा] जकाकी कृष्णा- ह्वय बरी [वय] प्रस होवे ॥ २२ ॥

समाप- वमकाक में मृतमको मुख हो एष कर्म यह नहीं करे ॥ १९ ॥

हे ह्वय ! जिस प्रकार विवा पुत्रोद्य उपरैक करता है उस प्रकार तू हवै कर्मकार्य व तादृशकी इतका उत्तरक कर । कि हम सुकृतक जीवन व्यतीत कर चके ॥ २० ॥

वमकावली जीवके किए मुख प्राप्त होवे ॥ १८ ॥

वमकाक में गए हुए के किए अथ व मगत किए तिलमिश्रित पाव आ जावे ॥ १९ ॥

जीव वमकाकमें मुख वृद्धि ॥ २० ॥

मृतका घरी अच्छी प्रकार जकावा जावे ॥ २१ ॥

विचारोंक जलौ ठीक करवक किए महर का पानी वृद्धत दिया जावे ॥ २२ ॥

प्रतदा रोह वप उन्मुखाः स्वा इह पुहवु दीदयन्ते ।

अभि प्रेहि मभ्यतो मापे हास्याः पितृणां लोकं प्रथमो यो अत्र

॥ ७३ ॥

[४]

आ रोहवु जनित्रीं आतपेदसः पितृयाणेः स व आ रोहयामि ।

अपाहृदभ्येपितो हभ्यबाह ईक्षान युक्ताः सुकुतां च लोके

॥ १ ॥

देवा यममुतवः कस्ययन्ति इविः पुरोसाधं सुधो यमामुधानि ।

तेमिपोहि पयिमिर्वेषयानैरैरीक्षानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्

॥ २ ॥

अर्थ—[उन्मुखाः] अग्ने को लुह करता हुआ (पृथक् वयः आरोह) इस अतिरिक्तमें यह । [इह] यहाँ (स्वा)
 मेरे मनुष्यावयव [इहव वदीदयन्ते] बहुत प्रकाशमान हो रहे हैं— अर्थात् वे बहुत उजल हुए हुए हैं उनको वृ विश्व
 मय कर । [मभ्यतः अभिप्रेहि] जग मनुष्यावयवों के मध्यसे जा । [पितृणां लोक] पितरोंके कोठक । [मा अपहास्याः
 माय मय कर अर्थात् मेरेसे भित्तकोड सूतने न पावे । [वा] जोकि पितृलोक (स्वर्ग) वहाँ [प्रथमः] मुख्य
 मणिक है ॥ ७३ ॥

[५]

(आतपेदसः) हे अग्निवो ! तुम [जनित्रीं आरोहवु] अपनी उत्पन्न करनेवाली के पास पहुँचो । मैं
 (वा) दुर्गे (पितृयाणेः) पितृयाणमार्गसे [सं आरोहयामि] अच्छी प्रकार पहुँचाया हूँ । (इविः हभ्यबाह) मित्र
 हव्यों का बाह्य अग्नि (हभ्या = हभ्यामि) हव्योंको [अम्याद्] बह्व करता है । वे अग्निवो ! (युक्ताः) तुम निष्क
 (ईक्षान) पत्र करनेवाले को (सुकुतां लोके) केन्द्र वर्ग करनेवालों के कोठों [चत] धारण करो अर्थात् वह
 चने के लवण ॥ १ ॥

(देवाः) देवपण तथा (कृतवाः) वस्तु आदि वत् कृतवु [यम] यम अर्थात् दैनिक पार्थिव मासिक
 आदि बाबा प्रकारके होम (कृतवमिषि) रहते हैं—कृत है । और इस यमके करनेके लिये (इवि) यममें शान्तिप्राप्त
 पदार्थ वृत् आदि (पुरोसाधं) वृत् आदिसे बनाए हुए पदार्थ (यमः) इन वृत् अग्नि पदार्थोंको शान्तके लिये
 वाक्यमय यमके लिये वपयुक्त कमरेकी आकृति कैसी भुजे तथा अन्य (वयापुयामि) बहव्यवस्था इतिवार बनाते हैं
 (वेदिः देववासेः पयिमिः) उन ऊपर इक्षान् यम यम करनेके देववाक्यामोंसे वे मनुष्य । वृ (पाहि) निवारण क
 अर्थात् उसी उक्ती तरह निवारण यमको यथासिद्धि कर । (वैः) विम देवपालमार्गसे कि (ईक्षानः) पर
 करनेवाले कोय (स्वर्गं लोकं यन्ति) स्वर्गलोक को जाते हैं ॥ २ ॥

धार्म्य— मृत्युमा ममकोकरो पण्डित और वहाँ वह आनन्द रहें ॥ ७३ ॥

[४]

यम करनेवालोंके अग्नि उत्तम कर्म करनेवालोंके लक्षमें पहुँचाती है । अतः सुकुताके जोकमें प्राप्तिके लिए यम करने
 रहती है ॥ १ ॥

देवपण यमके अनुसार वाक्यादि बहव्यवस्था तैयार करके यम करते हैं । उनका अनुकरण करनेवाले जोकि स्वर्गको प्र
 होते हैं अतः यथासिद्धि हरिश्च यम करना चाहिये जिससे कि स्वर्गलोक उपलब्ध हो सके ॥ २ ॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वर्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।

तेर्मिषोहि पृथिवीः स्वर्गं यत्रादित्या मर्षु भक्षयन्ति वृषीये नाके अग्निं वि भवस्व ॥ ३४ ॥

प्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पुष्टे अग्निं विष्टपि भिताः ।

स्वर्गा लोका अमृतेन विष्टा इयमूर्जे यजमानाभ दुष्टाम् ॥ ४ ॥

जुह्वीषार घामुपमृदुन्तरिध ध्रुवा दीधार पृथिवीं प्रविष्टाम् ।

प्रवीमां लोका वृषपृष्टाः स्वर्गाः कामकाम यजमानाभ दुष्टाम् ॥ ५ ॥

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वमोजसमन्तरिधमुपमृदा क्रमस्व ।

शुद्धं यो गच्छ यजमानेन साक सुवेण वत्सेन विष्टः

प्रपीता सर्वां वृष्ट्वाहणीयमानः ॥ ६ ॥

अथ- (ऋतस्य पन्था) यज्ञके मार्गको (साधु अनुपस्य) अच्छी तरहसे जान । और (येन) जिस, जो, सबन्धी मायसे (सुकृत) अद्विजित ।) उद्यम करने करनेवाले अद्विजित जब (पश्य) पाते हैं (तेर्मिषां पृथिवीः) उन मार्गों से (स्वर्गं याहि) स्वर्ग को जा (यत्र) जहाँ कि अर्थात् अग्नि स्वर्गमें कि (अदित्याः) अद्विजितबीज प्रजापति । नाक भय करनेवाले जन (मर्षु भक्षयन्ति) भक्ष्य को खाते हैं अर्थात् आनन्द भोगते हैं । (वृषीये नाके) वृषिकों को स्वर्गको है उसमें नाकर (विभवस्य) विभक्ति के-आराम कर ॥ ३४ ॥

(सुपर्णाः प्रयः) तीन उद्यम गति करनेवाले अथवा उत्तमवत्ता पाठन करनेवाले तथा (उपरस्य मायू) मेघके सब से छद्म करनेवाले हो ये सब (विष्टपि) अग्निकर्म (नाकस्य पुष्टे) स्वर्गके ऊपर (अग्निं भिताः) भिता हैं । (प्रवीमां लोका) स्वर्ग लोक (वृषपृष्टाः) अमरताल भ्यास हैं अर्थात् वे मरणाद्विमुक्त हैं । वे सब (यजमानाभ) यज्ञ करनेवालोंके लिए (इयं) यज्ञ तथा (क्रौं) बकको (दुष्टाम्) देवें ४ ५ ॥

(ठहः) ठहूँ (यो दीधार) पुत्रोक्तको धारण किया हुआ है । और (उपमृद्वे) उपमृद्वे (अमृतेन) अमृतिके पालन कर रहा है । (ध्रुवा प्रविष्टां पृथिवीं) प्रजापति आश्रयस्थान पृथिवीको (दीधार) धारण कर रहा है । (इमां पृथिवीं) इस पृथिवीकी ओर कक्ष कर हुए (यजमानाः) यजमानकी वीर्योदधे अर्थात् प्रकाशमान (स्वर्गा लोका) स्वर्गलोक [यजमानाभ] यज्ञकर्तृके । अथ [काम काम] प्रत्येक कामनाओं [दुष्टाम्] देवें करे ४ ५ ॥

[अग्ने] ४ प्रजा । [विश्वमोजसे पृथिवीं] सबको धितानेवाली अथवा नाकक पृथिवी पर [यजमानेन यजमानेन] यजमान के नाम [आरोह] चढ़ दिख हो । (उपमृद्वे) ४ उपमृद्वे । ए यजमानके साथ (अदित्यां यजमानाभ) अद्विजित भया कर । (शुद्धं) ४ शुद्ध । ए (यजमानेन साक) यजमानके साथ [यो गच्छ] पुत्रोक्तको जा । है यजमान । इस प्रकार १८ अष्टमीयमानः । निःसंकोच हुआ हुआ (वत्सेन सुवेण) वत्सकरी सुवासे (प्रवीनां) अग्नि । अच्छी तरह १८को पाठ हुए हुए [दित्याः] दित्यानां [ध्रुव] हो । अथवा यज्ञात् अद्विजित पदापाको प्राप्त कर ४ ५ ॥

भाषार्थ - यजमान के यज्ञ यजमान और आनन्द प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

१८ यो यजमान वत्सकरी अथ वत्स आनन्द होता है ॥ ४ ॥

१९ नाक यज्ञकर्ता की वत्सकरी यज्ञ करत है ॥ ५ ॥

२० यज्ञात् यजमान वत्सकरी अथवा वत्स पाठन करता है । यज्ञात् यज्ञ दित्यां यज्ञ यजमान वत्सकरी ॥ ३४ ॥

तीर्थस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यश्चकृतः सुकृतो येन यन्ति ।

अत्रादपूर्यजमानाय लोक दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ ७ ॥

अक्षिसामयन् पूर्वो अधिरादित्वानामयन् गार्हपत्यो दक्षिणानामयन् दक्षिणाधिः ।

महिमानमघोर्ध्वदितस्य ब्रह्मणा समञ्जः सर्व उर्ध्वं याहि जग्मः ॥ ८ ॥

पूर्वो अधिष्टा तपसु अ पुरस्ताच्छ पश्चात् तपसु गार्हपत्यः ।

दक्षिणामिष्टे तपसु दग्धं वर्मोत्तरो मध्यतो अन्तरिक्षाद् विश्वोर्दिशो अम्र

परि पाहि घोरात् ॥ ९ ॥

पूयमग्ने अतमाभिस्तनूमिरीजानमभि लोक स्वर्गम् ।

अथवा भूत्वा पृष्टिवाहो बहाय यत्र देवैः संघमाद् मरन्ति ॥ १० ॥ (२०)

अर्थ— [यश्चकृतः] यज्ञों के करनेवाले [सुकृतः] अथ कम करनेवाले जब [येन यन्ति] जिन मागस विचारन करते हैं उस मार्गपर चकनेसे [तीर्थः] घरके प्राचय चक्रादिद्वारा [प्रवतः महीः] बही बही आपत्तियों भी [तरन्ति] तर जाते हैं । [यत्] यथा [दिशः] दिशाएँ तथा [भूतानि भूतोंके भवत् प्राणियों को [एकभयम्] निमान करत हैं उस समय [यत्रमायय] ब्रह्मण क हिट् [लोक अर्युः] स्थान देते हैं ॥ ७ ॥

[अक्षिरातः] अक्षिरातोंका [अनय] मार्ग [पुरा अधिः] पुरा अधि है । [अक्षिरातः] अक्षिरातोंका [अयन्] आय [गार्हपत्यः] गार्हपत्य अधि है । [दक्षिणाधिः] कायसे दक्षोंका [अयन्] आय [दक्षिणाधिः] दक्षिणाधि है । [ब्रह्मणा] वेदमन्त्रों द्वारा [विहितस्य] पद्यमें स्थापित की गई अग्निदी [महिमानं] महिमाको [समञ्जः] एक अमोघता होकर [सर्वैः] सभी अवयवों से युक्त हुआ हुआ अर्थात् पूज्य शरीरवाला होकर और इन्हींके [घामः] सुखी हुआ हुआ [यत्र पाहि] प्राप्त कर ॥ ८ ॥

[पूर्वः अधिः] पूर्व की अधि [या] तुष्ट [पुरस्तात्] आगसे [अ तपसु] सुखपूर्वक तपाने । [पश्चात्] पश्चात् [पश्चात्] पीछे [अ तपसु] तुष्ट सुखपूर्वक तपाने । [दक्षिणाधिः] दक्षिणाधि [त] तरे किट् [यम] सुखकर हुई हुई व [वर्म] कवचक हुई हुई तुम [तपसु] तपाने । [अम्र] वे अधि । गृहमें [अन्तराः] अन्तरिक्षादि [मध्यतो] इष्टाओंके बीचसे [अन्तरिक्षात्] अन्तरिक्ष [दिशः दिशः] अनेक दिशाएँ अनेक [योत्तरो] अ— हिंसकसे [परिश्रमः] पारों ओरसे संरक्षण कर ॥ ९ ॥

(यमोऽवमनयः) वे गार्हपत्यादि अग्निवर्ग । (पूय) तुम (पृष्टिवाह अथवा भूत्वा) पीछे से जानेवाले घोड़ों की तरह बचकर (अतमाग्ने अम्रभिः) अपने सुखकारी घाराएँ (इजान) जिसने बज्र किया है उस को (स्वर्गं योर्दिशः) स्वर्गको की ओर (बहाय) क आओ । (यत्र) जहाँ सबमें ब्रह्मण अथ (यत्र तपमानं) दक्षोंक प्राय आग को (अरन्ति) ओगठ हुए पक्ष प्राप्त हैं ॥ १० ॥

मार्गार्थ— ब्रह्म करनेवाले सुदृष्ट ओरसे प्रथम तपस्य आग से ब्रह्म करनेवाले अन्तरिक्ष हुए पक्ष प्राप्त करके पुरा दिशाओं की ओर आ सकेंगे । ब्रह्म करनेवाले का गृहे निवास के समय भी तपस्य ओर की प्राप्ति होता है । अर्थात् वह दे ॥ ७ ॥ ब्रह्म करनेवाले का काम भी वह नहीं होता ॥ ८ ॥

देवोंके अवयव अर्थात् मार्ग के अन्तर्गत आग आचार्य का ये सुख प्राप्त होता है ॥ ८ ॥
अ. प्र. क. प्राचय की वही कि गृहकारी जब आगे रखा कर । जब पार यमोंक द्वारा आचार्य पर ॥ ९ ॥
ब्रह्मण को म प्रवो पावों की तरह आनी अन्तरिक्षादि ब्रह्मण के आगे है जहाँ कि सबमें व देवोंके सब दिव ॥ १० ॥ अ. प्र. क. प्राचय ब्रह्म करनेवाले आचार्य के ॥ १० ॥

अमये पमात् तेषु च पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमपरात् तपैनम् ।

एकस्त्रेधा विहितो आतवेदः सम्प्रगेन धेहि सुकृतामु लोके

॥ ११ ॥

अमप्रयः समिद्धा आ रमन्तां प्राजापत्य मेभ्यं ज्ञातवेदसः ।

श्रुत कृष्णन्तं इह मायं विधिपन्

॥ १२ ॥

सद्य एति विततः कल्पमान ईजानममि लोकं स्वर्गम् ।

तमुप्रयः सर्वैरुत जुपन्तां प्राजापत्य मेभ्यं ज्ञातवेदसः ।

श्रुत कृष्णन्तं इह मायं विधिपन्

॥ १३ ॥

ईजानमितमारुह्युषिं नाकस्य पुच्छाद् दिवंमुत्सविष्यन् ।

तस्मै प्र भीति नमसो ज्योतिषीमान्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः

॥ १४ ॥

अर्थ—(अमि) हे अमि । ११ (पमं) इस वज्रकलाको (अ) सुकर्षक (परात्) पीछेसे, (छं) सुकर्षक (पुरस्ता) आगेसे (उप) तथा । (उत्तरात्) उत्तरसे (छं) सुकर्षक तथा और (अपरात्) नीचे की दिशासे (अ) इत्यर्थ तथा । (आतवेदः) हे उत्पन्न पदाओं में रहनेवाले अमि । १२ (एक) एक होता हुआ भी (त्रेधा) तीन प्रकारसे अर्थात् पूर्वाग्नि वाहपत्याग्नि और वज्रिमाग्नि के रूपसे (विहितः) स्थापित किया जाता है । १३ (पमं) इस पदवाक्य को (सुकृतां लोके) जेष्ठ वर्षों के लोकमें (अमप्रयः) अथवा उत्तरसे (धेहि) स्थापित कर अर्थात् बहोतर इहे पशुपा दे । १४ (समिद्धा) यथाविधि प्रकाशित की हुई (आतवेदसः) उत्पन्न पदाओंमें वर्तमान (अमप्रयः) अर्थात् (प्राजापत्यं) प्रजापति देवतावाके [अमप्रयः] पवित्र इस वज्रवाक्यको [अं] सुकर्षक वज्रके कार्यमें [आतमन्तां] उत्पन्न पदाओं । (इह) यहाँ पर वज्र कार्यमें वे अग्निवाँ वज्रमान को [अर्धं कृष्णन्तः] पश्य अर्थात् पूर्ण पदाओं । उहे इस कार्यमें [मा] मय [अयं विधिपन्] गिरने देवे ॥ १२ ॥

(विततः वज्रः) वित्तुल वज्र [कल्पमानः] समर्थ हुआ हुआ [ईजानं] वज्र किम् हुए को [स्वर्गं लोके] स्वर्ग लोक को [अमिद्धि] पशुपाता है । [उ] उह [सर्वैरुत] जिसने अपना सबस्य होम कर दिया है ऐसे वज्रपदाओं [अमप्रयः] आगवाँ [जुपन्तां] सजुग करें । तथा अर्थ उत्तरके मंत्र के समाप है ॥ १३ ॥

[नाकस्य पुच्छाद्] स्वर्ग के ऊपरसे [दिवं उत्सविष्यन्] सुको जानेकी इच्छा करता हुआ [ईजाना] वज्र निम्न हुआ पुनः [अमि] अमय की हुई लक्ष को [अपरात्] प्रकाश करता है प्रगल्भित करता है । [ज्योतिष्यते] उस उत्पन्न कार्य करनेवाके के विधि [अमप्रयः] आकाशका [ज्योतिषीमान्] प्रकाशवाका [देवयानः] देव जिन्हें जाने दे देया [पन्थाः] सुकृताभी [पन्थाः] मार्ग [अमप्रयः] प्रकाशसे होता है ॥ १४ ॥

आचार्य अमि तब ओरसे सुकर्षक हमारा रखन करती है । वस्तुतः वह एक ही है पर व्यवहार में उधरसे तीन रूपों से व्यवस्था की जाती है । वज्रकर्ता वह स्वर्गमें पशुपाती है ॥ ११ ॥

वज्रादि कार्य में प्रगल्भित अग्निवाँ वज्रमानको उत्पन्न करके पूर्ण मनोरथवाको वधाती है । वह अपने भाँ में लक्षक बनाता है क्योंकि अग्निवाँ उह वर्तमानसे गिरने से बचा लेती है ॥ १२ ॥

[१३] गृह करने के लिये वज्र वज्रमानको स्वयमेवमें पशुपाता है । अग्निवाँ उहे अग्निमत जनप्रदायकता ओह अर्थ है व वर्तमानसे गिरान नहीं देवे ॥ १३ ॥

१४ में पुनः आग के विधि वज्र की हुई आगवाँ प्रगल्भित करवा आदि । और को वज्र ओह रीति से प्रगल्भित करता है उधरसे विधि आकाशका सुकृताभी वज्रमान मायें गुण जाता है ॥ १४ ॥

अपूपवान् मसिर्वाभरुह सीदतु ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां सुतमांगा इह स्थ

॥ २० ॥ (२१)

अपूपवानमसिर्वाभरुह सीदतु ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां सुतमांगा इह स्थ

॥ २१ ॥

अपूपवान् मधुर्वाभरुह सीदतु ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां सुतमांगा इह स्थ

॥ २२ ॥

अपूपवान् रसिर्वाभरुह सीदतु ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां सुतमांगा इह स्थ

॥ २३ ॥

अपूपवानपिहितान् कुम्भान् यास्ते देवा अघोरपन् ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां सुतमांगा इह स्थ

॥ २४ ॥

ते वै सन्तु स्वधापन्तो मधुमन्तो घृतधृतः

॥ २५ ॥

यास्ते घाना अनुकिरामि तिक्रमिन्माः स्वधार्षतीः ।

वास्त सन्तुवन्वीः प्रम्भीस्तास्ते यमो रात्रानु मन्यसास्

॥ २६ ॥

अधिर्वि भूर्यसीम्

॥ २७ ॥

अध—(अरूपवान्) मातृपूजे आदिषु पुत्र तया (मातृवान्) मातृवाका (वरः) वर (इह) वरः यज्ञे (अग्निं)
रिपय होये । (लोककृतः) लोकलोको वमानेवाक इत्यादि शेष पूर्ववत् ॥ २० ॥

(अरूपवान्) मातृपूजे आदिषु पुत्र तया (मातृवान्) मातृ वर्यात् वावा वरहो वान्मोवाका (वरः) वर
(इह) वरः यज्ञे (आसीदतु) रिपय होय । (लोककृतः) लोक वमानेवाक इत्यादि शेष पूर्ववत् ॥ २१ ॥

(अपूपवान्) मातृपूजे आदिषु पुत्र (मधुवान्) मधु वर्यात् छद्द वरसा मोहे वरान्ते पुत्र (वरः)
वर (इह) वरः (आसीदतु) रिपय होये । (लोककृतः) लोक वमानेवाक इत्यादि शेष पूर्ववत् ॥ २२ ॥

(अपूपवान्) मातृपूजे आदिषु पुत्र (रसवान्) रसेक मीठ मीठे विविध रसो ये मिश्रित (वरः) वर (इह)
वरः यज्ञे (आसीदतु) रिपय होये । (लोककृतः) लोक वमानेवाक इत्यादि शेष पूर्ववत् ॥ २३ ॥

(अपूपवान्) मातृपूजे आदिषु पुत्र (कुम्भवान्) कुम्भवाका वर्यात् छद्द अकरी वमाना पुत्रा (वरः) वर (इह)
वरः यज्ञे (आसीदतु) रिपय होय । (लोककृतः) लोक वमानेवाक इत्यादि शेष पूर्ववत् ॥ २४ ॥

(देवो यमो रात्रो १८१३ १८-१९ ये दो यम मीठ भाग्ये हैं) ॥ २५-२६ ॥

(भूर्यसीम्) बहुत भाग (अग्निं) छद्दरहित वर्यात् बहुत काकरमन्त्र वर रात्रो अनुमति १८ ॥ २७ ॥

द्रुप्तस्वन्द पृथ्वीमनु घामिमं च यानिमनु यश्च पृथः ।

॥ २८ ॥

समान योनिमनु सचरेन्त द्रुप्त जुहोम्यनु सप्त होषाः ।

नृत्तधारं पायुमक स्वर्षिदे नचक्षुसस्ते जामि चक्षत रयिष् ।

॥ २९ ॥

ये पुणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते जुह्वे दाक्षणां सप्तमातरम् ।

क्रोश दुहन्ति फलश चतुर्विलमितां धनु मधुमतीं स्वस्तये ।

॥ ३० ॥ (२२)

उत्र मदेन्तीमदिति जनेष्वेषे मा हिंसीः परमे व्योमिन् ।

एतन् तं दुव संविता वासां ददाति भर्तवे ।

सत्त्वं यमस्य राज्ये यसानस्ताप्यं चर ।

॥ ३१ ॥

अथ— (द्रुप्त) एकको हविष करनवाक्य भावित्य (या पूर्व) जो कि सवस एवम् है अता (यानं पृथिवी मनु) यथाच जगत् की कालभूत पृथिवीमें (य) और (इमं वा अनु) युष्माकर्म (यस्मिन्) विचार्य कता रहता है अथवा उसने इसको स्वाक्ष कर रखा है (समान योनि अनु सचरेन्त) सबकी समान शालभूत इस पृथिवीमें सचार करत हुए (द्रुप्त) इयंमद् भावित्यको (सप्त होषाः अनु) सात होषागर्भों द्वारा सब रिताभूमि (उहोमि) हवि प्रदान कराता हूँ ॥ २८ ॥

(व) व (मुच्यता) मनुष्यों के दण्डनेवाक्य अर्थात् मनुष्यों को ज्ञाननेवाक्य— मनुष्यादि एवमाव जादूकी वाक्यशाले सुविमान मनुष्य (सप्तार) ऐक्यो यथावाक्य अर्थात् जो अनेक प्रकारक दानों में पानी की तरह बहावा आता है वेन जतएव (ययुं) यतिमात्र आज एकक पास दानमें जाता है वो एक दूसरेक पास इस प्रकारसे विचार्य करत हुए (नृ) पूजनीय (रयिषि) सुपुत्रको प्राप्त करानेवाक्य (रयि) धनको (नचिष्यत) दण्ड ही अर्थात् या ठ है प्राप्त करत हैं । (ये) जो मनुष्य (सर्वदा) सदा उस धनको (पुणन्ति) अपनेको पूज करत रहत हैं (च) और (प्रवृत्तयि) यवदा सुपात्रक किए इस धनका दान करते रहत हैं (त) ये मनुष्य [सप्तमातरं दक्षिण] गृहमावापाका दक्षिण [दक्ष] को [पुत्र] रोह हैं— प्राप्त करत हैं ॥ २९ ॥

[रयिषि] यतिमात्र कि [ययुषि] चाररयिषी कि (सप्तार) [कोत] मात्र जो दण्डका यजमान है ऐसे [कक्ष] बरख बर जाती कषवाकी (मनुषी) भीर दण्डवाकी [इहो ययुं] इहा नामवाकी गायत्री [दक्षिण] रोह है । [जामि] इ जामि [जनेष्वे मदेन्ती] जव समात्र में अने दण्डवाकी बरखे गृह करती [यदिति] मानक अवाय्य गायत्री (यमि व्योमिन्) निचमें [मा हिंसी] मत मार । अथवा यह मन्त्र भूमिक यजमान भी मम सकला हूँ—क वाक्य कि एव अर्थ काम य मोक्ष कपो चर रयिषीवाकी गवाविष दण्डकि यजमान मर र मनुष्य अर्थात् इनेवाकी [इहा येनु] भूमिककी गायत्री रोह है ॥ ३० ॥

ह एव (यतिषा एव) एक एव (व) जने जिप (मदेन्ती) यतिमन्त्र कि [ए र याम] यह एव (११११) एहा है । (वत्त लार्थ) इस गति करानेवाक्य वरको (यमाना) यतिमन्त्र (यमरवागव) यमक राग्य (य) विचारक ॥ ३१ ॥

भाष्य— आदि व पु सप्ता पृथिवी होनाम अन्तर वरत जुवा दोन में वरत हा २८ ह । एव दण्डर म २८ २८ विचार्य में दान कराता है ॥ २८ ॥

या धन दण्डर उरहा एवमन्त्र अर्थ ए दनादने यव करत है व पुनिमान २३१ । अकर इहएव व २४ ह २ व पुको हते ह २९ ॥

अथारथ मन्त्र—यमानो १ कर १ दुर्दे अथ इनेव भूमि पाइ अम १११ वदमन्त्र ३ व ३१ ॥

१ १११११ ॥ १६ दने, दने वदमन्त्र ६ उरहा १६ देना १ ६ व ३१ ॥

१ (अ) या वा १०)

धाना धेनुरमवत् वत्सो अस्यास्तिस्रोऽमवत् ।

तां वै ममस्य राज्ये अर्धित्वमुपं क्षीयति

॥ ३२ ॥

एतास्तं असौ धेनवः कामदुषां भवन्तु ।

पत्नीः द्येनीः सरूपा बिरूपास्तिलवस्ता उपं तिष्ठन्तु त्वात्र

॥ ३३ ॥

पत्नीर्धाना हरिणीः द्येनीरिष्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।

तिलवस्ता ऊर्ध्वमस्मै दुहाना विप्रधाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः

॥ ३४ ॥

वैप्रधानर इविरिदं शुहोमि साहसं वृत्तचारमुत्सृज ।

स बिमर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिमर्ति पित्र्यमानः

॥ ३५ ॥

अर्थ—वसन्तोक्तं जाकर उपरोक्त संवाजुसार निम्न एवं (बाला) बाल [बेटा] दूध करवेवाली गौ (अमवत्) बसने है । (अस्या) और इस नामकी गौका (वत्स) बकड़ा [बिलक] बिलक [अमवत्] बकड़ा है । (है) निम्नसे (अमवत् राज्ये) बसने उज्ज्वले वह [तां] उक्त जातों की बनी हुई गाय पर ही (उप क्षीयति) अभिहित हुआ हुआ लीज है ॥ ३२ ॥

[बसौ] है अमुक नामवाले पुत्र ! [एताः] ये गावें [ते] ठेरे निम्न [कामदुषां] अमवाओंको पूर्व करवेवाली [भवन्तु] होवें । (पत्नी) स्त्रिया के लिंगवाली अर्थात् काक रंगवाली [द्येनीः] श्रेष्ठ, [कृष्णा] कृष्ण रंगवाली व [बिरूपा] विविध रंगवाली तथा [तिलवस्ताः] बिलक है बकड़ा निम्नका देखी गावें [उप] उक्त जाति वेशा वास है वहां [आ उप तिष्ठन्तु] ठेरे क्षमीय स्थित रहें वा ठेरी सेवा करती रहें ॥ ३३ ॥

[वत्स ते] इस ठेरे [हरिणी] जाका] हो रंगवाक नाम [पत्नीः द्येनीः वैप्रधाः] अमवा व सफेद गावें होवें । ये कृष्णा जाका] कृष्ण रंगवाली [रोहिणीः धेनवः] काक रंगकी गावें होवें । (तिलवस्ताः) बिलक निम्नका बकड़ा है देखी ये गावें (अमवत्स्फुरन्ती) कमी भी बह न होती हुई (बसौ) इससे निम्न (विप्रधाहा) सर्वदा [ऊर्ध्वं दुहन्ता उर्ध्वं] उज्ज्वलक रस दूधको रोहती रहें ॥ ३४ ॥

[वैप्रधानर इदं इतिः शुहोमि] वैप्रधानर अग्निमें वह इति वाक्या ही को कि इति [वृत्तचारं वापसं उत्सृज] तैकडों व इत्यारों वातामोशके ओतके समान तैकडों व इत्यारों वातामोशकी है । [स] वह वैप्रधानर अग्नि [पित्र्यमानः] उक्त इतिसे दूध हुई हुई [पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिमर्ति] पिताका, पितामहोंका तथा परपितामहोंका धारण पोषण करती है ॥ ३५ ॥

साधारण— नाम तथा बिलक नाम उज्ज्वले जाकर बेटा स्वस्वमें परिणत हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

हे अमुक नामवाले पुत्र ! ये गाजा रंगी व कमीवाली गावें सर्वदा ठेरे क्षमीय बनी रहें व ठेरी अमवाओंको पूर्व करती रहें ॥ ३३ ॥

हे रमक कृष्ण नाम अमवा व बिलक रंगकी गावें बनती हैं । और कृष्ण नाम बिलक जाति अमवा दूधके को दूध काके रंगके दो गए हैं इस नाम काक गावें बनती हैं । ये सब गावें सदा अग्निधर हुई हुई अपने चारमुख रस दूधको रोती रहें ॥ ३४ ॥

अग्निमें सब अमुकोंको अग्निमें लक्ष्मण जाका है और फिर अग्नि उमकी जिन्मोक्तमें के जाती है । इस प्रकार अग्नि वैप्रधानर है । उपरोक्त निम्न जो कृष्ण रंगवा हो वह अग्निमें रंगवा अग्निमें वह उर्ध्वं वृत्तचारी है और इस प्रकार अमवा नाम पोषण करती है ॥ ३५ ॥

सहस्रभारं धृतधारमुत्समर्धितं न्युष्यमानं सखिलस्य पुष्टे ।

ऊर्ध्वं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधार्मिः ॥ ३६ ॥

इदं कसाम्बु धर्पनेन चित्तं तत् सज्जाना अपं पश्यते ।

मर्त्योऽयमपृतस्वर्गोति तस्मै गृहान् कृणुष याधुत्सर्पन्धु ॥ ३७ ॥

इहेवैधिं धनसनिरिहर्षिष इहकृतः । इहेधिं वीर्यविचरो ययोधा अपराहवः ॥ ३८ ॥

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।

स्वधां पितृभ्योऽमृतं दुहाना आपो देवीरुमर्यास्वर्पयन्तु ॥ ३९ ॥

आपो अग्निं प्र विष्णु पितृरुपेयं यज्ञं पितरो मे श्रुपन्ताम् ।

आसीनामूर्धमुप ये सचन्ते ते नो रुषिं सर्ववीरं नि यच्छान् ॥ ४० ॥ (२३)

अर्थ— [धृतधारं सहस्रभारं धृतं] सैकड़ों व हजारों भारोंवाले झोठकी तरह जो हजारों व सैकड़ों भारोंवाले पुष्ट है ऐसे और जो [सखिलस्य पुष्टे] अवास्तविक रूप व्याप्त है ऐसे [ऊर्ध्वं दुहानं] अन्न व वस्त्रों के देवताके [नपस्फुरन्तं कवी वी यकावमात्रं व होवेवाके अर्थात् स्त्रिय इति] पितरः [पितरः] स्वधार्मिः [स्वधार्मिके साय] बचावते] किय करके हैं ॥ ३६ ॥

[इदं कसाम्बु] इस कसाम्बु को (धर्पनेन) चुनकरके [चित्तं] डेर लगाया है— इच्छा किया है । [यत्] उसको [यजमानाः] हे यजमानीय कम्युक्त । [यत्] जाओ बार [अयमपृतं] व्याप्तसे वंको । [अयं मर्त्यं] यह मनुष्य जिसका कि कसाम्बु अयम किया गया है यह [अमृतत्वं] अमरताको [पृथि] प्राप्त होता है । [उर्ये] उसको किय [यावत् सचन्तु] जिसके भी तुम यजमानीय वन्तु हो वे सब [एवाहं कृतः] घरों को बचाओ अर्थात् छे पर बादि इत्या आश्रयमदान करो ॥ ३७ ॥

हे मनुष्य । [इदं इह पृथ पृथि] वहीं पर ही इति प्राप्त कर । [इह] यहाँपर [पृथिः] ज्ञानदाय हुआ हुआ व [इह] यहाँपर [कृतः] कर्मलीक हुआ हुआ व [यमसतिः] हयें यम देवताका हो । [इह] यहाँ पर ही [वीर्यवराः] वशि वक्रवन्त हुआ हुआ और अतपुष [अपराहवः] धामुर्को अपरास्ति हुआ हुआ [यवोधाः] अन्नका धारण करनेवाला व अन्नके दूसरेका पोषण करता हुआ अथवा वीर्याहुताका होकर [पृथि] सब ॥ ३८ ॥

[पुत्रं पौत्रं अग्निं तर्पयन्तीः] पुत्रपौत्रादिकोंके पूजना पुष्ट करते हुए [इमाः मधुमती आयाः] ये मधुर जल हैं । [विष्णुः स्वधां अमृतं दुहानाः] पितरोंके किय स्वधा व अमृतका रोहण करते हुए [देवी आयाः] ये दिव्य वज्र [उमर्याम्] वीर्यो पुत्रपौत्राको [तर्पयन्तु] पूष्ट करें ॥ ३९ ॥

(आयाः) हे आया । तुम (अग्निं विष्णुं उपमहिसुतं) अग्निको पितरोंके पास भेजो । (ये पितरः) डेर मीनय (इमे वीर्यं चुपन्ताम्) इस वज्रका खेवण करें । (ये) जो पितर (आसीनो ऊर्ध्वं उपसकन्ते) उपस्थित अर्थात् हमारे से दिव गए अन्नका खेवण करते हैं (ये) ये पितर (नाः) हयें (सर्ववीरं रुषिं) सब प्रकारकी बीरतासे पुष्ट यम-अपधि को (निवच्छान्) विरग्नर देते रहें ॥ ४० ॥

माधार्म्यं— विष्णुय स्वधाके साय इति आये हैं ॥ ३९ ॥

यह कसाम्बु का संभव किया गया है जैसे हे मनुष्यको । आकर देखो । यह मनुष्य जिसका कि कसाम्बु— संभव किया गया है यह अमृत को प्राप्त हाने । छे तुम यम आश्रय देकर सुखी करो ॥ ३७ ॥

हे मनुष्य । तुम्हारी व कर्मकाण्ड होकर हयें यम— प्रधान करता हुआ अन्नर— वृद्धिको प्राप्त कर । वक्रवन्त हुआ हुआ किशोरे वरचित व होकर अन्नमात्र की अन्नरिसे पुष्टि करके वीर्याहु होकर उद्विष्ट आन कर ॥ ३८ ॥

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।

स वैदु निर्वितान् निषीन् पितृन् परावतो गतान्

॥ ४१ ॥

य ते मन्थ यमोवुन यन्मांस निपुणामि ते ।

ते ते सन्तु स्वधारन्तो मधुमन्तो घृतशुचयः

॥ ४२ ॥

यास्ते धाना अनुक्रिरामि तिलमिभाः स्वधारणीः ।

तास्ते सन्तुदुग्धीः प्रग्धीस्तास्ते यमो राक्षानु मन्थताम्

॥ ४३ ॥

इद पूर्वमपर निषान् येना ते पूर्वे पितरः परेताः ॥

पुरोगवा ये अमिशाचो अस्य ते स्वा वहन्ति सुकृताम् लुक्रम्

॥ ४४ ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमधुरे तापमाने ।

सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वतीं वाग्धुपे वार्यं दातु

॥ ४५ ॥

अर्थ- (अमर्त्य) मरकटमैत्रे रक्षित (घृतप्रियं) जिसको भी बहुत प्रिय है वेदी (हव्यवाहं) हव्योका वहन करनेवाली
आग्निसे विनमय (समिन्धते) अच्छी प्रकार मशीन करते हैं । और (घाः) वह जगि (निर्वितान् निषीन्) जिसे हुए
रख नी की तरह [वहां लुकोपमा है] (परावतो गतान् पितृन्) वरगव पिताओं को (देह) जानती है ॥ ४१ ॥

(ते) वेरे किए (मन्थं) जिस मंत्र जगाव मयपैले- बिछोकेसेसे प्राप्त पदार्थ मन्थन करि को कोर (प
आहमं) जिस मातको (यम मांस) जिस मांसको (ते) वेरे किए (निपुणामि) वेता हू । (ते) वे सब (स्वधारन्तो
मधुमन्ताः घृतशुचयः) स्वधारणके मधुमासे शुद्ध तथा भीसे परिपूर्ण (ते सन्तु) वेरे किए होवे ॥ ४२ ॥

(येनो मन्त्र १८ । ३ । ४९ और १८ । ४ । २६) ॥ ४३ ॥

(इदं) यह सामने स्थित (पूर्व) पुरातन तथा (अपरं) आज की (निषाचं) वैद्यवाही है । (येन) जिस
पुराणी वैद्यवाही से (त पूर्वे पितरः परेताः) वेरे पुरातन पितर वहां से गए हैं । (अरव) इस आज की वैद्यवाही
य (अमिशाचः) दोनों कोर जुलकर जाते हुए [जैसा कि वैद्यवाहीमें वैद्य दोनों कोर पाद्योंमें जुते हुए होते हैं]
(पुरोगवा) जगके भागमें जगाव तथा में जुते हुए जो वैद्य हैं (ते) वे वैद्य (स्वा) तुझ (सुकृतां कोकं) सुकृतों के कोकमें
[पदस्थि] प्राप्त काहे ॥ ४४ ॥

[हव्यपत्तः] देव होने की कामना करने हुए मनुज [सरस्वतीं] सरस्वतीको [हवन्ते] तुकाते हैं । [वागधुपे] विभु
[अपरं] जिसादित यज्ञप्रति काय में तुकाते हैं । [सुकृतां] भद्र काम करनेवाला जन [सरस्वतीं हवन्ते] सरस्वतीको
तुकाते हैं । [सरस्वतीं] सरस्वती [वाग्धुपे] वारी पुरुषके किए [वार्यं] वरणीय अधिकप्रिय वदार्थ [दातु] दती है ॥ ४५ ॥

आशय- ये मार जन पुत्रप्राप्ताद्ये तुल करते हुए पितरोंके लिए स्वधा व अमृतको दोहते हुए दोनों पुत्रीय व पितरों
[१ २ ३ ४ ५] इस अग्निसे पितरोंके प स न माप विधये कि अग्निमें हाम हुआ हवि पितरोंके पद्वय यक ॥ ४ ॥

उप हुए पत्राको च ताह च अतिर गवया आभोगे भोजन है अथवा चरवा करत है [चाहे ये दूर दूरमें जनव
अह । हा वा गरम दवाही हानये भरत हो] व है अग्नि जानता है । अतः वह पितरों ना हवि पदुपाय और हविदेव वही
य ॥ ४६ । ६ ॥ ४९ ॥

अरन और भीटा राज करवा वात है ॥ ४७ ॥

पतता स्वयान में वेसपाहाल क जाना वात है ॥ ४८ ॥

देह उभे कामना करनेवाला करवती च मुक्तने है । बहवि [हव्यपत्तिका] कामों सरस्वतीका पुत्राभा जाता है ॥ ४९ ॥
४९२ । १ ॥ १ । २ कोकि सरस्वती व नीके बाधि । पत्र प्रधान करती है ॥ ५० ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यक्षमाभिर्नर्षमाणाः ।

आसद्यास्मिन् षीहृषि मादयध्वमनमीवा इय आ वैद्यस्मे ॥ ४५ ॥

सरस्वति या सरयं ययायोऽथैः स्वधार्मिदेवि पितृभिर्मदन्ती ।

सहस्रार्धमिदो अग्रं भागं रायस्योप सत्त्वमानाय धेहि ॥ ४७ ॥

पृथिवीं स्वां पृथिव्यामा वेष्टयामि देवो नो भ्राता प्र सिंहास्यायुः ।

परापरेता चसुविद् बो अस्त्वचा मुताः पितृषु स भवन्तु ॥ ४८ ॥

आ प्र व्यधेयामप तुन्मुखेया यद् वामाभिमा अत्रोचुः ।

अस्मादेतन्मञ्जुषौ तद् वक्ष्यीषो ब्राह्मः पितृष्विहमोज्ज्वलौ मम ॥ ४९ ॥

अर्थ- [वक्षिमा] वक्षिमा दिखाते जाकर [पञ्च भूमि पञ्चमाखाः पितरः] पञ्चको सब मोर से प्राप्त करते हुए जो पितर [सरस्वती इत्यन्ते] सरस्वतीको बुझते हैं । वे पुत्र [धरिन्स् कर्षिणि] इस पक्षमें [आलय] बैठकर [माधवम्] भागवन्त होओ। [अक्षे] हूँ । जननीयाः इवः] रोमरहित बच्चोंको अर्थात् निरक्षर बालोंके किसी भी प्रकारका रोम न होने ऐसे बच्चोंके सरस्वती ! तु [आपोहि] वे ॥ ३३ ॥

[सरस्वती देवि] हे सरस्वती देवी ! [वा] जो ए [सिधुभिः स्वाध्यासिः] मन्त्री विरहें स्या निष्कर स्वधामें आभ्यस्त होटी हुई [सरय] विरहें स्या समस्त एकर आरोहण करती हुई [पयाथ] आई है । यह हे सरस्वती ! ए [अज] इस पक्षमें [यजमानाय] यजमानके लिए [सहस्राणि इवः मार्ग] हजारों पुनर्गम अथवा आसके और [रात्र्यस्योप] पनकी पुष्टि को [चहि] हूँ ॥ ३० ॥

[पूर्विर्वां स्तं पूर्वपद्मे आभ्युपगमि] मित्रो के बने हुए थे एवं दुःख । तुम्हारे मित्रों ने भिका देना है, अर्थात् तुम्हें पूर्वपद्मे में गाढ़ा है । (भाटा देना नः आहुः प्रविष्टाणि) नमक देन हमारी आत्मा को बढावे । हे (परापरैणः) मज्जन्तवा हमसे दूर पड़े गए विचरों । (वा) तुम्हारे लिए प्राण दण (वसुधैव कुटुम्बकम्) वास करनेवाला हो तुम्हारा आभयदाता हो । (वय) जोर (मुक्ता) मय (विष्णु प्रमथन्तु) विचरों में अच्छीतर होयें अर्थात् विचरों में न मिटें ॥ ४८ ॥

हे मेरुवाहक देवो ! (पुनः) तुम दोनों (आ मय्यवेयाम्) देववादीसे विमुक्त होओ। (वय्) उक्त
वक्ष्यमाण (जो अपि कहा जाय) मित्राक्षय वाक्य से (अप सूतेर्य) मुक्त होओ। वय् मित्राक्षय वाक्यसे मित्रस
कि करार हुआ होने से कहा गया है कहते हैं- [अभिमा] शेष देवेशसे पुनर्वर्ति [व] तुम दोनोंको पुनरा भिन्न
अस्त्व भविष्य मेरुं कवयन्ती इत्यादि मित्राक्षय [वय् ऊय] जो वाक्य कहा है वक्ष्ये मुक्त होओ। [अन्वी]
हे देवा करनसे अयोग्य क्या ! [अस्मात्] इस मित्रा की कारणवत्त गादीसे [एते] जो पूरे भाष्य है [वय्] वह
[गच्छीवः] भिन्न होते। और उक्त [इह] इह विमुक्तये में [विमुक्तुं शानु। मम] विमर्शका उद्देश्य करने भासिके वृत्ते हुए
या इतिके वय् वय् मरे [भोजनी] पाकना करनेवाले होओ ॥ ७९ ॥

भाषार्थ- कितर घररवती का बहामें कुप्यत है ॥ ४६ ॥

सरस्वती बित्तरीके साक्ष समान रथपर चढ़ती रथपा छाती व गङ्गमें जाती है ॥ ३७ ॥

[पञ्चाश मे सुत बहदे माहमे य निरौघ दे ।] यह मासक देह पार्थिव वरको आधिक्यके क्या हुआ है अथवा यह/पद

मठरेइयो इजियो [सिटी] के मण्डरे पुस्तक गवा है ॥ ४८ ॥

समझने में आकर वेनबाई धारकर नेजोरा स्वायत्तिकाए करना आका है ॥ ४९ ॥

एषमगुन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन वृत्ता सुदुषा वयोषाः ।

॥ ५० ॥ (२४)

यौधम नीवानुपपुष्पती ज्वरा पितृभ्य उष सर्पराणयाविमान्

इदं पितृभ्यः प्र भेरामि षड्विंशीत्येवेभ्य उत्तरं स्तुजामि ।

॥ ५३ ॥

तदा रोह पुरुष मेष्पो मवन् प्रति त्वा ज्ञानन्तु पितरः परेतम् ।

11 42 11

एवं धुर्धिरसद्यो मेघ्न्योऽसूः प्रसिं स्वा ज्ञानन्तु पितरः परेतम्।

यथापुह तुन्वै१ स भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि

॥ ५३ ॥

पुणो रात्रापिधानं वरुणामूर्ध्नो बलं सह ओषो न आगन् ।

आयुर्जीविभ्यो विद्वद् दीर्घायुत्वाय सुखकारिण्य

अर्थ—[सुपुत्रा] उत्तमपुत्रा कामवालों को पूर्ण करवेवासी [अपोषाः] लड़कों देवेवासी [अथेव दत्ता] स्वयं ही लड़के [इयं दक्षिणा] वह दक्षिणा [मन्त्रः यः जा जामन्] कर्मकायकारी स्थायिक पुत्रदा कर्मकायकारी स्वयंसे ही प्राप्त हुई है। इससे हमारा कर्मफल नहीं होगा। [जीवने बीबान् उपपृच्छसी ब्राह्म] जिस प्रकार पुत्रप्राप्त्यर्थे कर्म करने लगे बीबों को ब्रह्मस्था अवस्था जाती है उस प्रकार वह दक्षिणा [इमात्] इस बीबों को [पितृभ्याः] पितापिता पितामह [उप धंपराक्याय] प्राप्त करावे क्योंकि पितापिता पितामह ही से पढ़ायावे ॥ ५ ॥

[इहं बहिः सिद्धुः प्रवराणि] यह कुलासन विरहों के किए रकटा हूँ विरक्ता हूँ [देवताः शीतं नरं स्तुभामि] देवों के किए शीतको कसके क्या विरक्ता हूँ। [युक्ता] हे युक्ता [मेघाः भवन्] पवित्र होता हुआ [वत् आरोह] उस पर बैठ। [परेषां त्वां विरहाः प्रति जानन्तु] परेश बर्बाद परे गए हुए वा कल्याण को जान हुए हुए तुझे विरह जायें ॥ ५१ ॥

हे प्रभु ! [इदं नहि] अस्य [इस] पुत्रास्य पर द वैद्य है । [निधय नृ] पतिव्रता है । [सिवा शेतं ना] जगत्
 विवर श्रेष्ठं पुत्र पुत्र पुत्रो जगत् । [यथा तस्य पत्न्यं] अश्वत्थ [शोभते] अनुसार शरीरको भर । जगत् [यथा] जगत्
 यथा जगत् यथा पुत्र शरीरको पूर्य कर । मैं [ते वाचा] ते शरीरको [अक्षय] अक्षय । [यजमान] यजमान
 यजमान ह वाणि ते शरीरको अक्षय शरीर वाणि हे ॥ ५२ ॥

[पद्मः राज्ञः] पद्मक राजा [पद्मार्थः] पद्मार्थोका उपक्रम है । [कर्त्रीः] भक्त [वक्तः] वक्त [ततः] ततुः
मात्र करमेका धामार्थ [धोत्रः] धोत्र ने धव [मा] हयों उस पक्ष राजाधे [मा जगन्] प्राप्त होय । [उपगतपक्षः]
दीर्घकुवाय [दी] दीर्घावु के [जीवेभ्यः] जिह्व जीवितो के जिह्व [जगत्] विद्वत् [जगत्] जगत् के जगत्
वर्ष की दीर्घावु हवे ॥ ५३ ॥

भाचार्य-दक्षिण दक्षे विररीकी प्राप्ति होती है। जिसकार मुक्तत्वाक अके आनेपर इहामत्वा अनर्थमयिनी है, वही प्रकार दक्षिण दक्षेके विररीकी प्राप्ति की अनर्थमयिनी है ॥ ५ ॥

मनुष्य कश्चित् कवे श्रीर उच्यते प्राप्त करे ॥ ५१ ॥

ପଠାରେ ଯେଉଁ ଅବସରପଣୀ ସୃଷ୍ଟି କରାଏ ତତକା ମୁହାଁ ବନାଯା ଆସିବେ ॥ ୫୨ ॥

पंजाब का पक्ष ५३ ॥

ऊर्ध्वो मागो य इम जवानास्माभानामार्धपत्य जगाम ।

उर्ध्वं च विद्यामिषा हविर्भिः स नो यमः प्रतर जीवसे वात् ॥ ५४ ॥

यसो यमार्य इर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः । एषा वपामि इर्म्यं यथा मे भूर्योऽसत् ॥ ५५ ॥

इदं हिरण्यं विमृष्टि यसे पिताभिः पुरा । स्वर्गे यतः पितृहस्तं निर्मृष्टि वधिणम् ॥ ५६ ॥

ये च जीवा ये च मृता ये ज्ञाता ये च प्रक्षियाः ।

तेभ्यो पुतस्यं कुन्त्येष्टि मधुधारा व्युत्पत्ती ॥ ५७ ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणाः दूरो अहो प्रतरीतिपसां विषः ।

प्राणः सिपूनां कृत्तुर्धो अधिकवृष्टिं प्रस्य हार्दिमाविधन्मनीपया ॥ ५८ ॥

वर्ध- [५४] मित्र [ऊर्ध्वः मागः] ऊर्ध्वके विनाय करवेवाकेने [इमं] इम ऊर्ध्वके [जवाना] वैदा किमा हे जीर जो [जगाम] जगमा होनेसे [जवानां वाविपसं] ऊर्ध्वके स्वाभिपको [जयाय] प्राप्त हुआ है ऐसे [त] उत्तकी हे ऊर्ध्वके मित्रो ! [हविर्भिः] हविर्भोग्ना [वपामि] पूजा करो । (सः) वह (यमः) यम (वः) हर्षे (प्रतर जीवसे वात्) बहुत बीबके किए धारण करे कर्णाद हीर्षस्तु हेवे ॥ ५४ ॥

(वपामि) मित्र प्रकार (पञ्चमानवाः) पाँच मानवोंने (यमः) यमके किए (इर्म्यं) वरको (जयपन्) जयना है (एष) उसी प्रकार मैं भी (इर्म्यं वपामि) वर वषावा हूँ (यथा) मित्रसे कि (मे) मेरे (भूर्यः) बहुतसे वर (अतः) हो जाने ॥ ५५ ॥

हे मरणासक्त पुत्र ! [इदं हिरण्यं विमृष्टि] इस छोटे को धारण कर [यत्] मित्र सोचको कि [पुरा] पहिले [ये पिता वभिः] तेरे पिताने धारण किया था । इस प्रकार ह मनुष्य । [स्वर्गे यतः पितुः] दक्षिण हस्ते निर्मृष्टि [वधिणं] ऊर्ध्व को वाते हुए पिताके दक्षिण हस्तेके सुसोमित कर ॥ ५६ ॥

(ये च जीवाः) जो जीवित हैं जीर (ये च मृताः) जो मर गए हैं वे (ज्ञाताः) जीर जो उत्पन्न हुए हैं, (ये च प्रक्षियाः) जीर जोकि पूजनीय धर्म करने योग्य हैं (तेभ्यः) उन उपजुओं के किए (मधुधारा) मधुधारावाही (व्युत्पत्ती) उत्पत्ती हुई (वृषा) धी या बकरी (कुन्त्या) छोटी बरी (एत) प्राप्त होवे ॥ ५७ ॥

(विचक्षणाः) विचक्षणा देखनेवाला (वृषा) बधिरक कामनाओंका वर्धक (मतीनां पवते) मतिर्भोग्य पवित्र करवेवाका है । (दूरो) दूर (अहो) विचक्षणा (उपपत्ती) वषावाका तथा (विषः) पुत्रको का (प्रतरीति) वधनेवाका है । (सिपूनां प्राणः) वरिषोंका प्राण (कक्षणाः) यत्रोको कक्षणाओंके (अधिकवृष्टिं) गृहणा है । (मनीषया) मनकी इच्छावृष्टि (इन्त्येष्टि) इन्त्ये (हर्षि) हर्षसे (वाविपस्यं) वर्धक करा है ॥ ५८ ॥

वपामि- यम हीर्षस्तु हेवे ॥ ५४ ॥

विमृष्टि- वरने वरके वधनेकी इच्छा हो वह यमके किए वर वधनाये । ईष मानव यमके किए वर वधता है ॥ ५५ ॥

वधिणं- वरने पूर्ण मरणासक्त के दक्षिण हस्ते छोटी मंगुली परमात्रा चाहिये ॥ ५६ ॥

वृषा- वृष मृत् उत्पन्न तथा अन्य पूजनीयों को मधुधारावाही बहती हुई पीती है । बकरी वरी प्राप्त होवे ॥ ५७ ॥

इन्त्ये- कर्णाद मात्मासे झाल कर तेज समन कटि प्राण से धर्म धर्मियां पड़े ॥ ५८ ॥

त्वेपस्ते धूम ऊर्णोत्तु द्विवि पन्मुक्त आततः

सुरो न हि युता स्व कृपा पोषक रोषसे

॥ ५९ ॥

प्र वा एतीन्द्रुरिन्द्रस्य निष्कृति सखा सस्युर्न प्र मिनाति सगिरः ।

मर्ये इव योषाः समर्षसे सोमः कल्ले क्षतयामना पृथा

॥ ६० ॥ (२५)

अक्षममीमदन्तु दार्ष प्रियाँ अपृषत । अस्तोपत् स्वमानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥

आ यांत पितरः सोम्यासौ गम्भीरैः पृथिभिः पितृगणैः ।

आयुरस्मभ्य दधतः प्रजाँ च रायइव पोषैरभि नः सचध्वम्

॥ ६२ ॥

परां यात पितरः सोम्यासौ गम्भीरैः पृथिभिः पूर्याभिः ।

अवा मासि पुनरा यांत नो गृहान् हविरनु सुप्रक्षसं सुवीराः

॥ ६३ ॥

अर्थ— [पावक] हे पवित्र करनेवाली बलि । [छे] छेद [छक्क] छूट [जातवा] सब राक्ष कैदा हुआ [लेप] मल्ल [द्विवि] युद्धोत्तम [धूम] पुंस्की तरह [ऊर्णोत्तु] सबको ढँकने । [युता] अपने मन्त्रजसे [सुरा न] सुर्वकी तरह [तं] तू [कृपा] कृपा करने [रोषसे] शीत होना है ॥ ५९ ॥

[इन्द्रः] देवर्ष देवेनात्मा सोम [इन्द्रस्य निष्कृति] इन्द्र अर्थात् पञ्च करनेवाला देवर्षिताकी पुत्र निष्कृति [व दधि] अच्छी तरहसे प्राप्त होता है अर्थात् इन्द्र सोमको अच्छी तरहसे निचोड़ता है । जैसे कि [सखा] मित्र [सस्युर्न] मित्रकी [संतिरा] उत्तम बालियोंको [न प्रमियाति] नहीं छोड़ता अर्थात् अच्छे ही वस्तुके बचपानुसार कम करना है उसी प्रकार इन्द्र भी अच्छे ही सोमका रस निचोड़ता है और इस प्रकार सोम रस निचोड़ने पर [मर्ये योषाः इव] जिस प्रकार पुद्ग कीसे क्षण होता है उसी प्रकार [सोमः] सोम तू [कल्ले] सोम निचोड़नेके पान पड़ने [क्षतयामना पृथा] सबको प्रकारकी पतिवाके मार्गसे अर्थात् निचोड़ने पर कई बाराओंसे [स अर्पे] अच्छी प्रकारसे जाता है । [स्वधामना] स्वय प्रकारप्रमाण [मिमा] मेवाकी पितर [अक्षम्] बल्लें ही गई इविषोंको कहे हैं । [अमीमदन्तु] आकर अक्षन्त काममिष्ट होठे हैं और [हि] निजजसे शिवाम् अपने मित्रजोंको (अब अर्पण) कर्मिनाम् बलाते हैं । उनकी [अस्तोपत्] प्रक्षसा करते हैं । [पृथिभिः] अक्षन्त युवा अर्थात् साम देवकी [ईमहे] हम निचोड़ने यज्ञादिमें जानेके किए मार्गवा करते हैं ॥ ६१ ॥

[सोम्यासः पितरः] हे सोमपात्र करनेवाले पितरों । [गम्भीरैः] गम्भीर [पितृगणः पृथिभिः] पितृगण अपने [वा वात] बालों । [अस्तम्यं वापु] प्रजाँ व राक्षः व दधतः] हमारे किए आनुष्य प्रजा तथा प्रबर्धन हो । [पोषैः] अन्न पृथिवीसे [नः] हमें [अभिप्रक्षस्यं] चारों ओर से पुष्ट करो ॥ ६२ ॥

[सोम्यासः पितरः] हे सोम देवात्मा पितरों । [गम्भीरैः पूर्याभिः पृथिभिः] गम्भीर पूर्याभि मार्गद्वारा [पृथयम्] अपने चके आगे । अर्थात् वापु से बड़ी पर क्षीर बालों । [अच पुषः] और फिर [सुप्रक्षसं सुवीराः] हे उत्तम प्रजापति बला सुवीर पितरों [मासि] मन्त्रके अन्तमें बालि गह्वीके वापु [नः गृहान्] हमारे घरोंमें [हविः अणु] हविके काने के किए [आवात] बालों ॥ ६३ ॥

भाष्य— हे आभि ! तेरा ठीक सर्वज्ञ इस प्रकारसे पैककर सबको ढँक के जिस प्रकार कि पूजा करनेका काम है । जिस प्रकार एवं स्वप्रदायके समकता है उसी प्रकारसे तू भी हमारे पर दया करती हुई प्रमदता रह । (अ. १.१.१४ प. ५५)

इन्द्र सोमको निचोड़नेके कर्म को नहीं खकता जेस कि जिस मित्रकी बालीया नहीं खकता । सोम निचोड़नेके पान पड़ने पर योषोंके बल्लें गुमना पड़िइए व हवि देकर गुप्त करना पड़िइए । ऐसा करनेके बलमान को शीर्ष बना है ॥ ६१ ॥

पितरों ! गम्भीर जो पितृगण मांग हैं उनके गुमनपर हमारे बल्लें आगे व हमें छेति समर्पण आदि ॥ ६२ ॥

यद् वों अघिरज्जहादेकमर्गं पितृलोकं गुमयं जातवेदाः ।

तद् व एतत् पुनराप्योययामि साक्षाः स्वर्गे पितरो मादयन्वम्

॥ ६४ ॥

अभूद् वृत् प्रहितो जातवेदाः साय न्याह उपवन्त्यो नृभिः ।

प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षयि त्वं देव प्रयता हवीर्षि

॥ ६५ ॥

असौ हा हृह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अम्येनि भूम ऊर्ध्वदि

॥ ६६ ॥

धूमन्मन्ता लोकाः पितृपदनाः पितृपदने स्वा ओक आ सादयामि

॥ ६७ ॥

येस्माकं पितरस्तेषां वृद्धिरसि

॥ ६८ ॥

वर्ण- हे पितरो ! [वः यद् एव वृत्] तुम्हारे बिना एक अन्नको (पितृलोकं) यमवत् जातवेदाः (यमिः) पितृलोकमें के जाती हुई जातवेदस् अग्निने (जमहाय) ओक दिया है (वः एव एव) तुम्हारे उस इस अन्नको मैं (उक्ताः) फिर (आप्यययामि) एवं करता हूँ । (साक्षाः पितराः) अपने सब अन्नको कुछ कुछ पितरो ! (स्वर्गे मादयन्वम्) स्वर्गमें आनन्दित होओ ॥ ६४ ॥

(प्राय मन्त्रे) अत्यन्तक और प्रातःकाल (नृभिः उपवन्त्याः) बरोंसे अन्ना की जाती हुई (जातवेदाः) जातवेदस् अग्नि (प्रहितः दत्तः वाम्) मेला हुआ दत्त है । क्योंकि ए मेला हुआ दत्त है अतः हे (देव) प्रकाशमान अग्नि ! (प्रयता हवीर्षि) हमारे से ही गई हवीर्षों को (पितृभ्यः प्रादाः) पितरों के लिए दे बिछोड़ कि (ते) वे पितर जिनमें कि तुम्हें दत्त बनाकर भेजा है (स्वधया जघम्) स्वधा के द्वारा हमारे द्वारा ही गई हवीर्षों को जानें । (त्वं नृभिः) ए ही सब हवीर्षोंको का ॥ ६५ ॥

(असौ) हे ककुत्सल नामवाले भेद ! (हृह ते मनः) वहाँ तेरा मन है । हे (भूमे) पृथिवी ! (जामयः ककुत्सलं हव) बिना प्रकार बिना अपने कबेको बलसे डीपती है वा कुकुरिना अपने सिरको डीपती है उस प्रकार (एवं) इस भेद को (अग्नि ऊर्ध्वदि) अग्नी प्रकार ऊँच ॥ ६६ ॥

(पितृपदनाः लोकाः धूमन्मात्र) जिनमें पितर बैठते हैं ऐसे लोक (धूमन्मात्र) धोमायमान हो । (स्वा) तुम्हें (पितृपदने ओके) जिसमें पितर बैठते हैं उस लोकमें (आप्यययामि) बिठकाता हूँ ॥ ६७ ॥

(वे) को (अस्माकं पितराः) हमारे पितर हैं (तेषां) उनकी (वृद्धिः) वासन (अग्नि) है ॥ ६८ ॥

माता- प्रत्येक मातृमें पितृपद करना चाहिए तथा वरमें पितरोंकी आभिशिक्त करना चाहिए ॥ ६९ ॥

अग्नि मन्त्र के अन्तर्गत पितरोंको पितृलोकमें के जाती हुई उनके शरीरके किसी अंगवशसे बहायर छोड़ जाती है ॥ ६४ ॥

बिना अग्निकी धाम व प्रातः अन्ना की जाती है उस अग्निको पितर अपना दत्त बनाकर हमारे पाद भेजते हैं और यह अग्नि हमारे पादसे हवीर्षों को के बाहर पितरों को पहुँचाती है । हमारे से ही गई हवीर्षों को पितरों तक पहुँचाने के लिये अग्नि वाहक है ॥ ६५ ॥

भेदके अनीजमें पादने का भी एक विधि है । अग्नि प्रेतका वाये ॥ ६६ ॥

कोई ऐसे लोक है जिनमें कि पितर बैठते हैं तथा वरमें एव वहीन अग्निकी भी किसी अंगवशसे किसी बिठकाता गया है ॥ ६७ ॥

वहमें पितरोंके बैठनेके लिए कुशावागविर्मित आसन होता चाहिए ॥ ६८ ॥

उत्तुत्तुं वरुण पार्श्वस्मद्वर्षाघ्नं वि मध्यं श्रवाय ।

अर्धा वृषमादित्य ऋते त्वानामसो अर्धितये स्वाम

॥ ६९ ॥

प्रास्मत् पार्श्वान् वरुण मुष्च सर्वान् वै संमामे वृष्यते यैर्मामे ।

अर्धा वीवेम श्रुर्वं क्षतानि स्वया राबन् गुपिता रक्षमाणा

॥ ७० ॥ (२६)

अघ्नये कव्युवाहनाय स्वधा नमः

॥ ७१ ॥

सोमाय पितृमते स्वधा नमः

॥ ७२ ॥

पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः

॥ ७३ ॥

यमावे पितृमते स्वधा नमः

॥ ७४ ॥

एतत् ते प्रततामह स्वधा मे नृ स्वामनु

॥ ७५ ॥

वर्ष- (वरुण) है वरुणीय अघ्न । ठेरे (उरुते) वरुण (वरुण) पाशको (अस्मत्) हमको (उरु अस्मत्) कर दे कोक दे । (मध्यं) और जो ठेरा अजम पाश है उसको (वरु अस्मत्) वीवेदी औरसे कोक दे । (मध्यं) और जो ठेरा मध्यम पाश है उसको (विश्रवाय) विविध रीतिसे कोक दे । (वरु) इस अजम ठेरे तीनों अकारसे पाशोंसे विमुक्त होनेके बाद (अजमत्) पापरहित हुए हुए (वर्ष) हम (आदिभ्यः) है अजमकीय अस्मिनाके । (ते) ठेरे (वरु) वरु अर्धात् विषमते (आदितये) अर्धितयके किन् वरुर्वं अजम हुए हुए (स्वाम) होयें ॥ ६९ ॥

(वरुण) वरुण राबन् । (अस्मत्) हमको (कर्वा राबन्) ठेरे कर्वा पाशों-कर्मों-को (प्रमुक्त) मरुती तरह से कोक दे । (वै) किन् अस्मिनाके कि (अ-वामे) अजम में और (वै) किन्के कि (वि-वामे) अजममें (व-वामे) अजमी वांका काटा है । (वरु) ठेरे वरुणीय पाशोंसे मुक्तकर हम (राबन्) है वरुण राबन् । (स्वया गुपिताः) ठेरेसे रक्षा किन् नृ अजमत् (रक्षमाणाः) दूसरों की रक्षा करते हुए हम (अजमि अर्धं) अजमों परसे (वीवेम) और ॥ ७० ॥

(अघ्नवाहनाय अघ्नये) अजमका अजम करवैवाकी अग्निसे किन् (स्वधा नमः) स्वधा और अजमस्कार होयें ॥ ७१ ॥
अघ्न पितृमते अजमके किन् स्वधा और अजमस्कार हो ॥ ७२ ॥
अजमन् पितृमते किन् स्वधा व अजमस्कार हो ॥ ७३ ॥
(पितृमते) अजमपितृमते (यमाय) यमके किन् (स्वधा नमः) स्वधा और अजमस्कार होयें ॥ ७४ ॥
है (प्रततामह ।) प्रततामह । (ते एतत्) ठेरे किन् नृ विवा हुआ वदार्थ (स्वधा) स्वधा होयें । (मे नृ स्वामनु) नृ जो ठेरे अजमामी हैं उनके किन् भी नृ स्वधा हो ॥ ७५ ॥

भाष्य— है वरुण । नृ ठेरे दुर्गोंकी वांकेवाकी तीनों प्रकारके अजम मध्यम व अजम पाशोंसे हयें मुक्त कर । हम वरुणीय हुए ठेरे अजममें रहते हुए अजमामी होकर नाना प्रकारकी वस्तुओं का काम करें ॥ ६९ ॥
है वरुण राबन् । नृ अपने लक्ष कर्मोंसे हयें मुक्त कर किन्के कि विविध रीत मनुष्य पर अजम करने हैं । ठेरे रक्षासे रक्षित हुए हुए अजमों वरुण जीवें ॥ ७० ॥
वम और पितृमते किन् स्वधा व अजमस्कार हा ॥ ७१-७२ ॥
अजमन् किन् अजम देना योग्य है ॥ ७३-७४ ॥

य इह पितरो जीवा इह पय स्मः । अस्मोस्तेऽनु वन तेषां मेघा भूषास्म ॥ ८७ ॥
आ स्वाय इधीमहि शुभन्तं देषाचरम् ।

यद् य सा ते पनीमसी समिद् वीदयति धवि । इत्वं स्तोतुम्य आ मर ॥ ८८ ॥
चन्द्रमा अप्स्यन्तरा सुपर्णो धावते विधि ।

न तौ हिरण्यनेमयः पुवं विन्दन्ति विद्युतो विचं मे अस्य रोदसी ॥ ८९ ॥
इति चतुर्थोऽनुषाकः ।

इत्यष्टादशं काण्ड समाप्तम् ॥ १८ ॥

अर्थ—(ये) जो [पितरः] मित्रपय (इह) यहाँ हैं उनके अनुग्रहसे (वन) इस (इह) यहाँ (जीवाः स्वः) जीवित हैं । (ये पितरः अस्मात् अनु) मे पितर हमसे अनुकूल बने रहें । (वन) इस (तेषां मेघाः भूषास्म) वनमें मेघ होय । अथवा ये हमसे अनुकूल हो और इस उनके । दोनों मित्रकर परस्पर मेघ होवें ॥ ८७ ॥

(यद्) वे प्रकाशमान (यद्) यद्भि । इस (यमस्य) यमकी हुई (अचरं) अचरहित (स्वा) तुम्हें (इधीमहि) प्रकाशित करते हैं । (यद् ते) जिस तेरी (घा) वह (वधीवधी) लक्ष्मण मर्कसमीप (समिद्) शक्ति-कलत्र प्रकाश (धवि) अर्द्धरश्मिमें लज्जा पूर्वमें (वीदयति) प्रकाशित हो रही है । अर्थात् तू ही पूर्व रूपसे प्रकाशित हो रही है । ऐसी वे यद्भि ! तू (स्तोतुम्यः) तेरी स्तुति करनेवालोंके स्तुति (इत्वं) अथ वा इस फलसे (आ मर) वे । (क ५।१।४) ॥ ८८ ॥

[सुपर्णः] सुन्दर पाकवाला अथवा सुन्दर रश्मिचोलाका [चन्द्रमा] चन्द्र [अप्स्यन्तरा] क्योंकि अमर रहता हुआ [विधि] अंतरिक्षमें [धावते] दौड़ता रहता है । [रोदसी] वे चान्दाविनी । [वा] तुम्हारी [पयं] स्तुतिसे [हिरण्य-नेमयः] सोने जैसी यमकीके शान्तभास-धीमावादी [विद्युतः] बिजलियाँ अथवा प्रकाशमान पदार्थ [न विन्दन्ति] नहीं प्राप्त करते । अर्थात् तुम इसकी छवी पीछी हो कि कोई भी प्रकाशमान पदार्थ तूम तूम करके भी तुम्हारे अंशका पता नहीं कर सकता । [मे] मेरी [अयः] इस उपरोक्त स्तुतिसे [विचं] तुम दोनों जावो ॥ ८९ ॥

साधार्थ— इस उपा प्रकाशमान अमर रश्मिसे प्रकाशित करते रहें । उदीची क्योंकि उद्योत शुकेश्वर व सूर्यादि प्रकाशित कर रही है । वह स्तुति करनेवालोंसे अकाशि इह पदार्थोंका प्रदान करती है ॥ ८८ ॥

सुन्दर पलिकाका चन्द्रमा जो कि अर्द्धसे अक्षरवत्के बीचमें रहता हुआ सुन्दरमें नाचकर दौड़ रहा है वह उपा अन्व अन्वत् यमकसेवाके पदार्थ जो इस पावापुष्पिनी के बीचमें रातदिन अक्षर समान गतिसे दौड़ रहे हैं व इस अक्षरविनीकी स्तुतिसे अर्थात् यदि व अन्वको नहीं पते । (क १।१.५१) ॥ ८९ ॥

चतुर्थं अनुषाक समाप्त ।

इति अष्टादशं काण्ड समाप्त ।

अष्टादश काण्डका मनन ।

(१) पितर ।

वर्तमान समयमें हम और पितर वह एक ब्रह्माभाटी विवा-
दात्तर नियम है और इसीलिए बड़े महत्त्वका होता हुआ नि-
यम विचारणीय है । वेद ही के द्वारा पांच अन्तिम साधन
होते तथा ब्रह्मर्षी प्रायान्तिकतन्त्रे सबको विद्यास होकर ही
संन्यसे बड़े बना विचार है वह जानना विद्यान्त बहरी है ।
हैं पुनर्जनमें पूर्व विद्यास है पर हम वह निश्चित करते
जानी नहीं वह करते कि मरनेके बाद जीव पक्षिके कहा जाता
है और हम फिर अन्य होता है । वर्तमान समयके लोक जो
रव व पितर संन्यो कल्पना मानते हैं व तबतुसार जागरण
करते हैं इसका मूल क्या है ? क्या पुनर्जन्म ही वह कल्प-
नम्मा है वा वैदिकों की इसका कुछ मूल पाया जाता है ?
मरनेके बाद जीव कहा जाता है कि कर्ममें रहता है कर्मक
विना पुनर्जन्म कि रहता है मरनेके बाद मृतककी जीवात्मा
या उसके साधारण स्वरूपोंसे कोई अवस्था रहता है वा नहीं
बन जाता है वा कि कर्ममें उस मृतके लिए अविशेषोंको कुछ
करना चाहिए वा नहीं बन करना चाहिए तो कि कर्ममें
क्या क्या है क्या रहता है पत पितरोंके कल्पना बना अवस्था है
यके हुए क्या हैं वम क्या वाता है हवाकि इन्हाकि अवक
वाताके प्रद हमारे सामने उपस्थित हो सकते हैं । क्योंकि
मरनेके बादक पदान्त जात्वा मनुष्यकी सन्धिसे बाहिर है
और वहक विद्यास और कोई उक्त हमारे पास नहीं है अतः
हम हम करीक महत्त्वपूर्ण प्रयोग संन्यसे वैदिक विचार
वाताके अक्षिप्त करते ।

पितृलोक ।

हम केमें हम पितृलोक पर विचार करेंगे । जिन जिन
वेदमें पितृलोकके उक्तमें विद्वेक वा वर्णन होता उस सब
प्राचा वनेक किना जानना जिसे कि पितृलोक संन्यो
प्रां ही वैदिक विचार पुरुषे न पावे । जिन संन्यसे विद्वेक वि-
न्येक विद्वेक विद्वेक है ।

सुधामर्ता लोकाः पितृपदवाः ।

पितृपदमे वा लोक वा साधनामि ॥

अथ १८।१।१७ ॥

सुधामर्ता लोकाः पितृपदवाः पितृपदमममि ॥

अथ ५।२९॥ तथा ॥ १।१ ॥

अर्थ- (पितृपदवाः लोकाः) जिनमें पितर बैठते हैं ऐसे
लोक (सुधामर्ता) शोधयमान हैं । (वा) सुध (पितृपद
मे लोक) जिसमें पितर बैठते हैं वस लोकमें (साधनाममि)
बिठाना ॥ ।

इस संन्यसे पता चलता है कि कई ऐसे लोक हैं जिनमें कि
पितर बैठते हैं तथा इनमें एक ब्रह्मो व्यापिके भी किसी अ-
वस्थानियेमें बिठाना जाता है ।

एतद्वातोह वम सम्प्रदायः अथ इह ब्रह्मपुरीदपमते ।

अभिनेहि मध्वतो मापदात्याः पितृन् लोकं प्रथमे

वा अथ ॥

अर्थ. १८।१।७३॥

अर्थ (सम्प्रदायः) अपनेको छूट करता हुआ (एतद्
वमः अथ) इस अतरिक्षमें पत । (इह) वही (स्वाः)
तेरे वधुनामन (वध्व उदीरवमते) बहुत प्रपाद्यमान हो रहे
हैं-अर्थात् वे बहुत उन्नत हुए हुए हैं अपने व विमता मत
कर । (मध्वतोः अभिनेहि) हम वधुनामन के मध्वे जा ।
(पितृन् लोकं) पितरोंके लोक (वा अपदात्याः) त्याग
मत कर अर्थात् तेरे पितृलोक पुरुषे न पावे । (वः) जोकि
पितृलोक (अथ) वही (प्रथमः) मुख्य-प्रसिद्ध है ।

इस प्रकार हमने देखा कि पितृलोक का विवेक हमने देहमें
मिलता है । अब हमने देखा है कि वे पितृलोक जिनमें हैं-

१ पितृलोक-‘पृथिवी’ ।

वत्सा पितृन् पृथिवीपत्रया ॥

अथ १।७।८ ॥

अथ- (शुद्धिदोषश्चः) शुद्धिदोषश्चैतद्वैतः (पितृभ्यः)
पितृभ्योऽपि (कथा) स्वभा हो ।

पृथिवीस्य पितरौते क्षिप्र स्वच्छन्द कर्मण महापरा हे । पूर्वोक्त
बहुते विरुमेधोमते एक पृथिवी लोक हे अथा कि पितर देखते
हे एका इस मन्त्रसे प्रतीत होया है ।

२ पिठलाक—‘अवरिष’ ।

स्वभा पितृभ्यो अन्तरिक्षादुभयः ॥

अथर्व १८/४/७९, ४

अर्थ (अन्तरिक्षसूत्रः स्मृतः) अन्तरिक्षं वैश्वदेवैः
वितरौक क्षिप्रं (स्वया) स्वया हो ।

हृष मंत्रमें अतिरिक्तमें वैष्णवोंको पितृरौद्र दण्ड है ।

ये वा सिद्धः पित्रो ये विद्यामहाः न जानित्वा ब्रह्मण्य
रिद्धम् । तेभ्यः स्वराजसुखीतिर्न भवन्त्यापार्थक्यः
कल्पयति ॥

मासर्ग १५३१५५५५

अर्थ (५) को (न) हमारे (विनुः वितरः) विना
 वितर और (व) को (वितामहः) वितामह-वाह (६)
 को (के) उर अंतरिक्षं विस्तृत अंतरिक्षमें (अभिविहः)
 प्रविष्ट हुए हुए हैं (७-८) उनके किए (स्वरः) स्वर
 प्रवाहमान (अनुनीतिः) प्रवाहमान परमात्मा (९)-हमारे
 (तन्वाः) धीरे-धीरे [वषावर्षे] कामाक्षी अनुकूल [अप्यति]
 काम्यं कराय है ।

इस संश्लेष में विद्या विद्यालय तथा प्रविष्टामहोदय अन्तर्निहित
प्रवेश स्वरूप कल्पित है। कतिपय इस संश्लेष को कठोरार्थ
में भी एक लक्षण महत्त्वपूर्ण बात बड़ी गई है पर लक्षण बड़ा
पर विवेक महत्त्व नहीं है। कल्पित अन्तर्गत विचार को।

उपिह मदि म द्वाकः कुमुज उकिडे सवसे ।

एवमर्थं पितृभिः संविद्वानः स्र शोमेव मयस्व सं
स्वभाभिः ॥ जयार्थं १४११८

अन-[उत्तर] ठिठ [येहि] का [प्राप्त] होत ।
[कथन] जहाँ सब रहत रहत है ऐसे [कथित] अत्यंत
में (बोद्ध) पर (हस्त) बना । (तब) वहाँ अत्यंत
(त) तु (विशुद्ध) आनंद) अन्य विपरीत काय विद्या
दुष्टा दुष्टमत्त प्रान्त दुष्टा दुष्टा (बोध) बोध (बोधन)
अर्थात् तब आनंदित हो और (स्वार्थ) स्वार्थी
(त) अथवा अथवा तुष्ट दुष्टा दुष्टा आनंदित हो ।

इस संघर्ष में हजारों लोगों की आत्माएँ शोक में डूबी हैं। वे अपने घर और गाँवों में विपन्न स्थितियों में खड़े हैं। आर्थिक अभावग्रस्त होनेका निर्देश है। अतः यह संघ भी विपत्तियों का स्थान बनकर बसा रहा है।

उपरोक्त सब संज्ञाओं में इस तरह स्पष्ट करने पड़े हैं कि सितार जगद्विख में भी रहते हैं जगद्विख जगद्विख में सितारों के बीचों-बीच में थे एक कोण है जहाँ सितार स्थित रहते हैं।

३ पिपुलाक—'पु' ।

स्वर्गादिपुण्यं विविधदुःखः ॥ अथर्व १८॥४८ ॥

अर्थ—(विविक्तत्वात् सिद्धम्) पुनश्च वैयर्थ्यात् विरुद्धि
निय (स्वभा) स्वभा ही ।

इस संकल्प से ऐसी विचारों का वर्णन है जो कि बुद्धों के बैठते हैं, और वह बैठकर एकाग्र होते हैं।

आ वाः पवन् वसुमहिरन्वयइवाप्तोमन् वसवः
सुवीर्यम् । धृवं हि क्षेमं निरो मम कायं निरो
सुर्वायाः प्रविष्टा वसुस्तथा ॥

ক. প্রবন্ধ

कर्त्तव्य—हे श्रेष्ठ ! तू (वा) इसे (वस्तुतः) पुरुष
(विराज्यतः) शोभायार्थीभावे (अत्यन्त) शोभाय
(श्रेष्ठ) शोभाय (वस्तुतः) यथादि धाम्यभावे, (कर्त्त-
व्यम्) कथमपि पराक्रम वा (आचरन्) प्राप्त कर । कर्त्तव्य
हमने ऐसा धाम्यत्वं दे कि हम ने धन कबोच वस्तुओंको
अपने पराक्रम से प्राप्त करें। हमको ऐसा पराक्रम दे। हे श्रेष्ठ !
(पूर्व वस्तुतः) मम पितरः) तुम जीवन देखनेको भेरे निर
(विषः मूर्खायः प्रसिद्धाः) पुत्रोंके के समान जैसे बड़े हुए
(एवम्) हो ॥

इस प्रकार जपरोक मंत्रोंसे हमें बताया कि पुष्पक में भी विचार रहते हैं। पुष्पक में विचार क्यों रहते हैं वह विष्णु मंत्र बताया रहा है—

अहम्बुद्धीं धीरावमा नीलुमधीति मध्यमा ।

सूचीया इ प्रयोगसि यस्या सिद्ध आद्ये ॥

अथर्व १८।२।७८ ॥

जय- (आजमा लोड बरम्पली) सबसे नीच की ली 'मु-
 कोक यह है जिसमें कि जय रहता है। जिस मुकाममें जय
 रहते हैं वह सबसे नीचका मुकाम है (कस्तुरी हाथ लफ्फा)
 और जिसमें यह लफ्फा स्थित है वह नीच का मुकाम है।

(४) निषण्णे (लूनीया) तीवरा (प्रवीः इति) इणु नाम य पुण्ये हे [कस्ता] विषमं कि [वितरः आद्यते] पितर शिव होते हैं ।

एक मंत्रमें यह वक्तव्य पता है कि पुण्योक्त तपि अन्नरस है । एक तो यह जो कि तीनों प्रकार के पुण्योक्तों से सबसे नीचे है और सबसे मेघमन्त्रक स्थित है । दूसरा इसके ऊपर है और सबसे स्थिर अर्थात् मह ब्रह्मादि स्थित है । यह बीचका पुण्योक्त है । तीसरा इसके ऊपर है जो कि प्रवी के नामसे प्रख्यात है और यही पुण्योक्त है जिसमें कि पितर निवास करते हैं । अन्त्येष्ट के सब मंत्रोंमें इसमें से ऐसा पता चलता है कि पितर इन्हीं लोक के बसकर अन्तरिक्ष क्षेत्रमें जाते हैं और यन्त्रि पककर सब अन्तमें इस पुण्योक्त में निवास करते हैं । यह पुण्योक्त मह ब्रह्मादि के निवासक सुते भी परे हैं ऐसा एक मंत्रमें पता चलता है; अतः इसके आधारपर यह स्पष्ट कम निष्कर्ष का प्रकाश है कि यह पितरों का निवासक पुण्योक्त पूर्वोक्तमें परे है । इसी मंत्रके अन्त्यमें विष्णु आग्नेयमी अथा उर करती है ।

छिन्नो यावः सवित्रां वरुणां एकमस्य सुखे निराणम् । अर्धं न ह्यममृतादि तस्युरिह मवीतु न व वनिकेष्टम् ॥ १३५॥१३

अर्ध- (छिन्नो यावः) तीन पुण्योक्त हैं । (वी) इनमें से से (अर्धम्) एवं के (वरुणां) अर्धव है (एक) और एक (वरुणां सुखे) समके क्षेत्रमें स्थित है जो कि (विपण्णः) निराणम् है, अर्थात् जिसमें भी लोक आकर स्थित होते हैं । (एवं अर्धं न) है कि एक अर्धपर अर्धपर होकर स्थित होता है इसी प्रकार (अमृतम् = अमृतादि) के सब अमृत मह अमृतादि (अमृतादि) विषके आगममें स्थित हुए हुए हैं । (न) जो कोई (तद्) इन कर्षणक चरनेको (विपण्णः) कभी प्रकार नामक है यह (इह) यहाँपर हमें (मवीतु) इन लक्षणों में निवेदन करे । आदि नाम का भीकका है, जो कि इसके निरांतर हो करके यहिष्ट को बाहिर निकल जानेसे रोक्नेके लिए कहाई जाती है ।

एक मंत्रमें हमें इसका और पता चलता है कि पूर्व मंत्रमें निर्दिष्ट तीसरा पुण्योक्त कि जिसमें पितरों की निवास है वह एवं क्षेत्रमें परे होता हुआ कम क्षेत्रमें स्थित है अर्थात् कम अन्त में इस पुण्योक्त में है । पितर यन्त्री प्रजा हैं तथा कम अन्त

का राधा है यह बात आगे पककर हमें पता चलेगी । यहाँपर यह बातका निर्देश मात्र है ।

इस मंत्रमें यम क्षेत्रमें स्थित पुण्य विवेकन 'विप-वाम्' दिना है । अर्थात् उस क्षुमें वीरगाय आकर निवास करते हैं । इसी बातसे विष्णु विहित अन्तर्निवेशक मंत्र उक्त करता हुआ साधमें पितरोंका पुण्योक्तमें जाना बता रहा है ।

एव एव उवाकश्च निवस्यन्माच्छ्रयः ।

य सुखेणो वया वया वामंभिरसो वसुः ॥

अर्धं १४॥१४१॥ ४

अर्ध- (एते) वे पितर (इतः) यहाँसे (वयं वा अमृतम्) ऊपर को चले हैं । (विपः वृद्धादि आहवन्) और पुनः पुनः पर प्रह्वन स्वासीपर-चले हैं । (वया वया) जिस प्रकारके मार्गसे कि (सुखेण) सुख क्षेत्रमें जाने की (अमिरका) अमिरका पितर (यां) पुण्योक्तों (प्रवसुः) गए हुए हैं ।

अन्त्येष्ट के विशेषणसे हमें इसका पता चलता है कि पितर पृथिवी अन्तरिक्ष तथा वायु इन तीनों क्षेत्रोंमें निवास करते हैं । इसी परिष्कार को विष्णु मंत्र प्रभावित कर रहा है । इस मंत्रमें तीनों क्षेत्रोंका वर्णन है ।

ये वा सितुः सितरो वे पितामहाः य वासिबिद्ध-

वर्णनस्थितः । य वासिबिद्धः पृथिवीसुत का

तेजः सितुम्नो नमसा विभेन ॥ अर्धं, १४॥१४२॥

(वे) जो (वा सितुः पितरः) हमारे पिताके पितर हैं (ये) और जो (पितामहाः) उनके भी पितामह, हैं (ये) जो कि (य वान्तरिक्ष वासिबिद्धः) निवासक अन्तरिक्ष में स्थित हुए हैं और (वे) जो (पृथिवी वत यां) पृथिवी तथा पुण्योक्तों (वासिबिद्धः) निवास करते हैं (तेजः सितुम्नः) उन पितरोंके किंवदन्ति (वमसा विभेन) वमसाकर एवंक पूजा करते हैं । यह मंत्र सर्वत्रैव अधिक स्पष्ट है । यह पितरों का तीनों क्षेत्रोंमें निवास होना स्पष्टतया प्रतिपाद्य कर रहा है ।

४ 'पितृलोक-पिताका कुल वा पर ।'

इन कर्षणक सितुको के विषय हमें यहाँ पर एक ऐसा भी मंत्र मिलता है जिसमें कि सितुकोका अर्धं पिताका पर वा पिताका कुल प्रतीय जाता है । मंत्र इस प्रकार है-

उवाचीः कन्धका ह्यथा सितुकोका वति वतीः नव

वीक्षामस्युत स्वाहा । अर्धं १४॥१४३॥

(इमाः) ये (लक्ष्मी कम्पसाः) पति आक की कम्पना करती हुई खेमावमान कम्पन (पितृलोकात्) पितृकुलसे [पति करीः] पतिके पास जाती हुई (स्व—आहा) लक्ष्मणानी हाथ [रीखा] रीखाको (लक्ष्मण) हैं ।

नियम मृत आदिकी किताब का नाम रीखा है । बहोपर पितृकुल को पितृलोक के नामसे कहा गया है ।

८ पितृलोक—पितरोंका क्षेत्र ।

विम्ब मंत्रमें पितृलोकका अर्थ वैजिक भूमि है । विज भूमि में संक्षारपरसे रहते लोके आते हैं । उस भूमिका नाम पितृलोक है कहा कहा गया है ।

पंचांग कृतिपादमणि कोकेय संवितम् ।

म दातोप जीवति पितृणां कोकेऽस्मिन् ।।

अथर्व ३।२९।४ ।।

[पंच अ—तु] पाँचों लोको (ब्रह्मलोक, आर लोको तथा पंचमा विषा) को व लक्ष्मणानीके अतएव (कोकेय संवित) अथवा द्वारा संवत [कृतिपाद मणि] हिंदकोको [इवाके—पाके धरलक कर भावना [मदाता] देवताका [पितृणां लोके लक्ष्मी उपजीवति] पितरोंके क्षेत्रमें आकर जीवता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस मंत्रमें पितृलोक का अतिमान पितरोंका क्षेत्र है ।

पितृलोकके सम्बन्धमें बहोपर इतना ही विशेषण पत्रित है । अब हम पितृनाम पर इसी प्रकार संक्षेपसे प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे ।

पितृनाम ।

पितृलोककी स्वपना के अनुसार हमारे धाममें वह लवाक उपस्थित होता है कि इन लोकोंमें कम और ऐसे अर्थात् कि लोको हाथ पितर जाते हैं । इस धुमेली लाकसे अन्य लोकोमें जानके लो मार्ग है । जिस मार्गसे पितर जाते हैं वह पितृनाम मार्ग कहलाता है । तथा जिससे देवलोक जाते हैं वह देवलोक कहलाता है । इसी साधन विम्ब मंत्र द्वारा रखा है । मंत्र इस प्रकार है—

हं पुत्री अन्तव पितृनामहं देवानामुत्तमार्गमाह ।

आत्मानामहं विप्रमेव उत्तमं विदुः पितरं मातरं च ॥

मंत्र १ । ८८।१५ ।।

पञ्च अ १९।४०।।

(मातामां पितृणां तव देवानां) मनुष्यों पितरों व देवोंके (हे स्त्री) हो मार्ग (देवनाम और पितृनामनाम) (अन्तमर्ग) मैंने सुने सुने हैं । (आत्मां) हम लोगों मार्ग द्वारा (हर एवम निर्ध) वह पितृनाम विद्व (वत्) को कि (पितरं मातरं च अन्तः) इस सु विद्या और पृथिवी मातृके बीचमें स्थित है (स एतं) अन्तमें प्रकर गति करता रहता है । अर्थात् हम मार्गसे आत्मापमन होता रहता है ।

एवं इस मंत्रसे इतना पता चलता है कि देवनाम और पितृनामनाम दो मार्ग हैं जिसका आत्मागम होता है । इस अतिविश्वमें कुछ मंत्र ऐसे मिलते हैं जिसमें कि पितृनाम मार्ग से जानेका निर्देश पाना जाता है । है उस मंत्र नीचे दिए जाते हैं ।

आ रोहस जमिनीं जातवेदसः पितृनामै सं व आ रोहपाणि । अन्त्याह वनेष्वेतिहो हन्वावाह ईक्ष्यं कुक्षं सुकृतां चत कोष ॥

अथर्व १८।१।१।।

(जातवेदसः) हे अग्निमी ! तुम (जमिनीं जातवेद) अथवा उत्पन्न करनेवालीके पास पहुँचो । मैं [वः] तुम्हें (पितृनामैः) पितृनामनामोंसे (सं आरोहपाणि) अन्तमें प्रकर पहुँचाता हूँ । (इतिहो हन्वावाह) जिस हन्वावाह वस्त्र अग्नि (हन्वा = हन्वावि) हन्वाको [अन्त्याह] वस्त्र करता है । हे अग्निमी ! (कुक्षः) तुम निक्षकर [ईक्ष्यं] पक्ष करनेवाले की (सुकृतां चत) मंत्र करने करनेवालोंके कोषों (चत) पारन करी अर्थात् वहाँ डके केनालो ।

अग्नि और पितरोंका एक विशेष सम्बन्ध प्रतीत होता है । वह संस्मृत होता है वना है इसपर विस्तारसे विचार करने अग्नि व पितर इस धर्मिक के बीच करे । वहाँ पर जो विश्व पितृनाम मार्गके ही अन्तव दे रही लोके में आने हम विचारने कि अग्नि पितृनाम मार्ग के भी जानता है ।

येति येति पवित्रेऽप्यर्धेऽपि यथा वः पूर्वं पितरां पर्वतः । उषा राजाणां स्वधवा मदन्ता वम वदवाति वदमं च देवम् ॥

॥ अ १ । ११।१॥

वही मंत्र कोकेय पाठवेद से अथर्ववेदमें विम्ब प्रकरसे

आता है—

मेदि मेदि पथिभिः पूज्यैः वेदा से पूर्व पितरः पोरयाः।
इया राजाना स्वययुता मन्त्रो यमं पर्यासि वरुण च
देव ५ अथर्व १८११५७
(यम) यमो (यः पूर्व पितरः) हमारे पूर्व पितर (पोरयाः)
नर हर हैं यमो (पूर्वभिः पथिभिः) पहिलेके मागों द्वारा
(मेदि मेदि) ऐ. य. । यमो (स्वययुता) स्वयसे (मन्त्रो)
एक ऐसे हुए (यमो राजानो) दोनों राजा (यम वरुण देव
५) यम और वरुण देव को (पदपठि) देव ।

इस वरुण के मंत्रों से पता चलता है कि पितरों के अने के
मंत्र पितृवाक्य के नाम से प्रख्यात हैं । इसके सिवाय एक मंत्र
देख लो है जिसमें कि पितृवाक्य मार्गसे अनेका भी उल्लेख
किए गए हैं ।

या याव पितरः सोम्यासो गभीरैः पथिभिः पितृवाक्यैः ।
अमुरमम्यं वृषतः प्रजां च राक्षस पोषैरभिजाः सव
यम् ॥ अथर्व १८११५७

(सोम्यासः पितरः) हे सोमपान करनेवाले पितरों ।
(गभीरैः) गंभीर (पितृवाक्यः पथिभिः) पितृवाक्य मार्गोंसे
(वृषतः) बरसते । (अमम्यं अमुरः प्रजां च राक्षस पोषतः)
हमारे सिद्ध अमुर्य प्रजा तथा वनस्पति को । (पोषैः) अम्य
इति यो (यः) हमें (अभिषक्त्यर्थ) चारों ओर से
पुष्ट करो ।

इस मंत्र में पितरों के पितृवाक्य से आकर आमु प्रजा आदि
ऐसे उल्लेख हैं । इसके अतिरिक्त निम्न मंत्र में भी पितृवाक्य
का उल्लेख मिलता है ।

अमुना अमिममनुनाः परमिन् वृतीव कोके अमुना
रथम् । ये देवयानाः पितृवाक्याश्च कोकाः सवन्ति
यवो अमुना आ क्षिपेत् ॥ अथर्व ११११०१३ ॥
(अमिन्) इस लोक में हम (अमुनाः) जन्म रक्षित होकर
(रथम्) पर लोक में (अमुनाः) हम अमुना होकर । तथा
(वृतीव कोके) तीवरे लोकमें (अमुनाः) लक्ष्यरहित (स्वयम्)
हैं । (ये देवयानाः पितृवाक्याः च कोकाः) या देवयान व पितृ-
वाक्य दोनों हैं (यवो यवः) वन एवं मागों में (अमुनाः)
जन्म रक्षित हुए हुए (आ क्षिपेत्) विचरन करें ।

इस मंत्रों को प्रचारका ज्ञान है । (१) भौतिक यम वेद
को अने प्रकार केना । (२) वैदिक "जादूयाना वा मन्त्रादि
निर्बन्धन" पारते । प्रचारकों केनेमैं वनेक दैवीय प्रजा
१० (अ. पु. भा. कां १८)

स्मिन्मः इति' (टी. उ. १११३ १५५) अथान् तीन प्रकारका
वैदिक ज्ञान ऐसा होते ही मनुष्य पर चढ़ता है वह तीन प्रकारका
जन्म अविच्छेद देवयान तथा पितृवाक्य है । प्रचारकों के पावनत
कविज्ञान उतरता है वह करमसे देवयान उतरता है तथा
सतानोपस्थिते पितृवाक्य च मनुष्य मुक्त होता है । निम्न मंत्र
पितृवाक्य मार्गका उल्लेख करते हुए यह भी दर्शाते हैं कि केन
पितृवाक्य मार्गको जानता है और केन नहीं ।

यं स्वा चावापुमिनी य आपसरयता य त्वा सुत्रवीमा
अजाय । पम्पायाम् प्र विद्वन् पितृवाक्य पुमश्च समिपा
नो विभाति ॥ अ. १ ११०॥

हे अमे ! (य त्वा) जिस सुत्रको (चापपुमिनि) पुष्पाक
और पुमिनीलोक समस्तः अग्नि और आदिन रूपसे पैदा करते
हैं और (य त्वा) जिस सुत्र (व्यापः) जल सिद्ध रूपसे
पैदा करते हैं, और (य त्वा) जिस सुत्रको (पुमनिमा) उद्यम
रथाश्च (लब्धा) प्रजापति (अजाय) उत्पन्न करता है वह
ए (पितृवाक्यं पन्था) पितृवाक्य मार्गको (अनु प्र विद्वन्) अच्छी
प्रकारसे जानता हुआ (समिपायः) सुप्रवर्तन विवा हुआ
(पुमन्) दीक्षितका होता हुआ (विभाति) प्रकाशमान है ।

इस मंत्रमें अधिकसे पितृवाक्य मार्गका ज्ञानशक्त्य बताया
गया है । इस पूर्वही विवेच कर आए हैं कि जन्म व पितरोंका
मिक्षिण संक्रमण है । उस संक्रमण पर विधाय विचार अंग दिया
जायगा । अग्नीषो कोकर और अन्य पितृवाक्य मार्ग जानता है
वह निम्न मंत्र दिखाता है :-

स य एवे पितुषा मासेवापिच्छो तुहाति ।
प्र पितृवाक्य पन्थां ज्ञाति प्र देवयानम् ॥
अथर्व १५१२१४ ५

(स य) वह जो (एवं) उपराक प्रकर (पितुषा
मासेव) विद्वान् सक्षमती अतिथक (अतिवृष्टः) आका दिवा
हुआ (तुहेति) हाथ करता है वह (पितृवाक्य पन्थां) पितृ-
वाक्य मार्ग को (देवयान) देवयान मार्ग का भी अच्छी प्रकार
जानता है । इसके प्रतिज्ञा-

अथ य पूर्व पितुषा मासेवापिच्छो तुहाति ॥
य पितृवाक्य पन्थां ज्ञाति य देवयानम् ॥
अथर्व १५१२१४ ५ ६

जो उपरोक्त प्रचारक (पितुषा मासेव) विद्वान् प्रवृत्त
(अतिवृष्टः) य आका दिवा हुआ (उ १) दावक ।

हे । वह (न पितृवाच पत्नी प्रजावाति) न तो पितृवाच मार्ग को ही मन्त्री माति जानता है और नहीं (देववाच) देववाच मार्गको जानता है अब पितृवाच मार्ग किसे प्राप्त नहीं होता वह नीचे दिया हुआ मंत्र बताया है । मंत्र इसप्रकार है—

देवपीशुवरति मर्त्येषु घरपीशो भवदरिभयमुपायम् ।

को ब्राह्मणे देववन्दुं हिमसि न स पितृवाचमप्येति
कोकम् ॥ अथर्व ५५.१८.१३३

(देवपितुः मरपीशः मर्त्येषु वरति) देवीकी हिंसा करबोधाका घहर जाना हुआ मनुष्योंमें विचारण करता है । वह (अस्थि भूवात् मरति) हड्डिकोई बहुततलबाना होता है अर्थात् शरीर में मोटादिके व रहनेके ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इसके शरीरमें हड्डियां ही हड्डियां ह और अतएव देवकेमें विनाच हड्डिके और कुछ नहीं बीजता । (वा) को (देववन्दुं ब्राह्मणं हिमसि) देवीके वन्दु ब्राह्मणकी हिंसा करता है (वा) वह (पितृवाच कोक) पितृवाच मार्गक (अपि) भी (न एति) नहीं प्राप्त होता ।

इस प्रकार हमें इतने मंत्रोंसे पता चलता है कि पितृवाच एक वाच मार्ग है जिससे कि पितृवाच एक कोकसे उड़ी कोकमें जाते जाते हैं । अब वह मार्ग कोकक है वह मंत्र हमारे धामने वपस्थित होता है । इस प्रकार बोधाका प्रकाश दिव्य मंत्र का रहता है । इस पर बोधाका प्रकाश अपि व पितरके प्रकाश में ही जाकेना । मंत्र ह्य प्रकार है—

वा मरतं शिखरं वज्रबाहु अस्मीं इन्द्रास्मी अवतं
शचीमिः । इमे तु ते रश्मयः स्रवन् न सिः सप्तितं
पितरो व आसन् ॥ अ. ११.१ १५७

(वज्रबाहु इन्द्रास्मी) वज्रवात् पुत्राद्योनाके इन्द्र और अपि (अस्मात् आमरतं) हमारा अस्मी प्रकार मरण करे, (शिखरं) बिना है और (शचीमिः) जगत्) जगती धाकितोसे हमारी रक्षा करे । (तु) विषयके (स्रवन् इमे ते रश्मयः) सूर्य को वे के किरनें हैं (मेमिः) जिससे कि (वा) हमारे (पितरः) पितर (सप्तितं आसन्) सप्तितं हैं ।

महापर भावा हुआ सप्तित काव्य बने महत्त्व का है । इसी पर बोधाका विशेष विचार करें कि क्योंकि जो कुछ ब्रह्मात्म निरूप्य का प्रकटा है वह इहोपर आश्रित ॥ सप्तितं किमप्यतो प्रागुसे बोधाधिक तन् प्रकाश करमेके सित वकता है समान व तट सित व इति सप्तितं अथवा यह सित सप्तितं ।

अतिके तीन अर्थ हो सकते हैं ब्रह्म नमन और प्रप्ति । इस प्रकार इस वाक्यके तीन अर्थ हो सकते हैं । (१) यह धमन (२) यहप्रप्ति (३) ब्रह्मज्ञान । अथमन और यहप्रप्तिमें विशेष भेद नहीं है क्योंकि यहधमन से यहप्रप्ति होती है । अब हमारे धामने हो एक केन रहते हैं (१) वह धमन वा यहप्रप्ति और (२) यहज्ञान । इन दो पक्षोंमें के कोवसा अर्थ केना चाहिए वह विचारना है ।

विषयकार वाक्काचार्यने सिद्ध क है पत्र ३ कण्ड १४ में कुशविहीय कुशवस्तो रश्मिना' इत्यादि अ. १.१४.१३ की व्याख्या करते हुए 'कुशाभि कित्वां करताः इस वन स्मृदाय में व्याप्य हुए अग्निपूर्वक सित कव्यका अर्थ प्राप्ति एक किन्त है । वे 'कुशाभि स्मि करताः' का अर्थ करते हैं नवाभि प्राप्ति कुपयः ।

छात्राचार्य के सप्तितं का अर्थ यह प्राप्त्यन्तं स्वानं देवा किया है । यह कव्य उपपरवाके आन्ध्र व्याप्यो' वागुसे 'अस्मिं तनैकेकेकमरवना, इस वाक्य 'रश्मि' प्रकाश करके 'पुनोदतंति नवोपदिह' से विमोच करके सप्तित संज्ञित कव्य व्याकरक्युहार किन्त किया है । छात्राचार्य सप्तित को छिद्दि अन्य टीसिनेकी करते हैं । वप क्यवासे इस वागुसे इन् सर्ववागुना' के इन् करने के अपि कव्य कवाकर, उपेमाका सप्तित ।' अर्थ नहीं वपरीत ।

इस ही वपरीत आचार्यों के मतप्रसार सप्तित का अर्थ यह—धमन वा श्रद्ध—प्राप्ति है । इस कवर पितृकोक के मंत्रों में देव आर हैं कि पितर कुकोकमें पितृवाच मार्ग के जाते हैं । और वहां इस मंत्र में हम पाते हैं कि पितर सूर्यकिरण के धाव जाते हैं और कवसे धाव वहां पहुचते हैं । अतः इहो हम इस परिभासा पर पहुच सकते हैं कि पितर पितृवाच इह पितृकोक में जाते हैं और वह पितृवाच मार्ग समय है सूर्य-किरणें हैं । इस पितृवाच मार्ग पर विशेष प्रकाश कति व पितर ह्य प्रकारन में काव सचने ऐसी हमें जाना है । वहां पर वह केतव कर्मों किया है । पितृवाच मार्ग विशेष विचारणीय है अतः इसके विषयमें एकवम विध्वनपूर्वक कवना कटिन है । वाक्य वन इसपर विचार कर कुछ ब्रह्मवा कर्त्तव्य तो अपेक्ष बोध ।

परसे होता है । सु पूर्वक न्त करो । सु+कर = करा । अथवा सुतो भाव उपस्थितो अर्थात् यन्त्रादि प्रकाशमात्रोंके प्रकाशित करवैवासा । अथवा 'सुतो माया शीतोष्णं पुन्र होमेसे पूर्वक माय स्वः है । इसीसे बुद्धि के भी व्याख्या होवर्हि ऐसा समझना चाहिए ।

इस मंत्रमें पितरोंकी पूर्वक जानविवाक्य कहा गया है; अतः इससे वह अनुमान्य मिश्रण का संकल्प है कि संस्य है पितर पूर्वकोंने भी निश्चय करते हों । पितरोंकी पूर्वसे बलिष्ठता प्रतीत होती है । इसके अतिरिक्त हों पितृव्याय के प्रकरण में एक ऐसा मन्त्री सिद्ध है जिसमें कि पितरों की पूर्वकिर्तनीय काय ग्रहप्रतिष्ठ व ग्रहमन्त्र बताया गया है । वहीपर पितरोंकी पूर्वके जानविवाक्य बताया गया है । अतः इस दोन्नी बातों को सम्मेलन रखकर निश्चयसे देखा प्रतीत होता है कि पितर इत्थिनी कोश से पूर्व किर्तनीय काय पूर्व ओपमें पाते हैं और वरुधि फिर बुद्धिमें स्थित पितर ओपमें पाते हैं । अतः धन्य है वही पितृव्याय मार्ग हो । उपरान्त दोन्नी मन्त्रोंके भावक निम्न मंत्र और भी स्पष्ट रूपमें पुष्ट कर रहा है—

अभिदत्तान् व कुम्भवेमिश्रस्यं ककुभेभिः पितरो वाम विष्णु । रात्रौ तमो अवपुन्योत्तिरहम् बृहस्पति सिंघद्वि विवज्रा ३ अ १ १८/१७ तथा

अथर्व २ १९/११

(बृहस्पति अग्नि मित्र) काय बृहस्पतिसे मेवके लोक मित्रा और (याः विदद्) पूर्व किर्तनीय प्राप्त किया तब (ककुभेभिः इत्यर्थ अथ व) जैसे पूर्वके अन्नभारोंसे ककुभे पोथेके कोमान्द्राव किया जाता है वैसे (पितरः) पितरोंने (ककुभेभिः का अर्थिक) पितरोंने ककुभों द्वारा पुष्पकेके वीर्य किया व कोमान्द्राव किया । और फिर (रात्रौ तमो अवपुनः) रात्रिमें अवपुनको रका तथा (अहम् प्यातिः अवपुनः) दिनमें प्रकाशको स्थापित किया । अतएव दिनमें प्रकाश होता है और रात्रिमें अंधेरा । इस प्रकार इस मन्त्रमें प्रकाश व अंधेरा पितर करते है वह दर्शाया गया है ।

आभिरभूयहि मावोवमेयां विच जीवं वमघो विरमोधि । महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तामायानुधः

पण्या इक्षिणावा अर्द्धि ३ अ १ ११ अ १ ३

[एषां माधेन महि आभिरभूय] इस पितरोंका मन्त्रा संवन्धी महान् प्रकाश प्रकाश हुआ और मन्त्र होकर उभने [सिधं जीवं] कोर दीक्षाकी समस्त विरमोधि] अन्धकारसे

हुआवा । [पितृभिः दत्तं महि ज्योतिः आभात्] यह पितरोंने दिया हुआ प्रकाश आभा और आकर उभने [इक्षिणावा तथा पण्याः अर्द्धि] इक्षिणा का विस्तृत मार्ग दर्शाव ।

माधेन का अर्थ है मन्त्रा अर्थात् इन्द्र संवन्धी प्रकाश पूर्वकी मेव साधने इन्द्र उक्ता होती है अर्थात् पूर्व वैश्रवाचने इन्द्र कहलाता है । अतएव माधेन का वह अर्थ पूर्वक प्रकाश ऐसा किया है । इसके अतिरिक्त मन्त्र प्रकरण भी इसी अर्थकी पुष्टि करता है ।

इस मंत्रमें पितरोंके प्रकाश देनेके महत्त्वको दर्शाया गया है इस उपरोक्त मन्त्रोंके देखनेसे हमें स्पष्ट पता चलता है कि पितरोंका काम ज्ञानात्मक उत्पन्न करना सम्पन्नको पुष्ट करने पूर्वप्रकाश प्राप्त करना, तथा बादलोंको तीव्र प्रकाश कथसे छिने हुए प्रकाश को प्राप्त करना है । बुद्धिके व्यक्तित्व छिन्नमित करके विद्यमान ब्रह्मात्मा पितरोंका अर्थ है । इस प्रकार पितर पूर्वप्रकाश प्रदाता है वह हमसे देखा ।

३ पापसे छुड़ाना

अरात्रान् ज्यो रक्षाधि धर्मान् पुनर्वसवान् पितृ मृगयैकधत्त इमस्ते नो मृगयन्महता ॥

अथर्व ११/११

[अरात्रान्] व इत्य देवताओंके [रक्षाधि] राक्षसोंके, [धर्मान्] धर्मोंके [पुनर्वसवान्] पुनर्वसवोंके और [पितृ] पितरोंके [ज्यो] कथसे है तथा [एकधत्त] सम्पूर्ण एक ही मृगयोंके [इम] कथसे है कि [ते] ने धन [य महेता] हमें पापसे [मृगयन्तु] छुड़ायें । वहीपर अन्त्येष्टि काय पितर भी पापसे छुड़ाने हैं वह दर्शाया गया है ।

४ सुख व कष्टमात्र करना ।

विष्वाग्निह वमघदे वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वालदेव धर्षिर्नो वज्रिप्रमरीचयोभिः सुसेवाद्यः पितरो मुखावा ॥

अथर्व १८/११

हे (विष्वाग्निह) धनके दिव, (वमघदे) हे वसिष्ठ प्रकाशक (वसिष्ठ) हे अतिवच भद्र (माहात्र) हे वसन्त बारह (वीर्यम) हे वसन्त स्तैष्य (वालदेव) हे प्रकाशनीय अन्धकारको (सुसेवाद्यः) वसन्त तथा स्तुति करने योग्य (पितरः) पितरों ! तुम (वा मुखावा) हों मुझे करो क्योंकि (धर्षिः वज्रिः) वसन्तिवज्र अग्निसे (वमघिः)

कर्मों से हमें (कर्मभूमि) ग्रहण किया है अर्थात् वह हमें ज्ञान दे रहा है।

पञ्चम सर्गः = छर्हिः = घर । सर्गिञ्च अर्थ घर करने पर
 छर्हिञ्च नियन्त्रित्यन्य करवा पञ्चम । छर्हिः = छर्हिम् । इस
 पञ्चम में सुदीन पाञ्चम अर्थ होया कि ' कनो कि अजिने
 हयरे कर्णोसे कर्णोसे घर किया है अतः हे उपरोक्त सिधेवन
 निशिह तिलो हयें सुधी करो । ' अजिञ्च अर्थ है जिसने
 छर्हिं ठार कही छे । (विर ३ । १७) इस मंत्रमें विधा
 निज बनरति अरि हयरे तिलो छे विधेकता बर्णोते है ।

सं ॥ सत्यस्य पथो भवन्तु सं नो बर्हन्तः समु
पन्तु यथाः । सं नः कामयः सुहृन् सुहस्ताः सं नो
बन्तु पितरो हवेयु ॥ मन् ॥ ७३५॥१२

तथा नवम् १९११११

(आत्म पतनः) । आत्म की रक्षा करनेवाले (या हैं मन्त्र-
मु) इमी कमान करें । और (जयन्तः वा न) बोले
हमारे किए कमानकारी हों । (उ) और (पावः स
कम्) यौं हमारे किए कमानकारी हों । (सुष्ठुतः सुष्ठुताः
स्यः ॥ ४) मेरा कमानके कार्यकुशल काीपर जोप हमारे
किए कमानकारी हों । (हेवेदु) बुझाए जानियर (वितरः
या हैं मन्त्र) वितर हमारा कमान करें ।

(विष्णु २।१५।)

५. गर्भ चारण करना

मत्स्यपुराणः पृथिव्यादिषु ब्रह्मा विनाशे सुवर्णमि
 त्तमः । मातृपुत्रीयो भूमिरे ब्रह्म मातृत्वा नृपकृताः
 विष्टो गर्भमन्त्रः ॥ ५८ ॥ १८१३

(वर्मिनः) बलमी - मुक्क - प्रसिद्ध [लवणः पुष्पिनः]
 लवणे इत्यत्र लवणैवाका सूर्य [अलवणत्] लवणे प्रकाशित
 करता है । [वाक्मुः] भूतजातके किए अवधि कथना करता
 हुआ लवण [लवण] लवणों का विषय करनेवाका सूर्य
 [मुक्कवि विमर्शि] मुक्कों का धारण पेषण करता है ।
 [लवण यमका] इसकी मालाके [मायविषः] मायलीयन
 [यमि] परलोभ विषय करते हैं और [नृपलवणः पितरः]
 नर्य बालपुः] मनुष्योंके देहनेवाके पितर यम्य का धारण
 करते हैं ।

है। पूर्वीधरने बच्चों को अपने गर्म से बचाने की कोशिश की है। पूर्वीधरने बच्चों को बतलाया है कि गर्म से बचने के लिए क्या करना चाहिए।

किरणों द्वारा जब ऊपर के जाकर पुनः इष्टि के समान परधना प्रसिद्ध हो है ।

व्याघ्र पित्रो नमो कुमारं पुष्करलवम् । नमो
पुष्करोऽस्य ॥ वहुः अ १।३१ ॥

[पितरः] हे पितरो ! [पुष्करस्रज कुमारां गर्भे आवात]
पुष्करस्रज कुमाराको गर्भमै बाएण करो । [ववा] जिससे कि
[यह पुत्रवत् आयात] यहाँ यह पुत्र्य वत जाते ।

इस मंत्रपर आभ्यं करते हुए उक्त्यर्थार्थ तथा महापराकार्थने पुष्करसङ्ग कुमारका जर्ज कश्चिनी कुमार जोकि ऐसीके पैर हैं उनकासा सुन्दर कुमार ऐसा किया है। पितरोंसे प्रार्थना की गई है कि ऐसीके पैरकासा सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो। स्वामी दयामयी ने इस मंत्रपर आभ्यं करते हुए पुष्करसङ्ग कुमार का जर्ज "विद्याप्रह्वार्थ कुञ्जकी साक्षात् करणा किन्ना हुआ कुमार ऐसा किया है। इस अर्थाद्विष्टार वह मंत्र विद्याभ्यासके प्रारंभके समयका वर्णन करता है ऐसा प्रतीत होता है तथा इससे निम्न परिचाय सिद्धके वा सङ्गते हैं—

१ यहाँ व्यापारियों के लिए पिटु सड़क का प्रयोग किया गया है।

(९) विद्याभ्यासके प्रारंभ करनेके लिए शुरूके पाठ ज्ञाते हुए विद्यार्थी की दृष्टिकोण-पाठ्य-ग्रन्थों में सम्मिलित ज्ञान-व्याप्ति ।

(३) बहुवचनान्त वितृबन्ध एकही समयमें एक शिष्य के अनेक आचार्यों का होना पर्याप्त है ।

पाठकों के सामने हमने ऐसी भाषाओं का विश्लेषण करा दिया है। इस पर विषय लिखार पाठक स्वयं करें।

६ पितरोंका संतति पढाना आदि

द्विधा सूत्रयोश्चैव स्वर्चिदनाकारवन्तः तृतीयेन
कर्मभाः । एषा प्रज्ञा विवरा । पिम्ब छद्म आचरे-
त्प्रायश्चित्तम् आचरन् ॥ ३ ॥ १५३॥

[सूत्रम्] अविरलको गुण वैशिष्ट्यं [अतुरं स्वर्गं] वसनात्
 पु कोको जातेनाह अविरलको (तुरावैव कर्मणा) प्रयो-
 तयति वासक सीधे कर्मसे (विना) री प्रधारका अन्त न
 कवकात्मा (अस्वापवन्त) स्वपित विना । (वितरः)
 वितरि (र्वा प्रजा) अपनी प्रजाको उपपन्न करते (अवरोध
 शिष्टे छान्दः आद्यः) धर्मिणाधी संतर्पित यैविक ऐक्यक र्वा
 पित विना यौर हव प्रधार (तन्तु आतर्क) संतर्पित विस्तृत
 वसना ।

वित्त सचिपति बहादुर बसमें वैज्ञानिक ताल स्थापन करत है,
ऐसा इस मंत्रमें बतलावा गया है ।

७ मनके प्रत्यावर्तन अर्थात् पुनर्बन्धनमें

पितरोंकी सहायता !

पुष्पमः पितरो ममो ददातु देवतो जगः।

जीव ज्ञानं सुखेयमहि ॥

॥ १ ॥ १५७५ ॥ वर्षा ॥ ३१५५ ॥

[न पितरः] हमारे पितर तथा [देव्यः अथाः] देवीका
 धन [पुत्र न मयाः ददातु] पितर हमें सबका देवे । हम
 (यदि प्राप्ति सम्पत्ति) सम्पत्ति हमें सबका देवे ।

यस समय वह सबके लिए प्रमुख हुआ हुआ है। वह मंत्र
पुरस्कारों पर प्रकाश डाला हुआ है। पितृवंश सबके इतिहासों
के में प्रकाश होना शुरू रहा है।

मधोन्वा इवामहे वाराससेव सोमेव

पितृणां च सम्प्रदायः ॥

9 1961

पह पत्र बोलेसे पाठमेहसे बहुरेहमे विम्वप्रकर से आया
हना है—

सबसे ज्यादा लाभ है भारतीयों के स्टोमेंस

पिपुष्वा न सम्यग्भिः ॥

पृष्ठ सं ३१५३

हम [वारंविधेय शोधन] वर विषयी प्रस्ताव करते हैं
 ऐसे घेन [वक्रमा] से [व] शीर [पितृणां मगमः]
 विटर्णे मनन करे वंन्य स्तेजोति [नु] विषयसे [मगः]
 मयकी [वा वृषामरे] वक्राते हैं ।

कतुर्बेधमें सोमैव के स्वात्ममें । स्तोमैव ऐसा पाठ है ।

महापर स्तुतिदीप्ति ऐषा जगत् हीया। मन्त्रो वस्तुवि सोम
जगत्तु वज्रम्रासे हे नह हर्से पुनमसूय [नह न ३१]
से कता नकता है। महापर मन्त्रो प्रत्यार्पणमं सोम न पित
तौही स्तुतिर्लोको धामन वरुणा मन्त्रि। उपरोक्त दोनो मंत्रोंमें
मन्त्रो पुनः प्राप्ति पितरों द्वारा होती है नह स्पष्टतया दिखाना
मन्त्रा है।

८ पितरोंक स्तोत्र ।

वन्मुपु समना पिरा विदुषी च मन्ममि

अथाकस्य महादिभिर्बः सिन्धुनाम्नो

इमे सप्तस्वप्ता मण्यमा नम्यन्तामन्त्रके समे ॥

४ ६४१।३॥

[तं च समानवा यित्वा] तस्य बह्वन्वयी समान स्तुतिष्वे [५]

भार [तद्वृत्तं मन्माभिः विरचिते मन्त्रीय स्तोत्रं भर्ता स्तुति-
नोति तथा [नाभाकरं प्रकाशितमिः] नाभाकरे प्रकाशित
स्तोत्रोति [सुप्रसिद्धमिः] अथी प्रकाश स्तुति करता है । [नः]
जो [मन्माभिः] मन्माभिः वृत्त [तद्वृत्तं] तप अने तप स्वयं
विनोति उन्नत स्वामये प्राप्त वार्तामिः है । [वये] वयं
[मन्माभिः] जो हमसे है करता है । ऐसा सुप्रसिद्धमिः-कल्प
गोते पापपक्षय [वमन्माभिः] न है ।

इस संज्ञके द्वारा बता जा रहा है कि मिस्त्रोंके कोई काम स्थान है। वे स्थान अपना विशेष परिभाषा रखते हैं ऐसा नाथ विद जानेवाले संज्ञके प्रतीत होता है—

यह संय विरोध विचारणीय है। उपरोक्त संश्लेषी व्याख्या विरुद्धाचार वास्तव्यार्थके अपने विद्वत्तर्म हस प्रचारकी है।

४ स्वभिहामि क्षमायः। विरा गत्वा स्तुत्वा विदुषां
च मन्त्रिणैः स्तोमैः। आभासत्वं प्रकटयिष्ये ।

अदिर्गाधत्वात् बभूव । ब० एकदमावत्वाद्बुधोदये सप्त
 कृत्वाऽर्धेनमावत्वात् । स मध्यम इति विद्वन्मते ।

कविच पृथ भवती । वसन्ताप्रभके समे सुवसन्तके सर्व
देवो हिरण्मि बुद्धिवाः पापविष पापसंकल्पाः ॥

विद्वत् १ १५

हमने जो कार कर्ष किया है वह विस्फोटक है ।
 किया है ।

नीम लोत्रादे वल्लभो ह्यसि कुर्यादे पात्र ईक्षणं नष्टं होतुं ई
 ज्ञानात् पितरौके स्थानं यत्र ईक्ष्णोर्दो दूरं कुर्यादे वल्लभं नै,
 नह इव मंगलं कन्यका अभिप्रायं प्रतीतं होता है । इत्ये विमल
 पितरौके स्तुतिर्नये नीम क्वा विष्टेन क्षयं ई नह विमल मय
 पत्नीया है

येह वत् विपरिचय इन्द्र विद्या नाम कश्चितो
 यत्नम् । ये वायः सुदुर्वास्त्ये कश्चित् वत् ऐक्ये
 वारिडः ॥ नमः ॥ ५१६१॥

विचरः विद्यान्वि

प्रसिद्धि नावाऽऽप्राप्यति । स्तुति करते हुए हमारे पिछले वे काल
प्रत्यक्षजीव पक्षियों या नहीं को (अपश्यत्) प्राप्त किया ।
(वर्) नहीं कि (ले प्रकृष्टाः वाना) कि जप मुक्तों दोही
आनेवाली मीठ हैं । (ले अन्वा) धरे सब को है और
प्राप्त ही त (हि) निबन्धों (देवयत् ननु मयि) कर्म

परैराजे के किए वा स्तुति करनेवाले के लिए धनका संभावक बनाने विमान कर के देवता है ।

इस मंत्रमें यह बताया गया है कि पितरों ने स्तुति करके सब कुछ प्राप्त किया और जो कोई भग्न चाहे सो वह भी स्तुति करके प्राप्त कर सकता है । पितरों की स्तुति का एक नतीजा यह माना गया है । सब कुछ देवे मंत्र नीचे दिए बातें हैं किनमें से कि प्रत्येक मंत्र पितरों के लिए भिन्न भिन्न फल देता है ।

पितरों के दीर्घायु ।

यस्यैवा मां पितरः सोमनासो अजन्तम् देवा मनुष्यं पुत्रम् । अमुं वा प्रहरे वारयन्तो जरते मा जरन्ति नरान् ॥ १८१११

[सोमनास पितरः वा यस्यैवा अजन्तम्] सोम उपदान करनेवाले पितर मुझे देवके रूप में करें । [देवाः मनुष्य पुत्रे] देव मुझे मनुष्यों के रूप में देवके रूप में करें । [अमुं वा मां प्रहरे वारयन्तो] देवों के किए मुझे अपनी तरह छोड़ने हुए नरों को मारने के लिए, [जरन्ति मां] बिना काय पाय भिक्षा हो गया है ऐसे मुझमें [जरते] हत्या करने तक [नरान्] नरों के लिए बिना मुझमें जाने पीने की कृति न करने दो क्योंकि वे सब मुझमें मुझे पशु बना देंगे । नरों के मार दीर्घायु का देने के लिए करते हैं ये मंत्र ।

इस मंत्रमें पितरों से दीर्घायु के लिए कहा गया है । दीर्घायु देना व प्रत्येक को उसकी पूर्णवस्था तक पशु बना पितरों का कार्य है ।

पुनस्तु मा पितरा सोमनासः पुनस्तु मा विद्यामहा ॥

पुनस्तु मयिद्यामहा । पवित्रेण सतापुत्रा । पुनस्तु मा विद्यामहा पुनस्तु मयिद्यामहा । पवित्रेण सतापुत्रा विद्यापुत्र्यहमे ॥ १८११२

[सोमनास पितरः वा पुनस्तु] सोम उपदान करनेवाले पितर मुझे पवित्र करें । [विद्यामहाः वा पुनस्तु] विद्यामहा मुझे पवित्र करें । [पवित्रेण सतापुत्रा] पवित्र हो नरों की मातृके । अर्थात् वे नरों के विद्यामहा मुझे पवित्र की कर्म की मातृके हैं । वे ही नरों के मार पवित्र करने के स्वर्ग हो और इस प्रकार पवित्र करने का स्वर्गीय करण हुआ [विद्यामहाः मयि] मयि देने का मुझे कि मनुष्य की ही कर्म की है प्राप्त करें । पवित्र करने के अनन्त स्वर्ग करने की पूर्णता भी की का कर्म है, अनन्त नही ।

११ (अ. अ. अ. १८)

विद्य मंत्रसे ऐसा प्रतीत होता है कि पितर मृतको पुनर्जन्म दिते हैं । यम इस प्रकार है ।

यत्ते अर्च्यं प्रतिष्ठितं पराचैरपानाः प्राप्नो व त वा त परेतः तस्ते सगरय पितराः सवीडा माताम् प्रातः पुत्राभ्येक्षन्तु ॥ अथवा १८११३

[ते अर्च्यं पराचैः प्रतिष्ठितम्] वे ही मा भग उठता होकर हट गया है और [वः ते प्राताः अपानाः परेतः] जो वेता प्रातः का अपान कर चला गया है सरीर से निकल गया है [तत् ते] उस उपरोक्तों के अर्च्य वा प्रातः का अपान को [सवीडाः पितराः] साव रहनेवाले पितर [सगरयः] मित्रकर [माताम् प्रातः इव] [वहां सतीवदा प्रतीत होती है] जैसे मातृके का वही माता है उसी प्रकार [पुत्राभ्येक्षन्तु] फिर प्रातिपद करने के बाद फिर प्रातः अपान आदि तुझे दें जानि पुनर्जन्म दिते हैं ।

प्रातों के निकल जाने पर सरीर पश्चात्ति हो जाता है । वह उस क्षणमें काय वा मृत देह कहलाता है । इस मंत्रमें मित्रों के द्वारा प्रातों का पुनः समावेश करने का वर्णन है । इससे मृत को पुनर्जन्म दिते करने का विवेक इस मंत्रमें मिलता है । इस के विधान कोई सरीर का अवयव उठता हो गया हो वा हट गया हो तो उसे भी पितर की कृति न करनेवाले के रूप में देता जात होता है ।

सावधान्यार्थ न पश्चात् प्रातः का अर्थ इस प्रकार किया है- अर्थात् मृत के अवशेषित प्रातः । मोक्षार्थ सरीर । प्रातः मोक्षार्थिकरणसरीर प्रातः अर्थात् सरीर पुनः अर्थात् पुनः । अर्थात् जिसमें प्रातः जाने उसका नाम है प्रातः । मोक्षार्थ सरीरः प्रातः काय है नरों कि इसमें मोक्ष मोक्ष जाते हैं । अतः प्रातः अर्थात् मोक्षार्थिकरणसरीर के प्रातः न नि जाने सरीर के लिए देते हैं । मरने के बाद एक सरीर पुनर्जन्म सरीर देते हैं वह अभिप्राय है ।

इस प्रकार में सतेवसे इत्यादि पितरों के कार्यों के विषय में विचार्य प्रतीत है । इसके अतिरिक्त अन्य पितरों के कार्य वर्तमानके मंत्र अथ प्रकरणों में बताया जाने दिने न देंगे । समझें वहां उपपन्नता भविष्य हेतुके वहां न न वही दिने हैं ।

पितरों के प्राप्ति द्वारा कर्तव्य ।

इस प्रकरण के हम दो विभाग करें । प्रथम विभागमें हम मंत्रों के अर्थों के विषय में कि पितरों के लिए दान नदकर तथा आदि देन का वर्णन है । द्वितीय विभाग में पितरों के

सिए बह्म अथवा पितरोंसे बह्म का सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करे। इस दूसरे विभाग का शीर्षक पितर और बह्म होना । प्रथम विभागमें छोटे छोटे कई शीर्षक होंगे । इस विभाग का सामूहिकस्वरूप शीर्षक ऐसा करिग है ।

१ पितरों के लिए नमस्कार ।

'नमः' का अर्थ अथवा होता है परन्तु पितरोंके लिए आने हुए नमः का अर्थ नमस्कार ही है क्योंकि पितरोंके अथवा आध नाम स्वभाव है और अथवा बह्म पितरोंके लिए अथ अतिश्रेष्ठ होता है बह्म स्वभाव का प्रतीक होता है ।

इस पितृभ्यो नमो अस्त्यत्र के पूर्वार्थो व अथवा ईशुः । ये पार्थिव रजस्वाधिराज्य के वा नृणं सुहृन्मना विभुः ॥ अ० १ । १५। १ ॥ तथा

बहु अ० १५। १८

यही मंत्र अथर्व में बोधने पाठ्येवसे विष्णु प्रकाश है—

इह पितृभ्यो नमो अस्त्यत्र ये पूर्वार्थो व अथवा ईशुः ।

ये पार्थिव रजस्वाधिराज्य के वा नृणं सुहृन्मना विभुः ॥

अथर्व १८। १। १४

(ये) जो कि (पूजा) पूज्यकी पितर [ईशुः] स्वर्गको गए हुए हैं और [ये] जो कि [अथवा] अर्थात् नील कामक पितर [ईशुः] स्वर्गको गए हैं; [पितृभ्यः] अथ इव नमः अस्तु । तब पितरोंके लिए आज बह्म नमस्कार हो । [ये पार्थिव रजस्वाधिराज्य] और जो कि पितर पृथिवी कोपर स्थित हैं (वा) अथवा (ये) जो कि [नृणं] निम्नको [सुहृन्मना विभुः] उपासक वा नमस्कार प्रभावमें स्थित हैं उन पितरोंके लिए भी नमस्कार हो। अथर्ववेदमें विभु के स्थान पर विभु पाठ्येव है । बहावर के वा नृणं सुहृन्मना विभु का अर्थ ऐसा होना — अथवा वा कि पितर विष्णु के उपासक अथवा विष्णुकी स्थिति में हैं ।

यद्यो ब्रह्माय नमो अस्तु अथर्वे वम पितृभ्यः

उत ये नमस्ति । अथवायस्य सो देव कमणि

पुरो देव समा अतिष्ठतामेव ॥

अथर्व ५। ३ । १५

[ब्रह्माय नमः अस्तु] वमके लिये नमस्कार हो। [भूयसे वमः] भूमिके लिए नमस्कार हो । [पितृभ्यः वमः] पितरों के लिए नमस्कार हो । [उत ये नमस्ति] और जो कि ये बह्मते हैं अथवा वा वाचक (Leader) हैं उनके लिये भी नमस्कार हो । [व अथवायस्य देव] वा अथवाय अथवा पार अथवाय

उपन वा मार्ग को जानता है (त अस्ति) उस नमि का (अस्मि अतिष्ठतामेव) इस जीवके सम्बन्ध के विस्तार के लिए (पुरो देव) आगे रहता हूं अथवा उस एका अतिश्रेष्ठ पर। ये अपने सामने धारण करता हूं ।

बह्म वाचकत्वमस्यार्थ पूर्वार्थन बह्मरिचम् ।

अथवा सरस्वती वारि पितृभ्यः नमस्कारः ॥

अथर्व १। १५। १९

(यथा पूर्व इव बह्म वाचकत्वमस्ति अस्यार्थ) जब पहिले वह बह्म वाचकत्वमस्ति की पूजा करे [अथ] तब उसके बाद (नमि) हे मारी । [सरस्वती पितृभ्यः व] सरस्वती व पितरोंके लिए [वमः अस्तु] नमस्कार ।

इस प्रकार हममें देखा कि इन उपरोक्त मंत्रोंमें पितरोंके लिए नमस्कारका विचार है ।

२ पितरोंके लिए स्वधा ।

अथ वाचकिय वाचकत्वा सतिष्वात् वाचकिय

अथवायस्य वमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः

सुधये मे भूतस्तम् ॥ बहु अ १। ४ ॥

[वाचकिय वाचक] हे वाचको जीतनेवाली अस्ति ! [वाच करिचत्वात्वा] अथके प्रति जाती हुई सुहृन्मना (स मार्गि) हृद करता हूं । [देवेभ्यः वमः] देवोंके लिये नमस्कार हो । तथा (पितृभ्यः स्वधा) पितरोंके लिये स्वधा हो । [मे] मेरे लिए [सुधये भूतस्तम्] वमः आर स्वधा वह व पितृभ्यः देवेभ्यः हो । अथवा वमः और स्वधा सुहृन्मना रजस्वाधिराज्य हो ।

बहावर देवोंके लिए वमः और पितरोंके लिए स्वधा/वा विदेह है । वाच करिचत्वात्वा स्वधायस्य' से पता चलता है कि अथ पितरोंके लिए हृद नमस्कार ही प्रतीक करना चाहिये । अथवा यदि अथ पितरोंके लिए अथवायस्य हो ।

पितृभ्यः स्वधायस्यः स्वधा वमः । पिता

मयेभ्यः स्वधायस्यः स्वधा वमः । प्रपिता-

मयेभ्यः स्वधायस्यः वधा वमः । अथवा

पितरोंकीमहत्त्व पितरोंकीमहत्त्व पितर ॥

पितरः सुहृन्मना बहु अ १। १५। १९

[स्वधायस्यः पितृ व] स्वधा प्राप्त करना अथवा जीत [स्वधाय] है ऐसे पितरोंके लिए [स्वधा] स्वधा आर नमस्कार हो । [स्वधायस्यः पितरमहत्त्वः स्वधा वमः] स्वधा अथवा पितरमहत्त्वके लिये स्वधा और नमस्कार हो ।

[स्वधामिन्धः प्रवितामहेभ्यः स्वधा नमः] स्वधा कैमेवमं प्रवितामहे के लिए स्वधा व नमस्कार हो । [पितरः] हे पितृ मन्त्रो ! [अन्नं] उस स्वधाको खाओ [पितरः] हे पितरों ! [अममरस्य] उस स्वधाको खाकर आम्रमिष्ठ होओ । [मित्रः] हे पितरों उस स्वधाका खाकर [अतिगृह्य] अन्न वृत्त होओ । [पितरः शुभ्यन्वयः] हे पितरों शुभ होओ । इससे स्पष्ट है कि पितरोंका स्वधाम ही स्वधा कायेका है ।

वेद्यमात्राः यमवसः पितरो यमराज्ये ।

तेषां लोकः स्वधाममो यमो देवेषु कल्पवृक्षः ॥

बसु अ १५।४५

[यमराज्यं] यमके राज्यमें [हे पितरः यमाना यमवसाः] यो पितर यमान तथा यमवस अर्थात् एक विचार वा संकल्प-धर्म हैं [तेषां लोकः स्वधामम यमः] उन पितरोंका लोक स्वधाम कल्पवृक्ष व वृक्ष [देवेषु कल्पवृक्षः] देवोंमें यमर्षी होने ।

स्वाधोमि हविषाहमेतो लो अन्नया धर्मा कल्पवर्षामि ।

स्वधां पितृभ्यो अमरां कुम्भेभि र्दोर्ध्वानुधा

समिमास्तुजामि ॥

अथर्व १२।१।३२

हे [एतः] स्वधामोंके [हविषः] हविषा [स्वाधोमि] मणिक करता हूँ । [लो यमः] उन लोकोंमें [अन्नया मित्राभिः] अन्नया मित्रेण सामर्थ्यान् बनाया हूँ । [पितृभ्यः] स्वधामोंके कुम्भाभिः पितरोंके मित्रे स्वधाको अन्न करवा हूँ । [इमन्] योंमें अनुयायः इन्हें दीर्घानु द्वारा [उन्नयामि] उन्नत करता हूँ अर्थात् इन्हें दीर्घानु देता हूँ । इस मंत्रमें पितरों के मित्रे अन्नस्वर स्वधा का वर्णन है ।

स्वधाधोम पितृभ्यो वीर्यं देवताभ्यः ।

इमेव राजस्यो यथाया मनुर्हन् न गच्छति ॥

अथर्व १२।१।३२

[पितृ य स्वधाधोमः] पितरोंके लिए स्वधाधोमके अर्थात् स्वधा देव और [देवताभ्यः वीर्यं] देवताओंके मित्रे यज्ञ धर्मके तथा [इमेव] इम केमि [राजस्य यथाया मनुः] देव न मरते] अर्थात् यथायाका तिरस्कारको प्राप्त नहीं होता । यथाया स्वधाया महारन वर्त्तमाना गया है । पितरोंके मित्रे स्वधाने देनेसे यथायाका गुस्ते दूरी हो । स्वधाने देने वाक्यका यह निरस्कार करता है ।

एतन् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥

अथर्व १८।१।४५

हे [प्रततामहः] प्रततामह ! [ते एतन्] तरे किए वह देना हुआ पदार्थ [स्वधा] स्वधा होने । [ये च त्वं अनु] आर ओ तेरे अनुयायी हैं उनके लिए भी वह स्वधा हो ।

तत् स्रज्यं पितृवाचकं है । इसमें मित्र एतेरेय आ का प्रमाण है— एतां वाच प्रजापतिः प्रथमा वार्ध स्वाधरद् एकधर द्वयधरां तदेति तातसि । तनैतैत तत्तत्वा वाचा प्रतिपद्यते । इति ऐ आ १।१।३ ॥ आधवाचकने भी अपने पितरोंका नाम न जानता हुआ पुत्र तत् स्रज्यका प्रयोग करे इस आधवाचका सूत्रबनाया है— वाचामन्त्रिर्द्वैतत पितामहप्रतिता-मेति आध १।१ ॥ इस मंत्रमें प्रवितामह क किए स्वधाका विधान है ।

एतन् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥

अथर्व १८।१।४५

[प्रततामहः] हे प्रततामह ! [ते एतन् स्वधा] तरे किए वह देना हुआ पदार्थ [हविः] स्वधा होने । [ये च त्वं अनु] आर ओ तेरे अनुयायी हैं उनके लिए भी वह स्वधा होने ।

एतन् ते तव स्वधा ॥

अथर्व १८।१।४७ ॥

हे [तवः] पिता ! [ते एतन् स्वधा] तरे किए वह हवि स्वधा होने । इन उपरोंके अथर्ववेदके ३ संज्ञोके पता चलता है कि प्रवितामह प्रततामह तथा पिता इन तीनोंमेंसे प्रत्येकके नामपर अन्नम अन्नम स्वधा ही जाती है ।

यमो वाः पितराः स्वधा वाः पितराः ॥

अथर्व १८।१।८ ॥

हे [पितरः] पितरों [वः] तुम्हारे लिए [नमः] नमस्कार होने । [पितरः] हे पितरों ! [वः] तुम्हारे लिए [स्वधा] स्वधा होने ।

इस मंत्रमें पितरोंके किए स्वधा व यमस्वर दोनोंके देनेका उल्लेख है ।

इमो नृपका दिव्यः सुवर्माः सहस्रपाच्छतवो निबन्धः स नो मि वषष्ठा वसु वरः पराभूषमस्माकमनु पितुन् स्वधावत् ॥

अथर्व १८।१।२

(नृपकाः) मनुष्याका देवदेवता (दिव्यः) दिव्य अर्थात् देवगणोंके मुख (सुवर्माः) उत्तम प्रसिद्धाका (सहस्रपादः) हजारों पैरोंवाला अर्थात् श्रीगणेश (पतवोनिः) पैरकाका वारण यात्रि अर्थात् वरुण करनेवाला (वयोपाः) अन्न वर आनुधे

यदि वह भयवा विरोधों का सामना करना चाहता है तो उसे
जानना पड़ेगा कि वह किस विषय का सामना कर रहा है। इस
लिए, प्रथम विभाग में छोटे छोटे चर्चे शुरू होते हैं। इस
विभाग का कार्य शुरू करने का उद्देश्य है।

१ पित्रों के लिये नमस्कार ।

ममः का अर्थ अपना ही होता है परन्तु मित्रों के लिए आगे हुए ममः का अर्थ ममस्वरूप ही है, क्योंकि जिस मित्रों के अन्तर्गत आपस मम स्वभाव है और अन्तर्गत वहाँ मित्रों के लिए मम अभिप्रेत होता है वहाँ स्वभाव का प्रयोग होता है ।

हृदं पितृभ्यो वमो अस्तवच ये पूर्वाशो य अपराश
 ईशुः । य प्रापिषे राजस्वप्रमेयता ये वा भूय सुहृद्व्यास
 विष्णुः ॥ अ० १ । १५ । ३ ॥ पृ० ॥

क्र० ११५५३. ॥ अथ।

पृष्ठ सं० १९/५८

वही मध्य अवस्था में बीजसे पल्लभसे निम्न प्रकारसे है—

इह पितृभ्यो नमो अस्वस्थ ये पूर्वसो य अपराध ईशुः।

न वार्षिके रजःवादिपक्षा मे वा मूर्ते सुदृजवाप्तु रिभू ॥

अथर्व १८११४४

(वे) जो कि (पूर्वाक्षः) पूर्वस्थानीय पितर [ईशुः] स्वर्गको गए हुए हैं और [वे] जो कि [अपराक्षः] अर्ध-धीन प्रायस्कर पितर [ईशुः] स्वर्गको गए हैं; [सिन्धु-नः] अथ इव यमः अत्यु] उन पितरोंके लिए आश्रय वह यमस्कार हो। [वे पापियोंके रक्षित आनिच्छाः] और जो कि पितर शरीरी जादूकर स्थित हैं (वा) अथवा (वे) जो कि [नृपः] निधिवर्षे [सुदृग्मन्त्र विष्णु] उत्तम वक्ता वा यमपुत्र प्रजापति स्थित हैं उन पितरोंके लिए भी यमस्कार हो। अथर्ववेदके विष्णु के स्थान पर विष्णु अर्धवक्ता है। यहाँपर ये वा नृप सुदृग्मन्त्र विष्णु का अर्थ देखा जाय— अथवा ना कि पितर निम्न के उत्तम वक्तावा विष्णुर्धर्म स्थित हैं।

समो वमाव समो वरतु गृहस्थे वमः पितृभ्यः

उत्तमं नमस्ति । उत्प्राणस्य चो हेतुः तन्मिति ।

पुरो रथ स्मा अविहतात्वे ॥

ਅੰਕ ੧੨ 19੩

[बसम बसा अंग] समे निमि समरधर हो। [गुणवत्तमा]
नृपकान्त समरधार हो। [विपु-वा नमः] शिवसे के शिव
समरधार हो। [उप के मधमन] और नि कि न नमो ह
मध । १। मधव (१०३०००) ह उबक निमि भा समरधर
हो। [व प्रमाणवत्त व] १। उत्तारव अंग। गुणवत्तमा

उपन ना मायें को जानता है (त अमि) उध अमि वा
(अस्म अविज्ञाताये) इस जीवने कम्मान क विस्तार मे
सिय (पुत्रो बने) आये रहता हूं अर्थात् उध एही अमिमे सहा
मे अप्पे सायें पारण करता हूं ।

अथा ग्राहपण्यमख्यपर्वत पूर्वभाग्न कश्चिदम् ।

अथा सरस्वती गारि पितृभ्यश्च नमस्कृत्य॥

9/18/18

(यथा पूर्वे इव बभूवः स्यादित्यर्थः आसि अस्पर्शः) यत्र
पक्षिणे नह बभू स्यादित्यर्थः आसि यो पूजा करो [अथ] तत्र
ब्रह्मेण वायु (गन्धः) हे नारी ! ए [सरस्वत्यै विष्णुभ्यः च]
सरस्वत्यै च पितरोऽपि क्षिप्रं [मयाः कृतः] नमस्कारकरः ।

इस प्रकार हममें देखा कि इन उपरोक्त मन्त्रों विरहोंके
लिए मन्त्रस्मरण विधान है।

२ पितरोंके लिए स्वधा ।

ਭਸ਼ਮੇ ਵਾਯਵਿਜਿਤ ਵਾਯੁਸ਼ਥਾ ਵਾਯੁਜਿਤ ਵਾਯੁਜਿਤ

सम्प्राप्तिं वमो बदेभ्यः स्वयां सिद्धिभ्यः।

सुषमे मे नमः ॥

६३३ ॥ ३॥ ३॥

[वायव्ये भवे] हे भवधे जीवनेवाकी भवि ! [वायं
 करिष्यन्त स्वा] भवधे प्रति जाय हर्ष दुःखयो (सं मार्ति)
 म्रज करता हू । [वरेभ्यः वम] वेबकि विने नमस्कार ह ।
 वषा (विरुभ्यः स्वधा) विरुको । वमे स्वधा हो । [मे] मेरे
 विद [सुवसे भूवास्तम्] वमः भार स्वधा म्म व वरुम
 देवोवमे हो । नमवा वमः और स्वधा मुक्त विवम
 रकोवमे हो ।

बहावर दोनों के लिए था; और पिछले लिए स्वयं है।
निर्देश है। नामें परिभाषित तथा समझने से पता चलता है
कि आज पद्यों के लिए कुछ अर्थ हैं। प्रयोग करना चाहिये।
अच्छा यदि नए पद्यों के लिए अच्छा है।

पितृभ्यः स्वभाष्यः स्वरा नमः । पिता ।

महोदयः स्वभाविभ्यः स्वभा वस्य । प्रवृत्तः

महोभयः स्वभाविभ्यः यथा मनः । लभन्

वितरोऽभ्योमहन्व वितरोऽभ्योमहन्व वितरः ॥

1987-88

[स्वध्यानि-वा विष्णु वा] स्वधा ग्राह्य परमात्मिक धाम
[स्वधावा] ये वैश्वे निगरीक भव्य [स्वधा] स्वधा का
व्यवहार हो । [स्वधार्थ्य वा विष्णु-स्वधा स्वधा वना]
स्वधा निष्ठाक विष्णुपरीके-अथ स्वधा और व्यवहार हो ।

[स्वधविभ्यः प्रवितामहेत्या स्वधा नमः] स्वधा केनबाके
प्रवितामहेके लिए स्वधा व नमस्कार हो । [पितरः] हे पितृ
मन्त्रे । [अन्न] उस स्वधाको खाओ [पितरः] हे पितरों !
[वयमस्तु] उस स्वधाको खाकर आत्मवित्त होओ ।
[मित्रः] हे पितरों उस स्वधाको खाकर [मित्रगुण्य]
अन्न भूत होओ । [पितरः सुप्रभवम्] हे पितरों सुख होओ ।
इसे स्पष्ट है कि पितरोंका स्वधा ही स्वधा जानेका है ।

ये समाना समवस पितरो वमराग्ने ।

तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो वेधेषु कल्पयाम् ॥

बसु अ ११।१५

[वमराग्ने] वमके रात्रके [हे पितरः समानाः समवसः]
ये पितर समवस तथा समवस अनात् एक दिवार वा संवत्स-
रके हैं [तथा लोकः स्वधा नमः यज्ञः] उस पितरोंको लोक
स्वधा नमस्कार व यज्ञ [वेधेषु कल्पतां] देवोंके समर्थ होने ।

म्याक्रोमि हविषामेतीतो मद्याया अर्धं कल्पयामि ।

स्वधां सिन्धुमो अमरो कुन्धेमि वीर्येणामुवा

समिमास्तुयामि ॥ अथर्व ११।१।३५

हे [एतौ] इन दोनोंको [हविषा] हविषा [म्याक्रोमि]
मद्य द्रव्य है । [वी अर्धं] उन दोनोंको [मद्याया विक-
ल्पयामि] मद्याया विशेष वामपर्वणानुबन्धात् हुं । [सिन्धु-
मो अमरो कुन्धेमि] पितरोंके लिये स्वधाको अन्न व करता हूँ ।
[वीर्येणामुवा] इन्हें वीर्यांशु द्याप [समिमां]
सुख दद्यात् हुं अर्धेण इन्द्रे वीर्यांशु दत्ता हुं । इस मन्त्रमें पितरों
व मित्रे अन्न स्वधा का वनन है ।

स्वराक्षयः पितरः यज्ञः देवताम् ।

इमेन राज्ञो वद्याता मातुर्हं न मरुताम् ॥

अथर्व १२।१।३२

[गिरु व स्वधाधरेण] पितरोंके लिए स्वधाधारके अर्वादि
स्वधा द्रव्यधार [देवताम् वीर्यम्] देवताओंके लिये वज्र
ध्वज तथा [राज्ञः] राजा के लिये [राज्ञः वद्याता मातु-
र्हं न मरुताम्] अग्नि व द्याम ताके तिरस्कारको प्राप्त नहीं
होगा । वद्याता स्वधाया मरुत वद्याता मरुता है । पितरोंके लिये
स्वधा देव वद्याता मातुर्हं द्या है । स्वधा व देवे पाकेका वह
मित्रकर द्याता है ।

एतत् न मरुतामह स्वधा व न त्वामनु ॥

अथर्व १८।१ ॥

हे [प्रतितामह] प्रतितामह ! [ते एतत्] तरे लिए वह
स्वधा हुआ परार्थ [स्वधा] स्वधा होने । [न व त्वां अनु]
और जो तरे अनुयायी हैं उनके लिए भी वह स्वधा हो ।

तत् एतत् पितृनाथक है । इसमें मित्र ऐतरेय आ का
प्रमाण है— एतां वाच प्रवायतिः प्रवायं वाचं स्वाधुरा एधधुर
द्वयकारां तसेति तातसि । तवैतैतत् ततस्ता वाचा प्रतिपद्यते ।
इति ऐ आ १।३।३ ॥ आधकावमने भी अपने पितरोंका
नाम न जानता हुआ पुत्र तत् एतत् प्रयोग करे इस आस
वकला स्वधनता है— नामान्तरिस्तत् पितमहमिति
महति आध २।६ ॥ इस मन्त्रमें प्रतितामह के लिए स्वधाका
विधान है ।

एतत् ते ततामह स्वधा वे न त्वामनु ॥

अथर्व १८।१।३६

[ततामह] हे पितमह ! [ते एतत् स्वधा] तरे लिए वह
स्वधा हुआ परार्थ [हवि] स्वधा होने । [न व त्वां अनु] और
जो तरे अनुयायी हैं उनके लिए भी वह स्वधा होने ।

एतत् ते तत् स्वधा त

अथर्व १८।१।३७ ॥

हे [तत्] पितर ! [ते एतत् स्वधा] तरे लिए वह हवि
स्वधा होने । इस उपरोक्त अर्थमेंवह ३ मंत्रोंके पता चमत्ता
है कि प्रतितामह पितमह तथा पितृ इन तीनोंमेंसे प्रत्येकके
नामपर अलग अलग स्वधा दी जाती है ।

नमो वा पितरः स्वधा वा पितरः ॥

अथर्व १८।१।८५

हे [पितरः] पितरों [वा] तुम्हारे लिए [नमः] वम
स्कार देने । [पितरः] हे पितरों ! [वा] तुम्हारे लिए
[स्वधा] स्वधा होने ।

इस मन्त्रमें पितरोंके लिए स्वधा व नमस्कार दोनोंके इनका
उल्लेख है ।

इत्येतेषु यज्ञादिषु सुवर्णमहोपनयनयोः निबन्धोऽयं
स यो हि यज्ज्वरं वसु वसु वराभूवममामाग
विपुत्र स्वधावत् ॥ अथर्व १८।१।३८

(नुवन्धः) मनुष्यांध दक्षेनका (विभ्यः) दि व
अन्तर दक्षयोंके युक्त (सुवर्णः) उत्तम धर्मवत् (वराभूवः)
इज्या वेदावत् अर्वादि वीर्यवती (वराभूवः) वेदावत् वराभूव
वत् ७८ वीरा उत्तम करनेवाला (वरीणाः) अन्न वम आनुध

देवेनाका जो [रचना] रचन है [यः] वह [यः] हमें [यत् परावृत्तं यत्] जो कनुमोसे हरन किना हुआ यन है उसे [विवच्छात्] बाध के और वह यन [अरथात् विवृत्त स्वभावात्] हमारे वितरासे स्वभावी तरह होने अर्थात् वितरासे जो स्वभाव स्वभावी प्राप्त है वही स्वभाव उसे प्राप्त होने या वह भय वितरासे स्वभावत् अर्थात् आत्मधारण कृत्ति करनेवाका हाने । उस यनस वितर स्वभावकी वने स्वाधवी है। नहापर स्वभाव अर्थ आत्मधारण ऐसा प्रतीय होता है । स्वभा वना थीक है वह एक विचारणीय विषय है तथापि आगे चलकर इस ओकाता स्वभापर प्रत्यक्ष वाक्ये भी कोसीत करेंगे ।

३ पितरोंको स्वभा देनेसे काम ।

छोदक्यमत् ता विवृत्तमच्छत् ता विवर उपाह्वयन्त

स्वय एहीति ॥ अर्थ ४१३१५७

ता स्वभा विवर उपजीवन्ति उपजीवनीको भवति

य एवं वह ॥ अर्थ ४१३१६

[यः] वह विवृत् [यत् अक्षयमत्] कपरको उकनी । [यः] वह [विवृत् अयच्छत्] पितरोंके बाध करें । [तां] उस पितर। उप आह्वयन्त] पितरोंके अपने पास बुकवा कि [स्वभा] है स्वभा । [एहि इति] य् हमारे पास आ । [पितरः] ता स्वभा उपजीवन्ति] पितर उस स्वभा उपजीव करत हैं यानि उस स्वभाके आकर जीते हैं । [यः एवं मेव] या इस प्रकार वास्तव है कि पितर उस स्वभाकी आकर जीते हैं वह भी [उपजीवन्ति] भवति] उस स्वभाका उपजीव करते योग्य वनता है अर्थात् उस स्वभाके आभवे जीता रहता है ।

इन मंत्रोंसे वह बात स्पष्ट है कि पितर स्वभाके आभवे जीते हैं अतः पितरोंका स्वभा देनी चाहिए और जो पुत्र इस रहस्यके आचरता है उसे भी स्वभा मिळती रहेगी और इस प्रकार वह भी स्वभा आकर पुत्रपूरी जीवन विवर्हि कर सकेगा ।

४ अक्षरों द्वारा विवृत्तर्पण ।

हिंदू काय सूत्र पितरोंका जो अक्षरों द्वारा तर्पण करते हैं उसका आधार समस्तः सिद्ध हीन मंत्र है । इन मंत्रोंसे अक्षरों द्वारा विवृत्तर्पण विधान पता जाता है । मंत्र इस प्रकार है—

ऊर्ध्वं वहम्यीरमृतं पुत्रं यवाः कीदृशं परिपुत्रम् ।

स्वभा क्य तर्पण मे विवृत् ॥ यत् य ११३१५७

इस मंत्रका देवता आपः । अर्थात् यक है । [ऊर्ध्वं] यकको [अमृतं] अमृतको [पुत्रं] पौत्रो [यवाः] यकको [कीदृशं] अथवा तथा [परिपुत्रं] पुत्रों यकको भिक्षुके हुए धारमाणको [वहम्यी] वहन करते हुए [यवाः] हे यक । पुत्र [स्वभा स्व] स्वभा हाने । अर्थात् पितरोंका भव वनी और [मे विवृत् तर्पण] मे पितरोंको अपने उपरोक्त स्वभाकीसे पुत्र करी ।

यत्र स्पष्ट है इसपर विवेक विवेकी आत्मदर्शकता नहीं है । स्पष्ट कर्मोंमें यकद्वारा विवृत्तर्पण विवर्ण है । पुत्र मंत्र इस प्रकार है—

य ते पुत्रं वरामता अग्रे विवर्ण मे ।

तेमो वृत्तस्व कृत्तेतु अवतता मनुमती ॥

अर्थ १४३१५७

[ते] मे [ये] पुत्रं वरामताः] जो पुत्रकर्मों के पितर के पने गए हैं अर्थात् परमेश्वरोंको हुए हैं और [ये अग्रे पितरः] जो अर्वाचीन पितर परमेश्वरोंकी हुए हैं [तेमः] कम प्राचीन व अर्वाचीन पितरोंके कि [अवतता मनुमती] पौत्रों धराभोजनी उपवर्ती हुई [वृत्तस्व कृत्तेतु] यकको कृत्ता कृत वनी [पुत्र] प्राप्त होने । वह मंत्र जो उपरोक्त मंत्र के आचरता पुत्र कर रहा है । पक्षिके मंत्रकी तरह वह मंत्रकी स्पष्ट है । कृत्ताका अर्थ विवृत्तम् कृत्तिमा करि अर्थात् वनावनी वनी वाक् वहर देवा विधा है । पितरोंके अपने तर्पण करनेके कि पुत्र वनावी चंद्रिह देवा मान इस मंत्र का वाक्य पकता है । उपरोक्त दोनों मंत्रों के आचरती ही पुत्र करता हुआ तीसरा मंत्र इस प्रकार है—

पुत्रं पौत्रं धामि तर्पयन्ती मनुमतीरिमा । स्वभा विवृत्तम् अमृतं पुत्रम् आपो देवीकर्मता तर्पयन्त ॥

अर्थ १४३१५७

[पुत्रं पौत्रं धामि तर्पयन्ती] पुत्रपौत्रविषयोंके तर्पणता गुण करते हुए [इमा मनुमती आपः] मे मनुमती यक व [विवृत्तम्] स्वभा अमृतं पुत्रम्] पितरोंके कि स्वभा व अमृतका दीहण करते हुए [देवीः आपः] दे विवृत्तर्पण उपवर्ती दोनों पुत्र पौत्रोंके [तर्पयन्त] गुण करें ।

उपरोक्त तीनों मंत्रोंसे अक्षरों द्वारा विवृत्तर्पण का ज्ञान है ।

वह मंत्र अथर्ववेदमें भी है। वहाँ प्रारम्भमें जोडासा पाठमें है। उपहृताः पितरः ते स्वात्मपर उपहृता वाः पितरः । हे। केवळ वाः और अधिक है। केव समाग है। वेको अथर्व १८।१।४५॥

[भिद्येयुः बहिष्येयुः निधनुः] प्रतिपत्तय नञ् संवाची विधि नैमि [छात्रावाः] सोम सपादन करनेवाक [पितरः] ओ पितर [उपहृताः] कुम्भए गए हैं [ते आगमन्तु] ये पितर आये। [ते] व पितर [इह] इस वक्षमें [अधिपुत्रान्तु] हमारी प्राप्तावमें आकरपूर्वक सुबे और [अधि कुम्भन्तु] इस उपरस करे तथा ते सरमाए लवभु हमारी रक्षा करे।

वर्हिष - वर्हिषु काम्य है वक्षरा, जसमें होववाला वर्हिष अर्थात् वक्ष सवग्यो। इपके अतिरिक्त छात्रावाः पर भी इसी अर्थको पुष्टि करता है। व स्वाध्यायके विद्वत्तमें छात्रावाः का अर्थ होमका सपादन करनेवाले ऐसा किया है। और सोम वक्षमें सपादन किया जाता है। प्रकरनमें भी वही अर्थ होता है क्योंकि इससे पूर्वके मन्त्रोंमें वक्ष प्रकरनका लक्षण है।

निधिक्ष अर्थ विद्वत्तार्थ वादकमें अपने निदक्ष को अतिथिमें निम्न प्रकार किया है—

विधि। केवपितरिति । केवपिका लभ है मुक्ता मण्डार । विद अ १। पा १। ख ४॥

इस प्रकार इस मंत्रमें पितरोंके वक्षमें अपने प्राप्ताव सुबे उपरस करे १ रक्षा करनेका उद्देश्य हमें मिलता है।

आप्या जानु दक्षिणतो विषयस्य वक्षमणि गृणीत विद्व । मा हिमिह पितरः केव विद्यो नञ् आगः पुत्रवत्ता कराम ॥

अ १। ११। १६ तथा

वक्ष अ १९। १२

वह मंत्र अथर्ववेदमें पाठसे पाठमदक मात्र अन्तरा है।

आप्या जानु दक्षिणतो विषयस्य ओ हस्तिनि गृणन्तु विद्व । मा हिमिह पितरः केव विद्यो नञ् आगः पुत्रवत्ता कराम ॥ अथर्व १८।१।५२ ॥

(विद्व) लव लम पितरों । (जानु आप्य) दावी पुत्र वा उरकर (दक्षिणतः विषय वाह आर वक्ष कर (इस मन्त्र) इस वक्षका (आगमन्तु) स्वीकार करे। (पितरः) इतिहास (अ व आगः पुत्रवत्ता कराम) जोमुद्वारा आ गत पुत्रवत् अर्थात् मनु व वक्षे वासक इस बात है। (वक्ष विद्व) एवं विद्यो । अ अथ पक्षे वासक (मा हिमिह) हमें मनु म । अर्थात् वक्ष है इस मन्त्रव है और अनुपप मात्र

भूतका पात्र होता अतः यदि अथर्व १८। १। ५२, तो भी समा करो हमारी हिंसा मत करो।

जानु आप्य का अर्थ हमने दावी पुत्रव उरकर ऐसा किया है जो कि सतपथ ब्रह्मण्यक निम्न वास्तवके आध्यात्म है। अथैव पितरः। माधीमाधीति। अर्थ आत्मात्माध्यात्मिक स्थापनकी है। इसादि ॥ सतपथ १। १२। २४ सतपथके इस वाक्यसे प्रतीय होता है कि दावी पुत्रव उरकर पितर वक्षमें बैठते हैं। निम्न मन्त्रमें पितरोंके लिए मासिक वक्षका विधान है।

परा वात पितरः सोम्यासो गभीरे। पक्षिमाः पूर्वाचैः अथा मासि पुत्ररावास्त नो पुहान् इतिगु सुप्रजसः सुवीर्यः ॥ अथर्व १८।१।६१

(सोम्यान् पितरः) हे सोम सपादक पितरों । (गभीरेः पूर्वाचैः पक्षिभिः) पक्षीर पूर्वतः—मास्येन्द्रा (परावात) वातव जके जाओ। वहासे आए ये वहाँ पर ओर जाओ। (अथ पुत्रः) और फिर (सुप्रजसः सुवीर्यः) हे उत्तम प्रजापति तथा सुवीर पितरों । (पक्षिभिः) वातके अन्तर्में यदि मध्ये महीनेक बार (वा पुहान्) हमारे वरोंमें (इति गन्तुं) इति क जानेके लिए (आवात) आओ।

पूर्वाच पुत्र वाताति पूर्वाचः। वषट्का जमेवासे रस्तेका नाम पूर्वाच है। प्रत्येक मासमें पितृपूजा करना। वर्हिष तथा उनमें देव देवतामें स्थित पितरोंका आगमन करना वर्हिष ऐसा इस मंत्रका अर्थ है।

आप्यप्राजाः पितरः पर गण्यत सः मरु सपत सुप्रवीतवः। अथा इवीनि प्रवर्तय विद्वन्वा ११ मववीर वक्षवत्ता ॥

अ १। ११। ११

वह मन्त्र वसुदेव व अथर्व वेदमें भी पाठसे १८में ११ अन्तरा है। इसा—वक्ष, १९। १२। तथा अथर्व १८। १। ४ अथ इस प्रकार है

(अधिपुत्रः) सुप्रवीतवः पितरः) हे आदिपुत्र व उत्तम नेता पितर ! (इह) इस वक्षव (आगमन) आभा । (मरुः मरुः सपत) वर परमें स्थित होओ। (अथ) और (वादव प्रवर्तय इति विद्वन्वा) वक्षमें १९ मरु रक्षीका आभा । और हमें वक्षमें रक्षि वधातव) न। वक्षवको आरक्षण पूज भवका है

इस मन्त्रम पितराका यज्ञमें हवि खिलावेका व जनस कीरता
एव वन मान्येका यजन है ।

ध्वजधार ध्वजधारमुत्समधिर्य ध्वजधारमात्र सकिञ्चन धृते ।

ऊर्ध्वं दुर्धनमवपुस्तन्मनुष्यासते पितरः स्वधामिनाः ॥

अथर्व १८ अ० ३३६

[कृतधार ध्वजधारं उच्यते] मैरुहो न हमारो धाराभोवाके
वैतरी तरह वा हमारो व वैतरो धाराभोवे पुष्ट है ऐसे
और जो [सकिञ्चन धृते ध्वजधारमात्र] अतिरिक्त ऊपर ध्वज
है ऐसे [ऊर्ध्वं दुर्धनं] अथ व वलरी देवेवाले [अवपुस्तु
रन्] कभी भी चम्पनमान व होवेवाले अर्थात् दिग्बर हविष्य
[पितरः] निगर [स्वधामिनाः] स्वधामिका साथ [उपासत]
करन भवत है ।

वज्रधार इति वज्रध्वज ध्वजधार पूर्व श्रेष्ठे करवा पठता है
कर्मके कर्तव्य मन्त्रम अथ ह्यु पितृपण्योका कोई भी विशेष
नहीं है ।

पितृपण्य स्वर्गाके साथ हवि खाते हैं । इस कर्मके वह उपद्र
देना ह कि स्वर्गा कोई निज वस्तु ही है । वहाँ पर भी पूर्व
श्रेष्ठे तरह पितृपण्य हवि देवनम्र ठोके है ।

पितरोंका यज्ञमें घनदान ।

आद्योवातो अग्नीवायुपत्ये इति अथ ब्राह्मण मन्त्राव ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तत्स्य वस्त्राः प्रयच्छत य इहो न
प्रापत ॥

अथ १ ११५।७ अ

पठ. अ ११।१३ अ तथा अथ १८।३३ अ

[अग्नीमं उपरथ] यज्ञमें प्रदीप का गई अग्निवी अथ
अथ वपुटी हुई उपासकोंके धर्मार्थमें [अग्नीमान] देते
[तेषां] [वासुदे मन्त्राः] इति मनुष्यक सिद्ध [यदि
यम] वपुटी वा । [तस्य] और उक्त दानी मनुष्यके लिए
[तसि पथ] भनका दी । [तस्य] और उक्त मनुष्यक
[उपरथः वपु पयच्छत] पुत्रोंके लिए भी भनका वा [ते]
उपरथः वपु पयच्छत । पुत्रोंके लिए भी भनका वा [ते]
उपरथः वपु पयच्छत । पुत्रोंके लिए भी भनका वा [ते]
उपरथः वपु पयच्छत । पुत्रोंके लिए भी भनका वा [ते]

प्रापात पितर आ व प्रापात को यज्ञो मनुष्या समस्त
एवा भगवन्मर्त्य इतिदेह अथ हवि य वा सर्ववीर
प्रापत ॥

अथर्व १८।३।१४ अ

[पितरः] व पितर । [प्रापात] यज्ञ ध्याति पर प्रापक
इत्यर्थ । [य] और कि [प्रापात] आधा उवाचि

[अथ वपुः वा मनुष्या समस्तः] यह वपु मनुष्यो स्मि [मनुष्या
समस्तः] मनुष्य आजगसे विधित हुआ है । [१४] इस
नक्षत्रमें [इतिवा] यनोंको [यतो] से । [मर्त्य सर्ववीर रवि
य] और कन्धामकाही तथा सर्व कीरताके पुष्ट रवि अर्थात्
सम्पत्ति धर्मस्थिते [यः] हमें [प्रापात] पुष्ट कता मनुष्य अर्थ
है मनुष्यपूर्ण आजग । देखो ऐ. मा. १।२। पृष्ठ १ मनु
देन वह आजगम् ।

आपो अग्निं य इष्टुत पितृपण्यम वपु पितरो मे
उपद्रवाम् । आद्यीनामूर्ध्वपुत्र व सन्तते वे यो रवि
सर्ववीर विषय्यात् ॥

अथर्व १८।३।१४

[आपः] हे आप । तुम [अग्निं पितृपुत्र उपद्रवाम्]
अग्नि को पितरों क पास भेजो । [य पितरः] मेरे पितृपण्य
[इय वपुः उपद्रवाम्] इस नक्षत्र देवन करें । [वे] जो
पितर [आद्यीनां कर्म उपद्रवाम्] उपद्रव अर्थात् हमारा
छे दिने वपु अथका देवन करते हैं [ते] वे पितर [यः] हमें
सर्ववीर रवि] सब प्रजाकी कीरताके पुष्ट यम-ध्याति को
[विषय्यात्] निरम्रा बते रहें ।

इस मंत्रमें आप अर्थात् अग्निसे कहा गया है कि वे अग्नि को
पितरों क पास के जाए, निजके अग्नि में होय हुआ हवि
पितरों का पशुन लके ।

इस उपरोक्त मन्त्रक वलनेसे हव हव परिधाम पर पशुन
सकत हैं । के पितृपण्य यज्ञमें आकर हवि य प्रदह करते हैं
तथा प्राणीको वन देते हैं । इस विरोधा यज्ञम वपु
प्रदीप होता है । पितरोंके यज्ञमें पुष्ट वा जाता है वहाँपर उन्हें
हवि दी जाती है जो कि हवि व आध द्वारा स्व कृत करते
हैं । वह वात अथर्व १८।३।१४ के पृष्ठ हाथी है । इसका अर्थ
आव वह है कि जिस रूपमें हवि दीया जाती है उस रूपमें
पितर वही लेते, परन्तु अग्नि द्वारा त्याग अर्थात् यज्ञमें पति
आत हुई हुई हवि लेते हैं अर्थात् यज्ञमें अग्निमें दीया हुई
हवि पितरोंके पहुँचती है । इसलिये जिसका वपु पयच्छत भन
कथ्यात वा हवे उसे वपु करवा चाहिये व पितरोंके हवि दनी
व दिये । इन उपरोक्त वातोंका हम इन यमोंके पठन अनुमान कर
सकते हैं ।

स पितृपण्यम पितरान् म्यान इवोर्ध्वं कुप्यन्त प्रात
रभ्य आयुः । तेषां यज्ञम इतिवा यज्ञमाना उवाच
जोवन्तः पितरः पुत्रवीः ॥

अथर्व १८।३।१५

[॥ ॥] इव वक्ष्ये [यः] इमारे [स्वाः पितरः] क्षातिने
पितृव्य [स्वोर्ध्वं कुम्भान्] । शुक्र उत्पन्न करते हुए [स
विद्यन्तु] स्मिन् होयें । और [आयुः प्रतिरन्त] आयुव्ययी
हृदि करे । और वरुण वक्ष्ये [यजमानाः] पतिहीन
अथवा पूर्वरा काये उत्तर इव [योः पुत्रयोः करुः]
मित्ररत बहुत से बर्षों तक [वीर्यम्] जीवन चारण करते
हुए [वैभवं] इन वीर्य आयु हेमचक्रों पितरोंकी [हविषा]
हविहार । [अक्षम्] परिवर्तोंके किये समर्थ बने रहें ।

इह वंशभी उपराध परेजायको पुत्र कर रहा है । विम्न
मत्र स्थित निवारकाय है क्योंकि इनमें पितरोंके किये मांस
न बचके इनका विवाह मिकता है ।

वह वर्षा जातवेदः पितृभ्यो बहैवाम्नेत्य धिर्विद्यत
पराक । मेवञ्च कुम्भा उपराधकान्तु सत्या एषामा
क्षिपः सं वसन्तो स्वाहा ॥ अथ ॥ १८११

(जातवेदः) है अग्नि ! (पितृभ्यः वक्ष्ये इह) पितरोंके
किये वषाप्त ब्रह्म कर (वज्र) बड़ी (पराके) वरुण (विहि
तान्) स्थित (एतन् कैव) इन पितरोंके ए कामता है ।
(मेवञ्च कुम्भाः तन्तु वसन्तान्तु) वरुणीकी छोटी छोटी
मदिवा इनको प्राप्त होयें और (एषां सत्याः आक्षिपः)
उपके ब्रह्म आशीर्वाद (सं वसन्तान्तु) हमें प्राप्त होयें ।
(स्वाहा) उपरोक्त कथन छल है ।

वहपर अग्निपितरोंके किये वरुणीकी महर्ष पशुबानके किये
वहा गया है विम्न मत्रमें पितरोंके किये मांसवर्तक बहके
रवेका विवाह है—

अथवा मांसमांसवर्तक जीवतु । लोककृतः वसिष्ठ-
तो यजमाने व देवायां वृत्तभागा इत्यम् ॥

अथर्व १८ ११ ॥

अथवा व मांसवर्तक बह नहीं वैदी पर अने । (लोककृतः
पात्रकृतः) स्वामीके ववावेवाके व मांसोंके ववावेवाकोके
(वसन्तम्) हम पूजते हैं । (ये) ओ कि तुम (इह) वहां
(देवता वृत्तभागा) देवोंके दिये हुए भागका केनेवाके हैं ।

वरुण मांस स्रष्ट मांसके किये आया है । वास्तव्यवाके
इसके ओ निर्धन । अने हैं वे इली वास्तव्य किस कर रहे हैं ।
सावरी या उद्योगे मंत्र वेष्ट किया है उद्योगे भी एवञ्च उद्योगे
बहरीके मांस यन्त्रेष्ट विष्ट है । वास्तव्यवाके मांसके विर-
पनमें विम्न विष्ट है— देवा विष्ट— १८११११

(१) मांस मांस— (मांस-मन्त्र) अथवा मांसमन्त्र
वीर्याय प्राप्त नहीं होती ।

(२) मांस-मांस खायेके मांसक पात्र पैदा होते हैं ।

(३) यन्त्रेष्टिमांसक मांस खायेके मन जात्र है ।
मांसमन्त्रको मन बहुत जात्रा है ।

इसके अतिरिक्त मनुष्य मनुष्यमन्त्र मांसमन्त्र को निर्धन
किया हैं वह भी देखने आवश्यक है । वह इस प्रकार है—

मां स मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्र मन्त्रेष्टिमांसक
वृत्तान्तास्रष्ट मांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
अथवा विष्ट मांसक मांस मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक

इसी सूत्रके ४१ हैं वंशमेंनी देवाही कर्तव्य है । वह मन
इस प्रकार है—

ये वे मन्त्र वसोर्ध्व वसोर्ध्व विष्टमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक

(ये) ठेरे किये (वंशमें) विष्ट वंश अथवा मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक

इस वंशमें मांसक विवाह है । मांसक सूत्रकरी के सूत्रमें
नी कई स्वावर्त मांसविवाह पाया जाता है ।

अथ पितरों मांसक ववाभायमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
अथवा मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक

अथ ॥ १८११

(पितरः) है पितरों । (अथ) इस वक्ष्ये [मांसक]
मन्त्र होमों और (ववाभाय) करने करने अने
अनुष्ठान हवि केत हुए [अथवा मन्त्रेष्टिमांसक] इन अने उपर
रक्त करे अथवा मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक

उपराध मांसक ववाभायमांसक मन्त्रेष्टिमांसक मन्त्रेष्टिमांसक
है ववाभाय अन्तिमि ति ॥ १८११११ ॥ पितरों के विष्ट

वह भी आज हमें का मान करके रखा जाता है जिसे का कर
वे प्रथम होते हैं। यह इससे सुनिश्चित होता है। अतः बड़में
पितरोंके लिए आवश्यक रचना चाहिए।

वह जो भूमि पितरः सोम्य च ते जो सचरन्त्यं जग-
ज्ज्यो हि सूर्या ये अद्वयः कर्म का श्रमोत्त सुविद्वत्
विद्वे ह्यसमायः ॥ अथर्व १८१११९

[पितरः] हे पितरों ! [वः वत् सुई सोम्य च] तुम्हारा
यह ईश्वर व सोम्य कर्म है [एतः] उस द्वारा [सचरन्त्यं]
हमें देवित की शरीर पुन करे। [हि] विश्ववसे तुम
[स्ववक्तव्यः] अपने वचने ही वक्तव्यी [मृत] होते हो।
[ज्योः] अतिशयोक्ति शरीर निराकरी [कर्मः] कर्मवत्की
व्या [सुविद्वत्] उत्तम मनवाले, [ह्यसमायः] बुद्धिपूर्वक
[ते] के तुम [विद्वे] बड़में हमारी उपराध श्राव्यमाने
[कर्मवत्] काकर धुने।

अपत्यके यज्ञों हमने देखा कि पितरोंका बड़में बुद्ध्या
काय है और वहाँपर बड़में ही देकर प्रथम किया जाता है।
प्रथम हुए हुए वे जायु, बनाएँ श्री इच्छा पूर्ण होते हैं। इसका
अभिधान यह है कि पितरोंके कामपूर्ति करकेके लिए यज्ञ
करवन्त है।

पितरोंके लिए प्रत्येक मासमें दान ।

श्रीरामायण भा पितृवामय्यत्तं वा पितरोप्यत्त ।
का मासि दानमयत्त ॥ अथर्व ८१११३ ३
क्याएँ पितृवो मास्तुपयान्न दद्याति स पितृवाम
वन्तो वन्त्याति स एव देह ॥ अथर्व ८१११४

(य) वा विद्वत् (य अथर्वम्) कर्त्ता वा उच्छरी
और (वा) वह (विद्वत् अथर्वम्) पितरोंके पास गई ।
(य) उच्छरी (पितरः अथर्वम्) पितरोंके पास किया ।
पितर (वा) वह विद्वत् (मासि) मासमें (यमयत्त)
कृपुण हुई है अथर्व ८१११३ ३ (नश्यत्) इस लिए
(विद्वत्) पितरोंके लिए यज्ञिये (दद्याति) देते
हैं। (वा एव देह) जो इस प्रकार कर्त्ता पितरोंको मर्त्य
में पितृ मास है ऐसा जानता है, वह (पितृवाम कर्त्ता)
पितृवाम मासमें [प्रत्ययः] कर्त्ता प्रथम जानता है।
शरीर का क्या क्या है उच्छरी इत्यादि परिणाम अथर्व
निश्चय है कि पितरोंके लिए प्रत्येक मासमें दान करना
चाहिए, वनचिह्न उक्त देखा चाहिए।

११ (अ. घ. भा. पृ. १८)

पितरोंका आसन ।

देवताका पितरारोपण बर्हिर्वात ॥ अथर्व १८१११८ ३
[ने] जो [अस्माकं पितरः] हमारे पितर हैं [एतः]
उनका (बर्हिः) आसन [अग्नि] है।

कुशाभासका नाम बर्हि है। बर्हिसे उपासन करके कहा
ज्या है। बड़में पितरोंके बैठनेके लिए कुशाभासविधित आसन
होना चाहिए, ऐसा इसका पता चलता है।

अग्नि और पितर ।

(१)

इस प्रकारमें हम अग्नि व पितरोंका संकल्प तथा पितरोंके प्रति
अग्निसे कर्त्ताके वचनिये। पाठक इस प्रकारमात्रसे संज्ञाको
अभ्यस्तर्क परें व उनसे निश्चयते हुए परिणामों पर जाए
करें।

यज्ञमें अग्निका पितरोंको जाना ।

वे तापुपूर्ववत्ता वेदमाना होनाचिह्नः स्तोमवशासे बर्हिः।
जैसे चाहे सुविद्वत्की शरीर सत्ता कर्मों विद्वत्की
वमसक्ति ॥ अ. १ ११५५९

(देवता वेदमाना) बर्हिसे प्राप्त होते हुए अर्थात् देव
वन्ते हुए (होशचिह्नः) वहाँके आनेवाले (स्तोम वशासे)
स्तोमोंके बनावेवाले [ने] जो पितर [बर्हिः] बुद्धीव
सुविद्वत्की [तापुः] अस्मान प्रसन्न हुए हैं ऐसे [सुविद्वत्
प्रथिः, एतः] कर्म वमसक्तिः पितृभिः] उत्तम मनवाले
अर्थात् कृपुण वस्तुवत्की कवि अथवा कर्म मानवालेपत
रोंके लिए दिए गये इष्ट का। अतः कर्त्ताके लियेवाले बड़में
देवताका पितरोंके पास [अग्नि] के आग द [आवाहि] भा ।
वे सत्यको इतिहा इतिहा इत्येक दवा माय
द्वाराः काये चाहे सत्यके वनचिह्न परें पितरः
पितृभिर्बर्हिर्वात ॥ अ. १ ११५११

[ने] जो पितर [अग्नि] अथर्ववत्की [इतिहाः]
इतिहा कर्मवत् [इतिहाः] इतिहा रथा वमवत्ता तथा
[इत्येक दवे] काय वस्तुका मयत्] इत्येक देवोंका काय एक
ही रचना करने हैं एक [वस्तु वस्तु] इत्यादि वा
देवोंके सुविद्वत् किए गए (देव वरः) प्रथम व अर्थात्
[बर्हिर्वात पितृभिः] बड़में वनचिह्न पितरोंके पास [भा
वर्हिः] का। अतः निश्चित बर्हिसे एक ही वस्तु वर दे
है। इस दानमें अथर्वका पितरोंका अथर्व काय न देवताका

कहा गया है। पितरोंको बड़ाहिमें पाप आका अधिका काये
है वह हम मनोंध स्पष्ट होता है। वह अधिच कोन है इसका
निर्णय मंत्रोंध स्वयं प्रत्यक्ष कर लेंगे। इस अधिकाका बड़ा व
हस्ति विशेष अवश्य है, वह आगे आनेवाले मंत्रोंध स्वयं स्पष्ट
हो जानका। अब इस मंत्रोंको कल्पमें रकते हुए ही अग्निमें
निबधमें निबध करवा चाहिए। वह अधिनिबधन निबध
पितरोंपर प्रकाश बाल घडेय। ऐसा हमारा कहा है।

अधिका पितरोंको हवि खानेके

छिए के आना।

उत्तमस्तवा निधीमहपुत्राव समिधीमहि।

उत्तमुत्तव वा वह पितृन् हविषे अचये ॥

अ १।१६।१ तवा पशुः अ १५० ॥

तवा अचर्य १८।१५६४

हे अग्नि ! (उत्तमः) कामना करते हुए हम (त्वा
विधाभि) ठेठ स्वापवा करते हैं। और (उत्तमः समिधी
महि) कामना करते हम तुझे अर्पित करते हैं। (उत्तमः)
कामना करती हुई है अग्नि तू (हविषे अचये) हविषे खानेके
छिए (उत्तमः पितृन्) कामना करत हुए पितरोंको (वा वह)
के आ। वहापर अग्निसे हवि खानेके छिए पितरोंके के आनेके
छिए कहा गया है।

पुनस्तस्मैधीमहि पुनस्तः समिधीमहि।

पुनश्च पुनव वा वह पितृन् हविषे अचये ॥

अचर्य १८।१५७४

हे अग्नि ! (पुनस्तः) भीतिमान होते हुए हम (त्वा
हविमहि) तुझे प्रकटित करें। (पुनस्तः) और भीतिमान
हम (समिधीमहि) तुझे मन्त्री प्रकार प्रार्थना करें। (पुनश्च)
भीत हुआ हुआ तू (पुनव पितृन्) प्रकटमान पितरोंको
(हविषे अचये) हवि मन्त्रमार्ग (आवह) के आ। उपरीच
मन्त्रके भाव का ही वह मंत्र भी धर्मार्थ कर रहा है।

ये निष्ठावा ये परीक्षा ये वृत्ता ये चोदिका।

छ।१।८।१५६४

अचर्य १८।१५७४

(अम) हे अग्नि ! (ये निष्ठावा) जो पितर समीपमें
पाये गए हैं और (ये परीक्षा) जो पितर दूर बड़ा छिए
गए हैं तथा (ये वृत्ता) जो पितर अग्निमें आवह गए
हैं (ये च) और जो पितर (चोदिका) धर्मार्थके उपर

रखे गए हैं, (त्वा आवह) अब अब पितरोंको तू (हविषे
अचये) हवि मन्त्रमार्ग (आवह) के आ।

इस मंत्रमें वह बताया है कि चार प्रकारम अग्निसे उपकार
होता है। (१) वाक्य (२) वृत्ता, (३) वृत्ता,
(४) वृत्ता। वृत्ता कोचवा। वहा पर हम वारों उपकारोंसे
उपकार पितरोंको हवि खानेके छिए अग्निमें पुनस्तस्मै निब
कहा गया है। इस मंत्र पर विशेष प्रकाश 'मैत्र व अग्निसे
आवह कीरके बने जायेंगे।

अधिका पितरोंको हवि पशुपाना।

ऊपर हमने देखा कि अग्नि पितरोंको हवि खानेके छिए
अग्निसे पाप के जाती है। अब हम देखेंगे कि वह पितरोंके
उप हवि के भी जाती है और वहा कन्ने देती है।

त्वमग्नि ईक्षितो वासवेतोऽमाहृन्माणि क्षुरवीणि
क्षुरवी। माहाः पितृन्वा स्वपया ये बहवस्ति तं
देव प्रपदा हविषि ॥ अ १।१५।१२ तवा

अचर्य १८।१।५२ ॥

वह मंत्र वसुदेवों पदवेव से अग्नि प्रकार बताया है—

त्वमग्नि ईक्षितो वासवेतोऽमाहृन्माणि क्षुरवीणि
क्षुरवी। माहाः पितृन्वा स्वपया ये बहवस्ति तं देव
प्रपदा हविषि ॥ अ १।१५।१२

(आवहवा अग्नि) हे वासवेतु अग्नि ! (ईक्षितः
त्वं) स्तुति किया गया तू (हव्यमि) हव्योंको (क्षुरवीणि
क्षुरवी) उपस्थित कराकर (आवह) आवह कर। और फिर
(पितृन्वाः प्रपदाः) पितरोंको दे। (ये) ये पितर (प्रपदा
हवीणि) ही कई हविषोंको (स्वपया आवह) स्वापके आव
खाने। [देव] हे प्रकटमान अग्नि ! [त्वं] तू भी [अग्नि]
अब हविषोंको का।

इस मंत्रमें अग्निसे कहा गया है कि वह हविषोंको वे
आकर पितरोंके वे राकि वे कन्ने खाने। वसुदेव में पितर
उपरीच वसुदेव अग्निसे निबधन कामनावा कहा हुआ
है। पितरोंके छिए ही कई हवि का काम कम्य है। और वही
कि अग्नि उच कामको पितरोंको पशुपत्नी दे वहा कने
कम्य वाहनके नामसे पुनरा पया है। हम जाने भी देखेंगे
कि पितरोंके प्रति हविषों के आनेवाला अग्निमें कामनावा
नामसे कहा गया है।

आवह वृत्ता अग्निसे आवहवा पापें अग्नि उपकारों

शुद्धिः । प्राज्ञः । विदुषः । स्वध्याने ते ब्रह्मज्ञानं ।
 देवमन्त्रा हर्षाणि ॥ अथर्व १८ । ४ । १५

(जलं ब्रह्म) धारणकर और प्राप्त कर (भूमिः उप
 म्मा) करो ये कन्दना की जाती हुई (वातवेवाः) वातवे-
 व भूमि (ग्रहिणः द्याः जम्बू) मेवा हुआ द्या है । ननों
 कम्प मना हुआ द्या ह अतः है (ऐव) प्रकाशमान आत्मा ।
 मन्वा हन्ति) हमारे ये ही कई हिनोको [सिद्धयः प्रवाः]
 अन्ति किये वे किये कि (ते) के सितर किन्हीं के
 ये प्र स्वाकर मेवा है [स्वप्ना कान्] स्वप्नाक धाव
 धारे धार ही कई हिनोको कावै । [तं आदि] यू भी उभ
 निरोको का । इस मन् ये हये पठा चकतः है कि बिच आभि-
 नं धारं व प्रतः । कन्दना की जाती है उस आत्मिकी पितर अपवा
 प्र स्वाकर हमरे पाव भेजते हैं और वह भूमि हमारे पास
 है हिनो को के वाकर सितरोंकी पहुंचाती है । हमारे ये ही
 कई हिनोको सितरों तक पहुंचातेके किये आभि माध्यम है
 पर का पर सदा होता है ।

उपरोक्त दोनों मंत्र इस बातको स्पष्ट कर रहे हैं कि जिन
नितोने वास हमि पहुंचाया है और नितर लगे अपना दृष्ट
वशात हमि जानेके लिए मंत्र देते हैं।

श्री भक्तिः कर्मसाधनः पितृभूतः कर्मसाधनः

येषु ह्यस्मादि बोधयति हेतुमत्तमं तिसृष्व अ ।

५० १।१६।११ ॥ एषः ब्रह्मा ॥ ११।१६

[यः अग्निः] जो अग्नि [व्यवहारः] व्यवसाय
 विरोधी विचार करने करनेवाला है और जो [अज्ञान
 विषय] वस्तु [वस्तु] वस्तु के करनेवाले विरोधी व्यवसाय
 करती है वह अग्नि [देवता] विष्णुः व ह्यवाग्नि प्रदीपति]
 ऐसा और विरोधी के विरोधी ह्यवाग्नि को कहे अज्ञान ऐसी व
 विरोधी को किने तुम्हारे लिए ह्यवाग्नि के जाई हूँ ।

हैं भ्रममें हम अभी देख आए हैं कि अग्नि विस्फोट का एकबार उभरे किए हमिनोके के जलती है। हमि के जलनेपर विस्फोटो वह क्षुब्ध करता है कि तुम्हारे किए मैं हमि के जलने हैं इसे जलने इस भ्रममें कहा गया है। जहांपर अग्नि को जलने कहा गया है। दोनों व विस्फोट दोनों का ही अग्नि हमि जलती है वह भी इसके बराबर कहा है। अग्नि जलने को जलने के जलने के नाम के कहा गया है।

कामधे कथ्यवाहनाथ स्वस्वा भगवः । अथर्व. १८।१।७१

(कर्मसाहचर्य आशये) कर्मसाहचर्य महत्त्व करियेवही अति

ॐ विष्णु (स्वधा नमः) स्वधा और वमस्वर होते ।

पितरोंके किए की जाती हविष् नाम हव्य है और देवोंके किए की जाती हविष् नाम हव्य है ।

अधिका दरगत पिछरोंको जानना ।

अमिष्यते अमर्षं हृष्यवाहं भूतप्रियम् । ॥ १ ॥
विद्विषान् मिथीन् पितॄन् परावृत्तो गतम् ॥

संख्या १८४४१

(अमर्त्य) परमपदसे रहित (पुत्रविर्ष) मित्रको भी बहुत मित्र है देखी (हृष्यधर्ष) हम्सोका बहन करनेवाली अग्निको पितृव्य (समिन्धते) अच्छी प्रचार प्रकीर्ष करते हैं। और (हः) यह अग्नि (निषिताम् निषान्) छिपे हुए अन्धकारोंकी तरह (बर्षा ह्योपमा है) (पराजयो पतान् विभुन्) परजय विपत्तियों (वेर) जानकी है।

वहाँपर वह बतला गया है कि छिप हुए खजानों का तरह जो पितर खर्चवा आँखों से ओझल है अर्थात् खर्चवा खजाना है (बाहेरे दूर देखते बाहेरे भ्रष्ट हो ना परकाश-वादी होनेसे भ्रष्ट हो) उन्हें अग्नि जलती है। इसी छिप अग्निसे कहा गया है कि वह पितरोंको हवि पशुनाथ और इसी छिप रही पर्याप्त खटती है।

देवदह विठ्ठरो मेव मेव पादव विप्र पां उच म

प्रसिद्ध । त्वं बाल्यं पठि तं ज्ञातव्यम् । इत्यभिर्वाच्यं

सूच्यं वर्षम् ६ ॥ १५५१३ ॥

(बिना इस विचार) जो विचार बहापर है, (बिना यह) और जो बहापर नहीं है (बिना यह विचार) तथा जिन विचारों का हम जायते हैं (बिना यह प्र विद्या) तथा जिन विचारों को हम नहीं जानते इस प्रकार के (बिना वे) जितने भी वे विचार हैं इस सबको (जाते-वहा) है जाते-वहा अर्थ (बिना वे) व जायते है। (स्वधर्म) स्वधर्मों का धर्म (मुद्रा) धर्म) ज्ञान प्रकाश कि यह सबको (मुद्रा) धर्म प्रकाश कर।

इस सत्रमें एक कपड़े आननका विदमन अविदमन
शाद लकड़ा आदि का प्रचारक विरोधी जननाम
बताया गया है। मित्र सत्र आधुनिक विरोधी विप्लव
बर्तमानों में है।

पद्म श्री अतिरिक्त अक्षरों अक्षरों के गणन ३३३

वशाः । तद् व वृत्तः पुनराध्यायनाम साक्षाः २२५

विद्यते मातृवत्तम् । अथ १८/१४

हे तत्तरो । (वा नत् एक अक्षरं) तुम्हारे जिस अक्षर को (पितृभोक्ते गमयन् आत्मेनाः अस्मिः) पितृभोक्ते के आत्मा हुई आत्मेना अस्मिने (अक्षरात्) भोज किया है (वा तत् एतत्) तुम्हारे अब इस अक्षरके मैं (पुनः) फिर (आत्मावयवि) पूर्व करता हूँ । (अक्षरात् पितरोः) अपने सब अक्षरोंसे मुक्त हुए हुए पितरो । (स्वयं वाचवत्पुत्र) स्वयंसे अनभिज्ञ होना ।

इस मंत्रसे एसा पता चलता है कि अग्नि मरकेके अवस्तर पितरोंका पितृभोक्ते न आती हुई उनके घाटीके किसी एक चक्रके यष्टीपर भोज जाती है ।

इसके सिवाय पितृवाच में इस विवेक कर आए थे कि अग्नि पितृवाच मार्गका जाननी है । वहाँ हमें पता चलता है कि अग्नि पितरोंको जानती है पितृवाच को जानती है । इसका ही वहाँ अग्नि पितृभोक्ते आकर पितरोंका इति पर्व-वादी ह अथ वराह उक्ता हमारे वक्षोंमें भी अपने हाथ में आता है । हमन पितृवाच में वह भी वैसा है कि पितर पूर्व-दिरवाक हाथ आते हैं । इन वक्षोंसे ऐसा पता चलता है कि प्राचीन भोज को इतक पर्यंत अग्नि पितरोंको न आती है । एसा सुबोधमें वही अग्नि सर्वव्यपे परिणत होकर के आता है । इस प्रकार सुभास्य अग्नि के पितृवाच मार्गका कुछ पता दिया आ उद्यम ह । अक्षरके विवचनसे इतना हमें ज्ञात न जाना है कि पितरोंका अग्नि जान हाथ पितृभोक्ते के आता है और वराहे जान हाथ पुनः वराहमें इति आदि जानके निम्न न भी आता है ।

अधिका मृत पुरुषका पितरांक पास पदुधाना ।

पुनः एतद्व्याख्यानम् अग्निमन्त्रप्रवृत्तयश्च गोवाः ।
म त्वे-वा परिदत्तं तन्मन्त्रोद्धारणं चम्पुः सुविद्
प्रियेव ह ॥ ॥ १ १ १॥

गवा अर्थ १८। १। ५४

(अनन्तरात् मुनयेन भोग पूजा) ह मृत मनुष्य ।
मित्रा प्रवृत्तयश्च अग्निमन्त्राः एतत् पूजा मित्रान् एषा
इतः प्रवृत्तयः) उक्तता हुआ अपनी रक्षितों द्वारा तरो
अ भाग इस पूजा को उक्त प्रवृत्त भाग को और न जाने ।
(प अ-नाः) वह अन्त (वा) तुम्हें (एतेभ्यः पितृभ्यः)

हम पितरोंके लिए या (सुविद्वान्-वाः देवेभ्यः) प्रत्येक वन-
वाक वेदोंके लिए (परिदत्त) देने ।

वह मंत्र भी उपरोक्त परिणामको स्पष्ट करने पुन कर रहा
है । नास्त्वध्यायने पूजाका अर्थ आदित्य किया है । (मित्र
७। १।) तन्मन्त्रात् पूर्व मृत पुरुषको आत्माके अर्पण
रक्षितोंके के आता है एसा प्रतीय होता है । पितृवाचमें जो
मंत्र (११। १। ५४) हमने दिया है उसीकी वह मंत्र पुन वराह
हुना प्रतीय होता है ।

मैत्रमन्त्रे विद्वदो मासि होचो मास्य त्वचं विक्षिपो
या करीरम् । वराह्यतः कुम्भो अतवेदोऽनेनेन न
द्विष्टवात् पितृभ्यः ॥ ॥ १। १५१

वह मंत्र अक्षरविद्वदों कोके अतवेदके हाथ निम्न प्रवृत्त
आता है ।

मैत्रमन्त्रे विद्वदो मासि होचो मास्य त्वचं विक्षिपो
या करीरम् । अथ वराह करति आत्मेदोऽनेनेन न
द्विष्टवात् पितृभ्यः ॥

अर्थ १८। १५४

(अग्नि) है अग्नि । (पूर्व या विद्वदः) इस प्रेतका एक
प्रकारसे मत जन्म कि जिससे इसे विवेक कर हो । (या
अग्नि होनाः) इसे होकर प्रेत मत कर । (अथ त्वचं न
विक्षिपः) इसकी चमकीको मत फैल । (या करीरं) और
इस प्रेतका घाटी कोभी मत फैल अर्थात् इसकी एसा न
घाटी पूर्वतया जना दे कोई भी भाग वराहकाचसे अक्षिप्त
न रहे और (आतवेदः) ह आतवेदम् अग्नि ! (वराह्यतः
कुम्भः) अब तु इस प्रेतको परिपक्व बना द अर्थात् पूर्व-
तया जन्म दे (अथ) त्व (एवं) इसको (पितृभ्यः
मित्रिणाम्) पितरोंके लिए भय दे अर्थात् पितृभोक्ते पितरों-
के पास पदुका दे ।

वह मंत्र यदि अक्षेपित-वराह-विपक्व दे तथापि अर्पणका
पितरोंके लिय प्रेत जन्म देनेवा कार्य दक्षिण निम्न वराह
पता है । इस मंत्रक उक्तार्थसे ऐसा पता चलता है कि कव-
तक देह कर्णमें गया जन्म नहीं आती तबतक आत्मा देहके
आवृत्त ही मरकाको रहती है । इस परिणामानुसार जो
अष्टमाध धीमं मुक्त करनेके निम्न न कहके लिय निमित्त
रक्षितवर भयनेके लिए आत्माका दहन करना अक्षेपित वराह
प्रवृत्त होता है ।

मृतं वयं अस्ति जलवेदोऽमेयेव पवित्रात् पितृभ्यः ।
ब्रह्मायै वसुवीतिमेतामया वृषाणां वसुवीर्भवति ॥

श्रु. १ । १६।१२ ॥

(वातवेदः) हे वातवेदस्य जनि ! (यथा श्रुतं कश्चि)
यस्य इव प्रेतस्य पूर्वतया पश्य अर्थात् दृश्य कर दे (जय
सर्वं विष्णुः परित्यात्) तव इत्यर्थे पितरों के लिए सोचो ।
(यथा) जय वह प्रेत (एतां अनुवीति पद्यमिति) इस
श्रुत्यर्थे वयं को प्राप्त होता है अर्थात् जब इसके प्रायः विकृत
क्यों है (अयं) तब श्रुत्यर्थे विकृत वाचके वायु प्रेत (पुर
वीर) (विसर्ग वसुवीः अर्थात्) देखो वयं हो जाता है ।

येत देखो वयं किस प्रकार होता है वह इसी मंत्रके वाच
के अर्थ वर्णित श्रु. १ । १६।१२ ॥ में वर्णित है ।

सर्वं वसुवीं पश्य वातमात्रायां वा य मय्यहं पृथिवीं य
वर्मणा । अतो वा मय्यहं वसि तव्यं त हितम्योपधीषु
प्रविश्या हरीरे । ॥

श्रु. १ । १६।१३ ॥

हे प्रेत ! त्वी (यः सर्वं पश्यन्) आज सर्वको जाने ।
(अथा वातं) त्वी अत्राय (मान) वसुको जाने ।
और हे प्रेत ! (वर्मणा) धर्मसे अर्थात् कर्म प्रकट्य
वर्ण अथवा वर्णवादि त्वर्णके वर्मसे अर्थात् जो पार्थिव
पद है वह पृथिवी में जाके इत्यादि रीतिसे (वां य
पृथिवी य मय्यहं) जो य पृथिवीको या अर्थात् जो
पुत्र जब धरे में है वह अपने जाने व पृथिवीको है वह
पृथिवी जाने । (वा) अथवा (अतो मय्यहं) अतोमैं
कर्मसे जाने (यदि तत्रते हित) यदि वहाँ का कर्म अथ
छेमें विपश्य हो । और इसी प्रकार (अतोपधिषु पृथिवी
प्रविश्या) धर्मवर्णमें प्रविश्याँसे विपद्य हा अर्थात् जाय-
विपद्य अथ अर्थवर्णमें पश्य जाने ।

वह वातवेदके १ में मय्यहं वसुवीं १६ वां सूक्त
क्यों उद्धृत किया है अतः इस इस उपर्यं सूक्त पर आश
पश्य १६वां विचार करने । वहाँ पर हमें इसका ही देखना
पड़ता कि अयं प्रेतः यथा कर्ता है और तदनुसार हमने
देखा कि अयं अयं पितृलोकमें पितरोंके पास पहुँचाती है ।

मरनेपर पितृलोकमें जाना ।

यथाश्रुतमनुः प्रस्ति त्वमग्ने पितृणां लोकमग्निं गच्छ
तु के वयम् । तु माहुरापोहितवधरति शुभाशुभं
अग्ने वेदमग्ने ॥

अथर्व ११।१।७५५

(अग्ने) हे अग्नि ! (त्वं योमानां आहुः प्रस्ति) तु
जीवितोंकी आहुको बड़ा और जय (ते वयः) वे मर जाने
तब (पितृणां लोकं अग्निं गच्छन्तु) पितृलोकमें जाने अथवा
जबतक वे जीवित हैं तबतक उनकी आहु इति अतः १६
और जब मरे तब पितृलोकमें पहुँचा दे (अर्थात् विपश्यन्)
य वयं अनेकाओंके विशेष रूपसे तपता हुआ (शुभाशुभः)
उत्तम वाईर्यम तु (अग्ने) इस मंत्रके लिए (अथवा यथा
यथा) कर्तव्यकारिणी प्रत्येक उपदेश (वेदि) प्राप्त कर
अर्थात् इसके लिए अग्नेय कथा कर्तव्य करनेवाली हो । इस
मंत्रमें अग्निसे यथा देखो प्रार्थना की गई है परन्तु यथा
तो सर्व देता है अतः वहाँ अग्नि सर्वके लिए जाता है ऐसा
प्रतीत होता है । इसके विनाय सर्वसे भी सोचाबुद्धि प्रार्थना
करनेवाले वयं हैं तथा पहिले हम यह भी देख आए हैं कि
सर्व भित्तोंसे पितर पितृलोकमें जाते हैं अतः अग्निसे यह
सर्वका प्रार्थना है और सर्वके कहा गया है कि वह सर्वको पितृ-
लोकमें ले जावे । पितृलोककी अवधि पूर्व हमने पर अग्नि
किर वापिस मय्यहं अयं अयं अयं अयं अयं अयं अयं अयं
मंत्र हमें वर्णित रहा है—

अथसुख पुनरग्ने पितृभ्यो वस्य आहुतवधरति स्व-
वाग्निः । अत्युर्ध्वमन उपवेत्तु स्वयं सम्यक्करोतम्या
आवधवः ॥

श्रु. १ । १६ । ५ ॥

वही मंत्र अग्नेवेदमें पावसे पठ भेदके साथ निम्न प्रकार
आया है—

अथसुख पुनरग्ने पितृभ्यो वस्य आहुतवधरति स्व-
वाग्निः । अत्युर्ध्वमन उपवेत्तु स्वयं सम्यक्करोतम्या
आवधवः ॥

अथ १६ । १ । ५ ॥

(अग्ने) हे अग्नि ! (वां) जो (ते आहुतः) तरे
में अग्नेयिके समान अहुत किया हुआ (स्ववाग्निः अर्थात्)
स्ववाग्नी द्वारा अर्थात् स्ववाग्नीको आहुत हुआ विपश्य करता
है उक्तमें (पितृभ्यः) पितरोंके (पुनः) फिर आहुत (यथा
यथा) वही जोय जिसे कि (यथा) वह पुनर्यथा निवा
हुआ अथवा (यथा) कर्तव्यों को प्राप्त करे तथा (यथा
वेदः) हे आहुतस्य अयं । (तपसा धर्मपद्यं) वह धर्मपद्य
पुन्य होने । धर्म । धर्म पद्य का है । येव हाव्यमन्यम धर्मपद्य
हति । १५६ । १६ । ५ ॥ अथवा इस मन्त्र अर्थ निम्न
अर्थात् जो किवा अ मन्त्र है ।

हे अरुण ! जो पुरुष तेरे अनेकिक घमन आहुत किया हुआ स्वयामोघे निचरण कर रहा है उसे पितरों के लिए वे अर्वात् बड़े तितुबको में पहुँचा । वहाँ वेच अर्वात् सप्त पुरुष को पठान शीर्ष बौकन पारण करती हुई अपने घर आए । वह तैत्तिरीय करीबो प्राप्त होवे ।

इस अर्धके अनुष्ठान इस संज्ञका की विविधोप अनेकिक-उत्तरार में किया जा सकता है । मन्त्रके पूर्वाधिके सप्त पुरुषके लिए प्रार्थना की गई है तथा उत्तरारों से राह उत्तरार में आई हुई मृत पुरुषको पठान के लिए शीर्षोप की प्रार्थना है ।

कम्पात् अग्नि ।

किञ्च अग्निवत् अनेकिक उत्तरार में विविधोप किया जाता है इस अग्निवत् नाम कम्पात् अग्नि है । कम्पात् अग्निवत् अर्ध है माँचाहारी अग्नि अर्वात् जिसमें मांस होमा जाता है वह अग्नि । अनेकिक उत्तरारों में मृत पुरुषों कोमा जाता है अतः इसका नाम कम्पात् अग्नि है । इसके किञ्चन कर्मोप पेशा की मत है कि कम्पन्न तितुबकाहिमें भी मांस होमा जाता है और अतः इस अग्निवत् नाम कम्पात् अग्नि है । इसकी पितरोंके प्रति हमारे कर्तव्य इस कीर्तके मोक्ष देण आए हैं कि जो एक मंत्र हमें ऐसे की भिजे हैं जिसमें कि पितरोंके लिए वरा मांस अग्नि देनेका विवेक मिलता है । भास् करनेका जोक पितरोंके लिए माँचा माँचा माँचा है परंतु मांस देनेके घमन इसके स्थानपर पाक (उडव) बैठे हैं । परंतु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मृत कठोर होमा जानेके कारण ही क्या और माँचके होमने की कल्पना बेदमें की गई है वहाँ कि मृत अग्निमें क्या और माँच तथा भज होते हैं । अस्तु अब हम देखेंगे कि कम्पात् अग्निके क्या कार्य हैं व पितरोंके उडव क्या विशेष संज्ञक है ।

कम्पादमती प्रहिवोमि ह्य वमराजोन्मत्तानु रिषवाहा
हृदैवागमिती वातवेदस्ते देव्यो ह्यो वहुतु प्रमाजमवृत्

म १ । ११ । १ । १ अतु अ १५ । १२ ।

अथ १२ । २ । ८ ॥

(कम्पात् अग्नि वृत् प्रहिवोमि) माँच मन्त्रक अग्निवत् ह्य विषवाहा है । (रिषवाहा) वापक वहन करनेवाली वह अग्नि (वमराजः मन्त्रः) अर्वाका वम राजा है इन प्रवेदीय वकी जाय । (इह) वहाँ पर (अर्ध) इतरा जात-वेरा प्रमाजमवृत्) वह दृष्टी कम्पात् अग्निवत् विष वातवेदस्

अग्नि वापका हुई (देव्यः इत्य वहुतु) देवोंके लिए वृत् का इगव करें अर्वात् वहुतु पहुँचावे ।

इस मंत्रमें कम्पात् अग्नि को वमराज के देवोंके अनेकिक विवेक दे और वाप ही कम्पात् अग्नि देवोंके इत्यके वहन कर देके लिए अनुपपुत्र है वह भी बताया गया है । इसका अर्थ प्राय यह है कि कम्पात् अग्निवत् संज्ञक वमकोसे है अर्ध कि पितर रहते हैं ।

जो अग्निः कम्पात् अग्निवत् को पुरुषिम् पुरुषिम् वातवेदस् । वं इरामि तितुबकाहि देव व वरतीम्पात् परमे उडवत्वे ॥

म १ । १२ । १ ॥

वह मंत्र जोदेके वातवेदस् अर्धवेदमें दिव्य प्रकर अग्नि है ।

जो अग्निः कम्पात् अग्निवत् मृदतिव वरुकिर् वातवेदस् । वं इरामि तितुबकाहि वृत् व वरतीम्पात् परमे उडवत्वे ॥

म १ । १२ । १ ॥

(वः कम्पात् अग्निः) वा माँचाहारी अग्नि (इय इत्त वातवेदस् पस्वत्) इस दृष्टी वातवेदस् अग्निवत् अग्निवत् देव कर (वा पृष्ट प्रविषेव) तुम्हारे घर में पुत्र नई है । (वं देव) वरु वीज्यावा कम्पात् अग्निवत् (तितुबकाहि इरामि) तितुबकाहि लिए वरता हूँ । (वा) वह (परमे उडवत्वे) परमे उडवत्वे (वर्त) वरुके (कम्पात्) प्राप्त होवे । वहाँपर इस बातको स्पष्ट किया गया है कि कम्पात् अग्नि तितुबकाहि लिए अग्नि आती है । इसका वह मन्त्रक मन्त्र होता है कि तितुबकाहि में माँचकी आहुतिको है जिसके लिए दृष्टी अग्नि वरुपुत्र है । इसी अग्नि में पितरोंके लिए माँच व वराका होव (देव कि पूर्व देव आए हैं) होता होमा । इसके साथ हम यह भी देखते हैं कि कम्पात् अग्नि वं विष दृष्टीको वातवेदस् के माँचके कहा गया है । कम्पात् अग्निवत् वातवेदस् वं अर्ध कहा गया । इसका मतकन यह है कि तितुबकाहि कोउकर अग्नि वरुप वातवेदस् अग्निवत् विविधोप होता है । वात तितुबकाहि पितरोंके अग्नि वरुके लिए वं देव वरुवत्वेक लिए कम्पात् अग्निवत् प्रयोग होता है ।

कम्पादमतीमिपिती इरामि वातवेदस् इहमं वनेव मृदुत् । नि वं वासि माँचवेदस् विद्वत् तितुबकाहि कोउकेपि माँच वरुत् ॥

अथ १२ । १२ ॥

इसमें जे वह प्रतीत होता है कि अग्नि का विद्यमान विषय की वि-
पितरोंमें विद्यमान नहीं है और जो हमारा व हमारी कठिनाई
पुनः पुनः बाध करते रहते हैं और जो हमारे व जायते हुए
हमियों को जो कि विपरीतमें उल्लेख की पर्यंत है करते रहते
हैं । पर जब वहमें के आकर ऐसा करते हैं तो अग्नि उन्हें
बलसे दूर भगा देती है उन्हें विपरीतों में बैठकर हमि जन्मे
वहीं देती । इसके वह भी परिणाम विद्यमान था करता है कि
पितरोंके लिए जो भी कुछ देना हो वह अग्नि द्वारा अवश्य
बल करक ही देना चाहिए ताकि वह पितरोंको ही मिले ।
अग्नि का विद्यमान कोशों में के देना ।

अग्निके क्षीरका पितरोंमें प्रवेष्ट ।

बलसे देवेयु महिमा स्वर्गों वा ते यन्तुः पितृभ्यानिवेष्ट ।
पुत्रिणां ते मनुष्येषु पयसेभ्यो तथा रश्मिस्तस्मात्तु वेदि ॥

अथर्व ११।१।३॥

(अग्नि) है अग्नि । (वा ते महिमा) जो ठीक यद्विषय
(देवेयु स्वर्ग) देवोंमें कुछ पशुपतिवादी है और (वा ते
यन्तु) जो वेदा क्षीर (पितृभ्यानिवेष्ट) पितरोंमें प्रविष्ट
हुआ हुआ है तथा (वा ते पुत्रिणां) जो ठीक पोषकता (मनु-
ष्येषु प्रपये) मनुष्यों में फैली हुई है (तथा) उल्लेख (अग्नि-
या रश्मि भवि) हमारे अग्नि रश्मि को अवश्यपति की स्था-
पित कर अवश्य हमें अवश्यपति है ।

यहां पर अग्नि अपने क्षीरके पितरोंमें प्रविष्ट हुई हुई
है वह बल दिखाई गई है । अग्नि तथा पितरोंमें विद्यमान
रहती है ऐसा इच्छा अभिप्राय मान्य पड़ता है । किन्तु
मंत्रमें पितरोंके वह प्रायश्चित्त की गई है कि व तो अग्नि हमसे
है व और नहीं हम अग्नि के है व । मंत्र किन्तु है—

जो जो अग्नि पितरों द्वारा कृपा दिव्यकायको सर्वोत्तु ।
मन्त्रार्थ पर गुह्यमि देव मा को अस्मान् विक्षिप्त
मा वरं तम् ॥ अथर्व ११।१।३ ॥

(पितर) है पितरों ! (वा अमृतं अग्निः) जो अम-
रबीज अग्नि (वा सर्वोत्तु मनु) हम मरणशीलके हव्यों
में (वा देवता) प्रोक्त हुई हुई है (तं देवं) जब महाकाम्य
अभिप्राय (अग्निं पितरं मनुष्यं) में अग्नि अग्नि रश्मि
भोक्त प्रदान करता है— रक्षित करता है । (वा) वह
अग्नि (अमृतं वा विपुल) हम मरणके हैं वत करे
और (वरं मा तं) हम उल्लेख है वत करे । दोनों वरदान

है व करते हुए भिन्नकर रहे ।

उपरोक्त मंत्रमें पितरोंके प्रार्थना की गई है कि अग्नि
हमसे है व करे व हम अग्निसे है व करे । नीचे मिले अग्नि
अग्निसे प्रार्थना की गई है कि देव तथा पितर हमसे व
अवरवस्ती न करे । मंत्र इस प्रकार है—

जो व जो अग्नि सुवर्ण देवा मा पूर्व जन्मे निवृ-
पवन्ताः । इरावतोः सप्तयोः केतुर्गर्भोऽनन्त-
स्वमेकम् ॥ अथर्व ११।५।३ ॥

(अग्नि) है अग्नि । (अत्र) पदार्थ (देव व ज-
सुवर्णम्) देवत्व हमारे पास अवरवस्ती न करे । और
(पूर्व पवन्ताः पितरं वा) पुरातन अवश्य पूर्वजन्मे वत
विपुल अवरवस्ती वत करे । क्योंकि है अग्नि । [केतु]
प्रकाशक [पुरातनो सप्तयोः] पुरातन कष्टवृत्तिके [अन्तः]
अन्तर पूर्वकर्मसे प्रकाशित होती है [अथात्र] और
क्योंकि [देवार्थं एवं महत् अमृतम्] देवोंका एक अमृत
प्राप्तवादा है ।

यहांपर अग्निसे कहा गया है कि देव तथा पितर हमसे
पात्र अवरवस्तीका व्यवहार न करे । हमारी इच्छासे निवृ-
हट करके वे हमें किसी भी कार्यमें प्रवृत्त न करे । इन्हें निवृ-
हट पर अग्नि अमृतको प्रत्युक्त किया गया है देव अमृत लेना
है क्योंकि पु तथा इन्हीं दोषोंपर पूर्व प्रकाशित अमृत है
अग्नि नहीं । इसके अतिरिक्त 'महोदध्या अमृतत्वम्' है
भी नहीं पता पड़ता है । पूर्वमें जब देवोंको प्रायश्चित्त देना
आमन्त्रित है किता कि अमृत वत रहा है ।

अमृतत्व मनु प्राप्त है प्रायश्चित्त । प्रायश्चित्त वा अमृत
क १।१।१।५ ॥ बलसे प्रायश्चित्त द्वारा ही अमृत
प्रायश्चित्त प्राप्त है । अमृतत्व प्रायश्चित्त अमृतत्व—
अमृतत्व प्रायश्चित्त देवोंकी कति । पूर्वको देवोंकी अमृत
कहा गया है । पूर्वों के सर्वोत्तु देवतावाला ।
क ११।१।१।५ ॥

पुद्गरत—हम वल्लभ्य पायुके कष्ट कष्ट का हन है ।
प्रकाशक का अर्थ होगा है इत पूर्वक अवरवस्ती
की वत करना ।

पितरार्थ अग्निकी उत्पाति ।

होनामिदं जतम निवृत्त विपुल अमृतम् ।

मन्त्रार्थ अमृत अमृत वत अग्नि वत अमृतम् अथर्व १।५।३

(येना) चतुर्थाक्षर व चतुर्था रेवेवाळा (परा) पाठक व राक्ष (होता) केने व रेवेवाळा (अग्नि) अग्नि (विद्यु-
म्नः) ज्येने (पितरों की राक्षकिए (अग्नि) उत्पन्न हुआ
है। उस अग्नि की प्रकाश से (अग्नि) चतुर्थाक्षर वा अक्षर
के मुख हुए हुए हम (प्रवर्ग) आत्मज्ञ पूजनीय (येन्य)
चतुर्थाक्षर अक्षर (वस्तु) अक्षर (अक्षर) निब-
धन करनेसे प्रवर्ग हो। अक्षर हुए प्रवर्गके अक्षर हम अपने
पाठ स्थिर रखने से प्रवर्ग हो। अक्षर।

इस मन्त्रमें अग्निदेवी उत्पत्ति के प्रयोजन पितरों की स्थापना का है। इस ऊपर देख आए हैं कि अग्नि पितरों की पत्नी ध्यातव्य है। उसके बिना पितरों की स्थापना संभव नहीं। इसीको यह मन्त्र प्रतिपादित कर रहा है।

बैश्वानर अग्नि का पितरों को धारण करना ।

विद्यानो विविदिं जुहोमि आहम आनन्दाभ्युत्थम् ।
 स विमर्शि पितरं पितृमहाम् प्रपितामहाम् विमर्शि
 सिन्धुप्रभम् ॥ अथर्ववेद १६१४ १५॥

(वैद्यनाथ इव इतिः तद्विधिः) वैद्यनाथ इति नाम्नैः नमः इति
वाक्यं नृपोऽपि (तद्विचारः-वाक्यं उक्तं इव) वैद्यनाथ
इत्यर्थे वाक्येनैव तद्विचारः समानः कैः नमः इति वाक्येन
वाक्यं नृपोऽपि (तद्विचारः-वाक्यं उक्तं इव) वैद्यनाथ
इत्यर्थे वाक्येनैव तद्विचारः समानः कैः नमः इति वाक्येन
वाक्यं नृपोऽपि (तद्विचारः-वाक्यं उक्तं इव) वैद्यनाथ
इत्यर्थे वाक्येनैव तद्विचारः समानः कैः नमः इति वाक्येन

यहाँ पर अग्निष्ठी वैश्वानर के मागसे कहा गया है। वैश्वानर
यहाँ है सब मर्त्यो के लोकेश्वर। अग्नि सब
मनुष्यों के बापों है। अनेकोंने सब मनुष्यों को
अग्नि कहा। कहा है और कि आज सबको
विष्णुधर्म के माग है ऐसा कि इस कथा एक बार है इस
प्रकार अग्नि वैश्वानर है। इस मन्त्रमें उपराष्ट्र सबमें की
उपासना की गई है। वित्त के लिए या कुछ देना है यह आर्त
को दान कहिए वह वही पहुँचाता है और इस प्रकार सबका
भाग वापस करती है।

(2)

अग्निप्यास पित्तम् ।

असंख्यता का क्या अर्थ है वह एक विशारदिय विषय है ।
कथोक विषय निम्न भाष्यकर्ताओंमें वृत्तकालिक विषय अर्थ दिया
है । तबही वदनेयोग्य इच्छा का अर्थ निम्नता है वह हवे

लेखा है। जतिव्याप्तका लक्ष्यार्थ इस प्रकार है अतिव्याप्ताताः
स्वादिताते आमिव्याप्ताः अर्थात् जिनका आगने स्पष्ट विधा है
वानी जो अतिव्याप्ता लक्ष्यार्थ है। इसी विमर्शकी तथा इस अर्थ की
पुष्टि क्षतपथ माह्वय कर रहा है— अनामिन (व बहन्स्त्वयति ते
पतरो अतिव्याप्ताः) १. १. ७ अथवा (जिनको अग्नि ही जलमयी
हुई स्वाद लेती है) जे पतरो जतिव्याप्त रहजाते हैं। इस विवे
चनेसे अतिव्याप्त पित्तोंके विषयमें हमारे सामने यह परिणाम
विद्यता कि जिनका अंशस्थि संस्कार अग्निह्रात होता है उन
पित्तोंका नाम अतिव्याप्त पित्त है। अब हम वेद मन्त्रापर छवि
बाँटते बार देखते कि उनसे क्या पता चलता है।

ये अग्निष्वात्ता ये अग्निष्वात्ता मन्त्रे द्विः स्वयया
मादयन्ते । तेभ्य स्वराहस्यनीतमेता यथावत् तस्य
व्यवस्था ॥ ११॥

[illegible]

अनुवर्तिष्ठ अथ है ओपर्वेष्टा नेशाव नवनामिष्ठ
 कथं प्रोक्तं ह्यहं यथास्मिन्नेव । नरः कश्चिन्न न त है क्वाचि
 प्रायः मित्राः जगत्परा दृष्ट्या लब्धः । तदं ह्यहं प्रोक्तं है । इह
 भगवन् नरः वातः स्वयं है किं विष्णुः स्वयं विरोधः पुनर्जन्म
 ह्यहं है कथयन्ति मित्राः एव ह्यहं प्रोक्तं है । अथवा नरः मित्रा
 है । नरः प्रोक्तं है । अथवा नरः मित्राः एव ह्यहं प्रोक्तं है । अथवा
 नरः प्रोक्तं है । अथवा नरः मित्राः एव ह्यहं प्रोक्तं है । अथवा

ये आत्महृद्या न प्रयत्निदृक्ता मम्य दिव स्वयया
 आद्यम्य । तेन स्वय ह्युनाभिमेता यवाद्य उम्यं
 कल्पदार्ति ।

अबे जपोख मखानुमार ही दे। इ व संतो का पुत्र।
करके देखने पाठको को सब संव अमरपान का अमर फल
ही जाण्यो। यमुनेदख इक मख मे जहाँ अमरपान आर
अमरि प्याथा पद है वहाँ पर फलवरने अमरपाना व
अमरिदख्या। पद है। एव मख कवना समान है। इन्ध
अमरपान पद है कि ज अर्थ अमरपाना का है वही अम
अमरपान का है। अमरपान का अर्थ रसप है। इ ज अम

द्वारा जमाना पया हो। अतः अभिव्यक्ति का भी अर्थ हुआ कि जो अग्नि द्वारा जमाना पया हो। इस प्रारंभ में ऐसा भाव है कि जलपत्र ज्ञानार्थने भी वही अर्थ दिया है जो कि वेदवर्ती के पठा तक रहा है। इस प्रकार वेद व ज्ञानार्थ अभिव्यक्ति के इसी अर्थ पर सहमत है कि जो अग्नि द्वारा जमाना पया हो। पाठक इसपर विचार करें कहीं कि इससे पितरों पर विशेष प्रकाश पड़ता है। अभिव्यक्ति का उपयोग अर्थ दोष पर विचारके अभिव्यक्ति पितर वृत्त पितरही है वह सिद्ध होता है और जगत् जैसा कि आने देखेंगे वहाँ में पुष्पाकार रखा कर में प्रकाश देने वह इति किञ्चित्क प्रकाश है। इसका अभिप्राय स्पष्ट रूपसे यह है कि मृत पितरों के लिए कुछ व कुछ अवश्य करना चाहिए इतना अभिव्यक्ति सम्भार प्रकाश काक न क बाद अब हम अभिव्यक्ति पितर के वहाँ में आने हमारी रक्षा करने आदि वर्धनेवाले मन्त्रों को उद्धृत करते हैं।

अभिव्यक्तिः पितरं पृथु यच्छत सः सः सवृत्त
सुमयीतयः। अथा हवींषि मयतामि बर्हिष्या शनि
सचवीरं द्यावत ३ अ० ११५।११

यह मंत्र जोड़ते पाठमार्के साव वसुधैव कुमायः अभिव्यक्ति
भी अथा ह। देखी वसुः ११।११ तथा अर्थ १८।
३। ४४। अर्थ इस प्रकार है--

ह वसुधैव अभिव्यक्ति पितरों। इस वहाँ आगे।
पर वरमें स्थित होओ और वहाँ दिग् नष्ट हविर्गोको जाओ।
हमें सब प्रकारकी वारतासे पूर्ण बनके हो।

इस मंत्रमें अभिव्यक्ति पितरोंकी वहाँ में पुष्पाकार हवि किञ्चित्
तथा मायवत् स्पष्ट रूपसे उल्लेख है।

आवाप्तुमः पितरः सोम्यालोऽभिव्यक्तिः पविर्भिर्ह
यमैः। वरिभ्य वजे स्ववचा मयतोऽग्निं सुवसु
तेऽवमवमस्तः॥ वसुः अ० ११५।१४

(आवाप्तुमः) नाम संवाह्य करनेवाले [यः अभिव्यक्ति
पितरः] इसार अभिव्यक्ति पितर [देवतायै पविर्भिः] देव
ताम मायों द्वारा [अग्निम् वज्रं आवाप्तुम्] इस वहाँ आने।
[११५४ मयतामि] स्वपाके तुम हीकर आनन्दित होत हुए
[आवसुवसु] हमें उपदेष्ट करें और [तु अभिव्यक्ति अवसु] ने
हमारी रक्षा करें।

इस मंत्रमें भी पूर्ण मन्त्राकार वहाँ में पितरोंक आने स्वपाक
तुम हान करके हान व हमारी रक्षा करनेकी प्रार्थना है।

अभिव्यक्तिपितरुमो हवामहे वारतांके सोमवीरं व
वसुः॥ ते वी विवातः सुहवा मयसु क्वं स्वाम
पयसो रवीमासु॥ वसुः अ० ११५।१५

(वसुमताः) वसुधैवको (अभिव्यक्तिपितरः) अभिव्यक्ति
पितरोंकी (हवामहे) हम पुजते हैं, (ते) जो कि (मयसु
सोमवीरं आसु) जिस में मनुष्य प्रसन्नको पाते हैं ऐसे का
में सम्पत्तको करते हैं (ते विवातः) वे देवता पितर (क
सुहवाः मयसु) हमारे लिए सुखपूर्वक हुकाने जानक होने
अवस्य हमें हमें पुष्पाकारें का व हो हुकाने ही वे हमारी
प्रार्थना का स्वीकार कर का करें। (वसु) हम (स्वामं
पयसः स्वाम) पयोंके स्वामी होंगे।

वसुमताः का अभिव्यक्ति कुछ स्पष्ट नहीं होता। अतः
अथ-आवसे के वता है।

इस मंत्रमें अभिव्यक्ति पितरोंकी सोमजन करनेके लिए
आवाप्तुम किता वता है। तथा प्रार्थना की गई है कि वे हमें
पते हमारे आनन्दको स्वीकार करें। निम्न मंत्र में भिन्न भिन्न
प्रकारके पितरोंके किञ्चित् भिन्न प्रकारके प्रार्थना उल्लेख है।

पूजा वसुवीरका, पितृणां सोमवता वसुवीरका
वीरकाः पितृणां बर्हिषदा कुमा वसुवीरका
पितृणां अभिव्यक्तिपितरः कुमा वसुवीरका

वसुः ११५।१६

(पूजाः) पूर्ये (य वसुधैव तथा वसुवीरका) पूरे (य
केस वसु वा पयसं (सोमवता पितृणां) सोम वसुधैव वसु-
वाके पितरोंके हो। (वसुधैव) पूरे तथा (वसुवीरका)
पूर्ये केस वसु वा पयसं (वर्हिषदा पितृणां) पूजा वाक व
वेदनेवाके पितरों के हो। (कुमाः) काने तथा (वसुवीरका)
पूर्ये (य वसुधैव वसु वा पयसं (अभिव्यक्तिपितरः पितृणां) अभिव्यक्ति
पितरोंके हो। केस कुमाः वसुधैव वसुधैव वसुधैव इत मंत्र
मायवत् कोई वसुधैव प्रतीत नहीं होता और नहीं अर्थ स्पष्ट होता
है। इस प्रकार अभिव्यक्ति पितरोंक प्रार्थना वहाँ पर प्राक उल्लेख
होता है। वह प्रकारके भिन्न भिन्न मन्त्रों में प्रदर्शित है।

(३)

वर्हिषत् पितरः।

आह पितृमनुष्यवर्ती अभिव्यक्ति मन्त्रों व विचारों व
विचारों। वर्हिषदा के स्वधवा सुवसु भाग्यत् सिद्ध
एत हवापिज्ञाः ३ अ० ११५।१७ वसुः ११५।१८

अर्थ १८।१७।१८

(सुमिरत्रात् सिद्धं अहं मिथ्योऽपि आबिहित) उत्तम
स्वरूपे विराटो मे मे व्यापक परमात्माद्ये प्राप्त किया है। (य
कर्म निष्कर्मम् च) और य पिप्लेकाद्ये अर्थात् अनेक विरुद्ध
कर्म प्रकृत्य मे मे व्यापक परमात्माद्ये प्राप्त किया है। अतः
(मे कीर्तिः स्वयंवा द्युतस्व शिवाः मज्जन्त) को बहि अर्थात्
उन्नत (रत्नं) पर वैदिकेकाद्ये विरुद्ध स्वयंवाद्या विषय कर
अबिहित प्रोक्तो अथवा केवन् करते हैं (हे) शुभ विरतो !
(ह) हव नमो (अप्यभिष्टा) बार बार आओ !

[illegible]

(धरिषा सिरः) हे कृष्णस्य वर वैष्णवाके सिरतो ।
 (कथे) एका हस्ता (अर्थात्) हमारी ओर होओ मर्णात्
 हमारे रक्ष करो । [वः] तुम्हारे लिए (हमा) हमना नकम्)
 एन हमी से करते हैं, (अनुपमम्) हमको सेवक करो । (ते)
 हे तुम (अथेन अवसा) अन्त्यावसा रक्षक के साथ (भा
 वः) भावो । (अथ) और (तः) हमें (हं) ऐसी का
 वन्य रक्ष (होः) यथोक्त हूँ अन्त्या और [अरपः] धार
 र्थिज अन्तरा हो ।

यह पर बर्हिबद् विद्यार्थी के रक्षण हेतु का समय, भव्य
का स्थापना करि करके की प्रार्थना है ।

इस प्रकार वे व्यक्ति व विचारों का भी विचार लेते हैं। हमें
 मिलते हैं। इस प्रकार वे कई समस्याओं का भी विचार लेते हैं।
 विचार लेते विचार का भी विचार लेते हैं। विचार लेते
 विचार लेते विचार लेते हैं। विचार लेते विचार लेते हैं।
 विचार लेते विचार लेते हैं। विचार लेते विचार लेते हैं।

प्रेत व अस्येष्टि ।

इस प्रकार मैं हम खीर से घन मिश्रण के साथे अर्धान्न
के साथे घन से उनके अंतिम परस्पर वृद्धि तक की वृद्धि

[illegible]

किन्नाभों पर प्रकाश जाहेगे और अन्तमें उस प्रेतसंघर्षी का प्रापना में ही समाप्ति लगेगा करेगे ।

(t)

प्राण निकलने के कुछ समय पूर्व ।

मनुष्य देहमे प्राण के निवास जानेपर तत्पक्षी प्रेत संज्ञा होती है। जब प्राण निवास जानेको ही तत्त समय कथा करना चाहिए वह निम्न प्रश्न वर्णा रहा है।

इहं क्षिरण्यं विष्णुहि वने पितामहः पुरा ।

स्वर्गं यतः पितृवर्त्तं निर्मण्डि इच्छिन्म ॥

अथर्व १८।४८५६

दे मरुत्पथ उदय । [इव दिग्गज निष्कृति] इव साने च
 चारण कर [वध] शिख सनेत्रा कि [पुण] परिहरे [दे
 विता क्षमिणः] तेरे सिताने चारण किया या । इव प्रभर
 हे मनुष्य । [स्वर्ग] वता विष्णु वक्षिण हस्ते निर्मूर्च्छि
 स्वयं को जाले इव विताके साने हाथके सुशोभित कर ।

निर्देश-मूल शीतलकण्ठारवोः से बना है। मूल वायुवा
 यो मूल कण्ठ व मूलोपस्थित करना है।

इस वीथी पर खड़ी गई किताबों की असीम संख्या का दृष्टि में तो ये पते हैं। मस्तिष्क की परम्परा के लिये हमने संवेदी अंगुली पहनाई जाती है। साक्षात्कार में भिरुद्ध अथवा अंध की अंगुली किया है, अथवा समझ है उनके समझ में वह रिश्ता किन्नामति में समझाया जाय।

इस संज्ञा पर समझ जाले भी इसी बातका समझन करे लाई है।

२ प्राण निकलनेपर प्रतका जलस्नान ।

प्राण विच्छेद जानेपर मृत देखकर जलन स्थान कहावा जाता है । इस बातका निर्देश विष्णु धर्ममें मिलता है ।

येन मृतं स्वपन्नं हि ह्यभूजि वेनोन्मते ।

तं वै प्राप्नुयते देवा अपरं भूमाप्यारवत् ।

ॐ नमः ५५१११४

हे । ब्रह्मण्य । ब्राह्मणकी स्तानावाप । [हेम मृत स्तन
वन्ति] जिससे मृत पुरुषका स्तनन कर ते हैं [येन ह्यभूमि च
स्तनते] जिससे ब्राह्मणकुल का कर्म करने हैं [तं व अपा
या ह्यन म अपर न्] इस कर्मके मायका कर्मात् अन्तर्गते
हमें १० किए मन्त्रित किया है । हापर कल द्वारा पितृव्य
स्तनन का माया स्तन करन निर्देश हमें मिलता है ।

३ स्तननके बाद वस्त्र पहिनाना ।

स्तनन करने के बाद स्त्रीन स्तनानाधित वस्त्रके पहिनावेका
विष्णु मन्त्रमें निर्देश है—

एतत् त्वा वस्त्रः प्रथम आगच्छपनवह बहिष्ठा विष्णु
पुरा । इष्टार्थमनुमन्त्र्य विहन्तु वस्त्र ते ह्यन वस्त्रा
विहन्तव्यः ॥ अथ १ । १८ । ५७

हे मृत पुरुष । [एतत् प्रथमे वस्त्रः] वह स्तनानाधित
मुख वस्त्र [त्वा तु वा अगच्छ] तुझ म तु । है । [वत्
इष्ट पुरा धर्मिणः] जिस वस्त्रक प हमें वह प तु वस्त्रा करता
वा [त्वत्] उस वस्त्र के [अप उह] ऊपर के । [वस्त्र] वस्त्र [व
वस्त्रा विहन्तु वस्त्रं] तैसा गवा विहन्तुओंमें जो वस्त्र
है उसको [विहन्तु] मानता हुआ [इष्टार्थ]—अर्थात् तत्त्वतः
वस्त्रको [अनुमन्त्र्य] मान ले ।

विहन्तु अधिमन्त्र्य अनुमन्त्री वस्त्रा है अनुमन्त्र्य कर्मात्
परीव आवि ।

इस मन्त्रमें मरनेपर पुरावे कर्मोंको त्याग कर, वस्त्रको कर्मीन
स्तनानाधित वस्त्र पहिनाकर लक्ष्मण है ।

४ स्तनानन मूमिकी तरफ अयाव ।

स्तनानन का प्रामसे बाहर होना ।

अनेम जीवानकवन्त पुरोहन्तके निर्देशक बरिमादादितः
मृत्युर्वैमत्वादीन्द्रिन्द्रिज्येता अक्षर्यपेक्षानो गमनी चकार
अथर्व १८।१८।५७

(जीवा) प्रायश्चारी केमोने (हम) हम पितृव्य (पुरोहन्त)
बरोने (अप अरन्त) बाहर का दिशा है (तं) वस्त्रको
तुम धीन (इतः प्रामात्) इस प्रामसे (परि निर्देश) बाहर
की ओर स्तनानन भूमि में जाया । क्योंकि (व स्तन) स्तन
पुत्र आमीन धर्मक का मृत हृत्ते हम (प्रचलाः) प्रह
झानी मृत्यु इतक (अनन) त्याग (मृत्युन यमवाचक)
वित्तोंके लिए अनन्त पुरोहन्त । मे (यमवाचक)

येन दिए हैं । अतः कर्मोंके वह विगतप्राण को पुत्रा है । इह-
मिए इससे वस्त्रको प्रामसे बाहर हृत्वादि विनाश दिए व
जाओ ।

इस मन्त्रमें वह दर्शना है कि स्त्रीरूपे प्राण मृत्युके पर वसे
बरोने बाहर कर देना चाहिए व तत्त्वतः प्रामसे बाहर के
जाया चाहिए । अस्तनभूमि प्रामसे बाहर होती चाहिए ऐसा
इच्छा अभिप्राय है ।

अप पूर्वक वस्त्र वापुका अर्थ बाहर करना है । वहां पर
स्तनको वस्त्रक पुत्र कर्मात् वसा है ।

स्त्रीरूपे प्राणीके पुत्र मानेपर स्तनन आदि कराकर वस्त्र वरन
कर वसे स्तनान भूमिमें के जाने की काली है । विष्णुके
वस्त्रको बालोंकी कल्पा बराबर वस्त्र पर वस्त्र पुन वस्त्रक वसे
वार आधी केपेर एककर स्तनानन के करते हैं । मृत्यु-
मान कर्म की इसी प्रकारके के करते हैं । ईसाई धर्म मर्मीमें
कर्म वस्त्रक स्तनानभूमिमें के करते हैं । मने । एव न् टीन
मर्मीके मायन मायने वस्त्रको वै स्तनानन के जाया चाहिये ऐसा
पता चलता है ।

इसो पुनरिति व वस्त्री अनुनीतान बोधने ।

ताम्ना वस्त्रस्य आर्ध्वं समिचीन्वाच लक्ष्मणात् ॥

अथर्व १८।१८।५९

हे मृतपुरुष । (इसी वस्त्री) वहन करनेके इन दो वैमोने
(ते वीर्ये) तेरे वहन करनेके लिए (पुनरिति) वैमोनेमें
बोवता हुआ । किस विने । (अनुनीतान) जिसमें प्राण निवृत्त
नए है वस्त्र अनुनीत आर्ध्वं वस्त्रप्राण देहके वहन करनेके लिए
वस्त्रा अनुनीतव्य अर्थ है जोकि सुखार्थक व कर्मात्वा का वने ।
विमोने वस्त्रमें लक्ष्मणकी बोधी हो । (ताम्ना) वस्त्र वैमोने
(वस्त्रस्य आर्ध्वं इति) वह वस्त्रक पर है इस प्रकार (ते अप
लक्ष्मणात्) अभी धर्मि जाय ।

इस पूर्वमपर विचारने केनाते पूर्वे विवरः परेतः ।

पुरो गवा विवधिकाचो वस्त्रते त्वा वस्त्रि सुखार्ध
कोकम् ॥ अथर्व १८।१८।६०

[इह] वह तामने विवध (पूर्वे) पुरतम तथा (अपर)
अनन्त (विवध) वैमोनेकी है । (वेन) जिस पुरात्मी वैम
वाचीके (ते पूर्वे विवरः परेत) तेरे पुरातम विवर वहाके वर
है । (अरन) इन वाचकी वैमोनेकी है (अविवाचः) वैमोने
का पुत्रक जाने हुए (वस्त्रा व वैमोनेकी वस्त्र वस्त्रों
की पार्थ) सुने हुए वने हैं] [पुनरिति] अनन्त मायने

मरुत् पुरावे छेइ हूए बा देक हें (से) ने बैक (ला) तुम
(छुट्ठा कोक) छुट्ठाको कोकमें (बहसित) प्राप्ता करवें ।
मिबान् = रीणीन परकुपुष्ट पान्ति अनेव प्रेष इति मिबान्
पञ्चम् । स्मरानमें पहुचवेपर वेबोका पावोले कोकमा—

बा प्रबन्धेयामपतम्भुवेयौ वरु वामभिमा
अधोपुः । अस्मादेतमप्यो वरु वक्षीयो हातु
विपुष्टिह मोजवा मम ॥

अवर्ष १८१५१५

हे प्रेतवाहक वेबो ! (पुनः) तुम होओ (आ प्रबन्धेयाम)
वैकबाहोले विपुष्ट होओ । (तत्) उस (वरुवाम) को कोगे
का कानना निन्दाक वाक्य से (अप सुनेवां) छुट
होओ । वरु निन्दाक वाक्य को निघोले कि फरर शुद्ध होनेको
वह बना दे कहते हैं— (अमिमा) तोप बेनेकाको पुनर्पणे
(यं) तुम होओका पुनर्पणे कि अहपुनर् अमिरीवर्ष
देव कडका इत्यादि निन्दाक (वरु कडका) को वाक्य
कहा दे उल्लेख शुद्ध होओ । (अज्यो) हे हिंसा करने क
अनेव वेबो ! (अस्मात्) इस निन्दा की कानभूत पावो
ले [एतं] जो छुट लया है (एत) वह [वक्षीयः] छोडा
छो । और वरु [इह] इस विपुष्टि में [विपुष्ट हातुः मम]
निन्दाक वरुन करके अमिमी को वरु हूए बा हकिओ देते हूए
मे [वक्षीयः] वाक्य करवेवाले होओ ।

वरु वक्षीय को अनुसार देकबाहो हातु प्रेतका स्मरानमें ले जान
देक प्रता प्रतीत होओ है ।

५ स्मरानभूमिसे विघ्नकारिषोका मगाना ।

अब स्मरान में प्रेतके पदुष जावेपर इस स्थान पर प्रेतको
कलम का मरुता है वह सपुष्टोके वरु करनेकी प्रार्थना का
मिन् वक्षोमें उल्लेख है । उदगुहार प्रार्थना करके अथको विधि
करना चाहिए ।

वनेओ वरु वरुवाऽमुम्मा देवरीवका अरु
कोक सुतावतः । सुमिरहोभिरवगुमिष्वर्षकं

वमो दहतरवनाममम म वरुता अ १५३३

[देवरीवका] देवोको हिंसा करवाले [अमुम्मा] पुनः
देवता [वरुवाः] पुनः अहपुनः करवाले लोक [इह]
इह स्मरान में वरुता अ १५३ को अतिदि करनी है [अरुवन्तु]
ए वरु वावे । क्योंकि [कोक] वह स्थान [अरु सुताव

ता] इस सोमानियन करवेवाके यासिक का है । [अस्मै]
इसके छिपे [वमः] वम [सुमिः अहमिः] प्रकथमान
विनो व (अमुम्मा) रात्रिबोले [वरु अरुवन्तं] एव समाप्ति
[एतात्] होता है । अर्थात् इस जीवनमें अब जसक छिए
दिन व रात्रिकी समाप्ति हो चुकी है । माताव वह है कि वम
ने उल्लेख वह जीवन समाप्त कर दिया है अब उसके छिए
दिन व रात्रि नहीं होनी हैं । इस मंत्रमें वह वरुवा मका है
कि हे पुनःकोगे । इस स्थान से माता जाओ वहा कि हमने
इस प्रेतका अमर्योधि सट्टार करना है जिससे कि सट्टारमें
तुम विघ्न व काक लओ । इधो प्रकार विघ्न मंत्रमें भी एवो
ही प्राचना है । मंत्र इस प्रकार है—

अनेव वीव वि च सर्वतातोऽस्मा एन विवरो कोक
मज्जम् । अहोभिरहिरवगुमिष्वर्षकं वमो दहतरवसान
मस्मै व

अ १ १५३५

अवर्ष १८१५१५

हे पुनः ! [अनेव] वरुवा वरु जाओ । [वीव] माग
जाओ । [विश्वतातः] सर्वता वरु जाओ । क्योंकि [अस्मै]
इस मृत पुरुषके छिपे [विवरो एन कर्क अज्जम्] विवरावे
वह स्थान [स्मरानभूमिषः] किता है— पुता दे— निधारित
किता है । छेप वरुवाके अर्थ वरुवा मंत्रानुसार ही है ।
केवल ' अज्जिः ' वरु विवरो है, जिसका वरुवा है अनेव ।
परन्तु वह वेव वरुवाके छिए वरु माका है । मरनर वरुवा-
रिक् वेव वरुवाकी भी समाप्ति हो जाती है । इस मंत्र वह
मंत्रमी वरुवाक प्रभावनेके छिए ही है ।

अनेव वीव वि च सर्वतातो वेडप स्य पुरात्त वे च
मूत्तवा । अहो वमोऽवसानं वुमिषवा अमिषम
विवरो कोकमस्मै व

अ १५३५

[वे] आ तुम [पुरात्तः] पुरातन विघ्नकर्ता और [वे
मूत्तवाः] ओ तुम नवीन विघ्नकर्ता होम [अयं] वरु
स्मरान-भूमिमें [एव] हा व तुम [अगे] वरुवा जाने
जाओ । [म त] माग जाओ । [विश्वतातः] सर्वता वरु
जाओ । क्योंकि [वमः] वमने (अस्मै) इस मृत के छिए
(वुमिषवाः अवसानं अवसानं) वुमिषोकी समाप्ति है व न
इसका वुमिषीवरुवा जीवन समाप्त कर दिया है इह नर [वमः]
विनरीके इहके छिए [इव कर्क] वह स्मरानभूमि वरुवा
[अज्जम्] किता है अर्थात् पुता दे वरु इहका वरु अर्थात्
वरुवा देता है । इस मंत्र का भीमो स्मरानमें १५३५ है ।

बौद्ध मन्त्रालयका बजेट हो तरनुसार सम्वे भन्नाहरू कान्छी विधि
करनी चाहिने एका हव मन्त्रालय आकन हो ।

(६) प्रेतको बलाना, गारना आदि ।

प्रेतसे तपसाबन्धुमित्र पण्डित जातेके अनन्तर लसे पावने
बहुते कथाए वा इषाये सुम्न सेनेकी किताबी जाती
है। नीचे दिये संज्ञये दण्ड दण्ड कारा किताबोंके लक्षण पाया
जाता है।

ये निम्बारा ये परोष्ठा ये इन्धा ये जोदियाः ॥
सर्वास्तारान् आत्मा विष्णु इन्द्रेण कथये ॥

अथर्व १८।२।३४

(जल्ये) हे जल ! (वे निहाळा) ओ पितर जलमयें पावो मय हैं और (वे पणप्या) ओ पितर हू हवा धिए मय हैं तथा (वे बरणा) ओ जळा धिए मय हैं (व) और (वे उडिठा) ओ पितर जलमये ऊपर हल्ये रके मय हैं [टार लवाण] उम लम मिस्तीओ ल [हलिये जलमये] हल मल्लायें (आ वह) के आ ।

बहापर चार प्रकारचे सहाय्य-कमी द्यावे पावें । [१]
पावडा [१] नद्या [१] बळग्या और [४] हवामे
बरीमपर द्या खेड्या ।

[illegible]

[२] अन्त्या वा
[३] अन्ते वदन्त्या] ये हो अवस्थानों निवेदकः

द्विगुणोंमें पाई जाती है ।

[४] अमीनपर बाबुओं रक्षणा यह चौथी अवस्था पारकिबोमि पाई जाती है ।

हृदय प्रकाश ने पाठ अन्वयार्थमें वर्तमान समयमें हमें शिक्षा दी है। वेदमें धर्मिक दो विभाग निकले हैं [१] अग्निवर्ण अर्थात् जो अग्निमें जलाए जाते हैं तथा [२] अन्नमिवर्ण अर्थात् जो अग्निमें नहीं जलाए जाते। अन्नमिवर्णमें अन्नकी अन्नदा की ओरकर केवल तीनों अवस्थाओं में वर्णित दो वर्ण हैं।

[illegible][illegible]

इस प्रकार के चारों विविध नैवेद्य हिन्दुओं में भी किसी रूप में पाई जाती हैं वह इस प्रकार करते हैं। चरौक पत्रों को चार विविध प्रकारों में बाँट देते हैं वे वे ही में देखा हम कह सकते हैं। अतएव वे कहिये: अर्वाच्य को चरौक रख दिए हैं अब जो हवा में लगी है चरौक रख दिए हैं नहीं प्रतीत होता है। इस प्रकार के चरौक का अविधान को चरौक का पूरा बड़ा दिए हैं नहीं प्रतीत होता है। अतएव हमें कही नई अवस्थाओं पर हमने

ये वषादि प्रसन्न करनेकी कोसिद्ध की है। पाठक इधर विशेष विचार कर लियत किन्हीं निम्नलिखित।

अग्नि मित्रे हीन यज्ञमि प्रेतके भूमिमें गावनेका उक्तेय है। यज्ञ इव प्रसार है—

अग्निमित्रीर्भूमिं पुत्रिभ्याः मातुर्भ्यस्तथा भ्रातृभ्याः ।

जीवेद्युः सार्धं तन्ममि स्वधा पितृषु सा त्वमि ॥

अ १८११५२ ॥

हे प्रेत ! [त्वा] तुझे [मातुः पुत्रिभ्याः] मातापुत्रिकोंके [यथा वस्त्रेभ्यः] कलात्मकरी वस्त्रोंके [अग्नि ममित्रीभ्यः] मातृपितृव्योंके द्वारा हू अर्थात् जमीनमें तुझे याचना हू। [जीवेद्युः सार्धं त्वमि] जीवितोंमें जो यज्ञयाग है वह मेरेमें हो अर्थात् तुझे प्राप्त हो और [पितृषु स्वधा] जो पितरोंमें स्वधा है [सा त्वमि] वह मेरेमें हो अर्थात् तुझे प्राप्त हो। यज्ञपर १५५ कर्ममि प्रेतके गावनेका निर्देश है।

इमिन् वा उ वापरे शिबि पशवसि पूर्वम्

मया पुत्रं वषा सिन्धाम्नेव मृतं कर्तुं हि ॥

अ १८११५५ ॥

हे मृत पुत्र ! (इव इव वा उ) वही है (न अपर) दूसरा नहीं है। (मिमि पूर्व पशवसि) को पुत्रोंके तू पूर्व देवता है (वषा पुत्रं वषा सिन्धा) जिस प्रकार पुत्रको माता अपने भ्रूणको धारण करे उस प्रकार है (मृते) पुत्रिकी व (पूर्वम्) इस मृत पुत्रको (अग्नि ममित्री) पारों और से बांध। इस प्रकार पूर्वर्ध्व उत्तरार्ध्व कैद संजाति है वह अभी तक कुछ प्राण नहीं हुआ। उत्तरार्ध्व का प्राण स्थित है।

कस्यो हा इव ते ममः ककुत्सकर्मिव आसमाः । अग्नेर्भूमिं कर्तुं हि ॥

अथर्व १८११५६ ॥

(कस्ये) हे कस्यने आसमाके प्रेत ! (इव ते ममः) वही तेरा मम है। (हे (मृते) पुत्रिकी ! (आसमाः ककुत्सकर्म इव) जिस प्रकार किराँ लगने कस्येकी कस्ये धारण हैं वा कुछ किराँ लगने सिद्धे धारण हैं उस प्रकार [पूर्वम्] इस प्रेतको [अग्नि ममित्री] ममों प्रसार बांध।

इस वषाद्ये यज्ञमि प्रेतके जमीनमें गावने का उक्तेय है। इसने गावनेकी प्रजाती वैदिक ही है वह पता चलता है। अब एक अन्येति किन्हीं उक्तेयोंके देवनेके इस का उक्तेय है कि हिन्दु, मुसलमान ईसाई पारसी आदिप्रायोंको भुक्तिके अन्वये गावने अर्थात् वषाके प्रसन्न है वे प्राण वैदिक हैं। वा य उ कह लकते

हैं किने सब वेदोंके उक्तेय पाए गये हुए हैं। उनका धारि ज्ञात वेद ही है।

(७) अस्योष्टि—संस्कार ।

अग्नयः धवन करके उत्तर पर प्रेत उत्तर पर अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है। अग्नि के प्रज्ज्वलित हो जानेपर मित्र मंत्रोंसे आग्नि के प्रज्ज्वन की भीति है। आग्नि के एक मात्र हम वहाँ देते हैं।

मैत्रमरते विद्मो मा मित्रो यो मास्व त्वर्ष मित्रो या करीरम् । वषा मृतं कृन्वो वातवेदोऽग्नेर्भूमिं ममिषु तस्व पितृभ्याः ॥

अ १ ११५१११ ॥

[अग्ने] हे अग्नि ! [एवं मा विद्मः] इस प्रेत को इस प्रकार से मृत कहा कि जिससे इसे विशेष कष्ट हो। [मा मित्रो यो] इसे कोकोकृत मत कर। [मास्व त्वर्ष मा मित्रो] इसकी स्वधा को मत बखेर (मा करीर) इससे कठोर की भी मत बखेर। अर्थात् इसकी स्वधा व करीर को पूर्वतया बका है। कोई भी माय करने से अवशिष्ट न रह जाये। और [वात वेदः] हे वातवेद पशु अग्नि ! [वषा मृतं कृन्वः] अब इसे पूर्वतया पकव बना है अर्थात् बकाने [अय] तब [एव] इसको [पितृभ्याः प्रहितुताम्] पितरोंके मित्र मेव है वानो पितृभ्योके पितरों के पास पहुँचा है।

वह मंत्र अथर्व वेद [१८११५४] में भी आया है। इस मंत्र को हम पहिले अग्नि व पितर में दे भाए हैं। वह पर को कुछ विशेष वक्तव्य इस मंत्रपर वा वह दे भाए हैं। अतः वहाँ पुनः लिखन्य उक्तेय है।

अग्ने वषा करति वातवेदोऽग्नेर्भूमिं परिष्ठात् पितृभ्याः ।

वषा मयकृन्वतुपुत्रिभ्योऽग्नेर्भूमिं देवानां वषाभीर्भूमिं

अ १ ११५११२ ॥

हे अग्नेवद् अग्नि ! अब इस प्रेत को पूर्वतया दहन कर दे तब इसे पितरों के किए बांध दे। अब इस प्रेत के आग भिन्नक जाते हैं तब वह देवों के वक्षमें होता है।

वह मंत्र भी पूर्व आग्निप्रादित वषादीय मंत्रके साथ अग्नि व पितर में दे भाए हैं। वहपर बकने से वह मंत्र स्पष्ट हो जायगा।

कस्यो आग्निस्तपसा तं तपस्व तं ते सोमोऽपि तपसु तं ते अग्निः ॥ वापरे सिन्धाम्नेव आग्नेर्भूमिं ममिषु तस्व पितृभ्याः ॥

अथर्व १८१११३ ॥

[अन्नः भागः] हे अग्नि इस भेद का जो अन्नभाग [आत्मा] है [तं] उसे तू [तपसा तपस्व] अपने तपसे तथा । [तं] उस अन्नभाग को [ते गोभिः] तेरी शीघ्रगति प्रकाश [तपतु] तपोष । [तं] इस अन्न भागका [ते अग्निः] आत्मा प्रकाश [तपतु] तपोषे । और फिर [वातदेव] हे वातदेव अग्नि । [वाः] ते शिवाः तन्वाः] तेरे जो अन्नभागकारी प्रकाशकारी तपू हैं [वाभिः] उन द्वारा इस अन्न भाग को [घृक्षो कर्क] घृक्ष करेवालों के जोकमें [वह] प्राप्त कर ।

इस मंत्र से जो बड़ी परिणाम निकलता है वैसा कि इस पहिले हमें मालूम है । अर्थात् शरीर के सब जाने तब आत्मा शरीर के पास ही रहती है और शरीर रहने के अन्तर अग्नि द्वारा अन्तर के चारों ओर है । वह अन्तर घृक्ष इसी भावके मंत्रोंवाला है जिसका कि अग्निदेव से शिवयोग होता है । इस प्रकार भेदरहने के समस्त अग्नि से प्रार्थनामें करने का विधि, ऐसा हम मन्त्री का अभिप्राय है ।

उपरोक्तानुसार अग्निसे प्रार्थनामें करके अंशेष्टिपरक मंत्रों से अग्निमें आहुतियाँ देनी चाहिए । मन्त्रार्थ का ३९ वां अन्वय अंशेष्टिपरक है । इस वहाँ वेही मन्त्र है जिसका कि हमारे प्रकरण में उद्यम्य है अर्थात् किन मंत्रों में वम का पितर शिवका किसी प्रकार का निर्देश है ।

वमां स्वाहान्दकान् स्वाहा । मृत्योस्व स्वाहा । मरुतोस्व स्वाहा । मरुहवाम् स्वाहा । विक्षेन्मो वैशेन्मो स्वाहा । आत्मापृथिवीर्मा स्वाहा ॥ मन्त्रा ३९।१३ ॥

[वमां स्वाहा] वम के लिए स्वाहा । [अन्तकान् स्वाहा] अन्तक के लिए स्वाहा । [मृत्योस्व स्वाहा] मृत्यु के लिए स्वाहा । [मरुतोस्व स्वाहा] मरुत के लिए स्वाहा । [मरुहवाम् स्वाहा] मरुहवा के लिए स्वाहा । [विक्षेन्मो वैशेन्मो स्वाहा] उन दोनों के लिए स्वाहा । [आत्मा पृथिवीर्मा स्वाहा] तु तथा पृथिवी के लिए स्वाहा ।

इस मन्त्रमें वम के लिए भी एक आहुतिदा निर्देश है । इसी प्रकार के अन्य मंत्रों से आहुतियाँ देकर भेद से कहा जाता है कि हे भेद ! -

सूर्यं चक्षुर्यजतु वातमग्रमा घां च मरुक्षं पृथिवीं च शर्मन्वा । अपो वा मरुक्षं यदि तव यं हिरण्योषधीषु मयित्पिप्सा शरीरे ॥

मन्त्र १।१३।१३

अथर्व १८।१।१३

तरी मांछ सूर्यकी जाने । तेरे प्राण वातु को चारों ओर भेद । तु कर्मक्षम करने के वा पृथिवीपर तपसे के रूप से [पृथिवीका अन्न पृथिवीमें जाने द्वारा प्रकरसे] तु व पृथिवी को वा उन वनके अन्न वनमें मिल जाने । इसी प्रकार वनमें अन्नका जाने यदि वनों का कोई अन्न तेरे में स्थिर हो । इसी प्रकार जोषधियोंमें शरीरोंमें स्थित हो । इस मंत्रपर भी शिवयोग अन्तर का वह हम पहिले के भाग है । इस प्रकार भेद का अग्नि संस्कार हो जानेपर उद्यम्य आत्मा से क्या कहना है कि—

सहस्रवीणाः कवचो वे गोपासन्ति सूर्यम् ।

अर्थात् तपस्वतो वम उपोषो अग्नि गच्छताम् ॥

मन्त्र १।१५।५३ अथर्व १८।१।१६ ॥

[सहस्रवीणाः कवचः] हजारों की के आवेनाके अर्थात् हजारों के पावक, कालावर्णों [वे] जो कि [सूर्य गोपासन्ति] सूर्यकी रक्षा करते हैं ऐसे [तपस्वताः] तपोयुक्त [उपोषन्] तपसे तपस्व [अर्थात्] अग्नि को [वम] है शिवमन्त्र । तू [गच्छताम्] प्राप्त हो अर्थात् हममें अन्तर तू वम का ।

८ प्रार्थनायें ।

इस प्रकार भेदरहने की क्रिया समाप्त हो जानेपर उद्यम्य शिव पहिले की आवेनायामें प्रार्थनाशोका शोच विन मन्त्रों में है ।

उक्त प्रार्थनायामें मन्त्रस्तोत्र द्वारा अग्नि मन्त्र ।

अन्वा वमस्व सप्तममग्निस्तोत्रो अरक्षताम् ॥

अथर्व १।१३।

[ते] तेरे [तान् वत मयान्] वत मन्त्रोंको [अग्ने मयः] अग्ने वदियों को [अग्ने] अग्ने से [इवाग्नि] कावता हूँ । तू [अग्निस्तोत्र] अग्नि को दत्त कष्टकर [अरक्षताम्] शीघ्रता करण द्वारा [वमस्व] वमके [वदन्] वदों [अन्वा] वा ।

य गच्छस्व पितृभ्यः यं वसेमेहार्ह्येन परमे ध्योमन् ।

हिरण्यवामो ह्यनरक्षमेहि संयच्छस्व तन्वा सुवन्वा ॥

मन्त्र १।१३।८ अथर्व १८।१।५४

(परमे ध्योमन्) अक्षय्य ध्योमने अर्थात् स्वर्ग में (हिमि) पितरोंके पास (संयच्छस्व) तू वा । (वसेन व) और वमके पास स्वर्ग में वा । (इध्यत्तं) इसी पृष्ठके वम स्वर्गमें वा । (अथर्व हिरण्य) किन्तु क्योंकि प्राप्त करके (पुनः) फिर (अस्त एहि) वरको वा अथर्व पुनर्मन्त्र का और

(सूर्याः) इतम ठेकवे युक्त हुअ हुआ (तम्हा सयच्छस्व)
बठेर बारन करके बुदिनामें बिबरन कर ।

मिभ मिभ अर्थमें बहुवचनान्त पितृसम्बद्धा प्रयोग

पितृ सम्बन्धके क्षेत्रोंको देखतेवे वह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बहुवचनमें प्रयुक्त पितृसम्बद्धा का अतिप्राचुर्य प्रयुक्त किता गया है । एकवचन व द्विवचनमें आना हुआ पितृ कब कब आया करता नहीं है बर वक्त आगे बिने जावेवाले यंत्रोंके सम्बन्धमें पाठक सुमनसासे जान सकते हैं । अवतक आए हुए क्षेत्रोंके देखतेवे पाठकोंके सम्बन्धमें वह बात कल्पनेमेव आये छैनी कि इन क्षेत्रोंमें सर्वत्र बहुवचनान्त पितृसम्बद्ध ही प्रयुक्त है । इस प्रकारमें हम उन जोड़ेके क्षेत्रोंको देखे कि किममें बहुवचनान्त पितृसम्बद्धा प्रयोग उस अतिप्राचुर्य नहीं किता गया, किन्तु अतिप्राचुर्य कि अवतकके क्षेत्रोंमें किता गया है । कटक एवं हजारे इतम-कबकब बहुवचन स्वयमेव यंत्रोंके देखते वे कर छैनी । यह प्रकार अवतकके क्षेत्रोंमें बिद्यमान पितृ सम्बद्ध प्रयोग अतिप्राचुर्य आगे जावेवाले क्षेत्रोंमें बिद्यमान पितृ सम्बद्ध अतिप्राचुर्य मिभ है । यह दृष्टांता हुआ हमें पूर्वोक्त क्षेत्रोंमें बिद्यमान पितृ सम्बद्ध अतिप्राचुर्य निर्णयमें पूर्व सहायक होय देखी जाका है । इस प्रकार वह प्रकार बहुवचनान्त पितृ सम्बद्ध अतिप्राचुर्य-निर्णयमें महत्त्वकाही होया वह पाठकोंका बठेर ध्यानमें रखना चाहिये ।

१ हिंसा अर्थमें ।

म तु बोधा सुतेपु बां बीर्वा नाभि चक्रमु ।
हवाछे बां पितरा देवराजः इन्द्रास्त्री
बीर्वा नुदम् ॥ अ १५५ ॥
हे इन्द्रास्त्री ! (बां) तुम दोनों (सुतेपु बां) बीर्वा चक्रमु) काय वर्यमें जो पराक्रम करते हो उनका (तु) मिश्रण है (बीर्वा) में प्रवचन करता हूँ । अब प्रवचन का प्रकार यद्ये है-हे इन्द्रास्त्री ! (बां) तुम्हारे (पितरा) हिंसा करिय राज (देवराजः) देवीके पण्डित करनेवाले (इत्यादि) वध होय है । (नुदं) तुम दोनों (बीर्वा) जीवित हो ।
पितरा—सिद्धि हिंसाकर्मा भातुके पितर राज्य बनाय गया है वर्यके देवपुत्रका वह मिश्रण है । अतः नहीं पितरा वर्य हिंसा करियेवाले ही है । मत्र भी इस अर्थका प्रयोग है ।

२ श्वानी लोक पितर

कवयः कति सूर्याः कसुपासः क-युस्त्रिपासः ।
नोपस्त्रिपं वः पितरा वदामि पूष्कामि वः कवयो
बिद्यते कम् ॥ अ १६६१६

(अम्नवा कति) अमिया कितनी है ? (सूर्याः कति) सूर्य कितने हैं ? (कपासः कति) उद्यान कितनी हैं ? (आपः कतिस्त्रि) मया आप कितने हैं ? (कवयः पितर) इ काम्पवर्षा काही पितरों । (वः उपस्त्रिपं न वदामि) तुम्हारी स्पर्श करत हुआ वामि परीक्षा लेनेके अतिप्राचुर्य उपरोक्त प्रश्न नहीं पूछता हूँ अपितु मैं नहीं जानता अतः (बिपनं) जाननेके लिए (वः पूष्कामि) तुमसे पूछता हूँ । मंत्र स्पष्ट है । श्वानी लोकोंके पितर व अवाचन किता गया है ।

३ राक्ष-समाके समासद पितर ।

समा व मा समित्तिपाचयं प्रजापतेरुदितौ
संविदाय । वेना सयप्या उप मा स सिद्धापाच
वदामि पितरः समातेपु ॥ अ ५११११

(संविदाय) परस्पर देख रखनेवासी एक मतमें आत हुई हैं (प्रजापतेः) प्रजापति राजाकी (उदितौ) दो दुदियायें (समा व समितिः वः) समा और समिति (मा) मेरी (आपत्तौ) रक्षा करें । (वेन संमत्ये) जिस जिस समासदवे मैं प्रवत होके वामि उसकी संमति करके (वः) वह मा समावर (मा सयप्या) सुखे सिद्धा दें । (पितरः) हे समावर ! (संमतेपु) संवेकमें मैं (आप वदामि) विन बोझू ।

इस मन्त्रमें राजाकी राजसमासदोंके प्रति पाठ है । उनमें पितरके नामक कहा गया है ।

४ सैनिक पितर ।

रवापुर्नमः एतरो वयोधाः कृपः प्रतः क्षत्रीकृतो
यधीरा । चित्रवेना हनुवका वसुधाः पलोरीरा
उरयो जातवाहा । अ १७५१७ ॥
अ २११७७ ॥

इस मन्त्रकी देवत 'वयोधाः' अर्थात् जहाई में एकाग्र व नरक है । अन्य इस प्रकार है—

(स्नातृपराः) सन्तुष्टिके अथ से बैठनेवाले वा सन्तुष्टाक-
अथवा साध करनेवाले (वयोधाराः) जल देनेवाले (कृत्यं विताः)
कठिनाइयों में भी स्थिर रहनेवाले (अतीतान्ताः) अतिवाले वा अति
नामक अन्तर्धे सुख (पथिराः) यमीर (विश्रमेवाः) दर्शनीय
सेवावाले (सुपुत्राः) जल है वह जिसका अन्तिम वाक्य कठनेवाले
(अमुष्ठाः) निम्नी सन्तुष्टिके हिंसा नहीं की। सक्तो देवे (सतोरीराः)
दीर्घकाली (उरवाः) विद्याकाल (मयछाहा) सन्तुष्टसुख का
पराजय करनेवाला (वितराः) रक्षा करनेवाले रक्षाकृत होते हैं।

महाच्छायाः पितरः सोम्यामाः किने को छायापुत्रिणी
अनेहता। पूषा वा पातु सुरिताहतापुत्रो रक्षा मा
किने अपाचल हस्त

अ. १. ७५। ३

पञ्च। २५। ७७७

वह मंत्र ऊपराध में से अस्मा मंत्र है। वह संपूर्ण सूत्र
सुख निपक है। इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—

[ब्राह्मणाः] हे ब्राह्मणी [सोम्यामाः] सोम संयम
करनेवाले अथवा ब्रह्मादि कर्मों के करनेवाले [पृथाहवाः] सत्य
से बहमवाले वा सत्यको बहोनेवाले [पितरः] रक्षो !
[अनेहता पातापुत्रिणी] अहिंसक पुत्र का पुत्रिणी [वा शिने]
हमारे किए कल्याण के करनेवाले हो । [पूषा] वीरक देवा
पति [वाः] हमारी [सुरिताम्] पापसे [पातु] रक्षा करे
और [मा शिः] अपहर्षः मा ईश्वर ! कोई भी पापी हमारे
ऊपर काहल मत करो । [रक्षा] उससे पूषा हमारी रक्षा करे।
इस मंत्र में अतिबोध पितर कहा गया है क्योंकि वे हमारी
रक्षा करते हैं।

७ प्राण—पितर

वां वज्रो विश्वस्तस्मिन्निस्तथ एकस्य दृक्कर्मैविरावतः॥
इमं वधन्ति पितरो न कावन्तुः प्रवक्ष्यामि वधायास्तव तले॥

अ. १। १२। १३३

(वा वज्रः) ओ वह वीरवक्त्री वज्र (विश्वता तन्मुनिः)
परी आरक्ष सत्य रिम सत्य वा वाक्सी तन्मुनि (तताः)
गर्हार्थे । वस्तुतः दे आर (एकस्य देवदत्तं मे) एकस्य देव
में से अथवा वीरवक्त्री अनुष्ठे (आरत) पीछा में फैला
मा है वह वज्र (इति राः) व अर्धमाधार प्राण पितर
(वरन्ति) पुनः है । (वा कावन्तुः) वा एक प्राण इस वज्र
अथवा वज्र (व तन् आरत) इति । वस्तुतः अथवा वज्र
व तन् व वरन्ति है । (पश्य अपश्य) आये पुनः आभी
आर पश्य तद्वत् वरत आभी ।

इस मंत्र में वज्र के पुनर्ने के अङ्गकार से वीरवक्त्री वज्र
वर्ण है । प्राण इस वीरवक्त्री रक्षक होनेसे पितर है ।

स्वाहा पूषे छरसे स्वाहा प्राचम्याः स्वाहा मयिनेम्यः ।
स्वाहा पितृभ्याः ऊर्ध्वर्वाहिभ्यो वर्मवाहभ्यः स्वाहा वाता
पुत्रिणीभ्यो स्वाहा निहनेभ्यो देवेभ्यः ॥

वज्र अ. १। १५। ३

इस ऊर्ध्व मंत्र का अर्थ इस वज्र वही देवे कर्त्तृक इन्द्रा
प्रबोधन किसे स्वाहा पितृभ्याः ऊर्ध्वर्वाहिभ्यो इत्ये से ही है।
अतः इत्ये ही मंत्र संयम अर्थ इस देवे ।

(ऊर्ध्वर्वाहिभ्यः पितृभ्याः स्वाहा) क्षीरार्थे किन्नी अन्त
स्थिति है देवे प्राणों के लिए स्वाहा । ऊर्ध्व मंत्र में 'पूषे, वाते'
आदि प्राण के लिए हैं । अतः ऊर्ध्वर्वाहि निषेधन प्राणों का
है । वह मंत्र सत्यपन में वही प्रकार व्याख्यात है । देखो अ.
१। १। १। २। ३।

६ पालक-रक्षक आदि अर्थ में ।

अवमिन्नु क्षरतो वन्ति देवा वधा वधका जलं वद
वाह । पुत्राक्षो वध पितरो भवन्ति मा वो मज्ज
रीरिपतपुत्र्यम्योः ॥ अ. १। ६५। १५ वज्र २५। २५

(देवाः) हे देवो ! (वु) निबन्धने (वतं इत्य) से ही
(क्षरता) वरी (अन्ति) सन्तुष्टिके वाह है । (वज्र) निब
वी वरमि आप देवपन (वा तन्नां वरमं वज्र) हमारे
क्षीरार्थ में पुत्रता माते हो । (वज्र) और निब वी वरमि
(पुत्राका) पुत्रपन (पितराः) अतमेवपति के अन्त छेकर
अन्तर्धे प्राण करनेके वाक्य हीकर पितर वरते हैं । इस
से वरी वी (आतुः) अनुष्ठे (पश्यः) मध्ये) पूषे करने
पश्य करने से पश्ये ही वीचने (वा) हमें (वा प्रियत)
मत मज करो ।

वाता को कोषि वधकाः वाविराभिकवाता गर्हिता
सोम्यामाः । मजा रिता विगुतः विगुतां कर्म
कोकमुच्यते वयोधाः ॥ अ. १। ७। ७७

वह इत्य (वा) ह्यारा (वताः) रक्षक (वरकाः)
हमारा देवतावाता (अभिदवाता) ऊर्ध्वसे करनेवाला,
(गर्हिता) गुह्य देनेवाला (वधा) मित्र (रिता) पालक
(योग्यता विगुतां विगुतः) सोम्य पितरो में मज पितर
(वताः) वयनवाता तथा (कोक वधत) माये वी वधका
करनेवाले के लिए (वयोधा) अथ वज्र-आतु का देवता है,

एक प्रकार है उपासक ! (योगि) ए वास ।

ये हैं यावापुत्रिणी मत्तरा मही देवी देवात्ममना
पत्निने ह्यः । वन विभूत वमर्षी महीमणिः पुत्र
रेवमि सिधुमित्र मिच्छताः ॥ अ १ १४१ १४४

(यावत्) वन वस्तु की निर्माण करवाधी, (मही)
वनी (देवी) दिव्य गुणोवाधी (वज्रिने) पुत्रनीव (वे
पावापुत्रिणी) वे यावापुत्रिणी (देवात्) देवीको (वनमना
मना) वनमने प्राप्त करती हैं अर्थात् उपासक उत्पन्न करती हैं ।
(वने) दोनों पुत्रों पुत्रिणी (महीमणिः) मरकपावणवे
(वमर्षी सिधुः) दोनों मनुष्य व देवीका धारण पोषण करती
हैं । और (सिधुमिः) प्रकट इन्द्रिय देवीके वाच विकटकर
(इन रेवमि) बहुत जगैसे [मिच्छताः] मिच्छन करती हैं
वर्षी प्रकार उद्दि करती हैं ।

७ इधु पितर ।

इधुमि रितान्द्रोऽधिपतिस्तारिणी रक्षिता निर
इधुः । वेन्वो वनोऽधिपतिम्यो वनो रक्षितुम्यो
वम इधुम्यो वम एन्वो वस्तु । योऽस्मात् इति रं
वम इधुम्यो वम एन्वो वस्तु ॥ अमर्षी ११२ १२४
इधुमि विद्याध इधु वापिपति ह । वह ठिके वरिष्ठके
पतिरे रक्षा करेवस्तु है । उरुके वाच पितर हैं अर्थात्
उरु है । इधुमि ।
एक मन्त्रमें वाचोके पितर कहा गया है क्योंकि वे हमारी
रक्षा करते हैं ।

जनकपितर ।

वाताको व व पुत्रको जिगत्सुकोऽमीनां व जिह्वा
मिरोकिनाः । वनमम्यो व योवाः । मिमीन्वः । विपुर्वा
व योवाः सुरावतः ॥ अ १ १४६ १४७

[वे] जो मनुष्य [यताः य] वातुको भी तरह
[जन्म] कर्तुको भी कर्तव्यके हैं तथा जो [विपत्तयः]
विपत्तये [धर्मोनां मित्राः य] अमिनको भी उपाकाओं
के उरु [पिरोकिनाः] क्षीयमान हैं, और जो [वनमम्यः]
योवा य] वनमपारी योवाओं भी तरह [मिमीन्वः]
पुत्र के यमैने करेवस्तु हैं व [विपुर्वा य] वनक
मिरोकिनां योवाओं भी तरह [सुरावतः] उत्कृष्ट वाच देवेवाके
हैं, वे मनुष्य हमारी उपासक रक्षा किना करें ।

भुवा एव वाः पितरो भुगे भुगे क्षेमकामावः सर्वसो
व पुत्रमते । वस्तुवाचो इतिवाचो इतिवच आचो रवण
पुत्रिणीमनुभुवः ॥ अ १ १४८ १५१

(व) तुम्हारे (पितरः) उत्पन्न करनेवाले (भुवा एव)
मिषवते विवर हैं । तुम (भुगे भुगे) सुम सुममें (क्षेमकामा
वाः) कल्याण करनेकी इच्छावाक हो इत्यादि । इस उपर्य
पुत्रमें वस्तुमें क्षेमकता के क्षेम विक्रमने के लिए ताए हुए
अनरोक्ष वर्णम है ।

८ पूर्वव पितर ।

वाचक म तेव वपुषो मनुष्या वज्र जाते पितरो व
पुराणे । पश्चन्मन्त्र मनसा वज्रसा वाच्य इने वज्रम
वस्तु एवं व अ १ १५२ १५४

(पुराणे वज्रे जाते) पुरावन वज्रे हो अथैपर (तेन)
उस वज्र द्वारा (वपुषाः) अधिपण, [मनुष्याः] वन मनुष्य
वस्तुवाच व [वाः पितरः] हमारे पूर्वव [भावतुम्]
उत्पन्न हुए । [ये एवं एवं वज्र वस्तुमते] जिन पूर्वक
देवीने इस उरुपुत्रपतिवनी वज्रको किना वा [वाच] उन दोनोंको
[मनसा वज्रसा] मनकी भावसे वनवा [वज्रसा वनवा]
सूक्ष्म पुरावाके देवकेके वाचवस्तु मनके [पश्यत्] देखता
हुवा मैं [मन्त्रे] उन देवीका मनन करता हूँ ।

वह सूक्ष्म उरुपुत्रपितर कुछ कुछ प्रकट वाक्या मुख
प्रणीत होता है । इस मंत्रमें भाए हुए अधि पितर व मनुष्य
वमवतः कर्मका प्रत्यक्ष अधिप व वानके सौष्ठव प्रतीत होते
हैं जेवा कि पुत्रवस्तुमें उरुपुरावतिने वाच्य-वाच्य-नेवकी
वस्तुति वही है नई है । अमिनोके किए पितरका प्रयोग नईमें
हुवा है जेवा कि अभी इस ऊपर वही भाए हैं ।

शुभ्रपितर ।

वमा व पितरो इवाव वनी व पितरः वीजान वमा वा
पितरो वीजान वमा वाः पितरः स्वभावे वमा व पितरा
वीजान वमा वाः पितरो मन्त्रवे वनी वाः पितराः पितरा ममा
वा गुहावः पितरो वच सतो वा पितराः देव्ये प्याः पितरा
वाच ॥ अ १५३ १५४

इस मंत्रपर उरुवच वाच्यने इतनी ही विपत्ती बर्हाई है ।
कि इस मंत्रमें व वार ममस्वर है ॥ इह इहिए दे व
कि व मत्पुर्वा होती हैं । उरुवचका वचन इस प्रकार है-

बद्धहस्तो नमस्काराति कर्त्तव्यः । अतः पितरः तस्मात्
बद्धहस्तो नमस्कारोति ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

इस प्रकार इस मन्त्रमें ऋतुबोधो पितर कहा गया है ऐसा
प्रतीत होता है । आह्वानोंमें स्वास स्थानपर ऋतुबोधो पितर
कहा गया है । उदाहरणार्थ—

स १।१।१।५। ओ ५। ५१ ओ १। २४ ॥

तथा १। १५४ स १। १। १। १२४

ते १।१।१ १८॥ तथा १।१।१ १। ५०

इति । इस स्थापनानुसार यथार्थ इस प्रकार है—

[पितरः] हे पितरों ! [वाः स्वाम्य] तुम्हारी रक्षामूर्त
बसंतके किए [वसः] नमस्कार है । बसन्तऋतु में मनु
आदि रक्षक बाहुल्य होता है अतः रक्षक यहाँ बसन्त ऋतु
का उपलक्षण है । [पितरः वाः शोभय वसः] हे पितरों !
तुम्हारी कायक प्रार्थनाके किए नमस्कार है । प्रीत्यर्थ परमो
पक्षमेव सव रस सुख पाते हैं अतः कायकः प्रीत्यर्थ यहाँ
महान किया गया है । [पितरः वाः श्रीमान् वसः] हे पितरों !
तुम्हारी श्रीवशस्त्री वशके किए नमस्कार है । श्रीमान् नाम
वसक है क्योंकि वह श्रीमान् दत्त है । श्रीमान् श्रीवशस्त्री
है । [पितरः व स्वाम्य वसः] हे पितरों ! तुम्हारी वस
वैशाली करत ऋतुके किए नमस्कार है । वसका नाम वसक
है । आर करत ऋतुमें वस बहुत होता है । वसका करत
ऋतु की उपलक्षण है । [पितरः व शोभय वसः] पितरों !
तुम्हारी श्रीवशस्त्री हेमन्तके किए नमस्कार है । हेमन्तमें वस
श्रीवशस्त्री पड़ता है अतः श्रीवश हेमन्तका महान है । [पितरः वा
मन्त्रे नमः] हे पितरों ! तुम्हारी मन्त्रमूर्त शिखरके किए
नमस्कार है । शिखरऋतुमें श्रीवशस्त्री वस जाती है अतः
तत् करतः मन्त्र शिखरका उपलक्षण है । [पितरः] हे
पितरों ! [वाः एतत् वसः] हमें वर दो अर्थात् हमारे वरों-
को कष्ट कर । [पितरः] हे पितरों ! [वाः] तुम्हारे
लिए [एतद् दत्तम्] जो कुछ हमारे नामों है दत्त दे । हे
पितरों ! [व एतद् वसः] तुम्हारा वर दत्त है अर्थात् वर
आपका परिश्रम आपन दे करे जा । अतएव आह्वानमें इस
मन्त्रका यथार्थ वसः वा अर्थ वर दिया है इसका आभिव्यक्त
वद प्रतीत होता है कि इस मन्त्रका ऋतुमें वर करना चाहिये
व इस वर ऋतुमें कर्त्तव्य पदार्थोंकी वरमें हमें लाभको
प्राप्ति है ।

गो-सवामक पितर ।

व शिवेवा मित्रिता मन्त्रेण वेदस्मात् पितरो गोपुत्रोक्तः ॥

इन्द्र एव ईदित्वा माहिनावागुत्रोक्तानि सन्तु हे वर
वाचा ॥ १११ ॥ ११२ ॥

(वे अस्माक पितरः) वे जो हमारे पितर (गोपुत्रोक्तः)
इन्द्रबोधे कर्त्तव्योक्त हैं (एव) इन्द्र (मन्त्रेण) मनुबोधोंमें
(व कि मित्रिता) कोई भी मित्रक नहीं है । (माहिनावा)
अस्माक पूर्वजों का माहिनावाका तथा (वचनावा) कर्त्तव्य
(इन्द्रः) आत्मा (एवा गोत्राणि) इसके इन्द्रकर्मोंको (ईदित्वा
वरसन्त्रे) दत्त बनाता है ।

इस मन्त्रमें गोपुत्र इन्द्रकर्मोंका है । इन्द्रबोधोंमें वर कर्त्तव्य
किए मनुबोधोंमें वरके वाच पुत्र करना पड़ता है । जो गोत्र
इन्द्रबोधोंपर विवक्षित पावेता है अर्थात् उन्हें अपने वाचमें कर लेता
है उसका फिर इन्द्रबोधोंमें कोई भी मित्रक नहीं रहता क्योंकि
इन्द्रका ही मित्राग्नी कर्त्तव्य है । इन्द्रकर्म—वचना करवा वस्तुता दत्त
नहीं सारी कर्त्तव्य करवा है । अतएव यहाँ इन्द्रकर्म
कर्त्तव्योक्त पितरोंको गोत्रोक्त नामसे पुकारा गया है । इन्द्रकर्म-
वद शिवेपर आत्मा कर्त्तव्य दत्त बनाता है । कर्त्तव्य इन्द्रबोधोंमें
पुत्रकर्मोंमें वर पुत्र का यदि इन्द्र कर्त्तव्य दत्त नहीं पड़ते ।
कर्मका इन्द्रबोधमें दत्तका दत्त वर बनाता है कि उसे लक्ष्मीक
कोई भी आपत्ति दत्त नहीं पड़ती । इस प्रकार इस मन्त्रमें
इन्द्रकर्मवचना महान कर्त्तव्य है ।

सोम और पितर ।

त्वं सोम प्रविशितो मयीवा त्वं शिविष्ठानु मेनि
वसाम् । तव मयीवा पितरो व इन्द्रो देवेषु राजन्-
कन्त वीराः ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

सन्तुः ११५११ ॥

हे सोम । (तव मयीवा प्रविशितः) तू अपने मन की
गतिसे आदि अपनी बुद्धिसे वर विवक्षित मन्त्रितोक्त कायता है,
इन्द्रकर्म (त्वं) तू (प्रविशितः) मनुबोधोंमें वरक व पुत्रम
मार्गपर अपने गति की गति के जाता है । (इन्द्रः) हे इन्द्र !
(तव मयीवा) तारे मनुबोध (वाः वीराः शिवता)
हमारे श्री पितर (देवेषु त्वं अनन्तः) देवोंमें समर्थ
जाता करता है अर्थात् देवोंमें शिवात्मिक वर पाते हैं, वा
देवोंके राज वाणि रक्षित प्राप्त करता है ।

इत्तु- उम्मी कहेदेवेके इत्तु उम्मी बनता है । कहेदेवना
बनने के लिये होता । अमृतसे पीछा करकेवाला नानि अमृत
देनेवाला । सोमन मुजोके मुक्त ।

इह मंत्रमे सोमके वेत्तृत्वं श्री महिमा वर्ज्यार्ह है । पितर
सोमके वेत्तृत्वं देवोंमें उत्तम पदके प्राप्त करते हैं, ऐसा नडांके
पद अस्म्य है ।

सो न इत्तुः पितरो इत्तु पीतोऽमृत्यो मर्ता
आविर्वा । तस्मै सोमाय इविषा विधेम
मुजोके लक्ष्य सुमतौ स्वास ॥ अ ८।४८।१९४

हे (पितरः) पितरों ! (नः इत्तु पीताः) जो इहर्गोमें
पिता बना (अमृत्यः इत्तु) मरकरहित इत्तु (नः मर्त्यान्)
इह मरणवर्मा मनुष्योंमें (आविर्वेषः) प्रविष्ट हुआ हुआ है (तस्मै
सोमाय) वस सोमके लिए (इविषा) इविषा (विधेम) हम
पूजा करते हैं । (अस्व) इस सोमक (मुजोके) सुखमें और
(इमस्यै) इमस्यै (स्वास) हम रहें ।

इह मंत्रमें सोमके इवि देवेका व सुजेरुमुके सोमकी
कमलमें रखेका विदेक है । वह सोम हमारेमें प्रविष्ट हुआ हुआ
है, वह बात भी बडांके पता चक रही है ।

तं सोम विवृमिः संविदासोऽनु जावाग्रविषी आ वतन्व ।
उस्मे ऐ हन्तो इविषा विधेम नर्न स्वास पतयो
रपीमन् ॥ अ ८।४८।१९५ अ १९।५७ ॥

हे सोम ! (तं) तू (विवृमिः संविदासः) पितरोंके क्षान
मिष्टा हुआ (जावाग्रविषी) कुकट व शृषिणी कोकका (अन्त
का प्रत्यक्ष) अनुकृत्यसे विस्तार करता है । (हन्तो) हे इत्तु !
(उस्मे ते) वस तेरे लिए हम (इविषा विधेम) इविषोंके
पूजा करते हैं जिससे कि (नर्न) हम (रपीमन् पतयो स्वास)
पदोंके स्वासी होयें । इस मंत्रमें वह वर्ज्यार्हा पदा है कि सोम
पितरोंके क्षान मिष्टकर तु व पृथिवीका विस्तार करता है ।
वह जो मि देवेके पदवैपत्ति मिळती है ।

एषा हि व पितरा सोम पूर्वं कर्मानि चतुः
वसन्म भीताः । वसन्मवाताः पारिषी रपोर्मु
वीरोमिरार्गोमवता मवा नः ॥ अ ९।५९।११ ॥

अ १९।५९ ॥

(वसमान सोम) ने पापित्र सोम ! [एषा हि] तेरेसे हो
अर्पावृत्तेरी सहायता द्वारा ही (नः) पूर्वं भीताः पितरः) हमारे नीर
पूर्वक पितरोंके (कर्मानि चतुः) भेद कर्मोंको किया ।

इह मंत्रमें वह वर्ज्यार्हा पदा है कि सोमर्ग सहायता द्वारा
हमारे पूर्वक पितर भेद कर्म करनेमें समर्थ हुए । सोम राक्ष
सोंका विनाश करता है । नीर अर्वाशाक होकर सोमके
सासक बननेके लिए कहा गया है ।

पितृमान् सोम ।

अमृत्ये कम्पवाहवाय साहा सोमाय विवृमते
स्वाहा । अपहवा अमुरा रक्षासि वेदिचरः ।

अ १०।११ ॥

कम्पवा वहन करनेवाली आग्नि के लिए साहा हो । उतम
पितावाके सोमके लिए साहा हो । (वेदिचरः अमुराः रक्षासि)
पृथिवीपर स्थित अमुर व राक्षस (अपहताः) मर हा चयें ।
वहाँ सोमके उतम पितावाका कहा गया है । अग्नि व सोम
पृथिवीस्थ अमुर व राक्षस मर करते हैं ऐसा मंत्रको
संमति करनेसे पता चलता है ।

सोमाय विवृमते स्वाहा वसः ॥

अ १०।१२ ॥

भेद पितावाके सोमके लिए साहा और वसस्कार हो । वहाँ
सोमके लिए साहा व वसा देवेका उक्तेक है ।

विवृमः सोमवृमया सवा वसः ।

अ १०।१३ ॥

सोमवृम पितरोंके लिए स्वाहा व वसस्कार हो । इस
मंत्रके देवदेवेके इत्या रूप होता है कि सोम व पितरोंका
परस्पर मित्रत्व समर्थ है । वह सोम सोम है वह कृता कठिन
है अतएव कि संपूर्ण क्षानपिपवक मंत्रोंका समन्वय व किना
चातके ।

अङ्गिरस् पितर

अ सो महे महि नमा अरच्यमाहर्ग्यं सवसावाज
साम । नवा नः पूर्वं पितराः पदवा अर्च्यतो
आग्निरो मा अविन्द्वत् ॥ अ ११।२१ ॥

अ ११।२१ ॥

हे यमुष्यो ! (नः) तुम (महे सवसावाज) मेरे भारी
वज्रात् इत्तुके लिए (महि नमाः) मरान् वसस्कार तथा (आ-
ङ्गिरस जम) आङ्गिरस नामके तामके (पमाज) पमन

करके स्तुति करो (वेन) त्रिष आङ्गुल्य सामहाउ (अर्चयन्तः)
अर्चना करते हुए (वा) हमारे (पूर्वे परब्रह्मः अङ्गिरसः
पितरः) पुरातन परब्रह्म अङ्गिरसु पितरोंके (वाः अग्नि-वन्)
सूर्यकिरणोंकी प्राप्त किया वा ।

इस पक्षमें भी देखा जाए है कि पितरोंके सूर्यकिरणोंके प्राप्त
करकेका प्रत्येक इमें दिखता है । यहाँपर पुनः अङ्गिरसु पितरों
द्वारा सूर्यकिरणोंकी उपलब्धिबोध किया है । आङ्गुल्य सामकी
मक्षिमा यहाँ अर्थ हो रही है । अङ्गिरसु पितर किन पितरोंक
नाम है इसका विचार हम फिर करते हैं ।

आङ्गुल्य साम-आङ्गुल्य साम है स्तुतिस्मृत्त अथवा वा
शोभ । अथोपसक्त अर्थ है और का अर्थ-अभाव । वेदो-विषय
आङ्गुल्य सामः आशोका । मि अ १। ता १। च ११ ।
अ ४५ अतः आङ्गुल्य साम है हुआ स्तुतिस्मृत्तका वा आ-
शोभनाम नामि औ और ओरसे बोका गया है ऐसा । अतएव
आङ्गुल्य सामका अर्थ हुआ कि जो सामस्तुति पूर्व मंत्रोंक पुनः
है अथवा वा साम और ओरसे बोका गया है । क्योंकि सामसे
हुन हू होते हैं अतः इसका नाम अथ है । स्तुति अथवस्तुति
हुकामि वेन उ-अथ । परब्रह्म-वरम पर (परमात्मा) को
आवेदनाम । आत्यह । अथवा वे परं । को १। ३६ ।

वा प्रथमार्थमें पितरीनाम प्रशोभ हुआ हुआ है । अथवा इसे
वहमन्त भी माना जा सकता है । वा- सूर्यकिरण ।

अथोपसक्त मन्त्रके मातृका ही मित्र अक्षित मन्त्र भी समर्थन
कर रहा है ।

व उदाहरण पितरः गोमय बह्वृतेवाग्निवन् परिवाकरो
वत्सु । दीर्घानुत्वंअङ्गिरसो वो अस्तु प्रथि धृम्बीत
मातृक सुमेवता ॥ अ १। ४। ११॥

(वे पितर) त्रिष अङ्गिरसु पितरोंके (परिवाकरो) परि-
वाकमें (वत्सं) मेघकी (वृतेव) वज्र वा अथवा (अग्नि
वन्) विदारण किया और (गोमय वसु) सूर्यकिरणकी घनका
(उ-अथम्) प्राप्त किया ऐसे है (सुमवता) उत्तम अथा-
योग (अङ्गिरसः) अङ्गिरसु पितर । (वाः) सुमहारी
(दीर्घानुत्वं अस्तु) दीर्घानु बोले । (मातृकं प्रति धृम्बीत)
गुप्त मनुष्य आदिपर अनुग्रह करो ।

इस मन्त्रमें भी पूर्वोक्त मंत्रानुसार अङ्गिरसु पितरों द्वारा
मेघमन्त्र करने के सूर्यकिरणोंकी प्राप्तिका उल्लेख है । अथ ही ऐसे

पितरोंकी दीर्घानुकी प्रार्थना की गई है व उनसे मनुष्य-वर्ग-
पर कृपाछि रक्षणेकी कहा गया है ।

आवापुमिनी अस्तु मा दीर्घीनां त्रिषे देवातो

अस्तु मा रम्यन्तु । अङ्गिरसः सोम्याः

पापमार्जितपक्षमस्त्य कर्ता ॥ अर्च १। १। १५ ॥

(आवापुमिनी) तु और पुमिनी (मा अस्तु दीर्घीनां) वे
अनुकूल प्रवर्धित हीमें । (त्रिषे देवाताः) है सब देव ।
(मा अस्तु रम्यन्तु) वे अनुकूल कार्यका प्रारंभ करो ।
(अङ्गिरसः सोम्याः पितरः) है अङ्गिरसु तथा सोम
उपासन करनेवाले पितरों । (पक्षमस्त्य कर्ता) पुत्रीकाल
लौक्य करनेवाला (पापं मा अक्षय्यु) पापको नष्ट हों ।

इस मंत्रमें अङ्गिरसु पितरोंके मातृका की गई है कि वे
पापक्षमनाओंके करनेवाले की पापके क्षममें लाय है तब
आवेदने वह पापक्षमनामें करना भूक जाने ।

अङ्गिरसो वा पितरों वरन्ता अथवातो

सुमताः सोम्याः । तेषां वरं सुमती वसिष्ठा-

वामसि मन्त्रे क्षीमकसे काम ॥ अ १। १। १६ ॥

अ १। १। १६ ॥

अ १। १। १६ ॥

(वा वरन्ताः अथवातोः सुमताः सोम्याः अङ्गिरसः
पितरः) हमारे वरन्त अथवा मन्त्र, सोम उत्तर अथवा
अङ्गिरसु पितर हैं । (वरं) हम (तेषां) उन वरन्तों
निवेदननिवेदि पितरोंकी (सुमती) उत्तम वरन्तमें और (वीं)
कल्याणकारी (क्षीमकसे) उत्तम क्षममें (काम) प्राप्त
होंमें ।

इस मंत्रमें पितरोंकी क्षम वरन्तमें तथा क्षम क्षममें वरं
मेघ निवेदन किया गया है ।

अथवा उत्तरपर बोकावा विवेक इस कर जाए है । इस
पर निवेदन विचार अपेक्षित है ।

अथवातोः—अथवातोऽर्चयन्तः अर्चयिताणि अर्च
तापविषयाः ॥

वि १। १। १६ ॥

अर्चयन्तः अर्चयन्तः अर्चयन्तः नामि स्मिन् निवेदनकर्तृक
होते हैं । अथवातो वरं वातुसे परन्त अथ वरन्त है । वे
निवेदन दो वह अर्चय ।

मृत्युः—आदिनि मृत्युः संभवः । मृत्युः मृत्युमात्रः
न देहे ।

वि ३।११

अर्थात् मनु कवि परात्मामें देहा हुआ था । मृत्युका ज
हो धाममें मुक्त हुआ हो अतएव इसकी सरीरमें आत्मा
नहीं होती ।

वक्षिण—मनुके योग-मूर्त्ता नाम छकारद्विके योग
मन्त्रा मनुमें कैले साधक ।

पितरोंकी उत्पत्ति ।

मनु कवि इस मंत्रोंका उल्लेख किया जायगा, जो कि अमृतक
के विभागमें मनु आ सके हैं । यद्यपि इन मंत्रोंमें मनु कम्ब
मनुष्यवन्त ही मनुष्य हुआ है तथा वे मनु पहिले रिए
पर मंत्रोंका ही महत्त्व भी कहते हैं परन्तु हमने जो मंत्रों
के विभाग बनाए हैं उनमेंसे किसीमें भी वे नहीं आसके हैं और
अतएव ऐसे कवे हुए मंत्रोंकी इच्छा कर अतएव शौर्यके नामसे
गोप्य रिया गया है ।

किन्तु किञ्चित् मंत्रोंमें पितरोंकी उत्पत्तिवत्त्वभी निर्दिष्ट
किञ्चित् है ।

वक्षिणस्तुवत् पितरोंमृत्युवन्तपितरिपितामासीत्

मनु १।१।११

(वक्षिणः अस्तुवत्) नव प्राणोंसे प्रजापतिने सृष्टि की
विश्वे (पितरः अस्तुवत्) पितर उत्पन्न हुए । [अर्थात्
पितरोंकी उत्पत्ति] प्रजापतिकी आज्ञासे प्राणि उत्पन्न करने—
प्राणी थे ।

इस मंत्रकी व्याख्या का ८।१।१।१० में है । अतएव के
अनुसार वह व्याख्या सही—अतएव प्रजापति का कहना है देहा
कृत होता है । इस व्याख्याकी व्याख्या प्राप्त करते हुए अतएव
मनुने किया है कि अतएव प्रजापति । एतद् मनुपति ।
अन्ते मृत्युनि प्राण्यो मृत्युर्मुक्ता अमृतत प्रजाः सजेन
प्रजासेति स्वयम् ।

वक्षिणस्तुवत् की अतएवने निम्नलिखित व्याख्या की
है— अतएव प्रजापति । नव दे प्राण्यः अतः जीवन्मया ही
पितरस्तुवत् ।

इस मंत्रसे देह प्रतीत होता है कि मनु एवं नव
नव अमृतोंकी तरह पितरोंकी भी आज्ञा से ही उत्पन्न होते

होगे। क्योंकि सामान्य मनुष्यकी उत्पत्ति में पितरोंकी उत्पत्ति
का समावेश हो सकता था, फिर भी इस मंत्रमें किञ्चित् अमृत
पितरोंकी उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है ।

वक्षिणस्तुवत् मनुष्यः मृत्युमुपासत ।

अथैव सर्वममृतं देवा मनुष्यः अस्तुवाः

पितरः अमृतः ।

अथर्व १।१।११

[वक्षिणः अमृत आहुः] वक्षिणों ही अमृत कहते हैं और
[वक्षिणः मृत्युमुपासत] वक्षिणों ही मृत्यु मानते हुए अमृत
उपासना करते हैं । [देवाः मनुष्याः अस्तुवाः पितरः अमृतः]
देव मनुष्य अस्तु पितर तथा अमृतपित [सर्वे] वह सब
[वक्षिणः अमृत] वक्षिण ही हैं ।

इस मंत्रसे देहा उत्पत्ति की भाँति न है कि पितर भी वक्षि
के उत्पन्न होते हैं ।

देवाः पितर मनुष्याः पितरोंका उत्पन्न से ।

अथिष्टात्पितरः सर्वे दिवि देवा दिवि भित्तः ।

म १।१।११

[देवाः पितरः मनुष्याः] देव पितर मनुष्य [ये न]
और जो (वक्षिणः अमृतः) अमृत तथा अमृत हैं वे सब
[दिवि भित्तः] युक्तों के आश्रयमें स्थित [देवाः]
सर्वे अमृत आदि देवता हैं [सर्वे] वे सब [अथिष्टात्]
अथिष्ट से [अथिष्टः] उत्पन्न हुए हैं ।

अथिष्ट वह परमात्मा का नाम है क्योंकि परमात्मा वह
अर्थात् सबकी उत्पत्ति करने की शक्ति अर्थात् देवता वक्षि है ।

वक्षिणः अथिष्टसे पितरों की उत्पत्ति प्रतीत गइ है ।
इस प्रकार इस मंत्रोंमें पितरोंकी उत्पत्तिवत्त्व सर्वत्र
निर्दिष्ट है ।

दाक्षिणा य पितरः ।

वक्षिणस्तुवत् पितरः अमृतः अथैव सर्वममृतं देवा मनुष्यः
अस्तुवाः पितरः अमृतः । अथैव सर्वममृतं देवा मनुष्यः
अस्तुवाः पितरः अमृतः । अथैव सर्वममृतं देवा मनुष्यः
अस्तुवाः पितरः अमृतः ।

अथर्व १।१।११

[मनुष्यः] उत्पन्न तथा अमृतोंकी ये सर्व करने
प्राणी [वक्षिणः] अमृतों देवताकी [अथैव सर्व]
इसके ही हैं [सर्वे वक्षिणः] वह वक्षिण [अमृतः]

वा आ आयत्] अन्त्यावकारी स्वागते अथवा अन्त्यावकारी स्वरूपसे हमें प्राप्त हुई है। इसके हमारा आश्रयण नहीं होता। [नीचे जो आत्मा उपपन्न होती है] जिस प्रकार सुगन्धका के लिये वायुपर जो आत्मा अन्त्यावकारी है उस प्रकार वह शक्ति [इमान्] इस नीचे जो [पितृभ्यः] पितरों के लिए सभी प्रकार [अथ उपरालम्बात्] प्राप्त कराये जायित् पितरों के पास अन्त्यावकारी रीतिसे पहुँचाये।

इस मंत्र में स्पष्ट अन्त्यावकारी शक्तिका माहात्म्य वर्णित है। शक्ति ऐतरे पितरों की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार सुगन्धका के लिये वायुपर अन्त्यावकारी है, वही प्रकार शक्ति ऐतरे पितरों की प्राप्ति भी अन्त्यावकारी है। ऐतरे इस मंत्र में उपरालम्बात् स्पष्ट सूचित किया गया है। पाठक शक्तिका इस महत्त्वपर अवश्यसे विचार करे।

मरने पर पितरों में गणना।

पुत्रिणी वा पुत्रिण्यामावेष्टवासि ऐसो नो वाता मरितस्तनुः। परापरैषा वसुभिर् नो अस्त्यथा सुता विपु सप्तमदु ॥ अथर्व १८।१।१८४

(पुत्रिणी वा पुत्रिण्यामावेष्टवासि) मिट्टी के बने हुए हैं मृतपुत्र। तुम्हारे मिट्टी में मिला देता हूँ अर्थात् तुम्हें पुत्रिणी में पालता हूँ। (वाता ऐसः नः आनुः मरितस्तनुः) बारक देव हमारी अन्तु को बचावे। हे (परापरैषा) प्रकृतता हम से पूर लिये पितरों! (वा) तुम्हारे लिए वाता देव (वसुभिर् अस्तु) वात करवेगा ही तुम्हारा आश्रय वाता हो। (अथ) और (सुता) मृत (विपु सप्तमदु) पितरों में अन्ती तरह होवे अर्थात् पितरों में आ जायें।

इस मंत्र के पूर्वार्थ में मृत देह के आत्मे का निर्देश किया है। वह मानव देह पार्थिव तत्वों के आधिक्य से बना हुआ है अतएव वही मृत देह की पुत्रिणी (मिट्टी) के नाम से उपाध मया है। इसी अर्थसे विष्णु विहित यज्ञ में कहा गया है—

आकाशं पुत्रका वना आका की लकड़ीर है।

आका में मिट्टी आगका आका दामक मीर है ॥

मंत्र के उत्तरार्थ में मृत् की पितरों में शोचक निर्देश है। इसका अभिप्राय यह है कि मरनेपर पितरों में मृत्पुत्र का शिक्तता है वही मरने के बाद से उलझे विपुलता हो जाती है।

अग्निनी तथा पितर।

सुखं सुखं सुरमार्गं निमिर्मतं स्वपुत्रिर्निर्महन्ती विपुलः वा। वासिष्ठ वसिष्ठका विष्णुविष्णु विष्णु-वस्तुमहि मेति वामनः ॥ अथ १।११।११४

(इयमा) हे आत्माओं की वर्षा करनेके आत्मे! (सुखं) सुख दोनों (सुरमार्गं) पुत्रिकारक (सुखं) शोचकक और जो कि (निमिर्मतं) दोनों द्वारा आकर आया करता है, ऐसे पदार्थ को (स्वपुत्रिः) अपनी पुत्रियों अर्थात् शोचकाओं द्वारा (विपुलः) पितरों के लिए (वा विः वसुभिः) वायु और के आकर पहुँचाते हैं। इसके (विष्णु वसिष्ठः) पूरक विष्णुमाय पदार्थों के लिये के लिए (वसिष्ठः) आत्मा। (विष्णुवायु) विष्णुवायु के लिए (वा अथः) तुम्हारा शोचक (महि) महत्त्व है यह सब को (मेति) मान्य है।

विष्णुवायुः प्रकृतक देवताका कोई वह ज्ञान प्रकाश हो या अन्य कोई हो।

इस मंत्र में पितरों के लिए मीन पदार्थ अग्निनी पहुँचाये हैं एका अन्ते है।

सरस्वती और पितर।

सरस्वती वाचर्यं यथाय स्वायिर्हो विपुलनिर्महन्ती। आश्वत्थामिह वसिष्ठि मादृक्स्वायमीषा इव आयेक्ये ॥ अथ १।१।१८४

यह मंत्र जो कि पितरों के लिये अन्त्यावकारी है इस प्रकार कहा है सरस्वती वाचर्यं यथाय स्वायिर्हो विपुलनिर्महन्ती। आश्वत्थामिह वसिष्ठि मादृक्स्वायमीषा इव आयेक्ये ॥ अथ १।१।१८४

(सरस्वति मेति) हे सरस्वती देवी! (वा) जो तु (विपुलः) स्वपुत्रिः महन्ती) पितरों के लिये शोचक स्वायिर्हो अन्त्यावकारी होती हुई (वाचर्यं) पितरों के लिये अन्त्यावकारी करती हुई (यथाय) आई है। यह (अग्निर्हो विपुलः) इस मंत्र में (आश्वत्थामिह) बैठकर प्रलय हो। (अन्ते) हमें (अन्त्यावकारी) शोचक देव म होने ऐसे अन्त्यावकारी (वा मेति) है।

अन्त्यावकारी को पाठ्येय है यह विशेष करके उत्तरार्थ में ही है। यह उत्तरार्थका अन्त्यावकारी प्रकाश है हे सरस्वती! ॥ अथ १।१।१८४

इस वक्त्रमें [वक्त्रमात्राव] वक्त्रमात्रक किये [सहायार्थ इवः
 यत्र] अत्रापे पूजनाय अन्तर्गते आयको नीर [रावशरीर्य]
 वक्त्रे प्रक्षिप्ते [स्निग्धे] हे । इस मंत्रमें अरस्वतीका पितरौके साथ
 अथवा तत्पर वक्त्रमा स्वप्न जाणा व यक्त्रमें आना दर्शना
 वर्य है ।

परस्परं यो पितरो हवन्त एक्षिणा यक्षमयिबद्धमाया॥

सहस्राध्यायिहो ब्रह्ममात्रं सत्यस्यैव ब्रह्ममहिम्नं ॥

May 1 1961

जनपदेदमे वह मंत्र बाहेरे पाठमरके पाय है-

प्रास्थीं पितरो हवन्ते वशिष्ठः ब्रह्ममभिब्रूमाणा ।

नामवापिस्मिन् नार्हसि मयापुष्पावलीव । इयं भाषेयस्मि॥

जयप १८१४२॥

[दक्षिण] दक्षिण दिक्कसे आकर [पक्ष] अभिनवमाया
 गिरा :] बङ्को पय मोरसे ब्रह्म करेसे हूय गिरा [वां वर
 लप्ति हप्ते] जिस वरस्वतीके पुत्रको है एही से वरस्वती ।
 ए [वर] गद्दा हय बङ्को [वनमालेषु] वनमालोंमें [वर
 कार्य हय : वार्य] हारासे पुत्रनीय बङ्को भागको तथा
 [एनसेव] वनकी दृष्टिके [जेहि] से ।

पितरों की दक्षिण दिशा है वह हमें अन्न वस्त्रों व धातु है।
 तथा हमारे ऊपर दक्षिण के धाम [ब्रह्मलोक] का पार होना
 सम्भव करने के लिये किता है। इस मन्त्र में पितर अस्त-वृत्ती
 करने बुलाते हैं वह दर्शाया गया है।

इदं ते ह्यग्नौ यजन्तः सारस्वतीं विसृजन्ता इन्द्रियाण्यस्य ।

एवामिह च कश्चिदाद्यतमस्यैव तेषामिहैव मधुमन्तः स्वामः॥

समर्थ ७१६६१२३

[वररथस्य] हे सरस्वती ! [हर्षं ते वृणवत् हर्षं] मह तेरे
 मित् कृतवत्तम वदति मीधे विमिश्र हर्षम् । [यत् हृद हृदिः
 मित्युत् आसत्] वा मह हृदि मिश्ररोहि मित् दिवा ज्ञानेनात्म
 नः । [इत्यपि ते संतस्यानि कथितानि] ते तेरे मित् कृतवत्तम
 मित् हृदम् है । [तेभ्यः] हृदये [वर्यं] हम् [वसुधैवकु
 र्यात्] वसुधैव कुर्वते ।

कल्प-वृक्ष कोपने से क्या है । शम्भुजी के हाथ जाके राखी है
कल्प दीया जाले राखी ॥

इस संग्रह में निम्नलिखित सिद्धि को हमारा दिया जाता है, यह
 वास्तविकता को ही दिया जाता है यह दर्शाया गया है और ध्यान
 की है वास्तविकता को हमारा ही देखा गया है।

१५ (अ. ११, भा. १८)

इस प्रकार इन उपरोक्त मंत्रोंसे सास्वती व पितृदेवता
सबन्धित होकर वे यह हमें यहाँ स्पष्ट पता चलता है ।

गौ ष पिस्वर ।

इथाः पितामहो मनुष्याः पञ्चर्षाप्सरसश्च वे ।

ते त्वा सर्वे गोप्यन्ति आतिरात्रमतिशय ॥

अर्थात् १ १९९३

(वेधाय पितरः मनुज्याः) देव पितरः मनुज्य (वेध) और जो (वेधयाधरः) मनुज, तथा अप्यास् हैं, (ते ज्ये) वे सब (त्या योपयन्ति) तुम गौश्री रक्षा करते (सा) वह यू (अतिरात्र) अतिरात्र नामक मनुष्य (अतिरात्र) शीघ्रतासे प्रसन्न कर ।

यहाँपर आतिराजने भयबैसाखी वो को पितर में रक्षा करते हैं देख बर्खाश ह ।

प्रजापतिर्मह्यमेवा एराजो विश्वैर्देवैः पितामिः संविदायः ।

शिक्षा: सुखीस्य नो गोष्ठमश्रित्यासीत् वयं प्रवृत्त्या स सर्वेभ्यः॥

9 169188

[प्रजापति] प्रजापति [जिने: देवै: विष्णुभि: सहिदान]
 सब देवों व विररोंके साथ सिद्ध हुआ एक मत्तवे [मत्त] तिर
 किए [पृथ:] वे पावें [रज्ज:] रेत। हे। वह प्रजापति
 [धिया: सती:] कल्याणकरणी होती हुई उन मौमों [न:]
 हमारे [सप्रेमं वा लक:] मोठके समीप करे जहाँ वह हमारे
 मोठमें वे मौमैं स्थित होवें। और इस प्रकार सब मौमोंके
 प्राप्त करेपर [वष] इस [ताव्यं प्रजा वा सरेम] उन मौमोंके
 संतापवे संभव होवें अर्थात् उन मौमोंकी संतान हवें प्राप्त होती
 रहे ताकि ऐसी मौमोंका बहोच्छेद न हो जावे।

घोष—अर्द्धपर पोर्ष बांधी जाटी ह उस स्थानको गेष्ठ
कहा जाता है ।

इस संक्रमे उत्तम लैके विपरीत सहायिसे हवे मिली है
वह चर्चाया गया है ।

इन्द्र ष पित्र ।

॥ तु भुभीम्न मृतवत्त मय्यवतो वीर काद-

भाषा : १. एवं ह्यसि प्रदिशि विदुषां अथवा

७५.६१११६३

हे वीर इन्द्र ! [ता] यह [पादपात्रः] रक्षाकोषो वा
 द्विदिव्यो वा पादपात्रं [नृदमस्तु मन्त्रवतः] सर्वम
 भवतो भ्रातृ करमकी इच्छा करमेवासेको भवता

हमारे पितरों के बन्धुवन्धुवन्धु हैं । इस प्रकार परस्परके सम्बन्धित होने के कारण ही ऐसा कह दिया है । [वाः अस्मि] विवक्षित में वृत्तवत् ही मैं हूँ । अर्थात् एक ही पितामह हूँ । क्योंकि स्त्रियाँ संभवेत् सम्बन्धित होती हैं अतः मैं विवक्षित कहता हूँ कि मैं अपने पिताका ही पुत्र हूँ । अपने इस अभिप्राय की पुष्टि के लिए वाक्यान्तर्गत मीमांसा सूत्रका प्रमाण दिया है—
स्वपराकारात् कर्तृत्व पुत्रवर्त्तनात् ।

अतः इस मन्त्रका अभिप्राय हमें इतना बख्शा है कि पितरों केवलके प्राप्त होते हैं । इस मन्त्रके अभिप्रायकाके और मन्त्र परिके आशुके हैं ।

पितरोंके ऊर्ध्व, रस आदिके लिए नमस्कार ।

ममो वाः पितराः तन्नं ममो वाः पितरो रसाद्यः ॥

अथर्व १८।१।८॥

[पितराः] हे पितरों । [वाः ऊर्ध्वं ममः] तुम्हारे ऊपर का वस्त्र के लिए नमस्कार है । [पितराः] हे पितरों । [वाः रसाद्य ममः] तुम्हारे रस-अन्नरस [इत्यत्र आदि] के लिए नमस्कार है ।

ममो वाः पितरो भामाद्यः ममो वाः पितरो मन्त्रके ॥

अथर्व १८।१।८१॥

[पितराः] हे पितरों । [वाः] तुम्हारे [भामाद्यः] कोष के लिए [ममः] नमस्कार हो । [पितराः] हे पितरों । [वाः] तुम्हारे [मन्त्रके] मन्त्रके लिए [ममः] नमस्कार हो । भामा तथा मन्त्र दोनों कोषके विशेष अर्थ हैं । भामा आचार्य कोषका नाम है । मन्त्रको हम सांस्कृतिक कोष कह सकते हैं ।

ममो वाः पितरो वरुणोर्ध्वं तन्ममो वाः पितरो वरुणोर्ध्वं ॥

अथर्व १८।१।८३ ॥

[पितराः] हे पितरों । [वाः] तुम्हारा [वरुणोर्ध्वं] ऊर्ध्व है [तन्ममो] वस्त्र के लिए [ममः] नमस्कार है । [पितराः] हे पितरों । [वाः] तुम्हारा [वरुणोर्ध्वं] जो वरुण वर्म है [तन्ममो] उर्ध्वके मन्त्र [ममः] नमस्कार है ।

ममो वाः पितरो वायुर्ध्वं तन्ममो वाः पितरो वायुर्ध्वं ॥

अथर्व १८।१।८४ ॥

[पितराः] हे पितरों । [वाः] तुम्हारा [वायुर्ध्वं] जो वायु वर्म है [तन्ममो] उर्ध्वके लिए [ममः] नमस्कार है । [पितराः] हे पितरों । [वाः] तुम्हारा [वायु

वर्ध्वं] जो वायु वर्म है [तन्ममो] उर्ध्वके लिए नमस्कार है ।

इस प्रकार हम यंत्रोंमें पितरोंके विविध वर्मोंके लिए नमस्कार किया गया है ।

पितरोंका इष्टार्थ ।

अग्नीषिभिः सिन्धुभिः क्षामेधिराक्षिसेभिर्न-
सुमिराक्षिरोभिः । इष्टार्थं ममत्तु वा सिन्धुमन्त्राद्भ्यो
हरसा देव्येन ॥ अथर्व १।१।१४ ॥

[सिन्धुभिः अग्नीषिभिः] तीन अग्नीषिओंके साथ, [क्षामेधिराक्षिसेभिः] क्षाम मायकोंके साथ [अग्निसेभिः] अग्निसे के साथ [वसुभिः] वसुओंके साथ तथा [अक्षिरोभिः] अक्षिरो के साथ मिश्रकर [सिन्धुभिः] सिन्धुओं [इष्टार्थं] इष्टार्थ [वाः ममत्तु] हमारी रक्षा करे । [देव्येन हरसा] देव्येन तज्जहात् [अर्धं] इस पुत्र पुत्रको [भारे] रख करवा हूँ अर्थात् बचका साथ करता हूँ ।

इष्टार्थका अर्थव्यय विवक्षित है—

आग्निहोत्रं तपः धर्मं देवानां चाबुधकमम् ।

आग्निहोत्रं वैश्वदेवं च इष्टानिरवधिधीयते ॥ १ ॥

वापीकृत्यवशादि देवताभ्यर्चनादि च ।

अन्तमस्तमसांसांसाः पूर्वं भित्तमिधीयते ॥ २ ॥

इस यंत्रमें पितरोंका इष्टार्थ हमारा रक्षण करना है वह रक्षीवा है । पूर्वीके रक्षार्थके पितरोंको इष्टार्थ करने काविष ऐसी प्रतिपत्ति बढ़ाते विवक्षित है ।

अग्नीषि मन्त्रार्थे वा सिन्धु वा परिग्रह्यता

पुत्रवर्धनार्थे वा एव आगन्तु । वायुमन्त्रो अक्षमन्त्रो पितरा

संयन्ते तेषां सर्वेषां स्त्रियो अस्तु मन्त्राः ॥

अथर्व १।१।१३ ॥

[अग्नि वरुणोर्ध्वं] अग्नि वरुणोंके साथ । वा वायु, सिन्धु आदि पुत्रार्थ केतव्य वा । हमारी यावत्के वायुके सिन्धुके वरुणके आदि के साथ पुत्रके वायुके अथवा मन्त्रके साथ [अग्नि आगन्तु] वायु हुआ है अर्थात् इसके कारण वह वायु आया है तो [वायुमन्त्राः पितरा अक्षमन्त्राः संयन्ते] अतः भी पितर हमारे साथ संयत हुए हुए हैं [तेषां सर्वेषां] उन सबका (मन्त्राः) मन्त्र (सिन्धु अस्तु) कथामन्त्रादि हाव । उक्तके हमारा पुत्रवर्धन व होने पावे ।

इस धर्ममें पान्थे ब्यापके कल्पक पितरोंके शोधको छाँट करके पण्डितोंकी कलाकेली मार्गवा है ।

पितरोंसे मिलकर भेष्ट होना ।

वेऽत्र पितराः पितरो वेऽत्र मृत्युं स्व पुत्र्यांस्ते च
मृत्युं देवा भेष्टा भूतास्त्य ॥ अ १८।१।८५ ॥

(वे पितरः भद्र) ये जो अन्य पितर नहीं हैं और (वे)
को (वृत्त पितरः) तुम विपुल [भद्र] बहापर हो,
[वे] वे अन्य पितर [सुप्ताय भद्र] तुम्हारे अनुकूल
हैं और [मृत्युं] तुम [देवा भेष्टा भूतास्त्य] उनमें भेष्ट
होते ।

य इह पितरो जीवा इह मृत्युः ॥ अस्तौस्तेऽप्यु
मृत्युं देवा भेष्टा भूतास्त्य ॥ अ १८।१।८५ ॥

[वे] को [पितरः] विपुल [इह] यहाँ हैं उनके अनु
कूल [वे] हम [इह] यहाँ [जीवाः मृत्युः] अविष्ट हैं
(वे पितरः अस्माय अनु) वे पितर हमारे अनुकूल बने रहें ।
(मृत्युः) हम [देवा भेष्टा भूतास्त्य] उनमें भेष्ट होयें ।
अथ वे हमारे अनुकूल हो और हम उनके । दोनों मिलकर
भक्षक भेष्ट होयें ।

इस मंत्रमें पितरोंके साथ पारस्परिक अनुकूल व्यवहारके
विषय स्पष्ट बोध है ।

पितरोंके लिए धन, भक्ष्य व आयु ।

सुपुत्रा देवाः सविता सवित्रो सुवदु रस्य दक्ष
विपुल्यः आयुषि । विषयः सोमं ममदेवमिहो
यम इत्य विदुः कर्मते अस्व धर्ममि ॥

अथर्व १।१।१३५

(सुपुत्रः) सुपुत्र (सवित्रः) अथ सवित्र करने सोम
(सविता देवाः) मूर्धै देव (विपुल्यः) पितरोंके लिए (रस्य)
एवम् (दक्ष) बलको और (आयुषि) आयुको (वषट्)
यम करता हुआ (सोम) आयु (विषयः) पीए ।
(यम) इस व यम देवको (इह) यहाँ सोमदान कराके
(वषट्) प्रथम कर । (अस्व धर्ममि) इस सविता मूर्धके
धर्म मिलत हुई हुई (यम) पृथिवी (विदुः) भी (पति कर्मते)
पति कर्म करती है । इस मंत्रमें यह दर्शाया गया है कि सर्व
पितरोंके लिए यम यम आयुको देता है । बहापर हमें पति

यम पितृ कर्मते अस्व धर्ममि ॥ ये यह भी स्पष्ट पता चलता
है कि पृथिवी सर्वके पारों और परिक्रमा करती है । पृथिवीके
सर्वके पारों और धूमनेके मातृमित्रिक विद्यामृतको यह यम पुत्र
कर रहा है । यम अथ विषयमूर्ध पृथिवीवाणी धर्ममि पठित
है ।

पितर व तृतीय ज्योति ।

पुत्रत्वा ज्योतिः पितरस्तृतीय पञ्चोदय प्रकल्पयन्
वदति । अत्रस्वर्गास्वप इति पुत्रमर्कितोके
अष्टानेव दत्तः ॥ अथर्व १।५।११०

(पितरः) वे पितर । (वः) तुम्हारे लिए (पुत्रत्वा तृतीय
ज्योतिः) यह तीसरी ज्योति परमरमा (प्रकल्पे) प्रकल्पानार्थ
(पञ्चोदयमर्क) पञ्चोदयवाके अर्थात् ५ भूत से बने छीर से
तुल्य कर्मरहित जीवमर्माको (वदति) देता है । (अष्टानेव
दत्तः) अष्ट रश्मि के कारण बिना हुआ (अत्र) यह
अत्र जीवमर्मा (अस्विन् कोके) इस लोक में (तमांशि)
अष्टावर्णमर्कितोके (अथ इति) यह करता है, पूर करता है ।

इस मंत्रमें यह दर्शाया कि अष्ट रश्मि के कर्म परमार्थ
पितरोंको देवी आत्मा देता है कि या वरि अष्ट
मर्ममर्कितोके पूर करके प्रकल्पक मार्ग दर्शाती है । यहाँ
अष्टावर्ण माहात्म्य प्रकट हो रहा है ।

पितरोंमें सुखद रस्ता बनाना ।

इह मे पयोतिरुत्तमं दिवसं वरुणं अक्षयः कामपुत्रा म
पुत्रा । इह यमं विदुः मातृमित्रो कृते पन्था विपु
वः स्वर्गा ॥ अथर्व १।१।१३५

(इह दिवस) यह छाया (ये अयं पयोति) मेरा
अन्तर प्रकट है । (अक्षयः) अक्षय उत्तम यह (वरुण)
पुत्र हुआ अथ (मे एषा कामपुत्रा) मेरी यह कर्मवाञ्छी
पूर्ति करमेवाली गी है । (इह यमं मातृमित्रो विदुः) यह
यम मैं मातृमित्रो स्थापित करता हूँ अर्थात् कहे देता हूँ ।
और इस प्रकार (विपुल पन्था कृतः) पितरोंमें रस्य बनाना
हूँ (वः) को कि रस्य (स्वर्गः) स्वर्ग है सुखकारक है ।
इस मंत्रमें यह दर्शाया गया है कि मातृमित्र यम काम
करके पितरोंके बीचमें सुखद रास्य बनाना या करती
है । पितरोंके बीचमें यह सुखार्थक व्यवहार करना ही तो मातृ-
मित्रोके यम काम करता चाहिए वरुण इस मंत्र। अयम ज्योति
होता है ।

बन्धीम स्तोत्र करनकी इच्छावाले की (सुवि) प्रार्थना—
माझे सुव (हि) कथोकि (या इती) आज्ञा करकेपर
अथवा अमनाले होनपर (या इति) सुबोधे सुबोधे ओम्ब (वं)
ए (पितृणां प्रसिद्धि) पितरोंके प्रसन्न स्वरूपहारमें (अथवा) एका
(आदिः) बन्धु अथवा इतिहास (वधूय) होता है ।

इस संज्ञके इत्यत्र पितरोंका बन्धु कहा गया है । कथोकि
वह पितरोंको उनके कार्योंमें बन्धुकर प्रभावता करता है ।

छात्री मरने प्रत्यक्षा वः पितृनामकप्रत्यय व
किष्कारिणाम् । अथर्वचरीषु बुद्ध्या इत्येकेन
अथर्वमद्वयता वसिष्ठः ॥ अ ८।११।४ ॥

(वसिष्ठः) हे वसत वाच करनेवाले । (वः) कथोकि तुम
(अथर्वचरीषु) छात्रावाले अथर्व छात्रावालों वाचमें (बुद्ध्या इत्येक)
वसे मारी छन्दसे वसिष्ठ छात्रावाले केने स्वरमें बोलेके (इत्ये अर्थ)
इत्यर्थे वस्ये (अथर्वचरी) स्थापित करते ही अतः हे (वः)
वेतावाले । (छात्री) प्रवृत्ता वा वेत्ताके और [वाच्यम्] वाच्य-
के तुम [वः पितृणां] तुम्हारे पितरोंके [अथर्व अर्थ] व
वस हास्यके अर्थको [किम्] किमर्थके [व रिणाम्] वर
होने वही देते । इस संज्ञके किमर्थके किए पितर आका है
ऐसा मनीष होता है । वह संज्ञ पूर्व कथे स्पष्ट वही हुआ
है ।

नवग्व पितर ।

यस्य वः पूर्वे पितरो नवग्वः अथर्वविश्वो
अभिवाज्यन्तः । अथर्वाम् उत्तरे पर्वतिष्ठन्तः—
शेषवाचं वसिष्ठि वसिष्ठः ॥ अ ९।११।५ ॥

अथर्व ९।११।५ ॥

[वस विज्ञातः] वसत वाचको येकाकी तथा [अथर्वः]
वः पूर्वे पितरः] अथर्व हमारे पुरातन पितर [तं] वस इत्यर्थे
[वः] नियमके [अभिवाज्यन्तः] चारों आरसे वसवाच्य वना
ते हुए, [नवग्वम्] वाच्यत यन्तु वा वाच्य वाच करनेवाले
[उत्तरे] तात्क [पूर्व] पर्वतरण [अथर्वचर्यं] ओहवदि
त वा अनतिक्रम्यते वृत्तीवाले [क वः] अथर्वतम इत्यर्थे
[वसिष्ठः] मनीष स्तोत्रोके स्तुति करते हैं ।

विद्वत्पद वाच्यचर्यम् अ ९।११।५ की व्याख्या
करते हुए वसत वस्य की व्याख्या इस प्रका की है— 'वस

वसतो मनीषतपतवो वा । अथर्वि वसतपदो वरीक
अथवा मनीषता वाणि मन्त्राव वैष्ठी वसिष्ठके बुद्ध्यात्मकके ।

महर्षि स्वाधी बुद्ध्यात्मजीवे मनीष वसिष्ठके ' ऐश वर्य
किंवा है ।

छात्रवाचार्थे विद्वत्किञ्चित् अर्थ करते हैं—अथवा मनीषावि
सत्रमनुविष्टमन्तः । अथर्व जो वसतपदके वस [व-
विष्टेय] के करवनेके हैं ।

इस संज्ञके अथर्वता अर्थ व वस विद्वत् के ५ मन्त्र,
यम व बुद्धिवा अमिषाव है । और इस अथर्व संज्ञके अर्थमें
पितरोंके कहा गया वाच्य पता है ।

काम और पितर ।

अथर्वो अथर्व प्रथमो वैश्व देवा आधुः पितरो व
मर्त्याः । उत्तराणामपि ज्वावाच विवहा मर्त्यतन्त्रे
ते काम वम इत्युच्येति ॥ अ ११।११।६ ॥

[अथर्वः प्रथमः वैश्व] काम प्रथम वैश्व हुआ । [एवं] अथर्व
को [व देवाः आधुः व पितरः व मर्त्याः] व तो देखने की
पाया व पितरोंके और वही अनुच्येति । (उत्तरा) इस करनके
हे काम । ए (विवहा) वम अथर्वके (ज्वावाच) वम है ।
हे महान् काम । (उत्तरे ते) वस ठेरे किए (अथर्व इत्युच्येति)
वै अथर्वकार करवा हूँ ।

महोपर कामकी वाचनेमें पितरों की वी अथर्वमर्त्या वर्य
वै है ।

मणि और पितर ।

व देवाः पितरो मनुष्या अपमनीमन्ति सर्वदा ।

उ वाचमपि रोहसु मण्डि मेहनाम मूर्खः ॥

अथर्व ११।११।७ ॥

(देवाः पितरः) मनुष्याः व सर्वदा अपमनीमन्ति देव पितर
व मनुष्य तथा मणि मणि आभन के नीत हैं [वः] अर्थ
मणि । वह वह मणि [मेहनाम] मेह करकी मणि करनेके
किए [मां मूर्खताः अपमनीमन्ति] मेरे विरपर स्मित होने अथर्व
ऐसे मणि की मैं विरपर चारण करता हूँ ।

इस संज्ञ में वह वसतावा वना है कि देव पितर व मनुष्य
मणिसे आभनते करते हैं । वहाँ वह वी पता नकल है कि
पितर व देव मनुष्यसे भिन्न हैं ।

महौदन पाचक पितर।

उक्त प्रपत्त महता महिम्ना सहस्रपुष्पा सुकृतस्त
कोके। विद्यामहाः पितरा प्रजोपमाहं पक्ष पञ्चदशस्ते
अर्चये १११११९॥

ये महौदन ! [सहस्रपुष्पाः] हजारों पीछोंका अर्घ्य
कलत है। [सुकृतस्त कोके] सुकृत के कोक में [महता
महिम्ना] अपनी बड़ी भारी महिम्ना से [पक्षः] विस्तीर्ण होता
हूँ [पञ्चदशः] केक । [विद्यामहाः पितरः प्रजा उपमा]
विद्यामहोदय पितर, संतति तथा संततिही संतति और
[पञ्चदशः पक्षः] पञ्चदश में [ते पक्ष अस्मि] तेरा पक्ष मे
पक्ष हूँ।

पञ्चदश—यहवां अर्चना ५ प्रपत्त, ५ इन्द्रियां व ५ मूर्तियों
का हूँ।

इस अर्थ में विद्यामह पितर अन्नियोंको महौदन पाचक
पक्ष पक्ष है। अर्घ्य के रूप महौदन पक्षते हैं।

महाचारी व पितर।

महाचारीन पितरो देवतयाः पूषन् वृषा अमु-
संपत्तिं ददते । गन्धर्वा एवमन्त्यायन् अर्चयिष्यन्
विद्यमानं नृपं सहस्रं दद्यान् नृ देवास्तपसा
निर्वाते ॥ अ १११५१३॥

[पितरः देवतयाः देवाः] पितर देवतम तथा देव [मने]
मे रूप [पूषन्] अमु अर्घ्य स्तुतं रूपते [महाचारी मे
अमुसंपत्तिं] महाचारीकी रक्षा के अनुग्रहम करत है [गन्ध-
र्वा एवं अनुग्रहयन्] गन्धर्वयन इस महाचारीके पीछे
पीछे रहते हैं। [नृपं सहस्रं दद्यान्] नृपः मिहय [देवता
स्तपसा] देवता (१११३३) (सर्वान् देवान्) इन सब देवोंकी
(का) वह महाचारी (तपसा विपति) अपने तप द्वारा पूर्ण
करता है—पूजन करता है।

इस अर्थ में देवता तथा है कि पितर भी महाचारीकी
रक्षा के लिए अपने पीछे पीछे-सदा फिरते रहते हैं ताकि महा-
चारीकी किसी भी प्रकार का कल न पहुँच सके।

पितरों की धार्मिक नियमप्रण।

मा टेव रश्मि रिति नाचमायाः पितृणां
पञ्चोत्पन्नमायाः । इन्द्राग्निव्याः के सुखो महति
वा ह्यदी विपत्त्या उपपत्ते ॥ अ १११ ११३॥

(रश्मिन् मा टेव इति नाचमायाः) सतिस्वी रश्मियोंको
हम मत कोटे इस प्रकार नाचना करते हुए तथा (पितृणां
पञ्चोत्पन्नमायाः) पितरोंकी सत्त्वियोंको निगमित करते
हूँ और अतएव (उपपत्ते) कार्यभुक्त हुए हुए (भिगमायाः
उपपत्ते) सुख के समीपमें अर्घ्यत् कार्यभुक्त अर्चये (इन्द्राग्नि-
व्याः) व अग्नि से (कं मन्ति) सुख प्राप्त करके प्रसन्न होते
हैं। (वि) विभव से [तो] वे इन्द्राग्नी [अग्नी] व तप
होनेवाके हैं।

इस अर्थ में यह बर्णना यथा है कि न तो सर्वथा संतति
उपपत्ते ही करता चाहिए और वहाँ सर्वथा संतति की वृद्धि ही
करनी चाहिए। पितरोंकी धार्मिक अर्घ्यत् अतएव धार्मिक नियम
प्रण करना चाहिए जिससे सुख की व वृद्धि होती है।
वहाँ पितरों की धार्मिक अर्घ्यत् धार्मिक अर्चयिष्य है।

देवी के पितर।

ये को देवाः पितरो व न पुत्राः सचेतसो मे
अमुतेरुह्यम् । सर्वेभ्यो व परि ददात्येव
स्वस्तेष्वं वरते ब्रह्मा ॥ अर्चये १११०१३॥

[देवाः] दे देवो ! [ये व पितरः ये न पुत्राः] जो तुझारे
पितर हैं और जो पुत्र हैं वे सब तुम [सचेतसः] सावधान
हुए हुए (मे एवं तथा) मेरे इस वचनको (मनुज) सुने।
(व सर्वेभ्यः) तुम सबके लिए मैं (एतं) इस अनुग्रहे
(परिददाति) योग्य हूँ (एवं एवं) कष्टित) कष्टमान
पूर्वक (वरते ब्रह्मा) ब्रह्मास्वामी के लिए पुरुष को भवत् वह
ब्रह्मास्वामी आनेके पूर्व ही भक्तानु में मैं न पावे।

परिददाति रक्षा के लिए योग्य हूँ। परिग्रहपूर्वक वा
मातृका अर्च रक्षायै देवा है। इन में मे देवों के पितर व
पुत्रोंका योग्य है।

देवाः पितरः पितरो देवाः । वा अस्मि सो
आत्म । अर्चये १११११३॥

(देवाः पितरः) ब्रह्मण पितर हैं और (पितरः देवाः)
पितर देव हैं। (व आस्मि) जो मैं हूँ (वा अस्मि) वह
मैं हूँ।

अब व्याख्यान है इस अर्थ में ब्रह्मण इस प्रकार किया है—
जो देव अनुग्रहाद कम है वे हमारे पितर हैं और न।

हमारे वितर हैं वे वसुधैवि रूप हैं । इस प्रकार परस्परके व्य-
विचारसे विचारोंका नेत्रमय होना सब किना है । [वः व्यसि]
विशेष में तु वसुध ही मैं हू । जगत् एक ही विचार है ।
क्योंकि विश्वा संमिश्र व्यसिक्म होती हैं अतः मैं विश्ववसे
कहा हू कि मैं अपने पिताका ही पुत्र हू । अपने इस अभिप्राय
को पुष्टि के लिए स्वयंवाक्योंके योगोंका सूत्रका प्रमाण दिया है—
‘स्ववपरावत् वसुधै पत्रवर्धनम्’ ।

अस्तु इस मंत्रका अभिप्राय हमें इतना स्पष्टता है कि स्थिर
हेतुवको प्राप्त होते हैं। इस मंत्रके अभिप्रायवाक्य और मंत्र
पक्षिने जातके हैं।

पितरोंके कर्म, रस आदिके लिए
नमस्कार ।

ममो वा पिठरः ॐ ममो वा पिठरो रमाय ॥

अथर्व १८१४/८॥

[पितरः] हे पितरो ! [वः कर्म वमः] तुम्हारे लक्ष्य का लक्ष्य क्या है ? [पितरः] हे पितरो ! [वः रक्षण ममः] तुम्हारे रक्ष-जवरक्ष [दुःख व्यधिः] के लिए मम-स्वार्थ है ।

बभौ बः पिचरो ग्रामाब भभौ बः पिचरो ग्रामाबे ॥

अथर्व १८।४।८२।।

[वि०रः] हे वि०र ! [५ः] तुम्हारे [मन्मथः] कोय के जिस् लम। समस्कार हो। [वि०रः] हे वि०र ! [५ः] तुम्हारे [मन्मथे] मन्मुके सिप [लम] समस्कार हो। माम तथा मन्मु होंगे कोयके विविध सेव हैं। माम लक्षण कोयका नाम है। मन्मथी हय पारिवक कोय नह बनते है।

बसो बा पिठरो बहु घोरे तस्मै नमो बा पिठरो नम
स्म तस्मै ॥ अथर्व १८।१।४३ ।

अथर्व १८।४।८३ ॥

[पितर] हे पितर । [वः] तुम्हारा [वत् कूर] को
कम है [तस्मै] वसके लिए [वमः] वमस्वा है । [पितरः]
हे पितर । [वः] तुम्हारा [वत् कूर] को कूर वर्म है
[तस्मै] वसके लिए [वमः] वमस्वा है ।

ममो वा विद्यरो वाङ्मिं तस्मै नमो व विद्यो वाङ्
स्मोभं तस्मै ॥ नमस्व १८१॥८४॥

जयस्य १८१४।८४३

(फिटरा) हे फिटरो ! (य) तुम्हारा (वत्) जो (दिने) मरनामरम कर्म है [त्वमे] उन्को किए [मयः] मरम्हार है । [फिटरा] : हे फिटरो ! [यः] तुम्हारा [वत्]

स्वोर्ध्व] जो मुखमग्न करके है [तस्यै ज्ञानः] उसको ज्ञान
प्रमत्तकर है ।

इस प्रकार इन मन्त्रोंमें पितरोंके विविध कर्मोंके लिए समस्त धिया गया है।

पितरोंका इष्टार्थ ।

जज्ञीषिभिः स्मिन्भिः प्राप्तेष्विदं निबन्ध-

अभिरक्षिगरोभिः । इहार्हं भवतु ॥ निवृत्तान्तरै

१९९३ ईस्वीय प

२११२४४

[विष्णुभिः] बलीभिः ।] तीन बलीभिः के साथ [अम-
येभिः] काम अमरों के साथ [अग्निदेभिः] अग्निदे-
वों के साथ [वसुभिः] वसुओं के साथ तथा [अक्षरोगिभिः] अक्ष-
रोगियों के साथ मिश्रकर [विष्णुभिः] विष्णुओं [इन्द्रभिः]
इन्द्रों [वाः] अथवा [हयग्रीवः] हयग्रीव के । [वैश्वेनः] वैश्वेन
देवता तथा [अग्निः] अथवा अग्निदेवता के । [अथवा] अथवा
करता है अथवा अथवा करता है ।

हमारे पास क्या विभिन्न डिप्लोमा है—

आग्निहोत्रं ययः सूर्य वेदावां यादुराजम् ।

आविष्कृतं वैश्वदेवं च ह्यहमित्यभिधीयते ॥ १ ॥

बापीकृत्यवडाणादि देवता-पुस्तकानि च ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस विषये विद्योक्ता इच्छापूर्वक इच्छा रखना चाहते हैं कि
सभी लोग। प्रत्येक रक्षणार्थी विद्योक्ता इच्छापूर्वक करना चाहते
ऐसी प्रतिष्ठापना बहाये निश्चय है।

कशीरं समुर्बधि च। विदुः च परिज्ञातुः।

पुत्राण्येतदः पूज्य आत्मा । वाचस्पत्ये ब्रह्मात् पित्रा ।

अथान्तर्गतं तेषां सर्वेषां विषयो ब्रह्म मन्तुः ॥

जयपुर ६/११६/३॥

[यदि कश्चिद्दृष्टव्यः] यदि वह जो वस्तु । वा मनुष्यः विदुः
 प्रायः पुत्राय चतस्रः वा । इसको मालके पाससे मिलने पड़-
 ते, माँके पाससे पुत्रके पाससे लब्धवा यन्त्रके पाससे [श्री
 काशी] प्रायः हुआ है अर्थात् इसके कारण वह वस्तु लब्ध है
 तो । वाक्यार्थः विदुः लब्धाय चतस्रे । मिलने की लिए इसको
 साथ संगत हुए हुए हैं । (तेषां सर्वेषां) उन सबका (मनुः)
 योग्य (विदुः लब्ध) सम्मानकारी होने । उससे इसका
 तुल्यता न होने पावे ।

इस अंशमें अपने धारणके उत्तर पितरोंके ओषधके शक्ति परे कि प्रभावकारी बनानेकी प्रार्थना है ।

पितरोंसे मिलकर भेष्य होना ।

प्रेम पितरः पितरो वेऽत्र पूर्वं स्य सुखोऽस्ते न
पूर्वं तेषां भेष्य भूतास्य ॥ अ १८१८८५॥

(वे पितरः भज) वे जो अपने पितर वहाँ हैं और (वे)
जो (पूजित पितर) तुम पितृव्य [भजस्व] वहाँपर हो,
[वे] वे अपने पितर [सुखात् भज] तुम्हारे अनुकूल
हैं और [पूर्वं] तुम [तेषां भेष्य भूतास्य] उनमें भेष्य
होते ।

न वह पितरों की भाँति वह सब सम । । अस्तोऽस्तेऽत्र
न तेषां भेष्य भूतास्य ॥ अ १८१८८५ ॥

[वे] जो [पितरः] पितृव्य [वह] वहाँ हैं उनके अनु
कूल [वे] हम [वह] वहाँ [की भाँति] कीर्ति हैं
(वे पितरः अस्मात् अनु) वे पितर हमारे अनुकूल बने रहें ।
(न) हम (तेषां भेष्य भूतास्य) उनमें भेष्य होंगे ।
अब वह वे हमारे अनुकूल हो और हम उनके । दोनों मिलकर
पितर भेष्य होंगे ।

इस अंशमें पितरोंके साथ पारस्परिक अनुकूल व्यवहारोंके
केवल उद्देश्य बोध है ।

पितरोंके लिए धन, भोजन व आयु ।

धनं देवः धविता वरेण्यो दधत् एव दध
सिमुन्वाः धर्मुनि । विनाय सोम भगवन्मित्रो
परि ध्या विष्णुः कर्मते अस्व धर्मुनि ॥

अथर्व १११४१७७

(धनः) धनहीन (वरेण्यः) श्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य
(धविता देवः) सूर्य देव (सिमुन्वाः) पितरोंके लिए (एव)
एवमेव (दध) दधको और (धर्मुनि) आयुको (दधत्)
करन देता हुआ (सोम) सोमका (विनाय) दीप ।
(धर्मुनि) इस धविता देवके (इहे) वहाँमें सोमदान कराके
(दधत्) दधन करे । (अस्व धर्मुनि) इस धविता सूर्यके
अंशमें मिलत हुई हुई (पना) पृथिवी (विष्णु) श्री (परि कर्मते)
परिष्कार करता है । इस अंशमें वह बर्णना गया है कि सूर्य
पितरोंके लिए धन दध अनुको देता है । वहाँपर हमें 'परि

पना विष्णु कर्मते अस्व धर्मुनि ' से वह भी स्पष्ट पता चलता
है कि पृथिवी सूर्यके पारों और परिष्कार करती है । पृथिवीके
सूर्यके पारों और जूमनेके भौतिक सिद्धान्तमें वह मर्म पुष्ट
कर रहा है । जमा कर्म निष्कर्षमें पृथिवीकी भाँतिमें पठित
है ।

पितर व तृतीय ज्योति ।

पुत्र व ज्योतिः पितरस्तृतीय पञ्चीव्य मन्त्रोऽत्रं
वर्षाति । अथस्वर्गास्तव इति वृत्तामिहोके
मन्त्राग्निव दधत् ॥ अथर्व ११५१११॥

(पितरः) वे पितरों । (वः) तुम्हारे लिए (एतद् तृतीयं
ज्योतिः) वह तीसरी ज्योति परम्परा (मन्त्रो) मन्त्रानाम्
(पञ्चीव्यमन्त्रं) पञ्चीव्यमन्त्रे अर्थात् ५ मूल से बने करीर से
तुम्हें सम्मरहित जीवन्मात्रे (वर्षाति) देता है । (अर्थात्
वर्षा) अर्थात् करने के कारण दिया हुआ (वः) वह
अथ कीर्तिना (अग्निम् ओके) इस ओके में (तर्माणि)
अज्ञानान्तरालोंके (अथ इति) वह करता है । करता है ।

इस अंशमें वह बर्णना कि अर्थात् करने के कारण परम्परा
पितरोंको ऐसी अर्थात् देता है कि जो वारे अज्ञा
नामन्त्रोंको वृत्त करने मन्त्रका धर्म वर्षाति है । यह
अज्ञाना माज्ञात्मक प्रकट हो रहा है ।

पितरोंमें सुखद रास्ता बनाना ।

इह त्रिं ज्योतिरिमुन्वा विरज्यं पर्वन् धन्वात् कामधुना न
पुत्रा । इहं यन् विष्णु मन्त्रोऽत्रं ज्योते पन्थां सिमुन्
वः स्वर्गा ॥ अथर्व १११११६॥

(इहं विरज्यं) वह खेता (मे ज्योतिरिमुन्वा) मेरा
अन्तरात् प्रकाश है । (धन्वात्) ओतेसे बनन वह (पर्वन्)
पर्वत हुआ अथ (मे पुत्रा कामधुना) मेरी वह कामनाओंकी
पूर्ति करनेवाली जो है । (इहं यन् मन्त्रोऽत्रं विरज्यं) वह
यन् मैं मन्त्रोऽत्रं स्थापित करण हूँ अर्थात् करने देता हूँ ।
और इस प्रकार (सिमुन्वा पन्थां ज्योते) पितरोंमें रास्ता बनाना
हूँ (वः) जो कि रस्ता (स्वर्गा) स्वर्ग है तुम्हारा प्रकट है ।

इस अंशमें वह बर्णना गया है कि मन्त्राग्नि के पर्वत
कर्मके पितरोंके बीचमें सुखद रास्ते बनाना का करता
है । पितरोंके बीचमें यदि सुखद रास्ते निर्धारण करना हो तो मन्त्र-
ज्योते यन् काम करना चाहिए ऐसा इस अंशमें आद्य प्रतीत
होता है ।

ज्ञाते उत्तम आत्मन् इष्टिषे आत्मन्वित होयो । (पितरः) हे इष्टिपथयो ! तुम (मनः इच्छत) मनसे प्राप्त होनेकी इच्छा करो अर्थात् मनसे प्राप्त एकाम होओ ताकि महाज्ञान का काम हो सके । ' कामनाः—कर्म आत्मानं ज्ञानतीति कामनाः । अथवा कार्यः । कामनाः—ये सर्वे य मन् प्रभवन् । जो स्मिता बलवत् करे । तदुरी—तत्प्रज्ञा इष्टतीति तदुरी ।

मेधाके उपासक पितर ।

वां मेधां देवगन्तः पितरहोपासते ।

तथा मामद्य मेधावानो मेधाविष कुच स्वाहा ।

ब्रह्म ३१/१४ ॥

(वां मेधां) विष इष्टिकी (देवगन्ता पितरः य) देवगन्ता पितृमन् [उपासते] उपासना करते हैं हे जने । [तथा मन्वा] वच मेधाके [अद्य] आज [मां] मुझे [मेधाविष] मेधावी [कुच] कर । [स्वाहा] ।

इहा मन्मे तद्य मेधाको मांवा तथा हे विष्टिकी कि पितर उपासना करते रहते हैं ।

पितरोंका देवत्व स्थापन ।

महिम्न एवां पितरन्व वेष्टिरे देवा देवेभ्यश्चतुरभि
कृतुम् । सम विम्बुक्तुक्त वात्सविषु रेवां तन्नु सि
विबिष्टा पुवा ॥

अ ३ १५/१७ ॥

[एवां महिम्नः पितरः य न ईष्टिरे] इहा देवीकी महिम्नके पितर जो स्वामी बने अर्थात् पितरोंके देवीकी महिम्नाके प्राप्त किना वाणि देव बन गए । और इस प्रकार [देवाः] देव हुए हुए [देवम् अवि कृतुं अस्तु] देवीमें जो कर्म करते अग ताकि देवावर्षी भी ऊँचे परका काम हो [वत] और (वाणि अविषु) जो ठैव प्रकाशित हो रहे हैं वे (सम विम्बुक्तु) दक्षिण हुए । तथा (पुवा) फिर [एवां] इस पितरोंके [तन्नु] चारोंपै (विबिष्टाः) पूर्वतया दक्षिण होयें । पितरोंके देवत्व का कार्य इस मंत्रसे पता चलता है ।

यज्ञका पितरोंमें जाना ।

देवान् विषममन् ब्रह्मवतो मा त्रविषमन् मनुजान्
मरिक्कममन् ब्रह्मवतो मा त्रविषमन् अिषु
इष्टिकीमन् ब्रह्मवतो मा त्रविषमन् यं कं य
कोकमाम् ब्रह्मवतो मा भद्रमभ्य ॥ यजु ६१६ ॥

(ब्रह्मः) ब्रह्म (देवान् विषं अमन्) देवीको व मुझे बना दे । (वतः) इस कारणसे (मा त्रविष मन्) मुझे मनसे प्राप्त करे अर्थात् मन मिले ।

इसी प्रकार ब्रह्म मनुज व अंतरिक्ष पितर व इष्टिकी तथा विष किरी ओकरी तथा ब्रह्म है वही मुझे मनप्राप्ति कराए । पितरोंके किए ब्रह्म करके मन काम होता है ऐसा कई ऐसे मंत्रोंसे पता चल रहा है । इस मंत्रमें ब्रह्मके महत्त्व का वर्णन है ।

जनक अर्थमें पितर ।

देव्ना माको अक्योऽभक्तो सिदीन्वैश्व उपायो अन्ते
अङ्गे सिधीतः । देवत्ववर्धरे ते संक्षेपेत्तु कल्लना
बहिष्कृत्य मवाति । देवता बन्धनवसे कल्लोऽस्तु मा
माता पितरौ मय्यस्तु ॥

ब्रह्म ६/१२ ॥

(देव्नाः माकाः) आत्मावर्धनी प्राय (अक्यो अन्ते) अन्तः अर्थमें (सिदीन्वैश्व) प्रकाशित होयें । (उपायो अन्ते अङ्गे सिधीत) उपाय वातु अन्तः अर्थमें स्थित होयें । (देवा त्वहाः) त्वहा देव (कत् कल्लना पितृकर्म मवाति) जो दक्षता होते हुए भी विविध कलाका होय है उसे (ते संक्षेपे) सभी प्रकार एकत्रित करे का दृष्टा करने । (अन्ते) अन्तः किए (देवता वर्तं तथा देवीके प्रति करते हुए तेरे (माता पि तरः) माता पिता (मय्यस्तु) प्रत्यक्ष होयें ।

विवालयका ओपाधि व पितर ।

यजस्व सूक्ष्मस्वयजस्व वाणिः । निष्कल्य नाम वा
अधि पिपूषो सूक्ष्मसुसिक्ता वाटीकृतवाणिमी ॥

अथर्व ६/१४/१६ ॥

इस मंत्रमें विवालयका वायव्य ओपधि का वर्णन है । हे ओषधि ! तू (यजस्व सूक्ष्म अधि) मन्त्रकर कल्लेनाके रीकते सुहायकी है । अर्थात् तेरे देवत्वके सर्वकर रीत्यका यी काम होता है । तू (अयजस्व वाणिः) अमरताका कर्त्री है । तेरे देवत्वके अमरत्व प्राप्त हो सकता है । (विवालय नाम अधि) तू विवालय का नामवाणी है । तू (पिपूषो सूक्ष्म वसिक्ता) पितरोंके सूक्ष्म प्रकट हुई हुई है तथा तू (वाटीकृत—वसिक्ता) मनुके वस्य होयैवाके रीत्यका वाक्य करकेवाणी है ।

इस मंत्रमें विवालयका ओपधिकी पितरोंके सूक्ष्मके अर्थ है हुई हुई बताया गया है । पितरों के सूक्ष्म के अर्थ होयै का क्या अभिप्राय है तथा व पितर योच हैं जिसके कि सूक्ष्मके इस ओपधिकी कल्पित होती है, इत्यादि देवीके ओप करके

निव है । प्रमथ है देवपत्न्य इतर विरोध प्रकाश नाक सके ।
देवपत्न्य इव विचरने सदानता करे तो लयम होय ।

स्वर्गधर्मान ।

यथा धुरारः सुकृतो मन्वि विहाय रोप लम्बः
लम्बः । यथापत्न्य बह्विह्वला स्वर्गे लय पश्येय पितरो
य इत्युक्तम् ॥ अथर्व १ । १२ । १३ ॥

[यथ] यथापर [धुरारः सुकृतः] समुद्र इव नदीके भेद
करके धरेवने [स्थला लम्बः रोपं विहाय] अपने
करके लम्बा स्थाप करके अर्थात् रोचरहित सरीरसे पुत्र
हूए हूए [मन्वि] आत्मन् श्रमेसे हैं [लय स्वर्गे]
गर्भ स्वर्गमें [लम्बः] अवस्थ न होते हुए [बह्विः
लम्बः] बहोपमवर्गसे कुटिल गतिवाले न होते हुए अर्थात्
बलविके देवे न हेमके सुन्दर पति करते हुए [पितरो]
पत्न्य, पिता तथा [पुत्रात्] पुत्रोंको देखें ।

इस वचनमें स्वर्गका वर्णन है । यथापर नीरोपी होते हुए
लम्ब बुद्धी रहते हैं वह स्वर्ग है ऐसा मंत्रका आशय
प्रकट होता है ।

पितरोंका धन आदि देना ।

यथापुत्रमपुत्रमात्मनाम वृत्त सिपुमिरमुमत्तं मनुष्येभ्य
वत्सल्ये नम उदित शास्त्रीत्यस्मिन्नदौता सुकृतं
कृतेयुः ॥ अथर्व १ । ७१ । २ ॥

(यत्) जो प्रथम मंत्रोक्त पात्र कोना, छोटा आदि नम
[हृतं] सिपु हुआ अर्थात् [मनुष्यं] किछीसे न देना हुआ
स्वर्ग कृतेयु हुआ और जो [सिपुभिः वृत्त] पितरोंसे देना
हुया विपक्षी कि [मनुष्यैः अनुमत्तं] मनुष्योंसे अनुमति
है अर्थात् जो धार्मिकर आचारे [सा] सुखे [आत्मनाम]
आत्मा हुआ है और [वत्सल्य] प्रिय वचने [मे नमः] उक्त
[यत्] पितरों [येरा मम उदितको प्राप्त हुआ हुआ] अर्थात्
मेमपत्न्य हो रहा है [लय] उक्त वचनसे [होता अस्मिः]
हम अस्मि [सुकृतं] उक्तमार्गसे देना हुआ वचनसे ।
अर्थात् उक्तसे मे मन्मार्गमें कृतेयु देनी सुखे आत्मति प्रकाश
से ।

मातृ व पिता, पितामह आदि ।

य धर्माकर्तृतापुत्र्यकम् ॥

अथर्व १५ । १ । २४ ॥

११ (अ. पु. मा. कं १८)

य प्रथमपतिप्र परमेष्ठी व पिता व पितामह
आनुष्यकम् ॥ अथर्व १५ । १ । २५ ।
प्रजापतेरुक्थै य परमेष्ठिप्र विपुत्र पितामहस्य
व मियं धाम भवति य एवं वेत् ॥

अथर्व १५ । १ । २६ ॥

(यः) उक्त मन्त्रने (धर्मान् अर्तुर्देवान्) सब मीठरी
देवोंमें (अनुष्यकम्) विचरण किया ॥ १५ । १ । २४ ॥
(यः) उक्त आत्मके (अनु) पीछे (प्रजापतिः व परमेष्ठी
व पिता व पितामहः व) प्रजापति अर्थात् राजा परमेष्ठी
वामि ऊँकेपश्चात् विद्वान् वा ब्रह्मादी पिता तथा पितामह
विचरण कये ॥ १५ । १ । २५ ॥ (यः) जो आत्मके (एवं)
इस प्रकार अर्थात् द्वितीय मंत्र (१५ । १ । २५) में कहे
अनुसार (वेत्) जानता है वह प्रजापति परमेष्ठी पिता
तथा पितामहका (धर्मं धाम) विच कर बनता है अर्थात्
कहीके घरमें वह पूजनीय वर्ग जाता है उक्तके घरमें
गई ।

मातृ अर्थात् अतिविश्व महत्त्व यहाँ विज्ञाना पद्य है ।
अतिविश्व पीछे से सब प्युष्ट रहते हैं तन्नि अतिवि इन्के
घरको अपने आनयनेसे पवित्र करे ।

य महिमा सुकृतंलान् पृथिव्या अगाधम् स
समुद्रोऽवधत् अथर्व १५ । ७ । १ ॥
यं प्रजापतिप्र परमेष्ठी व पिता व पितामह
इवापद्य अद्या व यं भूतानुष्यवर्तयन्त ॥
अथर्व १५ । ७ । २ ॥

(यः) उक्त आत्मके (महिमा) अपनी महिमासे (सुकृतः
भूतान्) देवपत्न्य होकर (पृथिव्या अन्तः अवधत्)
पृथिवीके अन्तमें प्राप्त किया । और (यः) वह मातृ
(समुद्रः अवधत्) समुद्र हुआ ॥ १५ । ७ । १ ॥ (यः) उक्त
आत्मके (अनु) पीछे पीछे प्रजापति परमेष्ठी पिता पिता-
मह, (आपा) भद्र कर्म (भद्रा व) आर धन्य (यं
भूतान्) वर्ग बनकर (अवधत्तयन्त) वर्तमान हुए वा वर्तित
करके कये । यहाँ परमी नरवर्ग महिमा पाई गई है ।

पितरोंका अतिविश्व विषयमें अज्ञान ।

येतां विदुः पितरो बोध देवाः वेदां अभिरुचात्कमते
वृत् । जिते स्वयम्बहुशरणसे वह आदिताको बन्नेनानुष्ठितः
अथर्व १५ । १५ । १ ॥

अथर्ववेदो मुखमेव विमुक्तवाग्वाप्य कोर्धं कृमुनि
मनिहान् । इत्येव गात्रानु सर्वा विमुक्ति कृन्ते पन्था
विपुषु या स्वर्गा ॥ अथर्व १११११२ ॥

(अथर्वो) हे अथर्व ! (अथर्वो) पोषण करनेवाले अथर्ववेद
के (एतद्मुखं) इस मुखमें अर्वात् उसके ऊपर के छिन्नेको
(विमुक्ति) विशेष रूपसे साध कर । (प्रविहान्) हे ब्रह्म ज्ञानवान्
(आश्विन लोक कृमुनि) उस आश्विन में भी ब्रह्मके लिए
स्वाध करा । (इत्येव सर्वाणि गात्रानि विमुक्ति) वी ह्यप्य उच
अथर्ववेदके सर्व अथर्वको परिमार्जित कर । इस औषध द्वारा
में (विपुषु पन्था कृन्ते) पितरों में मार्ग बनाता हूँ (वा)
जो कि मार्ग (स्वर्गः) सुकसाधक है ।

इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि यदि पितरोंमें सुक-
पूर्वक निष्करण करना हो तो यह भीमिश्रित आश्विन (अथर्ववेद)
का होम करना चाहिये ।

मृत पितरोंका अनुगमन निषेध ।

आजतस्त आजतः पराजतस्त आजतः ।

इत्येव सर्व गात्रानां मा पूर्वावधुषा ।

विपुषुषु वधामि ते दह्यु ॥ अथर्व ५११ ॥ १११

(ते आजतः आजतः) ठेरे सर्वाण्ये समीप और (ते
पराजतः) ठेरे दूरसे भी (आजतः) दूर दूरसे (ते अक्षे) ठेरे
अथर्व (एवं वधामि) दह्यु से नष्ट करता हूँ । (दह्यु एव सर्व)
एवर्वा ही रह । (मा पूर्वावधुषा) पूर्वं मृत पुत्रोंके पीछे
मृत का अर्वात् निवृत्त मत है । और (मा विपुषु अवधुषा)
इसी प्रकार पूर्वं मृत पितरोंके पीछे भी मत का ।

मा ते अमस्तव दाम्ना तितो भूम्ना क्षीलेत्या प्रमथो
मातु या विपुषु विने दैवा अभिरक्षन्तु स्वेह ॥

अथर्व ५११ ॥ १११

हे आमुको कामका करनेवाले मनुष्य । (ते मया) तेरा मया
(तत्र मा मातु) वहाँ मातु कोकमें मत जाए । (मा तितः मृत)
और तेरा मन अन्तर्हित भी मत डाले । (मा क्षीलेत्या प्रमथो)
आमोके लिए अर्वात् भीमिश्रित रहनेके लिए अक्षवधाम मत रह ।
(विपुषु मा अवधुषा) मा पितरोंके पीछे मत जा । (विने
दैवा) सब देववध (त्या इह अभिरक्षन्तु) तभी वहाँ ही रखा
करे अर्वात् तब दह्यु से दह्यु पराजत रहने मन्ते व है ।

इन उक्तोच मंत्रोंमें मृत पितरोंका अनुगमन करनेका

अर्वात् मन्तेके विषय में अक्षवधाम का निषेध किया गया है ।
और दीर्घानु प्राप्त करनेके लिए कहा गया है ।

पितरोंमेंसे यक्षमा के दूर करने की प्रार्थना ।

अक्षमावृणान् वधमस्या अपवधम विपुषमि ।

तम्मा प्रापत् पुषिर्वा मोत देवन् विर्वा प्रापत् देव
विर्वा जापो मा प्रापत् मन्तेतद्वागे वने मा प्रापत्
विपुषु सर्वा ॥ अथर्व १११११३

(अक्षमा अक्षमा अक्षमा) इसके अक्षम अक्षम (वध मन्ते
वि अप वधमि) इस यक्षमाके निकटतम वादिर विपुष
होते हैं । (तत् पुषिर्वा मा प्रापत्) वह यक्षमा पुषिर्वा को मत
प्राप्त होवे । (तत् देवान् मा) और देवोंको भी मत प्राप्त होवे ।
(विप मा) पुष्पको भी मत प्राप्त होवे । (वध अक्षम
मा) विपुष अक्षमको भी मत प्राप्त होवे (एतद् मन्ते)
वह यक्षमाकी मैक (अपा मा प्रापत्) यक्षों को भी मत प्राप्त
होवे । (अये) हे अग्नि ! (वयं मा प्रापत्) हमको भी मत
प्राप्त होवे । (व) और (सर्वा विपुषु) सब पितरों को
भी मत प्राप्त होवे ।

इस मंत्रमें यक्षमा रोपके दूर करनेकी ते प्रार्थना है की मर
वहाँ एक बात विशेष अक्षममें रखने होती है और वह यह
कि यक्षमा व पितरोंको यक्षमाके मा प्राप्त होनेकी प्रार्थना अग्नि
के की गई है । इसका कारण स्पष्ट ही है । इस पछिसे देव जाप
है कि अग्नि यक्षमाके पितरोंके पास जाती है । अतः अग्नि
द्वारा ही यक्षमाके वहाँ पहुँचने की व्यवस्था है । अतएव
अग्नि से कहा गया है कि यक्षमा व पितरोंको यक्षमा प्राप्त
मत होवे ।

वधुर्ध्वं पितर ।

ये पितरा वधुर्ध्वं इव वधुतमामान् ।

ते अत्ये वध्वे दीपत्ये प्रवत्तयन्ते वधुष्यु ॥

अथर्व १११११४

[ये] जो [वधुर्ध्वः] वधु को देखने की दृष्टिको
[पितराः] विपुष [इव वधुतम्] इस रवधु [अथर्व]
प्राप्त हुए हैं [ते] ये पितर [तन्त्ये अत्ये वध्वे] वधुत
पत्नी इस वधु के लिए [प्रवत्तयन्ते] वधुतको मुक्त
[वधुष्यु] देव । अर्वात् इहे वधुतको मुक्त देव ।

यक्षमा किनाहके अक्षर पठितृहो जाने अक्षमा ते दह्यु
रथमें वा अक्षमा दह्यु में अक्षर होवेपर उभे का पितर देखने

का है इनसे शर्माया की गई है कि इस वस्तु को सत्य संताप
रूप दुःख भयो ।

कन्याका सदा पितरों (शत्रुहकुल) में रहना ।

मममस्या नर्ये वादिप्यभि वृक्षादिषु अत्रम् ।

महाकुलम् इव परंतो ज्योत् पितृन्मात्स्याम् ॥

अर्थ १११४१७

(इत्यत्र अर्थ इव) किंच प्रकार वृक्षों के फूलों की मात्रा
प्रदान करते हैं वही प्रकार मैं वर (अस्याः) इस कन्या
का (नर्ये नर्यः) ऐश्वर्यशाली ठेकको मैं (वादिषु) प्रहस्य
करता हूँ अर्थात् इस कन्या को पत्नी रूपसे मैं स्वीकृत करता
हूँ । वह वस्तु (महाकुलम् परंतो इव) वह मूल्यवाने परंतु की
गह (ज्योत्) तथा (पितृन् मात्स्याम्) पितरों में अर्थात्
जाने (कन्याम्) शत्रु कुलमें निरार वह किंच प्रकार वही
मूल्यवाने परंतु वहीके मूल्य जमीन के अन्तर गहरा जाने से
निकल होता है वही प्रकार वह निम्न वस्तुप्रकृतिमें रहे ।

इया ये कुपया राजन् ताम्भु ते परि वसति
ज्योत् पितृन्मात्स्याम् आत्मीयैः क्षत्रियोपार ॥

अर्थ १११४१८

इस अर्थमें वरके वस्तुप्रकृति की वरके प्रति वसति है । कन्या
का पितृ कन्यात्व करता हुआ वरके करता है कि- (राजन्)
हे एकमात्र वर । (इया) वह वस्तु [ते कुपया] तेरे कुपका
रक्षण करनेवाली है [ताम्भु] इस प्रकारकी इस वस्तु को [ते
परिवसति] तुम्हें हम वसते हैं । वह कन्या [ज्योत्] सर्वथा
[पितृन् मात्स्याम्] तेरे [वरके] पितरों में अर्थात् शत्रु कुल
में निवास करे । [आत्मीयैः सं क्षत्रियोपार] तिरहे केवल वर
अर्थमें इसकी वसि होती रहे अर्थात् शत्रु कुलमें वह कीन न
रहे अर्थात् वसि को प्राप्त होती रहे ।

इस प्रकार इन मंत्रोंमें पितृपक्ष अभिधान वस्तुप्रकृति प्रतीत
होता है ।

पूपाकी पितरोंको प्रेरणा ।

वा वसे दशमनुमः पूषणो हृषीमते ।

देव पिबुनस्योदरा ॥

अर्थ १११४२१

(दश) है दशमनुम वा इन्द्रोके वाक् करनेवाले (संतुमः)
अनुम (पूषन्) पूषा ! (ते अवाः हृषीमते) हम तेरी

उप रक्षाको चाहते हैं (देव) विघने कि ए (पितृन्
अयोधनः) पितरों को प्रेरित करता है ।

पूषा पितरों की अपनी रक्षा द्वारा प्रेरित करता रहता है
ऐसा बहादुर जात होता है ।

ब्रह्मगौके दूध पीने से पितरों में पाप ।

कूरमस्या वाक्मनसं तुष्टं विधितमस्यते

धीरं वदन्मा पीपते तद् वै पितृन् किमिवम् ॥

अर्थ ५११४५५

[अस्याः] इस ब्रह्मगौका [वाक्मनसं] मारता [मूर्]
कूरता का काम है । वरि [विधितं अस्तते] उसका योंध काया
वासे तो वह [तुष्टं] व्याध क्षामेवात्म होता है । [अस्याः
वत् धीरं पीपते] इसका जो दूध पिना जाता है [तद्] वह
दूध पीना (वै) निम्न से (पितृन् किमिवम्) पितरों में पाप
पैदा करनेवाला होता है ।

उत्पन्न मूल्य दूधसे ये ब्रह्म-गौका अर्थ ब्रह्मण की जमीन
वासी पिना पाप प्रतीत होता है । वरि राजा ज्ञानम की जमीन
को जीन के ना उपपर कर कयावे अथवा अन्य किसी प्रकार
का अज्ञाचार करे, तो वसे इससे क्या मुकसान होता है, इसका
बहादुर वर्जन है । इसके अनुसार पितर अर्थ से एककर्म-
वाग्विचार प्रहच है ।

पालक अर्थमें पितर ।

अनन्ताहं क्षमसाह मन्व वसुरि ।

नर्यं वस्तुन्धं पितरो मरुता मन इच्छत ॥

अर्थ ५११४५५

(कन्यको, पौमके वसुरि) है केवलका क्षेमका तथा वसुरि
वाक्म अतिवाक्म मनुको । (नर्यं मन्वे वस्तुन्धं) वर्योके वीच-
में अनादित होको । (पितरः) है पालक जनों ! तुम
(मरुता मन इच्छत) वस्तुजोका (मन्वा) मनन करने योग्य
ज्ञान प्राप्त करो । अर्थात् किंच वस्तुसे कम न किसी वसि
होती है इत्यादि वस्तुसंबन्धी ज्ञानके प्रदान करनेका प्रयत्न
करो ।

इस मनुक आध्यात्मिक अर्थमें पितर इन्द्रोके विषु आया
प्रतीत होता है । आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार है-

(कन्यको) है इत्यादि ! (क्षेमके) है विमला वासि ।
(वसुरि) है ब्रह्म एक वस्तुसंबन्धी वसि । तथा (मन्वे)
है मन्वेम रक्षनेवाली वस्तुत्वा वसि । तुम (नर्यं वस्तुन्धं) ब्रह्म-

इत्येते वल्लभ आत्मन्वद्विष्टे आत्मन्वित होयो । (पितरः) हे इन्द्रियमनो । तुम (मयः इच्छत) मयसे प्राप्त छिपत होनेकी इच्छा करो अर्थात् मयसे प्राप्त एकाम होओ ताकि महासन्त का काम होपड़े । ' वल्लभाः—' इत्येते अस्माकं कवरीति वल्लभाः । वल्लभा इत्यर्थः । वल्लभाः—ये स्वयं स मत् प्रपन्न । यो स्थिरता उत्पन्न करे । तदुरी—उत्पन्न इत्यर्थे तदुरी ।

मेधाके उपासक पितर ।

वां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तथा मामद्य मेधावाले मेधाधिग कुच स्वाहा ।

बहु ३१११४ ॥

(वां मेधां) विष बुद्धिकी (देवगणा पितरः च) देवगण तथा मिथुन [उपासते] उपासना करते हैं हे ज्योते । [तथा मया] इस मेधासे [अद्य] आज [मं] मुझे [मेधाधिगं] मेधाधी [कुच] कर । [स्वाहा] ।

इस मंत्रमें वच मेधाकी मांसा मया है विषयी कि पितर उपासना करते रहते हैं ।

पितरोंका देवत्व छाम ।

महिम्न वृषां पितरश्च मेधारे वृषा देवेभ्यश्चतुरसि
कमुम् । सम विभ्यश्चतुर्षु वाग्धस्त्रिषु देवां तमुषु मि
विभिन्ना पुनः ॥

आ ३ १५११४ ॥

[एवं महिम्नः पितरः च न ईक्षिरे] इन देवोंकी महिम्नके पितर भी वृषाकी वधे अर्थात् पितरोंमे देवोंकी महिमाके प्राप्त किया नाहि देव कम नद । और ॥ प्रकर [देवाः] देव हुए हुए [देवपु अविर्जुन अरु] देवोंकी भी वधे करने कम ताकि देवावधे भी ऊंचे परका काम हो [वरु] और (वाग्ध अत्यु) जो ठेक प्रकाशित हो रहे हैं वे (वय विभ्यश्चतुः) एकादश हुए । तथा (पुनः) फिर [एषां] इन पितरोंके [तमुषु] चारोंसे (विभिन्नाः) एकता प्रविष्ट होयगे । पितरोंके देवत्व कायकां इस मंत्रसे पता चकता है ।

यमुका पितरोंमें जाना ।

इवान् दिवसगन् वज्रस्तयो मा वृषिभ्यस्तु मनुष्यान्
मद्विजुमगन् वज्रस्तयो मा वृषिभ्यस्तु मनुष्य
पृथिवीमगन् वज्रस्तयो मा वृषिभ्यस्तु वं कं च
कोकमगन् वज्रस्तो मे अग्रमगन् वज्र ६१९ ॥

(वज्रः) वज्र (देवान् दिवं अगन्) देवोंकी व बुद्धे मया है । (ततः) इस प्रकारसे (मा वृषिभ्यस्तु) मुझे मने मन्त्र करे अर्थात् मन्त्र मिले ।

इसी प्रकार वज्र मनुष्य व अंतरिक्ष पितर व इन्द्रिय तथा विष विषी कोककी मया वृषा है वहासे मुझे मन्त्रप्राप्ति कराने । पितरोंके किए वज्र करके मन्त्र कम होता है देव वहां हमें मंत्रसे पता चक रहा है । इस मंत्रमें वज्रके महत्त्व वर्णन है ।

जनक अर्थमें पितर ।

देवः प्राणो जन्मैः जन्मैः मिनीभ्यश्च वृषाको जन्म
जन्मे मिनीभ्यः । देवत्वार्थेति ते संसृतेषु जन्मना
वर्तिषुक्त मयाति । देवता जन्ममयके सत्ताकोऽनुत्ता
मया पितरों महत्तु ॥

बहु ३१२ ॥

(देवः प्राणः) आत्मात्माजी प्राण (जन्मैः जन्मैः) जन्म जन्मोंमें (मिनीभ्यश्च) प्रकाशित होवें । (तथा जन्मे जन्मे मिनीभ्यः) जन्म वस्तु जन्म जन्मोंमें स्थित होवें । (देवा लभः) तथा देव (नत् जन्मना मिदं मयाति) जो एक होते हुए भी विविध कल्पना होमया है उसे (वं जन्मे) मकी प्रकार एकत्र करे का एकत्र मयावे । (जन्मे) एकके किए (देवता वंत्ता तथा देवैः प्रति चाते हुए तरे (जन्म नि- तरः) मया मिथ (अनु मन्त्र) प्रवक्त होवें ।

विषाणका जोषधि व पितर ।

वज्रस्य मृगमस्यश्चतस्र नामिः । निभमय नाम च
नधि विपृषां मृगमस्यश्चतस्र वाटीकृतवाशिनी ॥

अथर्व ३१४१३ ॥

इस मंत्रमें विषाणका वायक ओषधिका वर्णन है । हे ओषधि । तू (जन्म तून् जन्म) सर्वकर समदेवाके ऐक्ये लुगनेवाली है । अर्थात् तेरे देववधे अर्थात् रीमका भी काम होयता है । तू (जन्म त्वं नामिः) अमरताकी । जन्मी दे । तेरे जन्मसे अमरत्व प्राप्त हो चकता है । (विषाणका नाम जन्म) तू नि- कायका नामवाली है । तू (विपृषां मृगम् वज्रवत्) पितरोंके मूलके प्रकट हुई हुई है तथा तू (वाटीकृत-वाशिनी) वस्तुके उत्पन्न होनेवाले ऐक्यका वाध करनेवाली है ।

इस मंत्रमें विषाणका ओषधिका पितरोंके मूलके उत्पन्न हुई हुई वताका मया है । पितरों के मूल के उत्पन्न होने का मया अविशय है तथा ये पितर यौन हैं जिनके कि मूल से इस ओषधिका उत्पत्ति होती है, इत्यादि वेदोंके अर्थ करनेका

मित्र है । प्रमद है वेद्यमय हृत्पर विधेय प्रकाश बाह्य छहें ।
वेद्यमय हृत् मित्रमयं वहावता करे तो उपास होना ।

स्वर्गवर्णन ।

यथा सुरार्णः सुकृतो महन्वि विहाय रोम तन्वाः
रघवाः । बहोन्वा बहोः हृत्वा स्वर्गे तत्र परमैव पितरो
व पुत्राः ॥ अथर्व ६ । १२ । १ ॥

[यत्] महात् [सुरार्णः सुकृतः] साधु हृत्पत्राणि भेद
छोटे करिवाले [स्वात्मा तन्वा रोम विहाय] अपने
हृत्पत्रे स्मृत्वा त्याग करके अर्थात् रोमरहित करीरवे कुछ
हुर हुर [महन्वि] आत्मन् ओमते हैं [तत्र स्वर्गे]
स्वर्ग स्वर्ग [बहोन्वाः] अत्यन्त ब होते हुए [बहोः
हृत्वा] करीरमन्वये कृत्वा पत्रिका के न होते हुए अर्थात्
अन्तर्लोक के न होनेसे हृत्पर गति करते हुए [पितरो]
पिता, पिता तथा [पुत्राः] पुत्रीको देखें ।

इस वर्णमें स्वर्ग वर्णन है । बहोत्तर भीरोपी होने हुए
पुत्र पुत्री रहते हैं वह स्वर्ग है ऐसा संज्ञा आत्म
प्रत्यक्ष होता है ।

पितरोंका घन आदि देना ।

यथा ब्रह्मवत्पुत्रमवतमानं यत् सिधुमिरजुमर्तं मनुष्यैः ।
ब्रह्माम्ने घन उदिय शरबीरस्मिन्ब्रह्मोत्ता सुकृतं
कृते ॥ अथर्व ६ । ७१ । २ ॥

(यत्) जो प्रथम क्षेत्रोक्त याव बोधा, छेना आदि यत्
[हृत्] विह हृत्वा अथवा [अहृत्] किसीके न देना हृत्वा
स्वर्ग आका हृत्वा और जो [सिधुमिः यत्] पितरोंके विहा
हृत्वा विहकी कि [मनुष्यैः अनुमर्तं] मनुष्योंके अनुमति
से है अर्थात् जो पत्रिकार मन्वये [या] मुझे [आश्रयाम्]
आ हृत्वा है और [ब्रह्मात्] जिस धनके [मे मयाः कृतं
॥ पत्रमिति] मेरा मन उदयको प्राप्त हृत्वा हृत्वा अर्थात्
अभ्यन्तर हो रहा है [तत्] उस धनको [होवा अभिः]
पना अभि [सुकृतं] ब्रह्मपत्रके विहा हृत्वा मन्वये ।
अर्थात् ब्रह्म के सम्मार्थमें अन्तर्लोक देनी मुझे सम्मति प्रदान
करे ।

प्राप्त्य व पिता, पितामह आदि ।

व धर्माकर्णदोषानुष्मचकम् ॥

अथर्व १५ । ६ । २४ ॥

११ (अ सु मा र्थ १८)

तं प्रजापतिम् परमेष्ठी च पिता च पितामह
आनुष्मचकम् ॥ अथर्व १५ । ६ । २५ ।
प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य
च मिथं धाम भवति न पुन वेत् ॥

अथर्व १५ । ६ । २६ ॥

(या) उस ज्ञानके (स्वर्गम् अर्थात् स्वर्गम्) सब भीतरी
देखो (अनुष्मचकम्) निश्चय किया ॥ १५ । ६ । २४ ॥
(त) उस ज्ञानके (अनु) पीछे (प्रजापतिः च परमेष्ठी
च पिता च पितामहः च) प्रजापति अर्थात् राजा परमेष्ठी
च पिता च पितामहः च) अर्थात् पिता तथा पितामह
निश्चय करने ॥ १५ । ६ । २५ ॥ (वा) जो मन्त्रि (एवं)
इस प्रकार अथवा द्वितीय संज्ञ (१५ । ६ । २६) में कहे
अनुष्ठान (वेत्) जानता है वह प्रजापति परमेष्ठी पिता
तथा पितामह (धर्म धाम) विह घर बनता है अर्थात्
कहींके घरमें वह पूजनीय वर्ग आता है दूसरेके घरमें
वही ।

ज्ञान अर्थात् अतिविश्व महत्त्व वह दिखाना मया है ।
अतिविश्व पीछे से सब पूजते रहते हैं ताकि अतिवि इनके
घरकी अपने आश्रयमयसे पवित्र करे ।

यं महिमा सुकुर्मूल्यान् पृथिव्या अमर्षन् स
समुद्रोऽमर्षन् अथर्व १५ । ७ । १ ॥
तं प्रजापतिम् परमेष्ठी च पिता च पितामह
हृत्वाहृत्वा अथवा च वरै सुराजुष्मचकम् ॥
अथर्व १५ । ७ । २ ॥

(या) उस ज्ञानके (महिमा) अपनी महिमामें (समुद्र
मूला) वेद्यमन्त्र बोध (पृथिव्याः अमर्षन् अमर्षन्)
पृथिवीके अमर्षको प्राप्त किया । और (या) वह ज्ञान
(समुद्रः अमर्षन्) समुद्र हृत्वा ॥ १५ । ७ । १ ॥ (त) उस
ज्ञानके (अनु) पीछे पीछे प्रजापति परमेष्ठी पिता पिता-
मह, (आत्मा) भेद कर्म (भद्रा च) आर भद्रा (वरै
मूला) वरै वनकर (अमर्षन्) वर्तमान हुए वा वर्तान
करने करने । वहाँ वरनी परवर्ती महिमा पाई गई है ।

पितरोंका जात्यिक विषयमें अज्ञान ।

मेतां विदुः पितरो कोऽपि देवाः तेषां अविद्यात्वात्तो
दृष्ट्वा । त्रिणे स्वप्नमद्वेषात्ते नर आदिवातो बन्धेनापुष्टिः
अथर्व १५ । १६ । ३ ॥

(केम) जिस ३३ देवोंकी (अग्निः) दुःस्वप्नकी कारण-
भूत जो वह वाणी (इह अन्तर) इह जनसङ्घ कीचमें
(चरति) विचारण कर रही है, (एतं) इस वाणीको (न
मिच्छन्) विदुः न चत देवम्) न तो पितर ही जानते हैं और
नहीं देवः (ननुयेन अमुच्छिद्यः) ननु इसा मयी प्रथम
अपनेछ दिए पद (अप्रतिपद्यः नः) आदिम नहिं
(स्वप्नं) स्वप्नका (आप्ये मिते) आप्य मितमें (अनुः)
रचापित किया।

इस मन्त्र प्रकृत विषयमें इतना क्लृप्त होना है कि पितर
पतिपके नहीं जानते।

नारायण पितर।

पितरो नारायणः ॥ मन्त्रः ॥ ८।५४

(नारायणः) नर जिसकी प्रशंसा करते हैं वे (पितरः)
पितर नारायण पितर कहलाते हैं।

पिता-पितामह आदि पितर।

कीम इन्द्रिय विमलम्ब कम्बरे कीर्णाम्बु प्रसिद्धि
कीर्णाम्बुः। वामं पितृम्बो न हृद समीरिरे मन्त्रः
पतिम्बो जम्बः पतिम्बे ॥ मन्त्रः ॥ १३११ ॥

वह मन्त्र बोधेके पाठनेके ज्ञान अथर्ववेदमें है—
कीर्णं इन्द्रिय विमलम्बम्बं कीर्णाम्बु प्रसिद्धि
कीर्णाम्बुः। वामं पितृम्बो न हृद समीरिरे मन्त्रः
पतिम्बो जम्बः पतिम्बे ॥ अथर्व १३११११ ॥

(परा) जो नर (कीर्णं इन्द्रिय) पतिम्बे कीर्णाम्बु
कहेस्य वे रोते हैं अर्थात् जो पतिम्बे बहुत पराह करते
हैं उनको कुर्यापर रोते हैं तथा जो (अन्ते विमलम्बे)
मन्त्रमें इन पतिम्बों की प्रशंसा करते हैं अर्थात् इनके ज्ञान
पक्ष में बढ़ते हैं अथवा जो पतिम्बों की शिखा नहीं करते,
और जो (कीर्णं प्रसिद्धि) मुखाभोक्ता मन्त्र कया आदिम
पतिम्बोंको (अनुपमिदुः) देते हैं अर्थात् इनके पूर देव
करते हैं और (वे) जो (पितृम्बः) पितृपके मित (एतं)
मुम्ब उद्यमके (चमीरिरे) पैरा करते हैं ऐसे [पति-म]
पतिम्बोंके लिए [जम्बः] पतिम्बा [पतिम्बे] आदिम के
लिए [मन्त्रः] पुत्र देती हैं अर्थात् ऐसे पतिम्बोंकी ही
वास्तव में पत्नीमुक्त मिच्छा है।

इस मन्त्रमें पत्नीमुक्त अर्थात् पतिम्बाम्बुक्त किम्बे मिच्छा
है, वह कसमत्तया रक्षावा मन्त्र है। पितृपके मित
उद्यमोत्पत्ति करके व मन्त्रमें पतिम्बे पैराके मन्त्र की कदा
मिच्छा है।

यम वहाँ पर जो उपरोक्त अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ हुआ है ।

एवोऽप्यस्माद् विच्छेदे वेदा एवमवस्थमाप्नु विष्णुता वन्द्यवाङ्मात् । यमो मया पुनरित्वा वराणि तस्मै वसाम ममो अस्तु मृत्यवे ॥ अथवा १८३१३ ३ (विच्छेद) हे विच्छेदि । (त्वं) तू (अनेहा) य मारेवाकी होती हुई (अस्माद्) हमारे (एव) उसी पूर्वोक्त प्रकारसे (अवस्थमात्) ओहयन-कारके वने हुए (वन्द्यवाङ्मात्) वन्द्योप (विष्णु) काकरे चन्द दे । (वसाम) त्वा पुनः इत्) यमसे तुझको फिर जो (मया) वराणि) मुझे चीपा है । (तस्मै मृत्यवे वसाम) वर प्राप्तपहरण करनेवाले वमके किए (वसाम अस्तु) वमस्वर होवे ।

मा यो मुमो न वक्षसे प्ररिता धृत्वोप्या । पथा वमस्त्य गात्रुप ॥ अथ १८३१५ ३

हे मस्ती ! [वक्षसे मुमो न] किछ प्रकार वक्ष गात्र आदि वक्षन पदाकीसे हुआ वही होता अर्थात् उन्निमें उठे जैसे वरा गात्र आदि वक्षन पदाकी स्वर्तन्त्रतासे निकले रहते हैं वक्ष प्रकार (वः) करिता) तुम्हारी स्तुति करनेवाला (अयोप्यः) अतीतिकर अथवा अनेकवीन अर्थात् उपयोप्य-समयी की प्राप्ति से रहित (मा) मत होवे । उपासकको भी यमकी तरह स्वर्तन्त्रतासे उपयोप्यसमयी प्राप्त होती रहे । और वह उपासक (वमस्त्य पथा) वमके मार्ग से (मा उपपत्) मत आये वाणि शीघ्र मृत्युका प्राप्त मत होवे ।

इव यत्र में जो स्पष्ट रूपसे प्रान्तपहरण करनेवाले वमका ही उल्लेख है ।

देवस्य कस्यदुपीत धृत्तु प्रकाशं किममुत आनुजीव । बृहस्पतिं वक्षमस्तु व आनि विना वमस्त्यव्यं प्रारिरेवीत् ॥ अथ १८३१४ ३

इव मेवम उतरार्थ ओहसे पाठनेके साथ अन्वयेव में १४ प्रकार से जाना है—

बृहस्पतिर्विश्वमस्तुत आनिः विना वमस्त्यव्यं मा रित्य ॥ अथ १८३१४ ३

[देव-वः] देवके किए [क स्तुतु] किंच प्राप्तुको (अर्थात्) एकद्वार किया है अर्थात् देवाके किए स्तुतु

कीनधी दे ? [प्रकाशे] उत्पन्न होवेवाकी मनुष्यादि उत्पत्ति के लिए [किं अस्तु व अनुजीव] क्यों अमरता स्वीकृत नहीं की ? अर्थात् प्रकाशे अमर क्यों नहीं बनाया ? मनुष्यो [बृहस्पति आनि] बृहस्पति आनिसे अमरताप्राप्ति के लिए [वक्षं अस्तुतु] वक्ष बनाया टोमी [वः] वक्षसे वक्षसे [विना तत्तु] विना करीको अनेक किया अर्थात् जोमी वक्ष अमरताका काम न हुआ । अथवा अन्वयेवमें पाठनेकेप्रकार ॥३ में वक्ष अर्थ इत प्रकारकी हो सकता है—

(देव-वः) क स्तुतु व अनुजीव] वक्षसे कीन करता व वा । अर्थात् देवकी वक्ष करते वे । तब (बृहस्पति आनि) वक्ष अस्तुतु] देवोसे बृहस्पति आनिसे अमरताकी प्राप्ति के लिए वक्ष किया और देवोके लिए (अस्तुतु अर्थात्) अमरताको प्राप्त किया पर (प्रकाशे) प्रकाशे किए (किं अति अस्तु व) कोईभी अमरता व प्राप्त को अस्तुतु (वः) प्राप्ति के उपहार करनेवाला वम प्रकाशसे (विना तत्तु) वक्षकी प्यारी देह (प्रारिरेवीत्) अनेक किया है अर्थात् प्रकाशो मृत्यु होती है ।

वर्तार आन्वयिक रूपसे देवोकी अमरता व अनुजीवो अमरताका वर्णन किया गया है ।

ये दक्षिणको लक्ष्मि जातवरो दक्षिणमा दिशोनि वासन्वत्समात् । वमनु-वा है वक्षको अमरता प्रत्यवेवात् मतेसरेव इति ॥ अथ १८३१५ १ ३

[वातवेवः] हे वातवेव ! ये जो कतु [दक्षिणः] दक्षिणी ओरसे [लक्ष्मि] वक्ष करके इन पर आक्रमण करते हैं और जो [दक्षिणमा दिशः] दक्षिण दिशाके [अ-स्मात्] अतिव्यभिक्त] एवं वात वक्षसे के लिए आक्रमण करते हैं [ये] ये कतु [वक्षं अस्तु] वक्षको प्राप्त करके [वस्तु] पीठ मोक कर आयेत हुए [वक्षमा] व्यभिक्त होवे अर्थात् वक्षमा दुर्देव्यापैक वात होवे । [एवम्] इत कतु मेंसे है [प्रतिशरेव] प्रति शरके हाथ्य] नारता है ।

प्रतिशर अथवाप्राप्यने इतका अर्थ किया है कि वक्षसे आनि पारिक कर्मका लपारण हो ।

यतो यो मीवा अन्वयेव विद्यायाः । दृष्टीर्वापि वनेव समशीमस्तु ॥ अथ १८३१६ ३

[विद्यायाः] हे विद्यायो ! [वः प्रत्यय] दृष्टी पर्यवे [यः] अने [अन्वयेव] अन्त बाधा है । [आनुपत्ताः] है

भी। देखिये ! [वः पूर्वाः अपि] तुलसी पक्षिणी भी वह
ए (गच्छतु) गच्छ जाये । [निम्नतः वीनी वीहृत्] चम्पू
एषा वीर्ये पुच्छ आनयि । [वः] तुम्हें [यत्नेन च अमी
वयम्] अपने साथ मछी मंति छंयुच्छ करे अर्थात् मार जाये ।
इस प्रसंगे कृत्यविनाशार्थे बहरीकी औपचरिकों के प्रयोग करके
निर्दिष्ट है । यद्यप्य अर्थ वही आत्मन्त स्पष्ट है ।

यस्ये द्युत्तरायमसौ विस्तृतो बः । ससौस्ता भीककि
कयः । देखकर। खेलको छलियको सत्त अन्तःक परि
वृत्तान्तु वीरात् ॥ अर्थ १५१११॥

(कयः) यम (स्युः) स्युः (अचमार) पापसे वा
पापों काय मारनेवाला (विस्तृतः) निरन्तर पीडा देनेवाला
(वयः) पाक, (वर्यः) शिष्टक (अता) कडाकर चैक
देखकर (भीककिन्ता) भीक शिष्टक (है) उपरोक्त
(देखकर) तथा देखकर शिष्टकरके (लेना उपस्थितः)
कय इव व्यक्तयम के लिए तैयार हुए हुए (अस्त्यक्त वीरात्)
इसके वीर देखिकों को (परिदृश्यन्तु) छोड़ देने अर्थात् कडाई
से इतने देखिकों का विनाश न हो अपितु उपरोक्त सव कृत्य
देखिकों का विनाश करे । बहापर भी यमकी मिलती मारनेवालों
की मर्दे है ।

अपेक्ष्यतां पाठो विपरीतैर्मस्य सूक्तवर्ध्यात् परि
पक्षान् । अस्तेन देवदुःखिणि विना वीर्याकुल्याय
व्यवहारश्च ॥ अर्थ १११११॥

(अपेक्ष्यतां पाठः) उपेक्ष्यतां देवा हूए हुए तथा (विपरीतः)
विपरीत में देवा हूए हुए इस क्रमार्थ (यमस्य सूक्तवर्ध्यात्) यम-
के सूक्तवर्धनसे है अर्थात् (परि पक्षि) रक्षा कर । ऐसे मर
ने का । (एवं) इस पुत्रको (विद्वानि पुरितानि) सर्व
को विद्वान् (जति) बचाकर (व्यवहारश्च) वीर्याकुल्याय
के सर्वो वीर्याकुले किए (देवदुःखि) के नाक । ऐसे ही वर्यकी पूर्ण
रूपं प्रप्त होते ।

येषां-उपेक्षा नामक वस्तुमें उत्पन्न प्रत्यक्ष उपेक्षा का
पाठ है । इस विषयमें वैशिष्ट्य प्रत्यक्ष विमल वचन है-
येषां एषा अपेक्षितेति उपेक्ष्यताम् ।

ते मा ११५११८ ॥

सिद्ध-विषय स्वयम्भवाके मूक वस्तुप्रधान नाम है । इसमें
देवा हूए हूए प्रतीक वस्तु हो जाती है । इसमें विमल ते मा
का वचन है । मूर्ध एषा अनुकामेति उपेक्ष्यवर्धनी ॥

ते मा ११५११८ ॥

बहापर यमका जो संतति का मूकोपेक्षन अर्थात् सबसे माघ
करना है, सबसे बचनेकी प्रार्थना है । एवं यम बहापर विनाश
करनेके अर्थमें ही प्रयुक्त है ।

विपत्तयान् यो अमृतलये दबातु परंतु मृत्युरमृतं
न एतु । इमान् रक्षतु प्रवृत्तान् । अस्मिन् मोक्षेनाम
सर्वो वर्म शुः ॥ अर्थ १८१११११ ॥

(वः) हमें (विपत्तयान् अमृतलये) विपत्तयान् सर्व अमर
तामें (दबातु) स्थापित करे । (मृत्युः परा एतु) मृत्यु दूर
आय जाय । (अमृतं न एतु) हमें अमरत्व प्राप्त होने ।
(इमान् प्रवृत्तान्) इन प्रवृत्तोंकी (विपत्तयान्) दूर (अस्मिन्
आरक्षतु) बचाये रखे रक्षा करे । (एषां अवधानो यम शुः)
इसके प्राण यमका मत बार्ने ।

इस प्रकार इन पत्रोंके अवलोकनसे यम एक वाक्क कति
है वह प्राणियोंके प्राण हरण करनेवाला है । यह हमें स्पष्ट
रूपसे पता चलता है । यम काय अर्थमें भी वेदोंमें प्रयुक्त है वैद्य
कि इस आये चककर दिखाये पर इसके साथ साथ यम माघ
करनेके अर्थमें भी प्रयुक्त है । इसीको हम पूंसी कह सकते हैं कि
प्राणियों का प्राण हरण करनेके महाकर्मके अपिप्रतीक नाम यम
है । हम आये चककर देखें कि यम इस महाकर्मका एका है ।
इसकी वाक्कय प्रथा है इसका लोक है इसके रूप हैं, रक्षादि ।

अधिनो ध धर्म ।

वीर्यप्रमथितान् हर्मिणी देवानां वा वृत्तिनिः प्राणवान् ।
उप्राप्तानो वाक्कया वृद्धममाया यमका मन्त्रे विगत ॥
अर्थ १११११११ ॥

हे (आकाशना) वीर्यप्रमथी बरवैराके (वाक्कया) अधिनो
(विपत्तयान्) सबसे निरनेकाके अर्थात् छविप्राप्ती (आकाश
हर्मिणी) क्षीयपायी योर्षो (वा) अमर (देवान् अधिनो)
देवोंकी देवताओंसे (तत् राक्षसाः) उस राक्षस अर्थात् हर्ममने
को कि तुलसी अधिनो (चरारी है) (यमस्य) यमकी
(प्रथमे आत्मी) प्रथम बहुत यमकी प्राप्ति होती है ऐसे प्रथम
में (चरारी) हमारांकी अपेक्षा ।

इस प्रसंगे अधिनो व यमकी कडाई का आन्तरिक वर्णन
है । यम मारनेवाला है और अधिनो देवोंके देव होनेके विषयमें
जाके हैं । बहापर यमका पराक्रम व अधिनोके राक्षसकी अंतका
वर्णन है ।

आकाशना-कवच प्राप्त है वह काय बना है । इसका अर्थ
वीर्यप्रमथी करनेवाला है ।

राष्ट्रम पर्यन्तं यथा । नह अग्निगोत्री घणारी है ऐशो
मिषण्डु १।१५४

अमुत्र मृषादम बहू यमस्य नृहस्यते अभिसस्तोरमुत्रच॥
प्रसोहतामश्विना मृत्युदस्तमदैवानामग्रे भिवन्ता कक्षीमिः
मनुः २०।९; अथर्व ७।५३।३४

[नृहस्यते] है नृहस्यति । [यमस्य अमुत्र मृषाद अभि-
घटतेः] इस परकाक्रमे यमके बहने [अमुत्रः] हमें छुवा
अर्थात् यम हमें मारने व पावे । [अम] है अग्नि । [ऐशोऽथ
मिषना अभिना] ऐशके वैप अभिवो [कक्षीमिः] अपनी
छत्तियों से वामाग्रे [अस्त्यु मृत्यु] हमारी मृत्युको [प्रसो-
हतां] दूर करें ।

अग्निवी मृत्यु दूर करनेमें समर्थ हैं ऐश वहां पर ब्यक्त
होता है । यमकी दिशासे अन्तर्गतके किए प्रार्थना की गई है ।

इस प्रकार अग्निगोत्रा जिस यमके मुख्यतया पठता है वह
भी यम नहीं है जो हम ऊपर कहाँ आए हैं । उपरोक्त यमकी
ही पुष्टि इन संज्ञाओं से रही है ।

विहारी ओदन व यम ।

विहारिर्भ ओदनं ये पचन्ति मैत्रावरुणैः छच्छते कदा
चन । आस्ते वम उपपाति देवानसं गन्धर्वैर्मृतं
सोम्येभि ३ अथर्व ४।१३।३

[ये] जो [विहारिर्भ ओदनं] विस्तारवाले अर्थात् देके
हुए आसनमें [पचन्ति] पकते हैं [एवान्] उनको [अवातिः]
हरिश्चता [कृशपन] कभी भी [व चच्छते] प्राप्त नहीं होती
अर्थात् व कभी भी मरिच नहीं छोटे । वह ओदन पाचक [यमे
आस्ते] यममें निपट होता है [देवान् उपपाति] देवों को
प्राप्त होता है और [सोम्येभिः गन्धर्वैः] सोम्य गन्धर्वों के
पात्र [तमने] आवागृत होता है ।

विहारी ओदनपाचक को यममें शिवाय होती है ऐश वहां
दृष्टाया गया है ।

एव इस संज्ञासे विहारी ओदनको स हयका चर्चन किया
गया है । वही यमका अर्थ गोचक धोका आदिवादिचद्वय प्रतीत
होता है । परन्तु इसके अनन्त संज्ञा अथर्व १।३४ व में यम
उपरोक्त अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ हुआ प्रतीत होता है । वह
संज्ञा इस प्रकार है-

विहारिभोदन् ये पचन्ति देवान् वमः परिहृण्यन्ति
रेवा । रवीह भूत्वा इमवान् ईवते वही ह भूत्वाति
विवा छमेति ॥ अथर्व ३।१४७

(ये) जो (विहारिर्भ ओदनं पचन्ति) विस्तृत ओदन
को पकते हैं (एवान् रेवाः वमः व परिहृण्यन्ति) उनका
वीर्य-धामार्थ वम अपहरण नहीं करता । (ह) निश्चये वह
ओदन पाचक (रवी भूत्वा) एव पर वहार होकर (रेवान्ते)
एव से जावे सोम्य अर्थात् उत्तम मार्ग में (ईवते) निपट
करता है । अर्थात् वह एवनि यमों से उपकृत हुआ हुआ कर्तव्य
विचारण करता है । (पक्षी भूत्वा) पक्ष-संकीर्णता छोड़कर
अर्थात् विमानादि वायुनामोंमें उन्नत होकर (विवा छमेति)
युक्तोक्त में विचारण करता है । वह आत्मक, भूमि आदि एवं
स्वाभों में अन्त्याहृत यति से निवारण कर सकता है । उनको
जायेके किए कहीं भी रोक टोक नहीं ।

यम जो सबका शासन करने करता है वह भी एवका
वीर्य नहीं हरता । इस प्रकार हम दोनों संज्ञा में विहारी ओदन
यमकी पहिना पाई गई है । यमको भी इसके प्रत्यक्षसे हम
ने द्वार प्राप्त की पकटी है ऐश इस बारे का अभिप्राय स्पष्ट
होता है ।

विहारी ओदन-विहारीका अर्थ है विस्तारवाला अर्थात्
विशाल परिमाण तथा विस्तृत है । ओदन छन्द वहां पर
का उपलब्ध है । विहारी वह ओदन के किता खाता है ।
इस अर्थवाक्यको पहिना इस मूल में कहाँ गई है ।

यमका कर्ता अग्नि ।

अग्ने वो होता किञ्च यमस्य कमप्युदे वासवज्जनि
देवाः । अहरहर्जायत मग्नि आरववा देवा इति
हम्यवाहम् ३ अथर्व १।१२।३

(अग्ने वा होता) वह जो यम-आवाग करनेवाली अग्नि
है (वा) वह (यमवच कि) यमकी कर्ता है । वह (वा
अग्नि कहे) अथवा वो वहन करती है (वात्) जिस यम
वा (देवाः वमपच्यन्ति) देव धोका खाते हैं । वह अग्नि
(अहः अहः वाचते) अतिदिन दहनक यमक उत्पन्न होती
है अर्थात् इसे प्रयोजित किया जाता है । और वह (यमि
मग्नि) अत्येक वाक्यसे वा अत्येक पक्षमें अधिक व अधिक
वक्तमें प्रकट होती है । (अग्ने) और (देवा) देवत्व

(इन्द्राह) इन्द्रका बहन करनेवाली इस अग्नि (यगिरे)
स्पर्शित करते हैं ।

इस संज्ञमें अग्नि को यम की करनेवाली बताया गया है ।
यहाँपर हम का दर्शन पायु मी हो सकता है क्योंकि अग्नि पायु
से हुन करती है । प्रचण्ड अग्नि के ज्वाला होनेपर हवा बल
से चले चले समझती है । इसके अतिरिक्त इस संज्ञसे वह मी
पता चलता है कि दैतिक पार्थिव तथा मासिक बल करने
करते ।

४८ अक्ष । मास = मास तथा पक्ष ।

यमकी बेटी ।

सुमन्तु मा अपभ्यान्को वक्ष्यमाणुत ।

यसो वमस्व पद्मीष्ठात् सर्वस्मादेवकिस्विन्यात् ।

अक्ष १ १७/१६४

वस्तु १२१५ ४

अपर्व १/१६१२४

तथा ७/११२१२०

(या) सुखे औषधियां (मयदाह) क्षय देखे होवेवाकियापसे
(सुमन्तु) सुमानें । (अक्ष उत) और (वक्ष्यात्) वक्ष्य
कण्ठी किं वप पापसे सुमानें । [अक्ष] और [वमस्व]
पक्षी [पद्मीष्ठात्] पैरोंकी बेकिबोले सुमानें । [सर्वस्मात्]
सर्वस्विकात्] सभी देखोके संकल्पी पावति औषधियां सुखे
होगे । इत्येव— पदपवन, संकल्प— पैरों की बेटी ।

वत् तदाहर्षे पक्ष कक्षानयो वक्ष्यमाणुत ।

यसो वमस्व पद्मीष्ठात् विवस्वतात् देवकिस्विन्यात् ॥

अपर्व ६/१०१२८ ४

[तप] सुखे [वक्ष्यमाणुत्] वक्ष्यमाणुत् होवेवाले पापसे
[वक्ष्यमाणुत्] और [वक्ष्यमाणुत्] वक्ष्यमाणुत् होवेवाले
पापसे [अक्ष] और [वमस्व पद्मीष्ठात्] वमस्व पैरोंकी
बेकिबोले तथा [विवस्वतात्] अक्ष [विवस्विन्यात्] देखोके
सुखे किं वप पापसे [उत् आहर्षे] वक्ष्यमाणुत् वक्ष्यमाणुत् के
पक्ष हैं ।

इस संज्ञमें वमस्व की बेकिबोले सुखदेकी प्रार्थना है । यहाँपर
मी वम कारिकाका ही है वह स्पष्ट बता चल रहा है ।
अक्षे वक्ष्यमाणुत् वक्ष्यमाणुत् वक्ष्यमाणुत् वक्ष्यमाणुत् तो वमस्व
पार्थिव कारिका सुखदा स्वयमेव हो जाएगी ।

वैवस्वत यम ।

यसो वमस्व पद्मीष्ठात् वक्ष्यमाणुत् वक्ष्यमाणुत् ।

पक्ष कारिकाका ही है वक्ष्यमाणुत् वक्ष्यमाणुत् ॥ अक्ष १ १६१११॥

[ते] तेरा [यत् यमः] जो यम [एतत्] बहुत एत
[वैवस्वत यम] वैवस्वतात् के पुत्र यमके पाछ [जगाम]
जाया गया है [ते तत्] तेरा वह यम पुनः [एतत्] एत
माफमें [एतत्] निवास करनेके लिए व [जीवसे] जीवन
भारण करनेके लिए हम [आहर्षे] जीवसे हैं ।

यहाँपर वैवस्वत यम के पाछ चलते यत् यमके प्रसारितका
उल्लेख है । यमकी वैवस्वत निवेदन किया गया है । वैवस्वत का
कार्य है विवस्वान की संतान । इससे वह पता चलता है कि
मारवेवाका यम विवस्वान् वा कहका है । इसपर हम बीवावा
प्रकाश आगे चलकर काँचेंगे ।

वक्ष्यमाणुत् निवास करनेके लिए रहनेके लिये । 'वि विवस्वतोः'
पमाह वैवस्वतात् सुमन्तोर्मैव आमारम् ।

जीवसे व सुखसे उयो वरिष्ठतापसे ॥

अक्ष १ १६ १५

[अहं] मैं [वैवस्वतात् यमम्] विवस्वान् के पुत्र यमसे
[सुमन्तोः यमः आमारम्] सुमन्तु वक्ष्यमाणुत् उत्तम वक्ष्यमाणुत् यम
जीव करने के लिये हुआ है । किं किं [जीवसे] इस जीव-
से जीवके लिए [सुखसे व] यमके लिए नहीं । [अक्ष]
और [वरिष्ठतापसे] सुखके विस्तारके लिए

इस संज्ञका भाव भी पूर्वके मन्त्रसे दिखता है । यहाँपरभी
यमकी विवस्वान् के पुत्रके नामसे कहा गया है । निम्न लिखित
मन्त्र हमारी ऊपरकी स्वात्मको स्पष्ट रूपसे पुत्र कर रहा है ।
इसमें यमकी माता व विवस्वान् दोनोंका उल्लेख है । विव-
स्वान् जीव है वह मी पाठोंको इससे स्पष्ट रूपमें पता चल
जायगा । मंत्र इस प्रकार है—

त्वहा बुद्धिरे वरुणं कुन्तोतीदीप दिवं सुवर्नं अमेति ।

यमस्व माता पद्मीष्ठाया अहो ज्ञाया विवस्वतो वनाक्ष ॥

अक्ष १ १७० ११

अपर्व १८/११२४

(त्वहा बुद्धिरे वरुणं कुन्तोतीदीप दिवं सुवर्नं अमेति) त्वहा अपनी पुत्री का
विवाह रचता है (इति) इस कारण (इदं दिवं सुवर्नं)
वह छात्र मुक्त (अमेति इच्छा होत है । (परि उद्यमया)
गवाही जाती हुई (यमस्व माता) यम की जननी व (महा
विवस्वताः ज्ञाया) महान् विवस्वान् की पत्नी (वनाक्ष) वह
हो जाती है ।

इसी मूल के प्रथम संज्ञका बता चलता है कि स्वप्ना की
पुत्री का नाम वरुण्य है और वह का त्वहा विवस्वान् व का

विवाह करता है। इस मंत्र से हमें यह पता चलता है कि त्वष्टा-
की पुत्री सरन्वू नमकी माता है व त्वेवस्वान्की पत्नी है अर्वा-
त् त्वेवस्वान् नमका पिता है। जब हमें यह देखना है कि नम-
का पिता वह त्वेवस्वान् कौन है।

वास्तव्यधर्म इस मंत्र के उत्तरार्धकी व्याख्या करते हुए लिखते
हैं, कि 'यमस्वमात् पर्युरयमत्मा सहो वाया विवस्वतो नमका
रात्रिदाविस्वत्वाविमोन्वेन्तर्वावते। अर्वात् नमकी माता
व्याही जाती हुई जो कि महान् त्वेवस्वान्की माता है वह
हो गई। अथवा वाया विवस्वतो नमका का स्वीकरण करते
हैं कि रात्रि पूर्वकी वाया पूर्वके उदय होनेपर छिप
जाती है।

इस प्रकार त्वेवस्वान्का अर्थ हुआ आरिक्का अर्वात् पूर्व। इस
उपरोक्त विवेचनसे हम सिद्ध परिणाम पर पहुँचते हैं—नमकी
माताका नाम सरन्वू है व पिताका नाम त्वेवस्वान् अर्वात् पूर्व।
अर्वात् नम विवस्वात् (पूर्व) वपुज से अथवा वसे वैवस्वतो
वैवस्वत के नामसे पुकारा गया है। वैवस्वत नमकी ही सर्वत्र
विवेचन है अन्त्यका नहीं अत एव वैवस्वतके नाम नम न जो
मनुष्य हुआ हुआ हो तो भी वहीका ग्रहण होता है।

सिन्धु किञ्चित् मन्त्रोंमें लगेके वैवस्वत कल्पकाही
प्रयोग है।

मन्त्र वे वरं वृणते अहं पुञ्जन्ति वृक्षिन्मः। अहं
वैवस्वतो वृक्षर्वाहुवा जीवतो ममः ॥

श्रु ११४३१२ ॥

इस मन्त्रमें वृक्ष त्वन्मके नाम करनेकी प्रार्थना है। अर्वात् वृक्ष
प्रकार है—

सब लोक [वे] विवस्वते [मन्त्र वरं वृणते] कल्याणकारी
वरका ही चाहते हैं। [वृक्षर्वाहु] वसे हुए कल्याणसे ही
अपना [पुञ्जन्ति] मोक्ष रक्षना चाहते हैं [वैवस्वतो अहं
वृक्षः] त्वेवस्वान् के पुत्रकी मैं कल्याणकारी वृक्षर्वाहु अर्वात्
उत्पत्ती कृपापति की चाहता हूँ, ताकि कल्याण हमें वाया न
पहुँचावे। क्योंकि [वृक्षः] वृक्षसे विपत्तियों [जीवतोः]
भीते हुए अर्वात् वसे हुए मेरा [ममः] मम काममें विचरन
करता रहता है अतः कल्याण जानेकी कथानामा है।

इस मन्त्रसे यह दर्शना गया है कि कल्याणकारी विचार
व वृक्षानवर रक्षितके कल्याण नहीं आसक्तता। कल्याण व
अन्यके लिए वैवस्वतसे प्रार्थना की गई है। वह वैवस्वत नम
ही है वह उपरोक्त विवेचनसे तो पुष्ट हो ही रहा है पर

जाये जगत्कर 'नम व त्वन्म' इस प्रकारमें हमें तथा अन्य
काट होना कि त्वन्मका नमसे कितना संबन्ध है। इत्यन्त
नमका ज्ञान है अर्वात् कल्याणसे मनुष्य भी हो सकता है
अस्तु। वहीपर यह सब स्पष्ट करने हम वर्तमान प्रयास करेंगे।

वैवस्वतः कल्पवृक्ष आनवैव मनुष्यायो मनुष्य सं
सृजामि। मनुष्यदेन वृष्टि व जानन् वर वा
सिवापराद्धो जिहीवे ॥ अथर्व १११११२४

(वैवस्वतः) त्वेवस्वान्का पुत्र (मनुष्येन कल्पवृक्षः)
मान्यके करे अर्वात् जितकारा करे। [मनुष्यायोः] कल्प नाम
करनेवाला वह है (मनुष्या कल्पवृष्टि) हमें मनुष्ये मुक्त करे।
अर्वात् हम भी उत्तम बदकार। करकेवृक्ष हो व वर्तमान
वर्ष। (वर एवः) जो पाप (मातुः वा आत्मः) मातासे हमें
प्राप्त हुआ है अर्वात् माताका अपराध करनेसे यदि हमसे
कोई पाप किया है तो वह (वर वा) अपराध विना करने
(पिता अपराधः) हमसे पिताका अपराध किया है
विषये कि पिता (जिहीवे) क्षोभित हुआ है, वह वर
उपरोक्त क्षोभ होने।

इस प्रकार इस प्रकारमें हमें वृक्षके संबन्धमें सिन्धु
किञ्चित् मुख्य बातोंका पता चलता है—

(१) नम नामका कोई प्राणिकोके जीवनोंका अपहरण
करनेवाला है।

(२) उसके पिताका नाम त्वेवस्वान् (पूर्व) है अतएव
कल्याण पुत्रा नाम वैवस्वत भी है।

(३) वरकी माताका नाम सरन्वू है जो कि त्वष्टाकी
पुत्री है।

इससे समझनेकी विशेषनके बाद हम यह देखेंगे कि वरका
रक्षितके कोई स्थान है वा नहीं वह स्थितियोंके कारण कसं
पर केनादा है इत्यादि।

समलोक व यमराज्य।

इस प्रकारमें हम नमके लोक व वरके राज्यके संबन्धमें
विचार करें अर्वात् नमकी वर है तो कदापर है इतर
प्रकार काकमेका प्रकाश करेंगे। सिन्धु किञ्चित् मंत्र एवं
प्रतिपादन कर रहे हैं कि नमका एक काव लोक है—

उमयदेन तावृक्ष किञ्चित्पति वरवृक्षमनुवर्ष व
वृक्षः। अन्त्यो नमोन्वेन्मयो नमस्व लोक वरि
रज्जुतायात् ॥ अथर्व १११११२४

हे [अय्यसे] एतिरिक्ताणी तथा ह [राघुस्य] राघु
 य माय पोषण करेवाकी अप्सराभा । [किमिषाण]
 कर्षण न (नष्ट अछारते) को पाप हात्रियों द्वारा किया है
 (नष्ट) वह पाप (नष्ट, हर्ष) (अनुसृत) अनुकूलतासे
 सिद्ध हुआ हो अर्थात् उस पापसे हमें क्षान्ति न पहुँचि इस
 प्रकारसे तो उस पापसे दूर करो । और (अन्वाह) अर्ध
 एतय्यः) अन्वये प्याय आदि द्वारा अन्नको बहाया हुआ
 अन्नको अन्वाह अथ हेमेषा (वमस्व कोके) वमके कोकमें
 (अतिरिक्तः) हाथसे रस्सी किए हुए (नष्ट व आसक्त)
 हमें प्राप्त न होइ अर्थात् हमें अन्वये की सुख कर हो तबकि
 वमकोमें हमें सुखपूर्वक रह सकें ।

इस मंत्रसे देहा पटा चकत्ता है कि अन्वयक अन्न व पुत्रावा
 यसे वमक मनुष्य सबसे मुक्त नहीं हैं। छकत्ता । मरनेवाका
 की अन्न किया पुत्राह मरना तो वमकायमें भी उसे वह अन्न
 पुत्रक पडेगा । वममय बर्हापर भी अपना अन्न केमेके किए
 प्रेक्ष करता हुआ का बहुमेया । अन्न केका कितना कष्टप्रद है
 वह इससे पता चकत्ता है ।

बवाभाद् वमसाधनस्य वायकोकस्य परमसः ॥

अधर्ष ११११११११

इस मंत्रक अर्धक रपदीकरके किए पूर्व मंत्रकी भी आपमें
 केव पहिण । पूर्व मंत्र इस प्रकार है—

मन्त्रार्थ हेमेषाण्य वा मूलवपुः सवह ॥

अधर्ष ११११११११

हे [अय्ये] आदिवा करनेके अवग्रह ! हे देवी मन्त्रमी ।
 [मन्त्रार्थ] मन्त्रों हिंसा करेवाके पाठकको [आत्मसात्]
 वरसे केकर उमरक [अनुसृत] संवत् बका है ॥ ११।
 ११११११ [ववा] सिद्धे कि वह मन्त्रपाठक [वमस्व
 अस्व] वमक सवसे भी [परमता] दूर रिषत
 (वमकोक) एतिरिक्ते केकको [अन्वाह] जाये ।

इस मंत्रसे देहा पटा चकत्ता है कि और कर्म करेवाके
 एतिरिक्ते वमकोमें स्थान नहीं मिलता वे उस वमकायके
 की पर रिषत वायकाय में जाते हैं । इससे उक्त वह भी फाट
 टैप है कि वमकोमें वमकोके एतिरिक्ते अतिरिक्त जग है ।
 पटा वमकोक सिद्ध रम्य नहीं है ।

है वमस्व साधन देवमान बहुचरते ।

हममस्व पमव माकीरन मीमिः परिष्कृतः ॥

अ १ ११११११११

(इस वमस्व धातुर्न) यह वमका पर है । (नष्ट देव
 मार्ग सचरते) जो कि देवी द्वारा बवाया गया है इस प्रकार
 कहा जाता है । (अन्व इर्ष माकीः) इस वमका मीमिः के लिए
 वह स्तुतिरूपी वामी (धमते) सचचारण की जाती है ।
 (अर्थ) यह वम (मीमिः) स्तुतिपुत्र वामिनासे (परि
 चकत्ता) समित होवे ।

इस मंत्रसे हमें साधारणतया इतना पता चकत्ता है कि
 वमकोक करके कोई स्थान अवश्य है । विम्व सिद्धि मंत्रोंके
 केकसे देहा पटा चकत्ता है कि वमका उस कोकमें राज्य है
 अर्थात् वम बर्हाध राका है । उस केकका वम राका होनेसे
 उक्तका नाम वमकोक पका है । अतएव वह कोक उक्तके नामसे
 अर्थात् वमकोकके नामसे प्रसिद्ध है ।

पुमाद् पुंशोऽतिरिक्तार्थे हि तत्र ह्यस्व पतमा मिवा
 है । वाचम्यायम प्रथमं सदेवमुत्तमं वा वयो वम
 राज्य समारम्भ ॥ अधर्ष ११११११ ॥

(पुमाद् पुंशः अतिरिक्तः) है पुम ! पुंशोंका अभिप्रातः
 वम अर्थात् उचचारणिकर की प्राप्त कर । (धर्म) सुखसे
 (इति) प्राप्त कर । (तत्र) उस सुखमें (वमता वे मिवा)
 जो तेरी प्यारी है वसे (ह्यस्व) पुम । (अये) पहिले
 (वमस्व) विलम्बे समर्प ह्य ह्य पुम पतिवामी रोमों (प्रथमं)
 मरनेके पूर्व की आयु में (वमेवमु) प्राप्त किया है (उत्तमं ववा)
 वह तुम्हारा अन्न वा आयु (वमराज्ये) वमके राज्य में
 उमान हो ।

इस मंत्रमें बड़े महारम्य उपदेष्ट है । वरसे पूर्व मनुष्य
 को उन्नति करनेके लिए कहा गया है । तबततर पुम मन्त्र
 करके आपसे अनुसृत एतीके पुत्रवसे किए कहा
 गया है । इसीसे वमवसर कह सकते हैं ।
 इस प्रकारके सिद्धके वाय ह्यस्व मित्तुकर अपने मां
 प्यको उन्नत वमकोका प्रथम करें । विलम्ब व इव कायमें
 वममें वम वमकोकमें मिलेगा वह वा ववा वमराज्ये
 उमान के दर्जावा है । इसका अभिप्राय वह हुआ कि प्रिय
 की वरिष्ठ काय वमकोकमें जाती है । अर्थात् प्रियवा पुन
 विलम्बे प्रति इमान कथम् है कथम् हो पुन माया वरी
 अति लावर्ण्यके लिए भी है ।

समस्तिमार्गके पुम वचवने स रमा वमक वमराज्यपुः
 पुनी वरिष्ठक वमवसेवा वर वर रीति वरि री
 संवाम ॥ अधर्ष ११११११ ॥

यत्र पदं नृप यमकोट्ये दे, नृप मायया पदेया । तीवरी युग्मे
पितर रहते दे अथा पितर नमकोट्ये रहते दे नृप भी इसकः
अभिप्राय हुआ । यमकोट्ये नम राजा है, अथा पितर कछकी
प्रजा हुए । पितर यमराजकमें रहते हैं इस परिणामकी विम्व
यत्र पुष्टि कर रहा है—

न समानाः सम्यक् पितरो यमराज्ये ।

तेषां लोक स्वया मनो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥

अनुः ११/३५ ॥

(यम-राज्ये) यमके राज्यमें (ये पितरा समानाः सम
नराः) जो पितर समान तथा सम्यक् अर्थात् एक संकल्पनाके
हैं (तेषां) उन पितरोंके अर्थ दिए गए (लोकः स्वया
मनः यज्ञः) लोक स्वया सम्यक् न यज्ञ (देवेषु कल्पताम्)
देवोंमें समक हीने अर्थात् विद्वान् व हों ।

इह मन्त्रमें पितर यमराज्यमें हैं वह बर्णाश है । पितरोंका
स्वाम तीवरी यु है । अथा वह यु यमके राज्यमें ही है वह
इह मन्त्रमें स्पष्ट हो रहा है ।

यमका राज्य तीवरी युमें है और उसके ऊपर तुलोक समान
हो जाता है वह विम्वकिहित यज्ञ बता रहा है—

यज्ञ राक्ष वैवस्वतो यज्ञायोमयं विधा ।

यज्ञायुर्वैवस्वतीरावस्तव साम्भुत कुर्वीतयामिन्नो पवित्राय ॥

अनुः ११/३६ ॥

(यम) यज्ञाय (वैवस्वतः राजा) विवस्वतः का पुत्र
यम राजा है वहां कि (विधाः अवरोधने) तुल्यककी समष्टि
है वहां तथा यज्ञ (यमः) ने (यवस्वतीः आपः) बने
बने यज्ञ हैं (यज्ञः) वहां (मां यज्ञो हविः) मुझे अयत्त
बना । (इत्यो) हे इन्द्र । (इत्ययं) ऐश्वर्यके लिए (अरि
मयः) भारी औरते पर अर्थात् मुझे ऐश्वर्य दे ।

इहा यपराय विवेचनके हम विम्व किहित विधानाम पर
पहुंच सकते हैं— यमका यज्ञ कि यमका राज्य है वृद्धि
दिशाकी ओर स्थित तुल्य युग्मे है । वहां पितर रहते हैं ।
यम उमका राजा है व ने कछकी प्रजा हैं । वह यज्ञ पितर
न यमके लक्ष्यार्थ नामक तीवरीकमें और भी अधिक स्पष्ट हो
जाएगी । विम्व मन्त्रमें अर्थकार कर्णमें तक विरामका नवीन
प्रतीत होता है । यम विरामको वैकली कल्पना करके उत्पन्न
नवीन विधा प । है

प्रजापतिव परमेष्ठी न भूयस्व इन्द्रः क्षिरो ।

अग्निभक्तं यमः कृताहम् ॥ अथवा ११/३७

यम विराम वैकली (प्रजापतिः न परमेष्ठी न) प्रजापति
न परमेष्ठी ने सोमों (भूयस्व) दो ऊपर हैं वामि कृत्स्नका
नीन है । (इन्द्रः क्षिरो) इन्द्र तबका क्षिरे दे अर्थात् इन्द्र
मित्र स्वागोव है । (यमिः कृताहं) यमि तबका कृताह
(माया) है यार (यमः) कम तबकी (कृताहं) कर्त्तव्य
माय है ।

यमकी विरामकी रचनामें यममें स्वाम मिश्रता है अर्थात्
यमकी विरामि उसके क्षीरमें कर्त्तव्यस्वागोव है ।

इह प्रकरकमें हमें यमकोट यमराज्य तथा उत्पत्ति स्थिति
का पता लग्य है । अब अगले प्रकरकमें हम यमराज्यके
द्वारापर विचार करेंगे ।

यमके दूत ।

इह प्रकरकमें यमके दूतोंका अस्तित्व स्पष्ट तथा कर्त्त
वर्णाश मानया । विम्व विम्व मंत्रोंमें यमके दूत होनेमें
विश्वमें उल्लेख है—

कुन्मि से प्राच्ययापौ जरां यस्तु रीचयन्तु स्वति ।

वैवस्वतेन मरिचिदा यमदूताः (योजनकेयामि अर्थात्)

अनुः ४१/११४

(ने) ठेरे (प्राच्ययापौ) प्राच और अजलके (कुन्मि)
स्थिर करता हू । और (रीचं यस्तु) रीचं यस्तुके तथा
(स्वति) कृताहको भी ठेरे किए स्थिर करता हू । (यमः)
यमके दूतों के यमके यमदूतों के दूत मनाया हू । (वैवस्वतेन मरि-
चिदा यमः) यमके यमदूतों के यमदूतों के दूत यमदूत
मने हुए वैवस्वतोंके विचारके करते हुए उन यमके दूतोंके (न
विचामि) दूत मना देया हू ।

इह मन्त्रमें यमदूतोंका उल्लेख है । यम उन्हें प्राचियोंके के
आनेके लिए संक्षरमें भिजता है । यम दूतोंके दूत मनायेका
मिर्चक नहीं है ।

यमतामूह यस्तुदूता अपोमयत । परा

सहसा इत्यन्ता तुयैवैवनात मत्त यवस्व ॥

अनुः ४१/११४

(यस्तुदूताः) हे यस्तुके दूतों ! (यमः) हम यस्तुके
(यवतः) के आगे । हे (यमदूताः) यमके दूतों ! (यम
यमः) हमें यमकर वाम जो तबके दूत कर माय व यमों ।
(परा सहसा) हमाराही कृताहोंके भी अधिक (इत्य-
न्ताम्) यार यमकी । (एवाव) हम यस्तुके (यवस्व)

यन्) यमकी मुठ्ठी अर्थात् पूछा (पूछे) चूर चूर कर पड़े ।

॥ यममें अनुद्योति विनाशके लिए यमवृत्तों का कहा गया है । यमका यमवृत्तों का अर्थ है, वह नहीं पर पण्ड हो रहा है । इस प्रकार इन संज्ञाओं में यमवृत्तों का अर्थ है कार्य व क्षय का अर्थ है । यह हम देखेंगे कि ये यमवृत्त क्यों हैं व इनका स्वस्व क्या है ।

यमवृत्त—आन (कुचे)

अक्षिप्त धारमेयी चायी चतुरक्षी घबळी छात्रुवा यवा । यवा विपुलसुविदुवा उपेहि यमेव व छजवायं मरति ॥

श्र १ १३७११ ॥

यदी नम अचरैरेहमें मोहेवे पाठमरके आन इस प्रकार है—
अक्षिप्त धारमेयी चतुरक्षी घबळी छात्रुवा यवा । यवा विपुलसुविदुवा अपीहि यमेव व छज मायं मरति ॥

अनर्थ १४१११३॥

(धारमेयी) धारमेव (चतुरक्षी) चार भाँकोंवाले (घबळी) विस्तृतमिन्न रनिरिंभी (चायी) दो कुत्तों के (अक्षि) बगल (छात्रुवा यवा) उत्तम मार्यते (यव) का । (यव) और (दुमिरनाम विपुल) उत्तम कृम्य वा यव के श्रेष्ठ—पुत्र विपरीत (यव इति) समीप का । (ये) जो कि त्वर (यमेव यवायं) महति) यमके साथ अक्षय्य अभ्यस्त हो रहे हैं ।

धारमेयी—धारवाधारमे है इसका अर्थ किता है कि सरमा धारमे हैभी कुत्ता है इसके अर्थ है । सरमा धारमे य यदी यदी है बाहुल्यके अर्थ धारमे पर यवा है । विषयका अर्थ है यमुत दौड़नेवाली । उक्तका पुत्र धारमेव । अक्षिप्त धारमेयमें धारमेवका अर्थ कुता प्रचलित है । अस्तु । तथापि हम धारमेव का अर्थ बहुत ही बड़ेकाया देना पर करते हैं ।

इस अर्थ में उक्तको कहा गया है कि यमके दोनों कुत्तों के अर्थ कि नविरि है इनके अर्थपर उत्तम मार्यते विपरीतके अर्थ का जो कि त्वर यमके साथ आभ्यस्त हो रहे हैं । यदी इस अर्थमें यमके कुत्तोंके यमवृत्तके नामके वही कहा गया है तथापि आप आनेवाले लोगोंमें उन्हीं यमवृत्तके नामके कहा गया है व उनमेंसे प्रत्येकके (व आदि) अर्थ है । वही पर उन्हीं यमके वही है जिसका कि स्पष्टीकरण वही है ।

जो ते आनौ यम शक्तिताते चतुरक्षी पविरक्षी वृच-
क्षसी । ताम्नामेनं परिदेहि राजन् स्वस्ति चास्मा

अनभीयन्व येहि ॥ श्र १ १३७११० अर्थ १४१११७

(यम) हे यम ! (ते नी) तेरे जो (शक्तिताते) रक्षा करनेवाले (चतुरक्षी) चार भाँकोंवाले (पविरक्षी) यम को हमें आनेके रस्ते की रक्षा करनेवाले तथा (वृचक्षी) यमुत्तों के देखनेवाले (यमौ) दो कुत्तों हैं हे राजन् ! (ताम्ना) उन दोनों कुत्तों द्वारा (एवं) इसके (स्वस्ति) अभिवादन (देहि) हे अर्थात् वे कुत्ते इसे हमें न पहुंचावे ऐसा कर । (च) और (अस्मै अनभीयं येहि) इसके लिए वीरोपिठा—तोयपहितता दे । इसे कभी रोम न सतावे ।

इस अर्थमें यमके कहा गया है कि वह अपने कुत्तोंके किसी भी प्रकारका अक्षय्य न होने देवे अन्यथा कम्पान व आगेन देता रहे ।

उक्तकायावृत्तुवा अनुमरकी यमका वृत्तौ चतुरो ज्यौं
अनु । ताम्नामेनं दक्षे वृत्तौ पुनर्वातामनुमराह
यज्जम् ॥

श्र १ १३७१११॥

अनर्थ १४१११३॥

(अनुमरकी) कभी वाक्याके (अनुमरकी) प्राप्ति के अक्षय्यके गुण होनेवाले (अनुमरकी) विस्तृत यमवाले अर्थात् अक्षय्य यमका (यमका वृत्तौ) यमके वृत्त उपरांत दोनों कुत्ते (यमौ अनुमरत) यमुत्तों के पीछे पीछे निवारण करित रहते हैं । ताकि अरधर मित्रता हो उनके प्राप्तिके अपना पृष्ठ करें । (तो) ऐसे वे यमका कुत्ते (अन्त्य) हमारे लिए (सुवाच इत्ये) एवं के रस्यार्थ अर्थात् इस ओरमें जोनके लिए (अय) आज (इह) वहाँ (अर्ध अर्ध) कम्पानका प्रत्यक्ष (पुत्र) फिर (वाच्य) हैं । वे हमारे प्राप्तिके क्षीन कर हमें यम न सतावे अनिष्ट उक्तका अर्थ जो एवं ताकि हम वहाँ अभिस्त रह सकें ।

इस अर्थमें पूर्व पंजीय यमका कुत्तोंके स्वस्व का अर्थ है । वे कभी कभी वाक्याके अक्षय्य यमका प्राप्तिके अक्षय्य के गुण होनेवाले हैं । उनसे प्राप्तिमें मित्रता उत्पन्न में प्राप्ति नहीं है ।

इसका अर्थ वा या अक्षय्य प्रेषितो यमका वा रवि
रक्षी चायी । अर्थात् इह या वि दीप्यो मात्र विहः
चराह यवाः ॥

अनर्थ १४१११३॥

(इमामः) काश (च) और (कवकः) पितृकर्म।
 ऐसे रसविहीन (भी) भी हो (यमस्व) यमके (पयिरुद्धी)
 यमकोरुद्धे मार्गधी रक्षा करवेवाले (एवावी) कुते हैं वे
 (त्या) तुझे (मा प्रियतौ) मत भावा पहुंचावें । (अर्वात्
 एहि) हमारे समुच्च आ। (मा विरीभ्यः) विरुद्ध मत
 हो अर्वात् हमें छोड़कर बड़े जालेधी प्रोक्षित मत कर । (धात्र)
 वहां हृत् धारमें (पराजुमाना) विक्षिप्तचित्त हुआ हुआ
 (मा तिष्ठ) मत स्थित हो । धारसे कदाहीन क्षति प्राप्त
 मत कर ।

इस मंत्रसे ऐसा पता चलता है कि यमके भी दो कुते हैं
 जिनमेंसे एक तो बड़े रम्य है तथा सुग्राह्य बड़े लोभ जाति
 रसविहीन पितृकर्म है । इस मंत्रमें जो काश व पितृ-
 कर्म। इनके यमके हृत् कुतोंका वर्णन है वह आध्यात्मिक
 रूपसे उत्तम व विरक्त वर्णन प्रतीत होता है । काश कुतों रात
 ही और कवक कुतों दिन है । वे विरक्त व सुखी पीछे प्रान्त
 हारन करके बड़े बड़े हुए हैं । ज्यों ज्यों दिन व रात
 गुजरते जाते हैं त्यों त्यों मनुष्यकी आयु क्षीन होती जाती है ।
 अतः संभव है वे दिन व रात वास्तवमें यमके हृत् और
 कवक यमके स्वाध (कुते) करके वर्णन किया हो । वहां पर
 एक और भी संका बठ लगती है और वह वह कि इवान्त
 ब्रह्मसे ही क्यों यमके हृत् कुतोंका उद्देश्य किया गया । कुतोंके
 लिए सुदूर अनेक समय विद्यमान हैं ही । परन्तु पाठकोंको
 ध्यानमें रखना चाहिए कि स्वयं स्वयं हमारी ऊपर की कल्पनाको
 और भी दृढ़ करता है । स्वाध चर्यके अर्वात् विचार करवेसे
 उपरान्त ही स्वयं स्वयं ही जाती है और इस स्वाध द्वारा किए
 गए आध्यात्मिक वर्णनका महत्त्व अर्थ ही बनता है । धात्रका
 वर्णन है (स्वा = स्व = काम व = बहो) जो जाति
 काही काममें व रहे अर्वात् या जाति तो है पर वह काम व
 रहेगा । जो दिन व रात एक मात्र निष्कल मय, वे फिर बुकारा
 छोड़कर नहीं जाते । जब पाठक धात्र काम के महत्त्वको समझ
 गए होंगे कि क्यों यमके हृत् को स्वाधके नामसे कहा गया है
 और उक्त किसे कि प्रथम दिन व रातका वर्णन किया
 गया है । परन्तु अथर्व इस विषयमें पूर्ण जोश व नी जाले
 तबतक विचारके पुत्र भी नहीं कहा जा सकता । पाठक इस
 पर विचार करें ऐसी व्याख्या है । उपरोक्त मंत्रके अन्तर्गत
 अन्तर्गत भी जिनके मंत्रमें अनेक रस्य किया गया है

हृदेति पुत्रस्य सर्वेण ममसा हृत् ।

हृत्तो यमस्व माधुना अवि बोधपुरा इति ॥

अथ १४ १४

हे पुत्र ! (सर्वेण ममसा हृत्) अपने ममके हृत् अर्वात्
 मम समझकर (हृत्) वहां इस ब्रह्ममें रहना हुआ (एहि)
 हृत्को प्राप्त कर । (यमस्व हृत्) उपरोक्त यमके सेवा
 हृत्कि [या अनुयाः] पक्षि यत्त या अर्वात् यमकोरुद्धे मत
 जा । [बोधपुराः] जीविके पुरांकी अर्वात् हृत्कि [अवि
 इति] प्राप्त कर और को छोड़कर यमकोरुद्धे मत जा ।

उपरोक्त यमके अन्तर्गत इस मंत्रमें स्वयं रूपसे पक्षीय
 किया गया है । यमके हृत्को या अनुयाज करने अर्वात् ममके
 विषय करते हुए वेद वाच्य कर मम समझकर अन्तर्गत रहनेका
 उपदेश है ।

इत उपरोक्त मंत्रमें जिन वारांश निम्नलिखित है

(१) यमके हृत् दो कुते हैं ।

(२) वे दोनों कुत कभी वाच्यके व वार आंशोंको
 हैं ।

(३) इनमेंसे एक कुता काश व एक पितृकर्म है ।

(४) उनकी सुधि प्राप्तोंके मन्त्रन होती है । वे मन्त्रों
 के पीछे सर्वथा प्रत्यापहरण के लिए बने रहते हैं । यमकोरुद्धे
 जालेके मार्गधी वे सर्वथा रक्षा करते रहते हैं ।

यमका हृत् ' मृत्यु ' ।

अनेमें जीवा अथर्वान् मृत्युस्वस्व विरहत्त वरिप्रामाणितः ।

मृत्युर्वायमस्वाधीवृत्तः । अनेता अथर्वान् मृत्यु-मो ममसा

यकारः ॥

अथर्व १४१२१४ ॥

प्रामाण्य कावेति इस कवके वरोसे बाहर कर दिया है ।
 वरुको सुम ज्ञेय इस प्रामाण्य बाहर अनेत्रि अन्तर्गतके कि
 मन्त्रान्मृत्युमें के जावो । यमका हृत् या मृत्यु है उक्तके हृत्के
 प्रामाण्य पितरोंके पास यमकोरुद्धे भेज दिया है । अतः कर्त्तव्य
 वह निष्कलप्राम हो चुका है इस वास्ते हृत्के यमकोरुद्धे मम से
 बाहर रहवादि किनाके लिए के जाओ ।

इस मंत्रमें वह वर्त्तना गया है कि मृत्यु यमका हृत् है वह
 मृतके प्रामाण्य पितरोंके पास पहुंचाया है । इसका आध्यात्म
 वह हुआ कि मरनेपर जो मृत्युके मंत्रोंका जाता है ।

यह मंत्र भी पूर्वोक्त विषय लिखित परिभाषों को दृढ़ करता
 है ।

पृष्ठ: १३।१३४

(१) यम प्राणोंका अपहरण करनेवाका है क्योंकि मृत्यु यमकी ही वृत्त है ।

(२) पितृलोक यमके राज्यमें है; क्योंकि मृत के प्राणोंको पितरों के पास पितृलोकमें यमका वृत्त मृत्यु पहुँचाता है ।

छठम्यन यमके वृत्तों में एक है। इस उपरोक्त विवेचनमें यह अर्थ है कि यमके वे तीन (दो कुल व तीसरा मृत्यु) ही वृत्त हैं । और भी अनेक वृत्त हैं । पर वे यमके प्रकाश-सूक्ष्म हैं अतः हमका चित्त रूपसे नहीं समझ सकता है । हम इस प्रकारके प्रारंभमें ही एक ऐसा संज्ञा देकर आए हैं जिससे सहज पता चलता है कि यमके अनेक वृत्त हैं । उनका निर्देश मात्र है । विद्वानों का मात्र विवेचन नहीं है । इस वनके अनेक वृत्त बतायेवाले मंत्रके मूल रूपसे हम पुनः वहाँ विवेचन करते हैं—

यममृत्यु मृत्युवृत्ता यमवृत्ता अपोममता । परा सङ्ख्याः
ह्यन्यथा तुल्यवृत्तान् मार्त्तं नयत्यहम् ॥

अर्थ ७ ८।८।११५

इसके अतिरिक्त अन्य भी ऐसे मंत्र हैं जिनमें यमके अनेक वृत्तोंके विवेचन हैं ।

यमका पितृयाजमार्ग जानना ।

यमों को मार्ग प्रथमो विवेक मेधा मृत्युतिष्ठपमर्तवा
ह । यथा ना पूर्वे पितरः पितुरेवा अजाताः । यथा
यत्तु जातः ॥

अर्थ १ ११।११२४

अर्थ १८।११।५ ॥

(प्रथमः यम) यह अधिक यम (वा गार्ह निवेद) हमारे यमों के अजात है । (एषा मृत्युतिष्ठः) यह मार्ग जिसे ही (यमार्थे व) अपहरण नहीं किया जा सकता । (यज) यम यमों के (ना पूर्वे पितरः) हमारे पुरातन पितर (प्रेत्यु) का इति है । (एषा) इस मार्गसे (अजाताः) अज्ञान प्राणी यम (का) जन्माः । अपने अपने यमों के अनुसार (अयु) होते हैं ।

यह पार यम वर्यार्थ (पितृयाजको) जानता है जिससे कि पितर करते हैं व अन्य यमका अनुगमन करते हैं वह रक्षा है ।

यमकी स्वर्गमें पहुँचानेके लिए सहमति ।

यममृत्यु से निर्दिष्ट दिग्गतेष्वेवमर्थं विपुला कर्ममयम् ।
यमेन त्वं यथा संनिहन्तोऽप्येवाके जयि तोऽन्येवम् ॥

हे [निष्ठते] निर्दिष्ट ! [ते यमः] तेरे लिए नयद्वार है । [दिग्गतेष्वः] वाक्य तेजवासी वृत्त [अयस्मिन् एत यमः] सोहीके इस यमवृत्तका [विपुल] अत्यन्त । [त्वं] वृत्त [यमेन यथा संनिहन्तो] यम व यमके द्वारा मित्रकर [एव] इच्छा [कर्तमे माके] उत्तम कर्ममें [अभिरुह्य] पहुँचा । इस संज्ञमें निर्दिष्ट यमके साथ एकमत होकर कर्ममें पहुँचानेका उद्देश्य है । अर्थात् स्वर्गमें जानेके लिए यमकी भी सहमति चाहिए ।

यमका दीर्घायु देना ।

कर्मो मायौ व ह्यं यथावासावासाभाविद्वर्त्तं जगाम ।
तमर्चय विचक्षित्वा इक्षिमिः स वो यम प्रवरं जीवते
यात् ॥ अर्थ १८।११।५४ ॥

[वः] जिस [कर्मः] माय [अर्चय] निमाय करनेवाले [ह्यं] इस अर्थसे [यथावा] वैवासा है और जो [अस्मा] अस्मा होनेसे [यथावा] अर्चयत्वं] अर्चके कामिनीयों प्राप्त हुआ है ऐसे [तं] यमकी है [विचक्षित्वा] सबके विज्ञो । [इक्षिमिः] इक्षिणीयारा [अर्चय] पूजा करो । [वः] वह [यमः] यम [वः] हमें [प्रवरं जीवते यात्] बहुत जीवनेके लिए कारण करे अर्थात् दीर्घायु देव ।

यमकी मनुष्योत्ति रक्षा ।

सर्वो माहा परस्वसिः इक्षिम्वा मनुष्योत्तिष्ठान् यमो
मनुष्येभ्यः परस्वसि पतिविम्वा ॥ अर्थ १८।११।५४

[सर्वः] सर्व [अहा] विनये अर्चय विन में होनेसे कर्मोंके [वा यात्] मेरी रक्षा करे । [अति] अति [पुत्रि-व्याः] पुत्रियोंके [वात्तः कर्मोत्तिष्ठः] कर्म उत्तिष्ठके [यमा मनुष्येभ्यः] यम मनुष्यों के तथा [परस्वसि पतिविम्वाः] परस्वसि पतिविम्वा पतिविम्वा मेरी रक्षा करे ।

यमकी मृत्युसे रक्षा ।

अपामृत्युः जैत्रेय वर्य मरिच्यद्वितीया यथा जयिता
बृहस्पतिः । सोमो राजा यद्वनो जयित्वा यमः
पुत्रासमन्तं परिपातु मृत्योः ॥ अर्थ १८।११।११४
[वं जैत्रेयं वर्यं] जिस पुत्रवर्द्धकी वर्यका अर्चय
पुत्र के द्वारा के अनुमाने [अपामृत्युः] जिह्वार विना है
वह वर्य क कारण होनावा [मृत्योः] मृत्युके [मरिच्यद्वितीया]

इन्द्र और अग्नि [वाता] कारण करनेवाला [सविता] अग्नि करनेवाला [बुधस्पतिः] अग्निमूर्ति का जानेपाते [धामः राजा] सोम स्वभावाका राजा [वरुणः] वरुण [अश्विना] देवों के गेय अश्विनौ [वसः] वस तथा [पूषा] पोषक देव [अरुणः] हमारी [परि पाशु] रक्षा करें ।

मन्त्र प्रयोग देवतासे पुरुष की हिंसा से रक्षा करने की प्रार्थना की गई है। सबसे प्राथम्य से जो भूस्तुते रक्षा कर देने लिये कहा गया है। वस के अनेक कार्य हैं जैसा कि वाट बोधी वसके प्रकरणसे पता चलेगा। वहाँ पर लिखे बोधसे मन्त्रों का विकास कि अन्वय समानेक नहीं हो सका है रचाए गए हैं।

यमके प्रति हमारे कार्य ।

यमके लिए हवि ।

परोषितां यमो महीरु बभूव्मः पन्थामनुपश्यन्ना-
यम । वैवस्वत सङ्गमं अकवां यमं राजानं हविषा
हुक्त्व ॥ अ. १. ११. १३

[प्रस्ताः] प्रह्लाद वसत तथा निह्लाद यैतिवत् प्रप्रियांथ
[अतु] अतु करे [महीः परोषितां] पृथिवीपर आए हुए
तथा [बभूव्मः] बभूवोके किन् [पन्थां] यमकोपके मार्ग को
[अनुपश्यन्नायमं] रक्षाते हुए [यमार्थं सङ्गमं] विषयमें
मनुष्य जमा होते हैं ऐसे [वैवस्वतं] विवस्वत के पुत्र [यमं
राजानं] यम राजा की [हविषा हुक्त्व] हवि देकर
पूजा कर ।

इसमें पहिले देखा है कि यम के दून् मनुष्योंके पीछे खड़ा
कते हुए हैं। वहाँपर कभी भाल को गिरा करके रक्षावा है।
यम सबसे पीछे जमा हुआ है। जिस विषयमें अथर्व वेद
कि ठके यमकोक का मार्ग वह रखाता है।

यमान् क्षोमे सुपुत्र यमान् सुहृदा हविः ।

यमं ह यज्ञो यच्छम्यद्विष्टो अरुह्यत ॥

अ. १. ११. १३

यह मंत्र बोध पठनेमें के प्राथम्य अथर्ववेदमें है—

यमान् क्षोमे यमसे यमान् किमते हविः ।

यमं यज्ञो यच्छम्यद्विष्टो अरुह्यत ॥

अथर्व १. ८. १. १३

[यमान् क्षोमे सुपुत्र] यमक लिये यममें क्षोम को लिये-
को । [यमान् हविः सुपुत्र] यमके लिये यम में हवि दी ।

[ह] निधनसे [अरुह्यतः अश्विपुताः यज्ञः यमं यच्छति]
जीवता करता हुआ अग्नि निधनसे हट है ऐसा यज्ञ रक्षते
जाता है ।

हृत्त मंत्रमें यमके लिए क्षोम व हवि देवेना कहा है। यमके
लिए किया गया यज्ञ ठके प्राप्त होता है वह जो क्षम रक्षावा
गया है ।

यमान् युतयद्विष्टोत्त म य विष्टत ।

स यो देवेभ्यः यमदीर्घान् मजीवते ॥

अ. १. ११. १४

अथर्ववेदमें बोधसे यज्ञमरके यम यह मंत्र इस प्रकार है—
यमान् युतयत् यमो राजं हविषोत्तय ।

स यो जीवन्ता यमदीर्घान् मजीवते ॥

अथर्व १. ८. १. १४

(यमान्) यमके लिये (युतयत् हविः) यमके परिपूर्ण
हविषके (सुहृदा) दो । और इस प्रकार (अश्विपुताः) अश्विपुता
होती । (यः) यह यम (यः) हवि (यमोत्तये) यम के अन्तरे
लियेके लिए (देवेभ्यः) देवमें (यः) हवि (योर्घान्) यम-
मत् (योर्घान्) यमके लिये हवि परिपूर्ण हविसे देवेकी व दीर्घान्
देवेकी प्रार्थना का वेश है ।

इस मंत्रमें यमके लिये हवि परिपूर्ण हविसे देवेकी व दीर्घान्
देवेकी प्रार्थना का वेश है ।

यमके लिये अन्नकी हवि

यद् नामं यदुर्मिच्छन्तो अग्ने कार्ष्णिना अश्विनो व
विषवा । वैवस्वते राजानि तज्जुहोम्यन्न यक्षिं अनु
महस्य वोऽवस्य ॥ अथर्व १. ११. १४

(अग्ने) पहिले (विष्णवः) मृगि खोरते हुए अर्थात्
हवि करते हुए (अश्विनः) अश्वी कायवेकके अथर्व अन्न
की प्रति किए प्रकारसे होती है इस बातके कायवेकके अन्न
अन्नकी प्रति करनेवाले (कार्ष्णिनाः) क्षिप्रांनि (व निधन)
अन्नके कारण (यद् नामं यदुर्मिच्छन्तो) या यदर्थवन्ता अन्नका
अन्नका [अश्विनः व] अन्नको प्राप्त करनेवालेकी तरह [यद्
नामं यदुर्मिच्छन्तो] जो अश्विनवन्ता विवस्वतमह यमान् [यद्
कारण अन्नको [वैवस्वते राजानि] वैवस्वत राजा यमके
[सुहृदि] देव हैं [अन्न] और तब [यः] हमारा
[यक्षिं अन्नं यदुर्मिच्छन्तो] यमके दोन को अन्न है यह
यदुर्मिच्छन्तो से ।

इस संग्रहमें ज्योत उदय अथवा अथ यमके बिने दण्डा निर्देश है ।

यमकी पूजा ।

यदि पापाश्रयिणी मूर्तिरतथा । बराहोष्ठश्चतुरङ्गो
यमोऽस्मिन्निधिः । इत्यस्त्वद्या इतिजोवाः कस्तुभयः प्रतो
इती मस्तो विष्णुरिति ॥ अ १ । १२१११ ॥
(ये मूर्तिरतथा यमोऽस्मिन्निधिः) के बहुत लक्षणों में पु और
इति, (यमः) यम (अस्मिन्निधिः) अस्मिन्निधि (स्वप्न देवः)
यम देव (इतिजोवाः) अस्मिन्निधि (कस्तुभयः) कानी वा कानी
यम यम (रोदरी) यमो पानी (मस्त) देवयन तथा
(विष्णुः) विष्णु के यम (बराहोष्ठः चतुरङ्गः) यमोष्ठ यम
यम यम (अस्मिन्निधिः) पूज जाते हैं । वहां जन्मोंके साथ यमकी
भी पूजा होवे है ।

यमके लिये घर बनाना ।

यम यमय इत्येवमप्यु पंचमागमः ।

इया यमामि इत्येव यम मे मूर्तिः उच्यते ॥

अथर्व १८४१५५ ॥

(यमः) जिस प्रकार (पंचमागमः) पंचमागमोंमें
(यमय) यमके लिए (इत्येव) वरको (अथवा) यमना
है (यम) यमो प्रकार में ही (इत्येव) यमामि घर बनाया
है (यमः) जिसके कि (मे) मेरे (मूर्तिः) बहुतसे घर
(अथवा) हो जायें ।

यमकावा-प्रमाण कानि चैव तथा छत्र के चार यम
य पंचय निवार । अथवा यमयुग्मके पूजन के लिये
यम यमके कहा है- सर्वों का पुत्र पंचयनामा उच्यते
यमयुग्मके अथवा यमके यमों का पुत्र । यथा वा
यमयुग्मके उच्यते इति । ऐ. मा १।१२१ ॥

इस संग्रहमें यह दर्शाया गया है कि जिसको अपने घरोंके
निम्नो इच्छा हो वह यमके लिए घर बनाने । पंच मागम
यमके लिए घर बनाने हैं ।

यमके लिये स्वधा-नम ।

यमय विष्णुयते स्वधा यमः ॥ अथर्व १८४१०७ ॥

(विष्णुयते यमयः) बहुत पिताके पुत्र यमके लिए
यम और यमयार है । वहां यमके लिए स्वधाका निर्देश
है ।

इस प्रकार इस विभागमें संक्षेपसे यमक किए हमें स्वा
करवा चाहिए यह दर्शाया गया है ।

यम और स्वप्न ।

इस प्रकारमें यमके साथ स्वप्नका क्या सम्बन्ध है उसकी
उत्पत्ति कैसे होती है इत्यादि बातोंकी चर्चा होगी ।

स्वप्नका पिता यम ।

यो व नीलोऽसि व मुतो देवानाममृतमर्तोऽसि

स्वप्नः । यमानी ठे माता यमा पितारर्कामासि ॥
अथर्व १।४१११५

हे स्वप्न ! (यः) जो तु (व नीलः अग्नि व यमः) व
तो जीवित ही है और नहीं मरा हुआ ही है वह तु (देवानां
अमृतममः अग्नि) देवोंका अमृत यम है अथवा देवोंमें सर्वदा
रहनेवाका है । (ठे) ठेरी (यमानी माता) यमानी
माता है और (यमः पिता) यम पिता है । (अरकः नम
अग्नि) तु अरक नामवाका है ।

देवानां-यहां देवानां का अर्थ इन्द्रियोंका है । स्वप्न इन्द्र-
ियोंके अमृत रूपमें बना हुआ है । क्योंकि अमृत अस्थायी
इन्द्रियोंके अनुसंधानसे उत्पन्न नामवाकासे वह उत्पन्न होता है ।
हमारे अन्दर नामवासे स्वामी हैं अतः स्वप्न उन नामवाकासे
उत्पन्न होनेसे अमृत है, अतएव उसे यहां अमृतममके कहा
गया है ।

अरकः- पीता देववाका इति । अमर्त्यदेवयोः
से बना है । ठे मा १।११११७ के अनुसार अरक नामवाका
अमृत ।

यमानी-यमन अर्थात् अथवा यम की पत्नी ।

इस प्रकार इस मन्त्रमें यमके स्वप्नका पिता क । गया है ।
अर्थात् स्वप्न यमका पुत्र है । अतएव यह पार स्वप्नके मृत्यु-
की हो जाता है ।

यमयय ओकायथा यमयिष्य प्रयमदा मार्गान्
प्रयुज्यते पीडाः । एकाकिवा धर्मः वासि पिडा
मस्वर्णः तिमामो अमुरयय योवा ॥

अथर्व १९१५११५

हे स्वप्न ! तु (यमयय ओकायथा) यमके मार्ग (यम
या यमयिष्य) प्रयत्न हुआ हुआ है । (पीडाः) पीडा तु
(प्रयमदा) बड़े नाममायने (यमय) मरणाधी मनु यो-
को (प्रयुज्यते) अपने काम अमृत करता है नर्थात् अपने

ममबधे जनमें प्रविष्ट हो जाता है अतएव मनुष्योंको स्वप्न भाषा है । (विज्ञान) जानता हुआ अर्थात् जाग्रदवस्था में (ममबधे नोभे) आत्माके उत्पत्ति के स्वप्न रूप में (स्वप्नं मिमाणा) स्वप्नको उत्पन्न करता हुआ (एकोक्ति-ना) अर्थात् स्वप्नदर्शी पुत्र वा सुपुत्र के साथ [वरय] समान गहनपर सवार हुआ हुआ [वसि] विचरण करता है ।

पूर्व मंत्र में वमको स्वप्नका पिता बर्णना गया है । इस मंत्र में उल्लेखी पुत्रिके रूपमें बताया गया है कि स्वप्न वमककर्म उत्पन्न होकर यहापर सवार में आकर मनुष्योंमें प्रापन्न हुआ हुआ है ।

स्वप्न, वम का करण ।

विद्य से स्वप्न अनिष्ट देवताजीका पुत्रोद्भि-
धमस्त करवा । अन्तकोऽसि मूलुरसि । तं
त्वा स्वप्न त्वा स विद्य स नः स्वप्न हुम्ह
पन्वात् पाहि ॥ अथर्व १।११।२ ॥

इ स्वप्न । [ते अवित्रं विद्य] तेरी कल्पतिकी इस जानते हैं । तू [देवताजीका पुत्रोद्भि] देवीकी पत्नीवीध पुत्र है और [वमस्त करवा] वमके कर्वाँव छावक है । तू [अंतकः अवि] अंत करनेवाला है । [मूलुरः अवि] तू मारनेवाला है । हे स्वप्न ! (मैं त्वा) तब तुझको [त्वा] मैंना उपरंख लेवा [स विद्य] इस जानते हैं । [सः] वह तू स्वप्न ! [नः पुम्हपन्वात्] तूरे स्वप्न से हमारी [पाहि] रक्षा कर ।

इस मंत्र में स्वप्नका वमपत्तिकी पुत्र कथा गया है । वम मंत्रकी दिव्यमें हमने स्वप्नको उत्पत्ति बर्णित हुए वह बताया था कि वह अथ तू इन्द्रिकी विषयोंसे उत्पन्न वायव्य अर्थात् स्वप्नकी उत्पत्ति होती है । उल्लेखी वमकी पुत्रि इस मंत्र में देवताजीका पुत्रः अवि से भी गई है । देवी अथ तू इन्द्रिकी पत्नीका इन्द्रविषयवज्जन्म प्राप्तगाने है । स्वप्न वमका पुत्र है । वहाँ पर विधान पाठ कही गई वह वह कि वमको यगध वरय बताया गया है । कालिने मुनिने काव्य सप्तम अध्यायकी में किशः है कि— छावकवम (अथा १।१।४२) अर्थात् जा कार्यछावकमें यथावतम छावक है वह वम है । अथवायक छव छावकी में जा कावक अधिक आहवक है वह वम कहल्यता है । इस मन्त्रानुसार वमका वम वम है इसका अभिप्राय वह हुआ कि वमक

मारने के कार्यमें स्वप्न छव से अधिक आहवक वावक है पाठक स्वप्नके इस विवेचन से उल्लेखी अर्थकरताका अनुभव ग्रहण कर सकते हैं ।

इसी मंत्र के भावको ही नीचे भिन्ने मंत्रमें व्यवहार किया गया है—

देवानां पत्नीनां वर्म वमस्त कर मे मम स्वप्न ।

स मम नः पावस्त्वद्विद्यते प्राप्तिमः ।

मा तुहावामसि कृष्णकृष्णेभ्यस्तु ॥ अथर्व १।१।३।४

हे (देवानां पत्नीनां वर्म) देवीकी पत्नीको के वर्मस्त तथा (वमस्त कर) वमके हाथ स्वप्न ! (मे ममः) मे कल्याणकारी ऐसा अर्थ है (सः) वह अर्थ (मम) मेरा हाथ । (नः पाव) और मेरा कष्ट—अविहकरी अर्थ है [त्वः] तब अर्थकी [द्विद्यते] हेन करनेवालेके प्रति [प्रणिः] हम भेजते हैं । [तुहातां] तुवितां-अर्थात्-कृष्णोंके अर्थमें [कृष्णकृष्णेभ्यः] कर्षे पक्षाके [केषके] [सुवे] सुवर्षी त्वत् तू [मा अवि] हमारे लिए वाचक मत हो, अर्थात् विद्य अन्त अर्थात्को वा कृष्णों के लिए कृष्ण का मुक्त अविहकरी होय है उक्त मन्त्र तू हमारे लिए अविहकरी मत हो ।

विद्य से स्वप्न अवित्रं प्राप्तिः । पुत्रोऽसि वमस्त

करवा ॥ अथर्व १।१।५ ॥

हे स्वप्न । [ते अवित्रं विद्य] तेरी कल्पतिकी इस जानते हैं । तू [प्राप्तिः पुत्रः अवि] प्रसी का पुत्र है और [वमस्त करवा] वम के कर्वाँव छावक है ।

इस मंत्र में स्वप्नको माही का बेटा कहा गया है । अवित्र अवि करीके अकर्मवशसे होय माही कहल्यता है । उक्त ऐयोंके कारण करीर में शीघ्र बनी रहती है, जिससे शीघ्र नहीं आती और यदि कोई मां तो स्वप्नकी अथवा बनी रहती है। अतएव स्वप्नको माहीका पुत्र कहा गया है । वमक वरय की व्याख्या ऊपर कर भय है ।

अन्तकोऽसि मूलुरसि ॥ अथर्व १।१।६।७

हे स्वप्न ! तू (अन्तका अवि) प्राप्तिमा करनेवाला है । तू (मूलुरः अवि) मारनेवाला है ।

मिश्र गहनरम आनेसे व उक्त स्वप्न आनेसे स्वप्न विहककर अन्तमें मूलुर हो जाती है अतएव स्वप्नको वही अन्तक व मूलुरके नामसे कहा गया है ।

विद्य से स्वप्न अभिन्न निर्मलताः पुत्रोऽसि यमस्य
करणः । बन्धकोऽसि धृष्टुरसि । यं त्वा स्वप्नं तथा
यं विद्यं स नः स्वप्नं कुप्यन्मात्रं पाहि ॥

अथर्व १६।५।४॥

मंत्रम अर्धं हम ऊपर से आए हैं । वहाँ पर ऐसा ही मंत्र
कहा है । इस मंत्र में स्वप्न को निर्मलताका पुत्र कहा गया
है । निर्मलता से स्वप्न को उत्पत्तिका अभिप्राय यह है कि
निर्मलता बर्णात् कष्ट, दुःख आदि से मनुष्य को विद्या नहीं
मिली । स्वप्न वह अवस्था है जिस अवस्था में कि पाठ मित्र
वा भगवत् होता है । और कदापि भी वहाँमें मनुष्य को
कष्ट दिया नहीं जाती । इसी आशयसे ये स्वप्नको निर्मलता
का पुत्र कहा है । जब मनुषी व्याख्या पूर्ववत् ही है ।

विद्य से स्वप्न अभिन्नममृताः पुत्रोऽसि बगवत्
करणः । बन्धकोऽसि ह्यजानि अथर्व १६।५।४ वत् ॥
अथर्व १६।५।५ ॥

अर्थ पूर्ववत् । इस मंत्रमें स्वप्नको अमृति बर्णात् अर्धवत्
प्रतिष्ठा का पुत्र कहा है । वरिष्ठता के परिणामसे भी मनुष्य
को मृता नहीं माली । इस प्रकार मनुषी से भी स्वप्न (बगवत्
विद्य मिलने व आने) को उत्पत्ति है । योय व्याख्या पूर्ववत्
ही व्याख्या चाहिए ।

विद्य से स्वप्न अभिन्न निर्मलताः पुत्रोऽसि यमस्य
करणः । बन्धकोऽसि । ह्यजानि पूर्ववत् ॥
अथर्व १६।५।६ ॥

अर्थ पूर्ववत् । इस मंत्रमें स्वप्न को निर्मलता का पुत्र कहा
गया है । निर्मलता अर्ध है देवर्ष-उपनि का निष्कल ज्ञाना
कष्ट से ज्ञाना । ईशतिष्ठामी भी उपनि बन्ध हो जानेसे उसे
भी निष्कल नहीं माली । वह सुखभी विद्या के नहीं हो सकता ।
इस प्रकार वरिष्ठताका का भी स्वप्न पुत्र है ।

विद्य से स्वप्न अभिन्न परामृताः पुत्रोऽसि यमस्य
करणः । बन्धकोऽसि । ह्यजानि ॥
अथर्व १६।५।७ ॥

अर्थ पूर्ववत् । इस मंत्र में स्वप्न को परामृति का पुत्र कहा
गया है । परामृति अर्ध है परामर्श बर्णात् दूर भाव,
मिराधार को प्राप्त होता । परामर्शसे वा शिरधारसे मनुष्य का
स्वप्न कालिक कष्ट होता है कि, ज्ञानके किने विद्या द्वारा हो
जाते है । और इस प्रकार परामृति से स्वप्न को उत्पत्ति
उत्पत्ति है ।

विद्य से स्वप्न अभिन्न देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य
करणः ॥
अथर्व १६।५।८ ॥

हे स्वप्न । तेरी उत्पत्तिकी हम आभार है, तू देवोंकी पति
को का पुत्र है और यमके बानोंका साधक है । इस मंत्रका
भाव हम पूर्व बर्णी आए हैं । देवपतिनों का पुत्र स्वप्न किस
प्रकार है यह वहाँ विस्तारपूर्वक बर्णी आए हैं ।

इस प्रकार वह अथर्ववेदके १६ वें अध्याय ५ वां सूक्त
उत्पत्ति वम व स्वप्नविषयक है जो कि हमने ऊपर दिया है
इस सूक्तसे व इससे व लिए गए पदोंसे के मन्त्रोंसे वम व
स्वप्नका संबंध स्पष्ट होता है । स्वप्न वमकोऽर्धमें रहता है
वहाँसे मनुष्योंमें प्रविष्ट हुआ है उत्पत्ति विता वम है
वक्ष्यामी तपकी माता है । वह अपने विता वमके बानोंका
विच्छेदम साधक है । इसके अतिरिक्त स्वप्न बर्णात् वास्तवि
क मित्रका अभाव किम किम कारणोंसे होता है तथा उससे
वका कुप्यन्मात्र होते हैं स्वप्न वमका अर्थ किम प्रकार है
ह्यजानि धर्मात्मा वमका इस सूक्तमें स्पष्ट करते हमें देखने को
मिलता है । इस प्रकार वह सूक्त तथा स्वप्नविषयक अन्वय मंत्र
भी वमके स्वप्न वर्णनमें वर्णन सहायक हैं । वमविषयक
पूर्व व्याख्या को भी धन्य भी पुष्ट कर रहे हैं वह पाठक निरन्तर
कसे समझ लके होंगे ।

अब वहाँ वमविषयक के मंत्र लिए जायेंगे जो कि विचारित
प्रकरणोंमें के किमों से भी साधने नहीं किए जा सकते हैं । इस
प्रकरण में लिए गए मंत्र भी अवगत आए हुए वमसे ही वम
अव रहते हैं वह बात पाठकों का भुझनी नहीं चाहिए । और
वह व समझना चाहिए कि इस प्रकरणमूर्तगत मन्त्रोंमें सावद
वम अन्वय बर्णात्मा को । अन्वय अर्थमें प्रयुक्त वम हम सबसे
अन्तमें सिद्ध सिद्ध बर्णात्मा प्रयुक्त वम साधक वर्णनमें होंगे ।

यम कौन है ?

जो समस्त प्रथमो मर्त्यानां वा देवाण्य प्रथमो लोकम
तत् । नैव स्वर्गो लङ्घ्यमानं जनानां यमो राजाने दावता
अथर्व १६।१।१३

(वा) जो (मर्त्यानां प्रथमः समस्त) मनुष्योंमें सबसे
प्रथम मरता और (य) जो (एतं लोकं प्रथमः य देवाः)
इस लोक-व्यवस्था का सबसे पहिले गया मरता (जनानां यम
यम) जनों के समस्त (अवस्था वम राजाने) विद्वत्साधक
पुत्र वमराजाकी (इति सा वयं वत्) इति इति पूजा करी ।

यमका अग्रिको स्थिर करना ।

इषीकां वारवीमि हवा तिलिस्त्रां वृषभं नवम् ।

पुनश्च हर्षं कृत्वा यमस्यार्तिं निरादधौ ॥

ਅਧਰ ੧੨।੨।੧੭।

[इयः] इन्ने [जरती इयीषो] जरती इयीषो
 [इयः] अय करे और [तिस्सिक्के] तिस्सिक्के, [इक्कन]
 इक्कन व [वव] ववके [इप्पे] सुमिथा वव करे
 [ववत्त] ववत्ती [ल अत्ति] उच्च अत्तिक्का [मि]
 मिक्कवे स्थापित किया ।

भारती इपीका = बड़े अर्थात् मुझे हुए काम ।

विनिर्णय- विनिर्णय प्रणाली । वन्य मय भी एक
मयारी कमेटी जाली वन्य मय है । वन्य मय विनिर्णय कमेटी
मयारी है ।

इस मंत्र में वह दर्शाया गया है कि वसुधै कुर्वितु
इव चैवमेव साग करता चाहिए जिससे कि वसुधै कुर्वितु
सिद्ध हो सके।

यसके माग बल ।

यमस्य प्राणः क्व । अर्थाः सुकृमाणां रूपाणि यन्त्राणि

अस्मात्तु यत् । प्रचारयेत्तु याम्नाऽस्मै कोकय

सादर ॥ अक्टूबर १ १५१२ ॥

हे कनो ! तुम [वरुण भाग्य रूप] वरुण भाग्य ही ।
[रीति : भाग्य] हे विष्णु कनो ! [अर्थात् कनो वरुण ! अरुणभा-
ग्य] कनो भाग्य तुम ठीक हमारे ही स्वाधिन करो । [वा ।
तुम्हें] प्रकृति : भाग्य । प्रकृतिही तुमको [अर्थात् लोकात्म-
कात्वे] इस कालके विधि स्थिति कराता हूँ ।

इस प्रश्नमें लक्ष्मणजी वनवास में रहते थे। लक्ष्मणजी
के लक्ष्मणजी वनवास की कहानी है।

समवेष्टेभ्यो देवेभ्यो वाङ्मनासङ्गया।

पृष्ठ सं. १३५

(समवेदः) सम भिन्नका होता है ऐसे (संविनाशक) रक्षण रिक्त में पठनेवाला (देवता) ब्रह्मा) वेदों कि पद पर आधारित है।

ये इवा समनेत्रा इक्ष्वाकुर्देवः॥

समाप्त ॥ पृष्ठ ७७ ॥

(ये देवाः वमनेत्राः) सा देव वमनेत्र कर्णात् वम निगच्छा
येषां ह देवे तेषां (वक्षिण्यस्रवः) वक्षिण्यं विद्यते । नेत्रे—

बाधे हैं (तेजः) उनके लिए (स्वाहा) स्वाहापूर्वक वह
आहुति हो ।

इस मंत्रोक्ति दक्षिण दिशावालोंका यम नेता है, ऐसा पता चलता है।

वमस्य प्रबोद्धस्य ॥ अह ६५॥७ ॥

समझी तबोदखी हे ।

समाप्तः ॥ २४३ ॥

समके लिए काका पद्म होवे। मनुष्योंके इस मंत्रमें मित्र
मित्रके लिए मित्र मित्र पञ्चमोक्ष विधान है। परम्पु
उप विद्याका क्या रहस्य है वह एक विचारणीय समस्या है।

उस्या धर्मो राज्यं नरकं जासीद

रखसपात्र पात्रम् ॥

[उत्सवाः] इह विराजन्ती वीर्य [वयः] राजा [वयः]
 राजा [वयः] आसीत् । वरुणा वा व दूय दोहने व क्षिप्र
 [पात्र] वरुण [वरुणार्ज] वरुणा वरुण वा ।

बहावर आकस्मिक कर्षण प्रयत्न होता है पर वह अकस्मिक विपदा किस प्रकार है वह एक विचारणीय बात है। बहाव हुए कई मंत्र आद्य करके विपदा से निवृत्ति विचारणीय है क्योंकि स्वयं आभिमान बहाव अकस्मिक नहीं होता है।

यम व पितरोक्ता सुमध ।

यम व वितर विश्वक के लक्षणक विशेषणसे पाठ्यक्रम
वितर व यमके पारस्परिक सम्बन्धसे कुछ न कुछ अवश्य परि-
चित हो गए होंगे। यमके तथा वितरों के लक्षण अथवा दिग्
गण विश्वकर्माके कम कथा है व वितर कथा है वह भी पाठकों-
के ध्यानमें रहने अवस्य ही होगा। यम व वितरों के संबंध का
काह काह बचानोपर हमने लिखे नी किम्बा है। उन भिरे
प्रांति को बाँटे हमें पता लगी हैं उनसे यह साह है कि यम
वितरों का राजा है व वितर उनकी प्रजा हैं। वितर यमको
में रहते हैं। इसीका नाम विनयेक भी है।

हमारी उपयोग्य परिणामों की पुष्टि निम्न क्षेत्र स्वयं अपने
कार्योपरि परीक्षा के रहे हैं ।

यम पितरोंका अधिपति ।

बलः विदुषामधिपतिः स मातुषु । जमिन्
अत्राप्यस्मिन् कर्मण्यस्मात् पुनः प्राणामस्तु वरिष्ठः ।

पामस्तां चिरवामस्यावाकुरवामस्यामाधिष्यस्तां
रघुह्यामीं स्वाहा ॥ अथर्व ५।१५।१४४

[(घ) तितृन् अतिपतिः) वह पितरोंका स्वामी [(यवा)]
[यमः] यम [मा धनयु] विष्णु विहित कर्मोंमें मेरी रक्षा
करे । (अरिभन् मर्यादा) इस मर्यादा की प्राप्तिमें । (अस्मि
न् कर्मणि) इस भेद कर्ममें । [अस्तां पुरोधावां] इस पुरो
हिताईके काम में । (अस्तां प्रतिप्राप्तां) इस प्रतिप्राप्ते कार्य
में । [अस्तां चित्तां] इस चतुर्मास्य कार्यमें । [अस्ता
अप्राप्तां] इस अवस्थामें । [अस्तां आधिषि] इस
आधिपत्यके कार्यमें । [अस्तां ऐकहृष्टां] इस देवोंके आवा
हनेके कार्यमें ।

॥ यममें यमको पितरोंका स्वामी कहा गया है । पितरोंके
ऊपर यमके अधिकारका यहां पर स्पष्ट किया गया है । वह
अधिगार किस रूपमें है अर्थात् यम पितरोंका किस तरह
स्वामी है वह नीचेके मंत्रस स्पष्ट हो रहा है—

न वयं तितृन्मुच्यन्महत् यमो राजा भूमा
मुच्यन्महत् स्वधाकार अकारं कुत्रा ॥

अथर्व १५।१५।१४५

(घ) ॥ यम (वत्) यम [तितृन् अमुच्यन्महत्]
पितरोंका लक्ष्य करके यम अर्थात् पितरोंमें आवा तब [यमा
राजा भूमा] यम पितरों का राजा बनकरके तथा पितरों के
लिए [स्वधाकार अकारं कुत्रा] स्वधा करके दिए हुए
को जीवनदाता का आचमनभूत अक्ष बनता हुआ [अमुच्य
न्महत्] इस प्रकारके पीछे वंश पितरों में आवा ।

मात्र नाम अतावत् का है । वहापर यम पितरोंका राजा
बनकर उनमें रहता है वह सर्वोका स्वामी है ।

विपद्य यम राजा ह एक बातको विष्णु भेदमा पुष्टि
कर रहा है ।

और वा इष्टः सवाधिष्ठ मा रवीं प्रविषी मही ।

अ. के विष्णु विपद्यपरक यमराजयु ॥

अथर्व १८।१।१५ ॥

[(वा इष्टः) मा सवाधिष्ठ] युग इष्ट अथवा स्वस्थपक्ष
वाता मत् पशुवाह इष्ट वशी बनना पशुओं का मध्यस्थ है ।
[(रवीं मही प्रविषी मा) और दि व लब्धे को विष्णु
पुत्रकी भी मध्यस्थता पशुवाह [यमराजयु (विष्णु) की
[(रवा)] यम स्वधा राजा है स्वधा राजा में स्वधा मत्

करके [एष्टव] नृपिकी प्राप्त हो ।

इस मंत्रमें स्पष्ट रूपसे यमका पितरोंके राजा होनेकी सर्वोप
पत्ता है । पितर यमकी प्रजा हैं । यमराज्यमें भी पितर रहते
हैं इसका बहापर स्पष्ट रूपसे उल्लेख है । वह यम केतके
लक्ष्य करके कहा गया है । इसी प्रकार विष्णु मंत्रमें भी उच
रोक्त मंत्रके भावका पुष्ट किया गया है ।

यमो अपानो व्याध आमुच्यन्महत् स्थाव ।

अपरिपरीय यवा यमराजा तितृन् पच्छ ॥

अथर्व १८।१।१६ ॥

(व्याध) व्याध (अपाना) अपान (व्याधा) व्याध
(आमु) आयु और (पच्छ) काव (स्थाव पक्षमें)
सूर्यके दर्शनके लिए अर्थात् इस संसारमें जीवन प्राप्त करनेके
लिए होवें । और आयुके पूर्ण होनेपर देहका त्याग करनेपर है
अं ! वा अपरिपरीय यवा अजुष्टिमा मार्यं ह्यार [यमराजा
तितृन्] यम विपद्य राजा है देवे पितरोंको (पच्छ) लो,
प्राप्त हो ।

अपरिपरीयः परि परितः स्रवतः परः परमावा कुट्टिजना
अवका स्रगुः न विद्यते वसिन् सः अपरिपरीयः अर्थात् जिसमें
सर्वथा कुट्टिजना वा कबु आवि नहीं है वह अपरिपरीय ।

इस मंत्र में भी पितरों वा जो विपद्यन दिया गया है
वह यम का पितरोंके राजा होनेकी ही सिद्ध कर रहा है ।

यम-भेष्ट पितर ।

महत्तमं वा इष्टं वृद्धोऽप्ये देवीः प्रजापतिम् ।

तितृन् यममहावत् वृद्धोऽप्ये देवीः प्रजापतिम् ॥

अथर्व १९।१।१७ ॥

[(स्रव जापि) वाव अपिबोध [इष्टं वृद्धा] वह कहते
हैं । (देवीः अपा) विष्णु उल्लेख इस करते हैं । [प्रजा
पति] प्रजापतिसे इस कहते हैं और [यममहावत् तितृन्]
यमक व्यापक जो भूषण ह एवं पितरोंको इस [वृद्धा]
कहते हैं कि [वे] उपराध सब [मा] हमें [अहवा मुच्य-
न्] न पक्ष गुत्राहें ।

वहापर पितरोंको यमभेष्ट कहा गया है । वहापर यमका
अर्थ वीर्यमें वह वय अर्थात् अस्तव आदि भी हो सकता
है । जो इस वय वीर्यक वानमेध भूषण दुराह । वे यमभेष्ट
देवा भी इसका अर्थ हो सकता है । अथवा यम विपद्य भेष्ट
देवा भी होना

बलु । उपरोक्त विवरणसे यह पता चल्य कि यम पित्रोरेका
पत्नी है व पितर लक्ष्मी प्रसा है ।

यम व पित्रोरेके सहकार्य ।

इसमें यह दिखता जायगा कि कौन कौनसे कार्य यम
पत्नी सितर मिश्रकर करते हैं ।

यमके साथ हवि खाना ।

वे वा पूर्वे सितरः सोम्यासोऽवहिरे ज्योमपीय
वसिष्ठा । तैर्मिषमः संराजो हवींष्युक्तानुवसि-

प्रसिद्धमनुजु ॥ अ १ ११५८॥ अहु १५ १५१ ॥

(वे पूर्वे सोम्यासः वसिष्ठाः सितरः) हमारे शिव पुत्रासन
को व संराज करनेवाले तथा उत्तमधनवाले पित्रोरे वल्लभ
(ज्योमपीय) ज्योमपात्रको (अनु वसिरे) किना वा (वेमिः)
यम (वसिष्ठा) यमके साथ ज्योमपात्रको कमान करते हुए
सितरेके साथ (वसु वसः) सितरोके साथ ज्योमपात्रकी
रक्षा करता हुआ यम (संराजः) पित्रोरेके साथ रमण
करता हुआ (हवींषि) हविषोको (प्रसिद्धमं) वनेच्छ
(वसु) खाने ।

इस मंत्र पित्रोरेके साथ हवि कायेकी रक्षा करता हुआ
यम इनके साथ हवि खाता है वह वही वा गया है ।

वे वा सितुः सितरो वे पितामहा अनुवसिरे
ज्योमपीय वसिष्ठा । तैर्मिषमः संराजो हवींष्यु
क्तानुवसिः प्रसिद्धमनुजु ॥ अर्थ १८११५८ ॥

इस मंत्र उत्तरार्ध उपराज अ १ ११५८ के साथ
सर्वप्र मिश्र है ।

(वे वे सितुः सितरो वे पितामहा) हमारे शिव पिताके
सितरेके और उनके भी शिव पितामहोमे को कि उत्तम धन-
पत्र वे (ज्योमपीय) वल्लभ ज्योमपात्र (अनुवसिरे) स्वी
कृत किना वा अर्थात् ज्योमपात्र किना वा यम पित्रोरेके साथ
रक्षित पूर्ववत् ॥

इस मंत्रमें भी प्रथम मन्त्रके वातवै ही पुन कहा
गया है । इस प्रकार यमका सितरोके साथ हवि केके कार्य वे
यम कहा रहे हैं ।

यम व पित्रोरेके साथ खाना ।

हमामि ते मन्त्रा मय होमान् गृहीं वपुस्तपान्
एहि । य वरकस्य पितृभिः स यमेन कोवा

एत्वा वाता उपधानु क्षरमा ॥

अर्थ १८१११ ॥

(ते मन्त्रा मन्त्रा हवामि) तेर मनको मन द्वारा बुझाता
हू । (हो) यहाँ (होमान् गृहीं) इन पत्रोंके (वपुस्तपान् उप
एहि) प्रीति करता हुआ अन्दर आ । य (पितृभिः) पित्रोरेके
साथ [यं वरकस्य] विचारन कर । (यमेन स) यमके साथ
विचारण कर । [स्तोवाः] सुकदावत् [यन्माः] सविषाही
[वाताः] वातु [त्वा उपधानु] ठेरे किय रहे ।

यहाँपर यम व पित्रोरेके साथ जानेको कहा गया है
उक्तका अर्थिप्रत्य यह हुआ कि यम व पित्र नाम साथ
विचारण करते हैं ।

पितर व यमका मिश्रकर सुख देना ।

रक्षिषां विक्षमभि वल्लभम्यौ पर्वार्वेषामानि
पात्रमेतत् । तस्मिन् वा यमः पितृभि संवि
ह्वयः पक्काय सर्वं वहुक मियच्छात्
अर्थ १८११४ ॥

[रक्षिषां विक्ष] रक्षिण विक्षाम् [अभिनक्षमाम्यै]
और जाते हुए पुन जाते [एतत् पात्र अभि] इस पात्रकी
जो [परि जावेषाम्] औद आये । [तस्मिन्] उस
पात्रमें [पितृभिः संविह्वयः यमः] पित्रोरेके साथ मिश्र हुआ
यम (पक्काय) पक्व होवेके किय अर्थात् पूर्व काय देवेक
किय (वा) पुन दोनों को (वहुकं सर्वं) बहुत कुछ (मि-
यच्छात्) देवे ।

इस मंत्रमें यह दर्शाया गया है कि यम सितरो के साथ
मिश्रकर सुख देता है । यहाँ पात्र उन्मुखे विषय आदेशन
है वह स्पष्ट नहीं होता ।

यम व पित्रोरेके सहमतिसे स्वर्गप्राप्ति ।

अवस्यसे गुपय वधिप इहार्तिहोते मृत्युर्धिमं वरकस्य
कोम त्व पितृभिः सविह्वय उपम वाकं अपिरोहने-
मय ॥ अर्थ १८११२ ॥

अर्थ १८११२ ॥

(हो) यहाँ [वधिप इहार्तिहोते] यम सितर दुर्गे दुर्गे है मिश्रित ।
य (वे वरकस्य) को हकारी है देवे (वरकस्य) वातु
पात्रोंके (अवस्यसे गुपये) ओहमको वरकस्य की वनी दुर्गे
देवीमें (वधिप) बांधी है । (त्व) य (यमेन सितभिः स
विह्वयः) यम और पित्रोरेके साथ मिश्रकर उनको वरमतिष

[इम] इसको [उद्यमं वाचं अपिरोहय] उद्यम स्वर्गमें पहुँचा ।

निर्गम्येति वहां प्रार्थना की गई है कि वह यम व पितरोंके मित्रकार स्वर्गमें पहुँचावे । परन्तु इसका क्या अभिप्राय है अर्थात् निष्कृति किस प्रकार स्वर्गको पहुँचाती है उद्यम स्वर्ग-तं बना यादृक् है वह विचारव्यवस्था है ।

पितरोंका स्मृत्वा धारण करना व

यमका स्थान देना ।

उद्य स्तन्मासि पृथिवीं स्वर्गरीं चोद्य निष्कृत्वा यमो ब्रह्म रिपम् । एतां स्मृत्वा पितरो भारवन्तु तेऽग्रा यमः प्रादुषा ते मिमोषु ॥ अ. १. १८।१३४

यह मंत्र वाचके पाठभरके छान अथर्ववेदमें भी आया है ।

उद्य स्तन्मासि पृथिवीं स्वर्गरीं चोद्य निष्कृत्वा यमो ब्रह्म रिपम् । एतां स्मृत्वा पितरो भारवन्तु तेऽग्रा यमः प्रादुषा ते मिमोषु ॥ अथर्व १८।१५१४

(ते) मेरे सिधे (पृथिवी) पृथिवीका (उद्यस्तन्मासि) ऊपरको उठानेकर रखा हूँ । फिर (एत परि) तेरे पर उस (यमं) मित्रको ठेकेंको जो कि उठा रखा है (निष्कृत्वा) रखा हुआ हुआ (मी ब्रह्म रिपम्) मैं मत्त नष्ट हूँ । (एतां स्मृत्वा) इस कामेको तरे सिधे (पितरः भारवन्तु) पितर भारण करें । (अग्र) और उस आचार्यस्तम्भपर (ते) तेरे सिधे (यमः) यम (प्रादुषा चोको) मिमोषु बनाने ।

अस्मिरास् पितर व यम ।

मातृकी कर्मवर्गमी अस्मिरासिर्ब्रह्मस्वर्गिण्यमनिर्वाह्याय । यौध देवा वायुधुर्वं च देवान्स्वाह्वन्ते स्वधवायम मरुति ॥ अ. १. १९।१३४

यह मंत्र पाठभरके अथर्ववेदमें है—

मातृकी कर्मवर्गमी अस्मिरासिर्ब्रह्मस्वर्गिण्यमनिर्वाह्याय । यौध देवा वायुधुर्वं च देवान्स्वाह्वन्ते स्वधवायम मरुति ॥ अथर्व १८।१९।१३४

(मातृकी) मातृ (कर्मवर्ग) कर्म कामेवास पितरोंके (यमः) यम (अस्मिरासि) अस्मिरास पितरोंके तथा (ब्रह्मस्वर्ग) ब्रह्मस्वर्ग (स्वर्गवास) आकाशमें (वायुधुर्वं) मुक्तिमें प्राप्त होता है । (वायु देवा वायुधुर्वं) जिनको देव ब्रह्मा है (ये च) और जो (देवान्) देवोंको ब्रह्माते है (अम्भे) उन्मेष अम्भ मातृकी यम और ब्रह्मस्वर्ग ता

(स्वाहा मरुति) मरुत्कारके भी हुई हमिसे प्रलय होते हैं और (अम्भे) हमसे जिन ब्रह्मे कर्म आश्रित्य अस्मिरास) स्वाहाकारके प्रलय होते हैं ।

अथर्ववेदमें भी वाक्यता पाठभर है यह इस मंत्रके अर्थ को अधिक स्पष्ट करता है । उसके अनुसार मंत्रार्थ इस प्रकार है—

इन्द्र कर्म पितरोंके यम आश्रित्य पितरोंके तथा ब्रह्मस्वर्ग आकाशमें स्थापित करनेवाले पितरों के ब्रह्मा है । जिन पितरों को वे कपराय देव ब्रह्माते हैं तथा जिन देवोंको वे कपराय पितर ब्रह्माते हैं ऐसे वे पितर कुम्भर जानेपर हमारी रक्षा करें । इस प्रकार इस मंत्रमें यह ब्रह्माणा बना है कि यम अस्मिरास पितरोंके ब्रह्मा है यान ब्रह्मस्वी होता है ।

इयं यम प्रस्तर मा हि वीक्ष्यतिरोमिः पितुमिः क्षमिद्याय । आ एवा मन्त्राः क्वचिदस्ताः ब्रह्मस्वर्ग राक्षस इक्षिमा मायवस्व ॥ अ. १. १९।१४

अथर्व १८।१९।१४

ह यम ! (अस्मिरासिः पितुमिः क्षमिद्याय) अस्मिरास पितरोंके जिन हुआ तू (इम प्रस्तर) इस कैलाश हुए आत्म पर (आसीत्) बैठ । (एवा क्वचिदस्ताः मन्त्राः) तुझे क्वचिदस्व मंत्र (या वीक्ष्य) तुम्हारे । (एवा) इस (इक्षिमा) इक्षिमा (मायवस्व) प्रलय हो ।

क्वचिदस्व मंत्र— कवि अर्थात् कर्मवर्ग आत्मी कोको जिनकी प्रलोका की गई ह ऐसे मंत्र प्रत्यक्षीय मंत्र । इस मंत्र में प्रत्यक्षीय मंत्रोक्त्या यमके अस्मिरास पितरोंके साथ कुम्भ-पर ब्रह्मसे निरनुग आत्म पर बैठानेका उद्देश्य है ।

यमका अस्मिरास पितरोंके साथ जाना ।

अस्मिरासिर्ब्रह्मस्वर्गिण्यमनिर्वाह्याय । यौध देवा वायुधुर्वं च देवान्स्वाह्वन्ते स्वधवायम मरुति ॥ अ. १. १९।१४

यह मंत्र वाचके पाठभरके साथ अथर्ववेदमें भी है—

अस्मिरासिर्ब्रह्मस्वर्गिण्यमनिर्वाह्याय । यौध देवा वायुधुर्वं च देवान्स्वाह्वन्ते स्वधवायम मरुति ॥ अथर्व १८।१९।१४

ह यम ! (ब्रह्मस्वर्ग) ब्रह्मस्वर्गमें (अस्मिरासिः) ब्रह्मस्वर्ग ब्रह्मस्वर्ग (अस्मिरासिः) अस्मिरास पितरोंके साथ (ब्रह्मस्वर्ग) ब्रह्मस्वर्ग (मायवस्व प्रलय) हो । (निरनुग) ब्रह्म

है किन्तु आप को भी सुझाया हूँ (५४) जो कि विवस्नाथ (वेस्ना) ठेरा पिता है। वह ठेरा पिता (अस्मिन् वह) हूँ वह मैं (वही) था निश्चय। आपनपर बैठकर बजमान को स्पर्शित करें।

इस संज्ञे में समझा कि विरह पितरोंके साथ बड़में बुझा
 गया है। इसके लिये वह संज्ञा समझा पितृ विरहान् है इस
 पर्यंत परिभाषा का समर्थन कर रहा है। विरहान् को भी बड़में
 बुझाया रहा विशेष है।

मन्त्रों के इन मंत्रों द्वारा सितर व अन्य सवर्गका व सत्त्वों के स्वर्गों का हमें पता चलता है। ये सब मंत्र समझा सितरों के लिए संबंध है यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादन कर रहे हैं। यह सितरों के नाम सितरों के लिए ही करता है। इससे सितरों के सितरों के स्थिति पर भी बोधना प्रभाव अवश्य पड़ता है।

इस प्रकार विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त वस्तु सार्वभौमिक संज्ञा समायोजित हैं। एक ही वस्तु पर भेदोत्पत्तिपूर्ण विचार करने तथा भेदोत्पत्ति से वस्तु प्रत्यक्ष करने। अथ हस्त अभिलेख प्रकरणमें इन भेदों का विचार करने किन्तु हस्त अभिलेख भवितरिख अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

१ नियमन ऋष्य में यम ।

इस विषयमें तब श्रीजी साहब होमि जिनमें कि तब विषय
मन निराश्रय यदि इन्हीं के घरका जगहोंमें प्रयुक्त हुआ
हुआ है।

[illegible]

यदीदानीं प्रथमः पक्षस्तु तदा सर्वो मतः
यस्य भावः । आ गा आनन्दस्य भावः ।

१९ (अ. सु. मा. सं. १८)

(जन्मार्थ) स्थिरप्रकृति विद्वान् ने (प्रथम) सबसे पहिले (ब्रह्म) पञ्चोपास्य (पञ्चः पते) मार्ग का विस्तार किया । (पतः) तब (ऋतपान्नेनः सूर्यः) प्रतरश्चक जन्मकोटा सूर्य (व्याप्ति) व्यापक हुआ । और फिर (ब्रह्मनाः काश्यपः सत्ता) काशना करके हुए कश्मिके पुनर्क काय मिच्छक सूर्यने (याः आ आश्रय) क्रियाओंके केन्द्र अर्थात् सर्वत्र प्रकाश किया । (वम स्व जाति अमृत) निवमन के लिए करपन्न अमृत का हम (वज्रासेध) वजन करते हैं—उसकी पूजा करते हैं । वही सर्वोत्तमका सर्वेश है । सत्ता—सह । विष ४१२४

यमेव हर्षं विव्र पञ्चमासुनगिन्द्र पुनं प्रथमो
जम्भतिष्ठत् । यम्भर्षो जस्य रसनामगुम्भत्
सरावर्षं वस्यो विररत् ॥ अ ११११११

पृष्ठ २९ । १३ व

इह मन्त्रक्य वेदता जय है । (वधवाः सृष्ट्वा अर्चं निरतश्च)
 वधुर्वाये सूर्यं ये बोधे को ब्रामा । गर्दिन उत्पन्न हिवा । फिर
 (ज्येष्ठ वर्त) विद्यापक अग्रिम रिष्ट हुए वध बोधेको (प्रित)
 तांते आर्क्षेते विस्वृत वावुये (आमुमह) रपादिने जाहा
 (हन्ताः एव प्रथमः आभ्युत्थिन्) इन्द्र उपर सवध पहिन
 सवार हुआ । (यन्मवाः अस्व रक्षन् अदृष्टत) मन्त्रवने जय
 बोधेको ब्रामा पकड़ी । रक्षन् = बोधे बांधनेके रक्षी ।

२ वीषारमा अथ मे यम ।

परिमलं हृद्यं सुवक्त्रं चैवैः संविष्टं वनः ।

अत्रा बो विहपतिः पिना पुरात्मा अनुदेवति ॥

ਸਭ ੧ ੧੨੫੧੧ ੨

(वसिष्ठां श्रुत्वाकां वृक्षे) शिव उद्यम पटौवाके अर्थात्
हरमरे भोगशायिनी के परिपूर्ण सकारणपी घृष्टपर (वना)
हृन्निरोध संवयस करेनाका जीवामा (हृद) दिम्भ
गुणैवता इन्द्रिबोके जाय (धीपवत्) सकारिक भुञ्जु यो क
वपयोग करता है (अत्र) उद्य संस्तरकरी वृष्टपर
[विश्रुतिः] मनुष्य प्रजावा रक्षक [विद्या] उत्पन्न परमात्ममा
(पुराणम् नः) पुरातन समयके भक्ति करने आएहुए हमारी
(अनुपेक्षति) अनुकूलताके कामवा करता है ।

३ घानेन्द्रिया—यम ।

इहं सावितायै नमोऽस्ति पशून्मा भूकृत्तः ।
अभिमतं ह्यभिरुचिमिच्छते च स्वाधेकं पृथक् ॥

अथ १ । ८ ५९ ॥

हे (चरितः) चरित ! (एवं विद्यन्निहि) इस बातको तु
मही प्रकार समझ कि (यद् यमाः) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा एक
मन के मिश्रकर का नाम है। तथा (एकः एकः) एक जीवात्मा
कोईका ही कर्म केनेवाला है। और (एवं वा एकः एकः)
इनमें जो एक अनेक्य वस्तुओं कोनेवाला है (तस्मिन्) उस
जीवात्मामें ये का मनवाहित ज्ञानेन्द्रियाँ (तु) स्थितके (आधि-
त्य) बलके (इच्छन्ते) चाहती हैं।

४ आचार्य यम ।

मूलोक्तं ब्रह्मचारी यद्विधि विधानम् मूलम् पूर्ण
वसन्त । तमहं ब्रह्मणा तवता भवेत्तत्त्वमेव मेककथा
स्त्रिभिः ॥ अथवा ११२१३ ॥

(यद्) क्योंकि (अहं) मैं (मूलोः ब्रह्मचारी) मूल
या ब्रह्मचारी (चरितः) अतः (मूलम् पूर्ण) प्रामाण्यमें से
पुनः (यमः) यम के लिए अर्थात् आचार्यके विधि (विधि-
यम्) योपपा हुआ आचार्य है । (तं एवं) उस इस पुनःको
(अहं) मैं (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञान (तवता) तपश्चारा भवेत्
भगवद्गारा तथा (भवता मेककथा) एक मेककथा (विधानि)
विधान हैं।

५ वायु यम ।

ममाद्य त्वादिगिरस्वते विमृशत स्नाहा ।

स्नाहा चर्मणः । स्नाहा चर्मः पित्र ॥ अथा १४१२३

इस मंत्रको पठन १४१२३१२३ में स्नाहा है। वहाँ पर
ममाद्य अर्थ विमलादिगिरस्वते ममा है वयाव त्वादिगिरस्वते विमृ-
शते स्नाहेति । अर्थ वे यो कोऽर्थ वकते तस्मा एवैवं ज्ञोति
तस्मादाह यम यन्त्रेण हरिश्चते विमृशत इति ॥ तपश्चारा
इस मंत्रको अर्थ इस प्रकार हुआ (तपश्चरेण आत्मनस्वते ममाद्य
या स्नाहा) तपश्चारा अर्थात् तपस्व कायके लिए तुझे स्नाहा कर
के ही नहीं आहुति हो । (चर्मणः स्नाहा) बलके लिए स्नाहा ।

(चर्मः पित्रे) बल रक्षकके लिए स्नाहा ।

६ सूर्य-यम ।

ममाद्य त्वा ममाद्य त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे ।

वेतस्तथा कविता ममाद्यतपः प्रविश्याः ॥ तपश्चारा
कवितादि योचितरति तपोऽपि अथा १४१३३

इस मंत्रकी व्याख्या करते हुए कतन प्रकल्पने इस मंत्र
काए हुए यमका अर्थ पूर्व किया है। कतन प्रकल्पन यम का
प्रकार है—'य प्रोक्षति यमन स्वेत्येव वे यमोऽयं एव तपसेन हीं
चर्चं यमयत्तेत्येव चर्चं यममेव य प्रकल्पितवेतस्तपसेन हीं
तस्यादाह यमाव लेति ॥ १४१३३॥ यम कतनके इस यम-
मुधार इस मंत्रका अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—(यम
त्वा) सूर्यके लिए तुझे (ममाद्य त्वा) बलके लिए तुझे, (सूर्य
स्य तपसे त्वा) सूर्यके तपके लिए तुझे (कविता देवा त्वा)
कविता यम तुझे (यमा अन्वतु) मनुके मुक्त करे । तू (इति
आः संस्पृशः वाहि) प्रविशके संस्पृश अर्थम् उत्पन्न
तपश्चरेण रक्षा कर। तू (अर्चिः) दीप्तिमान् (अर्चिः) दीप्ति
मान् (इति) इति के लोक करविशका है । (तपा अति) इति के
तपश्चरेण है।

इस प्रकार वहीपर यमको मंत्र तथा वस्तुवस्तु विमृ-
शतस्वते मंत्र ममाद्य होते हैं। यम व विमृशतस्वते यो यो
भी विमृशत स्नापित किए जा सकते हैं वे सब इनमें आ तुझे
हैं। यम व विमृशतस्वते यम विमृशत अत आने संवत्स देव-
यो नही मिलेये इससे आये हम जेहा कि अन्वतर्निर्दिष्ट भी कर
आए हैं यम व विमृशतस्वते यम विमृशत अन्वतर्निर्दिष्ट भी कर
कि यदि कोई मन्त्रार्थ मंत्र विमृशत कि यम य विमृशत व
होमके लक्ष्य ममा होय तो वह भी पाठको के कामसे आ चर्चण ।
यमार्थ विमृशत विचार करने से मन्त्र विमृशत विचार करनेके
लिए व विशेष निर्दिष्ट वस्तुयके लिए वहीत वहावता
विमृशत के कारण है।

वह उष मारिष्य अविज्ञात है । इस मारिष्य सुखकरा पात्रा पठित है क्योंकि जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्य मरेगा ही । इसी मारिष्य और भी अधिक स्पष्ट मन्त्रों के चरारोंसे करते हुए कहा गया है कि इस मारिष्यसे हमारे पूर्वज मर जाएँ और जात प्राणीमात्र भी अपने कर्मनुसार जायगा ।

इस प्रकार इस मंत्रमें यमकोटके जानेके मारिष्य वर्णन है । उष मारिष्य उषको जाना होता है । कोई भी इससे बच नहीं सकता । अतएव यमको पूर्व मंत्रमें ' जगानां लेपमम कहा है । वह मंत्र अथर्ववेदमें (१८।१।५) भी है ।

यमके तृतीय मंत्रसे छठे मंत्र तक गया प्रकरण छह होता हुआ प्रतीय होता है । इन चार मंत्रोंमें यम व अक्षिराप् पितरोंकी चर्चा है ।

मातङ्गी कर्मवैसो अक्षिरापोविहृदस्पतिर्जन्मविहर्ष-
कृषानाः । यौज देवा वायुपुत्रे च यामस्स्वाहात्मने
स्वयमान्मे मन्त्रि ॥ अ. १ । १३।१३

(मातङ्गी) इन् (कर्मः) कर्मोष्ठि (यमः अक्षिरा-
पिः) यम अक्षिरापोष्ठि और (वृहस्पतिः जन्मविहर्षः) वृहस्पति
मन्त्राद्यैरे अर्थात् अर्वाचन्यो ज्ञान एवमेवाज्योष्ठि (वाहयामः)
इन्द्रको प्राप्त होता है । (वायु देवा वायुपुत्रः) विषयक हैतो
बडावा है तथा (ये देवाः) जो देवोंको बडाते हैं उनमें से
(अग्नि) अन्य अर्थात् मातङ्गी यम तथा वृहस्पति (स्वाहा)
वपुष्कार से ही गई हवित्रारा (मन्त्रि) प्रवचन होते हैं
और अन्य छहके कर्म अक्षिराप् तथा यम (स्वयमा)
स्वयमाकर से ही गई हवित्रारा प्रवचन होते हैं । वह मंत्र अथर्व-
वेद (१८।१।५०) में है । वहाँ पर जो कर्तुर्ब पात्र है वह
इस मन्त्रके कर्तुर्ब पात्रसे भिन्न है । अथर्ववेदके पाठानुसार कर्म
अक्षिराप् और है वह स्पष्ट हो जाता है । अथर्ववेद में आए
हुए इस मन्त्रका चौथा पात्र इस प्रकार है—
ये नोऽयन्तु पित
रो हवेतु । अर्थात् मन्त्राष्ट कर्म अक्षिराप् आग्नि जो पितर
है वे हमारी आत्मा करनेपर रखा करें ।

कर्म— पितरोंका कर्मः बहुतसे मंत्रोंमें कर्मके नामसे कहा
गया है । आर अतएव चर्चे को हवि ही जाती है उक्तका
नाम कर्म है । दोषक भिन्न की जाती है हवि हवन के
नामसे कही जाती है । यन्तो हविषोका भव करनेके लिए
पितरोंकी हविषा व वक्त नामसे कहा गया है तथापि कई
स्थानोंपर पितरोंके अन्य हवि समझे भी हव्यका विधान है

ही । यहाँ पर कर्म समझे वक्त नामसे पितरोंके
महान है ।

हर्म यम मस्तर मा हि सीद्वाहिगरोमिः संविदायः ।
आ त्वा मंत्राः कविहस्ता बह्वन्वया राक्षन्विता
माहवस्व ॥ अ. १ । १३।१४

(अक्षिरापोमिः पितुमिः संविदायः) अक्षिराप् पितरोंके
पात्र एकमत हुआ हुआ है यम । ए (हर्म मस्तर) इह मित्तु
कैऽहं ह्युप आचमपर (आचमः) यत् । (त्वा) तुझे (कवि-
हस्ताः मंत्राः) कर्मवर्धनों द्वारा स्तुति किए गए मंत्र (मा
महन्तु) पुकारें । (एवा) इस (हविषा) हवित्रारा
(माहवस्व) प्रवचन हो ।

इस मंत्रमें यमका अक्षिराप् पितरोंके पात्र वक्त में मित्तु
आचमपर बैठानेका वर्णन है । वक्तकी मन्त्रों द्वारा स्तुति कर
के वक्त वक्तमें हवि ही जाती है । वे अक्षिराप् पितर और हैं
इस पर स्वर्ण विचार करेंगे । इस नील चार मंत्रोंके उक्तका
व यमका उक्तका विचार किया गया है । अतएव मंत्रोंके उक्तका
अन्यके मंत्रमें और भी अधिक स्पष्ट किया गया है—

अक्षिरापोमिराप्तिहृदस्पतिर्जन्मविहर्षः माहवस्व
विहवस्वर्षं हुवे वा पितो वेऽस्मिन् वदे वरिष्वा
मिषय ॥ अ. १ । १३।१५

हे यम ! [वेक्येः] मिषिय स्वयमक्ये, [वरिष्वाः]
वक्तके योग्य पूज्योय [अक्षिरापोमिः] अक्षिराप् पितरोंके पात्र
[इह आ पति] इस हमारे वक्तमें आ । वक्तमें आर ही
गई हविष्य काकर [माहवस्व] अन्तर्भवत हो । [विहवस्व
म्] हुवे विहवस्व (पूर्व) को मैं पुकारता हूँ [वा] जो कि विहवस्व-
य [ते पितो] वेरा पितो है । वह विहवस्व [अक्षिराप् वक्त
वरिष्वा आ मिषय] इस वक्तमें आकर आचमपर बैठकर ही
हुई हविष्यो काकर आनन्दित होवे ।

वक्तमें यम व अक्षिराप् पितरोंकी पुकार कर उन्हें हवि ही
जाती है यमका पितो विहवस्व [पूर्व] है उक्त की पात्र
में वक्तमें पुकारा जाता है व हवि जानेके किये ही जाती है ।
अक्षिराप् पितर काका वक्तमें है अर्थात् उनके स्वयम मिष
मिष्य हैं । हव मिन्न मिन्न स्वयमका अन्यके मंत्रमें स्पर्श-
रन किया गया है । वह मंत्र चौदह पञ्चम्यारके अथर्व अथर्ववे-
द [१८।१।५५] में भी आया है ।

अमितासो वा पितरो नवम्या अमर्षाणि युगाय सोम्या-
षा । तेषां नव सुमर्षा यज्ञियावासाभि यज्ञे सौमयज्ञे
स्वाम ॥ अ २ । १२।१६

(॥ अम्याः अमर्षाणिः सूययाः सोम्याः अयिरसः पितरः)
एतरे वयम् अमर्षां युग्य सोमयपायम् करन्याभिं अयिरसु
पितर है । (तेषां यज्ञियावां) यम नवार्हं अयिरसु पितरों की
(सुमर्षे) उद्यम सवर्षोम तथा (यज्ञे सौमयज्ञे) शुभसकल्यो
वै (स्वाम) होवे

देवर्षे वयम् तथा वयम् अमर्ष नईं स्वामोंपर आते हैं ।
मिरकटर नवम्यावर्षे इष्ट मंत्रमें आए हुए नवम्य सवर्षोंके
विशेष विन्म सिद्धि करि है—

वयम्—नवगाययो नववीर्यमययो वा ।

वि १२।१८३

अर्वात् वय प्रजन की यतिवाले अकथा नवनीत अर्वात्
नवम्य की तरह यतिवाले । सवर्षावर्ष अनेके व्याप्तमें इष्ट
सम्यक् अर्ष इष्ट प्रकर करते हैं— नवम्याः अमिमिरीष्टः उद्यम
सुविन्मः । अर्वात् वय मासका उद्यम पाय करने से इनका
नव वयम् है ।

अमर्षा—अमर्षाणोऽमर्षस्वामः यवेतिश्वरि कर्मात्
अतिरेवः । वि १२।१८३

अमर्षे विर अर्वात् विमक प्रकृतिवाक्य होता है । नव-
म्य वयं अर्वात् अर्वात् अर्वात् अर्वात् है । विमक अर्ष है
अयिर नवम्याय । इष्टसे उद्यम अमर्षा-विमक ।

युगा—अर्वात् युगाः संवत्स्रः । युगाः सुवमयाः, न देहे ।
मिर १।१३ युगा अमर्षो यज्ञियावांमि वैवा हुवा वा युगा
अर्षे है जो आनमें युवा हुवा हो विमकी शरीरमें आस्था न
हो । अमर्षाः—सौमय्यविम । विम ॥ जो वयमें अमर्ष

देवर्ष अर्षे है वे सोम्य कहलाते हैं ।

इष्ट प्रकर ॥ विमकीपूर्व यज्ञोक्त ॥ देवैरिष्ट मादयस्व
वे अर्वात् पितरोंकी या देव्य कहा था उसका इष्ट मंत्रमें
तही यम करके विमका है कि अर्वात् पितर देव्य कि
प्रकृति है । मर्षके उत्तरायमें उनकी देव्य यमामें रहने का
प्रकार है । वह मंत्र अमर्ष (१८।१।१८) में तथा वयवे
(१४५) में भी आया हुआ है । यहापर त्रिंशरे मय
के अर्वात् पितरोंकी प्रकृति मारन हुआ था वह यमात्
हो है ।

अथ अर्षे जो मंत्रोंमें अर्वात् ॥ न वे अर्षे में युवाः उद्यी
प्रकरवाक्य मिरैष्ट करते हुए युग्य युग्यकी अमर्षाके वयमाकमें
वर्षा कि पूर्व पितर मय हुए हैं वहां यम व वयमके अर्षे
करके लिए कहा गया है ।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्वभिः नवा याः पूर्व पितरः
परेयुः । उमा राजाना स्वयया मद्यन्ता यम पथ्यासि
वयम् व वयम् ॥ अ १ । १२।१७

हे युग्य युग्य ! (यज्ञ) विम कोकमें (नः पूर्व पितरः)
हमारे पूर्व पितर (परेयुः) मय हुए हैं यम कोकमें
(पूर्वभिः पथिभिः) पथिके मार्गोंद्वारा (प्रेहि प्रेहि) अवर
वा । उस कोकमें आकर (स्वयया मद्यन्ता) स्वयसे आन-
न्दित हाते हुए अथवा तुल्य हाते हुए (उमा राजाना) दोनों
राजा (वय वयम् देव य) वय तथा वयम् वय की (पथ्यासि)
देख ।

इष्ट मंत्रमें प्रथम जो मंत्रोंके माथकी विकृत्यक व्यक्त कर
दिवा है । सबसे प्रथम वहां वह वात पूर्व रूप से स्पष्ट हो
जाती है कि विम कोकमें हमारे पितर मय हुए हैं वह कोक
वयमाक है अथवा यम कोक में वयमाक राजन है क्योंकि वय
उद्यम कोक का राजा है ऐसा उत्तराय में कहा है । दूसरी वय
वय मी स्वयसे तुल्य हाता है वह यहापर स्पष्ट होती है ।
तीसरी वय वयके साथ ही वयम भी रहता है । चौथी वात
वयकोकमें अनेके मार्ग विगुण्य कहलाते हैं । इष्ट प्रकर प्रथ-
म जो मंत्रोंके आथको विम प्रकार अधिक स्पष्ट किया गया
है वह पञ्चक स्पष्ट देख सकते हैं । वह मंत्र पञ्च पाठ्यमर्ष
व साथ अमर्षवेष्ट (१८।१।१८) में भी है ।

अं यद्यस्व विगुभिः सवमवेष्टापूर्वय परमं व्योमम् ।
हिरवावावर्ष पुनस्तमेहि स यद्यस्व उमा सुवर्षाः

अ १ । १२।१८

हे युग्य युग्य ! (परमं व्योमम्) उद्यम व्योममें अर्वात्
वयमें (विगुभिः सवमयम्) पितरोंके व्यम या । (व्योम
यं) वयके साथ या । (यद्यस्व) यद्यस्वके साथ अर्वात्
अपने उत्तरायमें वयमें साथ या । (अयं हिरवा) विमिन
कमोका यमकर के अर्वात् युग्यकोकमें व्यम (युवाः) विर
(अयं एहि) अपने यमके साथ या अथवा युग्य म
केकर आ आर तव (सुवर्षाः) उद्यम तव—इष्ट युग्य
हुवा हुआ गु (तव्य व यद्यस्व) उत्तराय पाय करके

संसारमें विचरण कर ।

इस मंत्रसे हमें ईर्ष्ये बाटे पडा जलती है। सबसे प्रथम वे दोनों मंत्र अर्थात् सातवीं व आठवीं मृत पुरुषको संशोधन करके कहे गए हैं। मंत्रका उत्तराध इस बातकी पूर्णकण्ठे पुष्टि कर रहा है। दूसरी बात स्वर्गमें जानेके लिए पितर तथा वस मृत पुरुष की आत्मा को पृथिवीपर लेने आते हैं। तीसरी बात परमे स्त्रीमन्त्र से वसका पालन शाक है। उसमें अग्रे कर्म करनेवाले जाते हैं। अन्धा वसको कर्म है विभाग है और उसमें कर्मजुगार जीव जाता है। इष्टार्थके साथ आनेवा फलन इसी बात की पुष्टि कर रहा है। इष्टार्थका कथन सिद्ध सिद्धि है—

आग्निहोत्रं तपः ससं वेदानां चापुपाकमम् ।

आतिष्ठ वैश्वदेवं च इहमिहामिपीकते ॥ १ ॥

वसोऽप्यवदन्महिदेवतावत्तमामि च ।

अथवाहाममाराताः पूर्वमिहामिपीकते ॥ २ ॥

अथर्ववेद (१८११५८) में भी यह मंत्र आया हुआ है ।

अपेय भीत मि च सर्वपत्नोऽस्म्य वृत् पितरो कोक ममन् । अहामिरात्रिरतुमिष्यकं वमो वृद्धमवसान मस्मि ॥

अ १ ११०१२३

(अथ इत्) दे विष्णुकारी जगो ! वहाते जाने जाओ । (भीत) माय जाओ । (मि सर्वपत्नः) सर्वका वह स्वान कोकर इत जाओ । (अस्मै) इस त्रेतके लिए (पितरः) पितरोंने (एनं कोकं अकन्) वह स्वान किया है । (अस्मै) इस मृतके लिए (वमः) वमने (अहोमिः) हिमोंके व (आहोमिः) पेय जगते तथा (अस्तुमिः) रात्रिकोंके [व्यक्त अवसान] स्पष्ट समाप्ति [वराण्] हो है ।

इस मंत्रम अर्थ अस्ति किना के लिए स्वान को पितर निर्धारित करते हैं ऐसा उल्लेख है । वहां अरीरके प्रयोगके लिए व अमर वाएय वम है । उत्तरार्थमें यह स्पष्ट कहा है कि इसका लिए अथ रिव रात आह भी समाप्ति हो चुकी है अर्थात् तब मर गया है । अब पूर्वार्थजुगार करने पर पितर इसके लिए स्वान वनात हैं इसके को ही अमिश्राव हो सकते हैं— [१] वा तो जो पितर स्वान वमते हैं वह स्वप्न भूमिमा हा वकता है अथवा [२] वह वमनाकष हो वकता है । व वृद्धा विद्वन् मया वाए तो इसके वमनाकष वावाक प्रकाश अथवा वक वकता है और वह वह कि ऐसा उत्तरार्थवि रथाय है वमनाकषे दिन व रात नहीं होते और वहां जग भी नहीं है ।

अवसान = समाप्ति । यह मंत्र अथर्ववेद [१८११५९] में भी है ।

अथ वमके इत को आर्वाक वर्मन अस्मै तीन मंत्रोंमें अथात् मंत्र १ से लेकर १२ तक में है ।

अति म्रम सारमेयी आनी चतुराही चवकी धाव्य पया । अथा विष्णुमहाविहर्त्री उपेहि वनेम वे वम माए मवस्थि ॥

अ १ ११०११ ॥

हे विष्णुकीकमें जाते हुए वम । [चारमेयी चतुराही] अथ वेव चार आर्वाकके [चवकी] धितकमरे [वनी] हो कुतोके [अति] वचकरके [सधुना पया] कलानकरी उत्तम मार्गके [इव] जा । [अथ] तब [अतिमम विष्णु] उत्तम वम वा कानके मुक्त पितरोंके [वप इति] प्रस हो । [वे] जो कि पितर [वमेन वचमार्ग मवस्थि] वमके साथ आवस्थित होते हुए वस हाते हैं ।

छारमेक— सावनावासीने छारमेवका अर्थ किना है कि चरमा वमकी रेवोंकी कुती है । वचक वना चारमेव । कला कथ्य वपकी वावते अम करमेव ववता है विष्णु वर्म है वट्ट वीववेवाही । उचक पुत्र चारमेव । छारमेवका अर्थ हुआ वट्ट वीववेवाक्य का पुत्र । मौकिक छारमेव चारमेव का अर्थ कुता वपस्थि है । वमके कुतोंका वर्णन इस मंत्रमें किना गया है । चवकी चार आर्वाके हैं, तथा वितकमरे वच हैं । इस मंत्रमें वम व पितरोंका वमन भी स्पष्ट हो रहा है । अमके मंत्रमें वमके कहा गया है कि वे इत भीकके वम कुतोंके कलान तथा आरोग्य प्रदान करे ।

जो वे आनी वम रक्षितारी चतुराही वचकी वचक हो । वावमामेव परि देहि वावक् अति वावम अमवीवकपेहि ॥

अ १ ११०१११

हे वम । [ते] तेरे [वी] जो [रक्षितारी] रक्षा करनेवाले [चतुराही] चार आर्वाकमें [पितरौ] वचकीक में जानेके मार्गके रक्षा करनेवाले तथा [वचकौ] वचकोंके देखनेवाले [वानी] हो कुते हैं, हे वावक् ! [वा-व] वम दोनों कुतों द्वारा [एनं] इस मंत्रके [स्वरित] कला व [वहि] प्रदान कर । [व] और [चरमे] इस मंत्रके लिए [अनमार्ग] रोमरहितता अर्थात् आत्म [धर्म] प्राप्त कर । इसे भीरोवी वम ।

इस मंत्रमें जीवन पुनर्जन्मके लिए वमके कुतोंके कला व आरोग्य दाना गया है । यह मंत्र अथर्ववेद (१८१११९) में है ।

अमृतमसुपुषा बहुमन्त्रो यमस्य ह्यो चरती जनीं अमुः
गवस्मभ्य दद्यावे सुर्वाय पुनर्वातामसुमधश्च अमृतम् ॥
५ १ ११११२

(वस्मन्त्रो) यमनी वाक्यात्, (अमुपुषी) प्राणैक कावेसे
ह्य होमके (अमुपुषी) विस्तृत वस्मन्त्रके अर्थात् अस्मत्
वस्मन् (यमस्य ह्यो) यमके ह्य उपरोक्त दोनों कुतो (जनीं
अमुः चरती) अमुपुषी पीछ पीछे बिचरन करते हैं । (ती)
इस प्रकारसे वे यमपुत्र कुतो (अस्मभ्य) हमारे शिष्य (सुर्वाय
रक्षते) धर्मके रक्षार्थ अर्थात् इस कोषमें जीवन धारण कर-
के किए (यय) जाय (इह) इस संसारमें (भद्र अर्घं)
सम्पन्नके हेतुके प्राप्ति (पुनः) फिर (चरती) देवें ।

इस मंत्रमें यमके कुतोका ओकाका और अधिक वर्णन हमें
मिलता है । वे यमनी वाक्यात् प्राणैकी काकर पुत्र होनेवाले
जनीं वस्मन्त्रो हैं । वे सर्वथा अमुपुषी पीछे चले रहते
हैं । इसी श्रुतिसे आठवें मंत्रमें हम देख आए हैं कि वही पुन-
र्वातामस्य मिथ्या है । इस मंत्रका उत्तराश्रम भी पुनर्वातामस्य
विस्तृत निर्देश कर रहा है 'सुर्वाय वृक्षाय ये देवा पता वसता
हे कि संवत्सः ॥५॥ कोषमें रहकर ही सुर्वर्धन हो सकता है
कमल नहीं । यह मंत्र भी अमरवेद (१०१२११२) में है ।
यमके कुतो पर अधिक प्रकाश जाकनेके लिए हम प्रसंगवश
वर्ष ८११५ को उद्धृत करते हैं जिससे कि यमके इतना
विस्तृत अस्मन्त्रो को कि हम आगे हेतुका हैं, समझनेमें
सुविधा हो सकेगी ।

विस्तृतः सः सा धनकश्च मेविषो यमस्य नौ पथिरक्षी
भ्यो । अर्वाभिहि मा विहीम्वा । मा विहाः पराकमयाः ॥
अथर्व८१११५

(सः) कला (न) और (सवः) विस्तृतः ॥ ५
(ती) यो (यमस्य) यमके (पथिरक्षी) यमकोकके धार-
की का अनेकके (धानो) कुतो हैं वे (ला) तुम (मा)
मम दान वृक्षयें । (मनीं चरति) तु हमारे अमुपुषा जा ।
(न विहीम्वा) विहा मम ही अर्थात् हमें छोड़कर चले जाय
ये पथिरक्ष मम कर । (अत्र) वही इस संसारमें (वराहमनीः)
विहा विस्तृत होकर (मा विहाः) मम स्थिर हो । अर्थात्
हमारे वराहीन ह्यि वारण मम कर ।

इस मंत्रके पूर्वमें यमके कुतीका वस्मन्त्र दर्शाया है । इनमेंसे
११५५ है वृक्षविस्तृतः । इस प्रकार १ नें यमके १२वें

मंत्रतकमें तथा ॥५॥ अमरवेदके मंत्रमें जा यमके आशेषके लिए विशेष
वच प्रयुक्त किए गए हैं उनसे ऐसा पता चलता है कि आश्विनके
रूपसे दिन व रात का वर्णन इन मंत्रोंमें है । यमके दोनों कुतो
दिन व रात हैं काका कुता रात है व विस्तृतः कुता दिन है ।

इस अमृतमस्य आधार ॥५॥ मंत्रोंमें कुतोंके लिए प्रयुक्त हुए
हिए विशेषण हैं । हम चाय काय विशेषणोंके आधार पर पाठ
कोसे वपुर्गुक्त अमृतमस्य विवरण करायेंगे । यमके आशेषके
लिए कहा है कि (यमस्य अमुपुषः) अर्थात् वे अमुपुषीके
पीछ पीछे प्राणपहरणके लिए लगे हुए विचरन कर रहे हैं ।
ज्यों ज्यों रात व दिन गुजरते जाते हैं ज्यों ज्यों अमुपुषी आमु
क्षीक होती जाती है । और एक दिन व रात आनी है जो
अमुपुष्य प्राप्त हो जाता है । दिन यह रात सार्वभौम यो है,
क्योंकि जवही कभी आकर चले जाते हैं । वे रातक अर्थात्
विस्तृतके भी हैं । दिन घटते है व रात काकी है इस प्रसर
दोनों मिश्रकर सवः हैं । वे वृक्षय अर्थात् अमुपुषीके देखने
वाले भी हैं । वे अमुपुष अर्थात् प्राणोंको काकर पुत्र शम्भवा
हैं । जबतक रातीसे प्राण नहीं छूटता तबतक अमुपुषके साथ
दिन रात लगे ही हुए हैं । प्राण छूटे कि दिन रात लगेके लिए
समस्त हुए । लगेके प्राणोंके लिए ही मांको दिन रात पीछ पीछे
लगे हुए वे व प्राण मिले कि वह अमुपुषको हीन रातक ईश्वर
पुत्र । वही पर एक और भी बात उठ सकती है कि और
यह वह कि ध्यान धर्मके ही वही यमके ह्य कुतोका उल्लेख
किया गया । क्या कुतके वाचक अमृत घटते नहीं हैं । परंतु
पाठकोके वही पर ध्यानसे रचना यहिए कि वह ध्यान धर्म
हमारी उपरोक्त वस्मन्त्राध विहा रह करता है । य व घटनेके
अर्थ पर विचार करनेसे उपरोक्त काकाका उल्लेख विहा की आत्मा
है पर दिन रातका यमके साथ होनेका रहस्यभी पूर्व करने
लुप्त जाता है । ध्यानका अर्थ है- (धा ॥ धा ॥ धा न-नरी)
जो आनेवाली कर्ममें नहीं रहने अर्थात् जो भाव छो दे पर
नक न रहेगा । पाठक देख सकते हैं कि वह अर्थ पूर्व करने
दिन व रात पर पड़ रहा है । जो दिन व रात जाय है वे ही
किर नुसार कोटकर कम नहीं जाय । इस प्रकार आश्विनके
वर्षमेंसे यमके ह्य ध्यान दिन और रात हैं ।

वहीपर यमके इष्टविस्तृत प्रकरण समस्त रात है । अथ
आश्विन मंत्रोंमें अथात् ११ व १२ मंत्रमें यमके मिर
हयि देवे वक्ष करने आदिवा ॥५॥ है ।

यमाव सोमं सयुत यमाव जुहुता इति ।

यमं ह यज्ञो मध्यमाग्निद्वयोऽभिरुक्तः ॥

अ० १ १५१११॥

(यमाव सोमं सयुत) यमके लिए यज्ञमें सोमको गियो सो । (यमाव इति जुहुत) यमके लिए इति प्रशस्ति करा ।

(अरुक्तः) यमा प्रकारके इन्द्रोके काष्ठसे या यमरुक्त किया हुआ (यमिदृशा मयिके अपना पृथ बना करके) (ह) निश्चयसे (यज्ञः) यज्ञ (यम मध्यमि) यमको प्राप्त होता है ।

यमके लिए सोम, इति आदि यज्ञमें देवे पढ़िए । यज्ञ यमके निश्चयसे प्राप्त होता है ।

यह मंत्र बोधसे पाठ्यस्तरके साथ अन्वयेष्ट [१८१११] में है ।

यमाव जुतवद्विजुहोत म य ऽभिष्ठत ।

स वो देवेभ्यो यमाद् दीर्घांशुः प्रवीणसे ॥

अ० १ १५११२॥

[यमाव] यमके लिए [जुतवद् इति] जीवाधी इति [जुहोत] प्रशस्ति करो । और इति केकर [ऽभिष्ठत] ऽभिष्ठतसे प्राप्त करो यमवा दीर्घ ऽभिष्ठत प्राप्त करो । [सः] यह यम [प्रवीणसे] अच्छी प्रकारसे जीवके लिए [देवेभ्यु] देवोंमें [यः] हमें [दीर्घांशुः] लम्बी आहुति [या यमाद्] देवे ।

यमके लिए जीव अभिष्ठत इति देव ऽभिष्ठत या दीर्घ ऽभिष्ठत प्राप्त करो । यमके इति देवेष्ट यह यमसे दीर्घांशु पृथा है । यह मंत्र भी अन्वयेष्ट [१८१११] में कुछ पाठ्यस्तरके साथ आया है ।

[मियन्वी— ऽभिष्ठत — ऐषा प्रवीण होता है कि यमके लिए जीवाधी ऽभिष्ठत देवेष्ट मध्यमकी ऽभिष्ठतिक म पार ऽभिष्ठतिक सिद्धि बरदाह है । अक्षय्य है ।]

यमाव मधुमधर्म राज इन्वी जुहोतव ।

इह यम ऋषिभ्यः पूजयन्वाः पवित्रयन्वाः ॥

अ० १ १५११३॥

[यमाव राज] यम राजाके लिए [मधुमधर्म इन्वी] अत्यन्त मधुर इन्वी [जुहोतव] प्रशस्ति करो । [पवित्रयन्वाः] रक्षा बनायेवासे याम ऽभिष्ठत [पूजयन्वाः] जो यम से पूजे उत्तम हुए हैं व [पूजयन्वाः] इत्यथ पूजके हैं पूजे [ऋषिभ्यः] ऋषियोंके लिए [इह यमाः] यह यमप्रकार है ।

इह मंत्रमें यम राजाके लिए मधुरतम इति वन्दन व आजीव

ऋषिभ्योके लिए यमप्रकार का विधान है । इस प्रकार इस श्राव्य ऋषी यमका वर्णन करके यम ऋषिभ्य मंत्रमें उपलब्ध करके हैं । इस उपलब्धिके मंत्रमें कुछ यम [उर्वरियन्वा पश्चात्तया] का वर्णन है ।

मिक्तुकेभिः पठति बहुर्विकेभिर्गृह्यत ।

मिक्तुप्यागन्त्री कम्पासि सर्वा ता यम आदिता ॥

अ० १ १५११४॥

[एक इह गृह्यत] अथवा ही यह उर्वरियन्वा गृह्यत यम [मिक्तुकेभिः] तमि बहुर्विकेभिः [बहुर्विकेभिः] कर्मों वर्तियों के [पठति] प्राप्त होता है अर्थात् व्याप्य करके स्थित है । [मिक्तुप्यागन्त्री] मिक्तुप्यागन्त्री आदि [ता यम कम्पासि] ये सब कम्पा [यमे] सब मिक्तुप्यागन्त्रीधामाये [अदिता] स्थित हैं ।

यद् वर्णा— पु पुमिनी आर आरणी दिन व रात वे कः वर्तित हैं । पञ्चमाचार्यसे मिक्तुप्यागन्त्री वर्णा वर्णादिभ्य करके किया है । कर्मों वर्तियोंमें यह यम व्यक्त है इत्या अन्वय पथा पठता है । मिक्तुप्यागन्त्री अदिता सर्व उर यम [मिक्तुप्यागन्त्री परमात्मा] में स्थित हैं ।

सर्वार्थमें इस देव रही है कि परमात्माकी मित्र मित्र पृथि वां अपनी स्वतंत्र पथा रखती हुई कर्म कर रही हैं । पूर्व पन्त्र अन्वि विष्णुत आदि कर्मों कर्मि अन्तमें परमात्मामें ही समाधिष्ट होती हैं पृथानि इत्यन्वि अपनी स्वतंत्र पृथानि इनकार नहीं किया जा सकता । अर्थात् ये परमात्माकी कर्मि वां होती हुई जो अपनी स्वतंत्र पथा रखती हुई उरका में कर्म कर रही हैं । ये सब परमात्मामें ही मित्र कर्मि हैं अर्थात् इनके नामसे परमात्मामें ही पथा व महत्तम बोध होता है अथवा कि हमें अ० ११५१४ मंत्र १४ वर्णा रहा है

इन्वी मित्रे बहुमममिमाहुरावो दिन्वा ॥ सुवर्णो यम रमन् । यके अदिता बहुप्रा वदन्त्यसि यमे मातरिवा यमाहुः ॥

अ० ११५१४१५॥

परम्यु इत्यथ अविश्रय यह पृथानि यी कि इन्वि मित्रादि को पथा ही नहीं । इन्वी स्वतंत्र पथा से इनकार करना परमात्मामें मित्र मित्र पृथानि इनकार करवा है । अन्वय मंत्रमें मित्राई यी परमात्मामें मित्र मित्र पृथानिमें यम यी रहते हैं । यमका यमक अन्वि यामु करनेका यह मंत्र विशेष करता है । इस प्रकार इस मन्त्र का यमका वर्णन है यह

परमात्मा को विनाशक शक्ति व मरनेके बाद जीवों की मारना प्रकृतात्मी शक्ति का वर्णन है । वह शक्ति अग्नि वायु जलपृथ्वी तरह अपनी स्वतंत्र छाया रखती है । जिस प्रकार वायु अग्नि की स्वतंत्र छायासे इनकार नहीं किया जा सकता उसे प्रकृति वनकी भी स्वतंत्र छायासे इनकार नहीं किया जा सकता । परमात्मा की मिष्टी शक्तियों में से एक वन कवक शक्ति है जिसका कि वन व स्थिरमें उल्लास किया गया है । यों वह व समस्त से कि वन परमात्मा की शक्तिनोष्ठ मिष्ट शक्ति बलगा ही शक्ति है अतः इस सूक्ष्म जलमें इस जल के विनाशार्थ इस मंत्रसे उपसंहार करते हुए ॥ १॥ १॥ १॥ मंत्र के अन्तर्गत को दर्शाया गया है । इस अन्तिम वनका वह प्रयोगन है कि अन्तिम वन तो वही एक परमात्मा है जो जो पूर्वमें वनका वर्णन है वह वनकी एकेश्वरी शक्ति वर्णन है । हमारे कलाकर्म इसी प्रकार इस मंत्रकी सूक्ष्म शक्ति वर्णन है । वन वह एक स्वतंत्र छायावासी परमात्माकी शक्ति है जो वायु जल अग्नि मिष्ट शक्ति है सूक्ष्म पाठक इस विवेक पर और भी अधिक विचार कर निम्नमें विचार सकते हैं ।

સ્મૃત્યં સુચક્ષ્મ મંત્રધાર સારીસ ।

प्रथम पैग १

१ अर्थात्सुसार अन्वयस्थान १५ निर्णय नम करता है ।

२ वन निवस्थान् (पूर्व) का पुत्र है ।

१ वन को सब जन प्राप्त होते हैं ।

प्रितीय मन्त्र :

३ वष से कम आय में आने के मार्ग की सबसे

प्रथम अध्याय ।

१ समझो के मार्ग से आई भी बच नहीं सकती । अन्धत्व प्रभेद के समझो के अन्धत्व आता पड़ता है ।

१. वषट्कारकर्म हमारे पूर्व पिछर गए हुए हैं ।

सुश्रीव मयत्र ।

* नमः अक्षरम् विदुषं ये बहवः हे ।

बहुर्पे न पश्यन् मंत्रः ।

६. यमः कश्चिन्मृत्पितृणां धाम यद्वर्मे युगाया याता
१।

१ अस्मिन् विषये यथा स्वकथयामहे ।

१० (अ सु भा. की १८)

३. बमके पिता विवस्वान् को भी यहाँमें बुझना पठा है।

पृष्ठ मध्य ।

११ जोरस् पितरोंके मान्य रूप नवाव, भववत्, भुग
भावि हैं ।

सहस्र मंत्र ।

१२ प्रेग रितुलोक (वमलोक) में भेजा जाता है ।

१३. बसन्तऋषिः कस्य कः कुरुषुः एताः ।

१४ वम व धरण स्वाध्यासे आनाश्रित होते हैं ।

आरम्भ मंत्र ।

१५ ग्रेट का वन व पितर केने ग्यत है। वह अपने हृष्यपूर्ण को धाव लकर उनके धाव समझोके में जाता है।

१६ प्रेत यमकोटसे पुनः जायिष लौहता है ।

अथ यत्र ।

१७ स्वस्थानभूमिसे विप्लवकारियों को मनाया जाता है।

१८ कमलकेसरी रिव रात नहीं होते ।

बुद्धम मज्ज ।

१९. हमके दो कुत्ते हैं बिल्ली चार भाई हैं तथा वे स्वर्ग चित्तवारे हैं।

२. मृत आत्मा पितरोंके प्राप्त होती है ।

११ विस्तर समके छाव आलभित हाते है ।

एषः ५३ ।

१३. वसुधै कुरुते मातृभूमिः ।

२१. वे मनुष्योंको सर्वदा देखते रहते हैं ।

प्राप्त मन्त्रः ।

२३. वसक स्वामि अम्मी बाक्याने है ।

२५. प्राणको आरम्भ तुल्य इतिवाक्ये ।

४६ मे इयाव समझे द्यत है।

पूज्य ने मुकुन्दजीके चर्चनेवा पीछे बैठे फिरत रहते हैं ।

१८ ममके दोषों स्वाभाविक एक काल व वृद्ध विन
वृद्ध है ।

२५. श्रमवतः ने जमके दोमों रवाय दिन व राग हैं ।

अथोदयः ॥

१. हमके लिए बहनों को न भिन्न माना जाय। वही बहिन ही जाती है।

११ अग्निदेव अग्न्या यज्ञ बवाकर वरु बमके पास पहुचता है ।

पशुर्दक्ष मंत्र ।

१२ बमके किए धीमिधित इमि दो आती है किध ये कि उत्कृष्ट स्थिति उपकल्प होती है ।

१३ बम देवोंमें अग्निदेव के किए इतिराणा को सीबाहु देखा है ।

पंचदश मंत्र ।

१४ यमराजाके किए अतीव मधुरतम इम्य देखा चाहिये ।

१५ पूर्वम सब अग्निबोध अग्न्य कराना चाहिये ।

षोडश मंत्र ।

१६ उहों उग्निबोधी अहमे ही उह मन्त्र अहमे मन्त्र कर रखा है ।

१७ त्रिपुष्प आदि सब ऊँच भी उही मन्त्र (ऊँच विरा-
मन्त्र-परमार्थः) में स्थित है- बमके अन्तर्गत है ।

२ ऋग्वेद मं० १० सू० १५

इस सूक्तम अक्षित तथा सप्त सोमो पितृपौ बहवो बुक्ताये अक्षित बर्णन है । किंतु मन्त्रमें अक्षित पितरोंके प्रति कथन है व क्षियमें सप्त पितरोंके प्रति वह विवेक प्रत्येक मंत्र स्वर्ण करता है ।

में तथा अक्षुर्वेद (१५४९) में भी आता है ।

इहं पितृभ्यो वमो अस्तवच ये पूर्वाक्षो व उग्रतम ईशु । ये परमिह रजस्वा निषता ये वा मूल पुनश्च वासु सिद्धः ॥ १ ॥ १५१२ ॥

[अक्ष] आत् [पितृभ्यः] पितरोंके किए [इहं वमो अस्तु] वह बमरक्षार ही । किन् पितरों के किए [ये] जो कि [पूर्वाक्षः] पूर्वकाक्षीन पितर [ईशु] स्वर्णके तत् इह है और [ये] जो कि [अग्रतमः] अग्रतम अहमे पितर स्वर्णके मय हुए हैं और [ये] जो कि पितर [पार्ष्णिह रजस्वा] पार्ष्णिह रजस् पर अग्रात् इतिराणा [वा निषताः] स्थित हैं [वा] अग्रात् [ये] जो कि [पूर्व] विषय के [पुनश्च वासु सिद्धः] उत्तम वच वा पुनश्च प्रजाओंमें स्थित हैं ।

प्रातम अहमे अग्रतम अहमे पितर हैं और वा इह वमन पुषिधीअग्न्यर विषयवा हैं अग्रात् उत्तम प्रजापति वमन प्रजाओंमें विषयवा हैं उह वम पितरोंके सिद्ध बमरक्षार है ।

विष्णुसद्विषयमें मनुष्यराजी मादामें पठित है । देवो विष्णु ११२ बुजमन्त्र अर्ध विष्णुमें वक्त देखा किना गया है । विष्णु १२ १२ इह मन्त्रमें सर्व प्रकरके पितरोंका अग्रतम अग्रतम अक्षित, मूल उत्तम किए बमरक्षार का निर्देश है । पूर्वाक्षः अग्रतम प्राचीन अहमे पितर इह वमन पितरों हैं । जो पार्ष्णिह अहमे विषयवा हैं वे हैं । अक्षितमें मिने म् पितर निषते हैं । अग्रात् इहमे विषय के वमों अग्रतम व प्राचीन पितर निषते हैं मूल पितर ही हैं । इहमे वर १५४ बुक्ताये पितरोंको भी बमरक्षार करना चाहिये ।

उगीरताम्वर उत्तराक्ष उत्तमार्थाः पितरः सोम्यासमं अक्षु व ईशुरबुक्ता अग्रतम स्ते बोडकन्तु पितरौ इवेतुः ॥ २ ॥ १५१३ ॥
हे (सोम्यासः) सोम संपादय करनेवाले (अक्षर) निहृष्ट (उत्पद्यः) और अहमे (उत्) तथा (मन्त्रवाः) मन्त्रम (पितरः) पितरों । [उगीरता] उगीरताके प्रज्ञ होवो । [ये अक्षुः] किन् हिंस्र न करनेवाले पितरोंमें [अक्षु ईशुः] प्राग् ५ प्रात किना है अर्थात् जो प्राग्वारी पितर हैं [ये] व [अग्रतमः] उत्तम व बहमे अग्रतमके [पितरः] पितर [इहत्] बुक्ताये जातेवर [वा] हमारा [रजन्तु] रखा करे ।

विषय

सोम्यासः—सोम संपादय करनेवाले ।

अक्षुः—अग्रतमः—अग्रतमः—अग्रतमः ।

उगीरताम्वर उत्तराक्ष । उत्तम अग्रतमके ईर मती मानु । अग्रतम पति करना अर्थात् उग्रतम करना ।

इह मन्त्रमें उत्तम मन्त्रम तथा निहृष्ट पितर अग्रतम उग्रतम करे । हमारे उग्रतमके बुक्ताये अग्रतम हमारा रजन्तु करे ।

अक्षु व ईशुः परमे तत् प्रात होय है कि इह में अक्षित पितरों के प्रागवा को वई है । वह मन्त्र अक्षुर्वेद (१५४१५४)

यह सत्र अक्टूबर (१८११४६) तथा नवम्बर (१९१६८) में भी आया हुआ है ।

भाग सिन्धुसुविह्वलं अविच्छिन्नं तदा ॥ च विच्छिन्नं
 च विच्छिन्नं । अविच्छिन्नं च तदा ॥ सुखस्य भवन्त
 सिन्धुसुविह्वलः ॥ ॥ १ १५५३३

(इतिहास श्रुत्वा) उत्तम यज्ञधर्म विद्वानो (आ
चार्यः) अग्रे प्रकाशं प्रकाशं कृतः । (विष्णोः मया
विष्णोः) ओर सर्वभूतानां परमात्मने न विरोधो
करोति इति कथयितुं शक्तः । (वर्तमानः
विष्णुः) इत्यस्य परं वैदिकोक्तिः किं (स्वयम्)
कथं न (इत्यस्य विष्णुः) उत्तरितं न्यायं तैव विष्णु
कथा (मन्त्रः) देवता इति नानि कथं (ते) मे
विष्णु (इति) इति नानि (आत्मविष्णुः) कथं ।

पञ्चमखण्ड पितरो को व श्रावण परमात्मा के बीर को मैं
 यह करता हूँ। सवाके वाच पञ्च भव को कामेवाके पितरो।
 १४ पञ्च भावो।

उदितः—उदितः कस्याप्रियः । मित्रं अ ६। पा
॥ ३ ॥ ११। उदितः अर्धं मित्रद्वयं यत्र भी है । मित्र
॥ ३ ॥ उदितः = उदित + अर्ध = मित्रः = मित्रका । मयत = म
यतः = यो व मित्रे ।

कहाँ छविबन्धन विद्वत् जगत्सिद्ध से कीवित पितर
 श्रद्धा को है। क्योंकि छविबन्धन पितरोंको तभी प्राप्त किया
 गया है जब कि उनके बहाँ बचने का मन्त्र किया जाये।
 जो मन्त्र कीवित पितरों से ही मिलता है। वह मन्त्र काव्य
 २१ [१८१५५] में तथा मन्त्रों [१९, ५५] में आया
 है।

परिचयः विषयः कर्मवर्गिणो बोद्धव्यः कर्मवर्गः सुखदम् ।
 न वा मयावशाः क्षम्येयान्वा वाः कः कोररपो वृत्तः ॥
 अ १ १२५४

(कर्मणा विचारः) हे धर्मिण्य विद्यते । (अर्वाङ्) हमारे
 अंदे (कते) रक्षणार्थ आभो । (वा) तुम्हारे लिए (इच्छा)
 रखी थी (वक्ष्य) करते हैं कथञ्च (सुवचनम्) प्रीति
 पूर्वक ऐसा करो । (ते) हे तुम (सतमेव अवयव) सम्मान-
 यो रक्षण हे प्राय (भावत) आभा । (अथ) और तब
 (हा) इसे (अथा) आपाहित आचरण, (अ) सम्मान
 और (योः) पुष्पविनोद (वचात) दो ।

वार्धिका सितार हमार। रक्षण करें और उसके घरमें हम
समझ हम्हारे प्रवास द्वारा सत्कार करें। ये हमारे रोम तथा
मनोमें बुर करते हुए हमारा संरक्षण करें।

वर्हिपरा:- वर्हिप् में अपना वर्हिप् पर बैठेबास। विनम्बु में वर्हिप् सभ्य अन्तरिक्ष एवं जलवाणी है। अतीरिमें अक रहता है अतः जलजमी नाम वर्हिप् पद था ऐसा प्रतीत होता है। वर्हिप् = अन्तरिक्ष। विनम्बु ११५० वर्हिप् = जल। विनम्बु- १११२६ अन्तरिक्ष में स्थित रहते ऐसा हमें वेदमंत्रोक्ति (यैसा कि हम पूर्व बर्णन आये हैं) पता चलता है। तदनुसार 'वर्हिपरा' का अर्थ हुआ अन्तरिक्षस्थ स्थित। विनम्बु-१११। में वर्हिपरा महात्वाणी बाकों में भी पठित है। तदनुसार महात्वा स्थित ऐसा भी अर्थ किन्ना का चलता है। वर्हिप् कुसा काव का भी नाम है। तदनुसार इसका अर्थ कुसाकाव के आलमपर बैठेबासके ऐसा भी हो सकता है। वेदों वर्हिप् वरु के लिए भी प्रयुक्त हुआ हुआ है अतः वरु में बैठेबासके ऐसा अर्थ भी हो कर सकते हैं। प्रचलनानुसार स्थित अर्थ केन। वर्हिप्। वर्हिपरा स्थितके विनम्बु विनम्बु नाम अन्तरिक्ष प्रकटित करेंगे।

प्रश्नोः—कमल व रोषार्थ कमल व मवानाम् विषय
 ४११२४॥ अरपः—एषे विषयिणि पात्रावली मयतः॥ विषय
 ४११२४॥ व रपः—अरपः—वापरति । नह मय कुरुष
 (१९१५) में तथा अरपः (१९१५) में भी है ।

वपुःशिरः शिरोमणौ बहिर्भेदु विविधु विवेधु ।
 त आ गमसु त इह सुबलमपि सुबलु वेऽवन्दस्वाधु ॥
 १ ॥ १५/५ ॥

(ते) ने (लोम्बावः) लोम रंधाव करके राखे (वितरः) वितर (विनेषु नाविनेषु) प्रतिकारक बहलक्ष्मी विभिन्नोऽयं उपहृष्टा मुखाय यय है (ते) ने वितर (हृ) इस बहने (आवमन्तु) जायें। (ते अविभ्रवन्तु) ने वितर हमारी प्रार्थनायें भव्य देकर सुनें (अविभ्रवन्तु) हमें उपदेश करें तथा (अस्मि न ते अवन्तु) हमारी ये दशा करें।

वास्तविक जीवन में विचार हमारे बुद्धि और चेतना को । भाव
हमें उपदेश दे, हमारी प्रार्थना को सुने तथा हमारी रक्षा करे ।

बहिष्क- शर्वेषु काम बह्वक्ष है । तस्यै हीनेषाम् । बहिष्क
अर्थात् बह्वक्षवम्भी । कोम्याद्या- वास्तव्यास्यैने निदध्यमे को-
म्याद्या । का अन्ये शोम वा कथायम कर्मदेऽने देवा दिवा

हे । विधिः — मिथिः सेवयिषिठि । निह न ५ । पा ११
न ५ । अर्वाण सुब का मन्त्रार ।

यह मंत्र मन्त्रार्थ (१९१५७) में तथा अथर्ववेद (१८११४५)
में है ।

आप्या आगु दक्षिण्यो दिवसेम नक्षमभि युर्वीत
मिथे । मा हिंसिष्य पितरः केव पित्रो नक्ष कामः
पुष्पला कराम ॥

(मिथे) तुम सब पितरों ! (आगु आर्य) बांया पुत्रका
टेककर (दक्षिणतः निष्क) दाई ओर बैठकर (इयं नक्ष) इस नक्ष
का (अभि युर्वीत) सीधर करो । (पितरः) व पितरों !
(नक्ष वः कामः) तो तुम्हारा अपराध (पुष्पला कराम)
पुष्पला के कारण अर्वाण मनुष्यला के कारण हम करते हैं ऐसे
(नक्ष निष्क) किसी भी अपराध के कारण (मा हिंसिष्य)
हमारी हिंसा मत करो ।

हे पितरों ! दाई ओर बांया पुत्रका टेककर इस नक्षमें बैठो ।
यदि हम मनुष्यों से किसी प्रकारका अपराध अपनाने हो जाए
तो उसके कारण हमारा किला मत करा ।

आगु आर्य — इसका कर्म इससे बांया पुत्रका टेककर
ऐसा किया है जिसका आभारभूत कृतपथ मन्त्राल का भिन्न
वचन है — अर्धेन पितरः प्राण्यार्षिणि । सर्वं नान्वाप्यो-
पादीर्क्षान्नमवीत् इत्यादि । कृतपथ ११४१११ ॥

इस मन्त्रमें किन पितरों का उल्लेख है वे नीचे पितर हैं
ऐसा आचनाजगु ५ प्रतीत होता है । पूत पितर देवहित
होनेसे नक्षमें पुत्रका टेककर नहीं बैठ सकते । देवप्राप्ति पितरोंके
लिए ही यह करना उचित है और देवप्राप्ति पितर नीति पितर
ही हो सकते हैं पूत पितर नहीं । यह मंत्र मन्त्रार्थ (१९१६२)
में तथा अथर्ववेद (१८११५९) में है ।

आसीमातो लक्ष्मीयामुवच्यो रविं चण द्वाष्टुय मर्कानि ।
पुत्रेभ्य पितरस्तव वरुणः प्र वक्ष्यत त इहोय द्वाधात ॥

(अथर्ववेद उपराने आध्यात्म) नक्षमें प्रवीत को गई
अग्निदीप्य नक्ष नक्ष उपाकाओंके समीपमें बैठे हुए अर्वाण नक्षमें
उपासित हुए हुए पितर । (द्वाष्टुय मर्कानि) बांया मनुष्योंके
लिए (रवि वन) धनका दो । (तव) उस शर्वीके (पुत्रे
भ्यः) वन प्रवक्ष्यत पुत्रोंके लिए धनका दान करो । (ते)
व तुम (इह) यहीपर उस बांया व शर्वीके पुत्रोंके लिए

(नक्ष) नक्षमें (द्वाधात) पुत्र करो ।

हे पितरों ! नक्षमें बैठकर जो दान करनेवाला है उसके
लिए तथा उसके पुत्रोंके लिए वन व अक्षय्य दान करते हैं
पुत्र करो ।

अथर्वो — अग्नि निष्क १११५ में अर्वाण विरज देवा कर्म
है, तथापि नक्षीपर प्रकृत प्रकरमें नक्षका कर्म होनेसे नक्षी
रक्षकमें उपाकाओंके हैं। अग्निमान है । अर्वा — नक्ष ।
विष्क ११०४

यह मंत्र अथर्ववेद (१८१११४३) में तथा मन्त्रार्थ
(१९१६३) में आया है ।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्योऽग्निहोत्रे सोमवीथं वशिष्ठाः ।
तेमिर्वीर्यः शरणावो हवींषु सन्धुसन्धिः प्रसिक्तमनु ॥

(ये) अग्नि (वा) हमारे (पूर्वे सम्मन्त्रः) कठिना
पितरः) पुरातन सोम उपासन करनेवाले वशिष्ठ अर्वाण कृत्य
नक्षकोंके पितरों ने (सोमवीथ) सोमपान को नक्षमें (अतः
कहिरे) प्राप्त किया था (तेभिः) उन (वक्ष्यति) वनके
साथ सोमपान करके था इति काले की कर्मका करते हुए वशिष्ठ
पितरोंके साथ (वक्ष्यति) सोमपान करने था इति कालेकी
कर्मका करता हुआ (शरणावः) पितरोंके साथ सम्यक कर
हुआ अर्वाण आगान्धित होता हुआ (वनः) वन (हवींषि)
हविर्भोज्ये (प्रसिक्तमनु) दक्षिणपुत्र (अनु) काले ।

इससे किन पुरातन पितरोंके नक्षमें बैठकर सोमपान किया
था उन पितरोंके साथ जिसकर वन हमारे द्वारा था नहीं इति-
बोधो काले । हमें वन व पितरोंके लिए नक्षमें पर्वति मन्त्रालों
हवि देनी चाहिये ।

वशिष्ठके विष्कमें विष्क किञ्चित् मन्त्रालोंके वचन हैं —

(१) यज्ञे नु अथः तेव वशिष्ठो अथो नक्षतृतो वक्षति तेवो
एव वशिष्ठः ॥ अ ८११११६ (२) तेव ते अथः तेव वशिष्ठः ॥
यो अ ११९ (३) एव (मन्त्रालः) है वशिष्ठः ॥ अ ११
११११६ (४) अथो ते वशिष्ठः कति । अ ८११११६ (५)
य अ नक्षपान (ते प्राणः) नक्ष नक्ष वक्ष्यन्ति एव वशिष्ठः-
बोधोऽस्ति ॥ अ १११११११६ (६) अथो देवता वक्ष्यते ॥
ए १११६ नक्ष वचन अ ११११११६ (७) वक्ष्यते
वशिष्ठः ॥ अ १११११११६

इत वषट्पुण्यर कथित का अर्थ उत्तम वाच करानेवाला
वर्णन वचन आभयवादा ऐश अर्थभी किया जा सकता है ।
यत्तु यम वचन भी है । तदनुसार उत्तम वचनवाले ऐसा अर्थ
भी हो सकता है ।

इस मंत्रके वर्णन से वहाँ मृत पितरोंका उल्लेख है । यम के
यम इति कथेष्टाक पितर ज्योतिष मही हो सकते हैं ।

इस मंत्रके ऊपर इस सूक्तकी समायोक्तवर्ग मृत पितरोंके
वर्णन विरह है । वह मन्त्र यजुर्वेद (१९ । ११) में आया
है ।

मिम ये मर्त्यो (११।१२) में अग्निको पितरोंके साथ वर
में बुझना मना है—

य वायुर्देवता जेहमाना होमाभिवा स्तोमवडाओ
मर्त्यो । आमे वाहि सुविद्वन्मिर्वाह्य सार्वेः कर्मैः
वितुमिर्वाह्यसज्जिः ॥ अ १ । १५।५३

(देवता जेहमाना) देवोंको प्राप्त होते हुए अर्वाच देव
मर्त्य हुए (होमाभिवा) मर्त्योंके जाननेवाले (स्तोमवडाओ)
स्तोत्रोंके करनेवाले (ये) जो पितर (मर्त्यो) अन्तर्गत स्तोत्रोंके
(वगुणः) इस प्रकारकारणसे सर्वथा तर मर्त्य हैं ऐसे (सुविद्व
न वा कर्मैः, कर्मैः कर्मवर्जितः वितुमिः) ज्ञान धर्मवाले अपरा
धमप्राप्त विप्राका अर्वाच वचन कृत्वा (कर्मैः) अन्तर्गत
[कर्मैः] कर्मनाम है पितरोंके उद्देशके ही यह इतिथि उक्तकी
कथनका साथ वचनमें आकर बैठनेवाले पितरोंके साथ (अर्वाच)
एक शब्द (मर्त्य) है अग्नि । वृ (आवाहि) वचनमें आ ।

११।१२ प्राप्त हुए हुए पितरोंकी आग्निसे साथ वचनमें
उपपन्न होता है व अग्नि उन पितरोंके साथ वचनमें आती है
मर्त्यपितर आग्निसे साथ हवारे वचनमें आते हैं ।

यम-वचन । मिमवद्व ११।१२

यम-यम स्तुति । अर्वाच अनेक अर्थ है अर्वाच
यत्तु वरेवचनति । अर्वाच मया मयति वचनवाच्यति । अर्वा
च वचति अर्वाच मृतमिति । अर्वाच वृक्षा मयति
वृक्षा वृक्षमया । मिमवद्व ११।१२ ॥ सुविद्वन्- सुविद्वन्
वितुमिः ११।१२ ॥ इत्यर्थ अथ यम भी है ।
माच अर्वाच ॥

इस मंत्रके ११वा अहमनाम के मारका अन्तर्गत यम
११।१२के १२व क्रिया है । उक्तमें भी आम द्वारा वचनानामे
यत्तु वचनवाच्य हो अथ वचन दिया गया है ।

ये अर्वाचो हविरहो हविषा इत्येव देवैः सारय
वृषावाः । आमे वाहि सहस्य देववर्ग्यो वीः पूर्वः
वितुमिर्वाह्यसज्जिः ॥ अ १ । १५।२ ॥

(ये) जो पितर (अर्वाच) अन्तर्गत (हविषा)
हविषे आनेवाले, (हविषा) हविषी रक्षा करेगात्त तथा
(इत्येव देवैः सारय वृषावाः) जो इन्द्र व देवोंके साथ समान
रथपर आसक्त होते हैं ऐसे (सहस्य देववर्ग्यः) हजारों बार
देवोंके स्तुति दिए गए (वीः वीः) पुत्रजन तथा अन्तर्गत
(यमैः सज्जितः वितुमिः) वचनमें बैठनेवाले पितरोंके साथ (अर्वाच)
है अग्नि । वृ (आवाहि) आ ।

देवोंके साथ एकरवाहक अर्वाच देवोंके साथ विचरण कर
नेवाले पितरोंकी वचनमें अग्नि लाठी है ।

वह मन्त्र पूर्व मंत्रवद्गी आवाच की स्तुति कर रहा है । प्राधान्य
पितर तथा देवोंमें विचरण करनेवाले पितर ज्योतिष पितर वहाँ
हो सकते हैं । इसके सिवाय वहाँ एक और भी महारवर्ग्य वाचक
पता चलता है और वह वह कि मर्त्यके वाच जीव एवम पुन
जन्म वही केवल कर्मका यम सबके सब जीव तो एवम वहाँ
हो जेते । दूसरे स्थलोंमें इसे नू भी कह सकते हैं कि वरात्म
वाची जीवोंका इस कोट्यापी जीवोंका प्रगल्भ बना रहता है ।
वे इस कोटमें आकर वहाँके जीवोंके राज्योंमें दिव्य वदोत हैं व
समय समवधर रक्षा आदिके कार्य भी करते हैं । उनमें हमारे
समाचार वस्तुकायेवाली अग्नि है । अतः जोरित पितरोंकी तरह
जगत्त भी समय समयपर आकर करना चाहिये, ऐसा हबका
अभिप्राय हुआ । इस विषयमें विशेष प्रकाश कर्त्तव्यमान मन्त्रों
मूक्त लेखमें उद्धृत किया जा चुका है । उन मन्त्रपर विशेष
विचार करना जरूरी है ।

अग्निष्वात्ता पितर एव मय्यत सदायहः महक
मुपजीतवा । अथा हवयेने मय नि वार्ति वया रवि
स्यवीर्यं वृषावम ॥ अ १ । १५।११ ॥

हे [गुप्यतया] इतक प्रचारक न करनेवाले
[अग्निष्वात्ता पितर] अग्निष्वात्ता । [११] इस वचनमें
[अन्तरगत] आगे । [सदायहः सदायहः] पर चारों मित्र
होका । [अथ] आर [वार्ति वया रवि] वचन
ही वह हाथका नाम और हमें [सदायहः सदायहः]
सर्व वरा की वरात्तक वरें एवं गुप्यतया वर वदत गुप्त वत ।
ह अग्निष्वात्ता । [अथ] पर चारों आगे । वचनमें गुप्यतया

करोम्यवे वा यई हविषोको जाओ तथा उधेके बरहेमें भीर
धंति वा प्रदान करो ।

सुप्रसीति- विषयी नीति कथम है अर्थात् जो
उत्तम पत्रप्रवर्तक है । वह मंत्र यजुर्वेद [१९।५९] में तथा
अथर्ववेद [१८।३।१३] में भी आया हुआ है ।

त्वमग्र ईक्षितो जातवेदोऽन्वाक् इम्यामि सुप्रसीमि
कृन्मी । प्रायाः विपुल्याः स्ववचा ये अक्षुक्तास्ते त्वं देव
प्रवता हवीमि ॥ अ १।१५।१२३

हे [जातवेदः अग्ने] जातवेदस्त्वमसि । [ईक्षितः त्वं]
स्तुति किंवा पत्रा तु [इम्यामि] इम्योको [सुप्रसीमि कृन्मी]
सुप्रवित पत्राकर [अक्षुक्] बहम कर [विपुल्याः] उन
हव्योको विपुल्ये विपु [प्रायाः] वे । [ये] वे विपु [स्व-
वचा अक्षुक्] उन हव्योको स्ववचके पत्रा काते । [देव] हे
प्रवतमान असि । [त्वं] तू भी [प्रवता हवीमि] भी यई
हविषोको [अग्नि] का ।

अग्निओ स्तुति करनेपर वह विपुल्ये किए हविषो मुप्रवित
पत्राकर के जाती है । और वे जाकर विपुल्यो होती है ताकि वे
जाते ।

इस मंत्रवे ऐसा पत्रा पत्रा है कि यजुस्व विपुल्ये पात्र
हवि पत्रुपानेक्ष घाघन असि है । अतः अग्निहाप यजुस्व विपु
रोओ हवि पत्रुपाना वाहिए ।

जीवित विपुल्यो अग्निहाप हवि देवेके गृति नहीं हो सकती
अतः अग्निहाप हवि पत्र विपुल्यो ही भी आ सकती है और
बलीके द्वारा वे पत्र हो सकते हैं । स्मृक रूपमें विद्यमान हवि
जीवितोके किए उपरोपी है और अग्निहाप स्मृक रूपमें की गई
हवि मुल्योके किए उपरोपी है । इन्में हेतु यह है कि जीवित
विपुल्यो औसिक देव सब अग्निहाप की यई स्मृक रूप हविसे
पत्र नहीं हो। अतः यह पत्र विविधाव ही है । इसके प्रति
स्मृक पत्र विपुल्यो औसिक देव नहीं वे अर्थात् उनके पात्र
स्मृक हविसे प्रदान करनेका एक मात्र घाघन स्मृक शरीर नहीं
है अतः उनके सिद्ध स्मृक हवि निष्पत्त्यो है । पर स्मृक शरीर
के अवशिष्ट हविसे उनके उपरोपीके किए उन्हें स्मृक रूपमें
हवि प्रदिए, जो कि अग्नि हाप उन्हें मिथ सकती है और
उसवे वे पत्र हो सकते हैं । जीवित रूपमें स्मृक शरीर होते
हुए भी स्मृक शरीर विद्यमान रहता है व स्मृक शरीरके भाग
भाग पत्र होत रहता है । स्मृक शरीरको जोरकसे स्मृक

शरीरको भीषा बहुत अक्ष मिथता रहता है, पर स्मृक देवके
अग्रम हो जानेपर स्मृक देवकी स्मृक शरीरके द्वारा जो जोरक
उपक्रम होती भी वह वह ही जाती है । अतः किना देवकी
स्थिति नहीं रह सकती अतएव अग्निहाप स्मृक देवको जोरक
पत्रुपार् जाती है । और नहीं करने प्रतीय होत है कि अग्नि
को अर्पण कहा गया है कि वह पत्र विपुल्ये पात्र हवि के
वाए उनको हवि जानेके क्रिये के वाए, हावनि । इसरी
उपक्रममें अग्नि द्वारा मुप्र विपुल्योके हवि पत्रुपानेका करने
नहीं है कि उनके स्मृक शरीरको अक्ष मिथता रहे । मुप्र
विपुल्यो स्मृक देव साक्ष्यार्थ हविओ मानसकता रहती है
और अतएव देवमें देवे मंत्र हवि उपक्रम होते हैं । इसके
अनुसार इस मंत्रमें मुप्र विपुल्योके करोम्यवे हवि देवका अक्ष
है ऐसा हम मान सकते हैं । यह मंत्र अथर्ववेद
(१८।३।१२) में तथा यजुर्वेद (१९।५९) में भी आया हुआ है ।

वे वेह विपुलो वे व वेह वीक्ष विपु वी व
व व प्रसिध । त्व वेव वति वे जातवेदः ।
स्वपारिष्वेक्ष सुप्रव सुप्रव ॥ अ १।१५।१२ ३

(वे व इह विपुल्यः) जो विपुल्य नहींपर विद्यमान हैं (वे
व व इह) और जो विपुल्य नहींपर विद्यमान नहीं हैं (अथ
व विपुल्य) और किन विपुल्योके हम जाते हैं, (मान व व
प्रसिध) और किन विपुल्योके हम नहीं जाते इस प्रकारके
(वति वे) विपुल्य भी वे विपुल्य हैं उन उनको (त्वं) तु
(वेव) जावती है । (स्वपारिष्वेक्ष) स्वपारिष्वेक्ष (सुप्रव
व) उपम प्रकरके किए हुए वक्त्रोके तु (सुप्रव) प्रीति-
पूर्वक देखन कर ।

जो विपुल्य इस संघारमें निवधान है और जो नहीं है
तथा किनको हम जाते हैं और किनको हम नहीं जाते
अर्थात् जो हमारी कर्मसे भी पाहिके हवि जोहते जाते गए हैं, उन
उन विपुल्योके अग्नि जावती है ।

पूर्व मंत्रमें मुप्र विपुल्योके हविओ मानसकता कनी है वह
प्राप्ति हुए हमने यह भी दर्शाया था कि अग्नि हाप उन्हें
हवि पत्रुपाने में हेतु कहा है । इस मंत्रमें अग्नि द्वारा हवि
पत्रुपानेका पत्रा हेतु दर्शाया गया है और यह वह कि अग्नि
उन प्रकर के विपुल्योके विपुल्यमें परिणम रहती है । अतएव
वही एक ऐसा है कि जो विपुल्योके पात्र जाते वे कही पर भी
हो हवि पत्रुपाना प्राप्ति है । यह पत्रा हेतु है निष्कृति ॥

भारत का ज्ञान हमें पशुपति का वेदमंत्रों में मिलता है।
 यमिपंक्त्या विधेय विधेयम् इति पशुपति न विद्वान् कदा
 कदा, पशुपति वेद सत्यम् है। यह मंत्र बभ्रुवै (१५।
 १०) में है।

ये जगद्गुरुणा ये जगद्गुरुणा सन्ध्या विभः।

सक्यमा मासक्यते । तेभिः स्वरस्य सुधीतिमेतौ

पञ्चाङ्ग तर्क कल्पवृक्ष ॥ अ १ १५५१४०

(वे) को पितर (अग्निहरवाः) अग्नि द्वारा जलाने पर
 है (वे) और को (अग्निहरवाः) अग्नि द्वारा नहीं
 जलाने पर है ऐसे को दोनों प्रकार के पितर (विषः
 अपने स्वयं मादन्ते) धुकोछे बीषमें स्वयंसे भक्षणित
 हो रहे हैं (देम्वा) जब दोनों प्रकारके पितरोंके लिए (स्व
 एव) स्वयं प्रकाशमान अग्नि वा जल (कथावत्) जलानेके
 लक्ष्य (एवं अनुवर्तिते तन्ने कथयस्व) इस प्राणी द्वारा के
 जानेको बतलाये गया ।

विषय अन्वेषितस्वर अग्निद्वारा ज्ञेया यथा है व विषय
अग्निद्वारा नहीं किया गया ऐसे सुकोष्ठों रहनेवाले पितरों
य पुनर्जन्म होता है ।

अधुना— जो प्राचीनरा के जाने जाने। अर्थात्
मित्र बन्धन प्राचीन प्राप्त होता है। यह करीर अस्तु-
रहित है, नो कि प्रत्य मित्रक जानेपर इसका संवादन बन्ध
हो गया है।

अप्रिदग्ध और अनप्रिदग्ध ।

[illegible]

अपिष्वात् ष अनपिष्वात् ।

संयोजक मोहाना महापर अग्निप्राण व अग्निप्राणके
 विरसे विख्यात कही है। उपरोक्त मंत्र (म १ १०५
 १०) नीचे वज्रवेद (१५६) में आया हुआ है। महापर
 या मोहाना पदमय है वह अग्निप्राण व अग्निप्राणके अग्नि-
 शक्ति से स्वयंसे कर होता है। आलोचना पाठ ऊपर हम
 दे दिया है। वज्रवेदका पाठ इस प्रकार है—

वे अभिप्रायः वे अभिप्रायः मध्ये दिवः।

स्वधया माह्वन्ते । तेभ्यः स्वाहासुमीतिमेता

पथावर्णं तन्मै कल्पयामि ॥ षष्ठः २५१५ ॥

हम दोनों यंत्रोंकी तुलना करके पाठकोशों दोनों यंत्रोंमें
कितना बड़ा पाठभेद है वह बात मुमकिनसे पता चल
सकती है। ऋग्वेदस्य मन्त्रमें जहाँ 'अभिदग्धाः' पद है वहाँ
पर वज्रुर्वेदस्य मन्त्र में अभिष्मिताः' ऐसा पद है। और
इसी प्रकार ऋग्वेदके मन्त्र में जहाँ अभिमिदग्धाः है, वहाँ
पर वज्रुर्वेदके मन्त्रमें 'अभिष्मिताः' ऐसा शब्द है। शेष
आय दोनों वेदोंके मन्त्रमें सर्वथा समान है। योनाश कथर व
पुनश्चैव स्थित पदमें है और वह वह कि वज्रुर्वेदस्य मन्त्रमें
अभ्यवसति है और उसके स्थानमें ऋग्वेदमें अभ्यवस्य है।
इसका आभिप्राय यह हुआ कि—

अग्निदग्धाः = अग्निदग्धाः और अग्निदग्धाः =
अग्निदग्धाः अर्थात् जो अग्निदग्धाः अर्थात् है वही अग्नि
दग्धाः अर्थात् है और जो अग्निदग्धाः अर्थात् है वही अग्नि
दग्धाः। अग्निदग्धाः अर्थात् स्पष्ट ही है कि जो अग्निदग्धाः
हुआ हो। अतः अग्निदग्धाः भी अर्थात् हुआ कि या अग्निदग्धाः
नष्ट हुआ हो। इसी प्रकार अग्निदग्धाः अर्थात् है कि जो
अग्निदग्धाः नष्ट हुआ हो। अतः अग्निदग्धाः भी अर्थात्
हुआ कि या अग्निदग्धाः नष्ट हुआ हो।

अग्निष्वात्ताः का विग्रह इह प्रकार है— अग्निवा
त्तायाः काश्रिताः ते अग्निष्वात्ताः । अर्थात् विग्रह अग्निने
कदा क्तिना है शिवदेव अग्निने यथा है नर्वात् विग्रहो
अग्निने आकाश है । इह प्रकार आकाशकाश मी उपरका
कदा का ही गोचर है । अग्निष्वात्ताके अर्वाके विग्रहमें उपरका
का विग्रह क्तिना यथा है—

आमिनिरेण ब्रह्मसम्बन्धसि ते सिद्धोः आम्निष्वाहा ।

\$ 21410 ■

जहाँ तक जिनका अस्ति है, जहाँ तक है, स्थायी जहाँ है वे
 विचार अस्ति-प्रकार कह सकते हैं। इसका वह अस्ति-प्रकार है कि
 जिनका अस्ति-प्रकार अस्ति-प्रकार होता है वे अस्ति-प्रकार विचार
 हैं। अस्ति-प्रकार के बिना अस्ति के विचार के जहाँ का
 अस्ति कोई अस्ति ही नहीं। इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष-प्रकार
 भी उपरोक्त विवेचन को पुष्टि करती है। अतः अस्ति-प्रकार
 जहाँ हुआ कि जिनका अस्ति-प्रकार अस्ति के द्वारा है अतः

अग्निष्वात्त अथ हुआ विधवा अग्निदिशेऽङ्गर अग्निसे नहीं हुआ है। अग्निष्वात्त व अग्निवत्त्व के इस विवेकानुसार उपरोक्त मन्त्रमें मृत पितरों का ही उल्लेख है वह साधित होता है।

संपूर्ण सूक्तका मन्त्रवार सारांश ।

मन्त्र १

१ अग्निवत् पितर संश्रमोर्मे अथवा रक्षार्थ हुआए जानेपर हमारी रक्षा करते हैं।

मन्त्र २

२ प्राचीन अर्वाण्येय पुत्रिरीत्य आदि पितरों के किए समस्कार करना चाहिए।

मन्त्र ३

३ अग्निवत् पितरों को ब्रह्म में बुझाना चाहिए।

मन्त्र ४

४ अग्निवत् पितरों को हमें देवी चाहिए।

५ अग्निवत् पितर हमारे रोग भयादि को दूर करते हैं।

मन्त्र ५

६ पितर ब्रह्ममें आकर हमारी प्रार्थनाओंको सुनते हैं। हमें ब्रह्मदेव देते हैं तथा हमारी रक्षा करते हैं।

मन्त्र ६

७ पितर ब्रह्म में धांवां पुत्रवा देवदेव बैठते हैं व ब्रह्म का स्वीकार करते हैं।

मन्त्र ७

८ पितर ब्रह्म में बैठकर दानी अनुग्रह को व उसके पुत्रोंको

ब्रह्म देते हैं। उसे अथवादि देकर पुत्र करते हैं।

मन्त्र ८

९ सोमपात्र करमवाके पुरातन मृत पितरोंके साथ ब्रह्म अग्निमें जाता है।

मन्त्र ९

१० अग्नि देवत्वको प्राप्त किए हुए नक्षत्रों में बैठनेवाले पितरोंके साथ ब्रह्ममें जाती है।

मन्त्र १०

११ पितर इन्द्र तथा देवोंके साथ समान रूपपर आत्मा होकर निश्चरन करते हैं।

मन्त्र ११

१२ अग्निष्वात्त पितर बुद्धिमान् वरवरमें होते हैं। हमिन जाते हैं व सर्ववीर्यपुत्रोंके वरदाते देते हैं।

मन्त्र १२

१३ अग्नि हमीको सुवर्णित वनावर के जाती है व के आकर पितरोंको आत्माके किए देती है।

मन्त्र १३

१४ जो पितर ब्रह्म में व जो ब्रह्म नहीं हैं। जिन पितरों को हम आनते हैं व जिनको हम नहीं आनते। इत्यदि सर्व प्रकारके पितरोंका अग्नि आनती है।

मन्त्र १४

१५ सुबोधके अर्थमें स्वभावे दृष्ट होनेवाले पितर आदि अग्निवत्त्व हो जाते अग्निवत्त्व ही उनका पुनर्जन्म होता है।

३ ऋग्वेद मं० १० सू० १६

इय सृष्ट्यं विदेवतः ऋतेति संस्कार संवग्नी मंत्रोक्तं कतेक है। इय सृष्ट्यं देवता अग्नि है।

मंत्रमते वि देवो माग्निं सोको माग्निं त्वया

विधिपो मा अग्निवत् । वहा अर्धं कृम्यो

जातवेदोऽग्नेमेवं म हिस्तुवत् सिन्धुः ॥

आ १ १११११०

(अग्ने) हे अग्नि ! (एन मा विरह) इस श्रुतको हम प्रचारके मत जमा कि जिसके इसे विषय ब्रह्म प्रणीत हो।

(मा आन सोन) इसे सोनानु मत्तर । (अस्व त्वं

मा विधिपो) इसकी त्वया अर्वात्तमन्त्रीको मत हैक । इस के शरीरमें विद्यमान त्वया अर्ध आदि को इस प्रकारके जमा दे कि कोई भी मान अर्वात्त व रक्षे पावे । (जातवेदो) हे जातवेदो अग्नि ! (वहा अर्धं कृम्यो) जब दू इस श्रुत को परिपक्व बना दे अर्वात्त एतवता अथवा (अग्ने) त्व (एन) इस श्रुतकी आत्माको (सिन्धुः) अग्निवत्त्व पितरोंके पास देव दे अर्वात्त सिन्धुमेकमें इस श्रुतकी आत्मा ब्रह्म जाव ।

श्रुतवत्त्वके समान अग्निसे कि प्रचारको प्रायवा करने

परिहृय वातस्य इह मंत्रमें लगेक है। इस मंत्रके उत्तरार्थमें एक यक्षपूर्ण वातस्य विरेंस मिलता है और वह यह है कि यक्षक देह धूर्ततया नष्ट नहीं जाती अथवा धूर्ततया नष्ट नहीं होती। तत्पक्ष अत्रमा तत्र देहको छोड़कर स्थानान्तर में नहीं जाती। यह देहके आशपाशही मन्त्रकारी रहती है। यह देहका मोह बड़े खींच रहता है। इस निर्दोशतुसार आत्माको देहसे छिन्न मुक्त करनेके लिए व उसके लिए निर्धारित यज्ञी स्वाभ्यार यीश्रतासे पशुपाशके लिए करारका यीश्र करन करना ही अर्थिक कथन है। क्योंकि अग्निदेहके विनाय कहीरको धूर्ततया सीधे नष्ट करनेका अर्थ कोई सुयम कथान नहीं है।

मंत्रके अनुसार पक्षसे वह भी पता चल रहा है कि मृतज्या कहीरे हुक्म होकर पितृलोकमें जाती है। अग्नि आत्माको पितृलोकमें भेजती है। इस मंत्रके जो यक्षपूर्ण विरेंस मिलते हैं वे भिक्षेय विचारयोग हैं। वह मंत्र अन्वयेवर्द्धमें जोड़के पठनेके लाभ है। (अन्वये १८।१।४)

अर्द्धवरा कसि आवचरोऽन्तेन परि वृत्तात् विमुच्य ।
वरा मन्त्रासमुनी विमेषामया वेदानीं वल्लीर्मवाति ॥
अ १।१९।१०

(वातवेदा) है आतवेदस्य अग्नि । (वरा) उत कर सि) वह तू इस प्रेतको पूर्णतया पक्ष अर्थात् दान कर दे (वरा) तव (पुन विमुच्यः परि वृत्तात्) इसके पितृलोकके लिए भेज दे । (वरा) अब वह प्रेत (पूर्वा अनुमन्त्रते वरकडति) इस प्रेतके वरनको प्राप्त होता है अर्थात् अब इसके प्र व निष्कल पत्नी है (वरा) तव प्राप्तेके निश्चय जानेवर प्रेत (मृत-कहीर) (वेदानीं वल्लीः मवाति) वहीके वरा हो जाता है।

जैसे पितृलोक पूर्णतया दान करके आत्माका पितृलोकमें भेज देती है। अग्निद्वारा हुक्म पुनः हुप हुप कहीरके तरव जाने अपने स्वानमें चल जाता है।

वर्द्धय अन्वयेवर्द्ध (१८।१।९) में भी आया है। इस मन्त्र द्वारा प्रथम मंत्रके उत्तरार्थके अर्थान है। आत्माके पुन कहीरके लिए समय आत्मा कहीरके हुक्म दाती है जिसे कि हम कोटिक अर्थमें मरवा कहते हैं कहीर व आत्मा एक प्रकार से विमाय हा जात है। उन से विमायका अर्थ पनकर कहा होता है अर्थात् वे कहा कहा जाते हैं वह वात

इस मंत्रमें वर्णाई गई है। मंत्रके पूर्वार्थमें आत्माका क्या होता है, वह वर्णाया गया है तथा उत्तरार्थमें कहीरका क्या होता है वह वर्णाया गया है। पूर्वार्थ स्पष्ट है। उत्तरार्थमें कहा गई वातका स्पष्टीकरण अमरका तीसरा मंत्र स्वयं स्पष्ट कर रहा है। यहाँपर धिक् इतना ही कहा गया है कि प्रथम प्राय मित्र्य आते हैं तब वह मृत देह वेनोंके वस हो जाता है। वह पुन देह वेनोंके वस किंच प्रकार हो जाता है इसका स्पष्टीकरण इस प्रकारसे है—

सुप चक्षुगच्छन् वातमज्जमा यो च गच्छ पृथिवीं
च धर्मस्य । अयो वा वरुण यदि तत्र ते हितमो
पपीपु मति विद्या कहीरे य अ १।१९।१०

हे प्रेत । तेरी (चक्षुः पूर्णवच्छन्) आंख सुर्ग को जने। (आत्मा वात) तेरी आत्मा (प्राय) वसु को जाने। और हे प्रेत ! (धर्मस्य) धर्मसे अर्थात् कर्मपुण्यजन्म धर्मसे अथवा पारिवर्षिक तरवोंके धर्मसे अर्थात् जो पारिवर्षिक तरव हैं वे धुधिकमें या मिमें जो जमीन हैं वे जलमें या मिमें इत्यदि प्रकारसे (यो च पृथिवीं च) पुन पृथिवी आकाश या अर्थात् पारिवर्षिक तरव पृथिवीमें या मिमें और या सुकाशका अर्थ हो वह धुधिकमें या मिमें। जहाँ जहाँ जो या अथ तेरे कहीरमें आया हो, वहाँ वहाँ वह वह अथ कहा जाय। (वा) अथवा (अयो वरुण) जलमें जमीन अथ जाने। (यदि तत्र ते हितं) यदि वहाँका धर्म अथ तेरेमें विद्यमान हो। और इन्ही प्रकार अर्वापिबोमें कहीर-खींचे स्थित हो अर्थात् ओषधिका अथ ओषधिमै वस जाने।

मर्याद कहीरमें विद्यमान तरव अपने अपने स्थानवर जहावे आए हुए होते हैं वहाँ जाने जाते हैं। सुप्रसन्न होंके अथ उन वनमें वापिक जाने जाते हैं। हरक देव अपना अपना अथ कहीरका ओषध लेता है। इस प्रकार इस मन्त्रमें मृत्युव मंत्रके अनुसार पक्ष अब देवानी वल्लीर्मवाति का स्पष्टीकरण दिया गया है। वह मन्त्र अन्वयेवर्द्ध (१८।१।१०) में भी आया हुआ है।

अजो मागस्त्वक्वा च तवश्च तं च योचतश्चनु च
ते अर्वाः । वास्तुमिह रमन्तः तदवद्वक्वाभिरुद्व
मुह्यन्तु आकाशम् ॥

अ १।१९।१०

हे अज ! इस प्रेतका जो (अज आया) भय अथ

य अन्म कनेवाका यत्न (आत्मा) है (तं) सप्तको तु (तपसा तपस्व) अपने तपसे तथा। (तं) वच अत्र भाषको (ते घोषिः) तेरी दीप्तिमान् ज्वाला (तपसु) तपसे। (त) वच अत्र भाषको (ते अग्निः) आत्मान तेरी ज्वाला (तपसु) तपसे। और फिर (आतवेदः) है आतवेदसु अग्निः। (वा। ते शिवाः तपः) जो तेरे कर्मानकारी ज्वाला-में कपी तपु अर्थात् करीर हैं (तामि) वच करीरों द्वारा इस अत्र भाषको (मुकुटं शीक) सुकर्म करनेवालोंके ओकमें (वह) प्राप्त कर।

हे अग्नि ! तू इस करीरके अत्र भाष आत्माको अपनी नामगुणविशिष्ट ज्वालाओंसे छुट करके पुनर्लोकेमें ले जा।

जैसा कि हम ऊपर दर्शा जाए हैं कि अनेक करीर जो विमानोंमें विनष्ट हो जाता है, जिससे एक आत्मा जो मृत करीर तथा द्रष्टा भाष अत्र आत्मा है। मृत करीरको क्या करना चाहिये तथा अग्निदाहके अनन्तर वह किंच किंच रूपसे वहां वहां जाता है, वह स्थूल संज्ञके स्पष्ट रूपसे दर्शाया जा चुका है। द्वितीय संज्ञके सूक्ष्मरूपके अत्र भाष आत्माके लिए भी निर्देश किया जा चुका है। इस संज्ञके लक्ष्य विवक्षितवच अर्थात् वा स्वीकरण है। वस्तुतस्तु स्थूल व अतुल्य संज्ञ द्वितीय संज्ञके ही स्वीकरण है। इस संज्ञके भी वही पद्य चला है कि आग्नि ही मृतत्वाको मुक्तोक्ति छेदमें ले जाती है। वह संज्ञ भी अथर्ववेदमें (१८।१।२८) में पाया जाता है।

अथ सूत्र पुनः प्रोक्तुम्यो वस्तु आहुतमग्निं स्वधाभिः ।

आहुतं प्राण उप वतु सवाः शी गच्छतां तस्या आतवेदः ॥

आ. १।१८।५ ॥

(अग्ने) हे अग्नि ! (वा) जो (ते आहुतः) तेरे अवेष्टिक समस्त आहुत किया हुआ (स्वधाभिः) चरिते) रचनाभाव विचारण करता है उसको (पुनः) फिर (प्रोक्तु-वः) पितरोंके लिए लाकर प्राण अर्थात् वह पुनर्जन्म ले। अथवा प्रोक्तु-वः जो वेदकी मातृका भी अर्थात् कर लकते हैं और वह इस प्रकार कि फिर प्रोक्तुमें विद्यमान पितरोंके आकर प्रण उभारने छेद। वामों प्रधाके अर्थात् आत्मा भाव एक ही है। दोनों प्रधाके अर्थात् विरोध नहीं है। इस प्रकार वह पुनर्जन्म किया हुआ (प्रेतः) अथवा सत्त्व (उपगु) दुर्गुविषयों प्राप्त को तथा (आतवेदः) हे अतवेद अर्थात् (तस्या उपगच्छतां) वह अथवा करीर

अभी यांति सत्त्व होने अर्थात् अत्र सत्त्वपरिधि के अत्र वने।

अथवा इस संज्ञका अर्थ विनष्ट स्थिति प्रकट भी किया जा सकता है।

हे अग्नि ! जो मृत पुरुष तेरेमें आनेके लक्षण आहुत किया हुआ स्वधाओंसे विचारण कर रहा है उसे पितरोंके लिए वे अर्थात् उसे प्रोक्तुमें विद्यमान पितरोंके पास लेजा-कर लेज। क्योंकि इस भावके अन्त मंत्र मिलते हैं जिसमें कि अग्निवच मृत को प्रोक्तुमें प्रोक्तुलेख लेज है अर्थात् वह अर्थ भी हो सकता है। वहां वेद अर्थात् वीके वेद वह वही सत्त्व सत्त्व वीर्षावृत्ति प्राप्त हुई हुई वीर्षा वीर्षा जाए। वह संज्ञा सुंदर करीरको प्राप्त करे। इस अर्थात् सुधार मंत्रके पूर्वाभेदे सत्त्व पुरुषके लिए प्रार्थना की गई है व करीरमें सत्त्व पुरुषकी अवेष्टित स्थिति के लिए वीर्षावृत्ति अर्थात् वीर्षावृत्ति लेज है। सत्त्व आत्मा सत्त्व है। 'वेद सत्त्व-अन्तःस्थितः इति। निवृत्त १।१८ इस मंत्रके अन्तिमे एक और विशेष अर्थका ज्ञात वस्तु है और वह वह कि पुरुष अर्थात् कि प्रार्थनाको पितरोंके पास प्रोक्तुमें लेज वी अग्निवच ही है। वह संज्ञ जो वीर्षा वीर्षावृत्ति के अन्त अग्निवच (१८।१।१) में भी पाया हुआ है।

अथे कृष्णः अहुत आहुतोद विरीका अर्थ सत्त्व वा आतवेदः। अग्निवच आतवेदः कृष्णोऽन्तःस्थितः को

आतवेदः आतवेदः ॥ अ. १।१८।१८

हे प्रेत ! (ते) तेरे (वत्) जिस अर्थको (कृष्णः) कृष्ण) काले अविद्यकारी पञ्चमे (आतवेदः) वीर्षा वृत्ति पाई है, (वत्) अथवा (विरीका) सत्त्व आतवेदः) वीर्षा की आतवेदके अहुतको वा, करने वा अर्थकी विवक्षित पञ्चमे वृत्ति वीर्षा प्रोक्तुमें है तो (अग्निः) अग्नि (विवाह) इन वृत्ति वृत्ति लेज (तत्) सत्त्व तेरे अर्थको (अथर्व कृष्णो) ऐक-रहित करे। (ओमः) और ओम भी तेरे सत्त्व अर्थको वीर्षावृत्ति करे। (वा) जो कि वीर्षा (आतवेदः अग्निवच) आतवेदों में प्रार्थित हुआ हुआ है।

आतवेद अग्निवचारी पत्नी वा वीर्षा मन्त्रके अर्थात् अग्नि उपविष्ट विषयुक्त प्राणवत् व अन्तःस्थित अन्तःस्थित वृत्तिवत् व वृत्तिवत् अग्नि व ओम सत्त्व करे। जिसको मृत करीर अर्थात् अग्निवच वीर्षा है अन्तःस्थित अग्निवच अग्निवच वीर्षावृत्ति है अथवा इस संज्ञका अग्निवच अग्निवच वीर्षावृत्ति है अथवा इस संज्ञका अग्निवच अग्निवच वीर्षावृत्ति है,

मंत्रके सम्पूर्ण रूप है। इस प्राणिविधि के विषय में अगोत्रों के प्रति शीघ्र करनी है इसका अतिशय बड़ी प्रतीति होता है कि वह इस प्राणिविधि विपरीत रूप में अपने ऐसा कष्ट देती है कि फिर वह दोष औरों में नहीं जा सकता। तब सबकी महत्त्व में इस प्राणिविधि विपरीत बनने की स्थिति में बचने नहीं पड़े। इस मंत्र में सर्वत्र विपरीत प्राणी व जन्तु हीन जन्तु विपरीत जातों के देह से मने भी शरीर की जा सकती है ऐसा कहा गया है।

अन्नेर्धर्मं परि गोविन्द्यधनं स प्रोक्तं पीबसा मेदया
य । पेया जम्बुहरसा कईपात्रो हरणं विबन्धन
पूर्वकभाते ॥ ॥ १ १६१ ॥

हे श्रुत ! (योगिभिः) पृथगे जल्पन्तं हुरं हुरं (जल्पेन बर्नं)
 क्षमिन्नी पञ्चाशद्वर्षात् क्षम्यते (परि न्यवस्य) अपर्येको नापि
 कोरोते ह्यते । अर्थात् क्षमिन्नी पञ्चाशद्वर्षात् शेषं तु हो
 यतिरुते फि तेषां पूर्णं क्षम्यते बहन् ही सते । (८) बह तु
 (दीर्घा येवम्) अपने क्षम्यते विद्यमान स्थूल त्वरति
 (मोक्ष्यते) अपने आपको क्षम्यकृतित कर । ह्य अपर
 क्षम्यते (इरसा धृत्वा) अपने तेजसे धर्म्य करवेवाय,
 (दाह) प्रपन्न (जर्घायाः) अत्यन्त प्रपन्न हुना हुना
 क्षम्यते (विरस्य) ह्य प्रेतकी विविधक्षम्यते क्षम्यता हुना
 क्षम्यते (स्थ) ह्य (तेव) नहीं (पर्वङ्गवति) इतर
 इतर वसेरेया क्षम्यते पूर्णक्षम्यते अजाकार अस्मान्तेय कर
 क्षम्यते ।

કુરારેનો અભય દુર થી પર્વત શાશાને જાણ્યા પાદિય
પદિ અભય જ્યારે પ્રગ્વલિત હોઈર હશે જાણા જાશે ।
જ્યારે થઈ થી અભય જાને વિના રહ્યો જ પાવે ।

इस वृत्ति के प्रथम संश्रयों अग्नि के कड़ा मक्का है कि वे अग्नि की
तुल्य मान रखें विषयों या शरीरों का अभाव इस श्रेणी की
अग्नि तथा शरीरों के बिना बनाए हुए इतर कबल मल बल
वर्तमान है जसा है। वहाँ पर कड़ा शूल रहने के कारण
इसे हुए मुरखे कड़ा मक्का है कि तुल्य अग्नि की उदात्त कड़ी
इसके अग्नि के व अग्नि के अलग विद्यमान बर्तने अग्नि के अलग
से अलग है, जिसके कि अग्नि मुझे पूर्णता जसा है। संश्रय
अग्नि के यह है कि प्रत्यक्ष पूर्ण रूप के रहने दोष आदि व
इसके कि प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष अग्नि के कड़ा मक्का है। ये २० थी।

वेदमें मौखिक उत्तर पद्यार्थोंके आसानी को सम्बन्ध रखे पने हैं ।
ऐसी निरुद्धमें यो सम्बन्धी व्याख्या । लि. अ. २। पा. १॥

हममये चमस मा वि शिद्धः प्रियो देवावाप्तु
 स्तोभ्यागाम् । एष चक्षत्रतो देवावाप्तुमिह दवा
 वाप्तु मादयन्ते ॥ १ ॥ १९६४ ॥

(अग्ने) हे अग्नि ! (इम यमसं) इस घटीरक्षणी यम
 एको (मा वि विहरः) मत विचलित कर । क्योंकि वह यमस
 (वैशानां यत सोमनां) देखो और सोम संवादन करवैशानो-
 ना (शिवः) प्यारा है । (एषः) वह (यः) जो (यमसः)
 यमस है वह (देवपानः) देवपान है अर्थात् इसमें देवपान
 करने योग्य द्रव्यमें पीते हैं । (तस्मिन्) उस यमसमें (अमुताः
 वैशाः) अमरपणीक वैश (माद्वन्द्वे) एत करके प्रसन्न होते
 हैं ।

यह सरीर हैसकि पान करमेका समस है। यह वैशिका भिन्न है। इसमें देव पात्र करते हैं जगः हे भूमि। इस सरीर-रूपी दुर्वासा मस कर।

जमस- जमना । बहुर्ये जिस पात्रमें सोमरस बनाकर पान किया जाता है उसका नाम जमस है ।

हम इसे सूखे बुझरे व छीसरे मजमें देस जाए हैं कि इस छीसरेस किन प्रकार बेरोहि संभव है। इसके अतिरिक्त स्थान स्थानपर बेरोहि ऐदा बर्नव है। अर्थात्देव १ फाग ५० २ में भी ऐका ही बर्नव है।

[illegible]

कःवाहमसि म दिव्यासि ह् वमरायो = उतु रिपपाहः ।

इदेषाचमित्यतो जायवहा इदम्यो ह्यं यदनु यथातन् ।

1954

(कच्चाई जड़ी सूई पड़ि जाय) सोबनसुख भ-नध दूर
 बिजबाता है । (भयकहा) बाप थ वरन करनरानी वर
 कृतिन (वरपडा : मरपडा) महाका वम पया है उम ।

कोको बली जाये । (इह) बहोपर (अथ इतरः आनवेद्यः प्रजाक्) यह दूसरी कम्पात् अग्निसे भिन्न जातवेदस् अग्नि सर्व कर्मको बधायत् जानती हुई (देवेभ्यः हव्यं वहतु) देवोंके लिए हव्योका बधन करे अर्थात् उन्हें पकड़ाने ।

यह सब बहन करनेवाली अतएव मांसमयूक (कम्पात्) अग्नि फिर अन्तर हमारे घरोंमें स्थापित न आयावे अतः मैं इसे दूर भेज देता हूँ यह वमयोधमें पड़ी जाये । बहोके कार्य संपादन करनेके लिए जातवेदस् अग्नि है । बही देवोंके लिए हव्योका बधन करती रहे ।

इस मंत्रमें कम्पात् अग्निसे वमराजके देवोंमें भेजनेका उद्देश है । इससे ऐसा पता चलता है कि सबबहनभरत यह कम्पात् बल पाई हुई अग्नि पृथिवीकोके वमयोधमें जाती है । प्रथम द्वितीय व तृतीय मंत्रोंके साथ इस मंत्रपर विचार करनेसे यह परिणाम निकलता है कि सबबहके अनन्तर यह कम्पात् अग्नि आत्माको वमयोधकर विपुलोक्तमें न जाती है । एकत्र विद्यमान अग्निसे सबबहन किया जा चुका यह अग्नि फिर देवोंके लिए हव्योके बहनेके लिए अर्थात् यज्ञादि कर्म के लिए बलपुत्र बही रहती यह बात भी इस मंत्रसे स्पष्ट होती है । कम्पात्-कम्प=मांस उसका भावक कम्पात् । निरुध अ ६। पा १। अं १२ ॥ रिप्रमन्त्रः— रिप्रं पयं तत्त्वं योवा । निरुध अ ७। पा १। अं २१ ॥ यह मंत्र मनुष्यैः (१५।१९) में तथा अथर्ववेद (१२।२।८) में भी आता हुआ है ।

यो अग्निः कम्पात् प्रविशेद्यो गो शुद्धमिदं पश्यन्निवरा जातवेदसम । तं हरामि पितृवज्जाय देवं च वर्ममि न्यात् परमे सवस्ये ॥ अ १। १६।११ ॥

(यः कम्पात् अग्निः) यो मांसाकारो अग्नि (इयं इतरं जातवेदसम पश्यन्) इस दूसरी जातवेदस् नामक अग्निसे देखकर (यः पूर्व मानवेद्यः) दुम्हारे घरमें पुत्र नहीं है (तं) उस (देवं) देवीपति—अथान्त प्रजाकामा कम्पात् अग्नि—को (पितृवज्जाय हरामि) पितृवज्जके लिए हरता हूँ हथता हूँ । (यः) यह कम्पात् अग्नि (परमे सवस्ये) परम सपरममें (वर्म) बहको (हव्यात्) प्राप्त करे ।

दुम्हारे घरमें जातवेदस् अग्निसे रहते हुए भी जो कम्पात् अग्नि पुत्र नहीं है उसे मैं दूर करता हूँ तबके समय पितृवज्ज कर दूँगे । यह अग्नि परम लोकमें बहको प्राप्त करती रहे ।

इस मंत्रसे पूर्वके मंत्रमें कम्पात् अग्निसे जो अन्तर वमयोधमें भेजनेका निर्देश है । उस मंत्रसे साथ इस मंत्रकी संनति लगावनेके लिए व लोच इत्यनेके लिए इस मंत्रके ' तं ' हरामि पितृवज्जाय देव । इस लोच परम सवस्य अर्थ ऐसा करके व्याख्ये कि ' पितृवज्ज करनेके लिए उस कम्पात् अग्निकी हथता हूँ । अर्थात् यह कम्पात् अग्नि पितृवज्जके लिए बलपुत्र है । यह तो परम सवस्य जो वमयोध है उसमें पड़ी जाये और वहीं पर अपने मांसको प्राप्त करती रहे । इस प्रकार ॥ ११ मन्त्रका अर्थ पूर्व मंत्रके भावका स्पष्टमें रखते हुए करनेसे दोनों मंत्रोंकी संपत्ति भी जा सफटी है । कम्पात् अग्निवा वर्मोंमें विद्यालयेका व लोच वमयोधमें भेजनेका अतिशय अवसरोंमें संस्तु दूर करनेका अभिप्राय प्रतीत होता है । परम सवस्य — यह बड़ा स्थान जिसमें सब इच्छे रहता है । वहां पर पूर्व मंत्रके साहचर्यसे वमयोध देवा अर्थ है । वेच तो वम लोच भी परम सवस्य है ही । यह मंत्र कुछ पठनेसे ही सवस्येव (१२।१।७) में जाता है ।

इस प्रकार बहोपर कम्पात् अग्निका निवन सम्यक् हो जाता है । अब आयेके मंत्रोंमें अग्निसे प्रति स्थापन कथनका उद्देश है ।

यो अग्निः कम्पादाहवः पितृन् बहयाम्नायः ॥
मेतु हव्याग्नि योषति देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च ॥
अ १। १६।११ ॥

(यः अग्निः) यो अग्नि (कम्पादाहवः) कम्पादा अर्थात् पितृकी हविष बहन करनेवाली है और जो (यदाहवः) बह ना सत्यसे बहनेवाली (पितृन्) पितृकी वमन करती है यह अग्नि (देवेभ्यः पितृभ्यः च हव्याग्नि योषति) देवों और पितृकीके लिए हव्योका प्रपन्न करे अर्थात् यह देवी व पितृकीको को कि मैं दुम्हारे लिए यह हविषे काई हूँ ।

अग्नि पितृको कम्पासे चरदार करती है व खदे सिद्ध तथा देवोंके लिए मनुष्यों द्वारा दी गई हविषोका बधन करती है । कम्प—उस हव्यका भाव है जो कि पितृको खेरनेसे रक्षा जाता है । अतापुत्रा—अत नाम है बह व पश्यता । जो बह व सत्यसे बहनेवाली अवस्था को जन व बहने बहनेवाली ही । यह मंत्र मनुष्यैः (१५।१५) में भी है ।

उद्यन्तस्य वि नीमस्तुकाया अग्निमीमहि ।
उद्यन्तुकाया जा यह पितृन् हविषे लपते ॥
अ १। १६।११ ॥

हे अग्नि ! (उद्यन्तः) तेरी कामना करते हुए हम (त्वा)
 वेदी (निधीमहि) स्थापना करते हैं । और (उद्यन्तः) तेरी
 कामना करते हुए हम (धमिधीमहि) तुझे प्रसीन्ता करते हैं ।
 [उद्यन्] हमारी कामना करती हुई है अग्नि । तू [हविषे
 अग्ने] हविषे आनेके लिए [उद्यन्तः पितृन्] कामना करते
 हुए पितरोंको [आवह] प्राप्त करा-के आ ।

हे अग्नि ! हम यज्ञारिमें तेरी कामना करते हुए तेरी
 स्थापना करें व तुझ प्रस्थापित करें । तू हमारे यज्ञोंमें पितरोंको
 हवि आनेके लिए के आवा कर ।

इस मंत्रमें अग्नि पितरोंको यज्ञारिमें हवि प्रत्युत्पन्न के
 अग्नी है ऐसा हमें विश्वस मिलना है । वह मन्त्र यजुर्वेद
 (१५५) में व अथर्ववेद [१४११५५] में भी आया
 हुआ है । अग्निमें ही सर्वोत्तम स्मरणार्थमयिक उस यज्ञार्थ
 वर्णन मिलेता होता है अर्थात् कि मुझका जन्म हो ।

यं यमग्ने समद्वहस्तसु विर्वापयः पुनः ।

विवाग्व्यज रोहसु पादधूर्वां व्यकृत्वा ॥

आ १ १७६११ ॥

(अग्ने) हे अग्नि ! (य) विश्वमेतको तुझे (समद्वहः)
 बलता है (सं द) बड़े (पुनः) फिर सम्पूर्णतया रहन
 से तुझमें पर (विर्वापय) पुनः वाक । (अय) इस मंत्रके
 अन्तमें स्थापन (विद्यन्तु) कितना जल छिड़कना चाहिए
 कि विश्व (व्यकृत्वा) विविध स्थापनावादी (पादधूर्वां)
 धीमेव धूर्वा पद [रोहसु] अग्ने ।

अग्नेके सम्पूर्णतया रहन हो तुझमेंपर आगमक पुनः वाकना
 चाहिए व यज्ञपर हवता पनी छिड़कना चाहिए कि विश्वके
 विषये यज्ञपर धूर्वा वाक निरुक्त आवा ।

अग्निमेंसे हवता पनी वाककर पुनः वाक चाहिए कि उस
 आग्ने के अतीतपर परिवाक हुआ है वह द्यु हो अग्ने और
 अग्निपुनः माना आकाशमेंसे धूर्वापाद जल बड़े और अतीत
 पनी की वैसी ही करते हीमरी ही आवा । इसके लिए वह भी
 आगमक है कि, जिस स्थानपर एक छत्रके जलना पना
 हो यज्ञपर पुनः पुनः छत्र नहीं जलना चाहिए । इस
 मंत्रमें स्मरणार्थमयिर्वाप्य देविक कल्पना की जा सकती
 है और अग्निमेंसे अतुल्य बलवान समस्तकी स्मरण
 पूजनाक तत्त्वमें पण्डित स्वर्ग विचार कर सकते हैं व
 स्मरणार्थमयिक वारतविक स्वर्गको समझ सकते हैं । इस मन्त्र
 पर मंत्र अग्नेहि विद्यकी समस्त कि प्रकाश ही-य-ए

इस बातपर विशेष प्रकाश वाक रहा है ।

शीतिके शीतिभाववि द्वादिक् द्वादिभाववि ।

मण्डूकवा ३ सु सगम इम स्व १ मि इपव ॥

आ १ ११११३ ॥

(शीति) हे शीतयुक्त ! [शीतिभाववि] हे शीतयुक्त
 संवा ओपाविर्वादी । (द्वादि) हे हविर्त करेवादी
 (द्वादिभाववि) तथा हे आत्मन्वित करेवाके कर्मयुक्त
 यज्ञोपादी प्रविषी । [मण्डूकवा] मण्डूकके छाप [सु
 सगम] अरुणो तह पयत वः अर्थात् तेरे में इतना
 अधिक पाणी हो कि मण्डूक आत्मन्वे तेरे अन्तर रह सके ।
 मण्डूक पाणीवादी अतीतमें रहता है । अतः मण्डूकके छाप
 पयत होवेक अभिप्राय यह है कि अतीत अत्यन्त जलवादी हो ।
 [इम अग्नि सुहव] इस अग्निमें आत्मन्वित कर अर्थात् यह
 पूर्ण रूपसे तेरेपर प्रवर्धित हो सके ।

पूर्व मंत्रके अन्तमनुसार जल छिड़कनेसे प्रविषी का देवा
 स्वरूप ही आवाया यह इस मंत्रमें वर्णित पना है । इस प्रकार
 यह सूक्त यज्ञपर समाप्त होता है । सामान्यतया इस सूक्तमें आग्ने
 विषय विचार किया गया है वह छठक स्वर्ग आन सके होये

सम्पूर्ण सूक्त मंत्रपर सापेक्ष ।

मन्त्र १

१ अग्नि मृत देहको सम्पूर्णतया जला देनेपर आत्माको
 भित्तिको में मारती दे ।

२ इसका अभिप्राय यह हुआ कि जबतक मृत देह रहती
 है तबतक कर्तव्य आत्मा भी नहीं रहती दे ।

मन्त्र २ व ३

३ धीरेधीरे पूर्ण रूपसे जल आनेपर देहके पदक अपने अपने
 स्थानपर पन आते हैं अर्थात् देहके देह अपना अपना
 अर्थ व्यक्त करेगा है । आग्ने मृत्में पन आती
 है अग्नि वायुमें आ मिलते हैं हावदि ।

मन्त्र ४

४ धीरेधीरे जो अग्नि आग आता है उसे अग्नि अपनी
 अन्तर्निध अग्निमेंसे छत्र करके छत्रों के ओझमें के
 आती है ।

मन्त्र ५

५ अग्नि फिर ओजवादा भित्तिके आगम नीरा लाती
 दे व देहके विपरीत अग्नि के अन्तर्पुनः जल
 देता है ।

(यमः) आदित्य (देवैः संविभवे) रविमनेके प्रातः यमन करता है । उपसर्गके प्रातः आनेके विभक्ति ' बहोपर प्रातः' कहते हैं । अन्तर्गत आनेके पद हुआ हुआ है । (अत्र) इस स्थानमें स्थित [विश्वसिः] प्रजापति का प्रकाश वर्ण आदि देवोंके एकत्र और प्रातःकालके एकत्र एकत्र वह आदित्य (पुराणा १) उपरान्त स्तुति करनेवाले हम जोकोई (अनुवेगति) अनुमार्गपूर्वक कामना करता है । अथवा इस स्थानमें स्थित हमारे पूर्व पुरोहितों [अनुवेगति] अनुक्रमसे कामना करता है ।

युवा = बहोपर कि वेद मृत आत्माओं को जोई पक्षान्धको रा करनेके लिए विभक्ति लेती है ।

पिता = यम ।

पुराणों अनुवेगन्त चरन्त प्रातःप्रातः ।

अनुवेगन्तचरन्तः तस्मात् अस्तुहन्तः पुनः ॥

अ १ ११२५१२ ॥

(पुराणान् अनुवेगन्तः) उपरान्त पितरोंके प्रति येरे अनुमन्य करनेकी कामना करते हुए वर्णान्ध हैं । उपरान्त मृत पितरोंके अनुमन्य करके वाणि वमकोमें आने इस प्रकारकी इच्छा करता है (अनुवा पापना चरन्तः) इस पापपूर्ण निष्ठता बुद्धिके प्रातः वर्णान्ध पिता कामनापक्षमें (अनुपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए सुखके स्थिति) सुखके प्रातः वा ' इस प्रकार कहा गया) (अनुपूर्वक) मानविक बुद्धिके बुद्धिके हुए हुए मैंने (विवेकपूर्वक) सबके पहिले देखा । अर्थात् यम मैं अनुपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था देखी हस्त में लय विद्यते सुख पर कहा कि ' मृतके प्रातः वा ' तो मैंने वही अनुक्रमी निष्ठताके वक्षों और देखा और फिर (तस्मात् अस्तुहन्तः) पितरों कामनापक्षका सब मनुष्यों प्रातः करनेकी इच्छा थी । [वाणिभक्त पक्षमें] अथवा [पुराणान्] उपरान्त स्तुति करने-पक्षमें पितरों की अनुक्रमसे कामना करते हुए [चरन्तः] तब और तब के रूपमें सुखोंमें परिभ्रमण करते हुए आदित्य की ओर [अनुवा पापना] इस निष्ठता बुद्धिद्वारा [अनुपूर्वक] निष्ठता करता हुआ कि वह आदित्य कामनापक्षी वस्तु है इस प्रकारके [अनुपूर्वक] मैंने हठिपात किया । अनुपूर्वकपूर्वक सोपानेन करना । [पुनः] अब फिर सब आदित्यकी कामना को कामना हुआ [तस्मात् अस्तुहन्तः] सब आदित्य को स्तुतिद्वारा व परिभ्रमण के जोई द्वारा प्रातः करने की इच्छा करता है ।

यं कुमार नर्ष रघुमन्त्रे मनसाह्वयोः ।

एकेष विद्वत्तः प्राचमपश्यन्नाचि स्थितिः ॥

अ १ ११२५१२ ॥

यधिकेता नामवाचे कुमार को यम इस शब्दाचे व अथवा अथवा के अथवाके अर्थ प्रयत्न करता है— हे कुमार ! [यम] विश्वसुख मना विद्वत्तों कि इससे पहिले ऐसे कभी नहीं देखे और जो [अथवा] पहिले के रहित व [एकेष] एकेष है तो भी [विद्वत्तः प्राच] सर्वत्र प्रदर्शक रूपसे प्रति करता है ऐसे [नर्ष] येरे प्रातः आनेके लिए अनुमन्यमान कभी जिस रथको ऐसे [मनसा अह्वयोः] मन से कामना और वनाकर [अपश्यन्] कर्तव्य अकर्तव्य विभाग को व कामना हुआ उस रूपपर व [अचिन्तितः] अथवा हुआ हुआ है । अपरिचितके पक्षमें-अथवा स्तुति करनेवाले कुमार नामक कविसे आदित्य प्रत्यक्ष हुआ हुआ देह व आत्मा के विवेकको वदना रहा है-हे कुमार अग्नि ! पहले रहित (एकेष) एक प्रातः ईश्वरप्रातः है विद्वत्त ऐसे इस अग्निवर्ण और प्रति करनेवाले शरीरकी विषय रथको अनुमन्यद्वारा द्वारा ऐसे किया है सब शरीरकी रथको मेरा स्वयं व जानने के कारण व कामना हुआ भोगान्धन के स्वयंसे हीकार करता है अर्थात् शरीर से भोग भोगता है ।

यमद्वारा शरीर का निर्माण इस प्रकार से होता है कि प्रकृत तत्त्व मध्ये काम अर्थात् इच्छा उत्पन्न होती है । कामना उत्पन्न होनेपर पुनरात्मक वा अनुप्राप्त्यक काम किया जाता है । और तब कामद्वारा भोग देनेके लिए इस शरीरका आरम्भ होता है । इस प्रकार परंपरागतसे मन का शरीरनिर्माणकत्व है ।

एकेष-एक है ईश विद्वत् । ईश-पुनः ।

इस मन्त्रमें कुमारके प्रति वक्षों उक्ति है ऐसा व अचिन्तित का अर्थ है ।

यं कुमार प्राचर्तको रथं विद्वत्प्रवृत्तिः ।

यं कामानु प्राचर्तय अग्निना कामान्निर्दिष्ट ॥

अ १ ११२५१२ ॥

हे कुमार यधिकेता ! [यं रथं] जिस पूर्वक अचिन्तित रथको जिसमें कि व अथवा दोहर आया है (विद्वत्प्रवृत्तिः कर) देवानी-कर्मों कोई के कारण के अर्थात् अचिन्तित में वे येरे प्रातः (प्राचर्तयः) का आया है (रथं) उस रथका जो कि रथ [यधिके अर्थात्] मोक्ष की तरह तारनेवाली बुद्धि स्थित है वक्षों [काम] पिताद्वारा जो मैं कामनाने (अनु

प्राप्तैः) अनुममन किया है। अर्थात् जब तू भूलोकके सम्पन्न स्त्री रत्नमें बहकर आया तब तेरी रत्नाब्जों सेरा अनुकरण पिता को छान्दवाने किया ।

आदित्य के पक्षमें-अथवा हे कुमार कवि ! तूने जिस छत्ररक्षणी रत्न को बसपर धार होकर छत्रर में प्रवृत्त किया है वह रत्नके पीछे पीछे योनाभिओं के बीचमें छान्द अर्थात् काष्ठ चामादि प्राथम स्तोत्र व [यति] नौका की तरह धारक वेदरक्षणी वाणामे स्थित कर्म इस ओकसे प्रवृत्त होते हैं वहका अनुकरण करत है ।

क। कुमारमन्त्रवर्ण्य को विरचयितवत् ।

क। सिधद्वय को मृगानुदेवी वनामवत् ॥

अ १ १३५१५ ७

[क। कुमारं मन्त्रवर्ण्यं] जिस पुत्रको इस कुमार को कल्पन किया । मित्रा अर्थमें कि सम्पन्न है। इस प्रकारके वाक्य को हमने पाठ मेकनैसाका पिता केस अथवा हो सकता है ? अथवा वह बस जान दो । [क।] जिस पुत्रको इस वाक्य-को हमने पाठ जानेके लिए (रत्न) रत्नको [विरचयितवत्] प्रवृत्त किया । वह भी मूर्ख का, वह प्रसन्न अमिप्रम है । [वना] जिस प्रकारसे वह कुमार [अनुदेवी वनामत्] अनुदेवी होता है [तत्] इस बातके कल्पने को [अथ] इस कल्पने में [न] हर्षे [न स्मिन् मृगात्] जका कोन नहीं है । पहिले हमने पाठ जाकर फिर बहाले बहने कृतमेक वनाम वनाया हुआ भी सुदिमान नहीं कहा जा सकता वह इसका अर्थ है । [आदित्यके पक्षमें] अथवा कुमार नामक कवि अपने सौमित्रमित्रको बालता हुआ अपने अतिरिक्त दूसरेकी छायाको अपनेमन को मित्राभावी कि सम्पन्न के बिकसता है-सुष्ट कुमारको जिस पिताने पैदा किया । मित्रिणे नी नहीं । अथो मित्रा वापतः इति मुस्त्युक्त्यर्थः मी हूँ । और कितने छत्ररक्षक रत्नका संघात्मन किया । मेरे मित्रान वृष्टा गया कब नहीं है और बैठेही अन्तर्निर्वर्ण्य (संघात्मन करने योग्य) का हीना भी अर्थमय है । इस समय सौमित्राभुषण वनामों तब प्रकारको कोन अर्थ हर्षे कब सफाये के जिस प्रकार से कि अनुमान करने योग्य मेरेसे मित्र अन्त्र परार्थ की छाता होते । वह प्रकार भी मुर्वचनीय है ऐसा इसका अर्थ है ।

यथा मन्त्रानुदेवी सतो वनमवावत् । पुरस्तात्तुम्भवावत् पश्चाच्चिरवत् कृतवत् ॥ अ १ १३५१६ ४

(अनुदेवी) मित्राको पीछेसे पुनः वरिष्ठ देने योग्य (वना) जिस प्रकारसे वह कुमार होवे ऐसा (ततः) तब वाक्यवत् पितासे [अर्थ] हमने पाठ जा इस प्रकारके बचने के बर्तमान बचन कि मथिकेताओ समक छान्द जानना चाहिये ' तं है प्रवर्धय अन्तालोति होवाच ' इत्यादि [तै मा ११११४] प्राश्नमें कहा गया बचन उत्पन्न हुआ । (पुरस्तात्) हमने पहिले (पुनः) एक अमक मूलभूत हमने बरको जा वह बचन कवि विस्तृत हुआ हुआ था । अतः उसका परिहार नहीं हो सकता था, इस वास्ते पीछेसे कोनको ओझकर (विरचयितवत्) तब हमने बचकर निष्कल आनेके उपायको पिताने किया । (आदित्यपक्षमें) अथवा [अनुदेवी] अपनेको अनुवात्मन्यात्मस्वकमे मित्र अन्त्र परार्थकी छाता जिस प्रकारसे है उसके गुणानुसार (ततः) तब मायाविधि आयाका [अर्थ] कल्पनविचारका आश मनस्तरन कल्प करनेकी इच्छाका धारन उत्पन्न हुआ । [पुरस्तात्] कविसे पहिली अवस्थामें [पुनः] मूल अन्त्रात्मक मावत्मक धारण ही विस्तृत था । [यत्] तमत् की कल्पिते बाल [विरचयितवत्] तबत अर्थसे तब कारणसे मैत्रिमय अर्थात् वृष्टप्राप्तिमेरेसे स्वकम्पा आकर्षण लक्ष्मणे किया । अर्थात् धारण-वस्तुको कार्य वस्तुके कारणसे जाना । तथा मिष्टीक विचार कदाचि मिष्टीके मित्र नहीं होता तभी प्रकार आदित्य के अनुमहसे अन्त्रमालको प्राप्त मेरा विचार वह प्रत्येक मेरेसे मित्र नहीं है । इस प्रकारके अतिरिक्त मित्राधिक पूर्णके आनेका प्रथमर्थ किया है ।

इह वमस्य सार्वर्षे वैवसाने बहुचरते ।

इयमस्य वमस्ये वाक्कीर्यं दीप्तिः परिष्कृता ॥

अ १ १३५१७ ४

वह [वमस्य] निवन्त्रा अतिरिक्त वा विवन्त्रा के पुत्रका [चरते] स्थान है । जो कि चरन [वैवसाने] बचते] देवों द्वारा बनाया गया है ऐसा कहा जाता है। अथवा वैव अर्थात् पतिमनों का निर्माण-साधन कहा गया है। इस वमको प्रीत्यर्थ [इयं वाक्कीर्यं] वह वाक्कीर्येय वचन-वक्तृता जाता है। अथवा वाक्की वह वाक्कीका नाम है। वह स्तुतिक्रम वाक्की इसकी प्रीत्यर्थ वक्तृता का जाता है। इस प्रकार दोहेपर वह वम स्तुतिमोंके परिष्कृत अर्थात् सोमप्रमाण होता है । ' परिष्कृताः संवर्धयन्तः ' इत्यर्थिसे प्रमाणम् होता है । ' परिष्कृत्य ' इत्यादिसे बात हुआ है। अतिरिक्त इत्यादिसे अतिरिक्त प्रवृत्तिकारण ।

५ ऋग्वेद मं० १० सू० १५४

यह सूक्त अनेक-विध प्रकार विभक्त है। इसमें श्रेष्ठ के कहा गया है कि तू किन किनको प्राप्त हो जेना कि मंत्रोंको देवताके पदोंको स्वर्ग स्था हो जायगा। इस सूक्तका अर्थ विद्वत्साधु भी इहिका समी है। विद्वत्साधु यजमानादिद्वारा बर्तन इसमें प्रतिपादित किया जायगा, अतः ये इस सूक्तके देवता हैं।

लोम एवेभ्यः पवते ध्रुवमेक उपासते ।

भस्म्यो मधु प्रधावति सौमित्रेवापि गच्छताम् ॥

अ १ । १५४।१ ॥

[एवेभ्यः] कर्मोंके लिए [लोमः पवते] लोम रस बहता है। और [एवे] कह [ध्रुव उपासते] आकाशका उपभोग करते हैं। इनके व [वेभ्यः मधु प्रधावति] जिनके लिए मधु वाष्पमे बहता है, [तान् पितृ भवि] हे श्रेष्ठ ! उनके भी व [गच्छताम्] प्राप्त हो।

जिनके लिए क्षेमरस बहता रहता है व भी अन्नका उपभोग करते रहते हैं तथा जिनके लिए मधुकी कुन्मात्र बहती रहती है, ऐसे यजमानोंको हे श्रेष्ठ ! व प्राप्त हो।

कनदास्मिन् अग्निदिग्मा श्रेष्ठो जगमाके प्रति इस सूक्तकी उपासनाके अनुसार उचित संवत्सी आधिकारिक कर्म है।

उपधा ये जगामुष्मात्तपसा ये स्वर्गनुः ।

उपो ये जग्नि महेत्सौमित्रेवापि गच्छताम् ॥

अ १ । १५४।२ ॥

(ये) जो लोक (उपधा) कृष्णवर्णादयः वि जायाविष तप करने करके (जगामुष्मात्) किमी भी प्रधावते कर्मोंके वर पशुपाए या सन्त, जिनको तप मही शता सन्त व (ये) जो लोक (उपधा) तपने करके (जगामुष्मात्) कर्मोंके वर हुए हैं, और (ये) जिन्होंने (महाः तपः) जग्नि महेत्सौमित्रेवापि हे श्रेष्ठ ! इन (तान् पितृ भवि गच्छताम्) तप करनेकी भी तुम्हाकर प्राप्त हो कर्मात् इनमें श्रेष्ठ स्थिति होय।

हे श्रेष्ठ ! जो तपने करके किमी भी प्रधाव पशुधन मही हो सन्त, व भी तप ही के कारण स्वर्गको प्राप्त हुए हुए हैं तथा जिन्होंने यज्ञतप किया है उनको व नही आकर प्राप्त हो।

प्रथम मंत्रमें यज्ञादि कर्मकायका माहात्म्य बर्ता कर श्रेष्ठको प्रार्थनाकी है जायेको कहा है व इस मंत्रमें तपःप्रमाण

११ (अ ध आ की. १८)

विद्वत्साधु तपस्विनीमें जायेको निर्वेद किया गया है।

ये सुप्रवन्त प्रथमेयु द्यागो ये तन्मयः ।

ये वा सप्तसप्तदशित्वस्त्वामिदेवापि गच्छताम् ॥

अ १ । १५४।३ ॥

हे श्रेष्ठ ! (ये द्याग) जो धरतीर पद्म (प्रथमेयु) संघामोंमें (सुप्रवन्त) मुक्त करते हैं और (ये) जो वन घामोंमें (तन्मयः) शरीरोंका ध्यान करते हैं कर्मात् अपने प्राण के श्रेष्ठ हैं (वा) यजमान (ये) जो लोक (सप्तसप्तदशित्वः) इनमें प्राप्त करते हैं (तान् पितृ भवि) इनमें भी व (गच्छताम्) प्राप्त हो।

जो धरतीर पद्म पुरुषोंमें अपने प्राण देकर शरीरोंको प्राप्त हुए हुए हैं, वा जो लोक वाला तप के शक्तोंके देकर अपने को सत्कारमें अमर कर पाए हैं ऐसे जाको को हे प्रधावता। व प्राप्त हो- श्रेष्ठ स्थिति होय।

इस मंत्रमें यह स्थाप होता है कि शक्ती व धरतीर गम भी मनुष्यके पश्चात् सन्त को प्राप्त करते हैं। योंमें हतो वा प्राप्तवि स्वर्ग आदि युद्ध में मरनेके सन्त होती है एव शीतक वाक्-वोकी यह वैदिक सन्त करता है। धरतीरपद्म युद्धमें शरीर क्षाम करनेवाके को परलोक में पुनर् प्राप्त है यह जगत् कोयोंका वया पुण्य इव विद्वत्साधु नम अत्ता है, उक्त विद्याके मनुष्य ऐसे ऐसे वरमंत्र ही हैं।

ये कर्त्तव्ये जगताय जगताय जगतायः ।

तन्मयस्त्वतो वम सौमित्रेवापि गच्छताम् ॥

अ १ । १५४।४ ॥

[व पितृ] और जो [पूर्व] पूर्व पुरुष [जगतायः] जगताय पद्म करनेके अर्थात् यज्ञके नियम नियमपूर्वक कर देना [जगतायः] जगत् वा यज्ञके पुनर् और इहिकी [जगतायः] जगत् व वम के वरके वे, तथा [तपसाः] तपस पुनर् [तपसाः] पूर्व पितरोंको [तान् पितृ भवि] इन तप को श्रेष्ठ है [वम] विद्वत्साधु प्रधावता। व प्राप्त हो।

जो पितर सत्त्वके रक्षक हैं यज्ञादि नियमवशसे करनेवाके हैं तथा तपस्वी हैं ऐसे पितरोंको हे प्रधावता। व परलोकमें आकर प्राप्त हो।

सहजनीयाः कर्मणे ये योपायमिह सुर्वम् ।
अधीन्यपस्वतो वाम तपोनीं अग्नि गच्छताम् ॥

अ. १०१५७।५४

(ये) को (कर्मणः) अंतर्दशी काजी लोक (सहजनीयाः) द्वारा प्रकरोधे नीतिबोधके हैं और को (सुर्वं योपायमिह) इस सुर्वना रहम करते हैं ऐसे (तपस्वताः कर्मणः) तपसे कुछ कर्मनीयों को कि (तपोनाम्) तपसे हैं। अतएव हुए हुए हैं ऐसी को ही वे निजमें स्थित प्रेतात्मा । एवमिति आकर प्राप्त हो ।

को अन्तर्दशी अविजय नामा प्रकारके विज्ञाबोधे परिपूर्ण हैं व को तपस्वी तथा तपसे कर्मणः हुए हुए हैं ऐसीको वे प्रेतात्मा । एव इस लोकसे आकर प्राप्त हो कर्मों आकर ए स्थित हो । किञ्च लोकमें मत्त वा ।

इस सूक्तके मन्त्रोत्तर इतिपाठ करनेसे आचम्यकथा होने पता चलता है कि इस संसारमें रहकर जैसे अर्थात् कि प्रकारके बर्तकों करनेसे प्राप्तुके अन्तर्दशी कर्मणः मत्त कर्मणः लोक वा कर्मणः स्वाम स्वर्ग प्राप्त होता है । इस सूक्तमें ५ मंत्र हैं । पाँचों मन्त्रोंमें मित्र मित्र कर्म करनेवाले लोकोंको भिन्नका बना दे और प्रेतात्मासे कदा बना है कि इस लोकों एव लोकसे आकर प्राप्त कर । अर्थात् इस ५ प्रकारके कर्मोंमेंसे ही किसीको ए आकर प्राप्त हो । इससे हीन इतरोंमें प्राप्त मत हो । वे पाँच प्रकारके कर्म इस लोकके नहीं अग्नि परलोकके हैं ऐसा मंत्रों

से पता चलता है । अतः ' तावन्मिह अग्नि गच्छताम् ' का कर्म वह नहीं किना वा चलता कि इस ५ प्रकारके कर्मोंमेंसे निज कर्ममें आकरके ए पुनर्बन्ध के । अग्निदी प्रीतिसे कि एव सूक्तमें बहुरि अत्राप ताप करना, कर्मार्थं वरकर्मके काम करि प्राप्त करवा नामविजय शान्त करवा अन्तर्दशी इत्यादि कर्मणः कथाए मत्त हैं । वह संपूर्ण सूक्त अन्तर्दशी (अन्तः १८ सूक्त १ मंत्र १५ से १८) में ऐसा का ऐसा है ।

कर्मपूर्ण सूक्तका मंत्राचार आरंभ ।

मंत्र १

१-वह करनेसे वृद्धि कर्मणः लोक प्राप्त होता है ।

मंत्र २

२ तप करनेसे परामन नहीं होता व तपस्वीमें स्वर्ग मिलता है ।

मंत्र ३

३-को संकल्पोंमें मुक्तकर करीर लोकसे हैं, उन्हें भी स्वर्ग कर्मणः होता है ।

४-को अन्तर्दशी काजी हैं वे भी स्वर्गको प्राप्त करते हैं ।

मंत्र ४

५-तपस्वी अन्तर्दशी कर्मणः मत्तका काम करते हैं ।

मंत्र ५

६ हव्यारों प्रकारकी नीतिबोधके व पूर्वकर्म अविजय स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ।

उपसंहार ।

वितुलोक ।

इस प्रकार का आदिसे अन्तर्दशी निरीक्षण करनेसे पता चलता है कि ५ वितुलोक हैं जिनमें कि विवर रहते हैं । इनके नाम इस प्रकार हैं [१] इतिनी [२] अतारिह [३] पुत्रीक [४] विद्याका मुक्त वा वर [५] वितरोंका वर अर्थात् कि देवों प्राचीन काव्यके हमारे पूर्व विवर रहते वाम आए हैं वह वृत्त । इन सब लोकोंमें हमारे विवर विद्याका करते हैं ऐसा हमें इस प्रकार के वृत्त करने ज्ञात होता है ।

वितुलोक ।

वितर जित मार्गके आते हैं उस मार्गका नाम वितुलोक है । इस मार्गके वृत्त तो अति व्यापक है [देखो अ. १।१।७] और वृत्त वह मनुष्य को कि अतिवि आदिबोधके अन्तर्दशी

कर्मका उत्तर रहता है । को मनुष्य देवविदिक है वह कभी भी वितुलोकमार्गको प्राप्त नहीं करता । वह वितुलोकमार्ग ' पूर्व-भिर्ये भी हैं ऐसा अ. १।१.१।७ से पता चलता है । अर्थात् अन्तर्दशी व पुत्रीकमें रहनेवाले विवर इस मार्गके आते हैं देव इससे जान पड़ता है । अतएव ये ५ वितुलोक बर्त आए हैं कर्मोंके इन हो अतारिह व पुत्रीक जानेका मार्ग पूर्वभिर्ये हीनी वरविद । हमने अतएव ऐसा दे कि अग्नि की वितुलोकमार्गका व्यापकी है । हम आगे चलकर वह भी देखेंगे कि अग्नि कर्म प्रकारके वितरोंको पावे वे हमारे जानेके ही वा अतएव हो किसीके कर्मों नहीं पर भी हो जायगी है । इनके कि एव नृपात्त है । इसका अभिप्राय वह मत्त होना है कि इतिनीके अन्तर्दशी व पुत्रीकम वितरोंके पाव व्यापका को वितुलोकमार्ग है, वह

इसकी ही हक तक तो वो। अग्नि ज्ञानेश्वर मार्ग है वह है और
जगत् में वो सुखदिव्यो के ज्ञानेश्वर है वह है ।

पिछरों के कार्य ।

पितरों के बनेक कार्य हैं जिनमें से मुख्य मुख्य कार्य ये हैं—[१] कपुओंसे, सर्पोंसे कुटिल जंतुओं से तथा अन्य वाक्स्थिक आतपिण्डोंसे रक्षा करना, [२] मूर्धप्रकाश देना [३] पातसे छुड़ाना, [४] मुख सेना व कन्वाप करना, [५] घर्मे धारण करना [६] मक्के प्रसारणार्थक व पुनर्वैष्मर्मे घण्टला करना [७] दाना चकारके स्टोम बगला [८] पीपुसेना [९] प्लवक पुनरुज्जीवित करना [देखो अर्थ १८१/१६] इत्यादि ।

पितरौहि प्रवि इमारे कर्तव्य ।

इस विवरण के लिए क्या करना चाहिए जहाँ हमारे विवरणों के प्रति जो कर्तव्य है वे इस प्रकार हैं- [१] जिस प्रति विवरणों को व्यवहृत करने का व्यवहार करना चाहिए। [२] उनको सच देखें। [३] विवरणों का व्यवहार ठीक करना चाहिए। [४] जिस विवरणों का व्यवहार ठीक करना चाहिए, इस विवरणों को अपने देव का १८ वू ४ मंत्र ५० स्वयं निर्वहन करता है। यंत्र इस प्रकार है-

ये न जीवा ये न मृता ये ज्ञाता ये न यमिनाः ।

येम्भो वृषस्य कुम्भैव मधुधातुः पृथ्वी ।

अर्थ यह है। परंतु जब प्रकारके सितोंका बलकाए धर्म बननेका लक्ष्य है। [४] सितोंके धर्म का विकास करना। हमें चाहिए कि हम हमरी अन्तर्मुखी के विकासके विस्तार करने के धर्ममें लगे रहें। परार्थ होकर न हैं। इसादि और भी अनेक धर्म हैं।

पितर और ब्रह्म ।

उन्मेषर विर बहने लगे हैं और बांका कुछ देकर
 चले हैं। वे हमारी प्रार्थनाएं सुनते हैं हमारी प्रार्थनाएं पूर्ण
 करते हैं व सर्वदा हमारी रक्षा करते हैं। वितरोके किए मासिक
 वक करवा पायिए। बहने 'अभिप्राय विर भी लगे हैं।
 लघुके लघु विर भक्त करके हमें वीररूपुक्त बहने देते
 हैं। वरु अ १५५२ तथा लघु १५५५ तथा अ
 १५५५२ के लघु वीर विचारणीय हैं, क्योंकि इनमें वितरोके
 किए वरु व लघुके वरु देवेक विचार्य पाया जाता है। अस्तु।
 तथा विर प्रकाशते इत्यादि पाया अन्वयमेव लघुका है कि सर्व

प्रकारके विवरणके लिए नक़्क़ा बनाना चाहिए व उसको हस्तिलेख बनाना चाहिए। इसके विवाह प्रत्येक मासमें विवरणके लिए नक़्क़ा बनाना चाहिए तथा कि अवधि ८।११।३ व ४ से परा नक़्क़ा है।

जपि भौर सिद्धर ।

हृष प्रकरणको देखनेसे हमें विन्म बाँटोंका स्पष्ट पता चलता है—[१] अग्नि चक्रमें पित्तोंको हविमज्जयाग के अर्पण है । [२] अग्नि पित्तोंको हवि पशुपाती है और अत एव अग्निमज्जयाग कर्मकाइव नी है । पित्तोंके मिमिचसे ही गई हवि कर्म कइकारी है । [३] अग्नि स्रुयत क्षिपे हृष पित्तोंको जलती है इतयादी यही अग्निपुत्र को यहाँ है व को यहाँ यहाँ है और विनका हृष बावते है व यही बावते इन सबको अग्नि जलती है । [४] अग्नि पित्तोंको शिपुकेकमें मिजवाती है । [५] अग्नि मिश्रणमाको पित्तोंके पास पशुपाती है । [देवा अ १ । १३ ग १ और १ । १३ ग १] [६] अग्नि उपा देवी है, ओपिठोंकी आगु बइती है और यरे हृष पित्तोंके काकमें जाते हैं । [अथर् ११ । ११ ग ५] [७] अग्नि पित्तोंमें प्रविष्ट इतिविशुक्त वस्तुओंका बइते घसती है । [८] अग्नि अपने अंदरसे पित्तोंमें प्रवेश करती है ।

कर्मणाह बलि ।

हेमचन्द्रः त्रिषु ज्ञानिषु अन्तर्दिष्टे विमिश्रणेन होय इ तसु
ज्ञानिषु आद्य कर्मण्यारंभेति । इयं प्रकरणं च निम्नलिखित
वाक्येन प्रत्यक्षं कथ्यते—

कम्पास अतिथी बनने के राजमन में भेष दिया जाता है क्योंकि वह हथौड़ी बनने के बहन करने के लिए अनुपयुक्त है। कम्पास अतिथी सर्वत्र कम-मोहते हैं। प्रत्यक्ष प्रसरण भेष आने में प्रयोग होता है। कम्पास अतिथि का कम कम करने किन्तु इसे माय शिकता है। विरार कम्पास अतिथि के वन दक्षिण दिशा में जाते हैं। विरारों के रहने की दक्षिण दिशा है।

अप्रिभृत रिठ ।

अभिप्राय विवर व विवर हैं किनका कि अन्तर्गत ६४५६
अभिप्राय होना है जैसा कि हमें पटवर्ष मध्य २१/११/७५
पत्राचकत है। ६४५६ वाक्य वगैरह १५५६ व १५५७
१५५८ भी पुत्र करते हैं। अभिप्राय विवरों वगैरह पुत्र
वगैरह है इति किन्नाई ज्योती है व उक्त वगैरह माया ज्योती
है। अभिप्राय विवर वगैरह आद्य वगैरह पुत्र होते हैं व उक्त

(अ. १ । १४।१३) यमके किए पुत्रबान्नी हवि देनेसे वह हमें
देवोंमें आसके किए श्रीर्षासु प्रदान करता है। पंच दानव यमके
किए घर बनाते हैं और जो अपने घर बहानोंकी इच्छा रखता
हो उसे यमके किए घर बनवाने चाहिए। (अथर्व १८।४।
५५) इसके सिवाय यमके किए स्वप्न और नमः देने
करिए।

यम और स्वप्न ।

इस प्रकारसे पढ़नेसे हमें यह पता चलता है कि यमका
स्वप्नके साथ बड़ा संलग्न है। स्वप्नकी वरपति केही होती
है इसलिये। इस प्रकारकी विम्व किञ्चित् बातें उल्लेखनीय
हैं—

(१) स्वप्नका पिता यम है अर्थात् यमसे स्वप्नकी उत्पत्ति
होनेसे वह यमका पुत्र है। अतएव गुरे भगवान् स्वप्नोहे मृत्यु
हो जानेकी संभावना बनी रहती है।

(२) स्वप्न यमकेकर्म उत्पन्न होकर बहोते इस लोकमें
जाकर मृत्युमें प्रविष्ट हो पना है।

(३) स्वप्न यमका करण अर्थात् मारनेके कार्यका साधक
है। (अथर्व १।४९।१२)

(४) स्वप्न प्राप्नोतु कर देनेवाला है, मार देनेवाला है।

(५) गुरी मायवाने व अवेकर रोग जो कि विश्वको
बर्ही जाने हैंते वे सब स्वप्न की जवनी कर है।

यम कौन है ?

मनुष्योंमेंसे सबसे प्रथम मनुष्य यम नामवाला जो कि
विवस्वान् का पुत्र था वह इस स्रष्टाके अग्न लेकर सबसे प्रथम
मरा और फिर बहोते मृत्युलोकमें गया और वहाँका राजा बन
पना। (देवो अथर्व १८।१।१३)

यम व पितरोंका घरम्ब

हम पहिले भी इस विषय पर जोसीसी बज्र बाक आए
हैं। बहोपर हमें जो कुछ समझ हुआ है उसकी इस प्रकारमें
विशेष रूपसे पुष्टि की गई है—

(१) यम पितरोंका अधिपति है। (२) पितरोंपर
यमका आधिपत्य राजाके रूपमें है। पितर यमकी प्रजा हैं व
वह सबका राजा है।

यमके राज्यमें पितरोंका उच्च स्थान है ऐसा हमें यम व
पितरोंके सहस्रवर्षोत्सव रस बहोते हैं। उचते हमें पता चलता
है कि पितर यमके साथ हवि खाते हैं। सबसे सामग्री वन्न तत्र
निचरण करते हैं। यम पितरोंकी घरमतिसे स्वर्ग मिलाता है
इसलिये।

मित्र मित्र अर्थमें प्रयुक्त यम।

वर्षीय यमके अर्थको सीधकर विम्व—किञ्चित् अन्य
अर्थोंमें भी यम शब्द वेदोंमें प्रयुक्त हुआ हुआ है— [१]
युवक अर्थमें। [२] विषम अर्थमें। [३] जीवन्मा
अर्थमें। [४] कालेन्द्रियोंके अर्थमें। [५] आचार्य अर्थमें।
[६] बानु अर्थमें और [७] लक्ष अर्थमें।

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

अष्टादश फण्डकी विषयसूची ।

१ तपस्विनों का श्लोक ।	१	विठरों के किये प्रत्येक मासमें दान ।	८१
१ अग्नि देवता और इन्द्र ।	२	, का वासना ।	१
३ वन, विठर और अन्वयेति ।	५	अग्नि और विठर ।	१
४ अष्टादश फण्डका मन्त्र ।	१५	ब्रह्ममें अग्निका विठरोंको कावा ।	११
[१] विठर ।	१	अग्निका विठरोंको हुनि कावे के किट्ट के वावा ।	१
विठरको ।	१	अग्निका विठरोंको हुनि पशुवावा ।	११
विठरको पुनिनी ।	११	अग्निका दूरगाव विठरोंको वावा ।	११
विठरको—अन्वयेति ।	५	, छट्ट पुनरुक्ते विठरोंको वावा पशुवावा ।	११
११ पु ।	५	मरवेपर विठरोंको वावा ।	११
विठरका कुल वा वर ।	४१	अन्वाट अग्नि ।	११
विठरोंका दैव ।	४१	अग्निके करीरका विठरोंमें प्रत्येक ।	११
विठरान्त ।	४१	विठरोंकी रक्षा अग्निनी उत्पत्ति ।	११
[२] विठरोंके कर्तव्य ।	४	वैवातर अग्निका विठरोंको वावा करना ।	११
रक्षा करना ।	४	अग्निवाच विठर ।	१
सर्व प्रकाश देना ।	४१	वर्षिण्य विठर ।	११
वापसे सुहावा ।	४८	मेव व अन्वयेति ।	११
मुक्त व अन्वाच करना ।	१	मान् विठरोंके कुल अन्वय पूर्व ।	१
मर्ष वाच करना ।	४१	मान् विठरोंके पर देवका अन्वयवाच ।	१
संवत्सि वावा वावा ।	११	स्वायके वाव वस्त्र पहिनावा ।	१
पुनर्जन्ममें सहायवा ।	८	स्वायवाचपुमि की वस्त्र अन्वाच । अन्वाच का	१
विठरोंके स्तोत्र ।	११	ग्रामसे वाहर होवा ।	१
विठरोंके दीर्घाव ।	४१	ले विठरकारिणोंको माला ।	१ १
विठरोंके प्रति हमारे कर्तव्य ।	११	देवको अन्वाच वावा वावा ।	१ १
विठरोंके किट्ट अन्वय ।	४१	अन्वयेति—अन्वय ।	१ १
११ स्ववा ।	११	प्रार्थनामें ।	१ १
विठरोंको स्ववा देवेति वावा ।	४१	विठर विठर अन्वयेति विठरवाच ।	१ १
अन्वाच विठरवाच ।	४१	विठर अन्वयेति ।	११
विठरोंका वावा ।	४१	अन्वयेति अन्वय ।	११
१ के कर्तव्य विस्तार करना ।	४१	विठर विठर ।	१ १
विठर और वस्त्र ।	४१	विठर विठर ।	१ १
विठरों का वस्त्र अन्वय ।	४१	विठर विठर ।	१ १

इह विर ।	१ ०	विरोंका देवत्व काय ।	१२०
बनक विर ।		पद्मका विरोंधि बना ।	
पूर्वक विर ।	३०	बनक अर्थमें विर ।	१
बाहु विर ।	१	विपत्तिका ओषधि व विर ।	१
यो-द्रोषामक विर ।	१०८	स्वर्गचर्चव ।	१२१
शोम और विर ।	१	विरोंका बन आदि देवा ।	
विमलम् शोम ।	१	दास्य व विरा, विरामह आदि ।	१
अभिरक्ष विर ।	१	विरोंका कल्पिके विषयमें अष्टाव ।	१
विरोंकी कल्पवि ।	१११	वराहचंद्र विर ।	१२२
दक्षिण व विर ।	५	विरा, विरामह आदि विर ।	१
मारेपर विरोंमें गजवा ।	११२	(२) वम ।	१२३
कनिनी तथा विर ।		मालावहारी वम ।	१
शरत्परी और विर ।		कश्चित् व वम ।	१२५
यौ व विर ।	११३	विष्टारी ओषध व वम ।	१२६
इंद्र व विर ।	१	वमका कर्ता अति ।	
ववग विर ।	११४	वमकी बेटी ।	१२७
कम और विर ।	१	देवस्वत वम ।	१
मभि		वमकोक व वमराज्य ।	१२८
अक्षैववपायक विर ।	११५	वमकी दक्षिण भिका ।	१२९
मछपाती व विर ।	५	मुकोकमें वमकोक ।	
विरोंकी कृत्ति का विषयव ।		वमके वृत् ।	१३२
देवोंके विर ।	१	वमवृत्-काय (कुचे)	१३३
विरों के ऊर्ध्व आदि के किय वमस्काद	११६	वमका वृत्-छात्र ।	१३४
विरों का दृष्टावृत् ।		वमका विरुवाज-मार्ग जानना ।	१३५
५० से अधिककर श्रेष्ठ होना ।	११७	वमकी स्वर्गमें पहुँचानेके किये सहमति ।	
के किये वन वक व बाहु ।	१	वमका शीर्षावृत् देवा ।	१
विर व वृतीय पञ्चोत्ति ।		वमकी यमुप्योधि रक्षा ।	
विश्वोत्ति मुकह रक्षा बनाना ।		वमकी यमुप्ये रक्षा ।	
पुत्र विरोंका अनुगमन विवैध ।	११८	वमके किये इति ।	१३६
वस्मा वृत् करवैकी प्रार्थना ।	१	वमके किये अक्षकी इति ।	१
वचुवृत् विर ।	१	वमकी पुत्रा ।	१३७
कम्पाक विरोंमें रहना ।	११९	वमके किये वर ववत्त ।	१
रुपाक्षी विरोंको घेरना ।		वमके किये स्वका वम ।	
मछमोके वृत् वीयेमें पाव ।		वम और स्वप्य ।	१
पाकक अर्थमें विर ।	१	स्वप्यका विद्या वम ।	१
मेवाके वपायक विर ।	१२	स्वप्य-वम का करण ।	१३८

यम कौच है ।	१३९	अग्निदग्ध और अमग्निदग्ध ।	१५९
यम व विवरवान् ।	१४	अग्निष्वात्त व अमग्निष्वात्त ।	,
इयुमान् यम ।	"	अग्नेह से १ सू. १६	१६०
यम और ऋच ।		१ , १३५	१६१
यमका अग्निमे विर करवा ।	१४१	" ,, १ , १५४	१६२
यमके पाय अन्न ।	,	(४) उपर्यहार ।	१७
यम व विररोक्ष सचव ।		विपुकोक ।	,
यम—विररोक्ष अविपति ।	"	विपुवाय ।	,
यम—मेघ विर ।	१४२	विररोक्ष कार्य ।	१७१
यम व विररोक्ष सचकार्य ।	१४३	विररोक्ष प्रति हमारे कर्तव्य ।	"
यम के साथ इति जाना ।		विर और यम ।	"
यम व विररोक्ष साथ जाना ।		अग्नि और विर ।	
विर व यमका मिश्रण सुख हैवा ।		अम्वात्त अग्नि ।	
यम व विररोक्षी घृहमविष्टे स्वर्गप्रप्ति ।		अग्निष्वात्त विर ।	
विररोक्ष स्मृत्य वातक करवा ।	१४४	मेघ व अग्नेहि ।	१७२
अग्निरसु विर व यम ।	"	मिन्न मिन्न अर्धमे विर ।	,
यमका अग्निरसु विररोक्ष साथ जाना		यम ।	"
विषयक अर्धमे यम ।	१४५	यमकोक व यमरात्त ।	
अविषयक अर्धमे यम ।		पुकोकमे यमकोक ।	११
कार्येविषा यम ।		यमद्वय ।	
आचार्य यम ।	१४६	यमके कार्य ।	"
वायु यम ।		यमके प्रति हमारे कार्य ।	"
सूर्य—यम ।	,	यम और स्वयं ।	१७३
(१) यम और विररोक्ष अग्नेह—सूक्त ।	१४७	यम कौच है ।	,
अग्नेह से १ सूक्त. १४	"	यम व विररोक्ष संवत् ।	,
" १ १५	१५४	मिन्न मिन्न अर्धमे स्तुत यम ।	"



